

ज्ञानदिवाकर, प्रशान्तमूर्ति, मर्यादा शिष्योत्तम

आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज के आराधना महोत्सव के उपलक्ष्य में

श्री सम्मेदशिखर माहात्म्य

श्रीमद् यतिवर देवदत्त विरचितं

(श्री लोहाचार्य)

अनुवाद

डॉ० श्रेयांस कुमार सिंघई

सम्पादक

ब्र० धर्मचंद शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य

अर्थसहयोग

श्री हंसराज संजय कुमार सेठी

हजारीबाग



भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

सम्पादकीय

वीसंतु जिण वरिंदा, अमरासुर वंदिदा धुदकिलेसा ।

सम्मेदे गिरि सिहरे, णिळ्वाण गया णमो तेसिं ॥

बला जा रहा तीर्थक्षेत्र में अपनाए भगवान् को ।

सुन्दरता की खोज में मैं अपनाए भगवान् को ॥

तीर्थ क्षेत्रों की यात्रा भक्त जीवन की एक अभिलाषा है । ये स्थान अननक कलात्मक मन्दिर मूर्तियाँ आदि जीवन्त स्मारक हैं । मुक्तात्माओं के, महापुरुषों, के धार्मिक तथा स्मरणीय घटनाओं की यात्रा पुण्यवर्धक और आत्मशोधक होती है । यह एक सचाई है जिसका समर्थन तीर्थयात्रियों द्वारा वहाँ बिताये जीवन से होता है ।

संसार से घबराये, परिवार की झंझटों से क्लेशित समाज के थपेड़ों से दुःखित आधि व्याधियों से पीड़ित मनुष्य के लिए तीर्थक्षेत्र अमोघ रसायन है । पाप मैल को धोने के लिए ये निर्मल झरने के समान हैं ।

तीर्थक्षेत्र निर्वाण भूमि के स्पर्श मात्र से संसार ताप शान्त हो जाता है । दुःखी प्राणी को अपूर्व उल्लास प्राप्त होता है । अशुभ विचारों का नाश हो जाता है भववर्द्धिनी भावना भव नाशिनी हो जाती है । परिणाम निर्मल ज्ञान उज्ज्वल, बुद्धि स्थिर, मस्तिष्क शान्त और मन पवित्र हो जाता है । भारतवर्ष तीर्थक्षेत्रों का जनक है

यदा यदा यान्ति भराहि तीर्थं, रुन्धन्ति पापानि वदन्ति चैव ।

अहो मनुष्या अधमा ही नित्यं, स्वयं समुत्पाद्य निहन्तु कामाः ॥

अर्थात् तीर्थक्षेत्रों के दर्शन मात्र से पूर्ववद्ध पाप अशुभ कर्म को नष्ट करते हैं । सभी क्षेत्रों का प्रभाव अविन्य होता है किन्तु दिगम्बर तीर्थराज सम्मेदशिखर सिद्धभूमि का अलौकिक माहात्म्य है ।

तीर्थ मान्यता

प्रत्येक धर्म और सम्प्रदाय में तीर्थों का प्रवचन है । हर सम्प्रदाय के अपने तीर्थ हैं जो उनके किसी महापुरुष एवं उनकी किसी महत्त्वपूर्ण घटना के स्मारक होते हैं । प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने तीर्थों की यात्रा और वंदना के लिए बड़े भक्तिभाव से जाते हैं और आत्म-शान्ति प्राप्त करते हैं । तीर्थस्थान पवित्रता, शान्ति और कल्याण के धाम माने जाते हैं । जैन-धर्म में भी तीर्थ का विशेष महत्व रहा है । जैनधर्म के अनुयायी प्रति वर्ष बड़ी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक अपने तीर्थों की यात्रा करते हैं । उनका विश्वास है कि तीर्थयात्रा से पुण्य संचय होता है । और परम्परा से मुक्ति लाभ की प्राप्ति होती है । इसी विश्वास के कारण वृद्ध, स्त्री,

बालक, युवा सभी तीर्थभक्त सम्मोदशिखर जैसे दुःरुहपर्वतीय क्षेत्रों की वंदना भगवान् का नाम स्मरण करते हुए ऊँचे पर्वतों पर चढ़ जाते हैं ।

तीर्थ मंगल

तीर्थ शब्द क्षेत्र या क्षेत्र मंगल के अर्थ में बहु प्रचलित एवं रूढ़ है । तीर्थक्षेत्र न कहकर केवल तीर्थ शब्द कहा जाय तो उससे भी प्रायः तीर्थक्षेत्र या तीर्थस्थान का आशय लिखा जाता है । जिन स्थानों पर तीर्थकरों के गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान और निर्वाण कल्याणकों में से कोई कल्याणक हुआ हो अथवा किसी निर्ग्रन्थ वीतरागी तपस्वी मुनि को केवलज्ञान या निर्वाण प्राप्त हुआ हो वह स्थान वीतरागी साधुओं के संसर्ग से पवित्र हो जाता है इसलिए पूज्य भी बन जाते हैं ।

पावनानि हि जायन्ते स्थानान्यापि सदाश्रयात् ।

अर्थात् महापुरुषों के संसर्ग से स्थान पवित्र हो जाते हैं ।

मूलतः पृथ्वी पूज्य या अपूज्य नहीं होती । उसमें पूज्यता महापुरुषों के संसर्ग के कारण आती है । पूज्य तो वस्तुतः महापुरुषों के गुण होते हैं किन्तु वे गुण जिस (आत्मा) शरीर में रहते हैं वह शरीर भी पूज्य बन जाता है । संसार उस शरीर की पूजा करके ही गुणों की पूजा करता है ।

तीर्थ

तीर्थ शब्द तृ धातु से निष्पन्न हुआ है । व्याकरण की दृष्टि से तीर्थन्ते अनेन वा तृ प्लवन तरणयोः इति थक् तृ धातु के साथ घाक् प्रत्यय लगाकर तीर्थ शब्द की निष्पत्ति की जिसके द्वारा अथवा आधार से तिरा जाये ।

संसाराब्धे-र-परस्य तरणे तीर्थं मिष्येत ।

चेष्टितं जिननाथानां तस्योकिस्तार्थं संकथा ।।

जो इस अपार संसार-समुद्र से पार करें उसे तीर्थ कहते हैं, ऐसा तीर्थ जिनेन्द्र भगवान् का चरित्र ही हो सकता है ।

आचार्य समन्तभद्र ने भगवान् जिनेन्द्र-देव के शासन को सर्वोदय तीर्थ बताया है ।

सर्वोदयं तीर्थमिदं तदैव

सब का कल्याण करने वाला ही सर्वोदय तीर्थ कहलाता है । आचार्य पुष्पदन्त भूतबली स्वामी ने धवला में तीर्थकर को धर्मतीर्थ कर्त्ता बताया ।

आदिपुराण में राजा श्रेयांस को दान तीर्थ का कर्त्ता बताया । मोक्ष-प्राप्ति के उपाय भूत सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चरित्र को भी तीर्थ की संज्ञा दी ।

मुनि, आर्थिका, श्रावक, श्राविका इस चतुर्विध संघ अथवा चतुर्वर्ण को तीर्थ माना है। इनमें गणधरों और उनमें भी मुख्य गणधर को मुख्य तीर्थकर्ता माना।

तीर्थों का माहात्म्य

संसार में प्रत्येक क्षेत्र स्थान समान है किन्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का प्रभाव हर स्थान को दूसरे स्थान से पृथक् कर देता है। द्रव्यगत विशेषता, क्षेत्रकृत प्रभाव और कालकृत परिवर्तन हम नित्य देखते हैं। इससे भी अधिक व्यक्ति के भावों और विचारों का चारों ओर के वातावरण पर प्रभाव पड़ता है। जिनकी आत्मा में विशुद्ध शुद्ध भावों की स्फुरणा होती है उनमें से शुभ तरंगें निकलकर आसपास के सम्पूर्ण वातावरण को व्याप्त कर लेती हैं। उस वातावरण में शुचिता, शान्ति, निर्वैरता और निर्भयता व्याप्त हो जाती है। ये तरंगें जितने वातावरण को घेरती हैं इसीलिए यही कहा जा सकता है, कि उन भावों में उस व्यक्ति की शुचिता आदि में जितनी प्रबलता और वेग होगा उतने वातावरण में वे तरंगें फैल जाती हैं। इसी प्रकार जिस व्यक्ति के विचारों में विभिन्न कष्ट और विषयों की लालसा होगी, उतने परिमाण में वह अपनी शक्ति द्वारा सारे वातावरण के कारण दूषित हो जाता है। उसके अशुद्ध विचारों और अशुद्ध शरीर से अशुद्ध परमाणुओं की तरंगें निकलती रहती हैं जिससे वहाँ के वातावरण में फैलकर वे परमाणु दूसरे के विचारों को भी प्रभावित करते हैं। सर्वत्यागी निर्ग्रन्थ दिगम्बर जैन मुनि आत्मकल्याण के मार्ग के राही एकान्त शान्ति की इच्छा से वनों में गिरी-कन्दराओं में, सुरम्य नदी-तटों पर आत्मध्यान लगाया करते थे।

ऐसे तपस्वी साधु जनों के शुभ परमाणु उस सारे वातावरण में फैलकर उसे पवित्र कर देते थे। वहाँ जाति विरोधी जीव आते तो न जाने उनके मन का भय और संहार की भावना कहाँ तिरोहित हो जाती। वे उन तपस्वी मुनि की पुण्य भावना की स्निग्ध छाया में परस्पर किल्लौल करते और निर्भय विहार करते थे। जब तपस्वी और ऋद्धिधारी मुनियों का इतना प्रभाव होता है, तो तीन लोक के स्वामी तीर्थंकर भगवान् के प्रभाव का तो कहना ही क्या है। उनका प्रभाव अधिंत्य है, अलौकिक है, तीर्थंकर प्रकृतियों का अनुभाग सुखरूप परिणत हो जाता है। तीर्थंकर प्रकृति की पुण्य वर्णणाएँ इतनी तेजस्वी और बलवती होती हैं कि तीर्थंकर जब माता के गर्भ में आते हैं उससे छह माह पूर्व ही वे देवियाँ और इन्द्रों को तीर्थंकरों के चरणों का विनम्र सेवक बना देते हैं।

सिद्धक्षेत्र महातीर्थं पुराण पुरुषाधिते ।

कल्याण कलि पुण्ये ध्यानसिद्धिः प्रजापते ॥

सिद्धक्षेत्र महान् तीर्थ होते हैं, यहाँ पर महापुरुष का निर्वाण हुआ है, यह क्षेत्र कल्याणदायक है तथा पुण्यवर्द्धक होता है। यहाँ आकर यदि ध्यान किया जाय तो ध्यान की सिद्धि हो जाती है। जिसको ध्यान की सिद्धि हो गई, उसे आत्मसिद्धि होने में विलम्ब नहीं

लगता । तीर्थ भूमियों का माहात्म्य वस्तुतः यही है कि वहाँ जाने पर मनुष्यों की प्रवृत्ति संसार की चिन्ताओं में मुक्त होकर उस महापुरुष की भक्ति से आत्मकल्याण की ओर होती है । घर पर नाना प्रकार की सांसारिक चिन्ताएँ और आकुलताएँ रहती हैं । उसे घर पर आत्म-कल्याण के लिए निराकुल अवकाश नहीं मिल पाता । तीर्थस्थान प्रशान्त स्थानों पर होते हैं, प्रायः तो वे पर्वतों पर या एकान्त वनों में नगरों के कोलाहल से दूर होते हैं । फिर भी वहाँ के वातावरण में भी प्रेरणा के बीज छितराये होते हैं । अतः मनुष्य का मन वहाँ शान्त, निराकुल और निश्चिन्त होकर भगवान् की भक्ति और आत्मसाधना में लगता है ।

तीर्थक्षेत्रों का माहात्म्य आचार्यों ने लिखा है—

श्री तीर्थ पान्थरजसा धिरजी भवन्ति, तीर्थेषु विभ्रमणतो न भवेभमन्ति ।

तीर्थव्ययादिह नराः स्थिर संपदः स्युः, भवन्ति जगदीश मया श्रयन्तः ।।

तीर्थभूमि के मार्ग की रज इतनी पवित्र होती है कि उसके आश्रय से मनुष्य रज रहित अर्थात् कर्म भल रहित हो जाता है । तीर्थों पर भ्रमण करने से अर्थात् यात्रा करने से संसार का भ्रमण छूट जाता है ।

महापुरुषों के शरीर की पूजा भक्त का शरीर करता है और महापुरुष के आत्मा में रहने वाले गुणों की पूजा भक्त को आत्मा अथवा उसका अन्तःकरण करता है । इसी प्रकार महापुरुष वीतराग तीर्थंकर अथवा मुनिराज जिस भूखण्ड पर रहे वह भूखण्ड भी पूज्य बन गया । वस्तुतः पूज्य तो वे तीर्थंकर या मुनिराज हैं ।

दिगम्बर जैन वीतरागी तीर्थंकरों और महर्षियों ने संयम, समाधि, तपस्वी और ध्यान के द्वारा जन्म, जरा, मरण से मुक्त होने की साधना की और संसार के प्राणियों को संसार के दुःखों से मुक्त होने का उपाय बताया, जिस मिथ्या मार्ग पर चलकर प्राणी अनादिकाल से नाना प्रकार के भौतिक और आत्मिक दुःख उठा रहे हैं उस मिथ्या मार्ग को ही इन दुःखों का एकमात्र कारण बताकर प्राणियों को सम्यक् मार्ग बताया । वे महापुरुष संसारी प्राणियों के उपकारक हैं, मोक्ष मार्ग के नेता माने जाते हैं । उनके उपकारों के प्रति कृतज्ञता प्रगट करने और उस भूमिखण्ड पर घटित घटना की सतत स्मृति बनाये रखने और इस सबके माध्यम से उन वीतराग देवों, गुरुओं के गुणों का अनुभव करने के लिए उस भूमि पर महापुरुषों का कोई स्मारक बना देते हैं । सभी तीर्थक्षेत्रों की संरचना में भक्तों की महापुरुषों के प्रति यह कृतज्ञता की भावना ही है ।

निर्वाण क्षेत्र

ये वे क्षेत्र कहलाते हैं जहाँ तीर्थंकरों या किन्हीं दिगम्बर तपस्वी मुनिराज का निर्वाण हुआ हो । शास्त्रों का उपदेश, व्रत, चारित्र, तप आदि सभी कुछ निर्वाण प्राप्ति के लिए है ।

यही और परम पुरुषार्थ है। जिस स्थान पर निर्माण होता है उस स्थान पर इन्द्रदेव पूजा को आते हैं तथा चरण-चिह्न स्थापित कर देते हैं।

तीर्थकरों के निर्वाण क्षेत्र कुल पाँच हैं— कैलाशपर्वत, चम्पापुरी, पावापुरी, ऊर्जयन्त और सम्पेदशिखर। कैलाश पर्वत से भगवान् ऋषभदेव, चम्पापुरी से श्री वासुपूज्य स्वामी, गिरनार से नेमिनाथ स्वामी, पावापुरी से महावीर स्वामी ने कर्मों को नाश कर शाश्वत सुख को प्राप्त किया। सम्पेदशिखर से १० तीर्थकरों ने कठोर आत्म-साधना कर कर्मों को नाश कर अविनाशी सुख को प्राप्त किया।

निर्वाण क्षेत्र के दर्शन करने से आत्मिक शान्ति, लाभ तथा उस क्षेत्र की वंदना के साथ उन महापुरुषों के आदर्श अनुप्रणित होकर आत्म-कल्याण की भावना बन जाती है।

तीर्थयात्रा कैसे करें ?

यों तो तीर्थयात्रा कभी भी की जा सकती है। जब भी यात्रा को जाये, पुण्य संचय होगा ही होगा। किन्तु अनुकूल द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव देखकर यात्रा करना अधिक उपयोगी रहता है। द्रव्य की सुविधा होने पर यात्रा करना अधिक फलदायक होता है। यदि यात्रा के लिए द्रव्य की अनुकूलता न हो, द्रव्य का कष्ट हो और यात्रा के निमित्त कर्ज लिया जाये तो उससे यात्रा में निश्चितता नहीं आ पाती, संकल्प-विकल्प बने रहते हैं। यात्रा पर जाने के बाद मन में किसी भी प्रकार के विचार मन में नही आने चाहिये तथा मन की स्थिरता चाहिये तभी यात्रा करना शुभ एवं श्रेष्ठ है। यात्रा करने से पापों से मुक्ति और आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त करना है। तीर्थयात्रा में विनय, श्रद्धा, भक्ति आदि गुणों का होना अनिवार्य है। तीर्थयात्रा जाते समय क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष एवं कषायों की पूर्ति हो ऐसे कार्य मन, वचन, काय से नहीं करें। प्राणी मात्र के कल्याण की भावना मन में रखें तथा संसार-मार्ग से छूटने का प्रयत्न करें।

जैनधर्म जो सदैव कल्याण के लिए समर्पित रहा है, विश्व के ग्लोब में चाहे जैसे रंग बदले हों लेकिन इन रंगों को नजरअंदाज करते हुए सदैव पृथ्वीवासियों को शान्ति और प्रेम का संदेश दिया है, आज हम विश्व की जो व्यवस्थाएँ देख रहे हैं। मानव जाति न केवल आध्यात्मिक दृष्टि से अपितु जीवन की अन्य व्यवस्थाओं से भी अविकसित थी। यह विश्व कैसे विसरा पायेगा। तीर्थकर ऋषभदेव को जिन्होंने मानव-जाति को जीवन जीने का सुव्यवस्थित मार्ग दिया। जिस विकसित युग में आज हम रह रहे हैं उनके विकास का सबसे बड़ा श्रेय भगवान् ऋषभदेव को है। उन्होंने मानवता को एक ओर जहाँ आध्यात्मिक उन्नति की प्रेरणा दी वहाँ दूसरी ओर लोक-जीवन के बहुमुखी विकास में भी मार्गदर्शन दिया।

जैन तीर्थंकरों ने सर्वप्रथम मनुष्य को मनुष्य बनाने का प्रयास किया। इतना ही नहीं, किसी ईश्वरीय सत्ता में भगवत्ता को निहारने की बजाय मनुष्य में छिपी भगवत्ता को प्रगट करने की कोशिश की।

जैनधर्मानुयायी सदैव तीर्थ-निर्माण एवं संरक्षण के प्रति सजग रहे। उन्होंने समय-समय पर तीर्थ-रक्षा के लिए सर्वस्व निछावर किया। तीर्थ-स्थान को पवित्र बनाने में तीर्थंकरों एवं मुनियों की साधना, तप, त्याग एवं निर्वाण से तीर्थों की रचना हुई।

युग था जब आत्म साधक महापुरुषों ने उच्च पर्वतमालाओं में मनोरम नदी तट गम्भीर गुफाओं में एकान्त स्थान पर ध्यान एवं साधना के बल से आत्मा को खोजा/जाना तथा कर्मों को नाश कर परम पद में स्थित हो गये। वही स्थल हमारे लिए पूजनीय आराधनीय बन गये।

तीर्थभूमियाँ हमारे लिए सिर्फ पर्यटक स्थल तक ही सीमित नहीं हैं। यहाँ वह सब कुछ है जिसे पाकर मनुष्य कोलाहलभरी विषैली जिन्दगी में शान्ति की कुछ अमृत बूँदें प्राप्त करता है।

प्रश्न स्वाभाविक है कि बीस तीर्थंकर तथा अनन्तानन्त मुनियों ने अन्तिम साधना के लिए सम्मेदशिखर को ही क्यों चुना?

इसके पीछे एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। हर तीर्थंकर ने अपनी चैतन्य-विद्युत् धारा से उस शिखर को चार्ज किया है। एक तीर्थंकर ने वहाँ अपनी समाधि लगायी। उनके हजारों वर्षों बाद दूसरे तीर्थंकर या मुनि ने कर्मनाश कर वहाँ निर्वाण प्राप्त किया। इस प्रकार हर तीर्थंकर ने उस धनत्व शक्ति को सचेतन करने का प्रयास किया। एक तीर्थंकर ने पुनः उसे अभिसिंचित कर दिया। अरबों, खरबों मुनियों के द्वारा लाखों वर्षों से वह स्थान स्पन्दित, जागृत और अभिसिंचित होता रहा। चेतना की ज्योति वहाँ सदा अखण्ड बनी रही। निसर्गतः यह कल्पना की जा सकती है कि सम्मेदशिखर कितना अद्भुत, अनूठा जाग्रत पुण्य क्षेत्र है।

निश्चित रूप से सम्मेदशिखर वह गौरवमय भूमि है। इस भूमि की विशेषता है, व्यक्ति जैसे ही शिखर का प्रथम सीढ़ी पर एक कदम रखता है, आगे ही बढ़ता चला जाता है। हृदय आनन्द से इस तरह सराबोर हो जाता है कि आगे आने वाली थकावट उसे थकावट नहीं लगती। आठ वर्ष का बच्चा है या अस्सी साल का वृद्ध, दोनों समान हैं।

वैसे भी निर्वाण की ज्योतियाँ कभी तलहटी में नहीं जला करतीं इसे जलाने के लिए शिखर तक पहुँचना पड़ेगा। हमारा हृदय तब कितना प्रसन्न होता है- जब हम इन पावन शिखरों पर पहुँचते हैं। आँधी-तूफान, झंझावात, वर्षा, तेज हवाये सबकुछ चलती हैं, कभी

भी कभी तो ऐसा लगता है कि पूरा शिखर ही हिल रहा है तब भी निर्वाण की वे ज्योतियाँ अकम्प दिखाई देती हैं ।

कल वह सबकुछ नहीं था जो आज दिखाई दे रहा है, संभव है कल भी न रहे । लेकिन इससे प्रभु की शाश्वत ज्योति की निश्चलता को कहीं कोई खतरा नहीं है । काश, हम भी इन ज्योतियों के पास जाकर स्वयं को ज्योतिर्मय कर वह आत्मदीप जलाकर प्रकाश की शाश्वत किरणों को प्राप्त कर सकते ।

इस पवित्र तीर्थधाम की यात्रा हमारा अहोभाग्य है । यही तो वह पर्वत है जिसके कण-कण में सिद्धत्व की आभा है । निर्वाण की ज्योति है । असंख्य वर्षों से मानव ही नहीं वरन् देवों ने इसकी पूजन-अर्चन कर जीवन को पवित्र किया । यहाँ का कंकर-कंकर सिद्ध आत्मा के चरण-कमलों के स्पर्श से पवित्र है । यात्रा के समय हृदय में जो हर्षोल्लास, प्रफुल्लता और सहज आनन्द की उपलब्धि होती है वह अन्यत्र दुर्लभ है । इस पावन तीर्थ की यात्रा, वंदना, दर्शन, संकटहारी, पुण्यकारी और आपनाशिनी है ।

भारत का अतीत गौरवमय रहा है । विश्व के अनन्त प्राणी जब अज्ञान के अंधेरे में रास्ते टोह रहे थे तब इस देश के अनेकों महापुरुष, तीर्थंकर, आचार्य एवं मुनि गहन चिन्तन की अतुल गहराइयों में पहुँच चुके थे ।

सम्पेदशिखर जैनों का सबसे बड़ा एवं सबसे ऊँचा तीर्थ है । इस क्षेत्र के दर्शन मुझे सन् १९७१ में प्रथम बार हुए । रास्ते ज्ञात नहीं, फिर भी अकेला ही चला दिया ।

इस अवसर पर पूज्य मासोपवासी मुनि सुपार्श्वसागर जी महाराज संघ सहित पधारे थे । मैं उनके साथ आया था । आचार्य श्री विमलसागरजी भी संघ सहित विराजमान थे । महाराज जी का आशीर्वाद लेकर चल दिया तथा धीरे-धीरे पर्वत की चोटी पर पहुँच गया । हृदय गद्गद हो गया और सन् ७१ से ९५ तक प्रतिवर्ष यात्रा का आनन्द लेता आ रहा हूँ । आज भी वही चित्र आँखों के सामने है ।

बिहार प्रान्त के गिरीडीह जिले में पारसनाथ स्टेशन से १४ कि०मी० की दूरी पर मधुबन है, मधुबन से १० मील दूर पालगंज नामक ग्राम है जहाँ पर एक शिखरबंद मंदिर है । उसमें एक चतुर्थ काल की भगवान् की प्रतिमा विद्यमान है । यह क्षेत्र पालगंज राजा की जमींदारी में जमींदार स्वयं यात्रियों की सुख सुविधा तथा यात्रा का प्रबन्ध करते थे ।

वर्तमान में सम्पेदशिखर पर्वतराज की ऊँचाई ४५७९ फुट है । इसका क्षेत्रफल (विस्तार) २५ वर्ग मी० में है । साधारण दिगम्बर जैन यात्रीगण रात्रि को १-२ बजे स्नान कर शुद्ध धुले वस्त्र पहन कर गिरिराज की वंदना को जाते हैं ।

दिगम्बर जैन बीस पन्थी कोठी से २ फर्लांग की दूरी पर क्षेत्रपाल महाराज की गुफा है। इनका नाम महाप्रभुत क्षेत्रपाल जो १० लाख व्यन्तरो के अधिपति हैं, इनका सत्कार कर वन्दनार्थ जाने वाले की सुगमता से यात्रा हो जाती है। यह इसका अद्भुत चमत्कार है यहाँ से ढाई मील की दूरी पर गन्धर्व नाला आता है। यात्रीगण विश्राम तथा यात्रा से वापसी में जलपान किया करते हैं। यहाँ से १ मी० की दूरी पर सीता नाला बहता है। वहाँ पर प्रभूत महाबल क्षेत्रपाल यक्षेन्द्र की दो गुफाएँ हैं। सीतानाला पर यात्री बन्धुओं के लिए शुद्ध जल से पूजन-सामग्री धोने का जल है। इस नाले के पार से चौपड़ा १ मील दूर चौपड़ा कुण्ड है जहाँ दिगम्बर जैन मन्दिर, वहाँ भगवान् पार्श्वनाथ तथा भगवान् आदिनाथ तथा बाहुबली की मूर्ति स्थापित है। आधा मी० की दूरी पर देवाधिदेव कुन्धुनाथ स्वामी तथा गणधर महाराज की टीक शुरू होती है।

वन्दना करते समय यात्री जूते, चप्पल, ऊनी वस्त्र, चमड़े की बनी वस्तुओं का उपयोग न करें। पाप बन्ध का कारण है। जैनाचार्यों ने कहा—

रोमजं चर्मणं वस्त्रं इतिः परिवर्णयेत् ।

रोम के, चमड़े के कपड़ों को त्याग कर, खाने पीने का त्याग कर वन्दना करनी चाहिए।

मधुवन से भगवान् कुन्धुनाथ जी की टीक तक ६ मील तथा ऊपर समस्त टीकों की वन्दना का घुमाव ६ मील तथा पार्श्वनाथ से नीचे धर्मशाला तथा आने में ६ मील इस प्रकार १८ मील यानि २७ कि०मी० की यात्रा पुण्यभूमि के प्रताप से किसी प्रकार की थकावट प्रतीत नहीं होती।

यह अनादिकाल सिद्ध प्रसिद्ध सम्मेदशिखर महान् सिद्धक्षेत्र है। इस गिरीराज से असंख्यात् चौबीसी और अनन्तानन्त मुनिश्वरों ने कर्म नाश कर मोक्ष पद प्राप्त किया।

इस क्षेत्र के कण में अनन्त विशुद्ध अनन्त आत्माओं की पवित्रता व्याप्त है, वे अनन्त सिद्ध भगवान् अपने परम औदारिक शुद्ध शरीर की समस्त वर्णणाओं को दिखरा गये। जैसे किसी सुगन्धित वस्तु से सुगन्धित किया गया पात्र उस सुगन्धित वस्तु के पृथक् हो जाने पर भी उस पात्र में सुगन्धि का अंश बराबर मौजूद रहता है, वैसे ही अनन्त केवली भगवन्तों के परम औदारिक शरीर सम्बन्धी पुद्गल वर्णणाओं का अस्तित्व आज भी श्री सम्मेदशिखर को पवित्र कर रहा है। वे वर्णणाएँ आज भी भावों और कर्मों से टकराकर हमको परमात्मा बनने की प्रेरणा देती हैं। इनके रजः कणों में आध्यात्मिकता का दिग्दर्शन होता है। एकान्त शान्त सघन वनस्थली दृढ़ता एवं उत्साह प्रदान करती है। सनसनाती वायु भव्य आत्माओं को पुरुषार्थ का सन्देश देती है।

अस्य दर्शनमात्रेण कुष्ठाद्या नाशतां गताः ।
 रोगिणां सकलातकाः ऋद्धिर्वाप्तिः ऋद्धिर्वाप्तिः ।
 पुत्रकांक्षावतां चैव जाताहि चेलना प्रिया ।
 पुत्रोत्पत्तिर्धनोप्यसि राज्योः त्यतिः शिवस्य च ।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन्, जो भव्य जीव इसके दर्शन करता है करता है उसके कुष्ठ आदि भयानक रोग नाश को प्राप्त हो जाते हैं, पुत्रार्थियों को पुत्र की प्राप्ति होती है, तथा राज्य-प्राप्ति चाहने वालों को राज्य मिलता है । सभी जीवों को सम्मोदशिखर के दर्शन-वन्दन-पूजन आदि से सभी सुखों की प्राप्ति होती है ।

आचार्यों ने धर्मग्रन्थ में लिखा है

चतुर्विधेन संघेय तथा शक्त्यनुसारतः

इस पर्वतराज की वंदना और दर्शन के पुण्य से मोक्ष सुख तक मिलता है । इसलिये मोक्ष-सुख का इच्छुक प्राणी मुनि, आर्थिक, श्रावक, श्राविकाओं यानि चतुर्विध संघ निकाल कर यात्रा करने एवं कराने से अतिशय अक्षय पुण्य संचय कर दर्शन, वंदन करो । कहा भी है कि—

तिर्यग्जां नारकीं चैव न गतिं प्राप्नुयात् किञ्चित् ।

एक बार वन्दे जो कोई, ताहि नरक पशु गति नहि होई ।।

इस महान् तीर्थराज की वंदना करने मात्र से नरकगति और तिर्यग्गति छूट जाती है अर्थात् जीव मर कर फिर नरक का एवं तिर्यग्गति में जन्म नहीं लेता था उसका क्षीलिंग का भी छेदन हो जाता है ।

तीर्थराज सम्मोदशिखर के २० टीकों से २० तीर्थकरों के साथ ८६ अरब ४८८ कोड़ाकोड़ी १४० कोड़ी १०२७ करोड़ ३८ लाख ७० हजार तीन सौ तेईस मुनि कर्मों को नाश कर मोक्ष पधारे । इस कारण इस भूमि का कण पूजनीय एवं वंदनीय है ।

सभी पापों का संहार करने वाला तीर्थराज की वंदना महान् पुण्य का कारण है । एक बार इस तीर्थ की वंदना करने से ३३ कोटि २३४ करोड़ ७४ लाख उपवास का फल मिलता है ।

गिरिराज का प्रभाव है कि विशाल जंगल में नाना प्रकार के क्रूर जीव हैं किन्तु आज तक किसी भी तीर्थयात्री को किसी प्रकार की कोई बाधा नहीं पहुँचाई । यही तो इसका प्रभाव है ।

तीर्थराज की वंदना के लिए जैन आचार्यों ने वस्त्रों का विधान बताया है—

सफेद वस्त्र पहन कर वंदना करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है । लाल वस्त्र पहन कर

पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है। पीले वस्त्र पहनकर वंदना करने से अपरिमित धन्य-धान प्राप्ति। हरे वस्त्र पहन कर वंदना करने से वैरभाव व सब प्रकार की चिन्ताओं से मुक्ति होती है तथा काले वस्त्र पहनकर वंदना करने से सब प्रकार के असाध्य रोग मिट जाते हैं।

सिद्धक्षेत्र तीर्थ परम है लब्धुं है मुक्तान् ।

शिखर सम्पेद सदा होय पाप की हानि ।।

धर्म ज्योति गिरिराज के सकल शिखर सुखदाय ।

निशिदिन वन्दों भाव युत कर्मकलंक नशाय ।।

आचार्यों ने आगम ग्रन्थों में लिखा है कि इस १२ योजन (८६) मील प्रमाण विस्तार वाले सिद्धक्षेत्र में भव्य राशि कैसी भी हो, अत्यन्त पापी जीव भी इसमें रहता हो/जन्म लेता हो तो भी ४८ जन्मों के बीच में कर्म नाश कर बन्धन मुक्त हो जाता है।

सम्पेदशिखर तीर्थक्षेत्र अनादि निधन सदैव शाश्वत है इसका अस्तित्व कभी भी नष्ट नहीं होगा। अनादि काल से है तथा अनन्त काल तक रहेगा।

३० धर्मचंद शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य



पर्वतराज पर निर्मित दिगम्बर जैन मंदिर धर्मशाला (चौपड़ा कुण्ड में)

श्री सम्मेदशिखर माहात्म्य

• • •



सम्मेलशिखर पर्वत पर ऐतिहासिक जैन मंदिर
(चौपड़ा कुण्ड) में विराजमान अद्भुत मनोज्ञ प्रतिमाएँ
भ० पार्श्वनाथ जी, भ० चन्द्रप्रभ जी, भ० बाहुबली जी

ॐ

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथाय नमः

श्रीमदेवदत्तविरचितम्

श्रीसम्मेदशिखरमाहात्म्यम्

प्रथमोऽध्याय

ध्यात्वा यत्पादपाथोजं भव्याः संसारपारगाः ।

सारात्सारं सदाधारं तमर्हन्तं नमाम्यहम् ॥१॥

अन्वयार्थ - संसारपारगाः भव्याः = संसार सागर के पार जाने वाले भव्य जन, यत्पादपाथोजं = जिनके चरणकमल से उत्पन्न (कान्ति का), ध्यात्वा = ध्यान कर, सारात्सारं = सर्वोत्तम से सर्वोत्तम पद को अथवा सत्त्व यानी वस्तु के स्वरूप को, (लभन्ते = पा जाते हैं), सदाधारं तम् अर्हन्तम् = सज्जनों के आधार उन अर्हन्त भगवान् को, अहम् = मैं, नमामि = नमस्कार करता हूँ।

श्लोकार्थ - चतुर्गति परिभ्रमण रूप संसार सागर से पार जाने की योग्यता रखने वाले भव्य जीव जिन प्रभु के चरण कमलों से उत्पन्न कान्ति का ध्यान कर सर्वोत्कृष्ट पद को पा जाते हैं अथवा वस्तु के स्वरूप को समझ जाते हैं, सज्जनों के आधार पुरुष-शरणदाता उन अर्हन्त प्रभु को मैं काव्यकार देवदत्त नमस्कार करता हूँ।

गुरुं गणेशं वाणीं च ध्यात्वा स्तुत्वा प्रणम्य च ।

सम्मेदशैलमाहात्म्यं प्रकटीक्रियते मया ॥२॥

अन्वयार्थ - मया = मेरे द्वारा, गुरुं गणेशं = मुनि समूह के स्वामी गुरु गणधर को, प्रणम्य = प्रणाम कर, स्तुत्वा = उसकी स्तुति

करके, ध्यात्वा च = और उसका ध्यान कर, सम्मेदशैलमाहात्म्यं = सम्मेदाचल का महत्त्व, प्रकटीक्रियते = प्रकट किया जाता है।

श्लोकार्थ - समवसरण में भगवान के उपदेश को धारण करने वाले मुनि समूह में अग्रणी गुरु गणधर और जिनबाणी को प्रणाम कर उसकी स्तुति करके और उसका एकाग्रचित्त हो ध्यान करके मैं देवदत्त कवि सम्मेदशिखर पर्वत का माहात्म्य अर्थात् महिमा गान प्रगट करता हूँ।

जिनेन्द्रभूषणयतिमुनिधर्मपरायणः।

तस्योपदेशात्सम्मेदवर्णने मतिलुत्सुका ॥३॥

अन्वयार्थ - धर्मपरायणः = धर्म में अनुरक्त, मुनिः = मुनिराज, (नाम्ना = नाम से), जिनेन्द्रभूषणयतिः = जिनेन्द्रभूषणयति, (आसीत् = थे), तस्य = उनके, उपदेशात् = उपदेश से, (मे = मेरी), मतिः = बुद्धि, सम्मेदवर्णने = सम्मेदशिखर के वर्णन करने के विषय में, उत्सुका = प्रयत्नशील या उत्कण्ठित हुई है।

श्लोकार्थ - धर्म साधना में अनुरक्त व तत्पर मुनिराज जिनेन्द्रभूषणयति का उपदेश सुनने से मुझ कवि की बुद्धि अब सम्मेदशिखर नामक सिद्धक्षेत्रों का वर्णन करने में उत्कण्ठित-उत्साहित हुई है।

भट्टारकपदस्थायी स यतिः सत्कविप्रियः।

भवाब्धितारणायेह सत्कथापोतसज्जकः ॥४॥

अन्वयार्थ - इह = मेरे इस सम्मेदशिखरमाहात्म्य वर्णन में, सत्कविप्रियः = सुकविगों में प्रशंसनीय, भट्टारक पदस्थायी = भट्टारक के पद पर प्रतिष्ठापित, स यति = वे जिनेन्द्रभूषण यति, भवाब्धितारणाय = संसार रूपी समुद्र से तारने के लिये, (मह्यं = मेरे लिये), सत्कथापोतसज्जकः = सम्यक् कथा रूपी नाव के नाविक, (स्यात् = हों)

श्लोकार्थ - कवि भावना कर रहा है कि भट्टारक पद पर सुप्रतिष्ठित सुकवियों में श्रेष्ठ वे जिनेन्द्र भूषणयति मेरे इस सम्मेदाचल अर्थात् शिखरजी के माहात्म्य वर्णन में मुझे संसार रूपी समुद्र से पार लगाने के लिये इस उत्तम कथा को धारण करने वाली मेरी बुद्धि रूपी नाव के नाविक हों अर्थात् जैसे नाविक नाव को सुरक्षित अपने गन्तव्य तक पहुंचा देता है वैसे ही आप भी मेरी बुद्धि रूपी नाव के संरक्षक व पथप्रदर्शक बनें।

माहात्म्यपूर्तिसिद्ध्यर्थं वन्दे सिद्धगणं हृदि ।

सद्बुद्धिं ते प्रयच्छन्तु वाणीं मे काव्यरूपिणीम् ॥५॥

अन्वयार्थ - (अहं = मैं), माहात्म्यपूर्ति सिद्ध्यर्थ = सम्मेदशिखरमाहात्म्य वर्णन की पूर्ण सिद्धि के लिये, सिद्धगण = सिद्ध भगवन्तों के समूह को, हृदि = हृदय में, (निधाय = धारण कर), वन्दे = उनकी वन्दना करता हूं, ते = सिद्ध भगवन्त, मे = मेरे लिये, सद्बुद्धिं = सद्बुद्धि को, काव्यरूपिणीं वाणीं च = और काव्य स्वरूप वाली वाणी अर्थात् वचन सामर्थ्य को, प्रयच्छन्तु = प्रदान करें।

श्लोकार्थ - मैं अपने इस काव्य सम्मेदशिखरमाहात्म्य वर्णन को पूर्ण करने के लिये सिद्ध परमेश्वरी मंडल को अपने हृदय में रखकर उन्हें नमन करता हूं तथा प्रार्थना करता हूं कि वे मुझे सद्बुद्धि दें तथा मेरी वाणी को इस कथा को काव्य रूप प्रदान करने की शक्ति प्रदान करें।

सम्मेदशैलवृत्तान्तो महावीरेण भाषितः ।

गौतमं प्रति भूयः स लोहाचार्येण धीमता ॥६॥

तत्सद्वाक्यानुसारेण देवदन्ताख्यसत्कविः ।

सम्मेदशैल माहात्म्यं प्रकटीकुरुते धुना ॥७॥

अन्वयार्थ - (यः = जो), सम्मेदशैलवृत्तान्तः = सम्मेदाचल का वर्णन, महावीरेण = भगवान् महावीर द्वारा, गौतमं प्रति = गौतमगणधर के सम्मुख, भाषितः = कही, (आसीत् = थी),

स एव = वही सम्मेदाचल का वृत्तान्त, भूयः = पुनः, धीमता लोहाचार्येण = बुद्धिमान् लोहाचार्य द्वारा, (भाषितः = कह गया), तत्सद्वाक्यानुसारेण = उनके ही सद्वाक्यों के अनुसरण से, देवदत्ताख्यसत्कविः = देवदत्त नाम का यह सत्कवि, अधुना = अब, सम्मेदशैलमाहात्म्यं = सम्मेदाचल अर्थात् सम्मेदशिखर पर्वत के महत्त्व को, प्रकटीकुरुते = प्रकट करता है।

श्लोकार्थ - इस काव्य की प्रामाणिकता के लिये कवि कह रहा है कि तीर्थङ्कर महावीर ने गौतमगणधर के सम्मुख सम्मेदशिखर का वृत्तान्त कहा था। उसे ही फिर से बुद्धिसम्पन्न अष्टम, नवम और दशम अङ्गधारी आचार्यों में एक आचार्य लोहाचार्य ने कहा। जिनके सद्वाक्यों के अनुसार अपनी बुद्धि व्यवस्थित कर देवदत्त नाम का यह सत्कवि सम्मेदशैल अर्थात् सम्मेदशिखर की महिमा को इस काव्य में प्रकट कर रहा है।

तत्रोत्तमे शैलवरे कूटानां विंशतिर्वरा ।

तत्रस्थान्सर्वदा वन्दे तत्प्रमाणज्जिनेश्वरान् ॥८॥

अन्वयार्थ - तत्र = वहाँ सिद्धक्षेत्रों में, उत्तमे शैलवरे = उत्तम श्रेष्ठ पर्वत पर, कूटानां विंशतिः = शिखरों की (संख्या) बीस, वरा = श्रेयस्कर, (विद्यते = है), तत्रस्थान् = उन कूटों पर स्थित, तत्प्रमाणान् = उसी प्रमाण वाले अर्थात् बीस, जिनेश्वरान् = जिनेश्वरों—तीर्थङ्करों को, (अहं = मैं), सर्वदा = हमेशा, वन्दे = प्रणाम करता हूँ।

श्लोकार्थ - सिद्ध क्षेत्रों में सर्वोत्तम श्रेष्ठ पर्वत सम्मेदशिखर पर श्रेयस्कर बीस कूट हैं जिन पर अर्थात् बीसों कूटों पर बीस तीर्थङ्कर के चरण चिह्न हैं कवि कहता है कि मैं उन तीर्थङ्करों को हमेशा हर क्षण नमस्कार करता हूँ।

अजितादिमहारिद्धतीर्थकृद्विंशतिं हृदि ।

ध्यात्वा पृथक्पृथक्वक्ष्ये कूटनामान्यनुक्रमात् ॥९॥

अन्वयार्थ - (अहं = मैं), हृदि = हृदय में, अजितनाथमहासिद्धतीर्थकृद्दिशति = महान् सिद्ध पद को प्राप्त अजितनाथ आदि बीस तीर्थकरों को, ध्यात्वा = ध्याकर अर्थात् उनका ध्यानकर, अनुक्रमात् = अनुक्रम से, पृथक्-पृथक् = अलग-अलग, कूटनामानि = शिखरों के नाम, वक्ष्ये = कहता हूँ।

श्लोकार्थ - सर्वोत्कृष्ट सिद्ध अवस्था को प्राप्त हुये अजितनाथ आदि बीस तीर्थङ्करों का अपने मन में ध्यान कर मैं क्रमशः अलग-अलग कूटों अर्थात् शिखरों के नाम कहता हूँ - कहूँगा।

यस्य सिद्धस्य यत्कूटं तत्तेन स्यादधिष्ठितम् ।

ततस्तन्नाम तत्कूटनाम सम्भाष्यते मया ॥१०॥

अन्वयार्थ - यस्य = सिद्धस्य = जिस सिद्ध का, यत् कूटं = जो कूट, (अस्ति = है), तत् = वह कूट, तेन = उनके द्वारा, अधिष्ठितम् = अधिकृत या सुस्थित किया हुआ, स्यात् = हो, ततः = इसलिये, मया = मुझ कवि द्वारा, तत्कूटनाम = उन कूटों के नाम, तन्नाम = उन तीर्थङ्करों के नाम (पूर्वक), सम्भाष्यते = कहे जाते हैं।

श्लोकार्थ - जिस सिद्ध अर्थात् सिद्धत्व को प्राप्त तीर्थङ्कर का जो कूट याने शिखर है, वह शिखर उन्हीं तीर्थङ्कर के लिये अधिकृत समझना चाहिये। फलतः मैं भी सम्मोदशिखर के कूटों के नाम उन तीर्थङ्करों के नाम पूर्वक कहता हूँ जिस कूट से जो तीर्थङ्कर सिद्धत्व को प्राप्त हुये हैं

अजितेशस्य यः कूटः स सिद्धवर उच्यते ।

दत्तातिथयलस्तद्वच्छम्भवरस्य विदुर्बुधा ॥११॥

अन्वयार्थ - अजितेशस्य = अजितनाथ प्रभु का, यः कूटः = जो कूट, (वर्तते = है), स/ = वह कूट, सिद्धवरः = सिद्धवर नामक कूट, (बुधैः = विद्वानों द्वारा), उच्यते = कहा जाता है, तद्वत् = उसके ही समान, शम्भवरस्य = तीर्थङ्कर संभवनाथ का, (कूटः =

कूट), दत्तधवलः = दत्तधवल नामक कूट, (अस्ति = है), (इति = ऐसा), बुधाः = विद्वज्जन, विदुः = जानते हैं।

श्लोकार्थ - तीर्थङ्कर अजितनाथ प्रभु का जो कूट सिद्धि स्थान है उसे सिद्धवर कूट कहा जाता है तथा इसी प्रकार तीर्थङ्कर संभवनाथ के सिद्धत्वगमन स्थल स्वरूप कूट को दत्तधवल कहा जाता है।

अभिनन्दनकूटो यः स आनन्द इतीरितः।

सुमतीशस्याविचलः सदाचलरमालयः ॥१२॥

अन्वयार्थ - यः अभिनन्दनकूटः = जो तीर्थङ्कर अभिनन्दन का कूट, (अस्ति = है), सः = वह, आनन्दः = आनन्द नामक कूट, (च = और), सुमतीशस्य = सुमतिनाथ तीर्थङ्कर का, (कूटः = कूट), सदाचलरमालयः = नित्य निश्चल केवलज्ञान लक्ष्मी के गृह स्वरूप, अविचलः = अविचल नामक कूट, (अस्ति = है), इति = ऐसा, ईरितः = बताया गया है।

श्लोकार्थ - तीर्थङ्कर अभिनन्दननाथ के कूट का नाम आनन्दकूट और तीर्थङ्कर सुमतिनाथ के कूट का नाम नित्य निश्चल केवलज्ञान लक्ष्मी के घर स्वरूप अविचल कूट कहा गया है।

पद्मप्रभाभिधानस्य मोहनो नाम कीर्त्यते।

सुपार्श्वनाथस्य तथा प्रभाकूटः समिष्यते ॥१३॥

अन्वयार्थ - पद्मप्रभाभिधानस्य = पद्मप्रभ नामक तीर्थङ्कर के, (कूटस्य = कूट का) नाम = नाम, मोहनः = मोहन कूट, कीर्त्यते = नामोच्चरित किया जाता है, तथा = और, सुपार्श्वनाथस्य = तीर्थङ्कर सुपार्श्वनाथ का, (कूटः = कूट), प्रभाकूटः = प्रभाकूट, समिष्यते = चाहा-बताया गया है।

श्लोकार्थ - पद्मप्रभ नामक छठवें तीर्थङ्कर के कूट को मोहन कूट और सुपार्श्वनाथ तीर्थङ्कर के कूट को प्रभाकूट कहा गया है।

चन्द्रप्रभस्य ललितधननामा सः वर्णितः।

सुप्रभः पुष्पदन्तस्य वैद्युतः शीतलस्य च ॥१४॥

अन्वयार्थ - सः = वह कूट, चन्द्रप्रभस्य = तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभ का, ललितघननामा = ललितघन नामक कूट, पुष्पदन्तस्य = तीर्थङ्कर पुष्पदन्त का सुप्रभः = सुप्रभकूट, च = और, शीतलस्य = तीर्थङ्कर शीतलनाथ का, वैद्युतः = वैद्युतकूट, वर्णितः = वर्णित किया गया है।

श्लोकार्थ - तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभ का ललितघन कूट, तीर्थङ्कर पुष्पदन्त का सुप्रभकूट और तीर्थङ्कर शीतलनाथ का वैद्युतकूट कहलाता है, ऐसा वर्णित किया गया है।

श्रेयसः सङ्कुलस्तद्विमलस्य वीरसङ्कुलः ।

अनन्तस्य स्वयम्भूश्च धर्मो दत्तवरस्तथा ॥१५॥

अन्वयार्थ - श्रेयसः = तीर्थङ्कर श्रेयांसनाथ का, सङ्कुलः = सङ्कुलकूट, विमलस्य = तीर्थङ्कर विमलनाथ का, तद्वत् = उसके ही सदृश, वीरसङ्कुलः = वीरसङ्कुल कूट, अनन्तस्य = तीर्थङ्कर अनन्तनाथ का, स्वयम्भूः = स्वयंभूकूट, तथा च = और, धर्मो = धर्मनाथ का यह (कूट विशेष), दत्तवरः = दत्तवर कूट, (स्मृतः = स्मरण किया जाता है)।

श्लोकार्थ - तीर्थङ्कर श्रेयांसनाथ का सङ्कुलकूट, तीर्थङ्कर विमलनाथ का वीरसङ्कुलकूट, अनन्तनाथ तीर्थङ्कर का स्वयंभूकूट तथा तीर्थङ्कर धर्मनाथ का दत्तवरकूट आज भी याद किया जाता है।

प्रभासी शान्तिनाथस्य कौन्थो ज्ञानधरः स्मृतः ।

नाटकश्चारनाथस्य मल्लिनाथस्य सम्बलः ॥१६॥

अन्वयार्थ - शान्तिनाथस्य = तीर्थङ्कर शान्तिनाथ का, प्रभासी = प्रभासी नामक कूट, कौन्थः = तीर्थङ्कर कुन्थुनाथ का यह (कूट विशेष), ज्ञानधरः = ज्ञानधर कूट, अरनाथस्य = तीर्थङ्कर अरनाथ का, नाटकः = नाटक कूट, च = और, मल्लिनाथस्य = तीर्थङ्कर मल्लिनाथ का सम्बलः = सम्बलकूट, स्मृतः = स्मरण किया जाता है।

श्लोकार्थ - तीर्थङ्कर शांतिनाथ, तीर्थङ्कर कुन्धुनाथ, तीर्थङ्कर अरनाथ और तीर्थङ्कर मल्लिनाथ के कूटों के नाम क्रमशः प्रभासी कूट, ज्ञानधर कूट, नाटककूट और सम्बलकूट बताये गये हैं।

मुनिसुव्रतकूटस्य निर्जराख्यः स्मृतो बुधैः ।

सुप्रभासी नमेः कूटः सुभद्रः पार्श्वकप्रभोः ॥१७॥

अन्वयार्थ - बुधैः = विद्वज्जनों द्वारा, मुनिसुव्रतकूटस्य = तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथ के कूट का, आख्यः = नाम, निर्जरा = निर्जराकूट, नमेः = तीर्थङ्कर नमिनाथ का, कूटः = कूट, सुप्रभासी = सुप्रभासी कूट, पार्श्वकप्रभोः = तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ प्रभु का, (कूटः = कूट), सुभद्रः = सुभद्र कूट, स्मृतः = स्मरण किया गया है।

श्लोकार्थ - विद्वज्जन तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथ, तीर्थङ्कर नमिनाथ और तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ के कूटों के नाम क्रमशः निर्जरा कूट, सुप्रभासी कूट और सुभद्रकूट आज भी याद किये जाते हैं।

विंशकूटा इमे नित्यं ध्येयाः सम्मेदभूभृतः ।

स्वस्वस्वामिसमायुक्ता ध्यानात्सर्वार्थसिद्धिदाः ॥१८॥

अन्वयार्थ - सम्मेदभूभृतः = सम्मेदशिखर पर्वत के, स्वस्वस्वामिसमायुक्ताः = अपने-अपने स्वामी तीर्थङ्करों के नाम से संयुक्त, (तथा = एवं), ध्यानात् = ध्यान करने से, सर्वार्थसिद्धिदाः = सभी प्रयोजनों की सिद्धि को देने वाले, इमे = यह, विंशकूटाः = बीस कूट अर्थात् शिखर, नित्यं = हर समय, ध्येयाः = ध्यान करने योग्य, वर्तन्ते = हैं।

श्लोकार्थ - बीसों ही तीर्थङ्करों के अपने-अपने नाम से समलङ्कृत और ध्यान करने पर सर्वार्थों अर्थात् सभी प्रयोजन भूत पदार्थों की सिद्धि को देने वाले ये बीसों ही कूट निरन्तर, हमेशा ध्यान करने योग्य हैं।

इदानीं चालितः सङ्घो यैः पूर्वं साधुभिः ।

तेषां नामानि वक्ष्येऽहं शृणुताखिलसज्जनाः ॥१९॥

अन्वयार्थ - यैः भव्यसाधुभिः = जिन भव्य सत्पुरुषों द्वारा, पूर्वं = पहिले, सङ्घः = यात्रा संघ, चालितः = चलाया, तेषां = उनके, नामानि = नामों को, अखिलसज्जनाः ! = हे सभी सज्जनो, शृणुत = तुम सब सुनो, इदानीम् = अब, अहं = मैं, वक्ष्ये = कहता हूँ।

श्लोकार्थ - पूर्वकाल में सम्मेदशिखर सिद्ध क्षेत्र की यात्रा हेतु जिन-जिन भव्य सत्पुरुषों ने संघों का संचालन किया उनके नाम अब मैं कहता हूँ— हे सज्जनों ! तुम सब सुनो।

प्रथमः सगरः प्रोक्तो मघवांश्च ततः परम् ।

सनतकुमार आनन्दः प्रभाश्रेणिक ईरितः ॥२०॥

अन्वयार्थ - प्रथमः = प्रथम संघपति, सगरः = सगर चक्रवर्ती, ततः परम् = उससे आगे, मघवान् = मघवान्, सनतकुमारः = सनतकुमार चक्रवर्ती, आनन्दः = आनन्द, प्रभाश्रेणिकः = प्रभाश्रेणिक, ईरितः = बताये गये।

श्लोकार्थ - सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र पर यात्रा संघ लाने वाले प्रथम संघपति सगर चक्रवर्ती थे। उनके बाद क्रमशः मघवान्, सनतकुमार चक्रवर्ती, आनन्द, प्रभाश्रेणिक आदि बताये गये हैं।

द्योतको ललितादिश्च दत्तः कुन्दप्रभस्ततः ।

शुभश्रेणिकदत्तादिचरौ सोमप्रभस्ततः ॥२१॥

सुप्रभश्च ततश्चारुश्रेणिको भावदत्तकः ।

तपाविचल आख्यात आनन्दश्रेणिकस्तथा ॥२२॥

सुन्दरो रामचन्द्रश्चामरश्रेणिक उच्यते ।

सुवरान्ता इमे भव्याः संघाधिपतयः स्मृताः ॥२३॥

अन्वयार्थ - ततः = उसके बाद, द्योतकः ललितादिः = ललितद्योतक, दत्तः

= दत्त, कुन्दप्रभः = कुन्दप्रभ, च = और, ततः = तदनन्तर, सुप्रभः = सुप्रभ, ततश्च = और उसके बाद, चारुश्रेणिकः = चारुश्रेणिक, भावदत्तकः = भावदत्तक या भवदत्त, अविचलः = अविचल, तथा = और, आनन्दश्रेणिकः = आनन्दश्रेणिक, सुन्दरः = सुन्दर, रामचन्द्रः = रामचन्द्र, तथा अमरश्रेणिकः = और अमरश्रेणिक, सुवरान्ता = सुन्दर और श्रेष्ठ है अन्त जिनका, इमे = ऐसे ये, भव्याः = भव्यजन, संघाधिपतयः = तीर्थयात्रा संघ के अधिपति--संघप्रमुख, स्मृताः = स्मरण किये जाते हैं।

श्लोकार्थ - संघपति प्रभाश्रेणिक के बाद क्रमशः ललितद्योतक, दत्तश्रेष्ठी, कुन्दप्रभ, दत्तशुभ (चरश्रेणिक), दत्तश्रेणिक, सोमप्रभ, सुप्रभ, चारुश्रेणिक, भावदत्तक या भवदत्त, अविचल, आनन्दश्रेणिक, सुन्दर, रामचन्द्र, अमर श्रेणिक आदि सुवरान्त अर्थात् जिनका अंतिम समय सुन्दर व श्रेष्ठ है, ऐसे ये भव्य जीव तीर्थयात्रा संघों के संघपति हुये।

एकैकस्मिस्तत्रा कूटे मुक्ताः सिद्धा ह्यनन्तकाः ।

सर्वः शैलवरस्तस्मादयं द्वादशयोजनः ॥२४॥

अन्वयार्थ - अयं = यह, शैलवरः = पर्वतों में श्रेष्ठ सम्मेदशिखर, सर्वः = सारा, द्वादशयोजनः = बारह योजन विस्तार वाला, (प्रोक्तः = कहा गया है), तत्र = वहाँ, एकैकस्मिन् कूटे = उस पर्वत पर विमान एक-एक कूट अर्थात् शिखर पर, अनन्तकाः = अनन्त मुनिवर्य, मुक्ताः = मुक्त अर्थात् जीवनमुक्त केवली परमात्मा अर्हन्त के रूप में, (अवर्तत = रहे), (च = और), तस्मात् = उसी पर्वत से, सिद्धाः = सिद्ध परमात्मा, (बभूवुः = हुये)।

श्लोकार्थ - सम्मेदशिखर पर्वत जो सभी पर्वतों में श्रेष्ठ है, का विस्तार बारह योजन है। इस पर्वत की प्रत्येक टोंक पर अनन्त मुनिराज मुक्त हुये हैं और इसी पर्वतराज से सिद्धत्व को प्राप्त होकर सिद्ध हुये हैं।

भव्या हि तत्रा यात्रार्हा अभव्या नैव संस्मृताः ।

भव्या भाविशिवाः प्रोक्ताः क्वचिन्मुक्ता न तत्पराः ॥२५॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र पर, भव्याः = भव्य जीव, हि = ही, यात्रार्हाः = यात्रा के लिये योग्य, (भवन्ति = होते हैं), न = नहीं, एव = ही, अभव्याः = अभव्यजीव, संस्मृताः = माने गये, भाविशिवाः = भविष्य में मोक्ष जाने वाले, भव्याः = भव्य जीव, प्रोक्ताः = कहे गये, (सन्ति = हैं), तत्पराः = भव्यों से अन्य अर्थात् अभव्य, क्वचित् न मुक्ताः = कभी भी मुक्त न होने वाले, (प्रोक्ताः = कहे गये, सन्ति = हैं) ।

श्लोकार्थ - जो भविष्य में मुक्त होंगे वे भव्य जीव तथा जो कभी भी मुक्त नहीं होंगे वे अभव्य जीव कहे गये हैं । सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र पर यात्रा करने की पात्रता भव्य जीवों की ही मानी गयी है, अभव्य जीवों की नहीं ।

वदन्ति मुनयश्चैवं केवलज्ञानसंयुताः ।

भव्यराशेः कीदृगापि पापिष्ठस्तत्र तिष्ठति ॥२६॥

एकोनपञ्चाशज्जन्ममध्ये सोऽपि प्रमुच्यते ।

एकेन्द्रियेभ्यः संसार आ पञ्चेन्द्रियजन्तवः ॥२७॥

ये तत्र भागादुत्पन्ना नानानामाकृतिप्लुताः ।

गणितव्याः भव्यराशेश्चान्येषां तत्र नोद्भवः ॥२८॥

अन्वयार्थ - केवलज्ञानसंयुताः मुनयश्च = और केवलज्ञानी मुनिराज, एवं = इस प्रकार, वदन्ति = कहते हैं, तत्र = सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र पर, कीदृक् अपि = किसी प्रकार का भी, पापिष्ठः = पापी व्यक्ति, तिष्ठति = बैठता है या ठहरता है, सः = वह, अपि = भी, एकोनपञ्चाशज्जन्ममध्ये = उनपचास जन्मों के बीच में, प्रमुच्यते = मुक्त होता है या कर्मों द्वारा छोड़ दिया जाता है, आ एकेन्द्रियेभ्यः = एकेन्द्रिय जीवों से आरंभ कर, नानानामाकृतिप्लुताः = नाम कर्मोदय वशात् अनेक

आकृति वाले, पञ्चेन्द्रियजन्तवः = पंचेन्द्रिय जीव, संसारे = संसार में, (वर्तन्ते = विद्यमान हैं), ये च = और जो, भव्यराशेः भागात् = भव्य राशि के हिस्से से, तत्र = सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र पर, उत्पन्नाः = उत्पन्न हुये हैं, (ते = उन्हें), उपर्युक्ताः भाविशिवाः = ऊपर कहे गये ४६ भवों के भीतर मोक्ष जाने वाले), गणितव्याः = गिन लेना चाहिये, तत्र = वहाँ अर्थात् सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र पर, अन्येषां = अन्य जीवों का, उद्भवः = जन्म, न = नहीं, (भवति = होता है)।

श्लोकार्थ - केवलज्ञानी स्नातक मुनिराज ऐसा कहते हैं — “भव्यराशि का कोई भी, कैसा भी पापी जीव सम्मेदशिखर पर ठहरता है या बैठता है तो ४६ भवों के अन्दर ही वह मुक्त हो जाता है। इस संसार में एकेन्द्रिय जीवों से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों में, जो नामकर्म की विभिन्नता से अनेकानेक आकृति वाले हैं, वे भव्यराशि के भाग से वहाँ अर्थात् सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र पर उत्पन्न होते हैं वे निश्चय ही उनचास भवों के भीतर मोक्ष जाने योग्य भव्यजीव हैं। भव्य राशि से अन्य जीवों का वहाँ जन्म ही नहीं होता है।

क्षारं क्षीरं खनौ प्रोक्तमिष्टं मिष्टं खनौ जलम् ।

रत्नानामेव सम्भूतिः तथा धातुः खनौ स्मृतम् ॥२६॥

तथैव जीवः संसारी ये भव्याः कर्मबन्धनात् ।

भूम्यां तदाकरीभूतः सम्मेदाख्यो नगेश्वरः ॥३०॥

अन्वयार्थ - (यथा = जैसे), खनौ = खान में, क्षारं = खारा, क्षीरं = जल, (क्वचिच्च = और किसी), खनौ = खान में, इष्टं = अभिलषित, मिष्टं = मीठा, जलं = पानी (भवतीति = होता है, ऐसा) प्रोक्तम् = कहा जाता है, तथा = वैसे ही, खनौ = खान में, रत्नानाम् एव = रत्नों की ही, सम्भूतिः = उत्पत्ति, (भवति = होती है), धातुः (च) = और धातु (अपि = भी) (भवतीति = होती है ऐसा), स्मृतः = स्मरण किया जाता है।

तथैव = वैसे ही, कर्मबन्धनात् संसारी, जीवः = कर्मबन्धन के कारण संसारी जीव, (भवति = होता है), (तेषु = उनमें), ये = जो, भव्याः = भव्यजीव, (सन्ति = हैं) तदाकरीभूतः = उनके लिये खान स्वरूप, भूम्याम् = भूमि पर, सम्मेदाख्यः = सम्मेदशिखर नामक, नगेश्वरः = पर्वतों में ईश स्वरूप श्रेष्ठ पर्वत, (वर्तते = है)।

श्लोकार्थ - जैसे किसी खान में खारा जल होता है तथा किसी खान में मीठा जल होता है वैसे ही किसी खान में रत्नों की ही उत्पत्ति होती है तो किसी खान में केवल धातु ही पाया जाता है।

इस संसार में कर्मबन्धन के कारण संसारी जीव हैं उनमें जो भव्य जीव हैं उनके लिये इस पृथ्वी पर सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र सर्वश्रेष्ठ एवं रत्नों की खान रूप पर्वत है।

उद्धारकाः स्वसंघस्य प्रभूता यात्रिकाः पुरा ।

तत्पूजकास्तथा चोक्तास्तान्वक्ष्ये शृणुताधुना ॥३१॥

अन्वयार्थ - पुरा = प्राचीन काल में, स्वसंघश्च = अपने-अपने यात्रा संघ के, उद्धारकाः = उद्धार करने वाले, प्रभूताः = प्रचुर अर्थात् बहुत सारे, यात्रिकाः = यात्रीगण, संघपति तत्पूजकाः = सिद्ध क्षेत्र की आराधना करने वाले, (अभूवन् = हो गये हैं), तथा च = और, (ते = वे), उक्ताः = शास्त्रों में कहे गये हैं, अधुना = अब, (अहं = मैं), तान् = उनको, वक्ष्ये = कहता हूँ, (यूयं = तुम सब), शृणुत = सुनो।

श्लोकार्थ - प्राचीनकाल में सिद्धक्षेत्र के पूजक और अपने-अपने यात्रा संघों का उद्धार करने वाले बहुत सारे यात्री हुये हैं, जो शास्त्रों में भी कहे गये हैं, उनको उसी प्रकार मैं कहता हूँ। तुम सब सुनो।

भरतेन कृता पूर्वं यात्रेणा चक्रवर्तिना ।

सगरेण तथा भक्त्या सिद्धानन्दरसेप्सुना ॥३२॥

अन्वयार्थ - पूर्व = पहिले, प्राचीनकाल में, सिद्धानन्दरसेप्सुना = सिद्ध दशा में प्राप्त आनन्दरूपी रस के अभिलाषी, चक्रवर्तिना = चक्रवर्ती, भरतेन = भरत द्वारा, तथा = और, सगरेण = सगर द्वारा, एषा = यह सम्मेदशिखर सम्बन्धिनी, यात्रा = यात्रा, भक्त्या = भक्तिभाव से, कृता = की गयी, (आसीत् = थी)।

श्लोकार्थ - पुरा काल में ही सिद्ध दशा में होने वाले आनन्द रूपी रस के अभिलाषी चक्रवर्ती भरत द्वारा और चक्रवर्ती सगर द्वारा भक्तिभाव सहित सम्मेदशिखर पर्वत की यात्रा की गयी थी।

ततो यतीनामार्याणां श्रावकाणां पुनः पुनः।

श्राविकाणां च सम्मानं कृत्वा श्रेणिक भूपतिः ॥३३॥

महावीरं च पप्रच्छ महावीर दयानिधे।

सम्मेदयात्राभावोऽद्य वृद्धो मम हृदि ध्रुवम् ॥३४॥

अन्वयार्थ - ततः = तदनन्तर, यतीनां = मुनियों का, आर्याणाम् = आर्यिकायों का, श्रावकाणां = श्रावकों का, च = और, श्राविकाणां = श्राविकाओं का, पुनः-पुनः = बार-बार, सम्मानं = आदर या नमन, कृत्वा = करके, श्रेणिकभूपतिः = राजा श्रेणिक ने, महावीरं = तीर्थकर महावीर को, पप्रच्छ = पूछा, दयानिधे महावीर! = हे दयानिधान भगवन् महावीर!, अद्य = आज, मम = मेरे, हृदि = मन में, सम्मेदयात्राभावः = सम्मेदशिखर यात्रा का भाव, ध्रुवम् = निश्चित ही, वृद्धः = बहुत बूढ़ा अर्थात् अधिक समय से चला आ रहा पुराना, (अभूत् = हो गया है)।

श्लोकार्थ - भरतादि चक्रवर्ती की शिखर जी सिद्धक्षेत्र विषयक भक्ति भावना उपस्थापित करने के उपरान्त राजा श्रेणिक का वृत्तान्त प्रस्तुत है— राजा श्रेणिक ने यतियों, आर्यिकाओं, श्रावकों एवं श्राविकाओं का बार-बार यथोचित सम्मान करके भगवान् महावीर से पूछा कि हे भगवन् दयानिधान! मेरे मन में

सम्मदशिखर यात्रा का विचार आज बूढ़ा होता जा रहा है, अर्थात् बहुत समय से सम्मदशिखर सिद्धक्षेत्र की वन्दना करने की बात मैं सोच रहा हूँ। क्या आज मैं अपनी बात साकार कर सकूँगा?

अब्रवीत् महावीरः शृणु श्रेणिकभूपते ।

यात्राकालोऽधुना ते न मया संवीक्ष्यते शुभः ॥३५॥

अन्वयार्थ - महावीरः = भगवान् महावीर ने, तं = उस राजा श्रेणिक को, अब्रवीत् = कहा, श्रेणिकभूपते = हे श्रेणिक राजन्!, (त्वं = तुम), शृणु = सुनो, अधुना = इस समय, ते = तुम्हारा, यात्राकालः = सम्मदशिखर की वन्दना के लिये यात्रा का समय, मया = मेरे द्वारा, शुभः = कल्याणप्रद, न = नहीं, संवीक्ष्यते = देखा जा रहा है।

श्लोकार्थ - भगवान् महावीर ने राजा श्रेणिक को कहा कि हे राजन्! अभी तुम्हारा सम्मदशिखर की यात्रा करने का समय शुभ नहीं है। मेरे द्वारा यह सम्यक् देखा जा रहा है।

प्रथमे नरके स्थानं निश्चयात् भविष्यति ।

श्रुत्वाऽप्रीतिप्रभोर्वाक्यं सोत्कण्ठयशतो नृपः ॥३६॥

यात्रोद्योगं चकारासौ सम्मेदाख्यगिरिं प्रति ।

पर्वतोपरि यक्षोऽभूद् भूतको नामतो महान् ॥३७॥

दशलक्षव्यन्तराणां भूपतिः स महाबलः ।

चालितः श्यामपवनो दुस्तरस्तिमिराकृतिः ॥३८॥

दृष्ट्वा तमुपसर्गं स राजा यात्रां न्यवारयत् ।

तस्यासीच्चेलना राज्ञी सा तमाह प्रियं नृपम् ॥३९॥

महाराज! महावीरकेवलज्ञानिनो वचः ।

सत्यमेवाद्यत्वं मन्ये ते यात्रादसरो न हि ॥४०॥

अन्वयार्थ - निश्चयात् = निश्चय ही, ते = तुम्हारा, स्थानं = स्थान, प्रथमे नरके = पहिले नरक में, भविष्यति = होगा, (इति = इस

प्रकार), प्रभोः = भगवान् का, अप्रीतिवाक्यं = अप्रीतिकर वाक्य को, श्रुत्वा = सुनकर, असौ = उस, नृपः = राजा श्रेणिक ने, सोत्कण्ठवशतः = अत्यधिक उत्कण्ठा के वशीभूत होने से, सम्मेदाख्यगिरिं प्रति = सम्मेदशिखर नामक पर्वत की ओर, यात्रोद्योगं = यात्रा करने का उद्यम, चकार = किया, पर्वतोपरि = पर्वत के ऊपर, महान् = प्रभावशाली, प्रमुख, यक्षः = यक्ष देवता, नामतः = नाम से, भूतकः = भूतक, अभूत् = था, सः = वह यक्ष, महाबलः = महान् बलशाली, दशलक्षव्यन्तराणां = दश लाख व्यन्तरों का, भूपतिः = स्वामी, (आसीत् = था), (तेन = उस यक्ष द्वारा), दुस्तरः = कठिनाई से रोकी जाने योग्य असह्य, श्यामपवनः = काले बादलों को समेटती हुई हवा, चालितः = चलायी गयी, (यतः = जिससे), तिमिराकृतिः = अन्धकारमय आकृति, (सर्वत्र = सब जगह), (अभूत् = हो गई), तं = उस, उपसर्ग = उपसर्ग को, दृष्ट्वा = देखकर, स राजा = उस राजा ने, यात्रां = यात्रा को, न्यवारयत् = रोक दिया, तस्य = उसकी, राज्ञी = रानी, चेलना = चेलना, आसीत् = थी, सा = उसने, तं प्रियं नृपं = उन प्रिय राजा को, आह = कहा, महाराज! = हे राजन!, महावीरकेवलज्ञानिनः = केवलज्ञानी भगवान् महावीर के, वचः = वचन को, (अहं = मैं), सत्यं = सम्यक् अर्थात् संशयहीन, अचलम् = अटल, एव = ही, मन्ये = मानती हूँ, (इदानीम् = अभी), ते = तुम्हारा, यात्रावसरः = यात्रा करने का काल, न = नहीं, हि = ही, (वर्तते = है)।

श्लोकार्थ - निश्चय ही तुम्हारा अगला जन्म स्थान प्रथम नरक में होगा—इस प्रकार भगवान् की अप्रीतिकर बात सुनकर भी सिद्धक्षेत्र के दर्शन की तीव्रतम उत्कण्ठा होने के कारण उस राजा श्रेणिक ने सम्मेदशिखर की ओर यात्रा करने का उद्यम चालू कर दिया अर्थात् प्रस्थान किया किन्तु पर्वत पर रहने

वाले एक प्रभावशाली भूतक नामक यक्ष, जो महाबलशाली और दश लाख व्यन्तरो का स्वामी था, ने असहनीय, काले बादलों को समेटती घेरती हवा चलाई, जिस कारण सभी जगह अंधकार छा गया। तब उस यक्षकृत उपसर्ग को देखकर उस राजा श्रेणिक ने सम्मेदगिरि की तीर्थयात्रा रोक दी। तभी रानी चेलना ने अपने प्रिय राजा को कहा — हे महाराज मैं केवलज्ञानी प्रभु भगवान् महावीर के वचनों को संशयहीन, पूर्ण सत्य और सर्वथा अटल ही मानती हूँ। निश्चित ही अभी तुम्हारा सम्मेदशिखर की तीर्थयात्रा करने का समय योग नहीं है।

अथ श्रेणिकवृत्तान्तः कथ्यते कविनाधुना ।

लोहाचार्यानुक्रमेण शृणुध्वं साधवो जनाः ॥४१॥

अन्वयार्थ - अथ अधुना = अब आगे, लोहाचार्यानुक्रमेण = लोहाचार्य के कथनानुसार, श्रेणिकवृत्तान्तः = राजा श्रेणिक का वर्णन, कविना = कवि देवदत्त द्वारा, कथ्यते = कहा जाता है, साधवो जनाः! = भो साधु- सज्जन पुरुषो, शृणुध्वं = तुम सब सुनो।

श्लोकार्थ - इससे आगे अब कवि लोहाचार्य मुनीश्वर के कथनानुसार राजा श्रेणिक का वृत्तान्त कह रहा है, जिसे सुनने का निवेदन सज्जन पुरुषों से उसने किया है।

लक्षयोजनविस्तारो वृत्ताकारो महीतले ।

जम्बूद्वीपो महानास्ते साधुरत्नाकरस्सदा ॥४२॥

सुदर्शनश्च तन्मध्ये उन्नतो लक्षयोजनः ।

तत्स्कन्धो दशसाहस्रयोजनैर्भुवने स्थितः ॥४३॥

भूमेरुपर्यसौ मेरुस्तद्वत्तन्निकटस्थितैः ।

दृष्टो नवतिसाहस्रं योजनैस्तुङ्गतां गतः ॥४४॥

अन्वयार्थ - महीतले = पृथ्वी पर, वृत्ताकारः = वृत्त के आकार वाला गोल थाली जैसा, लक्षयोजनविस्तारः = एक लाख योजन विस्तार

वाला, (एकः = एक) महान् = बड़ा, जम्बूद्वीपः = जम्बूद्वीप, आस्ते = है, (यः = जो), सदा = हमेशा, साधुरत्नाकरः = साधु पुरुष रूपी रत्नों का भंडार अथवा खनिप्रदेश, (अस्ति = है), तन्मध्ये = उस जम्बूद्वीप के मध्य में, लक्षयोजनः = एक लाख योजन, उन्नतः = उँचाई वाला, सुदर्शनः = सुदर्शन नामक मेरु, (वर्तते = है), तत्स्कन्धः च = और उसका स्कन्ध, दशसाहस्रयोजनैः = दश हजार योजन प्रमाण, भुवने = पृथ्वी में भीतर, स्थितः = स्थित, (विद्यते = है), असौ मेरुः = यह मेरु पर्वत, भूमेः = भूमि के, उपरि = ऊपर, नवतिसाहस्रं = नब्बे हजार, योजनैः = योजन प्रमाण, तुङ्गतां = उँचाई तक, गतः = गया है, तन्निकटस्थितैः = उसके समीप रहने वाले लोगों द्वारा, तद्वत् = केवलज्ञानियों गणधरों द्वारा बताये प्रमाण-परिमाण के समान (एव = ही) दृष्टः = देखा गया (स्यात् = होगा)।

श्लोकार्थ - मध्यलोक में पृथ्वीमंडल पर एक बहुत बड़ा, थाली के आकार वाला गोल वृत्ताकार तथा एक लाख योजन विस्तार वाला जम्बूद्वीप है। यह सत्पुरुषों की खान है अर्थात् साधु-सज्जन पुरुषों का जन्म यहां होता रहता है। इस जम्बूद्वीप के बीचोंबीच एक लाख योजन उँचा सुदर्शन मेरु है जो दश हजार योजन भूमि के भीतर तथा नब्बे हजार योजन भूमि के ऊपर बताया गया है। कवि कहता है कि उसके निकटवर्ती जनों द्वारा उपर्युक्त मेरु केवलीनिर्दिष्ट और गणधरादिप्रणीत परिमाण के समान देखा गया होगा।

षट् तत्र कुलशैलाः स्युस्सरितश्च चतुर्दश ।
 शून्यरन्ध्रैकभागैश्च, द्वीपस्य गुणितैः क्रमात् ॥४५॥
 एकभागेन षड्विंशादधिकैः पञ्चभिः शतैः ।
 योजनैः षट्कलायुक्तैः प्रमितं सर्वतः शुचिः ॥४६॥
 भरतं क्षेत्रमाख्यातं कर्मस्थलमनुत्तमम् ।
 शुभाशुभक्रमो यत्र सुखितो दुःखितस्तथा ॥४७॥

एकोनविंशतिकला योजनस्य च या कृताः ।

तास्वेव षट्कलाधिक्यं बोध्यं तेन ततः परम् ॥४८॥

अन्ययार्थ - तत्र = जम्बूद्वीप में, षट् कुलशैलाः = छह कुलाचल अर्थात् पर्वत, चतुर्दश च = और चौदह, सरितः = नदियाँ, स्युः = हों, द्वीपस्य = जम्बूद्वीप के, शून्यरन्ध्रैकभागैः = एक सौ नब्बे भागों से, गुणितैः क्रमात् एकभागेन षड्विंशात् अधिकैः पञ्चभिः शतैः षट्कलायुक्तैः योजनैः = एक भाग लेकर पांच सौ छब्बीस एवं एक योजन में छह भाग अर्थात् छह कला सहित पांच सौ छब्बीस योजन, च = और, योजनस्य = योजन की, एकोनविंशतिकलाः = उन्नीस कलायें, याः = जो, कृताः = की गई हैं, तासु एव = उनमें ही, षट्कलाधिक्यं = छह कलायें अधिक, बोध्यं = जानना चाहिये, तेन = इससे, अर्थात् ५२६ योजन परिमाण से, परं प्रमितं = परम प्रमाण वाला, भरतं क्षेत्रम् = भरत क्षेत्र, सर्वतः शुचि = हर दृष्टि से पवित्र, आख्यातम् = कहा गया है, यत्र = जहाँ, अनुत्तमम् = अनुत्तम, कर्मस्थलम् = कर्मभूमि क्षेत्र, (विद्यते = है), तथा = और, यत्र = जहाँ, शुभाशुभक्रमः = शुभ एवं अशुभ कर्मोदय एवं परिमाणों के क्रम वाला जीव, सुखितः = सुखी, दुःखितः = दुखी, (च = और, भवति = होता है) ।

श्लोकार्थ - जम्बूद्वीप में छह कुलाचल पर्वत एवं चौदह नदियाँ हैं । इस जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र का परिमाण ५२६ अर्थात् पांच सौ छब्बीस गुणित छह भागित उन्नीस (पांच सौ छब्बीस सही छह बटे उन्नीस) ५२६/६/६८ योजन बताया गया है । यह भरतक्षेत्र अनुत्तम कर्मभूमि है, तथा यहाँ जीव शुभ अशुभ कर्मोदय और परिणामों के वशीभूत होकर सुखी अथवा दुःखी होते हैं ।

मगधाख्यस्तत्र देशो वर्ण्यतेऽखिलपण्डितैः ।

यत्र भान्ति महारामा मनोहरणतत्पराः ॥४९॥

येष्वाम्रबीजपूराद्या नानावृक्षाः स्म भान्ति वै ।

भूषिताः फलिताः कुञ्जे विहङ्गकुलशब्दिताः ॥५०॥

अन्वयार्थ - अखिलपण्डितैः = सभी विद्वानों द्वारा, तत्र = भरतक्षेत्र में, मगधाख्यः = मगध नामक, देशः = देश, वर्ण्यते = वर्णन किया जाता है, यत्र = जिस मगध देश में, मनोहरणतत्पराः = मन को हरने में तत्पर, महारामाः = विशाल बगीचे, भान्ति (स्म) = सुशोभित होते थे, येषु = उन सुन्दर विशाल बगीचों में, आम्रबीजपूराद्याः = आम, बिजौरा (बीजपूर) आदि, नानावृक्षाः = अनेक वृक्ष, फलिताः = फलों से लदे हुये, भूषिताः = विभूषित हो रहे, भान्ति स्म = सुशोभित दिख रहे थे, कुञ्जे (च) = और लतामण्डपादि में, विहङ्गकुलशब्दिता = पक्षीकुलों के शब्द शब्दायमान, (आसन् = थे) ।

श्लोकार्थ - प्रायः सभी विद्वानों ने भरतक्षेत्र में मगध देश का वर्णन किया है । मगध में मन को हरण करने में मानों तत्पर ही हों ऐसे बाग-बगीचे हैं, जो आम्र, बिजौरा आदि अनेक वृक्ष फलों से लदे हुये सुशोभित होते थे । उनके कुञ्जों अर्थात् लतामण्डपों में भी पक्षी समूह की कलरव ध्वनि शब्दायमान होती थी ।

तस्मिन्देशे राजगृहं नामतः पुरमुत्तमम् ।

द्वादशैर्नवभिस्तद्वर्धोजनैर्लम्बितायतम् ॥५१॥

अन्वयार्थ - तस्मिन् देशे = उस मगध देश में, द्वादशैः नवभिः योजनैः लम्बितायतम् = बारह योजन लम्बा और नव योजन चौड़ा, उत्तमं = उत्तम, पुरं = नगर, नामतः राजगृहं = जो नाम से राजगृह कहा जाता था ।

श्लोकार्थ - मगधदेश में बारह योजन लम्बा और नौ योजन चौड़ा एक उत्तम नगर राजगृह था ।

श्रेणिको नाम राजाभूतत्पुरस्येव रक्षकः ।

चेलनाख्या तस्य राज्ञी रूपयौवनशालिनी ॥५२॥

सर्वलक्षणसम्पन्ना

शीलादिगुणसंयुता ।

धर्मशीला

शुद्धदेहा

प्रियचेतोहरा

गुणैः ॥५३॥

अन्वयार्थ - तत्पुरस्य = उस राजगृह नगर का, रक्षकः = रक्षक, राजा = राजा, श्रेणिकः = श्रेणिक, नाम = नामक, अभूत् = था, तस्य राज्ञी = उसकी रानी, चेलनाख्या = चेलना नाम वाली, (आसीत् = थी) (सा च = और वह), रूपयौवनशालिनी = रूप-सौन्दर्य एवं यौवन सम्पन्न थी, सर्वलक्षण सम्पन्ना सामुद्रिकशास्त्रोल्लिखित सभी योग्य लक्षणों से संयुक्त थी, शीलादिगुणसंयुता = शील, संयम, विनय, सत्यभाषण आदि गुणों से युक्त थी, धर्मशीला = धर्माचरण के में तत्पर थी, शुद्धदेहा = पावन देह वाली, गुणैः प्रियचेतोहरा = अपने गुणों से प्रिय के मन को हरने वाली थी ।

श्लोकार्थ - उस राजगृह नगर का रक्षक राजा श्रेणिक था । उसकी रूप सौन्दर्यवती, यौवन से परिपूर्ण, सुगठित शुभ लक्षणों से युक्त, शील, संयम, विनय, सत्यभाषण आदि सदगुणों से युक्त, धर्मपालन में सावधान, पावन देह वाली और अपने सदगुणों से प्रियतम के मन को हरण करने वाली चेलना नामक रानी थी ।

यस्य राज्ञो यशः शुभं जगत्प्रथितमुत्तमम् ।

ग्रन्थेषु कविभिः सर्वैः स्ववाग्भिः समुदीरितम् ॥५४॥

अन्वयार्थ - यस्य राज्ञः = जिस राजा का, शुभं = उज्ज्वल, उत्तमम् = उत्तम, जगत्प्रथितम् = विश्वप्रसिद्ध, यशः = कीर्ति, सर्वैः कविभिः = सभी कवियों द्वारा, स्ववाग्भिः = अपनी वाणी से, ग्रन्थेषु = ग्रन्थों में, समुदीरितम् = अच्छी तरह से प्रतिपादित किया है ।

श्लोकार्थ - जिस राजा का विश्व विख्यात, उज्ज्वल एवं उत्तम यश सभी कवियों ने अपनी वाणी से ग्रन्थों में अच्छी तरह प्रशंसित किया है ।

पत्तनान्तर्बहिर्यस्य भान्त्यारामाः समन्ततः ।
 येष्वाम्रबीजपूराश्च तिन्दुकद्रुमराजयः ॥५५॥
 श्रीबिल्वदाडिमास्तद्वदम्भाद्याः फलशालिनः ।
 खर्जुराः सालतालाश्च पनसाश्च तथापरे ॥५६॥
 तिलकाः कोविदाशश्च देवदारुद्रुमाः शुभाः ।
 तमालाश्चम्पकाश्चैव बकुलाः क्रमुकद्रुमाः ॥५७॥
 नारिकेलादयस्तद्वद् बहवो भूरुहोत्तमाः ।
 बभुः सर्वर्तुफलदा हिमच्छायाहतातपाः ॥५८॥

श्लोकार्थ - यस्य = जिस राजगृह, पत्तनान्तर्बहिः = नगर के अन्दर एवं बाहर, समन्ततः = चारों ओर, आरामाः = सुन्दर बगीचे, भान्ति (स्म) = सुशोभित होते (थे), येषु = जिन बगीचों में, आम्रबीजपूराः = आम, बिजौरा, तिन्दुकद्रुमराजयः = तेंदू आदि वृक्षों की पंक्तियाँ, तथा च अपरे = और अन्य, श्रीबिल्वदाडिमाः = उनके समान कदली आदि, खर्जुराः = खजूर के पेड़, फलशालिनः = फलों से युक्त, च = और, सालतालाः = साल व ताल वृक्ष, पनसाः = कटहल, तिलकाः = सुन्दर फूलों वाले वृक्ष, कोविदाराः = कचनार के पेड़, देवदारुद्रुमाः = देवदारु आदि वृक्ष, तद्वद् बहवः = उन्हीं के समान बहुत से, तमालाः = तमाल, चम्पकाः = चम्पक, बकुलाः = मौलसिरी वृक्ष, क्रमुकद्रुमाः = सुपारी के पेड़, नारिकेलादयश्च = और नारियल आदि, भूरुहोत्तमा = उत्तम वृक्ष, सर्वर्तुफलदा = सभी ऋतुओं में फल देने वाले, हिमच्छायाहतातपाः = शीतल छाया से ताप को नाश करने वाले, बभुः = शोभायमान थे ।

श्लोकार्थ - जिस राजगृह नगर के अन्दर बाहर एवं चारों तरफ सुशोभित सुन्दर—सुन्दर बगीचों में नाना प्रकार के फलदार, फलदार वृक्ष विशेष जैसे आम, बिजौरा, तेंदू, बेल, दाडिम (अनार), केला, खजूर, साल, ताल, कटहल, तिलक, कोविदार,

देवदारु, तमाल, चम्पक, बकुल, सुपारी, नारियल आदि थे।
जो सभी ऋतुओं में फूल देने वाले तथा शीतल फल से ताप
को शान्त करने वाले होकर सुशोभित होते थे।

स्थलपङ्कजमालाश्च मालत्योपाधिकास्तथा ।
केतकादिसमायुक्ता नृपारामा मनोहराः ॥५६॥
नानापुष्पसुगन्धाख्याः सुधास्वादलसत्फलाः ।
मालाकारप्रयत्नैश्च वर्धितास्ते सदा बभुः ॥६०॥

अन्वयार्थ - मालाकारप्रयत्नैः = मालियों के प्रयत्नों से, वर्धिताः = बढ़े
हुये, तथा = और, सदा = हमेशा, मनोहराः = मनोहर अर्थात्
चित्ताकर्षक, स्थलपङ्कजमालाः = कमल पंक्ति सुशोभित
स्थल वाले, मालत्योपाधिकाः = मालती पुष्पों की उपाधि से
विभूषित, केतकादिसमायुक्ताः = केवड़ा आदि पुष्प लताओं
से संश्लिष्ट, नानापुष्पसुगन्धाख्याः = अनेक फूलों की सुगंध
से व्याप्त, सुधास्वादलसत्फलाः = अमृत तुल्य स्वाद देने वाले
सत्फलों वाले, ते = वे, नृपारामाः = राजा के सुन्दर-सुन्दर
बगीचे, बभुः = शोभा बढ़ा रहे थे अर्थात् सुशोभित हो रहे थे।

श्लोकार्थ - मालियों के प्रयत्नों से प्रगतिशील एवं निरन्तर वृद्धि को प्राप्त
तथा हमेशा मनोहर लगने वाले, कमलपङ्कजत से आच्छादित
स्थल वाले, मालती पुष्पों की उपाधि से विभूषित, केवड़ा आदि
पुष्प लताओं से संव्याप्त, सुगन्धित पुष्पों के पराग व सुगन्ध
कणों से युक्त एवं अमृततुल्य स्वाद देने वाले सत्फलों से
सहित राजा के वे बगीचे सुशोभित होते थे।

कूपाः समुद्रगम्भीराः वापिकाश्च तथैव हि ।

विहङ्गपथिकोत्कृष्टतृषातपविनाशकाः ॥६१॥

अन्वयार्थ - (तत्र = उस नगर में), विहङ्गपथिकोत्कृष्टतृषातपविनाशकाः
= पक्षियों और पथिकों की प्यास और गर्मी जन्य कष्ट को
मिटाने वाले, कूपाः = कुर्यें, तथा च = और, समुद्रगम्भीराः

= समुद्र के समान गहरी-गम्भीर, वापिकाः = वावड़ियाँ, (आसन् = थीं)।

श्लोकार्थ - उस नगर में पक्षियों एवं राहगीरों की प्यास एवं आतप जन्य पीड़ा को समाप्त करने वाले कुदें और समुद्र के समान गम्भीर वावड़ियाँ थीं।

तटाका महदाकारगम्भीरजलपूरिताः ।
 प्रफुल्लनानाकमला गुञ्जदभ्रमरशब्दिताः ॥६२॥
 जलचारिविहङ्गैश्च पुलिने कृतकेलयः ।
 उच्चलैर्झषशोभाढ्या राजन्ते स्म पुराद् बहिः ॥६३॥

अन्वयार्थ - महदाकारगम्भीरजलपूरिताः = बड़े-बड़े आकार वाले गहरे तक जल से भरे, गुञ्जदभ्रमरशब्दिताः = भ्रमरों के गुञ्जन शब्दों से आन्दोलित, प्रफुल्लनानाकमलाः = अनेक विकसित कमलों से पूर्ण, पुलिने = किनारे पर, जलचारिविहङ्गैः = जलचर पक्षियों द्वारा, कृतकेलयः = की गई क्रीड़ाओं सहित, उच्चलैः झषशोभाढ्या = मछलियों के उछलने की शोभा को आलिङ्गित करने वाले, च = और, तटाकाः = तालाब, पुराः = नगर से, बहिः = बाहर, राजन्ते स्म = सुशोभित होते थे।

श्लोकार्थ - राजगृह नगर के तालाबों का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि नगर से बाहर अनेक तालाब थे जो बड़े-बड़े आकार वाले, गहरे तक जल से भरे हुये, सुविकसित कमल पुष्पों से परिपूर्ण भौरों की गुञ्जन से गुञ्जित, किनारों पर जलचर पक्षियों द्वारा की गई क्रीड़ाओं से मनोरम और मछलियों के उछलने से विशिष्ट शोभा को प्राप्त होकर सुशोभित होते थे।

प्राकारो भूपतेस्तुङ्गस्तत्र भाति स्म चाद्भुतः ।
 शिखरैः स्वैर्य आकाशं स्पृशतीव महोज्ज्वलः ॥६४॥

अन्वयार्थ - तत्र = वहाँ राजगृह नगर में, स्वैः = अपने, शिखरैः = शिखरों से, आकाशं = आकाश को, स्पृशति इव = स्पृश करते हुये

के समान, अद्भुतः = आश्चर्यकारी, तुङ्गः = अत्यधिक ऊँचा, महोज्ज्वलः = दैदीप्यमान स्वच्छ धवलवर्णीय, भूपतेः = राजा का, प्राकारः = कोट, भाति स्म = शोभायमान हो रहा था।

श्लोकार्थ - राजगृह के राजभवन की शोभा एवं सुरक्षा के प्रतीक राजा का कोट अपने शिखरों से मानों आकाश को छू रहा था आश्चर्य उत्पन्न करने वाला अत्यंत स्वच्छ दैदीप्यमान ऊँचाई युक्त था। जो शोभायमान होता था।

उच्चहर्ष्यसमुद्दिव्यत्पुरं यत्र महाधनाः ।

पौराः प्रवीणा गुणिनः स्वधर्मनिपुणा बभूवुः ॥६५॥

अन्वयार्थ - (तत् = वह), पुरम् = राजगृह नगर, उच्चहर्ष्यसमुद्दिव्यत् = ऊँचे-ऊँचे महलों की धवलिम चमक से युक्त, (आसीत् = था), यत्र = जिनमें, महाधनाः = विपुल धन के स्वामी, प्रवीणाः = प्रचुर, गुणिनः = गुणों से युक्त, स्वधर्मनिपुणाः = अपने धर्माचरण के पालन में कुशल, पौराः = नगरवासी जन, बभूवुः = सुशोभित थे।

श्लोकार्थ - राजगृह नगर ऊँचे-ऊँचे चमकते-चमकते प्रासादों-महलों से युक्त था और उन महलों में विपुल धन वैभव के स्वामी, सद्गुणी, चतुर, अपने-अपने धर्म कर्तव्य के परिपालन के होशियार नगर निवासी जन रहते हुये शोभा को प्राप्त हो रहे थे।

सुन्दर्यः सुन्दराकाराः शरद्विधुनिभाननाः ।

गुणलक्षणसम्पन्ना विरेजुर्यत्र निर्मलाः ॥६६॥

अन्वयार्थ - यत्र = जहाँ, सुन्दराकाराः = सुन्दर-सुगठित आकार वाली, शरद्विधुनिभाननाः = शरद ऋतु के चन्द्रमा के सदृश मुख वाली, गुणलक्षणसम्पन्नाः = अच्छे गुण रूपी लक्षणों से सहित, निर्मलाः = विकार रहित अर्थात् निर्मल चित्त वाली, सुन्दर्यः = सुन्दरियां या स्त्रियां, विरेजुः = सुशोभित थीं।

श्लोकार्थ - उस राजगृह नगर में सुन्दर-सुगठित शरीर वाली, शरद ऋतु के चन्द्र सदृश मुख वाली सदगुणों के लक्षण से सम्पन्न, निर्विकारचित्त वाली सुन्दरियाँ-स्त्रियाँ निवास करती थीं।

तयोस्तत्र सुतावास्तां यौ द्वौ सदभाग्यशालिनौ ।

एकोऽभयकुमारोऽन्यो वारिषेणः शुभाकृतिः ॥६७॥

ज्येष्ठो न्यायप्रवीणोऽभूत्तदन्यस्तापसोत्तमः ।

द्वाभ्यां शुशुभे सूर्यचन्द्राभ्यामिव संततम् ॥६८॥

अन्वयार्थ - तयोः = राजा श्रेणिक और रानी चेलना के, यौ द्वौ = जो दो, सदभाग्यशालिनौ = अच्छे भाग्योदय वाले, सुतौ = पुत्र, आस्ताम् = हुये, तत्र = उन दोनों में, एकः = एक, अभयकुमारः = अभयकुमार, अन्यश्च = और दूसरा, वारिषेणः = वारिषेण, शुभाकृतिः = सुन्दर आकार वाला, (आसीत् = था), ज्येष्ठः = बड़ा पुत्र, न्यायप्रवीणः = न्यायविद्या में चतुर, तदन्यः = उससे दूसरा, तापसोत्तमः = उत्तमतपस्वी, (आसीत् = था), सूर्यचन्द्राभ्यामिव = सूर्य और चन्द्रमा के समान, द्वाभ्यां = दोनों के द्वारा, संततम् = विस्तार को प्राप्त, स = वह देश, शुशुभे = शोभा को प्राप्त हुआ।

श्लोकार्थ - राजा श्रेणिक और रानी चेलना के जो दो पुत्र हुये थे उनमें अभय कुमार ज्येष्ठ थे और न्याय नीति में निपुण थे। उनसे छोटे थे वारिषेण जो श्रेष्ठ तपस्वी थे जैसे सूर्यचन्द्र से कान्ति सर्वत्र फैल जाती है वैसे ही उन दोनों राजकुमारों से अच्छी तरह से विस्तार को प्राप्त देश शोभा को प्राप्त हुआ।

वने राजगृहस्यान्ते उज्ज्वलाः पञ्च पर्वताः ।

विपुलाचलनामैको वैभाराख्यो द्वितीयकः ॥६९॥

रत्नाचलस्तृतीयश्च चतुर्थश्चोलपर्वतः ।

हेमाचलः पञ्चमश्च पञ्चैते पर्वताः स्मृताः ॥७०॥

जम्बूद्वीपे प्रसिद्धास्ते तेषां यो विपुलाचलः ।

प्रभोः समवसारं श्रीमहावीरस्य तत्र वै ॥७१॥

अन्वयार्थ - राजगृहस्य = राजगृह नगर के, अन्ते वने = समीपवर्ती वन में, उज्ज्वलाः = उजले या चमकीले, पंच पर्वताः = पाँच पर्वत (आसन् = थे), एकः = एक, विपुलाचलनामा = विपुलाचल नामक, द्वितीयकः = दूसरा, वैभाराख्य = वैभार नामक, तृतीयः = तीसरा, रत्नाचलः = रत्नाचल, चतुर्थः = चौथा, चोलपर्वतः = चोलपर्वत या चूलगिरि, पञ्चमः = पांचवाँ, हेमाचलः = हेमाचल, (इति = इस प्रकार), ऐते = यह, पञ्च पर्वताः = पांच पर्वत, स्मृताः = स्मरण किये गये हैं, ते च = और वे, जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, प्रसिद्धाः = सुप्रसिद्ध, (आसन्), तेषां = उनमें या उनके, यः = जो, विपुलाचलः = विपुलाचल नामक प्रथम पर्वत, तत्र = उस पर्वत पर, प्रभोः = प्रभु, श्रीमहावीरस्य = श्री महावीर स्वामी का, समवसारं = समवसरण (समायातं आसीत् = आया हुआ था), वै = पादपूरक अव्यय ।

श्लोकार्थ - जम्बूद्वीप में प्रसिद्ध यह पांच पर्वत हैं - पहला विपुलाचल पर्वत, दूसरा वैभार पर्वत, तीसरा रत्नाचल, चौथा चोलपर्वत या चूलगिरि और पांचवां हेमाचल । इन पांचों उजले चमकीले पर्वतों में जो पहला विपुलाचल पर्वत है, उस पर भगवान् महावीर का समवसरण आया था ।

समायातं कदाचित्तद्वर्णनं क्रियते धुना ।

एकयोजनमानेन लम्बो भूदायतस्तथा ॥७२॥

अन्वयार्थ - कदाचित् = किसी समय, कभी, समायातम् = समवसरण आया था, अधुना = इस समय, तद्वर्णनं = समवसरण का वर्णन, (मया = मुझ कवि द्वारा), क्रियते = किया जाता है, (तच्च = और वह) एकयोजनमानेन = एक योजन प्रमाण, लम्बः = लम्बाई वाला, तथा = उसी रूप अर्थात् एकयोजनप्रमाण, आयतः = चौड़ाई वाला, अभूत् = था ।

श्लोकार्थ - किसी समय विपुलाचल पर्वत पर भगवान् महावीर का

समोसरण आया था जिसका वर्णन करते हुये कवि ने यहाँ उसकी लम्बाई—चौड़ाई का प्रमाण एक—एक योजन बताया है। एक योजन के बराबर २ कोस, एक कोस = २ मील तथा १ मील = १/२ कि०मी० माना गया है।

प्रथमं धूलिसालोऽस्ति ततः सालत्रयं स्मृतम् ।

तद्वृत्तं धूलिसालस्तु रत्नरेणुमयी मतः ॥७३॥

अन्वयार्थ - (तत्समवसारे = उस समवसरण में) प्रथमं = पहला, धूलिसालः = धूलिसाल नामक परकोटा, अस्ति = है, ततः = उस धूलिसाल नामक परकोटे से, सालत्रयं = तीन परकोटे, स्मृतम् = बताये गये स्मृत हैं, तद्वृत्तं = उन तीनों परकोटों को घेरे हुये, धूलिसालः = धूलिसाल नामक परकोटा है, (सः च = और वह), रत्नरेणुमयी = रत्नधूलि से निर्मित, मतः = माना गया है।

श्लोकार्थ - उस समवसरण में पहला परकोटा धूलिसाल नामक है, तदनन्तर तीन परकोटे भी हैं जिनसे धूलिसाल नामक परकोटा है, यह रत्न रेणु अर्थात् रत्नों के चूर्ण से निर्मित माना गया है।

तस्मात् प्रथमसालस्तु जांबुनदविनिर्मितः ।

ततो रूप्यमधो ज्ञेयो द्वितीयः साल उत्तमः ॥७४॥

तृतीयः स्फटिकाख्योद्यन्मणिप्रचुरतां गतः ।

धूलिसालान्तरे तत्र चतुर्दिक्षु हिरण्यमयाः ॥७५॥

मानस्तम्भाश्च चत्वारस्तेषां पार्श्वे शुभोदकाः ।

चतुश्चतुः सरोवर्याश्चतुर्दिक्षु प्रभान्ति वै ॥७६॥

अन्वयार्थ - तस्मात् = उस धूलिसाल से, प्रथमसालः = पहिला परकोटा, जांबुनदविनिर्मितः = स्वर्णनिर्मित, ततश्च = उससे, द्वितीयः = दूसरा, रूप्यमयः = चांदीमय, सालः = परकोटा, उत्तमः = श्रेष्ठ, तृतीयः = तीसरा परकोटा, स्फटिकाख्योद्यन्मणि—

प्रचुरतां = स्फटिक नामक दैदीप्यमान मणियों की, प्रचुरता को, गतः = प्राप्त, ज्ञेयः = जानना चाहिये, तत्र = उनमें, धूलिसालान्तरे = धूलिसाल नामक परकोटे के भीतर, चतुर्दिक्षु = चारों दिशाओं में, हिरण्यमयाः = स्वर्ण रचित, चत्वारः = चार, मानस्तम्भाः = मानस्तंभ, (भवन्ति = होते हैं), तेषां = उन स्तंभों के, पार्श्वे = पास में, चतुर्दिक्षु = चारों दिशाओं में, चतुश्चतुःसरोवर्याः = चार-चार सरोवर, वै = सद्यमुच, शुभोदकाः = अच्छे, मीठे जल वाले, प्रभान्ति = सुशोभित होते रहते हैं।

श्लोकार्थ - उस धूलिसाल नामक परकोटे से, जो तीन परकोटे हैं उनमें पहिला परकोटा स्वर्णनिर्मित, दूसरा परकोटा चाँदी से बना हुआ और, तीसरा परकोटा चमकती-प्रकाशित होती स्फटिक मणियों से बना हुआ जानना चाहिये।

धूलिसाल परकोटे के भीतर चारों दिशाओं में चार स्वर्णमयी मानस्तंभ होते हैं तथा प्रत्येक मानस्तंभ के पास में चारों दिशाओं में चार मीठे और स्वच्छ जल से भरे सरोवर होते हैं। इस प्रकार चारों मानस्तंभों के पास कुल सोलह सरोवर जानना चाहिये।

त्रिमेखलासनस्थास्ते त्रित्रिसालयुताः शुभाः ।
मानस्तम्भाश्चतुर्दिक्षु तेषु सत्फलदायकाः ॥७७॥
चतुश्चतुः सिद्धबिम्बाः प्रतिस्तम्भं समीक्षिताः ।
प्रथमं हेमसालो यस्तद्बहिः खातिका स्मृता ॥७८॥

अन्ययार्थ - ते = वे, मानस्तम्भाः = मानस्तम्भ, शुभाः = शुभलक्षणों से युक्त, त्रित्रिसालयुताः = तीन-तीन भित्ति दीवारों अर्थात् तीन-तीन कटान रा.हेत, (भवन्ति = होते हैं), तेषु = उन मानस्तंभों में, सत्फलदायकाः = सम्यक् उत्तम फलों को देने वाली, त्रिमेखलासनस्थाः = तीन मेखलाओं के आसन पर स्थित, चतुश्चतुः = चार-चार, सिद्धबिम्बाः = स्वतः सिद्ध

जिनबिम्ब, प्रतिस्तम्भ = प्रत्येक मानस्तम्भ पर, समीक्षिताः = अच्छी तरह देखे जाते हुये, (वर्तन्ते = रहते हैं), यः प्रथमं हेमसालः = जो पहला स्वर्णरचित परकोटा है, तद्वहिः = उसके बाहर, खातिका = खाई, स्मृता = बतायी गयी है।

श्लोकार्थ - धूलिसाल परकोटे के भीतर बने मानस्तम्भ शुभ अर्थात् अत्यंत सुन्दर, तीन-तीन कटानों से युक्त होते हैं, जिनमें प्रत्येक मानस्तम्भ पर चारों दिशाओं में उत्तम फल प्रदान करने वाली चार-चार जिन प्रतिभायें अच्छी तरह दिखायी देने वाली होती हैं। पुनश्च धूलिसाल परकोटे से पहिला जो स्वर्णमय परकोटा है उसके बाहर खाई बतायी गयी जाननी चाहिये।

तस्यामन्तर्गता भाति विचित्रा वनवेदिका ।

तदन्तर्विविधोत्फुल्लप्रसूना पुष्पवाटिका ॥७६॥

अन्वयार्थ - तस्याम् = उस खाई में, अन्तर्गता = अन्तर्वर्ती, विचित्रा वनवेदिका = एक विचित्र वन वेदिका, (भवति = होती है), तदन्तः = उसके अन्दर, विविधोत्फुल्लप्रसूना = अनेक प्रकार के खिले फूलों से युक्त, पुष्पवाटिका = फलों की बगीची, (भवति = होती है)।

श्लोकार्थ - उस खाई में अंतः स्थित एक विचित्र वन वेदिका होती है जिसके भीतर अनेक प्रकार के सुविकसित सुमनों से फलीफूली पुष्पवाटिका होती है।

तदन्तर्गतो वै भाति स्वर्णसालो मनोहरः ।

तत्र चतुर्द्वारदीप्तोऽस्ति मङ्गलद्रव्य संचयः ॥८०॥

अन्वयार्थ - तदन्तर्गतः = उसके अन्दर स्थित, वै = निश्चय ही, मनोहरः = आकर्षक, स्वर्णसालः = स्वर्ण की दीवारों युक्त तट, भाति = सुशोभित होता है, तत्र = वहाँ, चतुर्द्वारदीप्तः = चारों द्वारों पर चमकता हुआ, मङ्गलद्रव्यसंचयः = मङ्गलद्रव्यों का संग्रह, अस्ति = होता है।

श्लोकार्थ - उस पुष्पवाटिका में आकर्षक व सुन्दर स्वर्ण की दीवारों वाला तटभाग सुशोभित होता है, वहाँ चार द्वार हैं जहाँ मङ्गल द्रव्यों का संग्रह भी होता है।

तत्प्रतिद्वारकं द्वे द्वे नाट्यशाले प्रकीर्तिते ।

ततश्चोपवनं दिव्यं ततश्चादभुतवेदिका ! ॥८१॥

अन्वयार्थ - तत्प्रतिद्वारकं = उस पुष्पवाटिका के प्रत्येक द्वार पर, द्वे द्वे = दो दो, नाट्यशाले = नाट्यशालायें, प्रकीर्तिते = कही गई हैं, ततश्च = और उससे आगे, दिव्यं = देवोपनीत, उपवनं = उद्यान, (भवति = होता है), ततश्च = और उस उपवन से आगे, अदभुतवेदिका = आश्चर्यकारी वेदी, (भवति = होती है)।

श्लोकार्थ - उसके प्रत्येक द्वार पर दो-दो नाट्य शालायें आचार्यों ने प्रकीर्तित की हैं तथा उन नाट्यशालाओं से आगे एक दिव्य उपवन है जिससे आगे एक अदभुत वेदिका उपलब्ध होती है।

तदन्तर्गतदीप्ताश्च पदार्थश्च ध्वजादिकाः ।

एकमेव द्वितीयोपि रूप्यसालोऽवधार्यताम् ॥८२॥

अन्वयार्थ - तदन्तर्गतदीप्ताः = उस वेदिका के भीतर जाज्वल्यमान, ध्वजादिकाः = ध्वजा आदिक, पदार्थाः = वस्तुयें, च = और, (भवन्ति = होती हैं) (इति एकम् = इस प्रकार एक अर्थात् प्रथम परकोटे का वर्णन हुआ), द्वितीयः = दूसरा परकोटा, रूप्यसालः = रूप्यसाल, अपि = भी, एकम् एव = एक सा ही, अवधार्यताम् = अवधारित किया जाना अर्थात् समझा जाना चाहिये।

श्लोकार्थ - पुष्पवाटिका में उपयुक्त वेदिका पर ध्वजादिक दीप्तियुक्त मङ्गल पदार्थ होते हैं। इस प्रकार यह प्रथम अर्थात् स्वर्णनिर्मित परकोटे का वर्णन हुआ दूसरे परकोटे रूप्यसाल को भी समझना चाहिये।

विशेषः कश्चिदस्त्यत्र वर्ण्यते ललितैः पदैः ।

तच्छालान्तर्गतः कल्पवृक्षाणां वनमुत्तमम् ॥८३॥

अन्वयार्थ - अत्र = यहाँ अर्थात् द्वितीया रूप्यसाल नामक परकोटे के वर्णन में, कश्चिद् = कुछ, विशेषः = विशिष्ट, अस्ति = है, (सः = वह), ललितैः = मनोरम, पदैः = पदों से, वर्ण्यते = कहा जाता है, तच्छालान्तर्गतः = उस रूप्यसाल परकोटे के अन्दर, कल्पवृक्षाणाम् = कल्पवृक्षों का, उत्तमं = उत्तम, वनं = वन, (भवति = होता है) ।

श्लोकार्थ - दूसरे रूप्यसाल परकोटे का वर्णन भी पहिले परकोटे के वर्णन के समान ही समझना चाहिये तथापि उसमें जो कुछ विशिष्ट होता है उसे ललित मनोरम पदों द्वारा कहा जाता है । कवि कहता है कि उस रूप्यसाल परकोटे के भीतर कल्पवृक्षों का उत्तम वन पाया जाता है ।

तस्मिन्स्तूपावली चाधोमुखदुन्दुभिसन्निभा ।

दर्शनीयास्पदाः सिद्धबिम्बास्तदुपरि स्थिताः ॥८४॥

अन्वयार्थ - तस्मिन् = उस वन में, च = और, अधोमुखदुन्दुभिसन्निभा = नीचे की ओर मुख किये हुये दुन्दुभि वाद्यों के समान, स्तूपावली = स्तूपों की पंक्ति (भवति = होती है) तदुपरि = जिन स्तूपों के ऊपर, दर्शनीयास्पदाः = दर्शन करने योग्य, सिद्धबिम्बाः = जिन प्रतिमायें, स्थिताः = विराजमान, (भवन्ति = होती हैं) ।

श्लोकार्थ - और उस वन में नीचे की ओर मुख किये गये दुन्दुभि वाद्यों की शोभा के समान स्तूपों की पंक्ति होती है । जिन स्तूपों के ऊपर अति रमणीय एवं दर्शनीय जिनेन्द्र प्रतिमायें विराजमान होती हैं ।

ततो हर्म्यावली देवक्रीडास्थानमनूत्तमम् ।

देवा विचित्रक्रीडाभिर्विहरन्ति यत्रास्थिताः ॥८५॥

अन्वयार्थ - ततः = उससे आगे, हर्म्यावली = प्रासादों महलों की पंक्ति, अनूत्तमम् = स्तरानुसार उत्तम, देवक्रीडास्थानम् = देवताओं के लिये क्रीड़ा स्थल, (भवति = होता है), यात्रास्थिताः = जहाँ स्थित रहने वाले, देवाः = देवतागण, विचित्रक्रीडाभिः = अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं के, (सह = साथ), विहरन्ति = विहार करते हैं।

श्लोकार्थ - कल्पवृक्षों के वन के आगे देव प्रासाद और क्रीडोद्यान होते हैं जो देवताओं के वैभव के अनुसार ही उत्तम होते हैं। इन प्रासादों में रहने वाले देवतागण अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं के साथ विहार करते हैं।

ततः स्फटिकसालोऽपि पूर्ववद्वर्णितो बुधैः ।

विशेषो वर्ण्यतेऽस्माभिः संक्षेपेणैव सज्जनाः ॥८६॥

अन्वयार्थ - ततः = उससे आगे, स्फटिकसालः = स्फटिक की दमकती मणियों वाला तृतीय परकोटा, अपि = भी, पूर्ववत् = पूर्व वर्णित के समान ही, बुधैः = विद्वज्जनों द्वारा, वर्णितः = वर्णित किया गया है, सज्जनाः = हे सज्जनो!, अस्माभिः = हमारे द्वारा, संक्षेपेण एव = संक्षेप से ही, विशेषः = विशिष्ट, वर्ण्यते = वर्णित किया जाता है।

श्लोकार्थ - उस रूप्यसाल परकोटे से आगे स्फटिक साल नामक तृतीया परकोटा है जो पूर्ववत् वर्णित के समान ही विद्वज्जनों ने बताया है। जो विशेषता है उसे कवि संक्षिप्त रूप से यहाँ वर्णित कर रहा है।

कोष्ठा द्वादश सम्प्रोक्तास्तन्मध्ये विस्तृताः शुभाः ।

तत्र स्थानाश्रितान्वक्ष्ये गणेशाद्यान्यथाक्रमम् ॥८७॥

अन्वयार्थ - तन्मध्ये = उस स्फटिकसाल परकोटे के भीतर, विस्तृताः = बहुत बड़े या लम्बे-चौड़े, शुभाः = स्वच्छ पावन, द्वादश = बारह, कोष्ठा = कक्ष या कोठे, यथाक्रमम् = जैसा क्रम है

तदनुसार, तत्र = उन कोठों में, स्थानाश्रितान् = आश्रय लेकर बैठे हुये, गणेशाद्यान् = गणधरादिक को, वक्ष्ये = कहता हूँ।

श्लोकार्थ - उस स्फटिक साल नामक तृतीय परकोटे के भीतर बहुत बड़े लम्बे-चौड़े शुभ अर्थात् स्वच्छ बारह प्रकोष्ठ बताये गये हैं। उन कोठों में बैठने वाले गणधरादिका का कथन कवि यथाक्रम से कह रहा है।

तत्रैव प्रथमे कोष्ठे गणेशाश्च मुनीश्वराः ।
 द्वितीये कल्पवासिन्यस्तृतीये चार्यिकाः स्मृताः ॥८८॥
 तुर्ये ज्योतिष्कसुन्दर्यः पञ्चमे व्यन्तरस्त्रियः ।
 षष्ठे भवनकान्ताश्च सप्तमे भावनामराः ॥८९॥
 अष्टमे व्यन्तरादेवा ज्योतिष्का नवमे तथा ।
 दशमे कल्पदेवाश्च तथा चैकादशे नराः ॥९०॥
 तिर्यञ्चे द्वादशे प्रोक्ता एवं द्वादशकोष्ठगाः ।
 स्वस्वाधिकारसन्दीप्ताः प्रभुसंवीक्षणोत्सवे ॥९१॥

अन्वयार्थ - तत्रैव = उसी स्फटिक निर्मित परकोटे के भीतर जो बारह कोठे हैं उनमें ही, प्रथमे = पहिले, कोष्ठे = कोठे में, गणेशाः = सभी गणधर, च = और, आर्यिकाः = आर्यिकायें और राजपत्नी आदि स्त्रियाँ, तुर्ये = चौथे कोठे में, ज्योतिष्कसुन्दर्यः = ज्योतिषी देवियाँ, पंचमे = पांचवें कोठे में, व्यन्तरस्त्रियः = व्यन्तर देवियाँ, षष्ठे = छठवें कोठे में, भवनकान्ताः = भवनवासिनी देवियाँ, च = और, सप्तमे = सातवें कोठे में, भावनामराः = भवनवासी देव, अष्टमे = आठवें कोठे में, व्यन्तराः देवाः = व्यन्तरदेव, तथा = और, नवमे = नौवें कोठे में, ज्योतिष्काः = ज्योतिषी देव, दशमे = दसवें कोठे में, कल्पदेवाः = कल्पवासी वैमानिक देव, एकादशे = ग्यारहवें कोठे में, नराः = मनुष्य, तथा च द्वादशे = बारहवें कोठे में, तिर्यञ्चः = तिर्यञ्चजीव, एवं = इस प्रकार, प्रभुसंवीक्षणोत्सवे = भगवान को अच्छी तरह देखने. रूप उत्सव में,

स्वस्वाधिकारसन्दीप्ताः = अपने-अपने अधिकार से उददीप्त
अर्थात् जागरूक, द्वादशकोष्ठगाः = बारहों कोठों में स्थित
लोग, प्रोक्ताः = कहे गये हैं।

श्लोकार्थ - समवसरण के बारह कोठों में अपने-अपने अधिकार व
सामर्थ्य से जागृत जो लोग भगवान् को अच्छी तरह
देखने-निहारने के उत्सव में बैठे हुये श्रोता गण या दर्शक
गण जैसे बताये गये हैं वह क्रम-व्यवस्था इस प्रकार है —
पहले कोठे में सभी गणधर और मुनिवृन्द, दूसरे कोठे में
कल्पवासिनी देवियाँ, तीसरे कोठे में आर्यिकायें और राजादि
की पत्नियाँ, चौथे कोठे में ज्योतिषी देवियाँ, पांचवें कोठे में
व्यन्तरदेवियाँ, छठवें कोठे में भवनवासिनी देवियाँ, सातवें
कोठे में भवनवासी देव, आठवें कोठे में व्यन्तरदेव, नवमैं कोठे
में ज्योतिषी देव, दसवें कोठे में कल्पवासी वैमानिक देव,
ग्यारहवें कोठे में मनुष्य और बारहवें कोठे में सभी तिर्यञ्च
जीव।

ततः श्रीमण्डपो नानाजातिरत्नविनिर्मितः ।
तन्मध्ये सुविचित्रं हि पीठमस्ति त्रिमेखलम् ॥६२॥
तस्योपर्यन्तरिक्षे स भगवांश्चतुरङ्गुलः ।
विराजते चात्यर्थं महावीरो दयानिधिः ॥६३॥

अन्यार्थ - ततः = द्वादश कोठों से आगे, नानाजातिरत्नविनिर्मितः =
अनेक जाति के रत्नों से निर्मित किया गया, श्रीमण्डपः =
श्रीमण्डप, (भवति = होता है), तन्मध्ये = उस श्रीमण्डप के
बीच में, सुविचित्रं = अत्यंत सुन्दर, त्रिमेखलम् = तीन
मेखलाओं वाली, पीठं सिंहासन, अस्ति = होता है, हि =
ही, तस्य = उस पीठ के, उपरि = ऊपर, अन्तरिक्षे = आकाश
में, चतुरङ्गुलः = चार अङ्गुल ऊँचाई वाले, दयानिधिः =
करुणासागर दयानिधान, सः = वह, भगवान् = भगवान्,
महावीर = महावीर स्वामी, अत्यर्थं = अति श्रेष्ठ तत्त्व को

अर्थात् मुक्ति के रहस्य को बताने के लिये, विराजते = विराजमान होते हैं।

श्लोकार्थ - उन बारह कोठों से आगे अनेकविध रत्नों से बनाया गया श्री-मण्डप होता है जिसमें अत्यंत सुन्दर और तीन मेखलाओं वाली पीठ बीचों बीच होती है उस पीठ के ऊपर अंतरिक्ष में चार अङ्गुल ऊपर ही दयानिधान भगवान् महावीर सर्वोत्कृष्ट मुक्ति मार्ग को या सर्वश्रेष्ठ तत्त्व को बताने के लिये विराजमान रहते हैं।

तस्योपरि प्रभादीप्तं छत्रत्रयमनूत्तमम् ।
 चतुःषष्टिप्रमाणौघचामराणां प्रचालनम् ॥६४॥
 अशोकादीनि भान्ति स्म प्रातिहार्याणि चाष्ट वै ।
 दृश्यन्ते सप्तपर्यायास्त्रयोभूताश्च भाविनः ॥६५॥
 त्रयस्तथा वर्तमान एकैकमनुक्रमात् ।
 प्रभाधिक्येन दिवसो रात्रिर्न ज्ञायते क्वचित् ॥६६॥

अन्वयार्थ - तस्य = प्रभु के, उपरि = ऊपर, अनूत्तमम् = अत्यधिक उत्तम, प्रभादीप्तं = कान्ति सहित उज्ज्वल, छत्रत्रयम् = तीन छत्र, चतुःषष्टिप्रमाणौघचामराणां = चौसठ चंवरों का, प्रचालनम् = चलाना ढारना, च = और, अशोकादीनि = अशोक वृक्ष आदि, अष्ट = आठ, प्रातिहार्याणि = प्रतिहार्य, वै = निश्चित ही, भान्ति स्म = सुशोभित होते थे, (तत्र = अष्टप्रातिहार्यों में जो भामण्डल है उसमें), त्रयः = तीन, भूताः = भूतकालीन भव, त्रयः = तीन, भाविनः = भविष्यकालीन भव, तथा च = और, वर्तमानः = एक वर्तमान भव, (इति = इस प्रकार), सप्तपर्यायाः = सात भवों की व्यञ्जन पर्यायें, एकैकम् = एक-एक करके, अनुक्रमात् = क्रमशः, दृश्यन्ते = दिखाई देती हैं, तत्र = समयसरण में, प्रभाधिक्येन = कान्ति रूप तेज अर्थात् भामण्डल की दीप्ति की अधिकता से, क्वचित् = कहीं भी, दिवसः = दिन, रात्रिः = रात, न = नहीं, ज्ञायते = जाना जाता है।

श्लोकार्थ - प्रभु के ऊपर अत्यंत कांति सम्पन्न अत्युत्तम तीन छत्र होते हैं, चौंसठ यक्ष समूह में चामरों अर्थात् चँवरों को ढारते हैं। अशोक वृक्ष आदि आठ प्रतिहार्य सुशोभित होते रहते हैं। उनमें जो भामण्डल होता है उसमें तीन भूतकाल के, तीन भविष्य के तथा एक वर्तमान का भव इस प्रकार सात भव दिखाई देते हैं। समवसरण में भामण्डल की अतिशय युक्त प्रभा की अधिकता से रात्रि एवं दिन का भेद ही ज्ञात नहीं होता है।

क्वचिज्जिनेन्द्रप्रतिमापूजनं चामरैः कृतम् ।
 क्वचिन्नृत्यं क्वचिद्वाद्यं क्वचिन्मङ्गलमुत्तमम् ॥६७॥
 क्वचिज्जिनगुणग्रामकीर्तनं साधुभिः कृतम् ।
 केऽपि शुक्लाग्निना दग्धुं घातिकर्माणि चोत्सुकाः ॥६८॥

अन्वयार्थ - क्वचित् = कहीं पर, चामरैः = चँवरों से, जिनेन्द्रप्रतिमापूजनम् = जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमाओं का पूजन, कृतम् = किया जाता हुआ, क्वचित् = कहीं पर, नृत्यं = नृत्य, (भवति = होता है), क्वचित् = कहीं पर, उत्तमम् = उत्तम, मङ्गलं = मङ्गलप्रद, वाद्यं = वाद्यों को बजना, (भवति = होता है), क्वचित् = कहीं पर, साधुभिः = साधुओं सज्जनपुरुषों द्वारा, कृतं = किया हुआ, जिनगुणग्रामकीर्तनं = जिनेन्द्र के गुण समूहों का स्तुति गान, कीर्तन, भवति = होता है, क्वचित् च = और कहीं पर, केऽपि = कुछ साधुगण, शुक्लध्यानाग्निना = शुक्लध्यान रूपी अग्नि द्वारा, घातिकर्माणि = घातिया कर्मों को, दग्धुं = जलाने के लिये, उत्सुकाः = उत्सुक, (दृश्यन्ते = दिखाई देते हैं)।

श्लोकार्थ - समवसरण में कहीं पर चँवरों से जिनेन्द्र प्रतिमाओं का पूजन होता हुआ दिखाई देता है तो कहीं नृत्य, कहीं पर मङ्गलप्रद उत्तम वाद्य बजते रहते हैं तो कहीं पर साधुओं द्वारा जिनेन्द्र भगवान् के गुण समूहों का गुणगान किया जाता हुआ दिखता है तो कहीं पर साधु परमेष्ठी शुक्लाग्नि से घातिया कर्मों को जलाने के लिये उत्सुक दिखाई देते हैं।

सार्धं द्वादशकोट्युक्ताः वाद्यभेदाश्च ये स्मृताः ।

नदन्ति स्वस्वरीत्या ते मृदुध्यनिमनोहराः ॥६६॥

अन्वयार्थ - ये = जो, द्वादशकोटि = साढ़े बारह करोड़, वाद्यभेदाः = वाद्यों-वाजों के भेद, उक्ताः = कहे गये हैं, स्मृताः च = और आज भी याद रखे गये हैं, ते = वे, स्वस्वरीत्या = अपने-अपने स्वरानुसार, सार्धं = साथ, मृदुध्यनिमनोहरा = मधुर और मनोरञ्जक चित्ताकर्षक ध्वनि सहित, नदन्ति = बजते हैं अर्थात् शब्द करते हैं ।

श्लोकार्थ - जो भी साढ़े बारह करोड़ वाद्ययंत्र कहे गये थे तथा आज भी स्मृत हैं, वे समवसरण में अपनी-अपनी वादनरीति से मधुर और मनोहर ध्वनि सहित बजते रहते हैं ।

पञ्चाश्चर्याणि चाजर्स यत्र देवप्रभावतः ।

निरीक्ष्यन्तेऽखिलैर्दृष्टा तत्रास्थैर्भाग्यदुन्दुभिः ॥१००॥

अन्वयार्थ - यत्र = जहाँ, देवप्रभावतः = जिनदेव के प्रभाव से, पञ्च = पाँच, आश्चर्याणि = आश्चर्य-चमत्कार, अजर्स = निरन्तर ही, अखिलैः = सभी, तत्रस्थैः = समवसरण में बैठे हुये लोगों द्वारा, निरीक्ष्यन्ते = देखे जाते हैं, च = और, भाग्यदुन्दुभिः = भाग्य की विजय पताका, दृष्टा = देखी गई, (भवति = होती है) ।

श्लोकार्थ - समवसरण में हमेशा ही भगवान् जिनेन्द्र देव के प्रभाव से पांच आश्चर्य या चमत्कार सभी लोगों द्वारा देखे जाते हैं तथा भाग्य की विजय पताका भी देखी गई होती है ।

वैरभावविनिर्मुक्ता यत्र सर्वे निरीक्षिताः ।

स्वभाववैरिणोऽन्योन्यं येऽत्र शान्तमहीतले ॥१०१॥

अन्वयार्थ - यत्र = जहाँ, (कुत्र = कहीं), अपि = भी, ये = जो, स्वभाववैरिणः = स्वभाव से अर्थात् जन्म जात वैर रखने वाले

प्राणी, (भवन्ति = होते हैं), ते = वे, अत्र = यहाँ, शान्तमहीतले = शान्ति से परिपूर्ण भूमि स्वरूप समवसरण में, अन्योन्य = परस्पर, निरीक्षिताः = देखते हुये, वैरभावविनिर्मुक्ताः = वैरभाव से पूरी तरह मुक्त अर्थात् वैरभाव छोड़कर मित्र (भवन्ति = हो जाते हैं)।

श्लोकार्थ - जो जहाँ भी स्वभावतः अर्थात् जन्मजात बैरी होते हैं वे शान्ति के स्थल स्वरूप समवसरण में एक दूसरे को अच्छी तरह जानते देखते हुये वैरभाव छोड़कर मित्र हो जाते हैं।

मृगेन्द्रश्च गजेन्द्रेण शार्दूलोऽपि गवा सह ।

विडालो मूषकेनाथ मयूरो भुजगेन च ॥१०२॥

अन्येऽपि सर्वे निर्वेदाः परस्परविरोधिनाः ।

विहरन्ति सदा यत्र श्रीजिनेन्द्रप्रभावतः ॥१०३॥

अन्वयार्थ - यत्र = जिस समवसरण में, श्रीजिनेन्द्रप्रभावतः = श्री जिनेन्द्र भगवान् के प्रभाव से, मृगेन्द्रः = शेर, गजेन्द्रेण सह = हाथी के साथ, शार्दूलः = बाघ, गवा सह = गाय के साथ, विडालः = बिलाव, मूषकेन सह = चूहे के साथ, मयूरः अपि = मयूर भी, भुजंगेन सह = सर्प के साथ, अथ च = और, अन्ये = अन्य, सर्वे = सभी, अपि = भी, परस्परविरोधिनाः = परस्पर बैर विरोध रखने वाले, (प्राणिनः = प्राणी), निर्वेदाः = बैर रहित, (सन्तः = होते हुये), सदा = हमेशा, विहरन्ति = विहार-विचरण करते हैं।

श्लोकार्थ - समवसरण में श्री जिनेन्द्र भगवान् के प्रभाव से मृगेन्द्र अर्थात् सिंह हाथी के साथ, बाघ गाय या बैल के साथ, बिलाव चूहे के साथ, मोर सर्प के साथ और अन्य सभी परस्पर बैर विरोध रखने वाले प्राणी हमेशा बैर रहित होकर विचरण करते हैं।

इत्थं समवसारोऽयं समासादनुवर्णितः ।

महापुराणे द्रष्टव्यस्तद्विस्तारो बुधैर्यथा ॥१०४॥

अन्वयार्थ - इत्थं = ऐसा, अयं = यह, समवसारः = समवसरण, यथा = जैसा, (वर्णितः = वर्णित है, तथा = वैसा, मया = मुझ कवि द्वारा), समासात् = संक्षेप से, अनुवर्णितः = शास्त्रानुसार वर्णन किया गया, बुधैः = विद्वज्जनों द्वारा, तद्विस्तारः = उसका विस्तृत वर्णन, महापुराणे = महापुराण में, द्रष्टव्यः = देखना चाहिये।

श्लोकार्थ - कवि कहता है कि इस प्रकार यह जैसा है वैसा समवसरण का शास्त्रानुसार वर्णन संक्षेप से मुझ द्वारा किया गया। उसका विस्तृत वर्णन महापुराण में विद्वज्जनों द्वारा देखा जाना चाहिये।

प्रभोरिच्छानुसारेण महावीरस्य धीमतः ।

स स्वयं यत्र सम्प्राप्तो विपुलाचलपर्वते ॥१०५॥

अन्वयार्थ - यत्र = जिस, विपुलाचलपर्वते = विपुलाचल पर्वत पर, धीमतः = केवलज्ञान के स्वामी धीमान्, प्रभोः = प्रभु, महावीरस्य = महावीर का, स = वह समवसरण, स्वयं = स्वयमेव, इच्छानुसारेण = भव्य जीवों की इच्छा अर्थात् भाग्य के अनुसार, सम्प्राप्तः = प्राप्त हुआ।

श्लोकार्थ - भव्य जीवों की इच्छा अर्थात् भाग्य के अनुसार केवलज्ञानी भगवान् महावीर का समवसरण स्वयं विपुलाचल पर्वत पर आ गया अर्थात् प्राप्त हुआ।

यत्र प्रभुर्महावीरः स्वयं भव्यजनान्प्रति ।

धर्मोपदेशव्याख्यानं करोति करुणामयः ॥१०६॥

अन्वयार्थ - यत्र = विपुलाचल पर्वत पर आगत जिस समवसरण में, करुणामयः = करुणा स्वरूप, प्रभु = भगवान्, महावीरः = महावीर, स्वयं = स्वयमेव, भव्यजनान् प्रति = भव्य जीवों को, धर्मोपदेशव्याख्यानं = धर्मोपदेश रूप व्याख्यान, करोति = करता है।

श्लोकार्थ - विपुलाचल पर्वत पर आये हुये जिस समवसरण में तीर्थङ्कर प्रकृति के उदय को प्राप्त होने से करुणा स्वरूप भगवान् महावीर स्वयं ही भव्य जीवों को धर्म का उपदेश देते हैं।

विशेष - तीर्थङ्कर प्रकृति करुणा भाव से बंधती है अतः उसके उदय को प्राप्त भगवान् को भी यहाँ करुणास्वरूप कह दिया गया है। वस्तुतः भगवान् के पूर्ण राग मिट जाने अर्थात् वीतराग होने से करुणा नहीं होती है।

भूपालं वनपालः षट्ऋतूनां वनसंचयम् ।

पुष्पाण्यपि तदादाय श्रेणिकं समुपागमत् ॥१०७॥

तानि भूपाग्रतः संस्थाप्य वचनं चेदमब्रवीत् ।

शृणु राजन्! महावीर प्रभो समयसारकः ॥१०८॥

प्राप्तो विपुलशैलेऽस्मिन् महानन्दमयः शुभः ।

तद्बोधनार्थं संहृष्टस्त्वामहं समुपागतः ॥१०९॥

अन्वयार्थ - वनपालः = वनरक्षक माली ने, षट्ऋतूनां = छहों ऋतुओं के, वनसंचयम् = वन सम्पदा को, (दृष्ट्वा = देखकर), पुष्पाण्यपि = फलों को भी, तदादाय = वहाँ से लेकर, भूपालं = राजा, श्रेणिकं = श्रेणिक को, समुपागमत् = प्राप्त हुआ, च = और, तानि = फलों को, भूपाग्रतः = राजा के सामने, संस्थाप्य = रखकर, इदं = यह, वचनं = वचन, अब्रवीत् = कहा, राजन्! = हे राजन्, शृणु = सुनो, अस्मिन् = इस, विपुलशैले = विपुलाचल पर्वत पर, महानन्दमयः = महान् आनन्द रूप, शुभः = अच्छा हितकारी पुण्यस्वरूप, महावीरप्रभोः = भगवान् महावीर का, समयसारकः = समवसरण, प्राप्तः = प्राप्त हो गया है, अर्थात् आ गया है, तद्बोधनार्थं = उसका ज्ञान कराने के लिये, संहृष्टः = हर्षित होता हुआ, अहं = मैं, त्वां समुपागतः = तुम्हारे पास आया हूँ।

श्लोकार्थ - वनपाल अर्थात् वनरक्षक माली छहों ऋतुओं में फलने फूलने वाली वन सम्पदा अर्थात् फल फूलों को वनवृक्षों में फला फूला

देखकर, वहाँ से सभी ऋतुओं के वनवृक्षों में फला फूला देखकर, वहाँ से सभी ऋतुओं के फल लेकर राजा श्रेणिक के समीप पहुँचा और उसने पुष्प राजा के आगे रखकर कहा कि हे राजन्! सुनो अपने इस विपुलाचल पर्वत पर महान् आनन्दकारी और शुभ लक्षणों वाला भगवान् महावीर का समवसरण आया है। यही बात बताने के लिये हर्षित होता हुआ मैं आपके सम्मुख उपस्थित हुआ हूँ।

श्रुत्वा पुलकितो राजा महावीरमुपागतम् ।

स्वसमाजसमेतोऽयं

महानन्दमनोऽभवत् ॥११०॥

अन्वयार्थ - महावीरम् = भगवान् महावीर को, उपागतम् = समीपवर्ती विपुलाचल पर्वत पर आया हुआ, श्रुत्वा = सुनकर, पुलकितः = प्रसन्न होता हुआ, अयं = यह, राजा = राजा श्रेणिक, स्वसमाजसमेतः = अपने परिवार अथवा समाज जनों सहित, महानन्दमनः = अत्यधिक आनन्दित मन वाला, अभवत् = हो गया।

श्लोकार्थ - समीपवर्ती विपुलाचल पर्वत पर भगवान् महावीर आये हुये हैं — यह सुनकर राजा श्रेणिक प्रसन्नता से पुलकित होकर अपने परिवार-समाज सहित महान् आनन्द से भरपूर मन वाला हो गया।

यस्यां दिशि समायातः प्रभोः समवसारकः ।

तत्संमुखं पदं सप्त गत्वा तं प्रणनाम सः ॥१११॥

अन्वयार्थ - यस्यां दिशि = जिस दिशा में, प्रभोः = भगवान् का, समवसारकः = समवसरण, समायातः = आया था, तत्संमुखं = उस दिशा में सम्मुख, सप्त = सात, पदं = कदम, गत्वा = जाकर, सः = उस राजा ने, तं = भगवान् महावीर को, प्रणनाम = प्रणाम किया।

श्लोकार्थ - भगवान् महावीर का समवसरण जिस दिशा में आया था, उस

दिशा में सात पद-कदम सम्मुख जाकर उस राजा ने भगवान् महावीर को प्रणाम किया।

भूषणान्वनपालाय सम्यग्दत्त्वा प्रशस्य तम् ।

महावीरमनुध्याय राजानन्तसुखं गतः ॥११२॥

अन्यार्थ - वनपालाय = वन रक्षक या माली के लिये, भूषणान् = आभूषणों को, दत्त्वा = देकर, तं = उसकी, सम्यक् = सही, प्रशस्य = प्रशंसा करके, (च = और), महावीरं = भगवान् महावीर का, अनुध्याय = ध्यान करके, राजा = राजा श्रेणिक, अनन्तसुखं = अत्यधिक हर्ष को, गतः = प्राप्त हुआ।

श्लोकार्थ - वनपाल के लिये अपने आभूषण देकर, उसकी सच्ची प्रशंसा करके और भगवान् महावीर का ध्यान करके राजा अतिशय आनंद को प्राप्त हुआ।

समादिशत् बोधकरांस्तदाज्ञप्ताश्च ते यदा ।

भेर्यादिवाद्यसदघोषं चक्रुः श्रवणसौख्यदम् ॥११३॥

अन्यार्थ - (स = उस राजा ने), बोधकरान् = भेरी ताड़न कर सूचना देने वालों को, समादिशत् = आदेश दिया, तदाज्ञप्ताः च = और राजा की आज्ञा को प्राप्त हुये, ते = उन भेरी ताड़क सूचना देने वालों ने, श्रवणसौख्यदं = कानों को सुख प्रदान करने वाला, भेर्यादिवाद्यसदघोषं = भेरी आदि को बजाकर सदघोषणा, चक्रुः = कर दी।

श्लोकार्थ - राजा ने भेरी बजाकर सूचना देने वालों को आदेश दिया। राजा की आज्ञा पाकर उन लोगों ने कानों को सुख देने वाली भेरी आदि वाद्य बजाकर सदघोषणायें कीं।

वारणाश्वरथादींश्च सज्जयित्वा नरेश्वरः ।

दुन्दुभेर्मन्दनिर्घोषमकारयदनूत्तमम् ॥११४॥

अन्यार्थ - नरेश्वरः = राजा श्रेणिक ने, वारणाश्वरथादीन् = हाथी, घोड़े, रथ आदि को, सज्जयित्वा = सजाकर, दुन्दुभेः = दुन्दुभि

का, अनूत्तमम् = अति उत्तम, मन्दनिर्घोषम् = गंभीर घोषणा,
अकारयत् = करवाया।

श्लोकार्थ - राजा श्रेणिक ने हाथी, घोड़े, रथ आदि को सजवाकर दुन्दुभि
का अत्युत्तम गंभीर घोष करवाया।

कुमाराः सज्जिताः सर्वे स्वदीप्त्यानङ्गसन्निभाः ।

सज्जिता नरनार्यश्च तद्वदेव सुखोदगमात् ॥११५॥

अन्वयार्थ - तद्वदेव = उनके समान ही, सुखोदगमात् = सुख का उदगम
होने से, सर्वे = सारे, स्वदीप्त्या = अपनी कान्ति से,
अनङ्गसन्निभाः = कामदेव के सदृश, कुमाराः = राजकुमार,
नरनार्यश्च = और नर-नारी, सज्जिताः = तैयार हो गये,
(आसन् = थे)।

श्लोकार्थ - राजा श्रेणिक के समान ही राजकुमारों और सभी नर-नारियों
में भी सुख का उदभव या संचार होने से वे सज्जित हो गये
थे। यहाँ राजकुमारों को अपने विलक्षण तेज के कारण
कामदेव के समान वर्णित किया गया है।

सर्वास्तान्सर्वगान्कृत्वा चेलनादेविकायुतः ।

अष्टद्रव्याणि सङ्गृह्य पूजार्थं शुद्धभावतः ॥११६॥

महावीरेक्षणाकांक्षी पुलकोदगमलक्ष्यतः ।

श्रेणिकस्तत्र सम्प्राप्तो देवं भव्यदयानिधिम् ॥११७॥

अन्वयार्थ - तान् = उन राजकुमारों और नर नारियों, सर्वान् = सभी को,
सर्वगान् (प्रति) = सर्वज्ञ की ओर, कृत्वा = करके, शुद्धभावतः
= शुद्ध भावों से, पूजार्थं = पूजा करने के लिये, अष्टद्रव्याणि
= जलचन्दनादि आठों द्रव्यों को, सङ्गृह्य = लेकर,
पुलकोदगमलक्ष्यतः = रोमांचित अर्थात् गदगद होकर उससे
उत्पन्न आनंद को लक्ष्य करने से, महावीरेक्षणाकांक्षी =
भगवान् महावीर को देखने की आकांक्षा वाला, चेलनादेविकायुतः
= चेलना देवी से सहित, श्रेणिकः = राजा श्रेणिक, तत्र =

वहाँ समवसरण में, भव्यदयानिधि = भव्यजीवों के लिये दया के भंडार, देव = भगवान् महावीर के पास, सम्प्राप्तः = पहुँच गया।

श्लोकार्थ - सभी राजकुमारों, नरनारियों को सर्वज्ञ भगवान् महावीर के दर्शनों के लिये उनके समवसरण की ओर भेजकर वह राजा भी शुद्ध भावों से पूजा करने के लिये अष्टमङ्गल द्रव्य लेकर अत्यधिक रोमांच होने पर उत्पन्न आनंद के लक्ष्य से भगवान् महावीर के दर्शनों का आकांक्षी होकर चेलनादेवी के साथ समवसरण में भव्य जीवों के लिये दयानिधि भगवान् महावीर के समीप पहुँच गया।

त्रिः परिक्रम्य तं भक्त्या जराजन्ममृतित्रयम् ।

बन्दीकृत्य प्रणम्याथ संपूज्य विधिवत्ततः ॥११८॥

नृकोष्ठगः श्रेणिकोऽसौ वाक्यमेवमुवाच हि ।

धन्योहं कृतकृत्योहं अद्य नाथ त्वदीक्षाणात् ॥११९॥

मत्तुल्याकृतिपापिष्ठः त्वयानुभुवि ईरितः ।

त्वत्सङ्गमान्महाभाग्यभाजनत्वं ममागतम् ॥१२०॥

यतो दीनदयालुस्त्वं स्वभावात्परेमेश्वर ।

कर्मविद्धे नते दीने, दयां कुरु मयि प्रभो ॥१२१॥

अन्वयार्थ - तं = भगवान् महावीर को, त्रिः = तीन बार, परिक्रम्य = परिक्रमा करके, जराजन्ममृतित्रयम् = जन्म, बुढ़ापा और मरण तीनों को, बन्दीकृत्य = बन्दी बनाकर अर्थात् सीमित या मर्यादित करके, भक्त्या = भक्ति से, प्रणम्य = प्रणाम करके, अथ (च) = और, विधिवत् = पूजा विधि के अनुरूप, (तं = उनको), संपूज्य = अच्छी तरह से पूजकर, असौ = वह, श्रेणिकः = राजा श्रेणिक, नृकोष्ठगः = मनुष्यों के कोठे में स्थित, (भूत्वा = होकर), एवं = इस प्रकार, वाक्यम् = वचन, अवाच = बोला, त्वदीक्षाणात् = तुम्हारे दर्शन से, नाथ! = हे स्वामी!, अद्य = आज, मत्तुल्याकृतिपापिष्ठः = मेरे समान

विशिष्ट पापी, अनुभुवि = इस समवसरण भूमि पर, त्वया = तुम्हारे द्वारा, ईरितः = प्रेरित हुआ, अहं = मैं, धन्यः = धन्य, कृतकृत्यः = कृतकृत्य, (अस्मि = हो गया हूँ), त्वत्सङ्गमात् = तुम्हारे इस सङ्गम अर्थात् साथ से, मम = मेरा, महाभाग्यभाजनत्वं = महान् भाग्य की पात्रता, आगतम् = आ गयी है, यतः = इसलिये, प्रभो! = हे भगवान्!, स्वभावात् = स्वभाव से ही, दीनदयालुः = दीनों पर दया करने वाले, त्वं = तुम, परमेश्वरः = भगवान्, कर्मविद्धे = कर्मों के बंधन में फंसे, नते = विनम्र हुये, दीने = दीनता के पात्र, मयि = मुझ पर, दयां = कृपा, कुरु = करें।

श्लोकार्थ - भगवान् महावीर की तीन परिक्रमा करके मानो जन्म, जरा और मृत्यु का बन्दी बनाकर अर्थात् सीमित या मर्यादित करके, भक्ति से प्रणाम करके और पूजनविधि के अनुसार भगवान् की पूजा करके वह राजा श्रेणिक मनुष्यों के कोठे में बैठ गया और उसने इस प्रकार वचन बोले — हे भगवान्! तुम्हारे दर्शन से आज मुझ पर तुम्हारे द्वारा प्रेरित हुआ मैं धन्य एवं कृतकृत्य हो गया हूँ। हे प्रभो! तुम्हारे इस सङ्गम से अर्थात् आपका साथ मिल जाने से मेरा भाग्य महान् हो गया है मानों महाभाग्यशाली बनने की पात्रता मुझमें आ गयी है। इसलिये स्वभाव से ही दीनों के लिये कृपालु भगवान् कर्मबन्धन में पड़े किन्तु अतिविनम्र मुझ दीन पर कृपा कीजिये।

यस्योद्यत्कृपयात्र भव्यनिवहाः संसारघोराम्बुधिम् ।

तीर्त्वा मुक्षितपदं गताश्च कति ते सद्धर्मकर्माश्रिताः ।।

तं संभावयिताधुनाखिलजनो वीरं महार्घं ध्रुवम् ।

यद्दयानोद्भवशुद्धभाववशातः सिद्धाय सम्प्रार्थते ॥१२२॥

अन्वयार्थ - अत्र = इस संसार में, यस्य = जिनकी, उद्यत्कृपया = उत्कृष्टकृपा से, भव्यनिवहाः = भव्यजनों के समूह, संसारघोराम्बुधिम् = संसार रूपी घोर समुद्र को, तीर्त्वा =

तैरकर, मुक्तिपदं = मुक्तिस्थान अर्थात् सिद्धदशा को, गताः = चले गये अर्थात् प्राप्त हो गये, च = और, कति = कितने ही, ते = वे भव्य जीव, सद्धर्मकर्माश्रिताः = सम्यक् धर्म अर्थात् जिनेन्द्र प्रणीत अहिंसामयी धर्म को पालन करने रूप कर्म के आश्रित हो गये हैं अर्थात् सद्धर्म का पालन करने वाले हो गये हैं, यद्ध्यानोद्भवशुद्धभाववशतः = जिनके ध्यान से उत्पन्न शुद्ध भावना के कारण, अखिलजनः = सारा भव्य जनसमूह, तं = उन, महार्घ = महान पूज्य, वीरं = भगवान् महावीर को, संभावयिता = सम्यक् भावना से पूजता हुआ, ध्रुवं = निश्चित ही, अधुना = अब, सिद्धाय = सिद्ध होने के लिये, सम्प्रार्थते = प्रार्थना करता है।

श्लोकार्थ - इस संसार में जिनकी उत्कृष्ट कृपा से भव्यजनों के समूह संसार सागर को तैर कर मुक्त हो जाते हैं तथा कुछ भव्यजीव सम्यक् धर्म का पालन करने में तत्पर हो जाते हैं। कवि भावना करता है कि जिनके ध्यान से शुद्धभावना उत्पन्न होती है जिसके वशीभूत होकर भव्यजन उन परमपूज्य परमात्मा महावीर को सम्यक् भावना सहित पूजता हुआ अब निश्चित ही सिद्ध होने के लिये प्रार्थना करता है।

[इति देवदत्तकृते सम्मेदशिखरमाहात्म्ये श्रीमहावीर-
श्रेणिकसमागमवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः।]

[इस प्रकार कवि देवदत्तकृत सम्मेदशिखर माहात्म्य में श्रीमहावीर श्रेणिक समागम का वर्णन करने वाला प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।]

द्वितीयोऽध्यायः

अथ प्रणम्य देवेशं महावीरं महाप्रभुम् ।

श्रेणिकः समयं प्राप्य बद्धाञ्जलिरुवाच तम् ॥१॥

अन्वयार्थ - अथ = अनन्तर, देवेशं = देवाधिदेव जिनेन्द्र देव, महाप्रभुं = परम प्रभु, महावीरं = महावीर को, प्रणम्य = प्रणाम करके, (च = और), समयं = समय को, प्राप्य = पाकर, बद्धाञ्जलिः = हाथ जोड़े हुये, श्रेणिकः = राजा श्रेणिक, तम् = उनको, उवाच = बोला ।

श्लोकार्थ - समोशरण में राजा श्रेणिक के पहुंच जाने के बाद कवि कह रहा है कि देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान् महावीर महाप्रभु को नमन करके तथा योग्य समय पाकर राजा श्रेणिक हाथ जोड़कर भगवान् से बोला ।

भगवन्मुक्तिदोऽसि त्वमद्वितीयो महीतले ।

शरणागतजीवानामार्तानां पालकः सदा ॥२॥

अन्वयार्थ - भगवन्! = हे भगवन्! त्वम् = तुम, महीतले = पृथ्वी पर, अद्वितीयः = अद्वितीय, शरणागतजीवानां = शरण में आये भव्य जीवों के लिये, मुक्तिदः = मुक्ति देने वाले अर्थात् मुक्ति का मार्ग दिखाने वाले, आर्तानां = दुःखी प्रणियों के, सदा = हमेशा, पालकः = पालनकर्त्ता, असि = हो ।

श्लोकार्थ - हे भगवन्! इस महीतल पर आप अद्वितीय हो, शरणागत भव्य जीवों को मुक्तिमार्ग के प्रदर्शक मुक्तिदाता हो, तशम दीन-दुखी जनों के सदा पालनकर्त्ता हो ।

संसारिणोऽत्रा ये जीवा नानाभ्रमभराकुलाः ।

सर्वदा ह्यसमर्थास्ते संयमव्रतसाधने ॥३॥



श्री अजितनाथ स्वामी-सिद्धवर कूट

तेषां निर्वाणकल्याणे संशयो मे महान्प्रभो ।

ज्ञानं विना महाराज! दुर्वारा कर्मणां गतिः ॥४॥

अन्वयार्थ - अत्र = इस संसार में, ये = जो, संसारिणः = संसारी, जीवाः = जीव, नानाभ्रमभराकुलाः = अनेक भ्रमों से भ्रमित बुद्धि वाले और व्याकुल चित्त, (सन्ति = हैं), ते = वे, संयमव्रतसाधने = संयम व व्रतों का पालन करने में, सर्वदा = हमेशा, हि = ही, असमर्था = असमर्थ, (भवान्ति = होते हैं), प्रभो! = हे प्रभु, तेषां = उनके, निर्वाणकल्याणे = निर्वाण अर्थात् मोक्ष प्राप्ति रूप कल्याण होने में, मे = मेरा, महान् = बहुत बड़ा, संशयः = संदेह, (अस्ति = है), महाराज! = हे महाराज!, ज्ञानं विना = ज्ञान के बिना, कर्मणां गतिः = कर्मों की गति, दुर्वारा = दुर्निवार अर्थात् कठिनाई से रोकी जाने वाली, (अस्ति = है) ।

श्लोकार्थ - इस संसार अटवी में जो जीव नाना भ्रमों से भरे हुये अर्थात् भ्रमबुद्धि वाले तथा व्याकुल चित्त हैं वे जीव संयम की साधना करने में एवं व्रतों का पालन करने में हर समय असमर्थ होते हैं, हे भगवान् उन्हें मोक्ष प्राप्ति रूप कल्याण के होने में मुझे बहुत बड़ा संशय है। हे महाराज! ज्ञान के बिना कर्मों की गति बड़ी कठिनाई से रोकी जाने वाली होती है।

उर्गं तपो विना ज्ञानं नैव नाथ! प्रजायते ।

संयमं व्रतरूपं तत्तेषु ते नाधिकारिणः ॥५॥

तेषां समीपवर्ती यः स्वल्पायासो महाप्रभो ।

तन्न निर्वाणसन्मार्गोऽधुना स चोपदिश्यताम् ॥६॥

अन्वयार्थ - नाथ! = हे स्वामिन्!, ज्ञानं विना = ज्ञान के बिना, उर्गं तपः = उत्कृष्ट तप, च = और, तपः विना = तप के बिना, उर्गं ज्ञानं = उत्कृष्ट ज्ञान, नैव = नहीं ही, प्रजायते = उत्पन्न होता है, तत् = वह तप, संयमं = संयम, (च = और), व्रतरूपं = व्रतपालन रूप, (भवति = होता है), तेषु = संयम, व्रतपालन रूप तप करने और ज्ञान पाने में, ते = वे संसारी जीव,

अधिकारिणः = अधिकारी अर्थात् व्रत संयम धारण करने में समर्थ, न = नहीं (सन्ति = हैं), महाप्रभो! = हे परमप्रभो!, तेषां = उनके, समीपवर्ती = पास, यः = जो, स्वल्पायासः = थोड़ा सा प्रयास, (अस्ति = है), (तेभ्यः = उनके लिये), सः = वह, निर्वाणप्राप्त करने का उपाय, उपदिश्यताम् = उपदेश से समझाया जाये।

श्लोकार्थ - हे स्वामिन्, ज्ञान के बिना उग्र तप नहीं होता तथा उग्र तप के बिना उत्कृष्ट केवल ज्ञान भी उत्पन्न नहीं होता है। हे प्रभु वह तप एवं केवलज्ञान संयम सहित व्रत पालन से होता है। उनमें अर्थात् व्रत, तप, संयम आदि में संसारी जीव समर्थ नहीं होते हैं। उनके पास जो थोड़ा बहुत प्रयास होता है अर्थात् वे एतदर्थ जो कुछ प्रयत्न करते वह निर्वाण पाने हेतु सच्चा उपाय नहीं है। इसलिये हे परमप्रभो! अब आप उन्हें वह मार्ग उपदेश देकर समझायें।

तद्वाक्यमेवमाकर्ण्य

महावीरस्तमब्रवीत् ।

संसारिणामपि शिवं यथा स्यात्तत् तथा शृणु ॥७॥

अन्वयार्थ - एवम् = ऐसे, तद्वाक्यम् = श्रेणिक के वचनों को, आकर्ण्य = सुनकर, महावीरः = भगवान् महावीर, तम् = श्रेणिक को, अब्रवीत् = बोले, संसारिणाम् = संसारी जीवों का, अपि = भी, शिवम् = मोक्ष, यथा = जिस प्रकार, स्यात् = होवे, तत् = वह मोक्षप्राप्त्युपाय को, तथा = उसी प्रकार, शृणु = सुनो।

श्लोकार्थ - राजा श्रेणिक के ऐसे वचनों को सुनकर भगवान् महावीर से बोले, हे राजन्! संसारियों को जैसे मोक्ष प्राप्त होता है उसे तुम वैसे ही सुनो।

यात्रा सम्मेदशैलस्थ भावतो यैर्नरैः कृता ।

सर्वार्थसिद्धिसंयुक्ता मुक्तिस्तेषां करे स्थिता ॥८॥

अन्वयार्थ - यैः नरैः = जिन मनुष्यों द्वारा, भावतः = भावना से,

सम्मदशैलस्य = सम्मदशिखर पर्वत की, यात्रा = तीर्थवन्दना, कृता = की गई, (वर्तते = है), तेषां = उन मनुष्यों के, करे = हाथ में, सर्वार्थसिद्धिसंयुक्ता = सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र पद प्राप्ति पूर्वक, मुक्तिः = मोक्षोपलब्धि, स्थिता = ठहर जाती है।

श्लोकार्थ - भगवान् महावीर ने कहा कि हे राजन्! जो लोगों द्वारा सच्ची भावना से सम्मदाचल शिखर की तीर्थवन्दना की जाती है, उन मनुष्यों को सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र होने के बाद मुक्ति हो जाती है, मानों उनके हाथ में मुक्ति स्थित हो जाती है।

आदौ सिद्धवरस्तत्र कूटः प्रथितः उत्तमः।

तत्र स्थितो जितस्वामी केवलेन शिवं गतः ॥६॥

अन्वयार्थ - तत्रा = उस सम्मदशिखर पर्वत पर, आदौ = प्रारंभ में, उत्तमः = श्रेष्ठ, सिद्धवरः = सिद्धवर कूट नामक, कूटः = टोंक, प्रथितः = विख्यात, (वर्तते = है), तत्र = उस टोंक पर, केवलेन = केवलज्ञान सहित, शिवं गतः = मुक्त हुये, सिद्ध दशा को प्राप्त, अजितस्वामी = तीर्थङ्कर अजितनाथ, स्थितः = प्रतिष्ठित, (अस्ति = है)।

श्लोकार्थ - सम्मदशिखर पर्वत पर सर्वप्रथम सिद्धवरकूट नामक श्रेष्ठ टोंक विख्यात है। उस टोंक पर ही, केवलज्ञान सहित सिद्धालय को गये तीर्थङ्कर अजितनाथ स्वामी के चरण प्रतिष्ठित हैं।

सगरेण कृता यात्रा प्रथमं चक्रवर्तिना।

तत्कथां शृणु राजेन्द्र! प्रथितां भूमिमण्डले ॥१०॥

अन्वयार्थ - प्रथमं = सबसे पहिले, चक्रवर्तिना = चक्रवर्ती, सगरेण = सगर द्वारा, यात्रा = तीर्थवन्दना, कृता = की गई थी, राजेन्द्र! = हे राजन् श्रेणिक!, भूमिमण्डले = पृथ्वी पर, प्रथितां = प्रसिद्ध हुई, तत्कथां = उस कथा को, (त्वं = तुम), शृणु = सुनो।

श्लोकार्थ - इस युग में सर्वप्रथम सम्मेदशिखर की तीर्थयात्रा चक्रवर्ती सगर ने की थी। हे राजन् श्रेणिक! पृथ्वी पर सुप्रसिद्ध उस कथा को तुम सुनो।

पूर्वाख्योऽस्ति विदेहोऽत्र जम्बूद्वीपे महोत्तमः।

तत्र सीता नदी रम्या दर्शनात्कल्मषापहा ॥११॥

तस्या दक्षिणदिग्भागे वत्साख्यो देश उत्तमः।

तत्र पृथ्वीपुरं धर्मवार्ताभिः सफलं कृतम् ॥१२॥

अन्वयार्थ - अत्र = यहाँ, जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, महोत्तमः = अत्यधिक उत्तम, पूर्वाख्यः विदेहः = पूर्वविदेह नामक, (क्षेत्र = क्षेत्र), अस्ति = है, तत्र = उस विदेह क्षेत्र में, दर्शनात् = दर्शन से, कल्मषापहा = पापों को दूर करने वाली, रम्या = रमणीय, सीता = सीता नाम वाली, नदी = एक नदी (अस्ति = है), तस्याः = उस नदी के, दक्षिणदिग्भागे = दक्षिणदिशारूपी भाग में, वत्साख्यः = वत्स नामक, उत्तमः = श्रेष्ठ, देशः = देश, (अस्ति = है), तत्र = उस देश में, पृथ्वीपुरं = पृथ्वीपुर नामक नगर, (अस्ति = है), (तत् = उसे), धर्मवार्ताभिः = धर्म सम्बन्धी चर्चाओं से, (तत्रत्यैः = वहाँ के, जनैः = लोगों द्वारा), सफलां = फल युक्त या सार्थक, कृतम् = किया।

श्लोकार्थ - इस जम्बूद्वीप में अत्यधिक उत्तम विदेह क्षेत्र है। उसमें सीता नामक एक अत्यंत रम्या नदी है जिसके दर्शन से पाप दूर होते हैं। उस नदी की दक्षिण दिशा में वत्स नामक एक श्रेष्ठ देश है जिसमें पृथ्वीपुर नगर है। जिसे वहाँ के लोगों ने धर्म चर्चाओं से सफल कर दिया है।

तत्र सम्यक्त्वसम्पन्नो जयसेनो महीपतिः।

धर्मभावः सदा यस्य सुबुद्धिः स महान् अभूत् ॥१३॥

अन्वयार्थ - तत्र = पृथ्वीपुर में, सम्यक्त्वसम्पन्नः = सम्यग्दृष्टि, महीपतिः = राजा, जयसेनः = जयसेन, यस्य = जिसका, धर्मभावः = धर्मभाव, सदा = हमेशा, (वृद्धिगतोऽवर्तत = बढ़ता हुआ था),

(इति = इस प्रकार), सुबुद्धिः = बुद्धिसम्पन्न, सः = वह राजा जयसेन, महान् = महान्, अभूत् = हो गया था।

श्लोकार्थ - पृथ्वीपुर नगर में सम्यग्दृष्टि राजा जयसेन राज्य करता था उसका, धर्मानुराग निजन्तर बुद्धिमान होता था, जिससे वह बुद्धिमान् राजा महान् बन गया था।

जयसेना तस्य देवी सती गुणवती तथा ।

द्वयोर्बभूवतुः पुत्रौ द्वावेव शुभलक्षणौ ॥१४॥

अन्वयार्थ - तस्य = उस राजा की, देवी = पत्नी, गुणवती = गुणों से परिपूर्ण, तथा = और, सती = शीलवती, जयसेना = जयसेना रानी, (आसीत् = थी), द्वयोः = उन दोनों अर्थात् जयसेन और जयसेना के, शुभलक्षणौ = शुभ लक्षणों वाले, द्वौ = दो, एव = ही, पुत्रौ = पुत्र, (आस्ताम् = थे)।

श्लोकार्थ - उस राजा की जयसेना नामक, शीलवती और गुणवती रानी थी। राजा जयसेन और रानी जयसेना के शुभलक्षणों वाले दो ही पुत्र थे।

धृतिषेणोऽग्रजस्तद्विषेणोऽनुजः स्मृतः ।

दम्पत्याभ्यां प्रजाभ्यस्तौ दधतुः सुखमुत्तमम् ॥१५॥

अन्वयार्थ - (तत्र = उन दोनों पुत्रों में), अग्रजः = बड़ा भाई, धृतिषेणः = धृतिषेण, तद्विषेणः = उसका रविषेण, अनुजः = छोटा भाई, स्मृतः = याद रखे गये हैं, तौ = वे दोनों, दम्पत्याभ्यां = राजा रानी के लिये, प्रजाभ्यः = प्रजा के लिये, उत्तमं = उत्तम, सुखं = सुख को, दधतुः = धारण करते थे।

श्लोकार्थ - राजा के दोनों पुत्रों में धृतिषेण बड़ा भाई और रविषेण छोटा था। वे दोनों राजा रानी और प्रजा के लिये उत्तम सुख को धारण करते थे अर्थात् उनके सुखी होने का कारण थे।

धर्मवन्तौ भाग्यवन्तौ भोगवन्तौ बभूवतुः ।

तौ कर्मवशतो मृत्युमेकोऽगादनुजस्तदा ॥१६॥

अन्वयार्थ - तौ = वे दोनों भाई, धर्मवन्तौ = धर्मवान्, भाग्यवन्तौ = भाग्यवान्, भोगवन्तौ = भोग वैभव सम्पन्न, बभूवतुः = थे, कर्मवशतः = कर्मोदय के अनुसार, तदा = तब, एकः = अकेला, अनुजः = छोटा भाई, रविषेण, मृत्युं = मरण को, अगात् = प्राप्त हो गया।

श्लोकार्थ - दोनों ही भाई धर्म रूचि वाले, भाग्यशाली और भोग वैभव आदि से सम्पन्न थे। तभी कर्मोदय के कारण से एक अर्थात् छोटा भाई रविषेण मृत्यु को प्राप्त हो गया।

ततः सम्मूर्च्छितो राजा मन्त्रिभिः प्रतिबोधितः ।

तदा सम्प्राप्य चैतन्यं विरक्तस्तद्गुणादभूत् ॥१७॥

अनुप्रेक्षां हृदि संस्थाप्य द्वादशायं ततोऽचिरम् ।

ज्येष्ठपुत्राय तद्राज्यं दत्त्वा समगृहीतपः ॥१८॥

अन्वयार्थ - ततः = उसके मर जाने से, राजा = राजा जयसेन, सम्मूर्च्छितः = बेहोश, (अभवत् = हो गया), तदा = तब, मन्त्रिभिः = मन्त्रियों द्वारा, प्रतिबोधितः = उपचार किया हुआ पुनः होश में लाया हुआ, चैतन्यं = होश को, सम्प्राप्य = पाकर, तद्गुणात् = उसी कारण अर्थात् पुत्र मरण के कारण से अथवा मन्त्रियों के समझाने रूप गुण से, विरक्तः = विरक्त अर्थात् संसार से उदासीन, अभूत् = हो गया, ततः = तदनन्तर, अयं = इस राजा ने, अचिरं = जल्दी ही, हृदि = हृदय में, द्वादश = बारह, अनुप्रेक्षां = भावनाओं को, संस्थाप्य = स्थापित करके, ज्येष्ठपुत्राय = बड़े बेटे धृतिषेण के लिये, तद्राज्यं = उस राज्य को, दत्त्वा = देकर, तपः = तपश्चरण, समगृहीत् = अङ्गीकार कर लिया।

श्लोकार्थ - रविषेण के मर जाने पर राजा मूर्च्छित हो गया तो वह मन्त्रियों द्वारा पुनः प्रतिबोधित किया गया अर्थात् होश में लाया गया, तब होश आ जाने पर यह राजा पुत्र मरण के कारण से अथवा मन्त्रियों के उपदेश से संसार से उदासीन हो गया और उसने

जल्दी ही अपने मन में बारह भावनाओं का चिन्तन कर बड़े बेटे धृतिषेण को राज्य देकर तपश्चरण अङ्गीकार कर लिया।

समुत्साह्य वनं गत्वा यशोधरसमीपतः ।
 दीक्षां गृहीत्वा केशानां लुञ्चनं पञ्चमुष्टिभिः ॥१६॥
 कृत्वा पञ्च महाध्याननिव्रतानि समितीस्तदा ।
 पञ्च वाथ त्रिगुप्तीश्च प्रमोदात्सन्धारयत् ॥१७॥
 तपः कृत्वायुषश्चान्ते सन्यासं प्राप्य चोत्तमम् ।
 देवोऽभूत्षोडशे कल्पे नामतोऽयं महाबलः ॥१८॥

अन्वयार्थ - अथ = इसके बाद, समुत्साह्य = सम्यक् प्रयत्न करके, (असौ = राजा), वनं = जङ्गल, गत्वा = जाकर, यशोधरसमीपतः = यशोधर मुनिराज के पास, दीक्षां = मुनिदशा की दीक्षा को, गृहीत्वा = लेकर, पञ्चमुष्टिभिः = पांच मुष्टियों से, केशानां = बालों का, लुञ्चनं = लुञ्चन, कृत्वा = करके, पञ्च = पाँच, महाध्याननिव्रतानि = प्रमुख पूर्ण महाव्रतों को, पञ्च = पांच, समितीः = समितियों को, च = और त्रिगुप्तीः = तीन गुप्तियों को, प्रमोदात् = प्रमोद-प्रसन्न भाव से, सन्धारयत् = धारण किया, वा = और, अयं = इन्होंने, तपः = तपश्चरण, कृत्वा = करके, आयुषः = आयु के, अन्ते = अंतिम समय में, उत्तमं = उत्तम, सन्यासं = सन्यासमरण को, प्राप्य = प्राप्त कर, षोडशे = सोलहवें, कल्पे = स्वर्ग में, नामतः = नाम से, महाबलः = महाबल, देवः = देव, अभूत् = हुआ।

श्लोकार्थ - बड़े पुत्र को राज्य देकर उस राजा ने, सम्यक् प्रयत्न पूर्वक वन में जाकर यशोधर मुनिराज के पास मुनिदीक्षा लेकर, पांच मुष्टियों से केश लोंच करके पूर्णता प्राप्त कराने वाले अहिंसादि प्रमुख पंच महाव्रतों को पांच समितियों को और तीन गुप्तियों को अङ्गीकार किया अर्थात् उनके पालन करने में लग गया तथा आयु पूर्ण होने के समय उत्तम संन्यास मरण को प्राप्तकर सोलहवें स्वर्ग में महाबल नामक देव हो गया।

द्वात्रिंशत्सागरायुश्च तत्प्रमाणसहस्रतः ।
 वर्षेभ्यः परमाहारं मानसं समुपाहरत् ॥२२॥
 द्वात्रिंशत्पक्षगमने श्वासोच्छ्वासं गतोभवन् ।
 इत्थं तत्र महानन्दभृद् भूत्वान्ते स चायुषः ॥२३॥
 तद्भोगेभ्यः महद्भ्योऽपि ह्यनाकृष्टः स देवराट् ।
 कर्मक्षयं विचिन्त्यापि भूमाववतितीर्षुताम् ॥२४॥

अन्वयार्थ - च = और, तत्र = वहाँ, द्वात्रिंशत्सागरायुः = बत्तीस सागर की आयु वाला होकर, तत्प्रमाणसहस्रतः = आयु के बराबर प्रमाण में उतने हजार अर्थात् बत्तीस हजार, वर्षेभ्यः = वर्षों से, मानसं = केवल मानसिक, परमाहारं = उत्कृष्ट अमृत आहार को, समुपाहरत् = लेता था, द्वात्रिंशत्पक्षगमने = तेतीस पखवाड़े बीत जाने पर, श्वासोच्छ्वासं = श्वासोच्छ्वास को, गतः = प्राप्त, भवन् = होता हुआ, सः = वह महाबल नामक देव, इत्थं = इस प्रकार, महानन्दभृत् = महान् आनन्द से परिपूर्ण, भूत्वा = होकर, आयुषः = आयु के, अन्ते = अन्त में, महद्भ्यः भोगेभ्यः = विपुल भोगों से, अपि = भी, अनाकृष्टः = आकृष्ट न होता हुआ, सः = वह, देवराट् = देवराज अहमिन्द्र, कर्मक्षयं = कर्मों के क्षय को, अपि = भी, विचिन्त्या = सोचकर, भूमौ = पृथ्वी पर, अवतितीर्षुताम् = अवतरित होने का इच्छुक हुआ ।

श्लोकार्थ - सोलहवें स्वर्ग में महाबल बत्तीस सागर प्रमाण आयु वाला था । बत्तीस हजार वर्षों के बाद वह मात्र इच्छारूप उत्कृष्ट अमृत का आहार किया करता था । बाईस पक्ष बीतने पर श्वासोच्छ्वास को प्राप्त हुआ वह उस स्वर्ग में महान् आनन्द से परिपूर्ण होकर रहता था । इस प्रकार आयु का अन्तिम समय आने पर उस देवराज ने महान् या विपुल भोगों से भी अपने को दूर रखकर अर्थात् अनाकृष्ट रहते हुये, कर्मों के क्षय का विचारकर भूतल पर अवतरित होने की इच्छा वाला हुआ ।

जम्बूद्वीपे शुभक्षेत्रे भारते चार्यखण्डके ।
 कौशलाख्ये महादेशे अयोध्यानाम सत्पुरे ॥२५॥
 समुद्रविजयो नाम राजाभूत्किल धार्मिकः ।
 सुबला नाम तद्देवी सरनेहौ तौ बभूवतुः ॥२६॥
 इक्ष्वाकुवंशसम्भूतः सोऽयं काश्यपगोत्रजः ।
 समुद्रविजयवत्तस्य गेहे देवो महाबलः ॥२७॥
 स्वर्गाच्च्युतश्च समभूत् पुत्रः परमधर्मभूत् ।
 नाम्ना सगरः इत्युक्तस्तेजस्वी विक्रमाम्बुधिः ॥२८॥
 लक्षसप्ततिपूर्वाणामस्य चायुः प्रकीर्तितम् ।
 घतुःशतानां सार्धानां धनुषामुच्छ्रिता स्मृता ॥२९॥
 बाल्येऽष्टादशलक्षोक्तपूर्वाण्यस्यायुषो नृपः ।
 गतानि चक्रवर्तित्वं तदासौ प्राप्तवान् किल ॥३०॥

अन्वयार्थ - जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, शुभे = शुभ, भारते = भरत, क्षेत्रे = क्षेत्र में, आर्यखण्डके = आर्य खण्ड में, कौशलाख्ये = कौशल नामक, महादेशे = महान् देश में, अयोध्यानामसत्पुरे = अयोध्या नामक उत्तम नगर में, समुद्रविजयः नाम = समुद्रविजय नामक, धार्मिकः = धार्मिक वृत्ति वाला, राजा = राजा, अभूत् = था, किल = जैसा बतलाया गया है, तद्देवी = उसकी रानी, सुबला नाम = सुबला नामक, (आसीत् = थी), तौ = वे दोनों, सस्नेहौ = परस्पर स्नेहशील, बभूवतुः = थे, सः अयं = वही यह, समुद्रविजयः = समुद्रविजय, इक्ष्वाकुवंशसम्भूतः = इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न, काश्यपगोत्रजः = काश्यपगोत्रीय, (आसीत् = था), तस्य = उस समुद्रविजय के, गेहे = घर में, महाबलः = महाबल नामक, देवः = देव, स्वर्गात् = स्वर्ग से, च्युतः = च्युत होता हुआ, पुत्रः = पुत्र, समभूत् = हुआ, परमधर्मभूत् = परमधर्म को धारण करने वाला, विक्रमाम्बुधिः = पराक्रम में सागर के समान, तेजस्वी = कान्तिसम्पन्न, (सः = वह), सगरः = सगर, इति नाम्ना

= इस नाम से, उक्तः = कहा गया, अस्य = उसकी, आयुः = आयु, सत्तरलाखपूर्वाणि = सत्तर लाख पूर्व की, प्रकीर्तितम् = कही गयी है, च = और, उच्छ्रिता = ऊँचाई, सार्धानां = आधे सहित, चतुशतानां = चार सौ, धनुषां = धनुष की, स्मृता = स्मरण की गयी है, बाल्ये = बाल्यकाल में, अस्य = इसकी, आयुषः = आयु के, अष्टादशलक्षोक्तपूर्वाणि = कुल उक्त आयु के अठारह लाख पूर्व, गतानि = बीत गये, तदा = तब, असौ = उस, नृपः = राजा ने, किल = निश्चय ही, चक्रवर्तित्वं = चक्रवर्तीपने को, प्राप्तवान् = प्राप्त कर लिया था।

श्लोकार्थ - जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में, शुभ आर्य खण्ड में, कौशल नामक महान् देश में, अयोध्या नामक उत्तम नगर में समुद्रविजय नामक एक धार्मिक राजा था, उसकी पत्नी सुबला थी, दोनों ही परस्पर स्नेह के साथ रहते थे। यह समुद्रविजय राजा इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न काश्यपगोत्रीय था। जिसके घर में महाबल नामक देव स्वर्ग से च्युत होकर पुत्र हुआ। यह धर्म भावना से भरपूर परमधर्म को धारण करने वाला था, परम तेजस्वी और पराक्रम का सागर था अतः यह 'सगर' इस नाम से कहा गया अर्थात् उसका नाम सगर रखा गया। इसकी आयु सत्तरलाख पूर्व की बतायी गयी है तथा शरीर की ऊँचाई साढ़े चार सौ धनुष की बतायी जाती है। इसकी आयु के जब अठारह लाख पूर्व बाल्यकाल में व्यतीत हो गये तो उसे चक्रवर्ती पद निश्चय ही प्राप्त हो गया था।

घक्रादिशुभरत्नानि चतुर्वशमितानि च ।

निधयो नव तद्वच्च सम्प्राप्तास्तेन चक्रिणा ॥३१॥

षडुत्तरनवत्युषससहस्रप्रमिताः शुभाः ।

राज्ञस्तस्य समाख्याता राज्ञयः सौन्दर्यनिर्भराः ॥३२॥

अन्ययार्थ - तेन = उस, चक्रिणा = चक्रवर्ती ने, चतुर्वशमितानि = चौदह

तक, चक्रादिशुभरत्नानि = चक्र आदि शुभ रत्नों को, च = और, तद्वत् = उन रत्नों के समान शुभ, नव = नौ, निधयः = निधियां, सम्प्राप्ताः = प्राप्त की, तस्य = उस, राज्ञः = राजा की, षडुत्तरनवत्युक्तसहस्रप्रमिताः = परिमाण में छियानवे हजार, सौन्दर्यनिर्भराः = अतिशय सौन्दर्य से सम्पन्न, शुभाः = शुभ लक्षणों वाली, राज्ञयः = रानियां, समाख्याताः = कही गयी हैं।

श्लोकार्थ - सगर चक्रवर्ती ने चक्र आदि चौदह शुभ रत्न और उनके ही समान शुभ नव निधियां प्राप्त कीं। उसकी अतिशय सौन्दर्यवती और शुभलक्षणों वाली छियानवे हजार रानियां कही गयी हैं।

षष्टिसहस्रोक्ततत्पुत्रा

महाबलराक्रमाः ।

लोलाश्याः गणिताः नित्यं तत्राष्टादशकोटिभिः ॥३३॥

चतुः

पराशीतिलक्षगणितैर्मत्तवारणैः ।

सहजाशु

शुभे

धामगतैरिव

धराधरैः ॥३४॥

अन्ययार्थ - महाबलपराक्रमाः = महान् बल और पराक्रम के धारी, षष्टिसहस्रोक्ततत्पुत्राः = साठ हजार उसके पुत्र, (आसन् = थे), तत्र = उसके यहाँ, नित्यं = हमेशा, अष्टादशकोटिभिः = अठारह करोड़ की संख्याओं से, गणिताः = गिने गये, लोलाश्याः = चंचल घोड़े, (तथा च = और) धामगतैः = गजशाला में स्थित, चतुःपराशीतिलक्षगणितैः = चौरासी लाख की संख्या से गिने गये, मत्तवारणैः = मदोन्मत्त हाथी, धराधरैः इव = मानों पर्वतों के समान, सहजाशुशुभे = अच्छी तरह से सुशोभित होते थे।

श्लोकार्थ - सगर चक्रवर्ती के महान् बल और पराक्रम के धारी साठ हजार बेटे थे तथा उसके यहाँ हमेशा ही अठारह करोड़ घोड़े और चौरासी लाख मदोन्मत्त हाथी थे जो मानों चक्रवर्ती के धाम में पर्वतों के प्रवेश की शोभा को धारण करते थे अर्थात् सुशोभित होते थे।

कतिचिद्देवतासार्धं तस्य विद्याधरास्तथा ।

महासमर्थास्तैर्युक्तः सगरो राज्यमन्वभूत् ॥३५॥

अन्वयार्थ - तस्य = उस चक्रवर्ती की, (आज्ञां = आज्ञा को) देवतासार्धं = देवताओं के साथ, कतिचित् = कितने ही, महासमर्थाः = अत्यधिक सामर्थ्य वाले, विद्याधराः = विद्याधर, (अपि = भी), (स्वीकुर्वन्ति स्म = स्वीकार करते थे) तथा = और, तैः = उन सभी से, युक्तः = युक्त अर्थात् मिलकर, सगरः = सगर चक्रवर्ती, (अपि = भी), राज्यम् = राज्य को, अन्वभूत् = अनुभव करता था अर्थात् उसके आनंद को भोगता था ।

श्लोकार्थ - उस चक्रवर्ती की आज्ञा को देवताओं के साथ कितने ही अत्यधिक सामर्थ्य वाले विद्याधर भी मानते थे तथा वह भी उनसे मित्रता रखकर राज्य सुख को भोगता था ।

एकदा भूतपोद्याने चारणौ द्वौ समागतौ ।

अजितंजय एकोऽभून्नाम्नान्यश्चामितञ्जयः ॥३६॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक बार, भूतपोद्याने = भूतप नामक उद्यान में, द्वौ = दो, चारणौ = चारण ऋद्धिधारी मुनिराज, समागतौ = आये थे, (तयोः = उनमें), एकः = एक, अजितंजयः = अजितंजय मुनिराज, अन्यश्च = और दूसरे, अमितंजयः = अमितंजय मुनिराज, अभूत् = थे ।

श्लोकार्थ - एक बार भूतप नामक उद्यान में दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराज आये । जिनमें एक मुनिराज अजितंजय और दूसरे मुनिराज अमितंजय थे ।

श्रुत्वा तावागतौ राजा हर्षेण महतोत्सुकः ।

तत्र गत्वा चिरं भूयः शिरसा प्रणनाम सः ॥३७॥

अन्वयार्थ - तौ = वे दोनों मुनिराज, आगतौ = आये हैं, (इति = ऐसा), श्रुत्वा = सुनकर, हर्षेण = हर्ष से, महतोत्सुकः = महान् हुआ, सः = उस, राजा = चक्रवर्ती सगर ने, तत्र = वहाँ, भूतप

उद्यान में, गत्वा = जाकर, भूयः = बार-बार, शिरसा = सिर से, (तौ = उन दोनों मुनिराजों को) चिरं = बहुत देर तक, प्रणनाम = प्रणाम किया।

श्लोकार्थ - वे दोनों मुनिराज तपोवन में आये हैं— ऐसा सुनकर हर्ष से अत्यधिक प्रसन्न राजा चक्रवर्ती सगर ने उद्यान में जाकर सिर झुकाकर बार-बार उन मुनिराजों को बहुत देर तक प्रणाम किया।

प्रणम्य पश्चात्संपूज्य विधिवत्सुखमाश्रितः ।

बद्धाञ्जलिस्तौ पप्रच्छ मनोभावं प्रकाशयन् ॥३८॥

अन्वयार्थ - तौ = उन दोनों मुनिराजों को, प्रणम्य = प्रणाम कर, पश्चात् = बाद में, विधिवत् = विधिपूर्वक, संपूज्य = पूजा करके, सुखं = सुख का, आश्रितः = आश्रय लिये हुये, बद्धाञ्जलिः = हाथ जोड़े हुये, मनोभावं = मन गत भाव को, प्रकाशयन् = प्रकट करते हुये, (सः = उस राजा ने), तौ = दोनों मुनिराज से, पप्रच्छ = पूछा।

श्लोकार्थ - दोनों चारण ऋद्धिधारी मुनिराजों को प्रणाम करके और विधिसहित उनकी पूजा करके प्रसन्नचित्त होते हुये, हाथ जोड़े हुये व मन की बात प्रकट करते हुये उस राजा ने मुनिराजों से पूछा।

यदिनादजितेशस्य मोक्षः सम्मेदपर्वते ।

श्रुतो मया मुने! तस्मादिनादत्युत्सुकं मनः ॥३९॥

अन्वयार्थ - मुने = हे मुनिराज!, यदिनात् = जिस दिन से, सम्मेदपर्वते = सम्मेदशिखर पर, अजितेशस्य = तीर्थङ्कर अजितनाथ का, मोक्षः = निर्वाण, मया = मेरे द्वारा, श्रुतः = सुना गया है, तस्मात् = उस, दिनात् = दिन से, (मे = मेरा), मनः = मन, अति = अत्यधिक, उत्सुकं = उत्कण्ठित, भवति = हो रहा है।

श्लोकार्थ - हे मुनिराज! जिस दिन से सम्मेदाचल पर्वत पर तीर्थङ्कर अजितनाथ का मोक्ष मैंने सुना है, उसी दिन से मेरा मन सम्मेदाचल की यात्रा के लिये अत्यधिक उत्सुक हो रहा है।

सम्मेदशैलयात्रायै यात्राविधिरिहोच्यताम् ।

क्रियते केन विधिना कथं किं फलमाप्यते ॥४०॥

अन्वयार्थ - इह = यहाँ, मुनिराज! = हे मुनिराज!, सम्मेदशैलयात्रायै = सम्मेदशिखर पर्वत की यात्रा के लिये, यात्राविधिः = तीर्थवन्दना का तरीका, उच्यताम् = कहें, केनविधिना = किस रीति से, (सा = वह यात्रा), क्रियते = की जाती है, कथं = कैसे, किं = क्या, फलं = फल, आप्यते = प्राप्त किया जाता है।

श्लोकार्थ - हे मुनिराज! अब आप यहाँ सम्मेदशिखर यात्रा के लिये तीर्थवन्दना की विधि बतायें। सम्मेदशिखर तीर्थ की वन्दना किस रीति से की जाती है तथा कैसे और क्या फल तीर्थयात्रियों द्वारा पाया जाता है।

नृपवाक्यमिति श्रुत्वा चारणो मुनिरब्रवीत् ।

धन्योसि भाग्यजलधे त्वत्समः को महीतले ॥४१॥

यतः सम्मेदशैलेन्द्रयात्रायै त्वं महोत्सुकः ।

शृणु राजेन्द्र! तद्यात्राविधिं फलमिहोत्तमम् ॥४२॥

अन्वयार्थ - इति = इस प्रकार, नृपवाक्यम् = राजा के वचन को, श्रुत्वा = सुनकर, चारणो मुनिः = चारण ऋद्धिधारी मुनिराज, अब्रवीत् = बोले, भाग्यजलधे! = हे भाग्यशाली!, महीतले = पृथ्वी पर, त्वत्समः = तुम्हारे समान, कः = कौन, (स्यात् = होगा), धन्यः = धन्यभाग, असि = हो, (त्वम् = तुम), यतः = क्योंकि, सम्मेदशैलेन्द्रयात्रायै = सम्मेदशिखर रूपी गिरिराज की यात्रा के लिये, त्वं = तुम, महोत्सुकः = अत्यधिक उत्कण्ठित, (असि = हो), राजेन्द्र! = हे राजन तद्यात्राविधिं

= उसकी यात्रा विधि को, (च = और), उत्तमं = श्रेष्ठ, फलं = फल को, इह = यहाँ, शृणु = सुनो।

श्लोकार्थ - इस प्रकार राजा के वचन सुनकर चारणवृद्धिधारी मुनिराज बोले — हे गंभीर भाग्य वाले! तुम्हारे समान इस पृथ्वीमंडल पर कौन होगा सचमुच तुम धन्यभाग्य हो क्योंकि तुम सम्मैदशिखर गिरिराजा की यात्रा के लिये अत्यधिक उत्सुक हो। हे राजेन्द्र! अब यहाँ तुम उसकी यात्रा विधि को और यात्रा से प्राप्त उत्तम फल को सुनो।

यात्रोन्मुखो भव्यजीवः प्रथमं सिद्धवन्दनाम् ।

विधाय विधिवद् भूप चतुःसंधान् प्रपूज्य च ॥४३॥

सत्कारैः सार्धगान् कृत्वा कुर्याद्यात्रां च शैखरीम् ।

यतयश्चार्यिकारस्तद्वच्छ्रावकाः श्राविकास्तथा ॥४४॥

चतुःसंधाः समाख्याताः सानियोगाः शुचिव्रताः ।

यस्तु मोक्षफलाकाङ्क्षी तितीर्षु मोहसागरम् ॥४५॥

अन्वयार्थ - भूप! = हे राजन्, यात्रोन्मुखः = यात्रा करने के लिये तैयार और उत्सुक, भव्यजीवः = भव्यजीव, प्रथमं = सबसे पहिले, सिद्धवन्दनां = सिद्धभगवन्तों की वन्दना, विधाय = करके, च = और, विधिवत् = विधिपूर्वक, चतुःसंधान् = चारों संधों को, प्रपूज्य = पूजकर, सत्कारैः च = और सत्कारों से, (तान् = उनको), सार्धगान् = साथ चलने वाला, कृत्वा = करके, शैखरी = सम्मैदशिखर सम्बन्धी, यात्रां = तीर्थवन्दना रूप यात्रा को, कुर्यात् = करे।

यतयः = मुनिजन, आर्यिकाः = आर्यिकार्यें, तथा च = और, तद्वत् = उसके समान, श्रावकाः = श्रावक, श्राविकाः = श्राविकार्यें, (इति = इस प्रकार), चतुःसंधाः = चारों सङ्घ, सानियोगाः = नियोग अर्थात् नियमपालन की वृत्ति सहित, शुचिव्रताः = निर्मलव्रत धारण करने रूप, समाख्याताः = कहे गये हैं, यः = जो, मोहसागरं = मोह रूपी समुद्र को, तितीर्षुः

= तैरने की इच्छा करने वाला, मोक्षफलाकाङ्क्षी = मोक्ष रूपी फल को चाहने वाला, (अस्ति = है, सः = वह)।

श्लोकार्थ - हे राजन्! सम्मेदशिखर की तीर्थयात्रा के लिये तैयार और उत्सुक भव्यजीव सबसे पहिले सिद्धभगवन्तों की वन्दना करके और विधिवत् अर्थात् यथायोग्य ढंग से चारों संघों की पूजा करके बहुत सत्कार सहित चारों संघों के साथ होकर सम्मेदशिखर पर्वत की तीर्थवन्दना यात्रा करे।

चारों संघ मुनिराज आर्यिका और इसी प्रकार गृहस्थ की जपेक्षा श्रावक—श्राविका के रूप में कहे गये हैं। ये चारों ही संघ नियम पालन करने रूप वृत्ति से सहित और निर्मलव्रत धारण करने वालों के कहे गये हैं। जो कोई भी मोहसागर को तैरने का इच्छुक है और मोक्षरूपी फल को चाहने वाला है वह इस प्रकार आगे बताये अनुसार सम्मेदाचल तीर्थराज की वन्दना करें।

स श्वेतवस्त्रमादाय कुर्यात्सम्मेदयात्रिकाम्।
 पुत्राभिलाषी योऽनित्यं स भूत्वा पीतवस्त्रकः ॥४६॥
 सम्मेदयात्रां कुर्वीत सुपुत्रप्राप्तये ध्रुवम्।
 रोगार्तः कृष्णवस्त्राणि धृत्वा चेद्यात्रिको भवेत् ॥४७॥
 दिनैः कतिपयैरेव स रोगोऽरोगतां व्रजेत्।
 सम्मेदयात्रिकश्चेद्धि शोकं कुत्रापि नाप्नुयात् ॥४८॥
 लक्ष्मीकामोनरो यस्तु स धृत्वा रक्तवाससी।
 सम्मेदशैलराजस्य यात्रां कुर्यात्प्रयत्नतः ॥४९॥

अन्वयार्थ - (यः मोक्षफलाकाङ्क्षी = जो मोक्षफल का आकांक्षी, स्यात् = हो), सः = वह, श्वेतवस्त्रं = सफेद वस्त्र को, आदाय = पहिनकर, सम्मेदयात्रिकां = सम्मेदाचल की वन्दना करने वाली यात्रा को, कुर्यात् = करे, यः = जो, पुत्राभिलाषी = पुत्र का इच्छुक, सः = वह, नित्यं = निश्चय ही, पीतवस्त्रकः = पीले वस्त्र धारण करने वाला, भूत्वा = होकर, सम्मेदयात्रां

= सम्मेदशिखर तीर्थ की यात्रा को, सुपुत्रप्राप्तये = सुपुत्र की प्राप्ति के लिये, ध्रुवं = निश्चित ही, कुर्वीत = करे, रोगार्तः = रोग से पीड़ित, चेत् = यदि, कृष्णवस्त्राणि = काले वस्त्र, धृत्वा = धारण करके, यात्रिकः = यात्रा करने वाला, भवेत् = होवे, (तर्हि = तो), कतिपयैः एव = कुछ ही, दिनैः = दिनों, (सह = के साथ), सारोगः = रोग वाला, अरोगतां = रोगरहित दशा को, ब्रजेत् = पहुँच जाये या पा जाये, च = और, चेत् = यदि, सम्मेदयात्रिकः = सम्मेदशिखर की यात्रा वाला, (कश्चित् = कोई), कुत्रापि = कहीं पर भी, शोकं = शोक को, न = नहीं, हि = ही, आप्नुयात् = पाये, यः = जो लक्ष्मीकामः = धन चाहने वाला, नरः = मनुष्य, (अस्ति == है), तु = तो, सः = वह, रक्तवाससी = ताम्रवर्णीय वस्त्रों को, धृत्वा = धारण करके, सम्मेदशैलराजस्य = पर्वतराज सम्मेदशिखर की, यात्रां = यात्रा को, प्रयत्नतः = प्रयत्न से, कुर्यात् = करे।

श्लोकार्थ - जो मोक्षफल को चाहने वाला है वह श्वेत वस्त्र पहिनकर सम्मेदशिखर की यात्रा करे। जो पुत्र चाहने वाला है वह सुपुत्र की प्राप्ति के लिये पीले वस्त्र धारण करके सम्मेदशिखर की यात्रा करे। यदि रोग से पीड़ित काले वस्त्र धारण कर यात्रा करने वाला होवे तो कुछ ही दिन बाद वह सारोगी निरोगता को प्राप्त होवे। तथा यह भी कि जो सम्मेदशिखर की यात्रा करने वाला है वह कहीं पर शोक को प्राप्त नहीं होवे। जो लक्ष्मी चाहने वाला है वह ताम्रवर्णीय वस्त्र धारण कर पर्वतराज सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र की यात्रा प्रयत्न पूर्वक करे।

इत्थं चारणसद्वाक्यं श्रुत्वा हर्षसमन्वितः।

सगरश्चक्रवर्त्येव

पुनर्वचनमब्रवीत् ॥५०॥

अन्वयार्थ - इत्थं = इस प्रकार, चारणसद्वाक्यं = चारण ऋद्धिधारी मुनिराज के सम्यक् वचनों को, श्रुत्वा = सुनकर, हर्षसमन्वितः = हर्ष से आनन्दित, एषः = यह, चक्रवर्ती = चक्रवर्ती, सगरः

= सगर, पुनः = फिर से, वचनं = वचन को, अब्रवीत् = बोला ।

श्लोकार्थ - चारणव्रद्धिधारी मुनिराज के ऐसे वचन सुनकर हर्ष से आनन्दित यह सगर चक्रवर्ती पुनः वचन बोलने लगा ।

श्रीमतो जितनाथस्य कथां संक्षेपतो मुने ।

श्रोतुमुत्साहवानस्मि कथयस्व यथाक्रमम् ॥५१॥

अन्वयार्थ - मुने = हे मुनिराज!, (अहं = मैं), संक्षेपतः = संक्षेप से, श्रीमतः = अनन्त लक्ष्मी के धनी, अजितनाथस्य = तीर्थङ्कर अजितनाथ स्वामी की, कथां = कहानी को, यथाक्रमं = क्रमानुसार, श्रोतुं = सुनने के लिये, उत्साहवान् = उत्साह रखने वाला, अस्मि = हूं, (त्वं = तुम), कथयस्व = कहिये ।

श्लोकार्थ - हे मुनिराज! मैं श्रीमान् अनन्तलक्ष्मीपति तीर्थेश अजितनाथ स्वामी की कथा क्रमानुसार संक्षेप से सुनने के लिये आतुर या उत्साहवान् हूं, कृपया उसे कहिये ।

चक्रिवाक्यमिति श्रुत्वा मुखेन्दुरदनांशुभिः ।

ह्लादयन्तन्मनो नूनं मुनिः पुनरुवाच तम् ॥५२॥

अन्वयार्थ - इति = इस प्रकार, चक्रिवाक्यं = चक्रवर्ती के वचन को, श्रुत्वा = सुनकर, मुखेन्दुरदनांशुभिः = जैसे चन्द्रमा अपनी स्वच्छ कान्ति से वैसे ही मुख में दन्त पंक्ति की धवलिम कान्ति से, तन्मनः = चक्रवर्ती के मन को, ह्लादयन् = प्रसन्न करते हुये, मुनिः = मुनिराज, नूनं = निश्चित ही, पुनः = फिर से, तं = उस चक्री को, उवाच = बोले ।

श्लोकार्थ - इस प्रकार चक्रवर्ती के वचन को सुनकर जैसे चन्द्रमा अपनी स्वच्छ कान्ति से लोगों के मन को प्रसन्न करता है वैसे ही अपने मुखरूपी चन्द्र में विद्यमान दांतों की स्वच्छ कान्ति से चक्रवर्ती को प्रसन्न करते हुये मुनिराज निश्चित ही उससे बोले ।

जम्बूद्वीपे विदेहे वै पूर्वस्मिन्साधुसङ्कुले ।

सीतादक्षिणदिग्भागे वत्साख्यो देश उत्तमः ॥५३॥

अन्वयार्थ - जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, पूर्वस्मिन् = पूर्व, विदेहे = विदेहक्षेत्र में, साधुसङ्कुले = साधुओं या सज्जनों से भरा हुआ, सीतादक्षिणदिग्भागे = सीता नदी की दक्षिण दिशा वाले भूभाग में, वत्साख्यः = वत्स नामक, उत्तमः = उत्तम, देशः = देश (आसीत् = था)।

श्लोकार्थ - जम्बूद्वीप के पूर्वविदेहक्षेत्र में साधु सज्जनों से परिपूर्ण सीतानदी के दक्षिण दिशावर्ती भूभाग में, वत्स नामक उत्तम देश था।

सुसीमानगरं तत्र धर्मभृत्सज्जनावृत्तम् ।

तस्मिन् राजा महानासीत् श्रीमान्विमलवाहनः ॥५४॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस वत्स देश में, धर्मभृत् = धर्मात्माओं से पूर्ण, सज्जनावृत्तम् = सज्जनों का निवास स्थान, सुसीमानगरं = सुसीमा नामक नगर (आसीत् = था), तस्मिन् = उस सुसीमा नगर में, महान् = महान्, राजा = राजा, श्रीविमलवाहनः = श्री विमलवाहन, (आसीत् = था)।

श्लोकार्थ - उस वत्स देश के सुसीमानगर का राजा श्री विमलवाहन था। इस नगर का वातावरण धर्ममय था और इसमें सज्जनपुरुष रहते थे।

समयं प्राप्य भूपोऽसौ विरक्तस्तपसे गतः ।

वनं मुनिजनाकीर्णं शुद्धभावसमन्वितः ॥५५॥

अन्वयार्थ - असौ भूपः = वह राजा, समयं = समय, प्राप्य = पाकर, विरक्तः = विरक्त, (भूत्वा = होकर), तपसे = तपस्या के लिये, मुनिजनाकीर्णं = मुनिजनों से भरे हुये, वनं = वन को, गतः = चला गया, शुद्धभावसमन्वितः = शुद्ध भावों से सहित होता हुआ (मुनिः = मुनि, अभवत् = हो गया)।

सम्भाव्य भावनास्तत्र षोडशायं मुनीश्वरः ।

तीर्थकृद् गोत्रसम्पन्नो बभूवाक्रसमप्रभः ॥५६॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस वन में, अयं = यह, मुनीश्वरः = मुनिवर्य, षोडश = सोलह, भावनाः = भावनायें, सम्भाव्य = अच्छी तरह से भाकर, तीर्थकृद्गोत्रसम्पन्नः = तीर्थङ्कर प्रकृति को बांधकर उससे सहित, अक्रसमप्रभः = सूर्य समान प्रखर तेज वाले, बभूव = हो गये थे।

श्लोकार्थ - उस वन में यह मुनिराज सोलहकारण भावना भाकर तीर्थकर प्रकृति को बांधने वाले सूर्य के समान तेज से संयुक्त हो गये।

आयुरन्ते स सन्यासविधिना त्यक्तदेहकः ।

अहमिन्द्रत्वमगमत् विमाने विजयामिधे ॥५७॥

अन्वयार्थ - आयुरन्ते = आयु पूर्ण होने के अन्तिम समय में, सः = वह मुनिराज, सन्यासविधिना = सन्यासमरण पूर्वक, त्यक्तदेहकः = देह को छोड़ने वाले होकर, विजयामिधे = विजय नामक, विमाने = अनुत्तर विमान में, अहमिन्द्रत्वम् = अहमिन्द्र पद को, अगमत् = प्राप्त हुआ।

श्लोकार्थ - उन मुनिराज ने आयु बीतने पर अन्तिम समय में सन्यासमरण पूर्वक देह छोड़ दी और विजय नामक अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र पद प्राप्त कर लिया।

त्रयस्त्रिंशत्सागरायुस्तस्य तत्र बभूव सः ।

तत्प्रमाणसहस्रेषु गतेष्वेषु मानसम् ॥५८॥

आहारमेव जग्राह देवः परमधार्मिकः ।

त्रिंशत्पक्षगमने श्वासोच्छ्वासधरस्तथा ॥५९॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस विजय नामक अनुत्तर विमान में, तस्य = उस देव की, त्रयस्त्रिंशत् = तैतीस, सागरायुः = सागर आयु, बभूव = थी, सः = वह, परमधार्मिकः = परम धर्मात्मा, देवः = देव, एतेषु = इन, तत्प्रमाणसहस्रेषु = तैतीस हजार, (वर्षेषु = वर्ष), गतेषु = बीत जाने पर, मानसं = मानस मात्र, आहारम् = अमृत आहार को, जग्राह = ग्रहण करता था, तथा = और,

त्रित्रिंशत्पक्षगमने = तैत्तीस पक्ष बीतने पर, श्वासोच्छ्वासधरः = श्वासोच्छ्वास लेने वाला, (बभूव = होता था)।

श्लोकार्थ - उस विजय नामक अनुत्तर विमान में उस देव की आयु तैत्तीस सागर थी। वह परमात्मिक दैवता तैत्तीस हजार वर्ष बीत जाने पर मानसिक आहार अर्थात् आहार की इच्छा होने पर कंठ से निसृत अमृत रस का आहार ग्रहण करता था तथा तैत्तीस पक्ष बीतने पर श्वासोच्छ्वास लेता था।

एवं विजयको देवः सर्वकल्मषवर्जितः ।

अन्वभूत्परमं मोदं देवमानवदुर्लभम् ॥६०॥

अन्वयार्थ - एवं = इस प्रकार, (सः = उस), सर्वकल्मषवर्जितः = सर्वविधपाप रहित, विजयकः = विजय विमान में उत्पन्न, देवः = देव ने, देवमानवदुर्लभम् = देव और मानवों को दुर्लभ, परमं = परम, मोदं = हर्ष को, अन्वभूत् = अनुभूत किया।

श्लोकार्थ - इस प्रकार सर्वविध पापों से रहित हुये विजय नामक अनुत्तर वाले उस देव ने देव और मानवों को दुर्लभ परम आनन्द का अनुभव किया।

जम्बूद्वीपेऽन्ध भरतक्षेत्रगः कौसलाभिधः ।

देशस्तत्र पुरी रम्या अयोध्या नाम विश्रुता ॥६१॥

अन्वयार्थ - अथ = अनन्तर, भरतक्षेत्रगः = भरतक्षेत्रगत, कौसलाभिधः = कौसल नामक, देशः = देश, (आसीत् = था), तत्र = वहाँ अयोध्या, नाम = अयोध्या नामक, रम्या = रमणीय, पुरी = नगरी, विश्रुता = विश्रुत अर्थात् प्रसिद्ध थी।

श्लोकार्थ - जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कौसल देश था जहाँ अयोध्या नामक एक रमणीय नगरी प्रसिद्ध थी।

राजा दृढरथाख्योऽभूत्तत्र धर्माब्धिचन्द्रमाः ।

राज्ञी विजयसेनास्य स्वप्नान्वोडश वीक्ष्य च ॥६२॥

अहमिन्द्रं स्वगर्भे सा दधार सुतमुत्तमम् ।

षण्मासं रत्नवृष्टेश्च सौख्यं सम्प्राप्य पूर्वतः ॥६३॥

ज्येष्ठभासे ह्यमायां च रोहिण्यां गर्भगोऽभवत् ।

तेन सा शुशुभे देवी सुबुद्धिर्ज्ञानतो यथा ॥६४॥

माघशुक्लदशम्यां च रोहिण्यां भाग्यतोऽद्भुतात् ।

आविरासीत्प्रभुरस्तस्य गृहे सूर्यग्रहोपगमे ॥६५॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस अयोध्या नगरी में, धर्माब्धिचन्द्रमाः = धर्मरूपी सागर को बढ़ाने वाले चन्द्रमा, (इव = के समान), दृढरथाख्यः = दृढरथ नामक, राजा = राजा, अभूत् = था, अस्य = इस राजा की, राज्ञी = रानी, विजयसेना = विजयसेना, (आसीत् - थी), सा = उसने, च = और, षोडश = सोलह, स्वप्नान् = स्वप्नों को, वीक्ष्य = देखकर, स्वर्गर्भे = अपने गर्भ में, अहमिन्द्र = अहमिन्द्र को, उत्तमं = उत्तम, सुतं = पुत्र को, दधार = धारण किया, च = और, पूर्वतः = पहिले से, षण्मासं रत्नवृष्टेः = छह माह तक रत्न वर्षा के, सौख्यं = सुख को, सम्प्राप्य = पाकर, ज्येष्ठभासे = ज्येष्ठ मास में, अमायां = अमावस्या के दिन, रोहिण्यां = रोहिणी नक्षत्र में, (सः = देव), गर्भगो = गर्भ में रहने वाला, अभवत् = हो गया, यथा = जैसे, ज्ञानतः = ज्ञान से, सुबुद्धिः = सम्यक् बुद्धि, शुशुभे = सुशोभित होती है, (तथा = वैसे), तेन = उसके गर्भ में आने से, सा = वह, देवी = रानी, शुशुभे = सुशोभित हुई, च = और, अद्भुतात् = अद्भुत, भाग्यात् = भाग्य से, माघशुक्लदशम्यां = माघ सुदी दशमी के दिन, रोहिण्यां = रोहिणी नक्षत्र में, तस्य = उस दृढरथ राजा के, सूर्यग्रहोपगमे = सूर्य ग्रह की उपमा वाले, गृहे = घर में, प्रभुः = भगवान्, आविरासीत् = प्रकट हुये ।

श्लोकार्थ - उस अयोध्या नगर में धर्म रूपी समुद्र को बढ़ाने में चन्द्रमा के समान दृढरथ नामक राजा था । जिसकी रानी विजयसेना थी । उसने सोलह स्वप्न देखकर अहमिन्द्र को उत्तम पुत्र के रूप में अपने गर्भ में धारण किया । गर्भ में आने से छह मास पूर्व से रत्नवृष्टि करने का सुख पाकर वह अहमिन्द्र ज्येष्ठ

माह की अमावस्या के रोहिणीनक्षत्र में रानी के गर्भ में आया। उसके गर्भ में आने से रानी वैसे ही सुशोभित हुई जैसे ज्ञान से सुबुद्धि शोभित होती है तथा अपने अद्भुत गायत्र से माघ शुक्ला दशमी के दिन उस राजा के सूर्यग्रह की उपमा वाले राजभवन में प्रभु प्रगट हुये।

तदैव देवैः सामोदैः सुरेन्द्रप्रमुखैः प्रभुः ।

स्नापितः स्वर्णशैलेन्द्रे क्षीरवारिधिवारिभिः ॥६६॥

अन्वयार्थ - तदा = उस जन्म के समय, एव = ही, सामोदैः = मोद अर्थात् प्रसन्नता सहित, सुरेन्द्रप्रमुखैः = देवेन्द्र को प्रमुख मानने वाले, देवैः = देवों द्वारा, स्वर्णशैलेन्द्रे = स्वर्ण निर्मित पर्वतराज अर्थात् स्वर्णभरु पर, क्षीरवारिधिवारिभिः = क्षीरसमुद्र के जल से, प्रभुः = भगवान्, स्नापितः = न्धवन किये गये।

श्लोकार्थ - प्रभु का जन्म होते ही, इन्द्र की अध्यक्षता में देवों द्वारा अत्यंत हर्ष के साथ मेरु पर्वत पर बनी पांडुकशिला पर क्षीरसागर के जल से प्रभु का न्धवन किया गया।

पुनस्त्वयोध्यां सम्प्राप्याजितत्वादजितामिधाम् ।

प्रभोर्विधाय देवेन्द्रः तदग्रे भक्तिभावतः ॥६७॥

अकरोत्ताण्डवं चित्रं देवा हर्षसमन्विताः ।

विलासान्विधिना चक्रुरयोध्यायामिदमप्यभूत् ॥६८॥

सेन्द्रा देवा ययुः स्वर्गं दम्पतीपुत्रवीक्षणात् ।

तद्बालचेष्टितैश्चित्रैश्चित्रानन्दं प्रजग्मतुः ॥६९॥

अन्वयार्थ - पुनः = फिर से, अयोध्यां = अयोध्या को, सम्प्राप्य = प्राप्त कर या आकर, अजितत्वात् = किसी से न जीते जाने के कारण, प्रभोः = भगवान् का, अजितामिधाम् = अजित नामकरण, विधाय = करके, तदग्रे = उनके सामने, देवेन्द्रः = देवेन्द्र ने, भक्तिभावतः = भक्तिभाव से, चित्रं = आश्चर्यकारी विचित्र, ताण्डवं = ताण्डव नृत्य को, अकरोत् = किया, हर्षसमन्विताः = आनन्द से प्रसन्न हुये, देवाः =

देवताओं ने, अयोध्यायां = अयोध्या में, विधिना = अच्छे ढंग से, विलासान् = अनेक मनोरञ्जन, चक्रुः = किये, (इति = इस प्रकार), इदं = यह नगर, अपि = भी, (विलासयुतं = मनोरंजन वाला, अभूत् = हुआ, सेन्द्राः इन्द्र सहित, देवाः = सभी देवता, स्वर्ग = स्वर्ग को, ययुः = चले गये, पुत्रवीक्षणात् = पुत्र को निहारने से, दम्पती = राजा और रानी, चित्रैः = अनेक प्रकार की विचित्र, तद्बालचेष्टितैः = उस पुत्र की बाल चेष्टाओं से, चित्रानन्दं = अनेक प्रकार के चमत्कारिक आनन्द को, प्रजग्मतुः = प्राप्त हुये।

श्लोकार्थ - पाण्डुक शिला पर भगवान् का न्हवन करने के बाद इन्द्र पुनः अयोध्या आया और उसने कभी किसी से न जीते जाने वाले होने से प्रभु का अजित यह सार्थक नाम रखा और उनके सामने भक्तिभाव से आश्चर्यकारी चमत्कारिक ताण्डव नृत्य किया। हर्ष से परिपूर्ण प्रसन्नचित्त देवों ने भी अयोध्या में अनेक प्रकार से, समुचित रीति से अनेक मनोरंजन किये। इस प्रकार सारा नगर ही मनोरंजन से पूर्ण हो गया। फिर इन्द्र सहित सभी देवता स्वर्ग चले गये। अपने पुत्र को निहारने से राजा-रानी भी पुत्र की अनेक पुकार की विचित्र बाल चेष्टाओं से नानाविध आश्चर्यकारी आनन्द को प्राप्त हुये।

द्विसप्ततिमितानां हि लक्षाणामायुरीरितम् ।

पूर्वाणामस्य चोत्सेधः शून्यवाण चतुर्मितः ॥७०॥

अन्वयार्थ - अस्य = इसकी, आयुः = उम्र, द्विसप्ततिमितानां = बहत्तर परिमित, लक्षाणां = लाख, पूर्वाणां = पूर्व की, हि = ही, ईरितम् = कह गयी, उत्सेधः = ऊँचाई, शून्यवाणचतुर्मितः = चार सौ पचास परिमित, (धनुः = धनुष), (आसीत् = थी)।

श्लोकार्थ - इनकी आयु बहत्तर लाख पूर्व की बतायी गयी है तथा शरीर की ऊँचाई चार सौ पचास धनुष प्रमाण थी।

कौमारं स व्यतीत्योक्तं राज्यं लब्ध्वा च पैतृकम् ।

राजा समनुभूयाथ विरक्तः स बभूव हि ॥७१॥

अन्वयार्थ - सः = उसने, कौमारं = कुमारावस्था को, व्यतीत्य = व्यतीत करके, च = और, पैतृकं = पिता से प्राप्त, राज्यं = राज्य को, लब्ध्वा = पाकर, अथ च = और इसके बाद, (तं = उस राज्य को), समनुगूय = अच्छी तरह से भोगकर, सः = वह, राजा = राजा, विरक्तः = विरक्त, हि = ही, बभूव = हो गया।

श्लोकार्थ - उसने कुमारावस्था व्यतीत कर पैतृक राज्य प्राप्त किया तथा उसे भोगकर समय गुजारा। फिर विरक्त हो गया।

माघशुक्लनवम्यां च रोहिणां देवतार्चितः ।

दीक्षां जग्राह तपसा तपश्चक्रे महेश्वरः ॥७२॥

अन्वयार्थ - (विरक्तः = विरक्त, राजा = राजा ने) माघशुक्लनवम्यां = माघ सुदी नवमी के दिन, रोहिण्यां = रोहिणी नक्षत्र में, देवतार्चितः = देवताओं से पूजित होता हुआ, दीक्षां = मुनिदीक्षा को, जग्राह = ग्रहण किया, च = और, महेश्वरः = प्रभु ने, तपसा = तपश्चरण से, तपः = तप, चक्रे = किया।

श्लोकार्थ - विरक्त हुये राजा ने माघ सुदी नवमी के दिन रोहिणी नक्षत्र में देवताओं से पूजित होते हुये दीक्षा ग्रहण कर ली तथा महान् प्रभुत्व की ओर अग्रसर प्रभु ने तपश्चरण से तप का आचरण किया।

घातिकर्मक्षयं कृत्वा तपसोग्रेण तद्वने ।

पौषमासे च शुक्लायामेकादश्यां महाप्रभुः ॥७३॥

तथापराहनवेलायां केवलज्ञानमवाप सः ।

तदा समवसारं स श्रीमद्धनदनिर्मितम् ॥७४॥

अन्वयार्थ - तद्वने = उस दीक्षा वन में, सः = उन, महाप्रभुः = महाप्रभु ने, उग्रेण तपसा = उग्र तपश्चरण से, घातिकर्मक्षयं = घातिकर्मों का क्षय, कृत्वा = करके, पौषमासे = पौष महिने में, शुक्लायाम् = शुक्लपक्ष में, एकादश्यां = एकादशी की तिथि में, तथा = और, अपरान्हवेलायां = दोपहर के समय

में, केवलज्ञानम् = केवलज्ञान लक्ष्मी को, अवाप = प्राप्त किया, तदा = तब, सः = उन्होंने, श्रीमद्धनदनिर्मितम् = श्रीसम्पन्न कुबेर द्वारा बनाये गये, समवसारं = समवसरण को, (सम्प्राप्य = प्राप्त करके)।

श्लोकार्थ - उस दीक्षा वन में उग्र तपश्चश्चरण से घातिया कर्मों का क्षय करके उन महाप्रभु ने पौष मास की शुक्लपक्ष की ग्यारहवीं तिथि को दोपहर के समय में केवलज्ञान उपार्जित कर लिया। तब इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने समवसरण की रचना की तथा प्रभु ने उसे पाकर.....।

सम्प्राप्य दिव्यध्वनिना गणेशादींश्च तत्रगान् ।
 सर्वानाह्लाद्य द्वात्रिंशत्सहस्रैः सम्मितेषु च ॥७५॥
 क्षेत्रेषु विहरन्देवो धर्मानुपदिशन्सतः ।
 सम्मेदशैलं सम्प्राप्य मासमेकं वसन्प्रभुः ॥७६॥
 संहृत्य दिव्यनिर्घोषं सहस्रमुनिभिः सह ।
 चैत्रस्य शुक्लपञ्चम्यां प्रतिमायोगमास्थितः ॥७७॥
 कूटे सिद्धवरे तत्र मोहारिविजयी तथा ।
 ध्यानाग्निदग्धकर्मासावजितो मुक्तिमवाप च ॥७८॥

अन्वयार्थ - (समवसरणं = समवसरण को), सम्प्राप्य = प्राप्त करके, तत्रगान् = वहाँ स्थित, च = और, गणेशादीन् = गणधरादि, सर्वान् = सभी को, आह्लाद्य = आह्लादित करके, द्वात्रिंशत्सहस्रैः = बत्तीस हजार, (वर्षैः = वर्षों द्वारा), सम्मितेषु = समनुकूल, क्षेत्रेषु = क्षेत्रों में, विहरन् = विहार करते हुये, च = और, सतः = सज्जनों को, धर्मानुपदिशन् = धर्म का अनुकूल उपदेश करते हुये, सम्मेदशैलं = सम्मेदशिखर को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, एकं = एक, मासं = माह तक, वसन् = रहते हुये, प्रभुः = प्रभु ने, दिव्यनिर्घोषं = दिव्यध्वनि को, संहृत्य = समेटकर या रोककर, चैत्रस्य = चैत मास की, शुक्लपञ्चम्यां = शुक्लपक्ष की पंचमी तिथि में, सहस्रमुनिभिः

सह = एक हजार मुनियों के साथ, प्रतिमायोगम् = प्रतिमायोग में, आस्थितः = स्थित हो गये, तथा च = और, तत्र = उस सम्मेदशिखर पर्वत पर, सिद्धधरे = सिद्धवर नामक, कूटे = कूट पर, असौ = उन, मोहारिविजयी = मोह रूपी शत्रु को जीतने वाले, ध्यानाग्निदग्धकर्मा = ध्यानरूपी अग्नि में कर्मों को दग्ध करने वाले, अजितः = तीर्थङ्कर अजितनाथ ने, मुक्तिम् = मुक्ति को, अवाप = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ - समवसरण को प्राप्त कर प्रभु ने समोशरण में गणधरादि सभी जीवों को आल्लादित करके बत्तीस हजार वर्षों से समनुकूल क्षेत्रों में विहार करते हुये और सज्जनों को धर्म का अनुकूल उपदेश करते हुये सम्मेदशिखर को प्राप्त किया। वहाँ एक मास तक रहते हुये उन भगवान् ने दिव्यध्वनि को रोककर चैत्रमास की शुक्ल पक्ष की पंचमी को एक हजार मुनियों के साथ प्रतिमायोग धारण कर लिया और उसी पर्वत अर्थात् सम्मेदशिखर पर सिद्धवर नामक कूट पर उन मोह रूपी शत्रु के विजेता, ध्यानरूपी अग्नि में कर्मों को जलाने वाले उन अजितनाथ तीर्थङ्कर ने मुक्ति प्राप्त की।

इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं प्रसन्नवदनाम्बुजः।

शुभे मुहूर्ते संकल्प्य यात्रायै सम्मुखोऽभवत् ।।७६।।

अन्यार्थ - इति = इस प्रकार, मुनेः = मुनि के, वाक्यं = वाक्य को, श्रुत्वा = सुनकर, प्रसन्नवदनाम्बुजः प्रसन्न = मुख कमल वाला, (सगरः = सगर चक्रवर्ती), यात्रायै = यात्रा के लिये, संकल्प्य = संकल्प करके, शुभे = शुभ, मुहूर्ते = मुहूर्त में, (सिद्धक्षेत्रस्य = सिद्धक्षेत्र के), सम्मुखः = सामने, अभवत् = हो गया।

श्लोकार्थ - इस प्रकार मुनिराज के वचनों से अजितनाथ के चरित्र को सुनकर अति प्रसन्नता के कारण कमल के समान खिले मुख वाले सगर चक्रवर्ती ने सिद्धक्षेत्र की वन्दना के लिये संकल्प करके सिद्धक्षेत्र को अपने सम्मुख कर लिया अर्थात् वह यात्रा करके सिद्धक्षेत्र के सम्मुख हो गया।

त्रिक्रोशं प्रथमे घस्रे चचाल नृपसत्तमः ।

सार्धगांश्च चतुःसंधान् विधायातीव सादरम् ॥८०॥

अन्वयार्थ - नृपसत्तमः = श्रेष्ठ राजा सगर ने, अतीव = अत्यधिक, सादरं = आदर पूर्वक, चतुःसंधान् = मुनि-आर्यिका, श्रावक-श्राविका रूप चारों संधों को, सार्धगान् = साथ चलने वाला, विधाय = करके, प्रथमे = पहिले, घस्रे = दिन में, त्रिक्रोशं = तीन कोस, चचाल = चला ।

श्लोकार्थ - श्रेष्ठ राजा ने अत्यधिक आदर सत्कार पूर्वक मुनिराजों, आर्यिकाओं, श्रावकों और श्राविकाओं के चतुर्विध संघ को साथी बनाकर अर्थात् उन्हें यात्रा के लिये साथ लेकर पहिले दिन वह तीन कोस अर्थात् लगभग ६ कि०मी० चला ।

गजाश्चतुरशीत्युक्ता लक्षसंख्यामिताः शुभाः ।

वातवेगधरास्तद्वत्कोट्योऽष्टादशवाजिनः ॥८१॥

तथा हस्तिप्रमाणाश्च पत्तीनां कोटयः स्मृताः ।

विद्याधरास्तथा चेलुश्चक्रिसद्वाक्यरक्षकाः ॥८२॥

अन्वयार्थ - (तदयात्रायां = उस यात्रा में), चतुरशीति लक्षसंख्यामिताः = चौरासी लाख संख्या के परिमाण वाले, शुभाः = शुभ लक्षणों से युक्त, गजाः = हाथी, अष्टादश = अठारह, कोटयः = करोड़, तद्वत् = हाथियों के समान ही शुभ लक्षणों वाले, वातवेगधराः = वायु के वेग को धारण करने वाले, वाजिनः = घोड़े, तथा च = और, हस्तिप्रमाणाः = हाथियों के प्रमाण के बराबर, पत्तीनां = पदातियों की, कोटयः = कोटियां, उक्ताः = कही गयीं, स्मृताः = स्मरण की जाती हैं, तथा च = और, चक्रिसद्वाक्यरक्षकाः = चक्रवर्ती के सद्वाक्यों की रक्षा करने वाले, विद्याधराः = विद्याधर लोग, चेलुः = चले ।

श्लोकार्थ - चक्रवर्ती की उस तीर्थ यात्रा में चौरासी लाख शुभ लक्षणों वाले हाथी, अठारह करोड़ शुभ लक्षण सम्पन्न एवं वायु के वेग समान दौड़ने वाले घोड़े तथा चौरासी लाख पदाति

सैनिकों की टुकड़ियां कहीं गयीं स्मरण की गई हैं। चक्रवर्ती के साथ यात्रा करने वाले चक्री के सद्वाक्यों की रक्षा करने वाले विद्याधर भी यात्रा के लिये चले।

एककोटीध्वजानां च तथादुन्दुभयो मताः ।

एवं वाद्यध्वनिमार्गे खात्सर्वान्प्रहर्षयन् ॥८३॥

अन्वयार्थ - ध्वजानां = ध्वजाओं की, (संख्या = संख्या), एककोटी = एक करोड़, तथा च = और, दुन्दुभयः = नगाड़े, (अपि = भी), एककोटी = एक करोड़, मताः = मानी गयी हैं, एवं च = और, वाद्यध्वनिः = बाजों की ध्वनि, मार्गे = रास्ते में, खात् = आवाज से, सर्वान् = सभी को, प्रहर्षयन् = हर्षित करती हुई (ज्ञेयः = जानना चाहिये)।

श्लोकार्थ - उस यात्रा में ध्वजाओं एवं नगाड़ों की संख्या एक-एक करोड़ मानी गयी है। मार्ग में बाजों की ध्वनि सभी को प्रसन्न करती हुई जाननी चाहिये।

नृपः सम्मेदमेवासौ कूटे सिद्धवरे प्रभोः ।

स्थापनामजितेशस्य कृत्वा संपूज्य भक्तितः ॥८४॥

परिक्रम्य त्रिवारं च सर्वसम्मेदपर्वतम् ।

महोत्सवं चकारासौ जयध्वनिविमिश्रितम् ॥८५॥

अन्वयार्थ - असौ = उस, नृपः = राजा ने, भक्तितः = भक्ति से, सम्मेदमेव = सम्मेद पर्वत को ही, संपूज्य = पूजकर, सिद्धवरे = सिद्धवर, कूटे = कूट पर, अजितेशस्य = अजितनाथ तीर्थंकर की, स्थापनां = स्थापना को, कृत्वा = करके, च = और, सर्वसम्मेदपर्वतम् = सारे सम्मेदपर्वत को, त्रिवारं = तीन बार, परिक्रम्य = परिक्रमा देकर, जयध्वनिविमिश्रितम् = जय जय के नारों से गूंजता हुआ, महोत्सवं = महान उत्सव, चकार = कराया।

श्लोकार्थ - उस राजा ने अतिशय भक्ति से सम्मेदपर्वत को ही पूजकर

सिद्धवर नामक कूट पर अजितनाथ तीर्थङ्कर की स्थापना करके और सारे सम्मेदपर्वत को तीन बार प्रदक्षिणा देकर जय-जय के घोषों से गुंजता हुआ महोत्सव कराया।

पञ्चाश्चर्याणि तत्रासन् देववृन्दकृतानि च।

तानि दृष्ट्वाखिलास्तत्र विस्मिता अभवन्किल ॥८६॥

अन्वयार्थ - तत्र च = और वहाँ, देववृन्दकृतानि देवताओं द्वारा किये गये, पञ्च = पाँच, आश्चर्याणि = आश्चर्य, आसन् = हुये, तानि = उन आश्चर्यों को, दृष्ट्वा = देखकर, तत्र = वहाँ, अखिलाः = सारे ही लोग, किल = सचमुच, विस्मिताः = आश्चर्यचकित, अभवन् = हो गये।

श्लोकार्थ - और वहाँ देवताओं द्वारा किये गये पाँच आश्चर्य हुये जिनको देखकर वहाँ सभी लोग सचमुच आश्चर्यचकित हो गये।

सहस्रमुनयस्तत्र कूटे सिद्धवराभिधे।

श्रीमताजितनाथेन सार्धं मुक्तिपदं गताः ॥८७॥

अन्वयार्थ - तत्र = वहाँ, सिद्धवराभिधे कूटे = सिद्धवर नामक कूट पर, श्रीमता = केवलज्ञान, लक्ष्मी से सम्पन्न, अजितनाथेन = तीर्थङ्कर अजितनाथ के, सार्धं = साथ, सहस्रमुनयः = हजारों मुनिराज, मुक्तिपदं = मोक्षपद को, गताः = प्राप्त हुये।

श्लोकार्थ - सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र पर सिद्धवर कूट पर से हजारों मुनिराजों ने अनन्तज्ञान सम्पन्न भगवान् अजितनाथ के साथ ही मुक्तिपद प्राप्त किया।

एकार्बुदप्रमाणास्तत्पश्चादुक्तमुनीश्वराः।

तत्र वाथ चतुर्युक्ताशीतिकोटिप्रमाणकाः ॥८८॥

पञ्चान्तघत्वारिंशद्भिः लक्षैः परिमितास्ततः।

श्रीशम्भवा ह्यतिप्रौढा मुक्ताः सिद्धाः ह्यनन्तकाः ॥८९॥

अन्वयार्थ - तत्पश्चात् = उनके बाद, एकार्बुदप्रमाणाः = एक अरब प्रमाण, चतुर्युक्ताशीतिकोटिप्रमाणकाः = चौरासी करोड़ प्रमाण,

पञ्चान्तचत्वारिंशदिभः लक्षैः = पैंतालीस लाख से, परिमिताः = परिमाण वाले, एकमुनीश्वराः = कहे गये मुनिराज (मुक्तिपद गताः = मुक्ति पद को प्राप्त हुये) ततः = उससे भी पहिले, अतिप्रौढा = अत्यंत प्राचीन, हि = पादपूरक अव्यय, अनन्तकाः = अगन्त, श्रीशम्भवा = आनन्द से परिपूर्ण, मुक्ताः = मुक्त जीव, तत्र = उसी सिद्धवर कूट पर, हि = ही, सिद्धाः = सिद्ध परमात्मा, (अभूवन् = हुये)।

श्लोकार्थ - उनके बाद अरब चौरासी करोड़ पैंतालीस लाख मुनिराज तथा उससे भी पहिले अति प्राचीन आनन्द से पूर्ण मुक्त जीव उसी सिद्धवर कूट से सिद्ध परमात्मा बने यह जानना चाहिये।

एककूटस्य ते सर्वे शक्या न गणितुं बुधैः।

सर्वेषां मुक्तिसिद्धानां कः कुर्याद् गणनां कविः ॥६०॥

अन्वयार्थ - बुधैः = विद्वज्जनों द्वारा, एककूटस्य = एक कूट के, ते सर्वे = वे सभी मुनिराज, गणितुं = गिनना, शक्याः = शक्य, न = नहीं, कः = कौन, कविः = कवि, सर्वेषां = सारे, मुक्तिसिद्धानां = मुक्ति पाकर सिद्ध हुये जीवों की, गणनां = गिनती को, कुर्यात् = करे।

श्लोकार्थ - उस एक कूट के सभी मुनिराजों को गिनने के लिये विद्वज्जन समर्थ नहीं हैं। कौन कवि सारे मुक्त हुये सिद्ध जीवों की गिनती को करे? क्या कोई कर सकता है? उत्तर है नहीं।

सम्मेदाचलयात्रां यः कुर्याद् भावेन संयुतः।

तस्य पुण्यफलं भूप! शृणु संसारदुर्लभम् ॥६१॥

अन्वयार्थ - यः = जो, भावेन = भाव से, संयुतः = सहित होकर, सम्मेदाचल यात्रां = सम्मेदशिखर की तीर्थवन्दना रूपी यात्रा को, कुर्यात् = करे, तस्य = उसके, संसारदुर्लभम् = संसार में कठिनाई से प्राप्त होने वाले, पुण्यफलं = पुण्यफल को, भूप = हे राजन् श्रेणिका, (त्वं = तु), शृणु = सुनो।

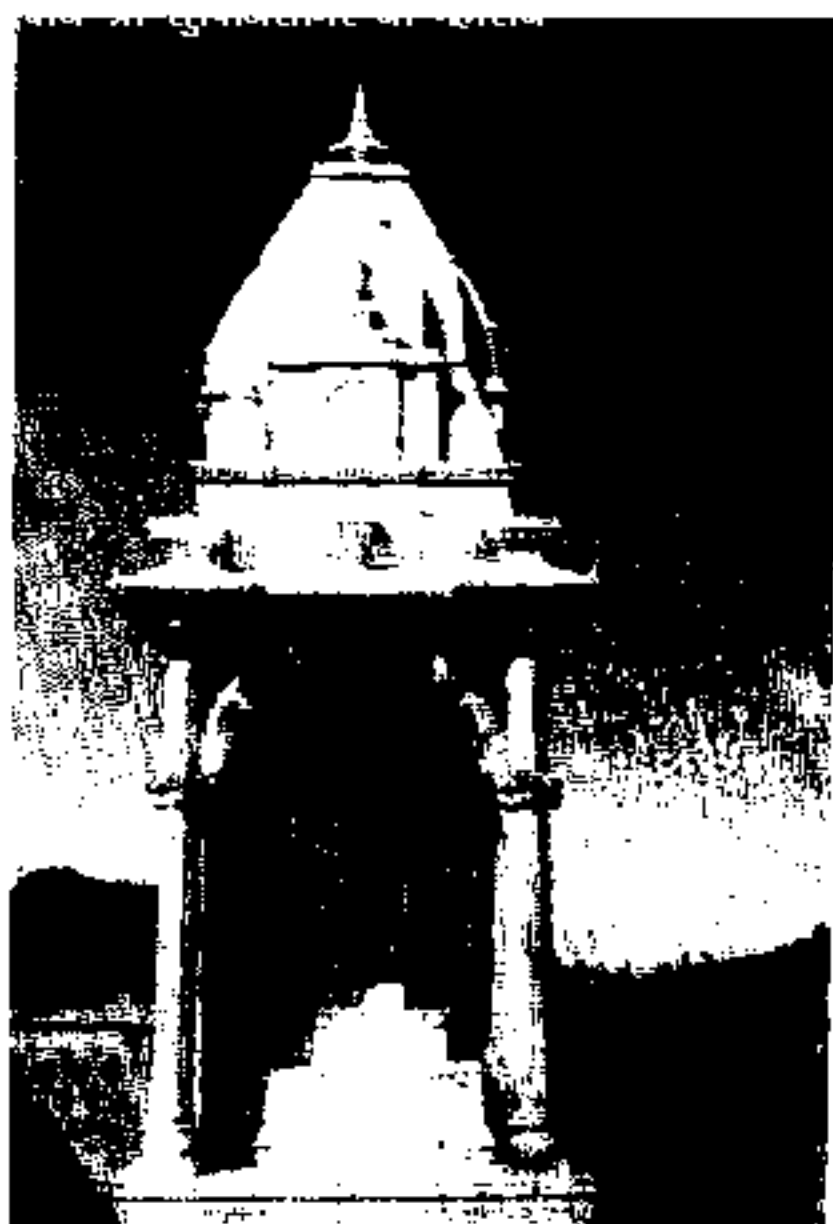
श्लोकार्थ - जो भी भाव से परिपूर्ण होकर सम्मेदाचल पर्वत की तीर्थवन्दना रूपी यात्रा को करे तो उसके संसार में कठिनता से होने योग्य पुण्य फल को हे राजन् श्रेणिक! तुम सुनो।

द्वात्रिंशत्कोटिसंप्रोषधोपवासफलं विदुः ।
यत्फलं तत्फलं नूनं लभेत् सम्मेदयात्रिकः ॥६२॥
तिर्यङ्नारकगत्योश्च नाशो भवति निश्चितम् ।
महावीरेण कथितं प्रमाणं तच्च साधुवः ॥६३॥

अन्वयार्थ - (ज्ञानिनः = ज्ञानी जन) द्वात्रिंशत्कोटिसंप्रोषधोपवासफलं = बत्तीस करोड़ प्रोषधोपवास का फल के बराबर, यत्फलं = जो फल, विदुः = जानते हैं, तत्फलं = उस फल को, नूनं = निश्चित ही, सम्मेदयात्रिकः = सम्मेदगिरि की यात्रा करने वाला, लभेत् = पाये, (सम्मेदयात्रिकस्य = सम्मेदशिखर की यात्रा करने वाले के), तिर्यङ्नारकगत्योः = तिर्यञ्च और नरक गति का, निश्चितम् = निश्चित, नाशः = नाश, भवति = होता है, इति = इस प्रकार, महावीरेण = भगवान् महावीर द्वारा, कथितं = कहा गया, (यत् = जो), प्रमाणं = प्रमाण, (अस्ति = है), तत् = वह, वः = तुम सभी के लिये, साधु = सही, स्यात् = हो।

श्लोकार्थ - ज्ञानीजन बत्तीस करोड़ सच्चे प्रोषधोपवास का जो फल जानते हैं वह फल सम्मेदशिखर की यात्रा करने वाला यात्री प्राप्त करे। उसके नरकगति और तिर्यञ्चगति का नाश होता है इस प्रकार भगवान् महावीर द्वारा कथित जो प्रमाण है वह तुम सभी के लिये सही हो ऐसी कवि की कामना है।

ईदृक् श्रीजिनराजधर्मकथनं नानाभ्रमध्वंसनम् ।
श्रीसम्मेदगिरिप्रमाणफलं श्रीवर्धमानेरितम् ॥
लोहाचार्यदरेण भूय उदितं श्रुत्याखिलाः सज्जनाः ।
सम्मेदं प्रति यान्तु भावसहिताः सर्वार्थसिद्धिप्रदम् ॥६४॥



श्री सम्भवनाथ स्वामी-सुप्रभ कूट

अन्वयार्थ - श्रीवर्धमानेरितम् = भगवान् महावीर द्वारा बताया गया, श्रीजिनराज-धर्मकथनं = श्रीजिनराज प्रणीत धर्म के कथन वाला, नानाभ्रमध्वंसनम् = अनेक प्रकार के भ्रमों का नाश करने वाला, ईदृक् = ऐसा (यतः = जो), श्रीसम्मेदगिरिप्रमाणफलं = श्रीसम्मेदशिखर सम्बन्धी प्रामाणिक फल, लोहाचार्यवरेण = लोहाचार्य मुनिवर्य द्वारा, भूयः = फिर से, उदितं = प्रगट हुआ है, तत् = उसको, श्रुत्वा = सुनकर, अखिलाः सज्जनाः = सभी सज्जन पुरुषों, भावसहिताः = भावना से परिपूर्ण होकर, सर्वार्थसिद्धिप्रदं = सर्वार्थसिद्धि प्रदान करने वाले, सम्मेदं प्रति = सम्मेदशिखर की ओर, यान्तु = जाओ अर्थात् सम्मेदाचल की यात्रा करो।

श्लोकार्थ - भगवान् महावीर द्वारा बताया गया, जिनराजों द्वारा बताये धर्म का कथन करने वाला तथा अनेक भ्रमों का निवारण करने वाला इस प्रकार जो यह सम्मेदशिखर का प्रामाणिक फल वर्णन मुनिवर्य लोहाचार्य ने पुनः उदित किया है, उसको सभी सज्जनपुरुष भावसहित अर्थात् तीर्थवन्दना की सच्ची भावना से परिपूर्ण होकर सर्वार्थसिद्धि प्रदान करने वाले सम्मेदशिखर की ओर जाओ। यहाँ कवि ने सम्मेदाचल की यात्रा हेतु हम सभी सज्जनों को उत्साहित किया है तथा अपने इस वर्णन को 'लोहाचार्य द्वारा उदित हुआ था' - ऐसा कहकर प्रामाणिक बनाया है।

[इति देवदत्तकृते सम्मेदशिखरमाहात्म्ये श्रीमदजितेशकथो-
द्धारतत्परः श्रीसगरचक्रवर्तियात्रा-वृत्तान्त नामा द्वितीयोऽध्यायः।]

[इस प्रकार देवदत्त कवि विरचित सम्मेदशिखरमाहात्म्य में तीर्थङ्कर अजितनाथ की कथा को प्रगट करने वाला तथा श्री सगर चक्रवर्ती की यात्रा वृत्त की सूचना देने वाला द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ।]

तृतीयोऽध्याय

अथ शम्भवनाथस्य कथा संवर्ण्यतेऽधुना ।

यो दत्तधवलं कूटमास्थाय प्राप सिद्धताम् ॥१॥

अन्वयार्थ - अथ = अनन्तर, यः = जिन्होंने, दत्तधवलं कूटं = दत्तधवल नामक कूट पर, आस्थाय = बैठकर, सिद्धताम् = सिद्धदशा को, प्राप = प्राप्त किया, (तस्य = उन) शम्भवनाथस्य = शम्भवनाथ तीर्थङ्कर की, कथा = कथा, अधुना = अब, संवर्ण्यते = वर्णित की जाती है ।

श्लोकार्थ - सगरचक्रवर्ती के यात्रावृत्त और अजितनाथ स्वामी की कथा को बताने के बाद कवि उन शम्भवनाथ तीर्थङ्कर की कथा का वर्णन कर रहा है जिन्होंने सम्मेदशिखर के दत्तधवल कूट पर पद्यासन से बैठकर सिद्धदशा प्राप्त की थी ।

जम्बूद्वीपे पूर्वस्मिन्विदेहे भाग उत्तरे ।

सीतानद्याः कच्छनाम्नि देशे क्षेमपुरं शुभम् ॥२॥

अन्वयार्थ - अत्र = इस, जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, पूर्वस्मिन् = पूर्व, विदेहे = विदेह में, सीतानद्याः = सीता नदी के, उत्तरे भागे = उत्तरभाग में, कच्छनाम्नि = कच्छ नामक, देशे = देश में, शुभं = शुभ, क्षेमपुरम् = क्षेमपुर नगर, (आसीत् = था) ।

श्लोकार्थ - इस जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तरी भाग में एक सुन्दर क्षेमपुर नामक नगर था ।

राजा विमलयाहोऽभूत्तत्रासौ काललब्धितरु ।

मेघ उत्पन्नो विनष्टश्च नभसि प्रेक्ष्य तत्क्षणात् ॥३॥

संसारसौख्यं सकलमसारमयबुद्ध्य वै ।

विरक्तस्तृणवद्वाज्यं त्यक्त्वा विमलकीर्तये ॥४॥

दत्त्वा समवसारेऽथ स्वयंप्रभजिनेशितुः ।
 गत्वा समगृहीद्दीक्षां विवेकभरसंकुलाम् ॥५॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस नगर में, विमलवाहः = विमल वाहन नामक, राजा = राजा, अभूत् = था, काललब्धितरु = काललब्धि आ जाने से, असौ = इस राजा ने, नभसि = आकाश में, मेघः = बादल, उत्पन्नः = उत्पन्न हुये, च = और, नष्टः = नष्ट हो गये, (इति = ऐसा), प्रेक्ष्य = देखकर, तत्क्षणात् = उसी समय, सकलम् = सारा, संसार-सौख्यं = संसार का सुख, असारम् = सार रहित, अबुद्ध्य = जानकर, विरक्तः = वैराग्य सम्पन्न, (तत् = वह राज्य), विमलकीर्तये = विमलकीर्ति के लिये, दत्त्वा = देकर, अथ = उसके बाद, स्वयंप्रभजिनेशितुः = स्वयंप्रभजिनेश्वर के, समवसारे = समवसरण में, गत्वा = जाकर, विवेकभरसंकुलां = विवेक-भेदविज्ञान से होने वाले आनन्द से भरी हुई, दीक्षां = जैनेश्वरी दीक्षा अर्थात् मुनि पद को, समगृहीत् = ग्रहण कर लिया ।

श्लोकार्थ - उस नगर में विमलवाहन नामक एक राजा था । काललब्धि आ जाने से उसने आकाश में बादलों का उत्पन्न-इकट्ठा होना और नष्ट होना देखकर उसी समय सारा सांसारिक सुख क्षणिक जानकर विरक्त होते हुये उस राज्य को तिनके के समान छोड़कर तथा उसे विमलकीर्ति के लिये देकर स्वयंप्रभजिनेश्वर के समवसरण में पहुंचकर भेदविज्ञान के आनन्दरस से परिपूर्ण जिनेन्द्र दीक्षा अर्थात् मुनि पद को ग्रहण कर लिया ।

स्वीकृत्यैकादशाङ्गानि ततः षोडशभावनाः ।

यद्ध्वा तीर्थङ्करं गोत्रं चकार तप उत्तमम् ॥६॥

अन्वयार्थ - (तत्र = उस समवसरण में, असौ = उन मुनिराज ने), एकादशाङ्गानि = ग्यारह अङ्गों को, स्वीकृत्य = धारण कर, ततः = उसके बाद, षोडशभावनाः = सोलह भावनार्यें, (भावयित्वा = भा कर), तीर्थङ्करं = तीर्थङ्कर नाम कर्म, गोत्रं

= उच्चपुण्यं को, बद्ध्वा = बाँधकर, उत्तमम् = उत्कृष्ट, तपः
= तपश्चरण, चकार = किया।

श्लोकार्थ - स्वयंप्रभ जिनेश्वर के समवसरण में उन मुनिराज ने ग्यारह अङ्गों का ज्ञान प्राप्त कर उन्हें धारण किया और सोलह भावनार्यें भाकर तीर्थङ्कर नामक नामक उच्च पुण्य को बाँधकर उत्कृष्ट तपश्चरण किया।

अन्ते सन्यासविधिना प्राणत्यागं विधाय सः ।

पूर्वप्रैवेयके तत्र सुदर्शनविमानके ॥७॥

अहमिन्द्रो बभूवास्य त्रयोविंशतिसमुद्रकैः ।

आयुः षडङ्गुलोन्मानं शरीरं च प्रकीर्तितम् ॥८॥

अन्वयार्थ - अन्ते = अन्तिम समय में, सः = वह, सन्यासविधिना = सन्यासमरण से, प्राणत्यागं = प्राणों का त्याग, विधाय = करके, पूर्व प्रैवेयके = प्रथम प्रैवेयक में, तत्र = उसमें, सुदर्शनविमानके = सुदर्शन नामक विमान में, अहमिन्द्र = अहमिन्द्र, बभूव = हुआ, अस्य = इस देव की, आयुः = आयु, त्रयोविंशतिसमुद्रकैः = तेवीस सागर के प्रमाण से, शरीरं च = और देह, षडङ्गुलोन्मानं = छह अङ्गुल उन्मान वाला, प्रकीर्तितम् = कहा गया है।

श्लोकार्थ - पर्याय के अन्तिम समय में वे मुनिराज सन्यासमरण की विधि से प्राणों का त्याग करके प्रथम प्रैवेयक के सुदर्शन नामक विमान में अहमिन्द्र हुये। वहाँ उनकी आयु तेवीस सागर थी और शरीर छह अङ्गुल उन्मान वाला था।

शुक्ललेश्यासमायुक्तस्त्रयोविंशतिसहस्रकैः ।

गतैरब्दैः सः जग्राह मानसाहारमुत्तमम् ॥९॥

अन्वयार्थ - सः = वह अहमिन्द्र, शुक्ललेश्यासम्पन्नः = शुक्ललेश्या से सम्पन्न होकर, त्रयोविंशतिसहस्रकैः = तेवीस हजार, अब्दैः = वर्ष, गतैः = बीत जाने से, उत्तमम् = उत्कृष्ट, मानसाहारम् = मात्र मानसिक अमृत का आहार, जग्राह = ग्रहण करता था।

श्लोकार्थ - शुक्ललेण्या से सम्पन्न वह अहमिन्द्र तेवीस हजार वर्षों के बीत जाने के बाद उत्तम अमृत आहार मात्र मन से अर्थात् मनोगत इच्छा से ही ग्रहण करता था।

त्रयोविंशत्सु पक्षेषु व्यतीतेषु च देवराट् ।

श्वासोच्छ्वासधरो ब्रह्मचर्यभोगमनूत्तमम् ॥१०॥

अन्वयार्थ - च = और, देवराट् = उस अहमिन्द्र देव ने, त्रयोविंशत्सु = तेवीस, पक्षेषु = पक्ष, व्यतीतेषु = बीतने पर, श्वासोच्छ्वासधरः = श्वासोच्छ्वास धारण करने वाला, (भूत्वा = होकर), अनूत्तमम् = उत्कृष्ट, ब्रह्मचर्यभोगं = ब्रह्मचर्य के आनंद को, (लब्धवान् = प्राप्त किया)।

श्लोकार्थ - तथा उस देवराज अहमिन्द्र ने तेवीस पक्षों के बीतने पर श्वासोच्छ्वास को धारण करने वाला होकर अत्युत्तम ब्रह्मचर्य के आनन्द को प्राप्त किया।

अथाभूत्सप्त नरकपर्यन्ताधिबोधदृक् ।

तावत्प्रमाणविकृतिस्तेजोबल पराक्रमः ॥११॥

अन्वयार्थ - अथ = अनन्तर, (सः = वह अहमिन्द्र), सातनरकपर्यन्ताधिबोधदृक् = सातवें नरक तक की मर्यादा वाले अधिज्ञान से जानने-देखने वाला, (च = और), तावत्प्रमाणविकृतिः = उतने ही प्रमाण में विक्रिया सामर्थ्य वाला, तेजोबल पराक्रमः = तेजस्वी, बलवान् और पराक्रमी, (अभूत् = हुआ)।

श्लोकार्थ - तथा वह देव सातवें नरक तक की मर्यादा वाले अधिज्ञान से सम्पन्न हुआ, वैसी ही अर्थात् अधिज्ञान के समान ही उनके प्रमाण में विक्रिया सामर्थ्य वाला, तेजस्वी, बलशाली और पराक्रमी भी हुआ।

अणिमाद्यष्टसिद्धीनामीश्वरोऽयं तपोनिधिः ।

अहमिन्द्रसुखास्वादी तत्रातिष्ठत्तपोबलात् ॥१२॥

सर्वायुष्येऽयशिष्टेषु षट्सु मासेषु तत्र वै ।

पुनर्भूम्यवताराय समयोऽन्तिकमागतः ॥१३॥

अन्वयार्थ - अयं = यह, तपोनिधिः = तपश्चरण से स्वर्ग की निधि पाने वाला, अणिमाद्यष्टसिद्धीनां = अणिमादि आठ सिद्धियों-ऋद्धियों का, ईश्वरः = स्वामी होता हुआ, तपोबलात् = तप के बल से, अहमिन्द्र-सुखास्वादी = अहमिन्द्र के योग्य सुख का आस्वादी होता हुआ, तत्र = वहाँ प्रथम ग्रैवेयक में, अतिष्ठत् = रहता था। सर्वायुष्ये = सारी आयु में, अतिष्ठत् = रहता था, सर्वायुष्ये = सारी आयु में, षट्सु = छह, मासेषु = माह, अवशिष्टेषु = शेष रहने पर, तत्र = वहाँ, (सः = उसने), पुनः = फिर से, भूम्यवताराय = पृथ्वी पर अवतार लेने अर्थात् उत्तर कर जन्म लेने के लिये, समयः = समय, अन्तिकम् = अन्त को, आगतः = प्राप्त हो गया है, (इति = ऐसा, ज्ञातवान् = जान लिया)।

श्लोकार्थ - तपश्चरण से स्वर्ग में अहमिन्द्र पद की निधि प्राप्त करने वाला यह तपोनिधि अणिमादि आठ ऋद्धियों का स्वामी होता हुआ तपश्चरण बल से ही अहमिन्द्र पद के योग्य सुख का आस्वाद लेता हुआ वहाँ रहता था। उसने भुज्यमान आयु में छह माह शेष रहने पर यह जान लिया कि अब फिर से भूमि पर जन्म लेकर अवतरित होने के लिये अन्तिम समय आ गया है।

जम्बूद्वीपोदितक्षेत्रे भारते विषयो महान् ।

अमार इति विख्यातः पवित्रो धर्मकृद्धितः ॥१४॥

अन्वयार्थ - जम्बूद्वीपोदितक्षेत्रे = जम्बूद्वीप में कहे गये क्षेत्र में, भारते = भरत क्षेत्र में, अमारः = अमार, इति = इस, नाम्ना = नाम से, विख्यातः = प्रसिद्ध, धर्मकृद्धितः = धर्म करने वालों के हित रूप, पवित्रः = पवित्र, महान् = विशाल, विषयः = देश, (आसीत् = था)।

श्लोकार्थ - जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में 'अमार' इस नाम से प्रसिद्ध एक विशाल देश था जो धर्म करने वालों को अनुकूल हित स्वरूप एवं पवित्र था।

श्रावस्तीपुरमत्राणते तत्रैक्ष्वाकुकुले महान् ।

राजा काश्यपगोत्रस्य जितारिः सम्बभूव हि ॥१५॥

अन्वयार्थ - अत्र = इस अभार देश में, श्रावस्तीपुरम् = श्रावस्तीपुर, आस्ते = था, तत्र = उस नगर में, इक्ष्वाकुकुले = इक्ष्वाकु कुल में, काश्यपगोत्रस्य = काश्यपगोत्र का, महान् = महान्, राजा = नृप, जितारिः = जितारि, सम्बभूव = हुआ था, हि = ही (पादपूरक है) ।

श्लोकार्थ - इस अभार देश में श्रावस्तीनगर था जिसमें इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न काश्यपगोत्रीय एक महान् राजा जितारि हुये थे ।

तस्य राज्ञी सुषेणा च शुभलक्षणसंयुता ।

स्वैस्तैस्तैः शुभभावैश्च भूपतेः प्राणतः प्रिया ॥१६॥

अन्वयार्थ - तस्य = उस जितारि राजा की, शुभलक्षणसंयुता = शुभलक्षणों से सम्पन्न, राज्ञी = रानी, सुषेणा = सुषेणा, (आसीत् = थी), च = और, (सा = वह रानी), स्वैः = अपने, तैः तैः = उन उन विनय शील आदि, शुभभावैः = शुभगुणों के कारण, भूपतेः = राजा के लिये, प्राणतः = प्राणों से, प्रिया = प्यारी, (आसीत् = थी) ।

श्लोकार्थ - उस जितारि राजा की शुभलक्षणों वाली एक सुषेणा नामक रानी थी जो अपने उन-उन अर्थात् शील विनय आदि शुभगुणों के कारण राजा को प्राणों से भी प्यारी थी ।

सुरेन्द्रोऽवधितश्चाहमिन्द्रस्यागमनं पुरे ।

बुद्ध्वाऽत्र रत्नसंवृष्ट्यै धननाथं समादिशत् ॥१७॥

अन्वयार्थ - च = और, अत्र पुरे = इस नगर में, अहमिन्द्रस्य = अहमिन्द्र का, आगमनं = आना, अवधितः = अवधिज्ञान से, बुद्ध्वा = जानकर, सुरेन्द्रः = सुरेन्द्र ने, (तत्र = वहाँ), रत्नसंवृष्ट्यै = रत्नों की वर्षा करने के लिये, धननाथं = धनपति कुबेर को, समादिशत् = आदेश दिया ।

श्लोकार्थ - श्रावस्तीनगर में अहमिन्द्र का आगमन अवधिज्ञान से जानकर सुरेन्द्र ने उस नगर में रत्नों की वर्षा करने के लिये कुबेर को आदेश दिया।

षण्मासं तेन संहृष्ट्या रत्नवृष्टिस्तथा कृता ।

सप्रधानः स भूपालः सपौरो विस्मयं ययौ ॥१८॥

अन्वयार्थ - तेन = कुबेर द्वारा, संहृष्ट्या = अत्यंत हर्ष के साथ, षण्मासं = छह मास तक, तथा = वैसे ही, रत्नवृष्टिः = रत्नों की वर्षा, कृता = की, (यथा = जैसे), सप्रधानः = प्रधान पुरुषों सहित, सपौरो = प्रजाजनों सहित, स = वह, भूपालः = जितारि राजा, विस्मयं = आश्चर्य को, ययौ = प्राप्त हो गया।

श्लोकार्थ - इन्द्र की आज्ञा से प्रसन्नता सहित कुबेर ने उस नगर में छह मास तक वैसे ही रत्न वर्षा की जैसे राजा जितारि, प्रजा और प्रधान पुरुष मंत्री आदि विस्मय को प्राप्त हुये।

एकदा फाल्गुणे मासे शुक्लपक्षे मृगाङ्कमे ।

सा देवी षोडशस्वप्नावसाने गजमास्यगम् ॥१९॥

दृष्ट्वाद्भुतयुता प्रातः प्रियवक्त्राच्च तत्फलम् ।

श्रुत्वा प्रमुदिता गर्भे चाहमिन्द्रं दधार सा ॥२०॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक बार, फाल्गुणे = फाल्गुन, मासे = मास में, शुक्लपक्षे = शुक्लपक्ष में, मृगाङ्कमे = चन्द्र नक्षत्र में, षोडशस्वप्नावसाने = सोलह स्वप्नों के समाप्त होने पर, सा देवी = उस रानी ने, आस्यगम् = अपने मुख में जाते हुये, गजम् = हाथी को, दृष्ट्वा = देखकर, अद्भुतयुता = आश्चर्य से भरी हुयी, (अभूत् = हो गई), च = और, प्रातः = सवेरे, प्रियवक्त्रात् = प्रियतम के मुख से, तत्फलम् = उनके फल को, श्रुत्वा = सुनकर, प्रमुदिता = प्रसन्न हो गयी। च = और, सा = उसने, गर्भे = गर्भ में, अहमिन्द्रं = अहमिन्द्र को, दधार = धारण किया।

श्लोकार्थ - एक बार फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष में अष्टमी को मृगाङ्क नक्षत्र में सोलह स्वप्न देखने के बाद अपने मुख में प्रावेष्ट होते हुये गज को देखकर वह रानी आश्चर्य से भर गयी। फिर प्रातः अपने प्रिय के मुख से उनका फल सुनकर प्रमुदित हो गयी और उस रानी ने अहमिन्द्र को अपने गर्भ में धारण किया।

तं देवं गर्भगं पुण्यैः कृत्वा सदम्बिका बभौ ।

अन्तरीकृत्य बालार्क शारदी वा नु चन्द्रिका ॥२१॥

अन्वयार्थ - पुण्यैः = पुण्यों द्वारा, सा = वह रानी, तं = उस, देवं = देव को, गर्भगं = गर्भ में रहने वाला, कृत्वा = करके, सदम्बिका = सच्चे अर्थों में माता अर्थात् जिनमाता, अमृत = हो गयी (यथा = जैसे), (इव = मानो) बालार्क = बाल सूर्य को, अन्तरीकृत्य = अन्दर छिपाकर, शारदी चन्द्रिका = शरद ऋतु की चन्द्र छटा, बभौ = सुशोभित हुई हो।

श्लोकार्थ - अपने पुण्य कर्मों के उदय आ जाने से वह रानी उस देव को अपने गर्भ में धारण करके सदम्बिका अर्थात् जिनमाता कहलायी और वैसे ही सुशोभित हुई जैसे बाल सूर्य को अपने अन्दर छिपाने से शरद ऋतु की चन्द्रिका सुशोभित होती है।

मार्गमासि ततः शुक्लपञ्चदश्यां मृगाङ्कमे ।

आविरासीत् प्रभुः प्रातः सुषेणायां शुभालये ॥२२॥

अन्वयार्थ - ततः = गर्भ में आने के बाद, मार्गमासि = मार्गशीर्ष माह में, शुक्लपञ्चदश्यां = शुक्लपक्ष की पूर्णिमा के दिन, प्रातः = सवेरे, मृगाङ्कमे = मृगाङ्क नक्षत्र में, प्रभुः = भगवान्, शुभालये = शुभभवन अर्थात् राजप्रसाद में, सुषेणायां = सुषेणा के गर्भ में से, आविरासीत् = उत्पन्न हुये।

श्लोकार्थ - गर्भ में आने के बाद मार्गशीर्ष मास के शुक्लपक्ष की पूर्णिमा के दिन प्रातःकाल मृगाङ्क नक्षत्र में प्रभु राजप्रसाद में सुषेणा के गर्भ में से उत्पन्न हुये।

तदभावं विदितः शक्रः ऐरावतमसज्जयत् ।

लक्षयोजनमुत्तुङ्गो द्वात्रिंशद्वदनो हि सः ॥२३॥

अन्वयार्थ - तदभावं = प्रभु के जन्म को, विदितः = जाने हुये, शक्रः = इन्द्र ने, ऐरावतम् = ऐरावत हाथी को, असज्जयत् = तैयार किया या करवाया, सः = वह, हि = निश्चित ही, लक्षयोजनम् = एक लाख योजन, उत्तुङ्गः = ऊँचा, द्वात्रिंशद्वदनः = बत्तीस मुख वाला, (आसीत् = था) ।

श्लोकार्थ - प्रभु के जन्म को जानकर इन्द्र ने ऐरावत हाथी सुसज्जित किया । जो एक लाख योजन ऊँचा तथा बत्तीस मुख वाला था ।

प्रत्यास्यमष्टाष्टरदाः प्रतिदन्तं सरांसि च ।

एकैकं प्रति कासारं सपादशतसंमिताः ॥२४॥

अम्भोजिन्यः शुभास्तद्वत्प्रत्यम्भोजिनि चाभवन् ।

पंचविंशत्पंचविंशत्कमलानि वराणि च ॥२५॥

अष्टोत्तरसहस्रोक्तपत्राणि प्रतिवारिजं ।

प्रतिपत्रं सुरीणि च नृत्यं विश्वमनोहरम् ॥२६॥

सप्तविंशतिकोट्युक्ताः एवं हस्तिमुखोपरि ।

नृत्यन्ति स्माङ्गहारैश्च व्यञ्चकैर्नृत्यकोविदैः ॥२७॥

ऐरावतं समुत्सृज्य एवमिन्द्रो विमानगैः ।

सुरैरशेषैः संयुक्तः श्रावस्तिनगरं ययौ ॥२८॥

अन्वयार्थ - (तस्य = उस हाथी के), प्रत्यास्यं = प्रत्येक मुख में, अष्टाष्टरदाः = आठ-आठ दांत, च = और, प्रतिदन्तं = प्रत्येक दांत पर, एकैकं = एक-एक, सरांसि = सरोवर, प्रतिकासारं = प्रत्येक सरोवर में, सपादशतसंमिताः = सवा सौ की संख्या में सीमित, शुभाः = शुभ-श्वेत, अम्भोजिन्यः = कमलनियों, च = और, तद्वत् = उनके समान शुभ-श्वेत, प्रत्यम्भोजिनि = प्रत्येक कमलिनी पर, पंचविंशत्पंचविंशत् = पच्चीस-पच्चीस,

वराणि = श्रेष्ठ सुन्दर, कमलानि = कमल, अमवन् = थे।
 प्रतिवारिजं = प्रत्येक कमल पर, अष्टोत्तरसहस्रोक्तपत्राणि =
 एक हजार आठ कमल के पत्ते अर्थात् पंखुड़ियाँ, च = और,
 प्रतिपत्रं = प्रत्येक पत्र या पंखुड़ी पर, सुरीणिः = एक
 देवाङ्गना, विश्वमनोहरं = सभी को अच्छा लगने वाला, नृत्यं
 = नृत्य, (अकरोत् = करती थी), एवं = इस प्रकार,
 हरिस्तमुखोपरि = हाथी के मुख पर, सप्तविंशतिकोद्युक्ताः =
 सत्ताईस करोड़ देवाङ्गनायें, नृत्यकोविदैः = नृत्यविद्या के
 जानकारों द्वारा, व्यञ्जकैः = व्यञ्जित होने योग्य अर्थात् हाव
 भावों सहित अङ्गसञ्चालनों द्वारा, नृत्यन्ति स्म = नाच करती
 थीं। एवं = ऐसे, ऐरावतं = ऐरावत हाथी को, समुत्सृज्य =
 अच्छी तरह से रचकर, विमानगैः = विमान से जाने वाले, अशेषैः
 = बचे हुये सभी, सुरैः = देवताओं से, संयुक्तः = सहित-साथ
 होता हुआ, श्रावस्तीनगरं = श्रावस्ती नगर में, ययौ = गया।

श्लोकार्थ - ऐरावत हाथी के प्रत्येक मुख में आठ-आठ दांत होते हैं।
 प्रत्येक दांत पर एक-एक सरोवर होता है। प्रत्येक सरोवर
 में सवा सौ श्वेत कमलिनियाँ होती हैं प्रत्येक कमलिनी पर
 पच्चीस-पच्चीस सुन्दर कमल होते हैं। एक कमल में एक
 हजार आठ पंखुड़ियाँ होती हैं। तथा प्रत्येक पंखुड़ी पर
 एक-एक देवाङ्गना मनोहर नृत्य करती है। इस प्रकार ऐरावत
 हाथी के मुख पर सत्ताईस करोड़ देवाङ्गनायें संगीत
 पारखियों से समझे जाने योग्य हाव-विलासों-अङ्गसंचालनों
 सहित नृत्य करती हैं।

ऐसे ऐरावत हाथी का निर्माण कर इन्द्र अवशिष्ट विमान से
 गमन करने वाले सभी देवों के साथ श्रावस्ती नगर में आया।

त्रिः परिक्रम्य तद्भूयः प्रभुं संग्राह्य युक्तितः।

सुमेरुपर्वतं गत्वा चक्रे जन्माभिषेचनम् ॥२६॥

अष्टोत्तरशतैः कुम्भैः पूर्णैः क्षोरोदवारिभिः।

देवमस्तोषयद्भक्त्या कानकैरतिविस्मितः ॥३०॥

जयनिर्घोषपूर्व च तत्राहुर्मङ्गलं परं ।
 देवेशेलक्षणं दिव्यं दिदीपे देवतार्चिते ॥३१॥
 सहस्राष्टशताधिक्यगणितानि शुभानि च ।
 बाह्याभ्यन्तरचिन्हेन बभूवस्तस्य वर्ष्मणि ॥३२॥

अन्वयार्थ - भूयः = फिर, तद् = उसको, त्रिः = तीन बार, परिक्रम्य = परिक्रमा करके, युक्तितः = युक्ति से, प्रभुं = प्रभु को, संग्राह्य = लेकर, सुमेरुपर्वतं = सुमेरु पर्वत, गत्वा = जाकर, क्षीरोदवारिभिः = क्षीरसमुद्र के जल से, पूर्णैः = भरे हुये, अष्टोत्तरशतैः = एक हजार आठ, कानकैः = स्वर्ण से बने, कुम्भैः = कलशों से (प्रभोः = प्रभु का) जन्माभिषेचनम् = जन्मभिषेक, चक्रे = किया। च = और, अतिविस्मितः = अत्यधिक आश्चर्यचकित होता हुआ, भक्त्या = भक्ति भाव से, देवं = प्रभु को, अस्तोषयत् = स्तुति से संतुष्ट किया, तत्र = उस अवसर पर, देवेशः = देवेन्द्र, जयनिर्घोषपूर्व = जयकार की घोषणा ध्वनि पूर्वक, परं = उत्कृष्ट, मङ्गलं = मङ्गल वचन, आहुः = बोला। देवतार्चिते = देवताओं द्वारा पूजित प्रभु में, दिव्यं = अत्यधिक कान्तिपूर्ण सुस्पष्ट द्योतित, लक्षणं = लक्षण को, दिदीपे = जाहिर किया। च = और, तस्य = उनके, वर्ष्मणि = शरीर में, बाह्याभ्यन्तरचिन्हेन = अन्तरङ्ग बहिरङ्गचिन्ह द्वारा, (तानि = वे), शुभानि = शुभलक्षण, सहस्राष्टशताधिक्य-गणितानि = एक हजार और एक सौ आठ गिने हुये, बभूवः = हुये।

श्लोकार्थ - फिर इन्द्र ने उसकी तीन बार परिक्रमा करके तथा युक्ति से प्रभु को प्राप्त करके, सुमेरु पर्वत पर जाकर वहाँ क्षीरोदधि के जल से भरे हुये स्वर्णनिर्मित एक हजार आठ कलशों से प्रभु का जन्माभिषेक किया और अतिशय आश्चर्य से चकित होते हुये उसने भक्ति भावना से प्रभु की स्तुति की, उन्हें प्रसन्न-संतुष्ट किया तथा इस अवसर पर जयघोष की ध्वनि पूर्वक देवेश ने अत्यंत उत्कृष्ट मङ्गल वचन कहे एवं देवताओं

से पूजित होते हुये प्रभु में उसने शुभ लक्षण दिखाये, जो उनके शरीर में गिनने पर एक हजार एक सौ आठ हुये।

तत्रः सुरेन्द्रस्तं देवं श्रावस्तिपुरमानयत् ।

भूपाङ्गणे समारोप्य ताण्डवं समदर्शयत् ॥३३॥

अन्वयार्थ - ततः = उसके बाद, सुरेन्द्र = देवेन्द्र, तं = उन, देवं = प्रभु को, श्रावस्तिपुरं = श्रावस्तीपुर में, आनयत् = लाया, (च = और), (देवं = प्रभु को), भूपाङ्गणे = राजा के आंगन में, समारोप्य = समारोपित करके, (सः = उसने), ताण्डवं = ताण्डव नृत्य, समदर्शयत् = दिखाया।

श्लोकार्थ - उसके बाद सुरेन्द्र प्रभु को श्रावस्तीपुर वापिस लाया। उन्हें राजा के आंगन में स्थापित करके उनके सामने ही उसने ताण्डव नृत्य दिखाया।

प्रसन्नचेतसा कृत्वा ततस्तं शम्भवाभिधम् ।

मातुरङ्के समर्प्य सदेवः स्वां पुरीं ययौ ॥३४॥

अन्वयार्थ - ततः = उसके बाद, प्रसन्नचेतसा = हर्षयुक्त मन से, तं = उन प्रभु को, शम्भवाभिधम् = सम्भव नाम, कृत्वा = करके, अथ च = और, मातुः = माता की, अङ्के = गोद में, समर्प्य = समर्पित करके, सदेवः = देवताओं सहित, (असौ = वह), स्वां = अपनी, पुरीं = नगरी को, ययौ = चला गया।

श्लोकार्थ - उसके बाद अर्थात् ताण्डव नृत्य करने के बाद हर्षित मन से वह इन्द्र प्रभु का सम्भवनाथ नाम निश्चित करके तथा उन्हें माता को सौंपकर अपने देवों सहित अपनी नगरी को चला गया।

गते कालेऽथ त्रित्रिंशत्कोटिसागरसंमिते ।

अजितेशादभूत्तत्र काले श्रीशम्भवप्रभुः ॥३५॥

अन्वयार्थ - अथ = अनन्तर, अजितेशात् = अजितनाथ के समय से, त्रित्रिंशत्कोटिसागरसंमिते = तेतीस करोड़ सागर प्रमाण,

काले = काल, गते = बीत जाने पर, तत्र काले = उस काल में, श्रीशम्भवप्रभुः = श्री संभवनाथ भगवान्, अभूत् = हुये थे।

श्लोकार्थ - इसके बाद कवि कहता है कि अजितनाथ तीर्थङ्कर के समय से तेतीस करोड़ सागर प्रमाण काल और बीत जाने पर जो काल था उस काल में श्री संभवनाथ तीर्थङ्कर हुये थे।

षष्टिलक्षोक्तपूर्वायुस्तस्य देवस्य चाभवत् ।

चतुःशतधनुर्मानं कायोत्सेधः प्रकीर्तितः ॥३६॥

अन्वयार्थ - तस्य = उन, देवस्य = संभवनाथ प्रभु की, षष्टिलक्षोक्तपूर्वायुः = साठ लाख पूर्व तक की आयु, अभवत् = थी, च = और, चतुःशतधनुः = चार सौ धनुष, मानं = प्रमाण, कायोत्सेधः = शरीर की ऊँचाई, प्रकीर्तितः = प्रसिद्ध की गयी है।

श्लोकार्थ - उन संभवनाथ प्रभु की आयु साठ लाख पूर्व की तथा शरीर की ऊँचाई चार सौ धनुष प्रमाण थी।

पंचोत्तरदशप्रोक्त लक्ष पूर्व प्रमाणतः ।

कालस्तस्य व्यतीयाय कौमारे तत्कुतूहलात् ॥३७॥

अन्वयार्थ - तस्य = उन प्रभु का, पंचोत्तरदशप्रोक्तलक्षपूर्वप्रमाणतः = पन्द्रह लाख पूर्व प्रमाण, कालः = समय, कौमारे = कुमारावस्था में, (अभवत् = हो गया था), तत् = उसको, कुतूहलात् = कौतूहल से अर्थात् खेल-खेल में सरलता से, व्यतीयाय = बिताकर, (तेन = उसने, राज्यलक्ष्मी = राज्य सम्पदा, अधिगता = प्राप्त की)।

श्लोकार्थ - श्री संभवनाथ का पन्द्रह लाख पूर्व का काल कुमारावस्था में बीता उसके बाद उन्होंने राज्यलक्ष्मी प्राप्त की।

ततो राजा बभूवासौ राज्ये तस्य सुधर्मिणः ।

चतुरुत्तरचत्वारिंशल्लक्षपूर्वा भोगतो गताः ॥३८॥

अन्वयार्थ - ततः = उसके बाद, असौ = वह, राजा = राजा, बभूव = हुये, राज्ये = राज्य में या राजकाज करने में, तस्य = उस, सुधर्मिणः

= धर्मात्मा राजा का, चतुरत्तरचत्वारिंशल्लक्षपूर्वा = चवालीस लाख पूर्व, भोगतः = भोग से, गता = व्यतीत हो गये।

श्लोकार्थ - राज्य मिलने के बाद श्रीसंभवनाथ राजा हुये। राज्य का संचालन करने में उन धर्मात्मा राजा के चवालीस लाख पूर्व भोग भोगने से ही व्यतीत हो गये।

एकदा सिंहपीठे स सुखासीनः प्रजेश्वरः।

तारापातं ददर्श तदा चित्ते व्यचिन्तयत् ॥३६॥

अन्ययार्थ - एकदा = एक दिन, सिंहपीठे = सिंहपीठ नामक सिंहासन पर, सुखासीनः = सुख से बैठे हुये, सः = उस, प्रजेश्वरः = राजा ने, तारापातं = तारे का टूटना, ददर्श = देखा, तदा = तब, अग्रे = आगे, चित्ते = मन में, व्यचिन्तयत् = विचार किया।

श्लोकार्थ - एक दिन सिंहपीठ पर बैठे हुये उस राजा ने तारे का टूटना देखा तो उसने अपने मन में आगे की चिन्ता की, अर्थात् आगे के हित को ध्यान में रखकर ऐसा विचार किया।

नश्वरश्चैष संसारः सारो न हृदि चिन्तितः।

अनुप्रेक्षाः द्वादशका भावयाभास मानसे ॥४०॥

अन्ययार्थ - एषः = यह, संसारः = संसार, नश्वरः = विनाशशील, (अस्ति = है), च = और अत्र = इसमें, सारः = सार तत्त्व, न = नहीं, (अस्ति = है), (इति = इस प्रकार), हृदि = मन में, चिन्तितः = चिन्ता करता हुआ, (असौ = उस राजा ने), मानसे = मन में, द्वादशकाः = बारह, अनुप्रेक्षाः = अनुप्रेक्षार्थे - भावनार्थे, भावयाभास = भायीं।

श्लोकार्थ - उस राजा ने विचार किया कि यह संसार नश्वर है और इसमें कुछ भी सारभूत नहीं है तथा इस प्रकार सोचते हुये उसने अपने मन में बारह भावनाओं को भाया।

तदा लोकान्तिका देवाः प्राप्ताः भूपतिसन्निधौ।

जगुस्ते त्वामृते देव विमर्शयति को भुवि ॥४१॥

अन्वयार्थ - तदा = तभी, भूपतिसन्निधौ = राजा के पास में, लौकान्तिकाः = लौकान्तिक, देवाः = देवगण, प्राप्ताः = उपस्थित हुये, ते = वे देव, जगुः = बोले, देव = हे राजन् !, त्वामृते = तुम्हारे बिना, भुवि = पृथ्वी पर, कः = कौन, (एवं = ऐसा), विमर्शयति = विचार किया करता है।

श्लोकार्थ - तभी राजा के समीप लौकान्तिक देव आ गये और बोले - हे राजन्! तुम्हारे बिना इस पृथ्वीमंडल पर कौन है जो ऐसा विचार करता है।

विशालराज्यसम्पत्तावपि प्राप्तो विरक्तताम् ।

तदा राज्यं स्वपुत्राय दत्त्वासौ सार्वभौमकम् ॥४२॥

अन्वयार्थ - विशालराज्यसम्पत्तौ = विशाल राज्य और अत्यधिक सम्पदा होने पर, अपि = भी, असौ = वह राजा, विरक्ततां = विरक्ति को, प्राप्तः = प्राप्त हुआ। तदा = तभी, सार्वभौमकम् = सारी भूमि सम्बन्धी, राज्यं = राज्य को, स्वपुत्राय = अपने पुत्र के लिये, दत्त्वा = देकर।

श्लोकार्थ - विस्तृत राज्य और विपुल सम्पदा होने पर भी उस राजा ने विरक्तिभाव को प्राप्त किया तथा उसी समय सारी पृथ्वी पर फैले हुये राज्य को अपने पुत्र के लिये देकर दीक्षा लेने हेतु तपोवन चला गया।

स्वयमारुह्य सिद्ध्यर्थं शिविकामद्भुतप्रभाम् ।

नृपविद्याधरसुरैरुढां नूनं देवकृतोत्सवः ॥४३॥

तपोवनमुपागच्छत् गीर्वाणगणसंस्तुतः ।

सहेतुकाभिधारण्ये मार्गे मासि सिते दले ॥४४॥

पंचदश्यां स जग्राह तपोदीक्षामनाकुलः ।

सहस्रैः सह भूपालैर्दीक्षितोऽयं सहस्रगुः ॥४५॥

अन्वयार्थ - नूनं = निश्चित ही, सिद्ध्यर्थं = सिद्धि प्राप्त करने के लिये, स्वयं = खुद ही, अद्भुतप्रभां = आश्चर्यपूर्ण कान्ति वाली, नृपविद्याधरसुरैः = राजाओं, विद्याधरों और देवों द्वारा, उढां



श्री अभिनन्दननाथ स्वामी-आनन्द कूट

= होयी जाती हुई, शिविकां = पालकी पर, आरुह्य = चढ़कर, देवकृतोत्सवः = देवताओं ने जिसके लिये उत्सव किया है ऐसा वह, गीर्वाणगणसंस्तुतः = देवताओं के समूह से स्तुति किया जाता हुआ, तपोवनम् = तपोवन के, उपागच्छत् = पास पहुंच गया। सहेतुकाभिधारण्ये = सहेतुक नामक वन में, मार्गे मासि = मार्गशीर्ष माह में, सिते दले = शुक्ल पक्ष में, पंचदश्यां = पूर्णिमा के दिन, सः = उस, अनाकुलः = आकुलता शून्य राजा ने, तपोदीक्षां = तपश्चरण के लिये दीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया। सहस्रैः = हजारों, भूपालैः = राजाओं के, सह = साथ, दीक्षितः = दीक्षा लेने वाला, अयं = यह राजा, सहस्रगुः = सहस्रगु (प्रोक्तः = कहा गया)।

श्लोकार्थ - तथा रिगद्धि पाने के लिये स्वयं ही अद्भुत शोभा से सम्पन्न और राजाओं, विद्याधरों व देवों द्वारा वहन की जाती हुयी पालकी पर चढ़कर देवताओं द्वारा किये गये उत्सव वाला वह राजा तपोवन के पास पहुंच गया। वहीं सहेतुक वन में मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा के दिन अनाकुलचित्त वाले उस राजा ने तप करने के लिये दीक्षा ले ली। एक हजार राजाओं के साथ दीक्षित होने वाला यह सहस्रगु कहलाया।

महाव्रतानि पञ्चेति धृत्वा तेजोऽर्कसन्निभम्।

मनःपर्ययबोधाद्यो बभूव किल तत्क्षणात् ॥४६॥

अन्वयार्थ - इति = इस प्रकार दीक्षा लेने के क्रम में, पञ्च = पांच, महाव्रतानि = महाव्रतों को, (च = और), अर्कसन्निभम् = सूर्य की कान्ति के समान, तेजः = तेज को, धृत्वा = धारण करके, किल = निश्चित ही, तत्क्षणात् = उसी क्षण, (सः = वह मुनिराज), मनःपर्ययबोधाद्यः = मनःपर्ययज्ञान के धनी, बभूव = हो गये।

श्लोकार्थ - दीक्षा लेने के क्रम में पांच महाव्रतों को और सूर्य के तेज के समान तेज को धारण करके वे जल्दी ही मनःपर्ययज्ञान के धनी हो गये।

अन्तर्मुहूर्ते तज्ज्ञानं प्रादुरासीत्प्रभोर्महत् ।

द्वितीये दिवसे देवो नगरं कनकाभिधम् ॥४७॥

गत्वा भिक्षां समकरोत् कनकप्रभभूपतेः ।

आहारसमये लेभे पंचाश्चर्याणि भूपतिः ॥४८॥

अन्वयार्थ - अन्तर्मुहूर्ते = एक अन्तर्मुहूर्त बीत जाने पर, प्रभोः = प्रभु के, तत् = वह, महत् = विपुलमति, ज्ञानं = मनःपर्ययज्ञान, प्रादुरासीत् = उत्पन्न हो गया था, द्वितीये = दूसरे, दिवसे = दिन, देवः = मुनिराज, कनकप्रभभूपतेः = राजा कनकप्रभ से, भिक्षां = आहार-भिक्षा को, समकरोत् = प्राप्त किया, आहारसमये = आहार होने के काल में, भूपतिः = राजा ने, पंच = पांच, आश्चर्याणि = आश्चर्य, लेभे = प्राप्त किये।

श्लोकार्थ - एक अन्तर्मुहूर्त के बाद प्रभु को विपुलमति मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया। दूसरे दिन मुनिराज ने कनकपुर नगर जाकर राजा कनकप्रभ के यहाँ आहार भिक्षा ली। आहार के समय राजा ने पांच आश्चर्य प्राप्त किये।

पुनः समागमद्देवस्तपोवनमनूत्तमम् ।

द्विसप्ततिसमं देवश्छदमस्थस्तप आचरन् ॥४९॥

कार्तिकस्य चतुर्थ्यां च कृष्णायामपरान्हकैः ।

षष्ठोपवासकृच्छिलातले केवलमवाप सः ॥५०॥

अन्वयार्थ - देवः = मुनिराज प्रभु, पुनः = फिर से, अनूत्तमम् = अत्युत्तम, तपोवनं = तपोवन में, समागमत् = आ गये। (इति = इस प्रकार), द्विसप्ततिसमं = बहत्तर वर्ष तक, छदमस्थः = छदमस्थ अर्थात् अल्पज्ञानी रहकर, तपः = तपश्चरण को, आचरन् = पालते हुये या करते हुये, कार्तिकस्य = कार्तिक मास के, कृष्णायाम् चतुर्थ्यां = कृष्ण पक्ष में चतुर्थी के दिन, अपरान्हकैः = दोपहर बाद, षष्ठोपवासकृत् = छह उपवास करने वाले, सः = उन, देवः = मुनिराज ने, शिलातले = शिलातल पर, (आसीनः = बैठे हुये), केवलं = केवलज्ञान को, अवाप = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ - आहार लेने के पश्चात् मुनिराज पुनः उस अत्युत्तम तपोवन में आ गये इस प्रकार ब्रह्मत्तर वर्ष तक अत्यज्ञानी होकर मुनिराज तपश्चरण करते हुये, षष्ठोपवास की प्रतिज्ञा करके शिलातल पर बैठे तब कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष में चतुर्थी के दिन दोपहर बाद प्रभु ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

तदा समवसारः च स्वयं शक्रादिनिर्मितः ।

यथासंख्यं गणेन्द्राद्यास्तिर्यगन्ताः प्रहर्षिताः ॥५१॥

अन्वयार्थ - तदा च = और तभी, स्वयं = स्वयं, शक्रादिनिर्मितः = इन्द्रादि द्वारा रचित, समवसारः = समवसरण, (तत्र = वहाँ, प्राप्तः = प्राप्त हुआ), (यत्र = जहाँ), यथासंख्यं = क्रमानुसार अपने अपने कोठे में, गणेन्द्राद्याः = गणधर आदि, तिर्यगन्ताः = अन्तिम कोठे वाले तिर्यञ्च, सभी जीव, प्रहर्षिताः = प्रसन्न हो गये।

श्लोकार्थ - और तभी इन्द्रादि द्वारा रचा गया समवसरण वहाँ आ गया जिसमें अपने-अपने कोठों में बैठे हुये क्रमानुसार गणधर को आदि लेकर तिर्यञ्च पर्यन्त सभी जीव आनन्द से भर गये।

स्वस्वकोष्ठे विराजन्ते प्रभुस्तवनतत्पराः ।

सहस्रसूर्यसदृशस्तत्र सिंहासने शुभे ॥५२॥

विभूतिसहितः सम्यग् व्यराजत तपोनिधिः ।

गणेन्द्राद्यैश्च सम्पृष्टो दिव्यध्वनिमुदाहरत् ॥५३॥

अन्वयार्थ - (गणधरादितिर्यञ्चपर्यन्ताः = गणधरादि तिर्यञ्चपर्यन्त सभी जीव), स्व-स्वकोष्ठे = अपने अपने कोठों में, प्रभुस्तवनतत्पराः = भगवान की स्तुति वन्दना आदि में जागरूक होकर, विराजन्ते = सुशोभित होते हैं। तत्र = वहीं, शुभे = अत्यंत शुभ, सिंहासने = सिंहासन पीठ पर, सहस्रसूर्यसदृशः = हजारों सूर्य के समान, विभूतिसहितः = केवलज्ञानादि अन्तरङ्ग बहिरङ्ग लक्ष्मी से युक्त, तपोनिधिः = तप से निधि पाने वाले भगवान्, सम्यग् = अच्छी तरह, व्यराजत = सुशोभित थे, च

= और, गणेन्द्राद्यैः = गणधर आदि द्वारा, सम्पृष्टः = विनयपूर्वक पूछे गये भगवान् ने, दिव्यध्वनिम् = दिव्यध्वनि को, उदाहरत् = उच्चारित किया।

श्लोकार्थ - अपने अपने कोठों में बैठे तथा भगवान् के स्तवनादि में तत्परता से लगे हुये गणधरादि तिर्यञ्चपर्यन्त सभी जीव समोत्तरण में सुशोभित होते हैं तथा वहीं शुभ सिंहासग पीठ पर हजारों सूर्य की कान्ति के समान कान्तिमान् केवलज्ञानादि अन्तरङ्ग बहिरङ्ग लक्ष्मी से संयुक्त तपोनिधि भगवान् भी सुशोभित थे। गणधरादि द्वारा पूछे जागे पर भगवान् की दिव्यध्वनि खिरी।

नानाधर्मोपदेशं स कृतवांस्तत्र निर्मलः ।
 विहृत्य धर्मोपदेशान् शिष्टे मासप्रमाणतः ॥५४॥
 आयुषि स्वदिव्यनादं तदा समहरत्प्रभुः ।
 सम्मददत्तधवलकूटं मुनिवरैः सह ॥५५॥
 संप्राप्य तत्र शुद्धात्मा मासमेकमुवास वै ।
 वैशाखकृष्णषष्ठ्यां च सहस्रमुनिभिः सह ॥५६॥
 देवाधिदेवः सम्प्राप मुक्तिं परमदुर्लभाम् ।
 तत्पश्चात् कोटिकोट्यश्च नव धैवं द्विसप्ततिः ॥५७॥
 लक्षात्सप्तसहस्राणि द्विचत्वारिंशदुत्तरम् ।
 शतानि पंच मुनयः सन्ति संख्याप्रमाणतः ॥५८॥
 अभिनन्दनपर्यन्तं गतास्तत्रैव सिद्धताम् ।
 तद्दत्तधवलस्यास्य सम्यग्यात्राविधायिनः ॥५९॥
 तिर्यङ्नरकगत्योश्च नाशो भवति निश्चितम् ।
 द्विचत्वारिंशदुद्भूतं लक्षप्रोषधजं फलम् ॥६०॥

अन्वयार्थ - तत्र = वहाँ-भरतक्षेत्र में, नाना = अनेक, (देशेषु = देशों में), सः = उन, निर्मलः = पूर्णवीतरागी भगवान् ने, धर्मोपदेशं = धर्म का उपदेश, कृतवान् = किया। मासप्रमाणतः = एक माह के बराबर, आयुषि शिष्टे = आयु शेष रहने पर, धर्मोपदेशान् = धर्म के उपदेशों को, विहृत्य = रोककर, प्रभुः = भगवान्

ने, स्वदिव्यनादं = अपनी दिव्यध्वनि को, समहरत् = बंद कर दिया। च = और, तदा = तब, मुनिवरैः सह = मुनिराजों के साथ, सम्मेददत्तधवलकूटं = सम्मेदशिखर की दत्तधवलकूट को, संप्राप्य = प्राप्त करके, तत्र = वहाँ, वै = ही, (असौ = उन), शुद्धात्मा = शुद्धात्मा ने, एकम् = एक, मासं = माह तक, उवास = निवास किया। च = और, सहस्रमुनिभिः सह = एक हजार मुनियों के साथ, देवाधिदेवः = देवाधिदेव संभवनाथ तीर्थंकर ने, वैशाखकृष्णषष्ठां = वैशाख कृष्ण षष्ठी के दिन, परमदुर्लभां = परमदुर्लभ, मुक्तिं = मुक्ति को, सम्प्राप = प्राप्त किया। तत्पश्चात् = उसके बाद, अभिनन्दनपर्यन्तं = चौथे तीर्थङ्कर अभिनन्दन नाथ के समय तक, संख्याप्रमाणतः = संख्या प्रमाण की अपेक्षा, नव = नौ, कोटिकोट्यः = कोड़ा कोड़ी, एवं च = और, द्विसप्ततिः = बहत्तर, लक्षात् = लाख से, (अधिकं = अधिक), सप्तसहस्राणि = सात हजार, उत्तरम् = आगे, द्विचत्वारिंशत् = बयालीस, शतानि = सौ, पंच = पांच, मुनयः = मुनिराज, सान्ना = हैं, ये = जिन्होंने, तत्रैव = उस दत्तधवलकूट पर ही, सिद्धतां = सिद्धत्व को, गताः = प्राप्त किया। तत् = इसलिये, अस्य = इस, दत्तधवलस्य = दत्तधवल कूट की, सम्यक् = सच्ची, यात्राविधायिनः = यात्रा रूप वन्दना करने वाले की, तिर्यङ्नरकगत्योः = तिर्यञ्च और नरक गति का, नाशः = अभाव, निश्चितं = सुनिश्चित ही, भवति = होता है, च = और, द्विचत्वारिंशत् = बयालीस, लक्षप्रोषधजं = लाख प्रोषधोपवास से जनित, फलं = फल, उद्भूतं = उत्पन्न हो जाता है।

श्लोकार्थ - उन संभवनाथ नामक पूर्ण वीतरागी भगवान् ने भरत क्षेत्र के अनेक देशों में धर्म का उपदेश किया। तथा एक माह आयु शेष रहने पर उन्होंने धर्मोपदेशों को रोककर अपनी दिव्यध्वनि को बंद कर दिया। और तभी मुनिवरों के साथ सम्मेदशिखर के दत्तधवलकूट को प्राप्तकर वहीं उन्होंने एक मास तक

निवास किया और एक हजार मुनियों के साथ वैशाख कृष्ण षष्ठी के दिन परमदुर्लभ मुक्ति प्राप्त कर ली। उनकी मुक्ति हो जाने के बाद चौथे तीर्थङ्कर अभिनन्दन नाथ के समय तक इसी कूट पर नौ कोड़ा कोड़ी बहत्तर लाख सात हजार बयालीस सौ पांच मुनियों ने मुक्त होकर सिद्ध दशा को प्राप्त किया। इसीलिये कवि कहता है कि इस दत्तधवल कूट की सच्ची यात्रा करने वाले के तिर्यञ्च गति और नरक गति का नाश हो जाता है और बयालीस लाख प्रोषघोषवास करने से जितना फल होता है उतना फल उत्पन्न हो जाता है।

अनायासादवाप्नोति तत्कूटस्य च यात्रिकः ।

एककूटफलं ह्येतत्सर्वकूटप्रपूजनात् ॥६१॥

यत्फलं तत्फलं वक्तुं वाग्देव्यापि न शक्यते ।

मादृशश्चाल्पमेधास्तु तत्कथं कथयितु क्षमः ॥६२॥

अन्वयार्थ - च = और, तत्कूटस्य = उस दत्तधवल कूट का, यात्रिकः = वन्दना करने वाला यात्री, अनायासात् = विना प्रयास से, (प्रोक्तफलं = ऊपर कहे गये फल को), अवाप्नोति = प्राप्त कर लेता है। एतत् = यह, एककूटफलं = एक कूट की यात्रा का फल, हि = ही, (ज्ञेयम् = जानना चाहिये), सर्वकूटप्रपूजनात् = सारी टोकों की वन्दना-पूजन करने से, यत्फलं = जो फल, (भवति = होता है), तत्फलं = वह फल, वाग्देव्या = वाग्देवी द्वारा, अपि = भी, वक्तुं = कहा, न = नहीं, शक्यते = जा सकता है। च = फिर, मादृशः = मेरे जैसा, अल्पमेधाः = अल्प बुद्धिवाला, तु = तो, तत् = वह फल, कथयितुं = कहने के लिये, कथं = कैसे, क्षमः = समर्थ, (भवितुं शक्नोति = हो सकता है)।

श्लोकार्थ - इस प्रकार उपर्युक्त फल को दत्तधवल कूट की यात्रा करने वाला यात्री सहज रूप से प्राप्त कर लेता है। यह तो एक कूट का फल बताया गया है। सभी कूटों अर्थात् सम्मेदशिखर

की सारी टोकों की पूजा-वन्दना करने से जितना फल प्राप्त होता है उस फल को तो वाग्देवी भी नहीं कह सकती है फिर मुझ जैसा अल्पबुद्धि कवि उस को कहने में समर्थ कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता है।

जम्बूद्वीपेऽथ सुक्षेत्रे बंगदेशे पुरं वरम् ।

हेमाख्यं तत्र राजाभूत् हेमदत्तः सुधार्मिकः ॥६३॥

अन्वयार्थ - अथ = अब और, जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, सुक्षेत्रे = आर्यक्षेत्र में, बंगदेशे = बंगदेश में, हेमाख्यं = हेम नामक, वरं = श्रेष्ठ, पुरं = नगर, (आसीत् = था), तत्र = वहाँ, हेमदत्तः = हेमदत्त, (एकः = एक), सुधार्मिकः = धार्मिक, राजा = राजा, अभूत् = था।

श्लोकार्थ - उपर्युक्त कथन के बाद कवि क्षेत्र की महिमा बताने के लिये कहता है कि जम्बूद्वीप के आर्यक्षेत्र में बंगदेश के हेमपुर नामक नगर का राजा हेमदत्त था, जो धर्मात्मा था।

तद्राज्ञी जयसेनाख्या पुत्रहीना न सा बभौ ।

महापरात्मिकाप्येषा पुत्रवाञ्छासमाकुला ॥६४॥

अन्वयार्थ - तद्राज्ञी = उसकी रानी, जयसेनाख्या = जयसेना नाम वाली (आसीत् = थी), पुत्रहीना = पुत्रविहीन, सा = वह रानी, न = नहीं, बभौ = सुशोभित हुई। एषा = यह रानी, महापरात्मिका = बहुत परोपकारिणी अथवा स्व पर भेद विज्ञान को समझने वाली परम विदुषी होकर, अपि = भी, पुत्रवाञ्छासमाकुला = पुत्र पाने की उत्कट इच्छा से व्याकुल, (आसीत् = थी)।

श्लोकार्थ - उस राजा की जयसेना नामक रानी थी जो पुत्र न होने से दुःखी थी अतः सुशोभित नहीं थी, उदास रहती थी। यह बहुत ही परोपकार करने वाली अथवा आत्मा और पर को जानने वाली महान् विदुषी थी तथापि पुत्र पाने की इच्छा से व्याकुल थी।

एकदा सा महाराजं व्यजिज्ञपदुदारधीः ।

देव पुत्रनिमित्तं हि यत्नः कार्यस्त्वयाधुना ॥६५॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, उदारधीः = उदार बुद्धि वाली, सा = उस रानी ने, महाराजं = महाराज से, व्यजिज्ञपद = जिज्ञासा प्रकट की या निवेदन किया। देव = हे स्वामी!, अधुना = अब, त्वया = तुम्हें, पुत्रनिमित्तं = पुत्र पाने के निमित्त, हि = अवश्य, यत्नः = प्रयास, कार्यः = करना चाहिये।

श्लोकार्थ - एक दिन उदार बुद्धि वाली उस रानी ने राजा से अपने मन की बात कही या निवेदन किया कि हे स्वामी! अब तुम्हें पुत्र पाने के लिये अवश्य ही प्रयत्न करना चाहिये।

स प्राह कर्मवशतः प्राप्यतेऽत्र शुभाशुभम् ।

उवाचैषा तथापीश यत्नात्सिद्धिः स्मृता बुधैः ॥६६॥

अन्वयार्थ - सः = वह राजा, प्राह = बोला, अत्र = यहाँ, कर्मवशतः = कर्मोदय के वश से अर्थात् कर्म के उदय अनुसार (जीवेन = जीव द्वारा), शुभाशुभम् = शुभ और अशुभ फल, प्राप्यते = प्राप्त किया जाता है। एषा = यह रानी, उवाच = बोली, ईश! = हे स्वामी!, तथापि = फिर भी, (त्वया प्रयत्नो विधेयः = तुम्हें प्रयत्न करना चाहिये), (यतः = क्योंकि), बुधैः = विद्वानों द्वारा, यत्नात् = प्रयत्न से, सिद्धिः = सफलता, स्मृता = स्मृत होती है, बतायी जाती है।

श्लोकार्थ - उत्तर में राजा बोला इस लोक में कर्मोदय के अनुसार ही शुभ और अशुभ फल जीवों द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। शुभोदय के विना क्या प्रयास करें तो रानी बोली हे देव! फिर भी आपको प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि विद्वज्जनों ने "प्रयत्न करने से कार्य की सिद्धि होना" कहा है।

द्वौ तदानीं च विपिने गतौ घम्पाशिलोपरि ।

अशोकवृक्षमूले चापश्यतां चारणौ मुनी ॥६७॥

अन्वयार्थ - तदाणीं च = और उसी समय, द्वौ = वे दोनों, गतौ = चल दिये, विपिने च = और जंगल में, अशोकवृक्षमूले = अशोकवृक्ष के मूलभाग में नीचे, चम्पाशिलोपरि = चम्पा नामक शिला के ऊपर, चारणौ = चारण ऋद्धिधारी, मुनी = दो मुनियों को, अपश्यताम् = देखा।

श्लोकार्थ - और उसी समय वे दोनों राजा और रानी घूमने चल दिये। उन्होंने वन में अशोकवृक्ष के नीचे और चम्पानामक शिला के ऊपर बैठे हुये दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराजों को देखा।

परिक्रम्य च तौ धीरौ वंदेते स्वस्वभावतः ।

पुनस्तं प्राह भूमीशो मुने! शृणु वचो मम ॥६८॥

अन्वयार्थ - च = और, तौ = उन दोनों ने, स्वस्वभावतः = अपने नमन करने योग्य स्वभाव से ही, धीरौ = धीर-गंभीर उन दोनों मुनिराजों को, वंदेते = नमस्कार किया। पुनः = फिर, भूमीशः = राजा, तं = उनमें से एक मुनिराज को, प्राह = बोला, मुने = हे मुनिवर! मम = मेरे, वचः = वचन, शृणु = सुनिये।

श्लोकार्थ - उन दोनों राजा-रानी ने अपने नमस्कार करने वाले स्वभाव से ही उन दोनों धीर-गंभीर मुनिराजों को नमस्कार किया, उनकी वन्दना की। इसके बाद फिर राजा ने एक मुनिराज से कहा मुनिवर! आप मेरे वचन सुनें।

अपुत्रोऽहं जगत्पस्मिन् भविष्यत्यपि वा न मे ।

विचार्याह मुनिर्भूपं राजन्मद्वचनं कुरु ॥६९॥

अन्वयार्थ - अस्मिन् = इस, जगति = जगत में, अहं = मैं, अपुत्रः = पुत्रहीन, (अस्मि = हूँ), अपि = क्या?, मे = मेरा, (पुत्रः = पुत्र) भविष्यति = होगा, वा = अथवा, न = नहीं, मुनिः = मुनिराज, विचार्याह = विचार करके, भूपं = राजा को, आह = बोले, राजन् = हे राजन्! मद्वचनं = मेरे वचनानुसार, कुरु = तुम करो।

श्लोकार्थ - इस जगत में मैं पुत्रहीन हूँ। क्या मेरे पुत्र होगा अथवा नहीं

होगा, राजा के उक्त प्रश्न पर सोच-विचार कर मुनिराज ने राजा से कहा—हे राजन् मेरे कहे अनुसार तुम करो।

सम्मेदशैलयात्रातस्तव पुत्रो भविष्यति ।

पुत्रसौख्यमनुप्राप्य पश्चात्त्वं मुक्तिमेष्यसि ॥७०॥

अन्वयार्थ - सम्मेदशैलयात्रातः = सम्मेदशिखर की यात्रा अर्थात् वन्दना से, तव = तुम्हारा, पुत्रः = पुत्र, भविष्यति = होगा, पुत्रसौख्यम् = पुत्र का सुख, अनुप्राप्य = पाकर अनुभव करके, पश्चात् = बाद में, त्वं = तुम, मुक्तिं = मोक्षलक्ष्मी को, एष्यसि = पाओगे।

श्लोकार्थ - सम्मेदशिखर की तीर्थ यात्रा अर्थात् वन्दना करने से तुम्हारे पुत्र होगा। अनुक्रम से पुत्र का सुख पाकर अनुभव करके तत्पश्चात् तुम मोक्ष सम्पदा को भी प्राप्त करोगे।

मुनेराज्ञां समादाय देव्या सह महीपतिः ।

रक्ताम्बरधरस्तूर्ण यात्रायै सम्मुखोऽभवत् ॥७१॥

अन्वयार्थ - मुनेः = मुनिराज से, आज्ञां = आज्ञा, समादाय = लेकर, महीपतिः = राजा, देव्या सह = रानी के साथ, रक्ताम्बरधरः = रक्तपूर्ण के लाल कपड़े धारण किये हुये, तूर्ण = शीघ्र, यात्रायै = तीर्थ वन्दना के लिये, सम्मुखः = समुद्यत-तैयार, अभवत् = हुआ।

श्लोकार्थ - मुनिराज से आज्ञा लेकर वह राजा अपनी रानी के साथ रक्त वर्ण के लाल वस्त्र धारण किये हुये शीघ्रता से तीर्थराज की यात्रा करने के लिये तैयार हो गया है अर्थात् तीर्थ यात्रा करने को निकल पड़ा।

कोटिमानवसंयुक्तः चतुःसंघान्प्रपूज्य सः ।

महोत्साहेन संयुक्तः सम्मेदमगमन्तूपः ॥७२॥

अन्वयार्थ - चतुःसंघान् = चारों संघों को विधिवत् पूजकर, कोटिमानवसंयुक्तः = एक करोड़ मनुष्यों को साथ लेता हुआ, सः = वह, तूपः = राजा, महोत्साहेन संयुक्तः = महान् उत्साह से सहित होता

हुआ, सम्मेदं = सम्मेदशिखर क्षेत्र को, अगमत् = गया।

श्लोकार्थ - मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका इन चारों संघों की यथायोग्य विधिपूर्वक पूजा करके एक करोड़ लोगों को साथ लेकर वह राजा अत्यधिक उत्साह के साथ सम्मेदशिखर तीर्थ क्षेत्र पर गया।

सः सिद्धपर्वतं भूपः संपूज्य विधियत्तदा।

त्रिः परिक्रम्य हर्षेण सह चागत्यगालवम् ॥७३॥

अन्वयार्थ - तदा च = और तब अर्थात् सिद्धपर्वत पर पहुंचने के बाद, सः = वह, भूपः = राजा, विधियत् = विधिपूर्वक, सिद्धपर्वतं = सिद्धपर्वत को, संपूज्य = पूजकर, हर्षेण सह = हर्ष के साथ, (तस्य = उसकी) त्रिः = तीन, परिक्रम्य = परिक्रमा या प्रदक्षिणा करके, स्व = अपने, आलयं = घर को, अगात् = आ गया।

श्लोकार्थ - और तब अर्थात् सम्मेदशिखर सिद्ध क्षेत्र पर पहुंच जाने पर राजा ने विधिपूर्वक सिद्धपर्वत की पूजा की एवं अत्यधिक हर्ष के साथ उसकी तीन परिक्रमायें या प्रदक्षिणायें कीं एवं अपने घर आ गया।

रत्नदत्तस्तत्प्रभावात् तस्य पुत्रो बभूव हि।

तस्यैव वंशे समभून्मघवान् चक्रवर्त्यपि ॥७४॥

अन्वयार्थ - तत्प्रभावात् = सम्मेदशिखर की यात्रा के प्रभाव से, हि = ही, तस्य = उस राजा के, रत्नदत्तः = रत्नदत्त नामक, पुत्रः = पुत्र, बभूव = हुआ, तस्य = उसके, वंशे = कुल में, मघवान् = मघवान् नामक, चक्रवर्ती = चक्रवर्ती, अपि = भी, समभूत् = उत्पन्न हुआ।

श्लोकार्थ - सम्मेदशिखर की उस तीर्थयात्रा के प्रभाव से ही उस राजा के रत्नदत्त नामक पुत्र हुआ और उसके वंश में मघवा चक्रवर्ती भी उत्पन्न हुआ।

तेनापि संधतो यात्रा सम्मेदस्य कृता शुभा।

द्वात्रिंशल्लक्षसङ्घेन विलाससुखदायिनी ॥७५॥

अन्वयार्थ - तेनापि = मधवा चक्रवर्ती द्वारा भी, सम्मेदस्य = सम्मेदशिखर की, विलासदायिनी = आनन्दकारिणी, शुभा = शुभ फल वाली, यात्रा = तीर्थ वंदना रूप यात्रा, संघतः = संघ की अपेक्षा, द्वात्रिंशल्लक्षसंघेन = बत्तीस लाख के संघ या समूह के, (सह = साथ), कृता = की थी।

श्लोकार्थ - मधवा चक्रवर्ती ने भी सम्मेदशिखर पर्वत की शुभ और आनन्दकारिणी यात्रा संघ की अपेक्षा बत्तीस लाख मनुष्यों के समूह के साथ की थी।

यात्रा सम्मेदशैलस्य सर्वकार्यफलप्रदा ।
कर्त्तव्या सततं सुज्ञैः चतुर्वर्गफलार्थिभिः ॥७६॥

अन्वयार्थ - चतुर्वर्गफलार्थिभिः = चारों वर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी फल चाहने वाले, सुज्ञैः = ज्ञानियों द्वारा, सम्मेदशैलस्य = सम्मेदशिखर पर्वत की, सर्वकामफलप्रदा = कामना किये गये सभी फल देने वाली, यात्रा = तीर्थवन्दना रूप यात्रा, सततं = हमेशा या अवश्य, कर्त्तव्या = की जानी चाहिये।

श्लोकार्थ - धर्म-कर्म-काम-मोक्ष रूपी चतुर्वर्ग पुरुषार्थ के फल को चाहने वाले सुविज्ञ जनों द्वारा अवश्य ही सम्मेदशिखर की कामना किये सभी फलों को देने वाली यात्रा की जानी चाहिये।

वर्धमानोक्तितः पश्चात्लोहाचार्येरितं च यत् ।

तद्भव्येषु प्रमाणं हि अभव्यानाधिकारिणः ॥७७॥

अन्वयार्थ - वर्धमानोक्तितः = वर्धमान भगवान् के उपदेश के बाद, पश्चात् = पीछे अर्थात् कुछ समय के उपरान्त, लोहाचार्येरितं = लोहाचार्य द्वारा बताया या प्रेरित किया गया, यत् = जो सम्मेदशिखर का माहात्म्य (अस्ति = है), तत् = वह माहात्म्य, भव्येषु = भव्य जीवों में, प्रमाणं = प्रमाणभूत, हि = ही, (वर्तते = होता है), (तत्र = उसमें), अभव्याः = अभव्यजीव, अधिकारिणः = अधिकारी, न = नहीं, भवन्ति = होते हैं।

श्लोकार्थ - भगवान् महावीर के उपदेश के उपरान्त कुछ समय पीछे लोहाचार्य द्वारा कहा गया या प्रेरित किया गया जो सम्मेदशिखर का माहात्म्य है, वह भव्यजनों में प्रमाण ही है तथा अगव्य लोग उसमें अधिकारी नहीं होते हैं।

श्रीसम्मेदगिरीन्द्रदत्तधवल प्रख्यात कूटस्थितः ।
 कायोत्सर्गविधानतत्परमतिर्योगीन्द्र वृन्दार्चितः ॥
 योगादाप्तनिरामयः सुखमयोध्यानाग्निदग्धाखिल-
 व्यामोहप्रविकरस्स पातु सततं श्रीशम्भवो वः प्रभुः ॥७८॥

अन्वयार्थ - श्रीसम्मेदगिरीन्द्रदत्तधवलप्रख्यातकूटस्थितः = श्री सम्मेदशिखर पर्वतराज की दत्तधवल नामक प्रसिद्ध कूट पर सुस्थित, कायोत्सर्गविधानतत्परमतिः = कायोत्सर्ग करने में तत्पर बुद्धि वाले, योगीन्द्रवृन्दार्चितः = योगीन्द्रों-मुनिराजों के समूह द्वारा पूजे जाते हुये, योगादाप्तनिरामयः = योग से निरामय स्वरूप को प्राप्त, सुखमयः = सुखस्वरूपी, ध्यानाग्निदग्धाखिलव्यामोहप्रविकः = ध्यानाग्नि से सम्पूर्ण मोह समूह को दग्ध करने वाले, सः = वह, प्रभुः = भगवान्, श्रीशम्भवः = श्रीसंभवनाथ, वः = तुम सबकी, पातु = रक्षा करें।

श्लोकार्थ- श्री सम्मेदशिखर पर्वतराज की सुविख्यात दत्तधवलकूट पर विराजमान, कायोत्सर्ग करने में तत्पर, योगीन्द्रों-मुनिराजों से पूजित, योग से निरामयता को प्राप्त, सुख स्वरूप वाले और ध्यानाग्नि से सम्पूर्ण मोह समूह को दग्ध करने वाले वे श्री संभवनाथ भगवान् तुम्हारी सबकी रक्षा करें।

(इति श्री सम्मेदगिरिमाहात्म्ये दत्तधवलकूटवर्णनं श्रीशम्भवनाथ-
 तीर्थेशवृत्तान्तं नाम तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ।)

(इस प्रकार श्रीसम्मेदगिरीमाहात्म्य में दत्तधवलकूट का वर्णन और श्रीतीर्थङ्कर संभवनाथ का वृत्त विवेचक यह
 तृतीय अध्याय समाप्त हुआ।)

चतुर्थोऽध्यायः

कोटिसूर्याधिकज्योतिः कपिलाञ्छनलाञ्छितः ।

जयत्यविरतं श्रीमान् परमेशोऽभिनन्दनः ॥१॥

अन्वयार्थ — कोटिसूर्याधिकज्योतिः = करोड़ों सूर्यों की कान्ति से अधिक कान्तिमान्, कपिलाञ्छनलाञ्छितः = बन्दर के चिन्ह से चिह्नित अर्थात् पहिचाने जाने वाले, परमेशः = परम देवाधिदेव भगवान्, श्रीमान् = केवलज्ञानादि लक्ष्मी से सहित, अभिनन्दनः = अभिनन्दननाथ, अविरतं = निरन्तर, जयति = जीतते हैं।

श्लोकार्थ — करोड़ों सूर्यों की कान्ति से भी अधिक कान्तिमान्, बन्दर के चिन्ह से पहिचाने जाने वाले अर्थात् लक्ष्मी के स्वामी परमप्रभु भगवान् अभिनन्दननाथ सतत जयशील होते हैं, जीतते हैं।

जम्बूद्वीपे विदेहेऽत्र पूर्वस्मिन्भाति सन्ततम् ।

सीतानद्याश्च तद्भागे दक्षिणे मङ्गलावती ॥२॥

देशोऽभिरम्यस्तत्रास्ते पुरं श्रीरत्नसंचयम् ।

महाबलाख्यस्तत्रासीद्राजा सुकृतसागरः ॥३॥

अन्वयार्थ — अत्र = इस, जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, पूर्वस्मिन् विदेहे = पूर्व विदेह में, सीतानद्याः = सीता नदी के, दक्षिणे = दक्षिण, भागे = भाग में, सन्ततं = सदा, अभिरम्यः = सुन्दर व रमणीय, मङ्गलावती = मङ्गलावती नामक, देशः = देश, (अस्ति = है), च = और, तत्र = वहाँ, श्रीरत्नसंचयं = श्रीरत्नसंचय नामक, पुरं = नगर, आस्ते = है। तत्र = उसमें, महाबलाख्यः = महाबल नामक, सुकृतसागरः = पुण्यात्मा अर्थात् विपुल पुण्य का स्वामी, राजा = राजा, आसीत् = था।

श्लोकार्थ — इस जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में सीता नदी के दक्षिण भाग में एक अतिसुन्दर और रमणीय देश है जिसका नाम मङ्गलावती है। उस देश में श्रीरत्नसंचयपुर नामक एक नगर

है जिसका राजा महाबल विपुल पुण्यशाली अर्थात् पुण्यात्मा था ।

महासेना च तद्वाङ्गी कान्त्याभूदिव कौमुदी ।

तया सह महीपालः परमं सुखमन्वभूत् ॥४॥

अन्वयार्थ — तद्वाङ्गी च = और उसकी रानी, महासेना = महासेना, कान्त्या = कान्ति की अपेक्षा, कौमुदी इव = चन्द्र-कान्ति के समान, अभूत् = थी । महीपालः = राजा ने, तया सह = उस रानी के साथ, परमं = परम, सुखं = आनन्द को, अन्वभूत् = भोगा या अनुभव किया ।

श्लोकार्थ — उस राजा की रानी महासेना थी जो कान्ति की अपेक्षा, चन्द्रमा की कान्ति के समान थी । उसके साथ राजा ने परम आनन्द को भोगा अर्थात् अत्यधिक आनन्द का अनुभव किया ।

एकदादर्शमध्ये स किञ्चित्पलितमैक्षत ।

तदहेतुनैव वैराग्यमगमत्सुदृढं प्रभुः ॥५॥

अन्वयार्थ — एकदा = एक दिन, सः = उस राजा ने, आदर्शमध्ये = दर्पण में, किञ्चित् = थोड़ा या कोई, पलितं = पका हुआ सफेद बाल को, ऐक्षत = देखा । तदहेतुना = उस कारण से, एव = ही, प्रभुः = राजा, सुदृढं = स्थिर या मजबूत, वैराग्यं = वैराग्य को, अगमत् = प्राप्त हुआ ।

श्लोकार्थ — एक दिन उस राजा ने दर्पण में अपना कोई थोड़ा बहुत पका हुआ बाल देखा तो उस कारण ही उसे सुस्थिर वैराग्य हो गया ।

धनपालाख्यपुत्राय तदा राज्यं समर्प्य सः ।

महाविवेकसम्पन्नः स्वयं वनमुपाययौ ॥६॥

अन्वयार्थ — तदा = तब अर्थात् वैराग्य होने पर, महाविवेकसम्पन्नः = अत्यधिक विवेकशील, सः = वह राजा, धनपालाख्यपुत्राय = धनपालनामक पुत्र के लिये, राज्यं = राज्य को, समर्प्य = अर्पित करके या देकर, स्वयं = खुद ही, वनं = वन को, उपाययौ = चला गया ।

श्लोकार्थ — वैराग्य होने पर तभी वह अत्यंत विवेकशील राजा धनपाल नामक अपने पुत्र को राज्य देकर स्वयं ही वन में चला गया।

गत्वा विमलवाहस्य स्वामिनः पादसन्निधौ।

दीक्षां समग्रहीदाजा तपसे कृतनिश्चयः ॥७॥

अन्वयार्थ — (वने = वन में), विमलवाहस्य स्वामिनः = मुनिराज विमलवाहन की, पादसन्निधौ = चरणसन्निधि में, गत्वा = जाकर, तपसे = तपश्चरण के लिये, कृतनिश्चयः = निश्चय कर लेने वाले, राजा = राजा ने, दीक्षां = दीक्षा को, समग्रहीत् = ग्रहण कर लिया।

श्लोकार्थ — वन में मुनिराज विमलवाहन की चरण सन्निधि में जाकर तपश्चरण करने के लिये दृढ़ निश्चयी उस राजा ने मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली।

मुनिश्चैकादशाङ्गानि

तद्वत्षोडशभावनाः।

भावं कृत्वा च सन्धार्य रराज द्युमणिर्यथा ॥८॥

अन्वयार्थ — च = और, मुनिः = वे मुनिराज, एकादश = ग्यारह, अङ्गानि = अङ्गों को, सन्धार्य = धारण करके, षोडशभावनाः = सोलह भावनाओं को, तद्वत् = अङ्गों को धारण करने के समान, (अवबुध्य = जानकर), (तासां = उन भावनाओं की), भावं कृत्वा = भावना करके, (तथैव = वैसे ही), रराज = सुशोभित हुये, यथा = जैसे, द्युमणिः = द्युमणि, (राजते = सुशोभित होती है)।

श्लोकार्थ — और वे मुनिराज ग्यारह अङ्गों को धारण करके सोलह भावनाओं और अङ्गों को धारण करने के समान जानकर उनकी भावना करके वैसे ही सुशोभित हुये जैसे द्युमणि सुशोभित होती है।

आयुषोऽन्ते च सन्यासविधिना देहमुत्सृजन्।

सयार्थसिद्धिनामयिमानं

प्राप्तवान्मुनिः ॥९॥

अन्वयार्थ — च = और, आयुषः = आयु के, अन्ते = अन्त में, सन्यासविधिना = सन्यास मरण की रीति से, देहम् = देह को, उत्सृजन् =

छोड़ते हुये, मुनिः = मुनिराज ने, सर्वार्थसिद्धिनामविमानं = सर्वार्थसिद्धि नामक विमान को, प्राप्तवान् = प्राप्त किया।

श्लोकार्थ — तथा आयु के अन्त में सन्यास मरण की विधि से शरीर छोड़ते हुये उन मुनिराज ने सर्वार्थसिद्धि नामक विमान को प्राप्त किया।

तत्राहमिन्द्रपदवीं सम्प्राप्य स्वतपोबलात् ।

त्रित्रिंशत्सागरायुष्यः भूमावधिलोचनः ॥१०॥

अन्वयार्थ — तत्र = सर्वार्थसिद्धि में, अहमिन्द्रपदवीं = अहमिन्द्र पदवी को, सम्प्राप्य = पाकर, त्रित्रिंशत्सागरायुष्यः = तेतीस सागर की आयु वाला, (सः = वह), स्वतपोबलात् = अपने तप के बल से, भूमावधिलोचनः = भूमिपर्यन्त अवधिज्ञान से जानने वाला, (अभूत् = हो गया)।

श्लोकार्थ — सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र पद पाकर तेतीसागर की आयु वाला वह देव अपने तपबल से सातवीं भूमि पर्यन्त मर्यादा वाले अवधिज्ञान से जानने वाला हो गया।

त्रित्रिंशदुक्तसाहस्रवर्षोपरि स मानसं ।

भोजनं कृतवांस्तत्र स्वानन्दपरितोषितः ॥११॥

अन्वयार्थ — स्वानन्दपरितोषितः = अपने में ही प्राप्त आनन्द से पूर्ण संतुष्ट होता हुआ, सः = वह अहमिन्द्र, तत्र = उस सर्वार्थसिद्धि में, त्रित्रिंशदुक्तसाहस्रवर्षोपरि = तेतीस हजार वर्षों के बाद, मानसं = मन की इच्छावाला मात्र, भोजनम् = अमृत भोजन, कृतवान् = करता था।

श्लोकार्थ — सर्वार्थसिद्धि में वह अहमिन्द्र अपने में ही प्राप्त आनन्द से पूर्णसंतुष्टि पाकर तेतीस हजार वर्ष आयु बीत जाने पर केवल मन में इच्छा करने से ही अमृत भोजन किया करता था। मन में इच्छा होने पर कंठ में से अमृत झर जाता है उसे मुंह झूटा नहीं करना होता है यही अमृत आहार है।

त्रित्रिंशत्पक्षगमने श्वासोच्छ्वासधरस्तथा ।

चतुरङ्गुलकन्यूनः हस्तमात्रशरीरकः ॥१२॥

ब्रह्मचर्यधरो नित्यं सप्ततत्त्वव्रजाञ्चितः ।

सिद्धध्यानसमारूढः सिद्धध्यानरतोऽभवत् ॥१३॥

अन्वयार्थ - तथा = और, (तः = वह अहमिन्द्र), त्रित्रिंशत्पक्षगमने = तेतीस पक्ष चले जाने पर, श्वासोच्छ्वासधरः = श्वासोच्छ्वास धारण करने वाला, चतुरङ्गुलकन्यूनः = चार अङ्गुल कम, हरतमात्रशरीरकः = एक हाथ शरीर वाला, सप्ततत्त्वव्रजाञ्चितः = सात तत्त्वों के चिन्तन में बुद्धि को विचरण कराता हुआ, नित्यं = सदैव, ब्रह्मचर्यधरः = ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला, सिद्धध्यानसमारूढः = सिद्धभगवन्तों के ध्यान में सम्यक् रूप से आरूढ होता हुआ अर्थात्, सिद्धध्यानरतः = अपने स्वयं सिद्ध स्वरूप में लीन होकर अर्थात् ध्यान लगाकर लीन, अभवत् = होता था ।

श्लोकार्थ - और वह अहमिन्द्र तेतीस पक्ष चले जाने पर श्वासोच्छ्वास धारण करने वाला चार अङ्गुल कम एक हाथ शरीर वाला सात तत्त्वों के चिन्तन में बुद्धि को विचरण कराता हुआ सदैव ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला सिद्धभगवन्तों में सम्यक् रूप से आरूढ होता हुआ अपने स्वयं सिद्ध स्वरूप में लीन होता था ।

अहमिन्द्रसुखेऽप्येष

महत्त्वासक्तिवर्जितः ।

मासषट्कावशिष्टायुः

कर्मक्षयसमुत्सुकः ॥१४॥

तत्राभवत्प्रभुस्तस्य

भूम्यागमनसत्कथां ।

शृणुध्वं साधवाः सर्वे श्रवणात्पापपङ्कहाम् ॥१५॥

अन्वयार्थ - तत्र = सर्वार्थसिद्धि में, अहमिन्द्रसुखे = अहमिन्द्र को प्राप्त सुख में, अपि = भी, महत्त्वासक्तिवर्जितः = महत्त्व मानने रूप आसक्ति से रहित, मासषट्कावशिष्टायुः = छह माह अवशिष्ट आयु वाला, एषः = यह, प्रभुः = भगवान् अभिनन्दननाथ का जीव, कर्मक्षयसमुत्सुकः = कर्मों का क्षय करने के लिये उत्सुक, अभवत् = हुआ । सर्वे = सभी, साधवाः = हे साधुओ!, (यूयं = तुम), श्रवणात् = सुनने से, पापपङ्कहां

= पापपङ्क नष्ट करने वाली, तस्य = उस देव की, भूम्यागमनसत्कथां = भूमि पर आगमन होने की सत्कथा को, शृणुध्वं = सुनो।

श्लोकार्थ — सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र को प्राप्त सुख में भी महत्त्वबुद्धि न रखकर उनमें आसक्ति न रखता हुआ, छह माह शेष आयु वाला यह देव अर्थात् तीर्थङ्कर अभिनन्दननाथ का जीव कर्मों का क्षय करने के लिये समुत्सुक हुआ। कवि कहता है कि हे साधुजनों— सज्जनों तुम सभी उसकी भूमि पर आगमन की सत्कथा को सुनो जो सुनने से पापों रूपी कीचड़ को नष्ट करने वाली है।

जम्बूद्वीपे शुभे क्षेत्रे भारते कौसलाभिधे ।

देशेऽयोध्यापुरी तत्रेक्ष्वाकुवंशेऽथ काश्यपे ॥१६॥

गोत्रे स्वयंवरो राजा बभूव सुकृतान्बुधिः ।

सिद्धार्था तस्य महिषी भूपचित्तवंशकरी ॥१७॥

अन्ययार्थ — जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, भारते = भरत क्षेत्र में, शुभे = शुभ अर्थात् आर्य, क्षेत्रे = क्षेत्र में, कौसलाभिधे = कौसल नामक, देशे = देश में, अयोध्यापुरी = अयोध्या नगरी, (आसीत् = थी), तत्र = उसमें, इक्ष्वाकुवंशे = इक्ष्वाकुवंश में, अथ = और, काश्यपे = काश्यप, गोत्रे = गोत्र में, सुकृतान्बुधिः = पुण्यात्मा अर्थात् पुण्य कार्य करने में सागर के समान गंभीर व विशाल, राजा = राजा, स्वयंवरः = स्वयंवर, बभूव = हुआ। तस्य = उस राजा की, भूपचित्तवंशकरी = राजा के मन को वश में करने वाली, सिद्धार्था = सिद्धार्थ नाम की रानी, (आसीत् = थी)

श्लोकार्थ — जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में आर्यक्षेत्र वर्ती कौसल नामक देश था जिसमें अयोध्या नामकी नगरी थी। उसमें इक्ष्वाकुवंश समुत्पन्न, काश्यप गोत्रीय एक अतिशय पुण्यशाली राजा स्वयंवर हुआ था। उस राजा की सिद्धार्था नामकी रानी थी, जो राजा के मन को वश में करने वाली थी।

तन्मोदार्थं च वण्मासाग्रतः स्वायधितो वृषा ।

प्रभोरागमनं ज्ञात्वा समादिश्य धनेश्वरम् ॥१८॥

अकारयदत्नवृष्टिं तदगृहे तत्पुरे तथा ।

तामिमां वृष्टिकां दृष्ट्वा प्रजाः सर्वाः शमं गताः ॥१९॥

अन्वयार्थ — तन्मोदार्थ = राजा-रानी को प्रसन्न करने के लिये, वृषा = इन्द्र ने, स्वावधितः = अपने अवधिज्ञान से, प्रभोः = प्रभु के, आगमनं = आगमन को, ज्ञातव्यं = जानकर, च = और, धनेश्वरं = कुबेर को, समादिश्य = आदेश देकर, षण्मासाग्रतः = छह माह पहिले से, तत्पुरे = उनके नगर में, तथा = और, तदगृहे = उनके घर में, रत्नवृष्टिं = रत्नों की वर्षा, अकारयत् = करायी । (यतः = जिससे), सर्वाः = सारी, प्रजाः = प्रजा, ताम् = उस, इमां = इस प्रकार, वृष्टिकां = वर्षा को, दृष्ट्वा = देखकर, शमं = सुख-शान्ति को, गताः = प्राप्त हुई ।

श्लोकार्थ — राजा-रानी को प्रसन्न करने के लिये इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से "प्रभु का उनके यहाँ जन्म होने वाला है" — ऐसा जानकर और कुबेर को आदेश देकर छह महिने पहिले से ही उनकी नगरी में और उनके घर में रत्नों की वर्षा करायी । जिससे सारी प्रजा ऐसी उस वर्षा को देखकर सुख-शान्ति को प्राप्त हुई ।

ततो वैशाखमासस्य शुक्लषष्ठ्यां पुनर्वसौ ।

राज्ञी स्वप्नान्ददर्शासौ षोडशान्ते गजं मुखे ॥२०॥

प्रविष्टं सा समालोक्य प्रबुद्धा प्रातरञ्जसा ।

पत्युः समीपमागत्य स्वप्नानकथयत्सती ॥२१॥

अन्वयार्थ — ततः = उसके बाद, वैशाखमासस्य = वैशाख मास की, शुक्लषष्ठ्यां = शुक्लपक्ष में षष्ठी के दिन, पुनर्वसौ = पुनर्वसु नक्षत्र में, राज्ञी = रानी ने, षोडश = सोलह, स्वप्नान् = स्वप्नों को, ददर्श = देखा, अन्ते = अन्त में, मुखे = मुख में, प्रविष्टं = प्रविष्ट हुये, गजं = हाथी को, समालोक्य = देखकर, प्रबुद्धा = प्रबुद्ध हुई अर्थात् नींद से जाग गयी । प्रातः = सवेरे, सा = उस, सती = शीलवती रानी ने, पत्युः = पति के, समीपम् = निकट, आगत्य = आकर, अञ्जसा = यथावत्, स्वप्नान् = स्वप्नों को, अकथयत् = कहा ।

श्लोकार्थ — उसके बाद वैशाख शुक्ला षष्ठी के दिन पुनर्वसु नक्षत्र में उस रानी ने सोलह स्वप्नों को देखा तथा अन्त में अपने मुख में प्रविष्ट होते हुये हाथों को देखकर यह जान गयी। प्रातः होने पर उस शीलवती रानी ने, पति के समीप पहुँचकर, यथावत् देखे हुये सोलह स्वप्नों को कहा।

भूपाननात्फलं तेषां श्रुत्वाऽनन्दनिर्भरा ।

दधौ गर्भेण तं देवमहमिन्द्राख्यमुत्तमम् ॥२२॥

अन्वयार्थ — भूपाननात् = राजा के मुख से, तेषां = उन स्वप्नों का, फलं = फल, श्रुत्वा = सुनकर, आनन्दनिर्भरा = आनन्द से भरी हुयी, (राज्ञी = रानी ने), अहमिन्द्राख्यं = अहमिन्द्र नामक, तम् = उस, उत्तमं = उत्तम, देवं = देव को, गर्भेण = गर्भ द्वारा, दधौ = धारण किया।

श्लोकार्थ — राजा के मुख से उन स्वप्नों का फल सुनकर रानी आनन्द से भर गयी और उसने अहमिन्द्र नामक उस उत्तम देव को अपने गर्भ में धारण किया।

ततः स माघमासस्य द्वादश्यां शुक्लपक्षके ।

इन्द्रस्तदा सगीर्वाणः समागत्य प्रभुं मुदा ॥२३॥

समादाय गतो मेरुं तत्र देवं महाद्युतिम् ।

संस्थाप्य तत्र पूर्वास्थं देवेन्द्रो मोदनिर्भरः ॥२४॥

क्षीरवारिधिवारिभिः स जयनिर्घोषपूर्वकम् ।

अभिषिच्य पुनः प्राप साकेतनगरं मुदा ॥२५॥

अन्वयार्थ — ततः = गर्भ में आने के बाद, सः = उन प्रभु ने, माघमासस्य = माघ माह के, शुक्लपक्षके = शुक्लपक्ष में, द्वादश्यां = द्वादशी तिथि के दिन, (जनिमलमत = जन्म लिया), तदा = तब, तत्र = वहाँ, सगीर्वाणः = देवताओं के साथ, समागत्य = आकर, इन्द्रः = इन्द्र, मुदा = प्रसन्नता के साथ, प्रभुं = प्रभु को, समादाय = लेकर, मेरुं = मेरु पर्वत पर, गतः = गया। तत्र = वहाँ मेरु की पाण्डुक शिला पर, सः = उस, मोदनिर्भरः = प्रसन्नता से भरे हुये

देवेन्द्रः = देवेन्द्र ने, महाद्युतिं = अत्यधिक कान्तिमान्, पूर्वास्यं = पूर्व दिशा की तरफ मुख वाले, देवं = प्रभु को, संस्थाप्य = स्थापित करके, जयनिर्घोषपूर्वकं = जय-जयकार के घोष पूर्वक, क्षीरवारिधिवारिभिः = क्षीरसागर के जल से, अभिषिच्य = अभिषेक करके, पुनः = फिर से, मुदा = हर्ष सहित, साकेत नगरं = अयोध्या नगर को, प्राप = प्राप्त किया।

श्लोकार्थ — गर्भ में आने के बाद प्रभु ने माघशुक्ला द्वादशी के दिन जन्म लिया तो देवताओं के साथ आकर इन्द्र प्रभु को लेकर प्रसन्नता से भरा हुआ मेरु पर्वत पर गया। वहाँ पाण्डुक शिला पर पूर्व की तरफ मुख करके उन परम कान्तिमान् प्रभु को स्थापित कर प्रसन्नता से भरपूर उस देवेन्द्र ने जय जयकार की घोषणा पूर्वक क्षीरसागर के जल से उनका अभिषेक किया और प्रसन्नता सहित साकेत नगर को पुनः प्राप्त किया।

भूपाङ्गणे प्रभुं संस्थाप्य रत्नसिंहासनोपरि ।

संपूज्य विधिवद्भूयः ताण्डवं संविधाय सः ॥२६॥

अभिनन्दननामानं कृत्वा तं देवतेश्वरम् ।

मात्रे समर्प्य त्रिदशैः सह प्रापामरावतीम् ॥२७॥

अन्वयार्थ — भूपाङ्गणे = राजा के आंगन में, रत्नसिंहासनोपरि = रत्ननिर्मित सिंहासन पर, प्रभुं = भगवान् को, संस्थाप्य = स्थापित कर या बैठाकर, विधिवत् = विधिपूर्वक, भूयः = बार-बार, संपूज्य = पूजकर, ताण्डवं = ताण्डवनृत्य को, संविधाय = करके, (च = और), अभिनन्दननामानं = अभिनन्दन नामकरण, कृत्वा = करके, सः = वह इन्द्र, तं = उन, देवतेश्वरं = देवों के स्वामी प्रभु को, मात्रे = माता के लिये, समर्प्य = देकर सौंपकर, त्रिदशैः सह = देवताओं के साथ, अमरावतीम् = अमरावती को, प्राप = प्राप्त हो गया अर्थात् चला गया।

श्लोकार्थ — राजा के आंगन में रत्नजड़ित सिंहासन पर भगवान् को बैठाकर, विधिपूर्वक उनकी पूजा करके, उनके सामने ताण्डव नृत्य करके और उनका नाम अभिनन्दन रखकर वह इन्द्र

माता के लिये प्रभु को देकर देवताओं के साथ अमरावती चला गया ।

दशलक्षोक्तकोट्युक्तसागरेषु गतेषु च ।
 शम्भवात्स समुत्पन्नस्तदभ्यन्तरजीवनः ॥२८॥
 पंचाशल्लक्षपूर्वायुः सार्धत्रिशतचापकः ।
 कायोत्सेधः स्वर्णकान्तिः सुखमासादायन्प्रभुः ॥२९॥
 अभ्यनन्दयदीशोऽभिनन्दनः पितरौ तदा ।
 भूपाङ्गणे रिङ्खयामास स्वकीयैर्बालचेष्टितैः ॥३०॥

अन्वयार्थ — शम्भवात् = तीर्थङ्कर संभवनाथ के बाद, दशलक्षोक्तकोट्युक्तसागरेषु = दश लाख करोड़ सागर, गतेषु = चले जाने पर, सः = वह अभिनन्दन प्रभु, समुत्पन्न = उत्पन्न हुये, (आसीत् = थे), तदभ्यन्तरजीवनः = उनका उस भव में जन्म से निर्वाण तक के बीच का जीवन, पंचाशल्लक्षपूर्वायुः = पचास लाख पूर्व की आयु वाला, कायोत्सेधः = शरीर की ऊँचाई, सार्धत्रिशतचापकः = साढ़े तीन धनुष, (आसीत् = थी), तदा = तभी, सुखं = सुख को, आसादयन् = प्राप्त करते हुये, स्वर्णकान्तिः = स्वर्ण की कान्ति के समान गौरवर्णीय, ईशः = तीर्थङ्कर, अभिनन्दन प्रभुः = अभिनन्दननाथ स्वामी ने, भूपाङ्गणे = राजा के आंगन में, स्वकीयैः = अपनी, बालचेष्टितैः = बालचेष्टाओं द्वारा, पितरौ = माता-पिता को, रिङ्खयामास = रिझाया, प्रसन्न किया ।

श्लोकार्थ — तीर्थङ्कर संभवनाथ के बाद दस लाख करोड़ सागर बीत जाने पर अभिनन्दन भगवान् उत्पन्न हुये थे । उनका उस भव का अभ्यन्तर जीवन अर्थात् जन्म से निर्वाण के बीच का जीवन पचासलाख पूर्व की आयु वाला था । शरीर की ऊँचाई साढ़े तीन हाथ थी । तभी अर्थात् उस बाल्यावस्था में ही स्वर्ण की कान्ति समान गौरवर्ण वाले तीर्थङ्कर भगवान् अभिनन्दननाथ ने राजा के आंगन में अपनी बालोचित चेष्टाओं से माता पिता को रिझाया-आनंदित किया ।

कुमारकालगमने राज्यं सम्प्राप्य पैतृकम् ।

अनेकस्त्रीसमायुक्तः परमं सुखमन्वभूत् ॥३१॥

अन्वयार्थ — कुमारकालगमने = कुमारकाल के जाने पर, अनेकस्त्रीसमायुक्तः = अनेक स्त्रियों का स्वामी होतः हुआ, (असौ = यह), पैतृकं = पिता से प्राप्त, राज्यं = राज्य को, सम्प्राप्य = प्राप्त कर, परमं = उत्कृष्ट, सुखं = सुख को, अन्वभूत् = अनुभूत किया ।

श्लोकार्थ — कुमार काल के धीत जाने पर अनेक स्त्रियों के स्वामी होकर उन प्रभु ने पैतृक राज्य को प्राप्त किया तथा उत्कृष्ट सुख को भोगा, उसका अनुभव किया ।

एकदा सौधगो राजा सिंहासनगतः प्रभुः ।

पञ्चवर्णघनं दृष्ट्वा विनष्टमुदितं च खे ॥३२॥

शीघ्रवैराग्यमापन्नो लौकान्तिकनुतस्ततः ।

सुरैः कृतोत्सवो भूयः सुरोदशिविकास्थितः ॥३३॥

स्वयंभूर्वनगो माघे शुक्लद्वादशके दिने ।

पुनर्वसौ स जग्राह दीक्षां परमपावनीम् ॥३४॥

अन्वयार्थ — एकदा = एक दिन, सौधगः = महल के ऊपर गये हुये, सिंहासनगतः = सिंहासन पर स्थित, राजा = राजा ने, खे = आकाश में, पञ्चवर्णघनं = पंचरंगी बादलों को, उदितं = उत्पन्न होते हुये, च = और, विनष्टं = विनष्ट होते हुये, दृष्ट्वा = देखकर, शीघ्रवैराग्यं = जल्दी ही वैराग्य को, आपन्नः = प्राप्त कर लिया । ततः = तदन्तर, भूयः = बार-बार, लौकान्तिकनुतः = लौकान्तिक देवों द्वारा नमस्कार किया जाता हुआ, सुरैः = देवताओं द्वारा, कृतोत्सवः = जिसका उत्सव किया गया है वह, सुरोदशिविकास्थितः = देवताओं द्वारा ले जायी गई पालकी में बैठा हुआ, (तथा = और), वनगः = वन को गये हुये, सः = उसने, स्वयंभूः = स्वयं दीक्षित होकर, माघे = माघ मास में, शुक्लद्वादशके = शुक्लपक्ष की द्वादशी के, दिने = दिन, पुनर्वसौ = पुनर्वसु नक्षत्र में, परमपावनीं = परम पावन स्वरूप वाली, दीक्षां = दीक्षा को, जग्राह = ग्रहण किया ।

श्लोकार्थ — एक दिन महल के ऊपर गये और सिंहासन पर बैठे राजा ने आकाश में पंचरंगी बादलों को उत्पन्न होते हुये और नष्ट होते हुये देखकर जल्दी ही वैराग्य को प्राप्त कर लिया। लौकान्तिक देवों ने इसकी अनुमोदना की तथा लौकान्तिक देवों द्वारा नमस्कार किया जाता हुआ एवं देवों द्वारा जिसका उत्सव किया गया है और जो देवताओं द्वारा वहन की गई पालकी में बैठा है उस राजा ने स्वयं दीक्षित होकर माघ शुक्ला के दिन पुनर्वसु नक्षत्र में परम पावन स्वरूप वाली दीक्षा को ग्रहण कर लिया।

मतिश्रुत्यवधिज्ञानैस्त्रिभिः पूर्वमेव समुज्ज्वलन् ।

दीक्षानन्तरमेवासौ चतुर्थज्ञानमवाप च ॥३५॥

अन्वयार्थ — च = और, त्रिभिः = तीनों, मतिश्रुत्यवधिज्ञानैः = मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान से, पूर्वमेव = पहिले से ही, समुज्ज्वलन् = सम्यक् उज्ज्वलित होते हुये, असौ = उन प्रभु ने, दीक्षानन्तरम् = दीक्षा लेने के बाद, एव = ही, चतुर्थज्ञानं = चौथे मनःपर्ययज्ञान को, अवाप = प्राप्त किया।

श्लोकार्थ — तथा मति ज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान तीनों से पहिले ही सम्यक् उज्ज्वलित होते हुये उन प्रभु ने दीक्षा लेने के बाद ही चौथे मनःपर्ययज्ञान को प्राप्त कर लिया।

द्वितीयेऽह्निगतेऽयोध्यायामिन्द्रदत्तनृपार्चितः ।

क्षीरान्नं हि चकारासौ तपोऽरण्यं गतः पुनः ॥३६॥

अन्वयार्थ — द्वितीये = दूसरा, अह्निगते = दिन बीत जाने पर, इन्द्रदत्तनृपार्चितः = राजा इन्द्रदत्त से पूजित होते हुये, असौ = उन्होंने, अयोध्यायां = अयोध्या नगरी में, हि = ही, क्षीरान्नं = क्षीरान्न भोजन, चकार = किया, पुनः = फिर, तपोऽरण्यं = तपोवन को, गतः = चले गये।

श्लोकार्थ — दूसरा दिन बीत जाने पर उन मुनिराज ने अयोध्या में राजा इन्द्रदत्त से पूजित होते हुये क्षीरान्न का भोजन किया तथा पुनः तपोवन में चले गये।

अष्टादशाब्दमौनस्थो महोग्रतपः आचरन् ।
 शिरीषतरुमूले च पौषे मास्यसिते दले ॥३७॥
 चतुर्दश्यामनुप्राप केवलज्ञानमुत्तमम् ।
 तत्क्षणादेव सम्प्राप्ता सेन्द्रास्तत्र दिवौकसः ॥३८॥

श्लोकार्थ — अष्टादशाब्दमौनस्थः = अठारह वर्ष तक मौन रहते हुये, महोग्रतपः = अति उग्र तपश्चरण को, आचरन् = करते हुये या आचरते हुये, शिरीषतरुमूले = शिरीषवृक्ष के मूल में अर्थात् नीचे, पौषे = पौष, मासि = माह में, असिते = कृष्ण, दले = पक्ष में, चतुर्दश्यां = चतुर्दशी के दिन, (असौ = उन प्रभु ने), उत्तमम् = सर्वोत्कृष्ट, केवलज्ञानम् = केवलज्ञान को, अनुप्राप = अनुसरण पूर्वक प्राप्त किया । तत्र च = और वहाँ, तत्क्षणादेव = उसी क्षण ही, सेन्द्राः = इन्द्र सहित, दिवौकसः = देवता, सम्प्राप्ताः = उपस्थित हो गये ।

श्लोकार्थ — अठारह वर्ष तक मौन रहते हुये और अत्यंत उग्र तपश्चरण करते हुये उन मुनिराज ने शिरीष वृक्ष के नीचे पौष मास के कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी के दिन उत्तम केवलज्ञान प्राप्त कर लिया और तत्क्षण ही वहाँ इन्द्र सहित देवतागण उपस्थित हो गये ।

तदा समवसारं ते विरच्याद्भुतमुत्तमम् ।
 देवं संस्थापयामासुः तत्र भक्त्यार्चयन्तम् ॥३९॥

अन्वयार्थ — तदा = जब केवलज्ञान हो गया तब, ते = उन देवों ने, अद्भुतम् = आश्चर्यकारी, उत्तमम् = उत्तम, समवसारं = समवसरण को, विरच्य = रचकर, तत्र = उस समवसरण में, भक्त्या = भक्ति से, अर्चयन्तं = पूजे जाते हुये, देवं = भगवान् को, संस्थापयामासुः = संस्थापित किया ।

श्लोकार्थ — केवलज्ञान हो जाने के उपरान्त देवताओं ने आश्चर्य उत्पन्न करने वाले सर्वोत्तम समवसरण की रचना करके उसमें भक्ति से पूजे जाते हुये भगवान् को विराजमान किया ।

पुरादित्या तत्र देवं भक्तिनिर्भरमानसाः ।

सर्वे गणधरास्ते च ददृशुः प्रेमतः प्रभुम् ॥४०॥

अन्वयार्थ — देवं = भगवान् के प्रति, भक्तिनिर्भरमानसाः = भक्ति से छलाछल भरा है मन जिनका ऐसे मनुष्यों, सर्वे गणधराः = सारे गणधरों, च = और, ते = उन देवताओं ने, पुरात् = नगर से, तत्र = समवसरण में, इत्या = जाकर, प्रेमतः = प्रेमपूर्वक, प्रभुं = प्रभु को, ददृशुः = देखा !

श्लोकार्थ — भगवान् के प्रति भक्ति रस से छलाछल भरे हुये मन वाले मनुष्यों ने, गणधरों ने और सभी देवताओं ने नगर से समवसरण में पहुँचकर बड़े प्रेम से भगवान् को देखा ।

घातिकर्मक्षयाद्देवः

पञ्चमज्ञानसंयुतः ।

चतुष्टयमनन्तानां प्राप भानुरिवोज्ज्वलन् ॥४१॥

अन्वयार्थ — घातिकर्मक्षयात् = घातिया कर्मों का क्षय हो जाने से, पञ्चमज्ञानसंयुतः = केवलज्ञानसंयुक्त, देवः = भगवान् ने, भानुःइव = सूर्य के समान, उज्ज्वलन् = चमकते हुये—उज्ज्वलित होते हुये, अनन्तानां = अनन्तों के, चतुष्टयं = चतुष्टय को, प्राप = प्राप्त किया ।

श्लोकार्थ — सभी घातिया कर्मों का क्षय हो जाने से केवलज्ञानी प्रभु ने सूर्य के समान भास्वरित होते हुये अनन्तचतुष्टय को प्राप्त किया ।

संपृष्टः स तदा देवो मुनिभिर्वृद्धवाणिभिः ।

विचित्रदिव्यध्वनिना चक्रे धर्मोपदेशनम् ॥४२॥

अन्वयार्थ — तदा = तभी, वृद्धवाणिभिः = वृद्ध अर्थात् गंभीर गरीयसी वाणी वाले, मुनिभिः = मुनिराजों अर्थात् गणधरों द्वारा, संपृष्टः = पूछे गये, सः = उन, देवः = प्रभु ने, विचित्र दिव्यध्वनिना = नाना भाषाओं में समझी जाने वाली दिव्यध्वनि द्वारा, धर्मोपदेशनं = धर्म के उपदेश को, चक्रे = किया ।

श्लोकार्थ — प्रभु की अनन्त चतुष्टय लक्ष्मी जब प्रगट हुई तभी गणधर मुनिराजों द्वारा पूछे गये उन भगवान् ने अनेक भाषाओं में

समझी जाने वाली दिव्यध्वनि खिराकर धर्मोपदेश किया ।

अन्ववोचत्तत्त्वव्याख्यानं श्रुत्वा प्रभुमुखाम्बुजात् ।

आनन्दमभिजग्मुस्ते परमं हि मुनीश्वराः ॥४३॥

अन्वयार्थ — (प्रभुः = भगवान् ने), (यत् = जो), अन्ववोचत् = कहा, (तस्य = उसके), तत्त्वव्याख्यानं = तात्त्विकव्याख्यान को, प्रभुमुखाम्बुजात् = प्रभु के मुख कमल से, हि = ही, श्रुत्वा = सुनकर, ते = वे, मुनीश्वराः = मुनिराज, परमं = उत्कृष्ट, आनन्द = आनन्द को, अभिजग्मुः = प्राप्त हो गये या उत्कृष्ट आनन्द में पहुँच गये ।

श्लोकार्थ — प्रभु ने जो कहा था उसका तत्त्व व्याख्यान प्रभु के मुखकमल से ही सुनकर मुनिजन परम आनन्द को प्राप्त हुये या आनन्द में ही पहुँच गये ।

धर्मोपदेशं व्याकुर्वन्पुण्यक्षेत्रेषु स प्रभुः ।

व्याहरत्परमेशानो दिव्यनादामृतं किरन् ॥४४॥

अन्वयार्थ — पुण्यक्षेत्रेषु = पुण्यक्षेत्रों में, दिव्यनादामृतं = दिव्यध्वनि रूप अमृत को, किरन् = फैलाते हुये, (च = और), धर्मोपदेशं = धर्मोपदेश को, व्याकुर्वन् = विश्लेषित करते हुये, स = उन, परमेशानः = परम ऐश्वर्य सम्पन्न, प्रभुः = भगवान् ने, व्याहरत् = विहार किया ।

श्लोकार्थ — पुण्यक्षेत्रों में दिव्यध्वनि रूप अमृत को फैलाते हुये और धर्मोपदेश को विश्लेषित करते हुये उन परम ऐश्वर्य सम्पन्न भगवान् ने विहार किया ।

अङ्गे वङ्गे कलिङ्गे च काश्मीरे मालवे तथा ।

हम्मीरखेटघोटेषु महाराष्ट्रे च लाटके ॥४५॥

इत्यादिधर्मक्षेत्रेषु प्रभुणा धर्म ईरितः ।

यदृच्छयाखिलैः सार्धं विहारः कृत उत्तमः ॥४६॥

अन्वयार्थ — तथा च = और, अङ्गे = अङ्गदेश में, वङ्गे = बङ्ग देश में, कलिङ्गे = कलिङ्ग में, काश्मीरे = काश्मीर में, मालवे = मालवा में, हम्मीरखेट घोटेषु = हम्मीर, खेट और घोट

प्रदेशों में, महाराष्ट्रे = महाराष्ट्र में, लाटके = लाट देश में, इत्यादिधर्मक्षेत्रेषु = इत्यादि धर्मक्षेत्रों में, प्रभुणा = भगवान् के द्वारा, धर्मः = धर्म, ईरितः = फैलाया गया सुस्थिर किया गया। च = और, अखिलैः = सम्पूर्ण मुनिवृन्दों के, साथ = साथ, यदृच्छया = अपनी इच्छा से, उत्तमः = उत्तम, विहारः = विचरण, कृतः = किया गया।

श्लोकार्थ — तथा प्रभु ने अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, काश्मीर, मालवा, हम्मीर, खेट, घोट, महाराष्ट्र, लाट आदि धर्मक्षेत्रों में धर्म को फैलाया सुस्थिर किया तथा जो इच्छा हुई तदनुसार सभी मुनिवृन्दों के साथ उत्तम विहार किया।

मासमात्रावशिष्टायुर्यदासीत्संहरन् ध्वनिम् ।

सम्मदपर्वतं गत्वा स्थितो ह्यानन्दकूटके ॥४७॥

अन्वयार्थ — यदा = जब, मासमात्रावशिष्टायुः = केवल एक माह आयु शेष, आसीत् = थी, (तदा = तब), ध्वनिं = दिव्यध्वनि को, संहरन् = समेटते हुये, (प्रभुः = भगवान्) सम्मदपर्वतं = सम्मदशिखर पर्वत पर, गत्वा = जाकर, आनन्दकूटके = आनन्द कूट पर, हि = ही, स्थितः = रुक गये ठहर गये।

श्लोकार्थ — जब आयु केवल एक माह शेष रही तो दिव्यध्वनि को समेटते हुये अर्थात् उसका संकोच करते हुये प्रभु सम्मदशिखर पहुंचकर आनन्द कूट पर ही स्थित हो गये।

शुक्लध्यानधरो देवश्चैत्रासिते दले शुभे ।

सहस्रमुनिभिः षष्ट्यां प्रतिमायोगमास्थितः ॥४८॥

अन्वयार्थ — चैत्रासिते = चैत्र मास के कृष्ण, दले = पक्ष में, षष्ट्यां = षष्ठी के दिन, शुभे = शुभ मुहूर्त में, शुक्लध्यानधरः = शुक्लध्यान को धारण करने वाले, देवः = भगवान् ने, सहस्रमुनिभिः = हजार मुनियों के साथ, प्रतिमायोगं = प्रतिमायोग में, आस्थितः = स्थित हुये।

श्लोकार्थ — चैत्र कृष्ण षष्ठी के दिन शुभ मुहूर्त में शुक्लध्यान को धारण करने वाले प्रभु हजार मुनियों के साथ प्रतिमा योग में स्थित हो गये।

केवलज्ञानदीप्ताग्निदग्धकर्मवनः प्रभुः ।

पूर्वोक्तमुनिभिः सार्धं निर्वाणपदमवाप सः ॥४६॥

अन्वयार्थ — केवलज्ञानदीप्ताग्निदग्धकर्मवनः = केवलज्ञान से प्रदीप्त अग्नि में कर्मवन को जला देने वाले, सः = उन, प्रभुः = भगवान् ने, पूर्वोक्तमुनिभिः = पूर्वोक्त हजार मुनियों के, सार्धं = साथ, निर्वाणपदम् = निर्वाणपद को, अवाप = प्राप्त किया ।

श्लोकार्थ — केवलज्ञान से प्रदीप्त की गई अग्नि में बचे हुये अघातिया कर्मों के वन को जला देने वाले उन भगवान् ने पूर्वोक्त एक हजार मुनिराजों के साथ निर्वाण पद प्राप्त कर लिया ।

तत्प्रमाधिष्ठः तत्कूटयात्रामाहात्म्यमुत्तमम् ।

ज्ञात्वा येन कृता यात्रा तथा तत्कथयाम्यहम् ॥५०॥

अन्वयार्थ - तत्कूटयात्रामाहात्म्यम् = सम्मेदशिखर के आनन्दकूट की यात्रा के महत्त्व को, उत्तमम् = उत्तम, ज्ञात्वा = जानकर, येन = जिसके द्वारा, यात्रा = तीर्थवंदना रूप यात्रा, कृता = की गयी, तथा = उसी प्रकार, तत्प्रमाधिष्ठः = उसके ज्ञान के अधीन होता हुआ या उसके ज्ञान में अपनी बुद्धि को स्थित करता हुआ, अहम् = मैं कवि, तत्कथां = सम्मेदशिखर यात्रा के माहात्म्य की कथा को, कथयामि = कह रहा हूँ ।

श्लोकार्थ — कवि स्वयं कह रहा है कि सम्मेदशिखर के आनन्दकूट की यात्रा का महत्त्व सर्वोत्तम जानकर जिस के द्वारा तीर्थवंदना रूप यात्रा की गयी उसके ज्ञान के अधीन होते हुये या उस यात्रा रूप ज्ञान में अपनी बुद्धि को स्थित किये हुये मैं वैसे ही उस सम्मेदशिखर यात्रा के माहात्म्य की कथा को कहता हूँ ।

त्रिसप्तत्युक्तकोटीनां कोटिः सप्ततिकोटयः ।

सप्ततिप्रोक्तलक्षं च सप्त संख्याशतप्रमान् ॥५१॥

सहस्राणि द्विचत्वारिंशत्पराणि शतानि च ।

पञ्चेत्युक्तप्रमाणा हि तत्रस्थाः सिद्धतां गताः ॥५२॥

अन्वयार्थ — त्रिसप्तत्युक्तकोटीनां कोटिः = तिहत्तर कोड़ा कोड़ी,

सप्ततिकोट्यः = सत्तर करोड़, सप्ततिप्रोक्तलक्षं = सत्तर लाख, द्विचत्वारिंशत् = बयालीस, सहस्राणि = हजार, च = और, संख्याशतप्रमान् = सैकड़ा की संख्या को, सप्त = सात, (ज्ञात्वा = जानकर), शतानि = सौ, च = और, पञ्च = पाँच, इति = इस प्रकार, उक्तप्रमाणाः = कहे गये संख्या प्रमाणरूप, तत्रस्थाः = आनन्दकूट पर स्थित मुनिराज, सिद्धतां = सिद्धपने को, गताः = चले गये।

श्लोकार्थ — तिहत्तर कोड़ाकोड़ी और सत्तर करोड़ सत्तर लाख बयालीस हजार सात सौ पाँच मुनिराज आनन्दकूट पर विराजमान होकर सिद्धत्व को प्राप्त हुये जानना। यहाँ संख्या प्रमाण प्रदर्शित किया गया है।

जम्बूद्वीपे शुचिक्षेत्रे भारते पूर्वमन्दरे ।

राजा पूर्णपुरस्यासीन्नामतो रत्नशेखरः ॥५३॥

अन्वयार्थ — जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, पूर्वमन्दरे = पूर्वमंदरमेरु पर, शुचिक्षेत्रे = पवित्र स्थान रूप आर्य क्षेत्र में, भारते = भरतक्षेत्र रूप भारत में, पूर्णपुरस्य = पूर्णपुर नगर का, राजा = राजा, नामतः = नाम से, रत्नशेखरः = रत्नशेखर, आसीत् = था।

श्लोकार्थ — जम्बूद्वीप के पूर्वमन्दरमेरु पर पवित्र आर्यक्षेत्र में भारत में पूर्णपुर नामक नगर था। जिसका राजा रत्नसेन था।

राज्ञी तस्य महापुण्या नाम्ना सा चन्द्रिकामती ।

तद्भूपवंशे विजयभद्रोऽभूद्धरणीपतिः ॥५४॥

अन्वयार्थ — तस्य = उस राजा की, महापुण्या = अतिशय पुण्य वाली, राज्ञी = रानी, (आसीत् = थी), नाम्ना = नाम से, सा = वह, चन्द्रिकामती = चन्द्रिकामती, (उच्यते स्म = कही जाती थी), तद्भूपवंशे = उस राजा के वंश में, (एकः = एक), धरणीपतिः = राजा, विजयभद्रः = विजयभद्र, अभूत् = हुआ था।

श्लोकार्थ — राजा रत्नसेन को अतिशय पुण्यशालिनी एक रानी चन्द्रिकामती थी। उस राजा के वंश में एक विजयभद्र नामक राजा हुआ था।

गुर्वासक्तो गुणनिधिर्भव्यो भव्यजनस्तुतः ।
 स्वधर्मसाधने रक्तः प्रजासन्तोषकारकः ॥५५॥
 स एकदा निजेच्छातः सेवकानुगतः प्रभुः ।
 प्रोत्फुल्लमृदुमालाढ्यं मुदा युक्तो वनं ययौ ॥५६॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, गुर्वासक्तः = गुरुभक्ति में आसक्त, गुणनिधिः = गुणों की खान, भव्यजनस्तुतः = भव्यजनों से स्तुति किया जाता हुआ, भव्यः = भव्य, स्वधर्मसाधने = अपने धर्म का पालन करने में, रक्तः = अनुरागी, प्रजा सन्तोषकारकः = प्रजाजनों को संतुष्ट करने वाला, सः = वह, प्रभुः = राजा, निजेच्छातः = अपनी इच्छा से, सेवकानुगतः = सेवकों से अनुगमन कराया जाता हुआ, मुदा = प्रसन्नता से, युक्तः = सहित होकर, प्रोत्फुल्लमृदुमालाढ्यं = खिले हुये कोमल फूलों और फूलमालाओं से समृद्ध, वनं = वन को, ययौ = गया ।

श्लोकार्थ - एक दिन गुरुभक्ति से पूर्ण, गुणों का पुञ्ज, भव्यजनों द्वारा स्तुति किये जाने योग्य, स्वयं भी भव्य, स्वधर्म का पालन करने में अनुरागी, और प्रजाजनों को संतुष्ट करने वाला वह राजा अपनी इच्छा से सेवकों का अनुसरण करते हुये और प्रसन्नता से फूलता हुआ खिले हुये कोमल सुन्दर फूलों और पुष्पमञ्जरियों की मालाओं से समृद्ध वन को गया ।

सिंहसेनो मुनिस्तत्र तत्समीपं स भूमिपः ।
 गत्वा मनोवचः कायैस्तत्पादौ चाप्यवन्दत ॥५७॥

अन्वयार्थ - तत्र = वहाँ उस वन में, सिंहसेनः = सिंहसेन, मुनिः = मुनिराज, आसीत् = थे, सः = उस, भूमिपः = राजा ने, तत्समीपं = उनके निकट, गत्वा = जाकर, अपि = भी, च = और, मनोवचःकायैः = मन, वचन और काय से, तत्पादौ = उनके चरणों की, अवन्दत = वन्दना की ।

श्लोकार्थ - उस वन में मुनिराज सिंहसेन विराजमान थे । वह राजा उनके पास गया और उसने मन-वचन-काय से उनके चरणों की वन्दना की ।

पुनर्मुनिं स पप्रच्छ प्रसन्नमनसा नृपः ।

तद्वक्त्रचन्द्रकिरणैर्विकसन्नेत्राभ्यामिव ॥५८॥

अन्वयार्थ — पुनः = फिर, सः = उस, नृपः = राजा ने, इव = मानों, तद्वक्त्रचन्द्रकिरणैः = उनके मुख रूपी चन्द्रमा से निकली किरणों से, विकसन्नेत्राभ्याम् = खिले हुये नेत्रों से, (च = और), प्रसन्नमनसा = प्रसन्नमन से, मुनिं = मुनिराज को, पप्रच्छ = पूछा ।

श्लोकार्थ — फिर उस राजा ने मानो मुनिश्री के मुखचन्द्र से निकलती हुई किरणों से अपने नेत्रों को खिला लिया और उन खिले हुये नेत्रों से और प्रसन्न मन से मुनिराज को पूछा ।

महाराज मुने शैलराजः सम्मेद उत्तमः ।

तदयात्रोत्सुकता गुर्वी मच्चेतसि सदा स्थिता ॥५९॥

अन्वयार्थ — मुने महाराज! = हे मुनि महाराज!, सम्मेदः = सम्मेद नामक, (यः = जो), उत्तमः = श्रेष्ठ, शैलराजः = पर्वतराज, (विद्यते = है), तदयात्रोत्सुकता = उस शैलराज की यात्रा करने की उत्सुकता, गुर्वी = अत्यधिक प्रबल, मे = मेरे, चेतसि = चित्त में, सदा = हमेशा, स्थिता = स्थित रहती, (अस्ति = है) ।

श्लोकार्थ — हे मुनि महाराज! सम्मेदशिखर नामक जो उत्तम पर्वतराज है उस शैलराज की यात्रा करने की अत्यधिक प्रबल और उत्कट इच्छा मेरे मन में सदैव विद्यमान रहती है ।

भाविनी तस्य यात्रा मे किं वा नैव महामुने ।

सर्वज्ञस्त्वं तदाचक्ष्व श्रुत्वेति प्राह तं मुनिः ॥६०॥

अन्वयार्थ — महामुने = हे महामुनि!, तस्य = उस सम्मेदशिखर शैलराज की, यात्रा = तीर्थवन्दना रूप यात्रा, किं = क्या, मे = मुझे, भाविनी = होने योग्य है, वा = अथवा, नैव = नहीं, त्वं = तुम, सर्वज्ञः = सब कुछ जानने वाले, (असि = हो), तत् = इसलिये, आचक्ष्व = कहिये, इति = इस प्रकार, श्रुत्वा = सुनकर, मुनिः = मुनिराज, प्राह = बोले ।

श्लोकार्थ — हे महामुनि! उस सम्मेदशिखर शैलराज की यात्रा क्या मुझे

होने योग्य है अथवा नहीं? आप सब कुछ जानते हैं इसलिये मुझे बताइये। राजा के ऐसे वचन सुनकर मुनिराज राजा से बोले।

भूपतेऽवधिभूतेन मया चित्ते विचारितः ।

तव सम्मेदशैलस्य यात्रा नूनं भविष्यति ॥६१॥

अन्वयार्थ - भूपते = हे राजन्!, अवधिभूतेन = अवधिज्ञान स्वरूप, मया = मेरे द्वारा, चित्ते = मन में, विचारितः = विचार लिया गया है। सम्मेदशैलस्य = सम्मेदशिखर शैलराज की, तव = तुम्हारी, यात्रा = तीर्थवन्दना रूप यात्रा, नूनं = अवश्य ही, भविष्यति = होगी।

श्लोकार्थ - हे राजन्! अवधिज्ञान स्वरूप वाले मैंने मन में विचार कर लिया है कि सम्मेदशिखर शैलराज की तुम्हारी तीर्थयात्रा अवश्य ही होगी।

गुणगम्भीरसिन्धुस्त्वं सत्यभावसमन्वितः ।

भव्योऽसि भव्यजीवानां तस्य यात्रा स्मृता बुधैः ॥६२॥

अन्वयार्थ - बुधैः = विद्वज्जनों द्वारा, तस्य = सम्मेदशिखर की, यात्रा = यात्रा, भव्यजीवानां = भव्यजीवों के लिये, स्मृता = बतायी गयी है, त्वं = तुम, गुणगम्भीरसिन्धुः = गुणों के गंभीर सागर, सत्यभावसमन्वितः = सत्यभावों से युक्त सात्त्विक, भव्यः = भव्यजीव, असि = हो।

श्लोकार्थ - विद्वज्जनों ने बताया है कि सम्मेदशिखर की यात्रा भव्यजीवों के लिये ही हो पाती है। हे राजन्! तुम गुणों के गंभीर सागर, सत्यभावों के जानकार सात्त्विक और भव्य हो।

मुनिवाक्यं समाकर्ण्य राजा हर्षसमाकुलः ।

यात्रोन्मुखो बभूवासौ श्रीमत्सम्मेदभूभृतः ॥६३॥

अन्वयार्थ - हर्षसमाकुलः = प्रसन्नता से आन्दोलित, असौ = वह, राजा = राजा, मुनिवाक्यं = मुनिराज के वचन को, समाकर्ण्य = सुनकर, श्रीमत्सम्मेदभूभृतः = श्री सम्पन्न सम्मेदशिखर पर्वत की, यात्रोन्मुखः = यात्रा के लिये उन्मुख, बभूव = हो गया।

श्लोकार्थ — हर्षोल्लसित या प्रसन्नता से आन्दोलित वह राजा मुनिराज के वचन सुनकर श्रीसम्मदशिखर पर्वत की यात्रा के लिये उन्मुख—अग्रसर हो गया।

वार्ता सम्मदयात्रायाः गता पृथ्वीपतेस्तदा ।

अभव्यस्तन्महीपालः सोऽपि यात्रोन्मुखोऽभवत् ॥६४॥

अन्वयार्थ — पृथ्वीपतेः = राजा विजयभद्र की, सम्मदयात्रायाः = सम्मदशिखर की यात्रा, वार्ता = बात, (सर्वत्र = सब जगह), गता = पहुँच गयी या फैल गयी, तदा = तब, तन्महीपालः = वहाँ राजा, (एकः = एक), अभव्यः = अभव्य, (आसीत् = था), सः = वह, अपि = भी, यात्रोन्मुखः = यात्रा के सन्मुख, अभवत् = हो गया।

श्लोकार्थ — राजा विजयभद्र की सम्मदशिखर की तीर्थयात्रा करने वाली बात सभी जगह फैल गयी, वहाँ एक अभव्य राजा था तो वह भी तभी सम्मदशिखर की यात्रा करने के सन्मुख हो गया अर्थात् उसने भी यात्रा प्रारंभ की।

राजा विजयभद्रोऽसौ ससंघश्च ससैनिकः ।

चचाल गिरियात्रायै कृतनानामहोत्सवः ॥६५॥

अन्वयार्थ — असौ = वह, राजा = राजा, विजयभद्रः = विजयभद्र, ससंघः = संघों सहित, ससैनिकः = सैनिकों सहित, कृतनानामहोत्सवः = अनेक प्रकार से अत्यधिक उत्सव करता हुआ, गिरियात्रायै = सम्मदशिखर की तीर्थ यात्रा के लिये, चचाल = चला।

श्लोकार्थ — वह राजा विजयभद्र जिसे मुनिराज ने भव्य कहा था, मुनि—आर्यिका, श्रावक—श्राविका उन चारों संघों के साथ और सैनिकों के साथ अनेक—अनेक महान् उत्सव करता हुआ सम्मदशिखर सिद्ध क्षेत्र की तीर्थवन्दना रूप यात्रा के लिये चल दिया।

सोऽपि राजाचलद् यात्रामुदिदश्य बलसंयुतः ।

स्वप्नेऽपश्यत्स्वपुत्रं स मृतं मोहान्न्यवर्तत ॥६६॥

अन्वयार्थ — (तथा च = और), सः = वह, राजा = अभव्य राजा, अपि =

भी, यात्राम् = सम्मेदशिखर की तीर्थ को, उद्दिश्य = लक्ष्य कर या उद्देश्य में लेकर, बलसंयुतः = सेना सहित, अचलत् = चल दिया, सः = उसने, स्वप्ने = स्वप्न में, स्वपुत्रं = अपने पुत्र को, मृतं = मरा हुआ, अपश्यत् = देखा, (च = और), मोहात् = मोह के कारण, न्यवर्तत = लौट गया।

श्लोकार्थ - और वह अभव्य राजा भी सेना सहित सम्मेदशिखर पर्वत की तीर्थवन्दना करने का लक्ष्य लेकर चल दिया किन्तु उसने स्वप्न में अपने मरे हुये पुत्र को देखा तो मोह के कारण वापिस लौट गया।

गतो विजयभद्रस्तं सम्मेदं सङ्घसंयुतः ।

विधिवत्कृतवान्यात्रां परमानन्दसंयुतः ॥६७॥

अन्वयार्थ - संघसंयुतः = संघ के साथ, परमानन्दसंयुतः = परम आनंद से युक्त, विजयभद्रः = राजा विजयभद्र, तं सम्मेदं = उस सम्मेदशिखर पर्वत पर, गतः = पहुंचा या गया, (च = और), विधिवत् = विधि सहित, यात्रां = यात्रा, (अपि = भी), कृतवान् = कर ली।

श्लोकार्थ - राजा विजयभद्र संघ के साथ अत्यधिक परमानंद रस से तृप्त होता हुआ सम्मेदशिखर पर पहुंचा और उसने विधि-विधान सहित तीर्थयात्रा भी की।

यात्रा ह्यभव्यजीवानां सम्मेदस्य न वै स्मृता ।

भव्या एव सुयात्रार्हा इत्युक्तं नालीकं स्यात् ॥६८॥

अन्वयार्थ - वै = वास्तव में, अभव्यजीवानां = अभव्य जीवों के लिये, सम्मेदस्य = सम्मेदशिखर की, यात्रा = यात्रा, न = नहीं, हि = ही, स्मृता = मानी गयी या स्मृत की गयी है, भव्याः = भव्यजीव, एव = ही, सुयात्रार्हा = उस शुभयात्रा के लिये योग्य, (भवन्ति = होते हैं), इति = इस प्रकार, उक्तं = कहा गया वचन, अलीकं = मिथ्या, न = नहीं, स्यात् = हो।

श्लोकार्थ - वास्तव में अभव्य जीवों के लिये सम्मेदशिखर की तीर्थयात्रा नहीं ही मानी गयी है। उस शुभयात्रा को करने के पात्र भव्य ही होते हैं यह कहा हुआ कथन मिथ्या नहीं होवे।

जयसेनश्चाभवद्राजा सोऽपि संघसमन्वितः ।

यात्रां कृत्वा विधानेन सम्मेदाचलभूमृतः ॥६६॥

राज्यं विभवसेनाय दत्त्वा राज्याभिषेकतः ।

द्वात्रिंशल्लक्षजीवैश्च दीक्षां जग्राह धार्मिकः ॥७०॥

अन्वयार्थ — च = और, राजा = राजा, जयसेनः = जयसेन, अभवत् = था, संघसमन्वितः = संघों से युक्त होते हुये, सः = उस, धार्मिकः = धार्मिक राजा ने, अपि = भी, विधानेन = विधिपूर्वक, सम्मेदाचलभूमृतः = सम्मेदाचल पर्वत की, यात्रां = यात्रा को, कृत्वा = करके, च = और, राज्याभिषेकतः = राज्याभिषेक से, विभवसेनाय = विभवसेन के लिये, राज्यं = राज्य को, दत्त्वा = देकर, द्वात्रिंशल्लक्षजीवैः = बत्तीस लाख जीवों के, (सह = साथ), दीक्षां = मुनिदीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया ।

श्लोकार्थ — और भी एक राजा जयसेन था । सो उस धार्मिक राजा ने भी विधिपूर्वक सम्मेदशिखर पर्वत की यात्रा को करके फिर अपने पुत्र विभवसेन को राज्याभिषेक से राज्य देकर बत्तीस लाख जीवों के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली ।

कर्मणां तिमिरं छित्त्वा केवलज्ञानभानुना ।

पूर्वोक्तजीवैः सहितः सिद्धालयमवाप सः ॥७१॥

अन्वयार्थ — कर्मणां = कर्मों के, तिमिरं = अन्धकार को, केवलज्ञानभानुना = केवलज्ञान रूप सूर्य से, छित्त्वा = छेदकर—मिटकर, सः = उसने, पूर्वोक्तजीवैः = पूर्वोक्त बत्तीस लाख जीवों, सहितः = सहित, सिद्धालयं = सिद्धालय को, अवाप = प्राप्त किया ।

श्लोकार्थ — केवलज्ञान रूपी सूर्य से कर्मों के अन्धकार को मिटाकर उन मुनिराज ने बत्तीस लाख जीवों के साथ सिद्धालय को प्राप्त किया ।

विभवसेनवंशोऽभूद्राजा

विजयसेनकः ।

तेन सम्मेदयात्रा वै कृता थक्रवर्तिना सह ॥७२॥

अन्वयार्थ — विभवसेनवंशे = विभवसेन के वंश में, विजयसेनकः =

विजयसेन नामक, राजा = राजा, अभूत = हुआ था, तेन = उसके द्वारा, चक्रवर्तिना = चक्रवर्ती के, सह = साथ, वै = आवश्यक रूप से, सम्मेदयात्रा = सम्मेदशिखर की यात्रा, कृता = की गयी।

श्लोकार्थ - राजा विभवसेन के वंश में एक विजयसेन नामक राजा हुआ। जिसने चक्रवर्ती के साथ अवश्य की जाने योग्य सम्मेदशिखर पर्वत की तीर्थयात्रा की थी।

आनन्दकूटमहिमा च कथितास्ति बहुविस्तरात् ।

सङ्घभक्तिः कृतानेन बहुधा धर्मधारिणा ॥७३॥

अन्वयार्थ - अनेन = इस, धर्मधारिणा = धर्मधारी अर्थात् धर्मात्मा कवि द्वारा, बहुधा = बहुत प्रकार से, सङ्घभक्तिः = संघों की भक्ति, कृता = की गई, च = और, बहुविस्तरात् = बहुत विस्तार से, आनन्दकूटमहिमा = आनन्द नामक कूट की महिमा, (अपि - भी), कथिता = कही गई है।

श्लोकार्थ - इस धर्मात्मा कवि द्वारा बहुत प्रकार से मुनि, आर्यिका आदि संघों की भक्ति की गई है तथा सम्मेदशिखर के आनन्दकूट की महिमा भी बहुत विस्तार से कही गयी है।

सम्मेदानन्दकूटस्य दर्शनाद् भव्यमानवः ।

फलं लक्षोपवासानां षोडशेति वरं लभेत् ॥७४॥

अन्वयार्थ - भव्यमानवः = भव्य मनुष्य, सम्मेदानन्दकूटस्य = सम्मेदशिखर की आनन्दकूट के, दर्शनात् = दर्शन से, षोडश = सोलह, लक्षोपवासानां = लाख उपवासों का, वरं = श्रेष्ठ, फलं = फल को, लभेत् = पाता है, इति = ऐसी, (श्रुतिः = श्रुति है)।

श्लोकार्थ - भव्य मनुष्य सम्मेदाचल पर्वत की आनन्दकूट का दर्शन करने से सोलह लाख उपवासों का श्रेष्ठ फल पाता है, ऐसी श्रुति है।

तैरश्चीं नारकीं चैव न गतिं प्राप्नुयात्क्वचित् ।

ईदृग्विधं फलं चास्य कूटस्य मुनिभिः स्मृतम् ॥७५॥

अन्वयार्थ — (सम्मदयात्रिकः = सम्मदशिखर पर यात्रा करने वाला), क्वचित् = किसी भी, (काले = काल में), तैरश्चीं = तिर्यञ्च नामक, च = और, नारकीं = नरक नाम वाली, गतिं = गति को, न = नहीं, एव = ही, प्राप्नुयात् = प्राप्त करे, अस्य च = और इस, कूटस्य = आनन्दकूट का, ईदृग्विधं = इस प्रकार का, फलं = फल, मुनिभिः = मुनिराजों द्वारा, स्मृतं = स्मरण किया जाता, (अस्ति = है)।

श्लोकार्थ — सम्मदशिखर की यात्रा करने वाला कभी भी तिर्यञ्चगति और नरकगति को नहीं ही प्राप्त करे। सम्मदशिखर की आनन्दकूट का इस प्रकार का फल मुनिराजों द्वारा स्मरण किया जाता है।

यस्तु निःशेषकूटानां विदध्याद्वन्दनां नरः ।

तस्य पुण्यफलं वक्तुं वाण्यापि न हि शक्यते ॥७६॥

अन्वयार्थ — यः = जो, नरः = मनुष्य, निःशेषकूटानां = सभी कूटों की, वन्दनां = वन्दना को, विदध्यात् = करे, (तर्हि = तो), तस्य = उस व्यक्ति के, पुण्यफलं = पुण्यफल को, वक्तुं = कहना, वाण्या = वाग्देवी के द्वारा, अपि = भी, न = नहीं, हि = ही, शक्यते = संभव है।

श्लोकार्थ — जो मनुष्य सम्मदशिखर की सभी कूटों की वन्दना करे तो उसके फल को वाग्देवी के द्वारा भी नहीं कहा जा सकता है।

यस्मिन्कूटवरेऽभिनन्दनविभुश्चानन्दपूर्व वरे ।

नानाकल्मषबीजनाशनिपुणो यो देवदेवोऽभवत् ॥

शुक्लध्यानविधानशुभहृदयः सिद्धालयं प्राप्तवान् ।

तं यत्नैः परिपश्यतोत्तमजनाः यस्यास्ति शैले स्पृहा ॥७७॥

अन्वयार्थ — यः = जो, नानाकल्मषबीजनाशनिपुणः = नाना प्रकार के पापों के बीज मोह को नष्ट करने में निपुण, देवदेवः = देवताओं के भी देव भगवान् अर्हन्, अभिनन्दनविभुः = तीर्थङ्कर अभिनन्दन नाथ, यस्मिन् = जिस, कूटवरे = श्रेष्ठ कूट पर,

अभवत् = हुये थे, च = और, शुक्लध्यानविधानशुभ्रहृदयः = शुक्लध्यान को करने से शुभ्र-शुद्ध हृदय वाले, (सः = उन्होंने), सिद्धालयं = सिद्धालय को, प्राप्तवान् = प्राप्त किया, यस्य च = और जिस टोंक की, शैले = पर्वत पर, स्पृहा = प्रातियोगिक प्रतिष्ठा, (अस्ति = है), उत्तमजनाः = हे उत्तम जनो!, (यूयं = तुम सभी), तं = उस सम्मेदशिखर को और आनन्दकूट को, यत्नैः = प्रयत्नों से अर्थात् प्रयत्न करके, परिपश्यत = अच्छी तरह से देखो, वन्दना या दर्शन करो।

श्लोकार्थ - जो नाना प्रकार के पापों के बीज अर्थात् मोह को नष्ट करने में निपुण देवाधिदेव अर्हन् तीर्थकर अभिनन्दननाथ जिस आनन्दकूट नामक श्रेष्ठ टोंक पर हुये थे और शुक्लध्यान को करके शुद्ध हृदय वाले उन्होंने सिद्धालय को प्राप्त किया तथा जिस टोंक की उस पर्वत पर स्पर्धात्मक प्रातियोगिता प्रतिष्ठा है। हे उत्तमजनों तुम सभी प्रयत्न करके उस टोंक की और पर्वत की वन्दना करो, अच्छी तरह उसे देखो।

(इति श्री सम्मेदशिखर माहात्म्ये आनन्दकूटवर्णनं

नाम तीर्थकराऽभिनन्दननाथकथोद्धारतत्परश्च

चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः।)

(इस प्रकार श्रीसम्मेदशिखर माहात्म्य में दत्तधवलकूट का वर्णन और तीर्थङ्कर अभिनन्दन नाथ की कथा को उद्घाटित करने वाला चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ।)

पञ्चमोऽध्यायः

तीर्थकरः पञ्चमो गः स्मरणात्सुमतिप्रदः ।

वन्दे सुमतिनाथं तं सुमतिध्येयमीश्वरम् ॥१॥

अन्वयार्थ — यः = जो, स्मरणात् = स्मरण करने से, सुमतिप्रदः = सुमतिप्रदान करने वाले, पञ्चमः = पांचवें, तीर्थकरः = तीर्थकर, (वर्तते = है), (अहं = मैं कवि), तं = उन, सुमतिध्येयम् = सुमति द्वारा ध्यान किये जाने योग्य, ईश्वरं = तीर्थकर-भगवान्, सुमतिनाथं = सुमतिनाथ को, वन्दे = प्रणाम करता हूँ।

श्लोकार्थ — जो स्मरण करने से सुमति प्रदान करने वाले पंचम तीर्थकर हैं मैं सुमति द्वारा ध्याये जाने योग्य उन तीर्थकर सुमतिनाथ को प्रणाम करता हूँ।

सर्वातिशयसम्पन्नमव्ययं श्रीनिकेतनम् ।

सुमत्याप्त्यै सदा वन्दे सुमतिं कोकलाञ्छनम् ॥२॥

अन्वयार्थ — (अहं = मैं), सुमत्याप्त्यै = सुबुद्धि की प्राप्ति के लिये, सर्वातिशयसम्पन्नम् = सभी प्रकार के अतिशयों से पूर्ण, अव्ययम् = अविनश्वर, श्रीनिकेतनम् = केवलज्ञानादि लक्ष्मी के धाम, कोकलाञ्छनम् = चकवा-चकवी के चिन्ह वाले, सुमतिं = सुमतिनाथ को, सदा = हमेशा, वन्दे = प्रणाम करता हूँ।

श्लोकार्थ — मैं सुबुद्धि की प्राप्ति के लिये, सभी प्रकार के अतिशयों से पूर्ण, अविनश्वर, केवलज्ञानादि लक्ष्मी के धाम और चकवा-चकवी के चिन्ह वाले सुमतिनाथ भगवान् को सदा प्रणाम करता हूँ।

नमस्तुभ्यं भगवते त्रैलोक्यगुरवे नमः ।

नमो भव्यानन्दकर्त्रे सुमतिप्रभवे नमः ॥३॥

अन्वयार्थ — तुभ्यं भगवते = भगवान् तुम्हारे लिये, नमः = नमस्कार,

त्रैलोक्यगुरवे = तीनों लोक के गुरु के लिये, नमः = नमस्कार,
 भव्यानन्दकर्त्रे = भव्यों के लिये आनन्द के कर्त्ता के लिये,
 नमः = नमस्कार, सुमतिप्रभे = सुमतिप्रभु के लिये, नमः =
 नमस्कार ।

श्लोकार्थ — भव्य जीवों को आनन्द के कर्त्ता तथा तीन लोक के गुरु परम
 भगवान् सुमति प्रभु तुम्हारे लिये हमारा नमस्कार है ।

चतुरुत्तरलक्षोक्तयोजनैर्विश्वतो महान् ।

दीव्यते धातकीखण्डो विदेहक्षेत्रसंयुतः ॥४॥

अन्वयार्थ — चतुरुत्तरलक्षोक्तयोजनैः = चार लाख योजनों से, विश्वतः =
 सबसे, महान् = बड़ा, विदेह क्षेत्र संयुतः = विदेह क्षेत्र से
 संयुक्त, धातकीखण्डः = धातकीखण्ड, दीव्यते = दीप्तिमान
 है ।

श्लोकार्थ — चार लाख योजन विस्तार वाला होने से धातकीखण्ड द्वीप
 सबसे बड़ा है तथा विदेह क्षेत्र से संयुक्त होकर दीप्तिमान
 है ।

तत्र सीतानदी रम्या कलुषघ्नी तदुत्तरे ।

समृद्धदेशः सम्भाति नामतः पुष्कलावती ॥५॥

अन्वयार्थ — तत्र = उस धातकी खण्ड द्वीप के विदेहक्षेत्र में, रम्या =
 रमणीय, (च = और), कलुषघ्नी = पापनाशिनी, सीतानदी =
 सीता नदी, (वर्तते = है), तदुत्तरे = उस नदी के उत्तर में,
 नामतः = नाम से, पुष्कलावती = पुष्कलावती, समृद्धदेशः =
 एक समृद्धिपूर्ण देश, सम्भाति = अच्छी तरह सुशोभित होता
 है ।

श्लोकार्थ - उस धातकीखण्ड द्वीप के विदेह क्षेत्र में एक रमणीय और
 पापनाशिनी सीता नदी है, जिसके उत्तर में पुष्कलावती नामक
 एक समृद्धि सम्पन्न देश सुशोभित होता है ।

पुण्डरीकपुरं तत्र रम्यं रम्यजनोषितम् ।

धृतिषेणो महान् राजा पाति स्म नगरं च तत् ॥६॥

अन्वयार्थ — तत्र = उस पुष्कलावती देश में, रम्यजनोषितम् = रमणीय

अर्थात् मिलनसार स्नेहशील लोगों के निवास स्वरूप, रम्यं = रमणीय—मनोहर, नगरं = नगर, पुण्डरीकपुरं = पुण्डरीकपुर, (आस्ते = है), तत् च = और उस नगर का, महान् राजा = महान् राजा, धृतिषेणः = धृतिषेण, पाति स्म = पालन करता था।

श्लोकार्थ — उस पुष्कलावती देश में रमणीय अर्थात् मिलनसार स्नेही लोगों के निवास योग्य एक मनोहर नगर पुण्डरीकपुर है जिसका पालन एक महान् राजा धृतिषेण करता था।

महापुण्यप्रभावाच्च प्रतापमतुलं गतः ।
अशेषवैरिवंशं स समाखण्डयदीश्वरः ॥७॥

अन्वयार्थ — च = और, महापुण्यप्रभावात् = महान् पुण्य के प्रभाव से, अतुलं = अतुलनीय, प्रतापं = प्रताप को, गतः = प्राप्त हुये, सः = उस, ईश्वरः = राजा ने, अशेषवैरिवंशं = सम्पूर्ण शत्रुओं के कुल को, समाखण्डयत् = सम्यक् रीति से खण्ड-खण्ड कर दिया।

श्लोकार्थ — महान् पुण्य के प्रभाव से अतुलनीय प्रताप अर्थात् सामर्थ्य को प्राप्त हुये उस राजा ने समस्त शत्रु कुलों को अच्छी तरह से छिन्न भिन्न कर दिया।

प्रतापः प्रतिघ्नं च तस्य राज्ञोऽप्यवर्धत ।
सामदामवचोदण्डभेदान् राजा विधाय सः ॥८॥
स्ववशे निखिलां चक्रे प्रजाश्च समरञ्जयत् ।
प्रतिपद्भ्यन्द्वात्तस्थ राज्यं वृद्धिमुपागतम् ॥९॥

अन्वयार्थ — तस्य = उस, राज्ञः = राजा का, प्रतापः = पराक्रम, अपि = भी, प्रतिघ्नं = प्रतिदिन, अवर्धत = वृद्धिगत हुआ, च = और, सः = उस, राजा = राजा ने, सामदामवचोदण्डभेदान् = साम, दाम, वचोदण्ड और भेद की नीतियों को, विधाय = करके, निखिलां = सारी, (पृथ्वीं = पृथ्वी को), स्ववशे = अपने वश में, चक्रे = कर लिया, च = और, प्रजाः = प्रजाजनों को, समरञ्जयत् = अनुरञ्जित—आनन्दित किया, तस्य = उसका,

राज्यम् = राज्य, प्रतिपच्चन्द्रवत् = प्रतिपदा के चन्द्रमा के समान, वृद्धिमुपागतम् = वृद्धि को प्राप्त हुआ।

श्लोकार्थ — उस राजा का पराक्रम भी प्रतिदिन बढ़ता ही गया तथा उसने साम—दाम—वचोदण्ड और भेद की नीतियों को लागू करके सारी पृथ्वी को अपने अधीन बना लिया एवं प्रजा को अनुरंजित व आनन्दित किया। उसका राज्य प्रतिपदा के चन्द्रमा की भांति निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होता गया।

वर्णाश्रमोचितांश्चैव राजा धर्मान्चालयत्।

सर्वेषामावसच्चित्ते स भूमीशः स्वसद्गुणैः ॥१०॥

अन्वयार्थ — राजा = राजा ने, वर्णाश्रमोचितान् = वर्णाश्रम व्यवस्था के योग्य, एव = ही, धर्मान् = धर्मों को, अचालयत् = चलाया, च = और, सः = वह, भूमीशः = राजा, स्वसद्गुणैः = अपने अच्छे गुणों के कारण, सर्वेषाम् = सभी लोगों के, चित्ते = चित्त में, आवसत् = बस गया।

श्लोकार्थ — अपने राज्य में उस राजा ने वर्णाश्रम व्यवस्था के योग्य ही धर्मों को चलाया तथा अपने सद्गुणों के कारण वह राजा सभी लोगों के मन में बस गया।

जितेन्द्रियस्य तस्यासन् जितेन्द्रियगुणाः प्रजाः ।

ईतयः सप्त नो दृष्टास्तस्य देशे सुधर्मिणः ॥११॥

अन्वयार्थ — तस्य = उस, जितेन्द्रियस्य = जितेन्द्रिय राजा के, प्रजाः = प्रजाजन, (अपि = भी), जितेन्द्रियगुणाः = जितेन्द्रियगुण वाले, आसन् = थे, तस्य = उस, सुधर्मिणः = धर्मात्मा राजा के, देशे = देश में, सप्त = सात, ईतयः = ईति—भीति आदि विपत्तियाँ, नो = नहीं, दृष्टाः = देखी जाती थीं।

श्लोकार्थ — उस जितेन्द्रिय राजा धृतिषेण की प्रजा भी जितेन्द्रिय गुणों वाली थी। उस धर्मात्मा राजा के देश में ईति—भीति आदि विपत्तियाँ कभी भी नहीं देखीं गयीं थीं।

न्यायनीतिक्षमायुक्तः सम्यक्त्वगुणभूषितः ।

निष्कण्टकं स्वकं राज्यमन्वभूत्स महोदयः ॥१२॥

अन्वयार्थ — न्यायनीतिक्षमायुक्तः = न्याय, नीति और क्षमा से युक्त, सम्यक्त्वगुणभूषितः = सम्यक्त्व गुण से विभूषित, महोदयः = महान् पुण्योदय वाले, सः = उस राजा ने, स्वकं = अपने, निष्कण्टकं = निष्कण्टक, राज्यं = राज्य को, अन्वभूत् = भोगा, उसका अनुभव किया।

श्लोकार्थ — न्याय, नीति और क्षमा से युक्त, सम्यक्त्वगुण विभूषित सम्यग्दृष्टि महान् पुण्यशाली उस राजा धृतिर्षेण ने अपने निष्कण्टक राज्य को भोगा, उसका अनुभव किया।

कदाचित्सौधमारुह्य सिंहासनगतः प्रभुः ।

अपश्यत्स्वपुरं रम्यं सर्वसिद्धिसमृद्धिमत् ॥१३॥

अन्वयार्थ — कदाचित् = कभी, सौधम् = महल पर, आरुह्य = चढ़कर, सिंहासनगतः = सिंहासन पर बैठे हुये, प्रभुः = राजा ने, सर्वसिद्धिसमृद्धिमत् = सारी सिद्धियों और समृद्धि से भरपूर, रम्यं = मनोहर, स्वपुरं = अपने नगर को, अपश्यत् = देखा।

श्लोकार्थ — किसी दिन अपने महल के ऊपर चढ़कर सिंहासन पर बैठे हुये उस राजा ने अपने सर्वविधि सिद्धिसम्पन्न और समृद्धि से भरपूर नगर को देखा।

मृतपुत्रं समादाय गच्छन्तं पथि मानवम् ।

कञ्चिन्निरीक्ष्य भव्योऽसौ तत्क्षणाद्विरतोऽभवत् ॥१४॥

अन्वयार्थ — मृतपुत्रं = मरे हुये बेटे को, समादाय = लेकर, पथि = रास्ते पर, गच्छन्तं = जाते हुये, कञ्चित् = किसी, मानवं = मनुष्य को, निरीक्ष्य = देखकर, असौ = वह, भव्यः = भव्य राजा, तत्क्षणात् = उसी क्षण, विरतोऽभवत् = विरक्त हो गया।

श्लोकार्थ — अपने मरे हुये बेटे को लेकर रास्ते पर जाते हुये किसी मनुष्य को देखकर वह भव्य राजा उसी समय विरक्त हो गया अर्थात् वैराग्यभाव को प्राप्त हुआ।

बुद्ध्वा सारं ह्यसारं तत् तपःकृते समुत्सुकः ।

पुत्रायातिरथाख्याय राज्यं दत्त्वा वनं गतः ॥१५॥

अन्वयार्थ — (जगति = संसार में, यत् = जो), सारं = सारभूत है, तत्

= उसको, असारं = असारभूत, हि = ही, बुद्ध्या = जानकर, (सः = वह राजा), तपःकृते = तपस्या के लिये, समुत्सुकः = अच्छी तरह उत्सुक होता हुआ, अतिरथाख्याय = अतिरथ नामक, पुत्राय = बेटे के लिये, राज्यं = राज्य को, दत्त्वा = देकर, वनं = वन को, गतः = चला गया।

श्लोकार्थ — इस संसार में जो कुछ भी सारभूत लगता है वह सभी असारभूत है ऐसा जानकर वह राजा तप के लिये उत्सुक होता हुआ पुत्र अतिरथ को राज्य सम्पदा देकर वन को चला गया।

दीक्षां जग्राह तत्रैव सुप्रसन्नेन चेशसा।

एकादशाङ्गविद् भूत्वा देहस्नेहं समत्यजत् ॥१६॥

अन्वयार्थ — तत्रैव = वन में ही, (सः = उसने), सुप्रसन्नेन = प्रसन्न, चेतसा = मन से, दीक्षां = मुनि दीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया, (च = और), एकादशाङ्गविद् = ग्यारह अङ्गों का ज्ञाता, भूत्वा = होकर, देहस्नेहं = देह के राग को, समत्यजत् = छोड़ दिया।

श्लोकार्थ — उस वन में ही उस राजा ने प्रसन्न मन से मुनि दीक्षा को ग्रहण कर लिया तथा ग्यारह अङ्ग का ज्ञाता होकर उसने शरीर के राग को भी छोड़ दिया।

विजित्य मोहशत्रुं स कारणानि च षोडश।

सम्भाव्य तप उग्रं च दधार वनगो मुनिः ॥१७॥

अन्वयार्थ — सः = उन, वनगः = वन को गये हुये, मुनिः = मुनिराज ने, मोहशत्रुं = मोह शत्रु को, विजित्य = जीतकर, च = और, षोडश = सोलह, कारणानि = कारणों को, सम्भाव्य = सम्यक् भाकर, च = समुच्चय सूचक, उग्रं = उत्कट-कठिन, तपः = तपश्चरण को, दधार = धारण कर लिया।

श्लोकार्थ — वन को गये हुये उन मुनिराज ने मोह शत्रु को जीतकर तथा सम्यक् रूप से सोलह कारण भावनार्यें भाकर उग्र तपश्चरण धारण कर लिया।

तीर्थकृन्नाम सम्प्राप्य दुर्लभं सर्वमानवैः ।

सन्यासविधिना देहं त्यक्त्वा शुचिस्थले मुनिः ॥१८॥

सर्वार्थसिद्धौ जातश्च सम्यक्त्वगुणान्वितो हि सः ।

अहमिन्द्रत्वमापदे

सर्वगीर्वाणसेवितः ॥१९॥

अन्वयार्थ - सर्वमानवैः = सभी-साधारण मनुष्यों द्वारा, दुर्लभं = जिसका पाना कठिन है उस, तीर्थकृन्नाम = तीर्थकर नामकर्म को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, मुनिः = मुनिराज, शुचिस्थले = पवित्र स्थान पर, सन्यासविधिना = सन्यास मरण की विधि द्वारा, देहं = शरीर को, त्यक्त्वा = छोड़कर, सर्वार्थसिद्धौ = सर्वार्थसिद्धि में, जातः = उत्पन्न हुआ, च = और, सम्यक्त्वगुणान्वितः = सम्यक्त्व गुण से युक्त, सः = उस देव ने, सर्वगीर्वाणसेवितः = सभी देवताओं से सेवित-पूजित होते हुये, हि = ही, अहमिन्द्रत्वम् = अहमिन्द्र पने को, आपदे = प्राप्त कर लिया ।

श्लोकार्थ - सभी साधारण मनुष्यों द्वारा जिसका पाना कठिन है उस तीर्थङ्कर नामकर्म नामक महान् पुण्य प्रकृति को पाकर मुनिराज पवित्रस्थान पर सन्यासमरण पूर्वक शरीर को छोड़कर सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न हुये और सम्यक्त्व के गुण से परिपूर्ण उस देव ने सभी देवताओं से सेवित होते हुये ही अहमिन्द्रपने को प्राप्त कर लिया ।

त्रित्रिंशत्सागरायुः स त्रित्रिंशत्संमितेषु च ।

सहस्राच्छेषु गच्छत्सु मानसाहारमाहरत् ॥२०॥

अन्वयार्थ - त्रित्रिंशत्सागरायुः = तैतीस सागर की आयु वाला, सः = वह देव, त्रित्रिंशत्संमितेषु सहस्राच्छेषु = तैतीस हजार वर्ष, गच्छत्सु = बीत जाने पर, मानसाहारम् = इच्छा से कंठनिसृत अमृत-आहार को, आहरत् = लेता था ।

श्लोकार्थ - तैतीस हजार वाला वह देव तैतीस हजार वर्ष बीत जाने पर मन में इच्छा होने मात्र से कण्ठनिसृत अमृत-आहार लेता था ।

त्रिंशत्पक्षगमने तत्रस्थोऽयं समुच्छ्वसन् ।

चतुरङ्गुलकन्यूनं हस्तमात्रं शरीरकः ॥२१॥

अन्वयार्थ - तत्रस्थः = सर्वार्थसिद्धि में स्थित, अयं = यह देव, त्रिंशत्पक्षगमने = तेतीस पक्ष चले जाने पर, समुच्छ्वसन् = श्वासोच्छ्वास लेता हुआ, चतुरङ्गुलकन्यूनं = चार अंगुल कम, हस्तमात्रं = एक हाथ प्रमाण, शरीरकः = शरीर वाला (आसीत् = था) ।

श्लोकार्थ - सर्वार्थसिद्धि में यह देव तेतीस पक्ष बीतने पर श्वासोच्छ्वास लेता था तथा चार अंगुल कम एक हाथ ऊँचे शरीर वाला था ।

शुक्ललेश्यान्वितः श्रीमान् अवधिज्ञानसागरः ।

ततो नरकपर्यन्तं ज्ञातुं योद्धर्तुमप्यसौ ॥२२॥

विकर्तुं स प्रभावेन, पूर्णोक्तुं च चेतसा ।

समर्थः सततं देवो ब्रह्मचर्यसुखान्वितः ॥२३॥

अन्वयार्थ - असौ = वह, श्रीमान् = कान्तिसम्पन्न देव, शुक्ललेश्यान्वितः = शुक्ललेश्या के परिणामों वाला, च = और, अवधिज्ञानसागरः = अवधिज्ञान का समुद्र अर्थात् गंभीर और अत्यधिक विस्तृत मर्यादा वाले अवधिज्ञान का स्वामी, (आसीत् = था), ततः = उस अवधिज्ञान से, नरकपर्यन्तं = नरक तक, ज्ञातुं = जानने के लिये, उद्धर्तुं = किसी संशयादि को प्राप्त विषय का उद्धार करने के लिये, सप्रभावेन = अवधिज्ञान के प्रभाव से, विकर्तुं = उसका विशेष अर्थ करने के लिये, च = और, तेजसा = तेज से, पूर्णोक्तुं = अपूर्ण अर्थ को पूर्ण करने के लिये, अपि = भी, समर्थः = समर्थ होता हुआ, देवः = वह देव, सततं = निरन्तर, ब्रह्मचर्यसुखान्वितः = ब्रह्मचर्य के सुख से युक्त, (अभवत् = हुआ) ।

श्लोकार्थ - वह कान्तिसम्पन्न देव शुक्ललेश्या के परिणामों वाला और अवधिज्ञान का सागर अर्थात् गंभीर और विस्तृत मर्यादा वाले अवधिज्ञान का स्वामी था । उस अवधिज्ञान से वह देव सातवें नरक तक जानने के लिये, संशय को प्राप्त किसी विषय का

उद्धार करने के लिये, उसके प्रभाव से विशेष अर्थ करने के लिये तथा अपूर्ण अर्थ को पूर्ण करने के लिये समर्थ होता हुआ सदा ही ब्रह्मचर्य से प्राप्त सुख को भोगता रहा।

व्याख्यानं सप्ततत्त्वानां कुर्वन्नमितमोदभाक् ।

षण्मासायुः समभवत् सत्रायुषि गते सति ॥२४॥

अन्वयार्थ – तत्र = सर्वार्थसिद्धि की उस देव पर्याय में, आयुषि गते सति = आयु भोग का क्रम चलते रहने पर, (सः = वह देव), सप्ततत्त्वानां = सात तत्त्वों का, व्याख्यानं = व्याख्यान, कुर्वन् = करता हुआ, नमितमोदभाक् = विनम्रता और प्रसन्नता का पात्र, (भूत्वा = होकर), षण्मासायुः = छह माह की शेष आयु वाला, समभवत् = हुआ।

श्लोकार्थ – सर्वार्थसिद्धि विमान में प्राप्त हुई देव पर्याय में आयु को भोगने के चलते क्रम में वह सात तत्त्वों का व्याख्यान करता हुआ तथा विनम्रता और प्रसन्नता का पात्र होकर छह माह की अवशिष्ट आयु वाला हुआ।

अनन्यलभ्यसौख्येऽपि सर्वकर्मक्षयाय सः ।

अनासक्तस्तदातिष्ठत्सिद्धध्यानपरायणः ॥२५॥

अन्वयार्थ – तदा = तब अर्थात् आयु के छह मास शेष रहने पर, सः = वह अहमिन्द्र देव, अनन्यलभ्यसौख्ये = अनन्य सुख की उपलब्धि होने पर, अपि = भी, सर्वकर्मक्षयाय = सभी कर्मों के क्षय की भावना के लिये, (तत्र = उस सुख में), अनासक्तः = अनासक्त हुआ, सिद्धध्यानपरायणः = सिद्धभगवन्त के ध्यान में तत्पर होकर, अतिष्ठत् = स्थित रहा।

श्लोकार्थ – आयु के छह माह शेष रहने पर उस अहमिन्द्र नामक देव ने अन्यत्र प्राप्त न होने वाले अनन्य सुख की उपलब्धि होने पर भी सारे कर्मों के क्षय की भावना के लिये उसमें आसक्त नहीं हुआ अपितु सिद्धभगवन्तों के ध्यान में तत्पर होकर स्थित रहा।

सिद्धनामजपासक्तः सिद्धपूजारतः प्रभुः ।

सिद्धसंवादिनिपुणः सिद्धकल्पोऽप्यदृश्यत ॥२६॥

अन्वयार्थ – सिद्धनामजपासक्तः = सिद्ध प्रभु के नाम की जाप करने में आसक्त, सिद्धपूजारतः = सिद्ध भगवन्तों की भाव पूजा करने के व्यापार में प्रवृत्त, (तथा च = और), सिद्धसंवादनिपुणः = सिद्ध भगवन्तों से बातचीत करने में या उनका गुणानुवर्णन करने में चतुर, (सः = वह), प्रभुः = मुनिराज, अपि = भी, सिद्धकल्पः = सिद्धसदृश, (एव = ही), अदृश्यत = दिखायी दिये।

श्लोकार्थ – सिद्ध प्रभु के नाम की जाप करने में मन को लगाने वाले, सिद्धभगवन्तों की पूजा भाव पूजा करने के पुरुषार्थ में लगे हुये तथा सिद्धों से वार्तालाप करने में अथवा सिद्धभगवन्तों का गुणानुवर्णन करने में चतुर वह मुनिराज भी सिद्धों के समान दिखायी दिये।

जम्बूद्वीपगते शुद्धे भरतक्षेत्र उत्तमे ।

कौसले विषयेऽयोध्या पुरी विश्वमनोहरा ॥२७॥

अन्वयार्थ – जम्बूद्वीपगते = जम्बूद्वीप में स्थित, भरतक्षेत्रे = भरतक्षेत्र में, शुद्धे = शुद्ध अर्थात् आर्य खण्ड में, उत्तमे = उत्तम, कौसले = कौसल, विषय = देश में, विश्वमनोहरा = सबसे सुन्दर, पुरी = नगरी, अयोध्या = अयोध्या, (आसीत् = थी)।

श्लोकार्थ – जम्बूद्वीप में स्थित भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में कौसल नामक देश था उसमें सबसे सुन्दर तथा जगत्प्रसिद्ध नगरी अयोध्या थी।

तत्र मेघरथो राजा मङ्गलाख्या च तत्प्रिया ।

तया सह स धर्मात्मा लौकिकं सुखमन्वभूत् ॥२८॥

अन्वयार्थ – तत्र = उस अयोध्या नगरी में, राजा = राजा, मेघरथः = मेघरथ, च = और, तत्प्रिया = उसकी पत्नी, मङ्गलाख्या = मङ्गला नाम की रानी, (अवर्तताम् = रहते थे), सः = उस, धर्मात्मा = धर्मनिष्ठ राजा ने, तया = रानी के, सह = साथ, लौकिकं = लौकिक, सुखं = सुख को, अन्वभूत् = अनुभूत किया, भोगा।

श्लोकार्थ — उस अयोध्या नगरी में राजा मेघरथ और उसकी प्रिय पत्नी, मङ्गला थी। उस मङ्गला रानी के साथ वह धर्मात्मा राजा लौकिक सुख को भोगा करता था।

इन्द्रःस्वावधितः श्रीमदहमिन्द्रागमनं हृदि ।

बुद्ध्वा तद्भूपभवने नगरेऽपि तथैव च ॥२६॥

रत्नवृष्ट्यादिमादिशत् धनदस्तन्निदेशतः ।

ववर्ष विविधान्याशु रत्नानि क्षितिपालके ॥३०॥

अन्वयार्थ — इन्द्रः = इन्द्र ने, स्वावधितः = अपने अवधि-ज्ञान से, श्रीमदहमिन्द्रागमनं = श्रीसम्पन्न अहमिन्द्र का पृथ्वी पर आगमन, हृदि = मन में, बुद्ध्वा = जानकर, तद्भूपभवने = उस राजा के भवन में, तथा च = और, नगरे = नगर में, अपि = भी, रत्नवृष्ट्यादिकम् = रत्नवृष्टि आदि करने का, आदिशत् = आदेश दिया, तन्निदेशतः = इन्द्र के आदेश से, धनदः = कुबेर ने, आशु = शीघ्र, एव = ही, क्षितिपालके = राजा के भवन और नगर में, विविधानि = अनेक प्रकार के, रत्नानि = रत्नों को, ववर्ष = बरसाया।

श्लोकार्थ — इन्द्र ने अवधिज्ञान से अपने मन में, श्रीसम्पन्न अहमिन्द्र का आगमन पृथ्वी पर होगा यह जानकर कुबेर को राजा के घर में और नगर में रत्नवृष्टि करने को कहा। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने राजा के घर में व नगर में अनेक प्रकार के रत्नों की वर्षा की।

एकदा श्रावणे मासे द्वितीयायां सिते दले ।

मघायां च निशान्ते सा मङ्गला तत्र निद्रिता ॥३१॥

अनन्यसुलभान् स्वप्नान् षोडशैक्षत भाग्यतः ।

स्थप्नस्यान्ते च मातङ्गः प्रविवेश तदाननम् ॥३२॥

अन्वयार्थ — एकदा = एक दिन, श्रावणे = श्रावण, मासे = मास में, सिते = शुक्ल, दले = पक्षे, द्वितीयायां = द्वितीया के दिन, निशान्ते = रात्रि के अन्तिम प्रहर में, मघायां च = और मघा नक्षत्र में, तत्र = उस भवन में, मङ्गला = मङ्गला रानी, निद्रिता = सो रही (आसीत् = थी), सा = उस रानी ने, अनन्यसुलभान्

= अगर लोगों को सुलभ न होने वाले अतन्त्र सुलभ, षोडश = सोलह, स्वप्नाम् = स्वप्नों को, भाग्यतः = भाग्यवश, ऐक्षत् = देखा, च और, स्वप्नस्य = स्वप्न के, अन्ते = अन्त में, तदाननं = उसके मुख में, मातङ्गः = हाथी, प्रविवेश = प्रविष्ट हुआ।

श्लोकार्थ — एक दिन श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया को रात्रि के अन्तिम प्रहर में मघा नक्षत्र में राजभवन में सो रही मंगला रानी ने अन्य लोगों को सुलभ न होने वाले अर्थात् दिखायी न देने वाले सोलह स्वप्नों को देखा तथा स्वप्न देखने के बाद उस रानी के मुख में एक गज प्रविष्ट हुआ, ऐसा लगा।

प्रातः प्रबुद्धा साश्चर्या प्रभोरन्तिकमागता।

अपृच्छत् तत्फलं तस्मै स प्राह शृणु वल्लभे ॥३३॥

अन्वयार्थ — प्रातः = सुबह, प्रबुद्धा = जागी हुई, आश्चर्या = आश्चर्य वाली, सा = वह रानी, प्रभोः = राजा के, अन्तिकम् = समीप, आगता = आयी, तत्फलं = स्वप्नों का फल, तस्मै = राजा से, अपृच्छत् = पूछा, सः = वह राजा, प्राह = बोला, वल्लभे = प्रिये, शृणु = सुनो।

श्लोकार्थ — सुबह-सुबह जाग कर तैयार हुई तथा आश्चर्यचकित वह रानी राजा के समीप गयी और राजा से स्वप्नों का फल पूछने लगी। राजा बोला प्रिये! तुम सुनो।

भविष्यति सुतस्ते हि भगवान्गुणसागरः ।

श्रुत्वा परममोदं सा लेभेऽभूद्गर्भवत्यथ ॥३४॥

अन्वयार्थ — ते = तुम्हारा, सुतः = पुत्र, गुणसागरः = गुणों के सागर, भगवान् = तीर्थङ्कर प्रभु, भविष्यति = होगा, (इति = इस प्रकार), श्रुत्वा = सुनकर, सा = वह रानी, परममोदं = परमानन्द को, लेभे = प्राप्त हुई, अथ = अनन्तर, गर्भवती = गर्भवती, अभूत् = हुई।

श्लोकार्थ — तुम्हारा पुत्र गुणों का सागर और भगवान् तीर्थङ्कर प्रभु होगा यह सुनकर वह रानी परम आनन्द को प्राप्त हुई तथा उसने गर्भधारण किया।

एकादश्यां सिते पक्षे चैत्रमासि चतुर्दशे ।

नक्षत्रेऽसौ त्रिनयनः प्रादुरासीज्जगत्पतिः ॥३५॥

अन्वयार्थ — चैत्रमासि = चैत्र मास में, सिते पक्षे = शुक्ल पक्ष में, एकादश्यां = ग्यारहवीं तिथि में, चतुर्दशे नक्षत्रे = चौदहवें नक्षत्र में, असौ = वह, त्रिनयनः = तीन ज्ञान नेत्रों वाला, जगत्पतिः = जगत् का स्वामी, प्रादुरासीत् = उत्पन्न हुआ ।

श्लोकार्थ — चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में ग्यारहवीं तिथि को चौदहवें नक्षत्र में वह त्रिनेत्रधारी अर्थात् मति-श्रुत एवं अवधिज्ञान का धारी जगत्प्रभु परमात्मा उत्पन्न हुआ ।

स्वावधेर्जन्म तस्याथ बुद्ध्वा देवपतिर्मुदा ।

सदेवस्तत्र आगत्य देवमादाय भक्तितः ॥३६॥

स्वर्णाचलं स गतवान् तत्र क्षीराब्धिवारिभिः ।

अभिषेकं चकारास्य सहस्राष्टघटैः शुभैः ॥३७॥

अन्वयार्थ — तस्य = प्रभु का, जन्म = जन्म को, स्वावधेः = अपने अवधिज्ञान से, बुद्ध्वा = जानकर, सदेवः = देवताओं सहित, सः = वह, देवपतिः = इन्द्र, मुदा = प्रसन्न मन से, तत्र = राजभवन में, आगत्य = आकर, भक्तितः = भक्तिभाव से, देवम् = प्रभु को, आदाय = लेकर, स्वर्णाचलं = स्वर्णाचल मेरु पर्वत को, गतवान् = गया । तत्र = वहाँ, शुभैः = शुभ, सहस्राष्टघटैः = एक हजार आठ घटों से, क्षीराब्धिवारिभिः = क्षीरसागर के जल से, अस्य = प्रभु का, अभिषेकं = अभिषेक, चकार = किया ।

श्लोकार्थ — अपने अवधिज्ञान से तीर्थङ्कर सुमतिनाथ के जन्म को जानकर देवताओं के साथ उस इन्द्र ने प्रसन्न मन से राजभवन आकर तथा भक्तिभाव से भगवान् को लेकर स्वर्ण निर्मित मेरु पर्वत पर प्रस्थान किया वहाँ उसने पाण्डुकशिला पर भगवान् का एक हजार शुभ कलशों में भरे क्षीरसागर के जल से अभिषेक किया ।

यस्त्राभरणैर्देवं सम्भूष्याग्रे वेदितः ।

अयोध्यायां भूपभवने संस्थाप्याथ प्रपूज्य तम् ॥३८॥

तस्य कृत्वा सुमत्याख्यं देवैर्देवं निवेद्य सः ।

कृतोत्सवः सुरैः सार्धं प्राप देवालयं ततः ॥३६॥

अन्वयार्थ — सः = उस इन्द्र ने, वस्त्राभरणैः = वस्त्र और आभूषणों से, देवं = भगवान् को, सम्भूष्य = अच्छी तरह से विभूषित करके, अयोध्यायां = अयोध्या नगरी में, भूपमवने = राजा के महल में, वेदितः = सिंहासन वेदी से, अग्रे = आगे, अथ = और, तस्य = उनका, सुमतिः = सुमतिनाथ, आख्यं = नाम को, कृत्वा = करके, देवं = प्रभु को, निवेद्य = निवेदन करके, देवैः = देवताओं के साथ, कृतोत्सवः = किया है उत्सव जिसने ऐसे उस इन्द्र ने, सुरैः सार्धं = देवताओं के साथ, ततः = अयोध्या से, देवालयं = देवालय अर्थात् स्वर्ग को, प्राप = प्राप्त किया ।

श्लोकार्थ — इन्द्र ने वस्त्राभूषणों से देव को अर्थात् तीर्थङ्कर शिशु को विभूषित करके उन्हें अयोध्या में राजभवन की वेदी से अग्रभाग में स्थापित किया तथा उनका "सुमतिनाथ" नामकरण करके उन्हें तथा उनके पिता को निवेदन करके देवताओं के साथ उत्सव करने वाला वह इन्द्र देवताओं के साथ ही अयोध्या से स्वर्ग में चला गया ।

नवलक्षोत्तरकोट्युक्तसागरेष्वभिनन्दनात् ।

गतेषु सुमतिश्चासीत् तन्मध्यायुर्महाप्रभुः ॥४०॥

चत्वारिंशत्पूर्वलक्षजीवी त्रिशतधनुःप्रमः ।

शरीरोत्सेध आख्यातः तस्य देवस्य चागमे ॥४१॥

अन्वयार्थ — अभिनन्दनात् = अभिनन्दननाथ से, नवलक्षोत्तरकोट्युक्तसागरेषु = एक करोड़ नौ लाख सागर, गतेषु = बीत जाने पर, तन्मध्यायुर्महाप्रभुः = उनसे मध्यम आयु वाले महाप्रभु तीर्थङ्कर, चत्वारिंशत्पूर्वलक्षजीवी = चालीस लाख पूर्व प्रमाण जीवन वाले, सुमतिः = तीर्थङ्कर सुमतिनाथ, आसीत् = हुये थे, च = और, तस्य = उन, देवस्य = भगवान् के, शरीरोत्सेधः = शरीर की ऊँचाई, त्रिशतधनुःप्रमः = तीन सौ धनुष प्रमाण, आगमे = आगम में, आख्यातः = कही गई है ।

श्लोकार्थ — तीर्थङ्कर अभिनन्दन नाथ के पश्चात् एक करोड़ नौ लाख सागर काल बीत जाने पर तीर्थङ्कर सुमतिनाथ हुये । उनकी आयु चालीस लाख पूर्व श्री तथा शरीर की ऊँचाई तीन सौ धनुष प्रमाण कही गई है ।

स्वर्णकान्तिः कोमलाङ्गः पुण्यप्रकृतिरीश्वरः ।

संदीव्यन् समचतुःस्थानशोभासिन्धुः पुरःश्रुतमः ॥४२॥

स वज्रवृषभनाराचशरीरो बालचन्द्रवत् ।

बालक्रीडाविलासैश्च ववृधे भूपसदमनि ॥४३॥

अन्वयार्थ — च = और, भूपसदमनि = राजा के सदन में, सः = वह, स्वर्णकान्तिः = स्वर्णकान्ति युक्त गौरवर्ण, कोमलाङ्गः = कोमल शरीर वाला, पुण्यप्रकृतिः = पुण्य प्रकृतियों के उदय वाला, संदीव्यन् = कान्ति से प्रकाशित होता हुआ, समचतुःस्थानशोभासिन्धुः = समचतुरस्रसंस्थान के कारण अतिशय शोभायमान, अनूतमः = अत्यधिक उत्तम, वज्रवृषभनाराचशरीरः = वज्रवृषभनाराच संहनन युक्त शरीर वाला, ईश्वरः = प्रभु सुमतिनाथ, बालक्रीडाविलासैः = बालोचित क्रीडाओं के हाव भावों से, बालचन्द्रवत् = बाल चन्द्रमा के समान, ववृधे = वृद्धिगत हुये ।

श्लोकार्थ — और राजा के महल में वे सुमतिनाथ भगवान् अपनी बालोचित क्रीडाओं व हाव-भावों से बाल चन्द्रमा के समान निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हुये । वह सोने की आभा जैसे गौरवर्ण वाले, पुण्य प्रकृतियों के उदय वाले, कोमल सुकुमार देह वाले, समचतुरस्रसंस्थान के कारण शोभा के सागर स्वरूप, अतिशय श्रेष्ठ अर्थात् सर्वोत्तम और वज्रवृषभनाराचसंहनन के कारण मजबूत शरीरधारी थे । उनका शरीर अपनी कान्ति से चमकता रहता था ।

श्यामकेशः समुदिव्यच्छीर्षः पङ्करुहाननः ।

ललितोन्नतभालस्थभाग्योत्लसित वैभवः ॥४४॥

त्रिज्ञानसूचको भास्वत्कुण्डलार्चितकर्णकः ।

कामचापभृकुटिको नीलोत्पलविलोचनः ॥४५॥

तस्योत्तमश्रिया युक्तः कपोलादर्शकान्तिजित् ।
 बिम्बाधरः सुरदनुः सुकण्ठः सुहनुस्तथा ॥४६॥
 सुभुजः सुकरस्तद्वत् सुवक्षाश्चक्रचिह्नितः ।
 गंभीरनाभिः सर्वाङ्गसुन्दरः श्रीनिकेतनः ॥४७॥
 कूर्मपृष्ठपदाम्भोजः सर्वलक्षणलक्षितः ।
 विभुः कौमारसम्पत्त्या जयत्कामशतं मुदा ॥४८॥

अन्वयार्थ -- श्यामकेशः = काले-काले बालों वाले, समुद्रिव्यच्छीर्षः = अच्छी तरह से उन्नत व कान्तिमान् सिर वाले, पङ्करुहाननः = कमल सदृश मुख वाले, ललितोन्नतभालस्थभाग्योल्लसितवैभवः = ललित सुन्दर व उन्नत भाल पर अंकित भाग्य रेखाओं के उत्कर्ष से प्राप्त वैभव वाले, भास्वत्कुण्डलार्चितकर्णकः = अपनी किरणों से चमकते हुये कुण्डलों से अर्चित अर्थात् अलङ्कृत कानों वाले, कामचापभृकुटिकः = इन्द्रधनुष के समान शोभायमान भीहों वाले, नीलोत्पलविलोचनः = नीलकमल के समान सुन्दर नेत्रों वाले, त्रिज्ञानसूचकः = तीन ज्ञान से जानकर सूचना देने वाले, तस्योत्तमश्रिया = उसकी उत्तम वैभव रूप ज्ञान लक्ष्मी से, युक्तः = सहित, कपोलादर्श-कान्तिजित् = दर्पण की कान्ति को जीतने योग्य गालों वाले, बिम्बाधरः = बिम्ब फल के समान लाल ओठों वाले, सुरदनुः = सुन्दर दांतों वाले, सुकण्ठः = सुन्दर गले वाले, सुहनुः = सुन्दर छोड़ी वाले, सुभुजः = सुन्दर भुजाओं वाले, चक्रचिह्नितः = चक्र से चिह्नित, सुकरः = सुन्दर हाथों वाले, तद्वत् = वैसे ही शुभलक्षणों से युक्त, सुवक्षः = सुन्दर वक्ष स्थल वाले, गंभीरनाभिः = गंभीर नाभि प्रदेश वाले, तथा = और, कूर्मपृष्ठपदाम्भोजः = कछुये की पीठ की भांति उठे हुये सुशोभित चरणकमल वाले, (इति = इस प्रकार), सर्वलक्षणलक्षितः = सारे शुभ लक्षणों से जाने जाने वाले, सर्वाङ्गसुन्दरः = सभी अङ्गों से अतीव शोभायमान-सुन्दर, श्रीनिकेतनः = लक्ष्मी के निवास स्वरूप, विभुः = प्रभु ने, मुदा = प्रसन्नता के साथ, कौमारसम्पत्त्या = अपनी कुमारावस्था रूप सम्पदा से ही, कामशतं = सैकड़ों कामदेवों को, अजयत् = जीत लिया ।

श्लोकार्थ — सुमतिनाथ भगवान् की कौमार्यावस्था का वर्णन यहाँ है। काले-काले केशों वाले, उन्नत व दैदीप्यमान मूर्धा वाले, कमल के समान सुविकसित मुख वाले, ललित-मनहर भाल पर अंकित भाग्यरेखाओं के उत्कर्ष को प्रगट करते वैभव वाले, चमकते-जगमगते दुग्धल्लों से ललित कानों वाले, इन्द्रधनुष की शोभा से शोभायमान भौहों वाले, नीलकमल जैसे नेत्रों वाले, मतिश्रुतावधिनामक तीनों ज्ञान से जानकारी कर सूचना देने वाले, एवं ज्ञान की उत्तम लक्ष्मी से संयुक्त होने वाले, दर्पण की कान्ति को जीतने योग्य गालों वाले, बिम्बाफल के समान रक्तवर्णीय ओंठों वाले, सुन्दर दांतों वाले, सुकण्ठ अर्थात् शोभन कण्ठ वाले, सुन्दर ठोड़ी वाले, सुन्दर भुजाओं व चक्रचिन्हित वक्षस्थल वाले, गंभीर नाभि प्रदेश वाले और कछुये की पीठ जैसे सुशोभित चरणकमल वाले सभी शुभ लक्षणों से जानने में आने वाले, सर्वतोमद्र अर्थात् सर्वाङ्गसुन्दर तथा लक्ष्मी के निवास स्वरूप उन सुमतिनाथ भगवान् ने अपनी कुमारावस्था में ही प्रसन्नता पूर्वक सैकड़ों कामदेवों को जीत लिया था।

हिंसाचौर्यवधं तस्य राज्ये स्वप्नेऽपि नैव हि ।

तद्यशः सुखिनः सर्वे गायन्ति स्म परस्परम् ॥४६॥

अन्वयार्थ — तस्य = उस राजा के, राज्ये = राज्य में, स्वप्नेऽपि = स्वप्न में भी, हिंसाचौर्यवधं = हिंसा, चोरी, वध-बन्धनादिक, नैव = नहीं ही, (आसीत् = थे), सर्वे = सभी, हि = ही, सुखिनः = सुखी लोग, परस्परं = आपस में, तद्यशः = उसके यश को, गायन्ति स्म = गाते थे।

श्लोकार्थ — उन सुमतिनाथ राजा के राज्य में हिंसा, चोरी, वध-बन्धनादि के कार्य स्वप्न में भी नहीं थे तथा सभी लोग सुखी होकर परस्पर राजा का यश गाया करते थे।

एकोन्धत्वारिंशदिभर्लक्षपूर्वः स्वराज्यभाक् ।

केनापि हेतुना चित्ते वैराग्यं प्राप शुद्धधीः ॥५०॥

अन्वयार्थ — एकोन्धत्वारिंशदिभः = उनतालीस, लक्षपूर्वः = लाख पूर्व

समयावधि तक, स्वराज्यभाक् = अपने राज्य के अधिकार से युक्त, (सः = उन), शुद्धधीः = निर्मल बुद्धि वाले राजा ने, केनापि = किसी भी, हेतुना = कारण से, चित्ते = अपने मन में, वैराग्यं = वैराग्य भाव को, प्राप = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ — निर्मल बुद्धि वाले उन राजा ने उनचालीस लाख पूर्व तक की अवधि में अपने राज्य का अधिकार संभाला तथा किसी कारणवश चित्त में वैराग्य को प्राप्त कर लिया।

असारं सर्वसंसारं विचार्य विरतो भवत् ।

सारस्वतस्तुतो भूयस्तपः सारं विचिन्त्य सः ॥५१॥

इन्द्रोपनीतां शिविकां ह्यारुह्य सुरसेवितः ।

सहेतुकवनं प्राप शृण्वन्सुरजयध्वनिम् ॥५२॥

अन्वयार्थ — सः — वह राजा, सर्वसंसारं = सारे संसार को, असारं = सारहीन, विचार्य = सोचकर, भूयः = बार-बार, तपःसारं = तपश्चरण के सार को, विचिन्त्य = सोच विचार कर, विरतः = विरक्त, अभवत् = हो गया, सारस्वतस्तुतः = सारस्वत जाति के लौकान्तिक देवों से स्तुति किया जाता हुआ, इन्द्रोपनीतां = इन्द्र के द्वारा लायी गयी, शिविकां = पालकी पर, आरुह्य = चढ़कर, सुरसेवितः = देवताओं द्वारा सेवित अर्थात् निर्देशित होता हुआ, (च = और), जयध्वनिं = जयकार के घोष को, शृण्वन् = सुनता हुआ, सहेतुकवनं = सहेतुक नामक तपोवन को, प्राप = प्राप्त हुआ।

श्लोकार्थ — वह राजा सारे संसार को सारहीन जानकर तथा तपश्चरण की सार्थकता अच्छी तरह समझकर विरक्त हो गया और सारस्वत जाति के देवों द्वारा स्तुति किया जाता हुआ इन्द्र द्वारा सामने लायी गयी पालकी पर चढ़कर देवताओं से सेवित हुआ एवं जयकार ध्वनि सुनते हुये सहेतुक नामक वन को प्राप्त हो गया।

वैशाखे शुक्लदशमी-मघानक्षत्रवासरे ।

सहस्रभूमिपैः सार्सं दीक्षां जग्राह तापसीम् ॥५३॥

अन्वयार्थ — (सः = उस राजा ने), वैशाखे = वैशाख माह में, शुक्लदशमीमघानक्षत्रवासरे = शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन मघा नक्षत्र होने पर, सहस्रभूमिपैः = एक हजार राजाओं के, सार्ध = साथ, तपसीम् = तपश्चरण प्रधान, दीक्षां = दीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया।

श्लोकार्थ — फिर उस राजा ने वैशाख शुक्ला दशमी के दिन मघानक्षत्र में एक हजार राजाओं के साथ तपस्या की प्रधानता वाली मुनि दीक्षा को ग्रहण कर लिया।

दीक्षानन्तरमेवास्य मनोवार्ताप्रबोधकम् ।

तुर्यज्ञानमभूदह्नि द्वितीये भैक्ष्यमाचरत् ॥५४॥

गतः पुरे सौमनसे पद्माख्यस्तत्र भूपतिः ।

आहारं दत्तवान्तरस्मै सम्प्राप्तश्चाश्चर्यपंचकम् ॥५५॥

अन्वयार्थ — दीक्षानन्तरम् = दीक्षा लेने के बाद, एव = ही, अस्य = इन मुनिराज के, मनोवार्ताप्रबोधकम् = मन की बात को बताने वाला, तुर्यज्ञानं = चौथा मनःपर्ययज्ञान, अभूत् = हो गया, द्वितीये = दूसरे, अह्नि = दिन, भैक्ष्यमाचरन् = भिक्षा पाने का आचरण करते हुये अर्थात् आहार हेतु चर्या का पालन करते हुये, (सः = वह मुनिराज), सौमनसे = सौमनस नामक, पुरे = नगर में, गतः = गये, तत्र = वहाँ, पद्माख्यः = पद्म नामक, भूपतिः = राजा ने, तस्मै = उन मुनिराज के लिये, आहारं = भोजन, दत्तवान् = दिया, च = और, आश्चर्यपंचकम् = पाँच आश्चर्यों को, सम्प्राप्तः = प्राप्त हुआ।

श्लोकार्थ — दीक्षा ले लेने के बाद ही मुनिराज के मनोगत बात को जानने वाला मनःपर्ययज्ञान हो गया। दूसरे दिन मुनिराज भैक्ष्य चर्या अर्थात् आहार हेतु चर्या का पालन करते हुये सौमनसपुर में पहुँच गये। वहाँ पद्म नामक राजा ने उनके लिये आहार दान दिया तथा पंचाश्चर्य प्राप्त किये।

कृत्वा सामायिकं मौनमास्थितश्च तपोवने ।

सेहे परीषहान् सर्वान्धैर्यमालम्ब्य केवलम् ॥५६॥

अन्वयार्थ — च = और, तपोवने = तपोवन में, मौनमास्थितः = मौन से बैठे हुये मुनिराज ने, सामायिकं = सामायिक को, कृत्वा = करके, केवलम् = अकेले अर्थात् एक मात्र, धैर्यम् = धैर्य का, आलम्ब्य = आलम्बन लेकर, सर्वान् = सारे, परीषत्तान् = परिषद्ओं को, सेहे = सहा।

श्लोकार्थ — और फिर तपोवन में मौन पूर्वक बैठे हुये उन मुनिराज ने सामायिक करके मात्र धैर्य का सहारा लेकर सारे परीषद्ओं को सहन किया।

तप उग्रं समादाय वर्षविंशतिर्निर्मलम् ।

प्रियङ्गुतरुमूले च चैत्रैकादशिकादिने ॥५७॥

शुक्लपक्षे मघर्षे च केवलज्ञानमवाप सः ।

तदा समवसारे च हीन्द्राद्यैः स्थापितः प्रभुः ॥५८॥

अन्वयार्थ — सः = उन मुनिराज ने, वर्षविंशतिः = बीस वर्ष, उग्रं = उग्र, च = और, निर्मलम् = निर्मल, तपः = तपश्चरण को, समादाय = लेकर, प्रियङ्गुतरुमूले = प्रियङ्गु वृक्ष के नीचे, चैत्रैकादशिकादिने शुक्लपक्षे = चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में एकादशी के दिन, मघर्षे = मघा नक्षत्र में, केवलज्ञानं = केवल ज्ञान को, अवाप = प्राप्त किया, च = और, तदा = तभी, हि = ही, इन्द्राद्यैः = इन्द्र आदि देवताओं द्वारा, प्रभुः = भगवान्, समवसारे = समवसरण में, स्थापितः = स्थापित किये गये।

श्लोकार्थ — उन मुनिराज ने बीस वर्ष के लिये निर्मल और उग्र-कठोर तपश्चरण लेकर प्रियङ्गुवृक्ष के मूल में अर्थात् नीचे चैत्र सुदी ग्यारस के दिन मघा नक्षत्र में केवलज्ञान प्राप्त कर लिया तथा तभी इन्द्र है मुखिया जिनका ऐसे देवताओं द्वारा भगवान् समवसरण में प्रतिष्ठापित किये गये।

यथोक्तगणपाद्यैश्च

भव्यैर्द्वादशकोष्ठगैः ।

भक्त्या सम्यक् समाराध्यो युवार्क इव स व्यभात् ॥५९॥

अन्वयार्थ — च = और, द्वादश कोष्ठगैः = बारह कोठों में स्थित,

यथोक्तगणपादैः = जैसा कहे गये हैं वैसे गणधर आदि, भव्यैः = भव्य जीवों के द्वारा, सम्यक् = सच्ची, भक्त्या = भक्ति से, समाराध्यः = परिपूर्ण आराध्य हुये, सः = वह सुमतिनाथ भगवान्, युवार्कः इव = तरुण सूर्य के समान, व्यमात् = सुशोभित हुये।

श्लोकार्थ — समवसरण के बारह कोठों में बैठे हुये गणधरादि सभी भव्य जीवों द्वारा अपनी सच्ची भक्ति से आराध्य बनाये गये भगवान् सुमतिनाथ तरुण सूर्य के समान सुशोभित हुये।

किरन्दिव्यध्वनिं देवः पुण्यान्युपदिशन्सताम् ।

पुण्यक्षेत्रेषु सर्वेषु विजहार यदृच्छया ॥६०॥

अन्वयार्थ — (तथा च = और), (स = उन), देवः = भगवान् सुमतिनाथ ने, दिव्यध्वनिं = दिव्यध्वनि को, किरन् = खिराते हुये, (च = और), सतां = सज्जनों के लिये, पुण्यानि = पवित्र वचनों का, उपदिशन् = उपदेश देते हुये, सर्वेषु = सभी, पुण्यक्षेत्रेषु = पुण्यशाली जीवों के देशों—निवासनगरों में, यदृच्छया = स्वतंत्रपने, विजहार = विहार किया।

श्लोकार्थ — समवसरण में सुशोभित उन भगवान् सुमतिनाथ ने दिव्यध्वनि खिराते हुये अर्थात् सत्पुरुषों को पवित्र धर्मनिष्ठ वचनों का उपदेश देते हुये सभी पुण्यात्मा जीवों के निवास स्वरूप पुण्य क्षेत्रों में विहार किया।

मासावशिष्टायुषि संप्राप्य सम्मेदपर्वतम् ।

चतुर्थ्या फाल्गुणे कृष्णदले विचलकूटगः ॥६१॥

शुक्लध्यानसुधास्वादाक्षयदेवत्वमागतः ।

निर्घोषो मुनिभिः सार्धं सहस्रैरगमच्छिवम् ॥६२॥

अन्वयार्थ — मासावशिष्टायुषि = एक माह आयु शेष रहने पर, (सः = वह सुमतिनाथ केवली), सम्मेदपर्वतं = सम्मेदशिखर को, संप्राप्य = प्राप्त कर, (तत्र = वहाँ), अविचलकूटगः = अविचलकूट पर स्थित, शुक्लध्यानसुधास्वादाक्षयदेवत्वमागतः = शुक्ल ध्यान से उत्पन्न अनंत सुख रूप सुधा के आस्वाद से अक्षीणदेवपने को प्राप्त हुये, सहस्रैः = हजारों, मुनिभिः =

मुनियों द्वारा, सार्ध = साथ-साथ, निर्घोषः = जयध्वनि की घोषणा किये जाते हुये, शिवम् - मोक्ष को, अगमत् = चले गये।

श्लोकार्थ - संसार में अंतिम पर्याय की आयु एक माह शेष रहने पर वह प्रभु सुमतिनाथ सम्मोदशिखर को प्राप्त कर वहाँ अविचलकूट पर स्थित हुये। शुक्लध्यान से समुत्पन्न सुधा स्वरूप अनंतसुख का आस्वादन करते हुये अक्षीण देवत्व को उजागर करते हुये तथा हजारों मुनिराजों द्वारा साथ-साथ जय निर्घोष से सम्बोधित किये जाते हुये उन्होंने मोक्ष पद प्राप्त कर लिया।

एकाबुदं चतुरशीतिकोटितदनन्तरम् ।

द्विसप्तलक्षं चैकाशीति सप्तशतमुत्तमाः ॥६३॥

तस्मादविचलात्कूटात्सिद्धिं प्राप्ता मुनीश्वराः ।

संसारे दुर्लभां भव्यजीवैः प्राप्यां तपोबलात् ॥६४॥

अन्वयार्थ - तदनन्तरम् = उनके मोक्ष जाने के बाद, तस्मात् = उस, अविचलात् = अविचल नामक, कूटात् = कूट अर्थात् टोंक से, एकाबुदं = एक अरब, चतुरशीतिकोटी = चौरासी करोड़, द्विसप्तलक्षं = चौदह लाख, सप्तशतम् = सात सौ, एकाशीति = इक्याशी, उत्तमाः = उत्तम शुक्लध्यान से युक्त होते हुये, मुनीश्वराः = मुनीवरों ने, संसारे = संसार में, भव्यजीवैः = भव्यजीवों द्वारा, तपोबलात् = तपश्चरण के बल से, दुर्लभां = दुर्लभता से, प्राप्यां = प्राप्त होने वाली, सिद्धिं = सिद्धिदशा को, प्राप्ताः = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ - सुमतिनाथ भगवान् के मोक्ष चले जाने के बाद उसी अविचल कूट से एक अरब चौरासी करोड़ चौदह लाख सात सौ इक्याशी उत्तमपद को प्राप्त मुनिराजों ने उस सिद्धपद को प्राप्त कर लिया जो संसार में भव्यजीवों द्वारा तपश्चरण करके दुर्लभता से प्राप्त करने योग्य होता है।

वन्दते चलकूटं यः कोटिप्रोषधसत्फलम् ।

स प्राप्नुयादशेषाणां वन्दकेन समो व्रकः ॥६५॥

अन्वयार्थ — यः = जो, अचलकूटं = अविचलकूट की, वन्दते = वन्दना करता है, सः = वह कोटिप्रोषधसत्फलम् = एक करोड़ प्रोषधोपवास के सत्फल को, प्राप्नुयात् = प्राप्त करे, अत्र = यहाँ सम्मेदशिखर पर, अशेषाणां = सम्पूर्ण कूटों की, वन्दकेन = वन्दना करने वाले के, समः = समान, कः = कौन, (भवितुमर्हति = हो सकता है)।

श्लोकार्थ — कवि कहता है कि जो इस अविचलकूट की वन्दना करता है वह एक करोड़ प्रोषधोपवास से प्राप्त होने योग्य सत्फल को प्राप्त करता है फिर सम्मेदशिखर पर विद्यमान सभी कूटों की वन्दना करने वाले के समान कौन होगा। अर्थात् उसके फल को कैसे बतायें।

जम्बूस्थे भरतक्षेत्रे योधदेशे मनोहरे ।

चकास्ति पद्मनगरं भूप आनन्दसेनकः ॥६६॥

अन्वयार्थ — जम्बूस्थे = जम्बूद्वीप में स्थित, भरतक्षेत्रे = भरतक्षेत्र में, मनोहरे = सुन्दर, योधदेशे = योध नामक देश में, पद्मनगरं = पद्म नामक नगर, चकास्ति = सुशोभित था। (तत्र = उसमें) भूपः = राजा, आनन्दसेनकः = आनन्दसेन, (आसीत् = था)।

श्लोकार्थ — जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में स्थित सुन्दर योध देशवर्ती पद्मपुर नामक नगर शोभायमान था जिसका राजा आनन्दसेन था।

अभूत्तस्य प्रिया नाम्ना प्रसिद्धा या प्रभावती ।

शुभसेनो मित्रसेनस्तस्य पुत्रौ बभूवतुः ॥६७॥

अन्वयार्थ — तस्य = उस राजा आनन्दसेन की, या = जो, प्रसिद्धा = विख्यात, प्रिया = प्रियपत्नी, (आसीत् = थी), (सा = वह), नाम्ना = नाम से, प्रभावती = प्रभावती, अभूत् = थी, (ततः = उससे), तस्य = उस राजा के, शुभसेनः = शुभसेन, (च = और), मित्रसेनः = मित्रसेन, पुत्रौ = दो पुत्र, बभूवतुः = उत्पन्न हुये।

श्लोकार्थ — राजा आनन्दसेन की प्रिय पत्नी प्रभावती से शुभसेन और मित्रसेन नामक दो पुत्र हुये।

एकदानन्दसेनो सौ गतो वनमुत्तमम् ।

तत्रस्थश्चारणमुनिर्दृष्टस्तेन महीशिता ॥६८॥

अन्वयार्थ — एकदा = एक दिन, असौ = वह राजा, आनन्दसेनः = आनन्दसेन, उत्तमम् = उत्तम, वनम् = वन को, गतः = गया, तेन = उस, महीशिता = राजा ने, तत्रस्थः = वन में स्थित, चारणमुनिः = चारणऋद्धि मुनिराज को, दृष्टः = देखा ।

श्लोकार्थ — एक दिन वह राजा एक उत्तम वन में गया जहाँ उसने चारणऋद्धि धारी मुनिराज को देखा ।

त्रिः परिक्रम्य तं नत्वा प्राह भूपः कृताञ्जलिः ।

कियदायुर्मम स्वामिन् मुनिः श्रुत्वाह सस्मितम् ॥६९॥

मासत्रयोदशमितं तवायुर्नृपसत्तम ।

दीक्षां ग्रहीतुकामो भूत्कृत्वेति धरणीतले ॥७०॥

मुनिः प्रोक्तं न हि प्रोक्ता दीक्षा स्वल्पायुषो नृप ।

राज्ञोक्तं तर्हि भो स्वामिन् भवे तत्सङ्गतिः कथम् ॥७१॥

पुनस्तेनोक्तमुर्वीश सम्मेदगिरियात्रया ।

मुक्तिः शीघ्रं भवत्येव तच्छ्रुत्वा हर्षमाप सः ॥७२॥

अन्वयार्थ — त्रिः = तीन, परिक्रम्य = परिक्रमा करके, तं = उन मुनिराज को, नत्वा = नमन करके, कृताञ्जलिः = हाथ जोड़े हुये, भूपः = राजा ने, प्राह = कहा, स्वामिन् = हे महाराज!, मम = मेरी, आयुः = उम्र, कियत् = कितनी, (अस्ति = है), श्रुत्वा = राजा की बात सुनकर, मुनिः = मुनिराज, सस्मितम् = मन्द मुस्कान सहित, आह = बोले, नृपसत्तम = हे नृपों में श्रेष्ठ राजन्!, तव = तुम्हारी, आयुः = उम्र, मासत्रयोदशमितं = तेरह महिने, (अवशिष्यते = शेष है), इति कृत्वा = ऐसा जानकर, (सः = वह राजा), दीक्षां = मुनिदीक्षा को ग्रहीतुकामः = ग्रहण करने की कामना वाला, अभूत् = हुआ (तदा = तब), धरणीतले = पृथ्वीतल पर, मुनिः = मुनि ने, प्रोक्तं = कहा, नृप = हे राजन्!, स्वल्पायुषः = थोड़ी आयु

वाले के लिये, दीक्षा = मुनिदीक्षा, नहि = नहीं, प्रोक्ता = कही गयी है, तर्हि = तो, राज्ञा = राजा द्वारा, उक्तं = कहा गया, भो स्वामिन् = हे स्वामी!, भवे = इस भव में, तत्सङ्गतिः = उस दीक्षा की सङ्गति, (मे = मुझे), कथं = कैसे, (भवेत् = होगी) पुनः = फिर, तेन = मुनिराज द्वारा, उक्तम् = कहा गया, उर्वीश = पृथ्वीपति राजन्!, सम्मेदगिरियात्रया = सम्मेदशिखर की तीर्थवन्दना रूप यात्रा से, शीघ्रं = जल्दी, एव = ही, मुक्तिः = मुक्ति, भवति = होती है, तच्छ्रुत्वा = उसे सुनकर, सः = वह राजा, हर्ष = प्रसन्नता को, प्राप = प्राप्त हुआ।

श्लोकार्थ — मुनिराज की तीन परिक्रमा करके और उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़े हुये राजा ने मुनिराज से पूछा—स्वामिन्! मेरी आयु अब कितनी शेष है। मुनिराज मुस्कुराते हुये बोले—हे राजन्! तुम्हारी आयु अब मात्र तेरह माह शेष है। मुनिराज से इस प्रकार अपनी अल्प आयु जानकर राजा मुनिदीक्षा ग्रहण करने की इच्छा वाला हो गया। किन्तु पृथ्वीतल पर विद्यमान उन मुनिराज ने कहा— राजन् अल्प आयु वालों के लिये दीक्षा नहीं कही गयी है। राजा ने पूछा— तो फिर इस भव में मुझे उसकी सङ्गति कैसे होगी? उत्तर में मुनिश्री ने कहा—हे उर्वीश! सम्मेदशिखर की तीर्थवन्दना करने से अर्थात् उसके निमित्त से जल्दी ही मुक्ति हो जाती है। मुनिराज के ऐसे उन वचनों को सुनकर वह राजा अत्यंत हर्ष को प्राप्त हुआ।

सत्वरं सङ्घसहितः शुक्लाम्बरधरो नृपः ।

मोक्षामिलाषया यात्राप्रस्थानमकरोत्तदा ॥७३॥

अन्वयार्थ — तदा = तब, (सः = उस), नृपः = राजा ने, मोक्षामिलाषया = मोक्ष की अभिलाषा से, सत्वरं = जल्दी ही, शुक्लाम्बरधरः = सफेद वस्त्र धारण करते हुये, सङ्घसहितः = चतुर्विध संघ के साथ, यात्राप्रस्थानं = यात्रा के लिये प्रस्थान, अकरोत् = किया।

श्लोकार्थ — तब उस राजा ने मोक्ष की अभिलाषा से जल्दी ही श्वेत वस्त्र

धारण करके चतुर्विध संघ के साथ सम्मेदशिखर की यात्रा के लिये प्रस्थान किया।

द्वात्रिंशल्लक्षभव्यैश्च सहितो दुन्दुभिः स्वनम् ।

शृण्वन् राजा महोत्साहः सम्मेदगिरिमाययौ ।।७४।।

अन्वयार्थ - द्वात्रिंशल्लक्षभव्यैः = बत्तीस लाख भव्य जीवों के, सहितः = साथ चलने वाला, च = और, दुन्दुभिः = नगाड़ों से, (निस्सृतं = निकली), स्वनम् = ध्वनि को, शृण्वन् = सुनता हुआ, महोत्साहः = महान् उत्साह धारण करने वाला, (सः = वह), राजा = राजा, सम्मेदगिरि = सम्मेदशिखर पर्वत पर, आययौ = पहुँच गया।

श्लोकार्थ - बत्तीस लाख भव्य जीवों के संघ को साथ लेकर तथा नगाड़ों की ध्वनि को सुनता हुआ महान् उत्साह युक्त वह राजा सम्मेदशिखर पर पहुँच गया।

तत्रायिचलकूटं तमभिवन्द्य समर्च्य च ।

अष्टधा पूजया सिद्धान् प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ।।७५।।

समर्प्य राज्यं पुत्राय घातिकर्मक्षयान् नृपः ।

सम्मेदयात्रापुण्येन मुक्तिस्थानमवाप सः ।।७६।।

अन्वयार्थ - तत्र = सम्मेदशिखर पर, तम् = उस, अविचलकूटं = अविचलकूट की, अभिवन्द्य = बहुमान पूर्वक वन्दना करके, च = और, समर्च्य = सम्यक् अर्चना करके, अष्टधापूजया = अष्टविधद्रव्यों से की गयी पूजा से, मुहुः मुहुः = बारम्बार, सिद्धान् = सिद्धमगवन्तों को, प्रणम्य = प्रणाम करके, च = और, पुत्राय = पुत्र के लिये, राज्यं = राज्य, समर्प्य = सौंपकर, सम्मेदयात्रापुण्येन = सम्मेदशिखर की यात्रा स्वरूप तीर्थवन्दना के पुण्य से, सः = उस, नृपः = राजा ने, घातिकर्मक्षयात् = घातिकर्मों का क्षय हो जाने से, मुक्तिस्थानम् = मुक्तिस्थान अर्थात् सिद्धपद को, अवाप = प्राप्त किया।

श्लोकार्थ - सम्मेदशिखर पर अत्यधिक बहुमान पूर्वक उस अविचलकूट

की वन्दना करके, उसकी सम्यक् अर्चना करके और अष्टविध द्रव्यों अर्थात् जल, चन्दन, अक्षत आदि से की गयी पूजा द्वारा बार-बार सिद्ध भगवन्तों को प्रणाम करके तथा पुत्र के लिये राज्य सौंपकर सम्मेदशिखर की यात्रा स्वरूप तीर्थवन्दना के पुण्य से उस राजा ने घातिकर्म का क्षय हो जाने से मुक्तिस्थान अर्थात् सिद्ध पद प्राप्त कर लिया :

विशेषार्थ- यहाँ संक्षेप कथन किया गया है अतः निम्न बातें और कही हुयी समझ लेना चाहिये—

- (१) पुत्र को राज्य देकर राजा ने मुनि दीक्षा ली।
- (२) फिर तपश्चरण पूर्वक शुक्लध्यान से ही चार घातिकर्मों का क्षय किया।
- (३) घातिकर्मों के क्षय के बाद अघातिकर्मों का क्षय होने पर ही सिद्ध पाया।

इस प्रकार सम्मेदशिखर की तीर्थवन्दना करने रूप पुण्य के द्वारा राजा को मुनिदीक्षा अङ्गीकार करने और मुक्ति के लिये आवश्यक पुरुषार्थ करने का सुअवसर प्राप्त हो गया।

योगं यत्र विधाय निर्मलतरं कर्मान्धकारार्कभम् ।

कायोत्सर्गविधानतो मुनिवरैः सार्धं सहस्रैः प्रभुः ।।

सिद्धस्थानमवाप नाम सुमतिः सम्मेदपृथ्वीभृतः ।

कूटायाविचलाय सन्ततनमस्कारो विधेयो बुधैः ।।७७।।

अन्वयार्थ — यत्र = यहाँ, कर्मान्धकारार्कभम् = कर्म रूपी अन्धकार को दूर करने में सूर्य के समान, निर्मलतरं = अत्यंत निर्मल परिणामों वाले, योगं = शुक्लध्यान से मन, वचन, काय को एकाग्र निश्चल करने रूप योग को, विधाय = करके, प्रभुः = प्रभु, सुमतिः = सुमतिनाथ ने, सहस्रैः = हजारों, मुनिवरैः = मुनिराजों के, सार्धं = साथ, कायोत्सर्ग विधानतः = कायोत्सर्ग विधान से, सिद्धस्थानम् = सिद्ध पद को, अवाप = प्राप्त किया, (इति = इसलिये), नाम = निःसन्देह होकर, बुधैः = विद्वज्जनों द्वारा, सम्मेदपृथ्वीभृतः = सम्मेदशिखर नामक पर्वत की, अविचलाय = अविचल, कूटाय = कूट-टोंक

के लिये, सन्ततनमस्कारः = हमेशा नमन-प्रणाम, विधेयः = करना चाहिये।

श्लोकार्थ — जिस अविचलकूट पर तीर्थङ्कर सुमतिनाथ ने कर्मों रूपी अन्धकार को दूर करने में सूर्य के समान अतिशय निर्मल योग को संश्रित करके तथा काशीतर्ग विधान से अयोगी होकर हजारों मुनिवरों के साथ सिद्ध पद प्राप्त किया सम्मेदशिखर की उस अविचलकूट के लिये निश्चित ही विद्वज्जन प्रणाम करें। विद्वज्जनों को सन्देह रहित होकर सतत नमस्कार करना चाहिये ऐसी यहाँ कामना है।

अविचलकूटध्यानादविचलसिद्धिं प्रयाति मनुजो वै।

अविचलभावात्तस्मादविचलसिद्ध्यै स्मरन्तु तं भव्याः ॥७८॥

अन्वयार्थ — मनुजः = मनुष्य, अविचलकूटध्यानात् = अविचलकूट पर ध्यान करने से, अविचलसिद्धिं = अचल अर्थात् शाश्वत सिद्धि को, वै = वस्तुतः, प्रयाति = प्रगट कर लेता है, तस्मात् = इसलिये, भव्याः = भव्यजन, अविचलसिद्ध्यै = शाश्वत सिद्ध पद की सिद्धि के लिये, अविचलभावात् = अविचल भाव से, तं = उस अविचल कूट का, स्मरन्तु = स्मरण करें।

श्लोकार्थ — मनुष्य अविचल कूट पर ध्यान करने से अवश्य ही शाश्वत सिद्धपद की प्राप्ति कर लेता है। इसलिये भव्यजनों को अविचल अर्थात् शाश्वत सिद्ध पद की प्राप्ति के लिये सुस्थिर प्रबल परिणामों से अविचलकूट का स्मरण करना चाहिये

(इति श्री सम्मेदशिखरमाहात्म्ये सुमतिनाथतीर्थङ्करवृत्त-

पुरस्सरमविचलकूटवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः।

इस प्रकार श्री सम्मेदशिखर माहात्म्य में तीर्थङ्कर सुमतिनाथ के वृत्त को उजागर करता हुआ अविचलकूट का वर्णन करने वाला पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।)

अथ षष्ठोऽध्यायः

श्रीमत्पद्मप्रभं देवं दिव्यत्कमललाञ्छनम् ।

कायेन मनसा वाचा वन्देऽहं हृदि सर्वदा ॥१॥

अन्वयार्थ - अहं = मैं, दिव्यत्कमललाञ्छनम् = कमल के चिन्ह से सुशोभित, देवं = भगवान्, श्रीमत्पद्मप्रभं = अन्तरङ्ग बहिरङ्गलक्ष्मी सहित पद्मप्रभु को, हृदि = हृदय में, (संस्थित्य = स्थापित करके), मनसा = मन से, वाचा = वचन से, (च = और), कायेन = काय से, सर्वदा = हमेशा, वन्दे = नमस्कार करता हूँ।

श्लोकार्थ - मैं देवदत्त नामक कवि कमल के चिन्ह से सुशोभित तथा अनंत चतुष्टय स्वरूप अंतरंग लक्ष्मी एवं समवसरणादि बहिरङ्ग लक्ष्मी से युक्त तीर्थङ्कर देव पद्मप्रभु को अपने हृदय में विशाजमान कर उन्हें सतत प्रणाम करता हूँ।

अखण्डे धातकीखण्डे तत्र पूर्व विदेहके ।

सीता स्रोतस्विनी तस्याः दक्षिणे भाग उत्तमे ॥२॥

वत्साख्या विषयः श्रीमान् चकास्ति सुखसंपदा ।

सुसीमानगरं तत्र धनधान्यसमृद्धिमत् ॥३॥

अन्वयार्थ -- अखण्डे = अखण्ड, धातकीखण्डे = धातकीखण्डद्वीप में, तत्रा = वहाँ, (अपि = भी), पूर्व विदेहके = पूर्व विदेहक्षेत्र में, सीतास्रोतस्विनी = सीता नदी, (अस्ति = है), तस्याः = उसके, दक्षिणे = दक्षिण में, उत्तमे = उत्तम, भागे = स्थान पर, सुखसंपदा = सुखरूपी सम्पदा से, श्रीमान् = लक्ष्मी युक्त, वत्साख्यः = वत्स नामक, विषयः = देश, चकास्ति = सुशोभित होता है, तत्र = उस देश में, धनधान्यसमृद्धिमत् = धन-धान्य की समृद्धि से भरपूर, सुसीमानगरं = सुसीमा नामक नगर, (अस्ति = है)।

श्लोकार्थ — सम्पूर्ण धातकीखण्ड में उसमें भी पूर्वविदेह क्षेत्र में सीता नदी प्रवाहित होती है। उस नदी के दक्षिण में उत्तम स्थान पर सुखसम्पदा से श्रीसम्पन्न वत्स नामक देश सुशोभित होता है। उस देश में धनधान्य की समृद्धि से भरपूर सुसीमानगर है।

अपराजितभूपालस्तं पाति स्म स्वतेजसा ।

युवार्का इव चैश्वर्यात्सुरेन्द्र इव भूमिगः ॥४॥

शस्त्रास्त्रैः सर्वशत्रूणां जेतायं भूमिमण्डले ।

चक्रवर्तिसमो भूत्वा रेजे राजगणार्चितः ॥५॥

राज्यं सप्ताङ्गसम्पन्नं पूर्वजन्मार्जितैर्वृषैः ।

बुभोजारोग्यसौख्येन सुखिनां त शिरोमणिः ॥६॥

अन्यार्थ — युवार्का इव = युवा सूर्यो के समान, च = और, ऐश्वर्यात् = ऐश्वर्य की अपेक्षा से, भूमिगः = भूमि पर रहता हुआ, सुरेन्द्र इव = देवाधिप इन्द्र के समान, अपराजितभूपालः = अपराजित राजा, स्वतेजसा = अपने तेज से, तं = उस वत्स देश को, पाति स्म = पालता था।

अयं = यह राजा, शस्त्रास्त्रैः = शस्त्रों और अस्त्रों से, सर्वशत्रूणां = सभी शत्रुओं का, जेता = विजेता, भूत्वा = होकर, भूमिमण्डले = पृथ्वीमण्डल पर, चक्रवर्तिसमः = चक्रवर्ति के समान, (च = और), राजगणार्चितः = राजाओं के समूह से पूजित, (सन् = होता हुआ), रेजे = सुशोभित हुआ।

पूर्वजन्मार्जितैः = पूर्वजन्मे में उपार्जित, वृषैः = पुण्याचरण रूप धर्मों से, सः = उस राजा ने, सप्ताङ्गसम्पन्नं = सात अङ्गों से परिपूर्ण, राज्यं = राज्य का, बुभोज = पालन किया, (च = और), आरोग्यसौख्येन = निरोगता के सुख से, सुखिनां = सुखियों का, शिरोमणिः = शिरोमणि, (बभूव = हुआ)।

श्लोकार्थ — अनेक युवा सूर्य के समान व ऐश्वर्य में मानों भूमि पर रहते हुये देवाधिप इन्द्र के समान राजा अपराजित ने अपने पराक्रम रूप तेज से वत्सदेश का पालन किया।

यह शस्त्रास्त्रों से सभी शत्रुओं का विजेता होकर सम्पूर्ण पृथ्वी पर राजाओं के समूहों से अर्चना किया जाता हुआ चक्रवर्ती के समान सुशोभित हुआ।

पूर्वजन्म में उपार्जित अपने पुण्याचरण रूप धर्म के बल से उस राजा ने सप्ताङ्गों से परिपूर्ण राज्य का पालन किया और आरोग्य अर्थात् निरोगता के सुख से सुखी लोगों का शिरोमणि हुआ।

तत्पुण्यात्स्य विषये कृषिकृदिभश्च याचिताः।

तत्क्षणादेव चाभूवन्वारिदा वारिदाः शुभाः ॥७॥

अन्वयार्थ — च = और, तत्पुण्यात् = उसके पुण्य से, तस्य = उसके, विषये = देश में, कृषिकृदिभः = कृषकों द्वारा, याचिताः = प्रार्थना किये गये, शुभाः = शुभ लक्षण वाले, वारिदाः = बादल, तत्क्षणात् = उस क्षण, एव = ही, वारिदाः = जल देने वाले, अभूवन् = हो गये।

श्लोकार्थ — और उसके पुण्य प्रताप से ही उस राजा के देश में कृषकों से प्रार्थना किये जाते मेघ जल्दी ही जल बरसाने वाले होते थे।

तद्दानान्नार्थिनां गेहे दारिद्र्यं समदृश्यत।

सन्मार्गगाः प्रजास्तस्य दण्डार्हः कोऽपि नाभवत् ॥८॥

अन्वयार्थ — तद्दानात् = राजा के द्वारा दान दिये जाने से, अर्थिनां = याचकों के, गेहे = घर में, दारिद्र्यं = दरिद्रता, न = नहीं, समदृश्यत = देखी जाती थी, तस्य = उसकी, प्रजाः = जनता, सन्मार्गगाः = सन्मार्ग पर चलने वाली, (आसन् = थी), (अतः = इसलिये), कोऽपि = कोई भी, दण्डार्हः = दण्ड के योग्य, न = नहीं, अभवत् = होता था।

श्लोकार्थ — उस राजा द्वारा निरन्तर दान दिया जाता था जिससे याचकों के घर में दरिद्रता दिखाई ही नहीं देती थी। उसकी प्रजा सन्मार्ग पर चलने वाली थी इसलिये उसके राज्य में ऐसा कोई नहीं था जो दण्ड के योग्य होता।

इत्थं स्वसुकृतैस्तत्र राजा बहुविभूतिभिः ।

अवर्णनीयं सौख्यं स लेभे राज्यपदे स्थितः ॥६॥

अन्वयार्थ — इत्थं = इस प्रकार, तत्र = वहाँ, राज्यपदे = राज्य के पद पर, स्थितः = स्थित रहते हुये, स राजा = उस राजा ने, स्वसुकृतैः = अपने सत्कर्मों से, (च = और) बहुविभूतिभिः = पुण्योदय से प्राप्त विपुल वैभव द्वारा, अवर्णनीयं = वर्णनातीत, सौख्यं = सुख को, लेभे = पाया ।

श्लोकार्थ — इस प्रकार उस सुसीमानगर में राज्य पद पर रहते हुये उस राजा ने अपने सत्कर्मों और पुण्योदय से प्राप्त विपुल वैभव से अवर्णनीय सुख प्राप्त किया ।

एकदा स सुखासीनः सिंहपीठोपरि प्रभुः ।

अधोदितं धनुर्दृष्ट्वा विलीनं तत्क्षणे किल ॥१०॥

विरक्तोऽभूदसारं हि संसारमनुमन्य सः ।

समाहूय स्वपुत्रं वै सुमित्राख्यं महामतिम् ॥११॥

प्रबोध्य तं स्वराज्येऽस्मै संस्थाप्य विधिवन्नृपः ।

उत्कृष्टपदसंलब्धै वनयात्रां चकार सः ॥१२॥

अन्वयार्थ — एकदा = एक बार, सिंहपीठोपरि = सिंहपीठ के ऊपर, सुखासीनः = सुख से बैठा हुआ, सः = वह, प्रभुः = राजा स्वामी, अधोदितं = आकाश में उत्पन्न हुये, धनुः = धनुष को, दृष्ट्वा = देखकर, (च = और), तत्क्षणे = उसी क्षण, किल = सचमुच, विलीनं = नष्ट, (धनुः दृष्ट्वा = धनुष को देखकर), विरक्तः = विरक्त, अभूत् = हो गया, संसारं = संसार को, असारं = साररहित, अनुमन्य = मानकर, हि = ही, सः = उस, नृपः = राजा ने, महामतिं = महान् बुद्धि वाले, सुमित्राख्यं = सुमित्र नामक, स्वपुत्रं = अपने बेटे को, समाहूय = बुलाकर, तं = उसको, प्रबोध्य = संबोधित करके, स्वराज्ये = अपने राज्य में, विधिवत् = विधानपूर्वक, संस्थाप्य = स्थापित करके, अस्मै = इस मुक्ति रूप, उत्कृष्टपदसंलब्धै = सर्वोत्कृष्ट मोक्षस्थान को पाने के लिये, वनयात्रां = वन की ओर यात्रा, चकार = की ।

श्लोकार्थ — एक बार सिंहपीठ पर सुख से बैठा हुआ वह राजा आकाश में उदित होते और उसी क्षण नष्ट होते धनुष को देखकर विरक्त हो गया। उसने संसार को ही सार रहित मानकर महान् बुद्धिमान् अपने सुमित्र नामक पुत्र को बुलाया और उसे संबोधित करके विधिविधान पूर्वक उसको राज्य में अपने सिंहासन पर स्थापित करके निश्चित रूप से उत्कृष्ट पद रूप मोक्ष की प्राप्ति के लिये वन में प्रस्थान किया।

तत्र नत्वा स शिरसा मुनीशं पिहितास्रवम् ।

सहेतुकवने तस्य सकाशाद्दीक्षितोऽभवत् ॥१३॥

अन्वयार्थ — तत्र = उस, सहेतुकवने = सहेतुक वन में, सः = उस राजा ने, मुनीशं = मुनिराज, पिहितास्रवम् = पिहितास्रव को, शिरसा = मस्तक से, नत्वा = नमस्कार करके, तस्य = उन मुनिराज के, सकाशात् = पास, दीक्षितः = दीक्षित, अभवत् = हो गया।

श्लोकार्थ — उस सहेतुक वन में उस राजा ने मुनिराज पिहितास्रव को मस्तक झुकाकर नमस्कार किया और उनके ही पास वह दीक्षित हो गया अर्थात् मुनि बन गया।

एकादशाङ्गसन्दीप्तो धृत्वा षोडशभावनाः ।

अभूत्स तीर्थकृद्गोत्रं तपस्तेजोऽर्कसन्निभः ॥१४॥

अन्वयार्थ — एकादशाङ्गसन्दीप्तः = ग्यारह अङ्गों के ज्ञान से उद्दीपित, सः = उन मुनिराज ने, षोडशभावनाः = दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओं को, धृत्वा = भाकर, तीर्थकृद्गोत्रं = तीर्थङ्कर नामक पुण्य को, (बन्ध = बांधा), (च = और), तपस्तेजोऽर्कसन्निभः = तपश्चरण के तेज से सूर्य की सन्निभा वाले, अभूत् = हो गये।

श्लोकार्थ — ग्यारह अङ्गों के ज्ञान से आलोकित उन मुनिराज ने दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं को भाकर तीर्थङ्कर नामक महापुण्य का बन्ध किया और तपश्चरण रूपी तेज से सूर्य के समान आभा वाले हो गये।

अन्ते सन्यासविधिना देहत्यागं विधाय सः ।
 ऊर्ध्वगैवेयके श्रेष्ठे प्रीतिकरविमानके ॥१५॥
 अहमिन्द्रोऽभवद्देवः नूनं देवगणार्चितः ।
 एकत्रिंशत्सागरायुर्हस्तद्वयशरीरभृत् ॥१६॥
 एकत्रिंशत्सहस्रोक्तान्व्यतीत्यासौ च वत्सरान् ।
 जग्राह मानसाहारं समन्तादेवसंस्तुतः ॥१७॥

अन्वयार्थ — अन्ते = भुज्यमान आयु के अन्त में, सः = वह मुनिराज, सन्यासविधिना = सन्यास मरण की विधि से, देहत्यागं = शरीर का त्याग, विधाय = करके, ऊर्ध्वगैवेयके = ऊर्ध्व गैवेयक में, श्रेष्ठे = सर्वोत्तम, प्रीतिकरविमानके = प्रीतिकर नामक विमान में, अहमिन्द्रः = अहमिन्द्र, देवः = देव, अभवत् = हुये । (तत्र = वहाँ), नूनं = निश्चित ही, देवगणार्चितः = देवों के समूह से पूजित, असौ = वह, एकत्रिंशत्सागरायुः = इकतीस सागर की आयु वाला, हस्तद्वयशरीरभृत् = दो हाथ शरीर वाला, (आसीत् = था), समन्तात् = चारों तरफ, देवसंस्तुतः = देवों से स्तुति किया जाता हुआ वह देव, एकत्रिंशत्सहस्रोक्तान् = उक्त इकतीस हजार, वत्सरान् = वर्षों को, व्यतीत्य = बिताकर, मानसाहारं = इच्छा से ही अमृत आहार को, जग्राह = ग्रहण करता था ।

श्लोकार्थ — भुज्यमान आयु के अन्तिम समय में वे मुनिराज सन्यासमरण की विधि से शरीर का त्याग करके ऊर्ध्वगैवेयक में स्थित सर्वोत्तम प्रीतिकर विमान में अहमिन्द्र देव हुये । वहाँ वह देवों के समूहों से पूजित रहते थे उनकी आयु इकतीस सागर की और शरीर दो हाथ प्रमाण था । इकतीस हजार वर्ष बिताकर वह देव इच्छा से ही अमृत आहार ग्रहण कर लेता था तथा चारों तरफ से देवों द्वारा संस्तुत होता था ।

षट्पञ्चाशच्चतुःशत्यसहितान्वासरान् प्रभुः ।
 नीत्योच्छ्वासविधानं स कृतवान्ब्रह्मचर्यभृत् ॥१८॥

अन्वयार्थ — सः = वह, ब्रह्मचर्यभृत् = ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला, प्रभुः = समर्थ देव, षट्पञ्चाशच्चतुःशत्यसहितान् = चार सौ

छप्पन, वासरान् = वर्षों को, नीत्वा = बिताकर, उच्छ्वासविधानं = श्वासोच्छ्वास को, कृतवान् = करता था।

श्लोकार्थ — ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ वह सामर्थ्यशाली देव चार सौ छप्पन वर्ष बीतने पर सांस लेता था।

तत्र स्वावधिपर्यन्तं ज्ञानतेजःपराक्रमैः ।

विक्रियाभिः समर्थोऽयं र्वं कर्तुं हृदीप्सितम् ॥१६॥

तथापि किञ्चिदपि नो कर्तुमिच्छति तत्र स प्रभुः ।

अपारसुखसम्पन्नो व्यराजत स्वविभूतिभिः ॥२०॥

अन्वयार्थ — तत्र = उस प्रीतिकर विमान में, अयं = यह अहमिन्द्र देव, स्वावधिपर्यन्तं = अपने अवधिज्ञान की सीमा तक, ज्ञानतेजःपराक्रमैः = ज्ञान, तेज और पराक्रम से, विक्रियाभिः = विक्रियाओं से, हृदि = मन में, ईप्सितम् = इच्छित, सर्व = सब कुछ, कर्तुं = करने के लिये समर्थः = सामर्थ्यवान्, (आसीत् = था), तथापि = फिर भी, सः = वह, प्रभुः = समर्थ देव, किञ्चिद् = कुछ, अपि = भी, कर्तुं = करने के लिये, नो = नहीं, इच्छति = चाहता था, स्वविभूतिभिः = अपार सुख से सम्पन्न होता हुआ, व्यराजत = सुशोभित हुआ।

श्लोकार्थ — ऊर्ध्व ग्रैवेयक के प्रीतिकर विमान में यह अहमिन्द्र देव अपने अवधिज्ञान की सीमा के भीतर ज्ञान, तेज, पराक्रम और विक्रियाओं से मनोभिलषित सब कुछ करने में समर्थ था फिर भी उस देव ने कुछ भी करने की इच्छा नहीं की वह तो केवल अपने पुण्योदय से प्राप्त वैभव द्वारा ही अपार सुख से सम्पन्न होकर सुशोभित हुआ।

ध्यात्वा सिद्धानशेषांश्च तत्पूजारतमानसः ।

षण्मासप्रमितायुः हि सर्वायुषि बभूव सः ॥२१॥

अन्वयार्थ — सर्वायुषि = अहमिन्द्र की सारी आयु में, षण्मासप्रमितायुः = छह माह प्रमाण आयु वाला, सः = वह देव, अशेषान् = सारे, सिद्धान् = सिद्धों को, ध्यात्वा = ध्याकर, च = और, हि = निश्चित ही, तत्पूजारतमानसः = उनकी पूजा में अपने मन को लगाने वाला, बभूव = हुआ।

श्लोकार्थ — अहमिन्द्र की देव आयु में से छह माह प्रमाण मात्र आयु शेष रहने पर वह देव सम्पूर्ण सिद्ध भगवन्तों का ध्यान कर उनकी पूजा में दत्तचित्त हो गया।

तदा जंबूमहाद्वीपे भरतक्षेत्रे उत्तमे ।
 शुभे देशे शुभपुरी कौशाम्बी नामतः स्मृता ॥२२॥
 यमुनापूरसन्दीप्ता धनधान्यसमाकुला ।
 धर्मविन्मानवगणैः सर्वत्राकृतमङ्गला ॥२३॥

अन्ययार्थ — तदा = तब या उस समय, जंबूमहाद्वीपे = महान् जम्बूद्वीप में, उत्तमे = उत्तम, भरतक्षेत्रे = भरतक्षेत्र में, शुभे = शुभ, देशे = देश में, धर्मविन्मानवगणैः = धर्म को जानने वाले जन समुदाय से, सर्वत्राकृतमङ्गला = सर्वत्र मङ्गल की जाती हुयी, धनधान्यसमाकुला = धनधान्य से भरपूर, (च = और), यमुनापूरसन्दीप्ता = यमुना नदी के पूर से सन्दीप्त, शुभपुरी = सुन्दर नगरी, नामतः = नाम से, कौशाम्बी = कौशाम्बी, स्मृता = स्मृत की गयी है।

श्लोकार्थ — उस समय जम्बूद्वीप के उत्तम भरत क्षेत्र में शुभ देश में एक सुन्दर नगरी थी जो यमुना नदी के पूर अर्थात् जलभाग से सुशोभित थी, धनधान्य से परिपूर्ण थी तथा धर्म के ज्ञाता जनों के समूहों द्वारा मङ्गल स्वरूप वाली थी। विद्वानों ने उसे कौशाम्बी नाम से स्मरण रखा है।

तत्रेक्ष्वाकुकुले गोत्रे काश्यपे धरणाभिधः ।
 राजा बभूव धर्मज्ञो महाबलपराक्रमः ॥२४॥

अन्ययार्थ — तत्र = उस कौशाम्बी नगर में, इक्ष्वाकुकुले = इक्ष्वाकु वंश में, काश्यपे = काश्यप, गोत्रे = गोत्र में, धरणाभिधः = धरण नामक, महाबल पराक्रमः = महान् बल और पराक्रम का धारी, धर्मज्ञः = धर्मात्मा, राजा = राजा, बभूव = हुआ।

श्लोकार्थ — उस कौशाम्बी नगर में इक्ष्वाकुवंश में, काश्यप गोत्र में एक धरण नाम का महा पराक्रमी बलशाली और धर्मात्मा राजा हुआ करता था।

तस्य राज्ञी सुसीमाख्या महाभाग्येन संयुता ।

अहमिन्द्रप्रसूर्या च भवित्री समशोभत ॥२५॥

अन्वयार्थ — या = जो, अहमिन्द्रप्रसूः = अहमिन्द्र को उत्पन्न करने वाली, भवित्री = होगी, च = और, महाभाग्येन = महाभाग्य से, संयुता = सहित, सुसीमाख्या = सुसीमा नाम वाली, तस्य = उस राजा की, राज्ञी = रानी, समशोभत = सुशोभित होती थी ।

श्लोकार्थ — जो अहमिन्द्र को जन्म देने वाली होगी और महा भाग्यशालिनी है ऐसी सुसीमा नाम की उस राजा की रानी सुशोभित होती थी ।

तत्तुष्ट्यै स्वावधिज्ञानादागमं परमेशितुः ।

ज्ञात्वा तत्रैव धनदं रत्नवृष्ट्यर्थमिन्द्रकः ॥२६॥

समादिशत् समादिष्टस्तेन यक्षेश्वरस्तदा ।

वर्षाभ्रवद्वर्षाशु रत्नानि विविधानि सः ॥२७॥

अन्वयार्थ — स्वावधिज्ञानात् = अपने अवधिज्ञान से, परमेशितुः = परमेश्वर या तीर्थङ्कर का, आगमं = आना, जन्म लेना, ज्ञात्वा = जानकर, तत्तुष्ट्यै = उस नगर के निवासी और राजा रानी की संतुष्टि के लिये, इन्द्रकः = इन्द्र ने, तत्रैव = उस सारे नगर में ही, रत्नवृष्ट्यर्थम् = रत्नों की वृष्टि करने के लिये, धनदं = कुबेर को, समादिशत् = आदेश दिया, तेन = कुबेर द्वारा, यक्षेश्वरः = यक्षों के अधिपति ने, समादिष्टः = आदेश प्राप्त किया, तदा = तब अर्थात् उसके बाद, सः = उस यक्षेश्वर ने, वर्षाभ्रवत् = वर्षा ऋतु के बादलों के समान, विविधानि = अनेक प्रकार के, रत्नानि = रत्नों को, आशु = शीघ्र ही, ववर्ष = वर्षा दिया ।

श्लोकार्थ — अपने अवधिज्ञान से पद्मप्रभु तीर्थङ्कर के आगमन को जानकर इन्द्र ने उस नगर के निवासियों और राजा-रानी की संतुष्टि के लिये उस नगर में रत्नों की वर्षा करने के लिये कुबेर को आदेश दिया । कुबेर ने यक्षों के स्वामी को आदेश दिया तब उस यक्षपति ने उस प्रकार से अनेक प्रकार

के रत्न वर्षा दिये जिस प्रकार वर्षा ऋतु के बादल पानी बरसाते हैं।

माघे कृष्णदले षष्ठ्यां चित्रायां शुभवासरे ।
रत्नपर्यङ्कसुप्ता सा सुसीमा भूपतेः प्रिया ॥२८॥
रात्रौ प्रत्युषसि स्वप्नान् षोडशैक्षत भाग्यतः ।
स्वप्नान्ते सिन्धुरं वक्त्रे प्रविष्टं समलोकयत् ॥२९॥

अन्यार्थ - माघे = माघ मास में, कृष्णदले = कृष्ण पक्ष में, षष्ठ्यां = षष्ठी, शुभवासरे = शुभ दिन में, चित्रायां = चित्रा नक्षत्र में, रत्नपर्यङ्कसुप्ता = रत्नों से निर्मित पलङ्ग पर सोयी हुयी, भूपतेः = राजा की, सा = उस, सुसीमा = सुसीमा नामक, प्रिया = प्रिय रानी ने, रात्रौ = रात्रि में, प्रत्युषसि = प्रभातबेला में, भाग्यतः = भाग्य से, षोडश = सोलह, स्वप्नान् = स्वप्नों को, ऐक्षत = देखा, स्वप्नान्ते = स्वप्न देखने के अन्त में, वक्त्रे = मुख में, प्रविष्टं = प्रविष्ट होते हुये, सिन्धुरं = हाथी को, समलोकयत् = देखा।

श्लोकार्थ - माघ कृष्णा षष्ठी के शुभ दिन चित्रा नक्षत्र में रत्न खचित पलंग पर सोयी हुई राजा की सुसीमा नामक उस प्रिय रानी ने रात्रि बीतने की प्रभात बेला में भाग्यवशात् सोलह स्वप्नों को देखा तथा स्वप्नदर्शन के अन्त में अपने मुख में प्रविष्ट होते हुये एक हाथी को भी देखा।

अथ प्रबुद्धा सा देवी तत्क्षणं पत्युरन्तिके ।
गता प्रसन्नवदना तेनागच्छेति सादरम् ॥३०॥
उक्तोपविष्टा सत्पीठे बद्धाञ्जलिरुवाच तम् ।
स्वामिन्मयोषसि स्वप्नाः षोडशाद्य समीक्षिताः ॥३१॥

अन्यार्थ - अथ = उसके बाद, प्रबुद्धा = जागी हुई, सा = वह, देवी = रानी, प्रसन्नवदना = प्रसन्न मुख वाली होकर, तत्क्षणं = जल्दी ही, पत्युरन्तिके = पति के पास में, गता = गयी, तेन = राजा द्वारा, आगच्छ = आओ, इति = ऐसा, सादरं = आदर सहित, उक्ता = कही गयी, सत्पीठे = उत्तम आसन पर,

उपविष्टा = बैठी हुयी, बद्धाञ्जलिः = हाथ जोड़ती हुयी, तं = राजा को, उवाच = बोली, स्वामिन् = हे स्वामी!, अद्य = आज, मया = मेरे द्वारा, उषसि = प्रातः बेला में, षोडश = सोलह, स्वप्नाः = स्वप्न, समीक्षिताः = देखे गये हैं।

श्लोकार्थ — तदनन्तर जागने के बाद वह रानी प्रसन्नमुख होती हुयी जल्दी ही पति के पास गयी। पति द्वारा आओ ऐसा आदर सहित कही गयी वह योग्य आसन पर बैठ गयी और हाथ जोड़कर कहने लगी—हे स्वामी! आज मैंने प्रातःबेला में सोलह स्वप्न देखे हैं।

स्वप्नान्ते मत्तमात्तङ्गः प्रविवेश भदाननम् ।

श्रुत्वा तांस्तत्फलं ब्रूहि यथार्थं प्राणवल्लभ ॥३२॥

अन्वयार्थ — स्वप्नान्ते = स्वप्न दर्शन के अन्त में, मदाननम् = मेरे मुख में, मत्तमात्तङ्गः = मदोन्मत्त हाथी, प्रविवेश = प्रविष्ट हुआ, प्राणवल्लभ = हे जीवन साथी!, तान् = उन स्वप्नों को, श्रुत्वा = सुनकर, तत्फलं = उनका फल, यथार्थं = यथार्थ अर्थात् जैसा है वैसा, ब्रूहि = कहो।

श्लोकार्थ — स्वप्न के अन्त में मेरे मुख में मदोन्मत्त हाथी प्रविष्ट हुआ। हे जीवन साथी! उन स्वप्नों को सुनकर उनका फल जैसा है वैसा ही कहो।

श्रुत्वोदितो नृपस्वामी प्रीत्या पुलकितस्तदा ।

प्रोवाच तां शृणु प्राज्ञे महोद्यद्भाग्यशालिनी ॥३३॥

उदरे ते समायातो महान्देवो जगत्पतिः ।

तं समीक्षिष्यते त्वं भोः समयादतुले दिने ॥३४॥

अन्वयार्थ — तदा = तब, श्रुत्वा = स्वप्नों को सुनकर, प्रीत्या = प्रीति से, पुलकितः = रोमाञ्चित शरीर वाले, (च = और), उदितः = हर्षोदय को प्राप्त, नृपस्वामी = राजा ने, तां = उस रानी को, प्रोवाच = कहा, प्राज्ञे = हे बुद्धिमती!, शृणु = सुनो, (त्वं = तुम), महोद्यद्भाग्यशालिनी = महान् भाग्यशालिनी, (असि = हो), ते = तुम्हारे, उदरे = पेट में, जगत्पतिः = संसार का

स्वामी तीर्थङ्कर, महान् = सर्वोत्कृष्ट पुण्यवाला, देवः = देव, समायातः = आ गया है, भोः = अरे!, त्वं = तुम, समयात् = समय से, अतुले = अतुलनीय, दिने = दिन, तं = उसको, समीक्षिष्यसे = अच्छी तरह साक्षात् देखोगी।

श्लोकार्थ — तब स्वप्नों को सुनकर प्रीति से रोमाञ्चित शरीर वाले और हर्षोदय को प्राप्त राजा ने रानी को कहा— हे बुद्धिमति! सुनो तुम सर्वाधिक भाग्यशालिनी! जो तुम्हारे पेट-गर्भ में जगत् का स्वामी तीर्थङ्कर होने वाला पुण्यशाली देव आ गया है। अरे! तुम उसे समय आने पर किसी शुभ दिन साक्षात् देखोगी।

इति श्रुत्वा तदा देवी महानन्दमवाप सा ।

गर्भिणीं तां सिषेवेऽथ प्रतिघस्रं पुलोमजा ॥३५॥

अन्वयार्थ - इति = ऐसा, श्रुत्वा = सुनकर, सा = उस, देवी = रानी ने, महानन्दम् = विपुल आनन्द को, अवाप = प्राप्त किया, अथ = फिर, तदा = तब, पुलोमजा = इन्द्राणी ने, प्रतिघस्रं = प्रतिदिन, तां = उस, गर्भिणीं = गर्भिणी रानी की, सिषेवे = सेवा की।

श्लोकार्थ — राजा से इस प्रकार सुनकर वह रानी प्रचुर आनन्द को प्राप्त हुई। इसके बाद तभी से इन्द्राणी ने प्रतिदिन उस गर्भिणी रानी की सेवा की।

शक्रसेव्यो नृपश्चासीदानन्द दुन्दुभिस्वनः ।

रत्नवृष्टिः प्रतिदिनं त्रिकालेऽपि च वर्षति ॥३६॥

अन्वयार्थ — च = और, नृपः = राजा, अपि = भी, शक्रसेव्यः = इन्द्र से सेवित, आसीत् = हुआ था, (सर्वत्र = सभी जगह), आनन्ददुन्दुभिस्वनः = आनन्ददायक नगाड़ों की ध्वनि, (आसीत् = थी), च = और, प्रतिदिनं = प्रत्येक दिन, त्रिकाले = तीन समय, रत्नवृष्टिः = रत्नों की बरसात, वर्षति = बरसती थी।

श्लोकार्थ — और राजा भी इन्द्र द्वारा सेवित हुआ। उस नगर में सभी जगह आनन्ददायक नगाड़ों की ध्वनि होती थी तथा प्रत्येक दिन तीन बार रत्नों की बरसात बरसती थी।

एवं देव्या तया मासा नीता नव सुखेन हि ।

स्वभावदीप्तया देवज्योतिर्ददीप्यमानया ॥३७॥

अन्वयार्थ — एवं = इस प्रकार, सुखेन = स्वभावदीप्तया = स्वभावतः कान्ति वाली, (च = और), देवज्योतिर्ददीप्यमानया = देव के प्रकाश से दैदीप्यमान कान्तिवाली, तया = उस, देव्या = रानी ने, नव = नौ, मासाः = महिनें, सुखेन = सुख से, हि = ही, नीता = बिता दिये ।

श्लोकार्थ — इस प्रकार स्वभाव से सुन्दर व कान्तिसम्पन्न तथा गर्भ में देव के जीव की स्थिति होने से उसके प्रकाश से अत्यधिक दमकती सी उस रानी ने नौ महिने सुख से ही बिता दिये ।

कार्तिके मासि कृष्णायां त्रयोदश्यां शुभे दिने ।

असूत पुत्रं सा श्रीमदहमिन्द्रमहेश्वरम् ॥३८॥

अन्वयार्थ — कार्तिके = कार्तिक, मासि = मास में, कृष्णायां = कृष्ण पक्ष में, त्रयोदश्यां = त्रयोदशी तिथि में, शुभे = शुभ, दिने = दिन में, सा = उस रानी ने, श्रीमत् = लक्ष्मीसम्पन्न, अहमिन्द्रमहेश्वरं = अहमिन्द्र से तीर्थङ्कर होने वाले, पुत्रं = पुत्र को, असूत = जन्म दिया ।

श्लोकार्थ — कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी के शुभ दिन् उस रानी ने अहमिन्द्र से तीर्थङ्कर होने वाले पुत्र को उत्पन्न किया ।

तथैवावधितो ज्ञात्वा सौधर्मन्दोऽथ हर्षितः ।

ऐशानेन्द्रसमायुक्तः सगीर्वाणः समाययौ ॥३९॥

अन्वयार्थ — अथ = फिर, तथैव = वैसा ही, अवधितः = अवधिज्ञान से, ज्ञात्वा = जानकर, सौधर्मेन्द्रः = सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र, हर्षितः = हर्षित हुआ, ऐशानेन्द्रसमायुक्तः = ऐशान स्वर्ग के इन्द्र के साथ, सगीर्वाणः = देवताओं सहित, समाययौ = आया ।

श्लोकार्थ — फिर वैसे ही प्रभु का जन्म अवधिज्ञान से जानकर हर्षित चित्त सौधर्म इन्द्र ऐशान स्वर्ग के इन्द्र के साथ होकर देवताओं सहित वहाँ आया ।

स मायाशक्तितो देवं मात्राज्ञातं शचीकरात् ।
 समादाय गतो मेरुं जयनिर्घोषमुच्चरन् ॥४०॥
 क्षीरसिन्धुजलापूर्णश्चाष्टोत्तर सहस्रकैः ।
 हेमकुम्भैः प्रभुं तत्रास्नापयद् भक्तितोऽर्चयत् ॥४१॥
 वस्त्रालङ्करणैर्दिव्यैः पश्चादाभूष्य तं प्रभुम् ।
 पुनः समानयामास महाराजस्य वेश्मनि ॥४२॥
 आरोपितं सिंहपीठे पुनः संपूज्य तत्र तम् ।
 विधाय ताण्डवं चित्रं भूपाद्यन्तर्वशीकरम् ॥४३॥
 तस्य पद्मप्रभाभिख्यां कृत्वा मात्रे समर्प्य च ।
 अशेषदेवतैः सार्धं जगाम स्वाममरावतीम् ॥४४॥

अन्वयार्थ :- मायाशक्तितः = मायामयी शक्ति के कारण, मात्रा = माता द्वारा, अज्ञानं = नहीं जाने गये, देवं = प्रभु को, शचीकरात् = इन्द्राणी के हाथ से, समादाय = लेकर, सः = वह इन्द्र, जयनिर्घोषमुच्चरन् = जय जयकार की घोषणा करता हुआ, मेरुं = मेरु पर्वत पर, गतः = गया, तत्र = वहाँ, अष्टोत्तरसहस्रकैः = एक हजार आठ, क्षीरसिन्धुजलापूर्णैः = क्षीरसागर के जल से परिपूर्ण, हेमकुम्भैः = स्वर्णकलशों से, प्रभुं = प्रभु को, अस्नापयत् = नहलाया, च = और, भक्तितः = भक्ति से, अर्चयत् = अर्चना की, पश्चात् = फिर, दिव्यैः = दिव्य, वस्त्रालङ्करणैः = वस्त्रों और आभूषणों से, तं = उन, प्रभुं = शिशु तीर्थङ्कर को, आभूष्य = अलङ्कृत करके, पुनः = फिर से, महाराजस्य = महाराज के, वेश्मनि = महल में, समानयामास = ले आया, तत्र = वहाँ, सिंहपीठे = सिंहपीठ पर, आरोपितं = आरोपित किये गये, तं = प्रभु को, पुनः = फिर से, संपूज्य = अच्छी तरह से पूजकर, भूपाद्यन्तर्वशीकरं = भूपादि के अन्तर्मन को वश में करने वाला, चित्रं = आश्चर्यकारी, ताण्डवं = ताण्डव नृत्य को, विधाय = करके, तस्य = उन शिशु प्रभु का, पद्मप्रभाभिख्यां = पद्मप्रभु ऐसा नामकरण, कृत्वा = करके, च = और, मात्रे = माता के लिये, समर्प्य = समर्पित कर या देकर, अशेषदेवतैः

= सम्पूर्ण देवताओं के, सार्ध = साथ, स्वाम् = अपनी, अमरावतीम् = अमरावती को, जगाम = चला गया।

श्लोकार्थ — मायाशक्ति से जैसे माता को ज्ञात न हो वैसे शची के हाथ से देव प्रभु को पाकर वह सौधर्म इन्द्र जय जयकार का निर्घोष करता हुआ मेरु पर्वत पर गया। वहाँ उसने क्षीर-सागर के जल से भरे हुये एक हजार आठ स्वर्णकलशों से प्रभु का न्दवन किया और भक्ति के साथ उनकी अर्चना की। फिर प्रभु को दिव्य वस्त्रों और अलङ्करणों से सुशोभित करके वह पुनः उन्हें राजा के महल में ले आया। वहाँ सिंहपीठ पर विराजमान किये गये उन प्रभु की फिर से पूजा करके, राजा आदि सभी के अन्तर्मन को वशीभूत करने वाला आश्चर्यकारी ताण्डव नृत्य करके, प्रभु का 'पद्मप्रभु' यह नामकरण करके और प्रभु को माता के लिये देकर वह इन्द्र सभी देवताओं के साथ अपनी अमरावती को चला गया।

सर्वाङ्गानुपमो देवो देवीदेवकुमारकैः ।

सेवितो बालरूपेण चिक्रीड नवसदमनि ॥४५॥

अन्वयार्थ — देवीदेवकुमारकैः = देवियों और देव कुमारों द्वारा सेवित होता हुआ, सर्वाङ्गानुपमः = सभी अङ्गों से अनुपम, देवः = बालक प्रभु, नवसदमनि = नये महल में, बालरूपेण = बालरूप से, चिक्रीड = खेलते थे।

श्लोकार्थ — देव और देवियों के कुमार रूप से सेवित होता हुआ सारे अङ्गोपाङ्गों से सर्वाति सुन्दर बालक प्रभु अपने नूतन महल में बालोचित क्रीड़ायेँ करते थे।

नवकोटिसमुद्रेषु सुमतीशाद् गतेषु सः ।

तदभ्यन्तरजीवी हि बभूवादभुतरुक्मनुः ॥४६॥

अन्वयार्थ — सुमतीशात् = सुमतिनाथ तीर्थङ्कर से, नवकोटिसमुद्रेषु = नौ करोड़ सागर, गतेषु = बीत जाने पर, तदभ्यन्तरजीवी = उसके मध्य में ही अन्तर्भूत जीवन वाले, अदभुतरुक्मनुः = आश्चर्यकारी ज्योतिर्मय शरीर वाले, सः = वह पद्मप्रभु भगवान्, बभूव = हुये थे।

श्लोकार्थ - सुमतिनाथ तीर्थङ्कर से नौ करोड़ सागर काल बीत जाने पर उसमें ही जिनका जीवन अन्तर्भूत है ऐसे आश्चर्योत्पादक कान्तिमान् शरीर वाले भगवान् पदमप्रभु हुये थे।

स त्रिंशल्लक्षपूर्वायुः समेतो भास्करप्रभः ।

सार्धं द्विशतकोदण्डः समुत्सेधः शरीरवान् ॥४७॥

सार्धं सप्तोक्तलक्षोक्तपूर्वायुस्तु गतं यदा ।

कुमारकाले क्रीडाभिस्तदा राजा बभूव सः ॥४८॥

अन्वयार्थ - सः = वह, त्रिंशल्लक्षपूर्वायुःसमेतः = तीस लाख पूर्व आयु से युक्त, भास्करप्रभः = सूर्य की प्रभा के समान, सार्धं = आधे सहित, द्विशतकोदण्डः = दो सौ धनुष, समुत्सेधः = ऊँचाई, शरीरवान् = शरीर वाला (आसीत् = था), कुमारकाले = कुमार अवस्था में, सार्धं = आधे सहित, सप्तोक्तलक्षोक्तपूर्वायुः = सात लाख पूर्व आयु, यदा = जब, क्रीडाभिः = क्रीडाओं से, गतं = बीत गयी, तु = तो, तदा = तब, सः = वह, राजा = राजा, बभूव = हुये।

श्लोकार्थ - वह पदमप्रभु तीस लाख पूर्व आयु से युक्त थे उनका शरीर सूर्य की प्रभा के समान था जिसकी ऊँचाई दो सौ पचास धनुष थी। कुमारपने में जब उनकी आयु साढ़े सात लाख पूर्व खेल खेलने से बीत गयी थी तो तब वह राजा हो गये थे। अर्थात् साढ़े सात लाख पूर्व की उम्र में वे राजा बना दिये गये थे।

विकारान् जितवान् सर्वान् धर्मकार्यविशारदः ।

सर्वेभ्यः सुखदः स सर्वदोषहर्ता प्रतापवान् ॥४९॥

सानन्दं राज्यमकरोत् राज्यभोगैरनेकधा ।

वनक्रीडार्थमेकस्मिन् समये गतयान्प्रभुः ॥५०॥

अन्वयार्थ - सर्वेभ्यः = सबके लिये, सुखदः = सुख देने वाले, सर्वदोषहर्ता = सब प्रकार के दोषों को हरने वाले, धर्मकार्यविशारदः = धर्म कार्यों को करने में चतुर, प्रतापवान् = प्रतापी-पराक्रमी, सर्वान् = सारे, विकारान् = विकारों को, जितवान् = जीतने वाले, स = उस राजा ने, अनेकधा = अनेक प्रकार से,

राज्यभोगैः = राज्य के भोगों को भोगने के साथ, आनन्द = आनन्द सहित, राज्यं = राज्य, अकरोत् = किया। एकस्मिन् समये = एक बार, प्रभुः = राजा, वनक्रीडार्थम् = वन में क्रीड़ा के लिये, गतवान् = गये।

श्लोकार्थ – सबके लिये सुख देने वाले, सभी प्रकार के दोषों को दूर करने वाले, धर्मकार्यसम्पादन में चतुर सारे विकारों को जीतने वाले उस प्रतापी राजा ने अनेक प्रकार से राज्य के वैभव को भोगने के साथ आनन्दपूर्वक राज्य किया। एक बार वह राजा वन क्रीड़ा के लिये वन में गये।

तत्र गत्वैकमासं तं मृतं मातङ्गमैक्षत ।

तत्क्षणात्स विरक्तोऽभूत् नश्वरं गणयञ्जगत् ॥५१॥

अनुप्रेक्षा द्वादशैव भावयित्वा हृदि प्रभुः ।

दत्त्वा राज्यं स्वपुत्राय स्तुतो ब्रह्मर्षिभिस्तदा ॥५२॥

शक्रोपनीतामतुलामानन्दशिविकां गतः ।

शृण्वन् देवजयध्वनिं मनोहरवनं ययौ ॥५३॥

अन्वयार्थ – (स = उसने), एकमासं = एक माह पर्यन्त, (अक्रीडत् = क्रीड़ा की), (च = और), तत्र = वन में, मातङ्गं = हाथी को, ऐक्षत = देखा, तं = उसको, मृतं = मरा हुआ, गत्वा = जानकर, तत्क्षणात् = उसी क्षण, स = वह, जगत् = जगत् को, नश्वरं = नश्वर, गणयन् = गिनता हुआ, विरक्तः = विरक्त, अभूत् = हो गया। प्रभुः = राजा ने, हृदि = मन में, द्वादशैव = बारहों ही, अनुप्रेक्षाः = अनुप्रेक्षायें, भावयित्वा = 'भाकर', स्वपुत्राय = अपने पुत्र के लिये, राज्यं = राज्य को, दत्त्वा = देकर, (यदा = जब), ब्रह्मर्षिभिः = ब्रह्मर्षि अर्थात् लौकान्तिक देवों से, स्तुतः = स्तुति किया गया, तदा = तब, शक्रोपनीतां = इन्द्र द्वारा लायी गयी, अतुलां = जिसकी तुलना नहीं की जा सकती ऐसी अनुपम, आनन्दशिविकां = आनन्द नामक पालकी को, गतः = प्राप्त हो गया, देवजयध्वनिं = देवताओं द्वारा की गई जयध्वनि को, शृण्वन् = सुनता हुआ, मनोहरवनं = मनोहर वन को, ययौ = चला गया।

श्लोकार्थ — उस राजा ने एक माह तक वन में क्रीड़ा की। एक दिन उसने वन में एक हाथी देखा किन्तु वह 'मर गया है' — ऐसा जानकर उसी समय जगत् को नश्वर गिनता हुआ वैराग्य को प्राप्त हो गया। उन प्रभु ने मन में बारह अनुप्रक्षाओं को भाकर अर्थात् उनका चिन्वन करके अपने पुत्र को राज्य दे दिया तथा जब ब्रह्मर्षि नामक लौकान्तिक देवों द्वारा उनकी स्तुति की गई तब इन्द्र द्वारा लायी गयी आनन्द नामक पालकी में बैठ गये और देव द्वारा की गयी जय ध्वनि को सुनते हुये मनोहर वन में चले गये।

कार्तिके कृष्णपक्षे च त्रयोदश्यां तिथौ प्रभुः ।

चित्रायां भूमिपालैश्च सहस्रैः सह तद्वने ॥५४॥

दीक्षां जग्राह सन्ध्यायां सम्यक् षष्ठोपवासभृत् ।

तत्क्षणाच्च त्रिबोधोऽपि चतुर्थज्ञानमाप सः ॥५५॥

अन्वयार्थ — कार्तिके = कार्तिक मास में कृष्णपक्षे = कृष्णपक्ष में, त्रयोदश्यां = तेरहवीं, तिथौ = तिथि में, च = और, चित्रायां = चित्रा नक्षत्र में, सहस्रैः हजारों, भूमिपालैः = राजाओं के, सह = साथ, प्रभुः = राजा ने, दीक्षां = दीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया, च = और, सन्ध्यायां = शाम को, त्रिबोधो = तीन ज्ञान के धारी, च = और, षष्ठोपवासभृत् = षष्ठोपवास के नियम को धारण करने वाले, सः = उन मुनिराज ने, तत्क्षणात् = जल्दी ही, सम्यक् = शुद्ध, चतुर्थज्ञानम् = चौथा मनःपर्ययज्ञान को, अपि = भी, आप = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ — कार्तिककृष्णा त्रयोदशी को चित्रा नक्षत्र में हजारों राजाओं के साथ राजा ने मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली तथा तीन ज्ञान के धारी व षष्ठोपवास के नियम को धारण किये हुये उन मुनिराज ने जल्दी ही शुद्ध चौथा मनःपर्ययज्ञान प्राप्त कर लिया।

द्वितीयेऽह्नि गतो देवो वर्धमानं पुरं प्रति ।

भिक्षायै सोमदत्ताख्यस्तत्र राजा सुधार्मिकः ॥५६॥

तस्मै दत्त्वाशनं प्राप तदैवाश्चर्यं पञ्चकम् ।

षण्मासं मौनमास्थाय तपश्चातपदुत्तमम् ॥५७॥

अन्वयार्थ - द्वितीये = दूसरे, अह्नि = दिन, देवः = मुनिराज, भिक्षाये = आहार भिक्षा के लिये, वर्धमानं = वर्धमान नामक, पुरं = नगर, प्रति = की ओर, गतः = गये । तत्र = उस नगर में, सोमदत्ताख्यः = सोमदत्त नामक, सुधार्मिकः = धर्मात्मा, राजा = राजा, (आसीत् = था), (स = उस राजा ने), तस्मै = उन मुनिराज को, अशनं = आहार, दत्त्वा = देकर, तदैव = उसी समय, पञ्चकम् = पांच, आश्चर्यं = आश्चर्यों को, प्राप्त = प्राप्त कर लिया, च = और, षण्मासम् = छह मास तक, मौनं = मौनव्रत, आस्थाय = लेकर, उत्तमं = उत्तम, तपः = तप, अतपत् = तपा ।

श्लोकार्थ - दूसरे दिन वे मुनिराज भिक्षा के लिये वर्धमान नगर की तरफ गये वहाँ सोमदत्त नामक धर्मात्मा राजा राज्य करता था । उसने मुनिराज को आहार देकर उसी समय पंचाश्चर्य प्राप्त किये और मुनिराज ने छह माह तक मौनव्रत लेकर उत्तम तपश्चरण किया ।

उग्रेण तपसा देवो घातिकर्मक्षयं व्यधात् ।

युयत्तश्चतुरनन्तैः स चैत्रमासे सिते दले ॥५८॥

पूर्णिमायामवापोच्चैः केवलज्ञानमुत्तमम् ।

तदा समवसारं च धनेशो वासवाज्ञया ॥५९॥

अत्यद्भुतं व्यरचयत्तत्र सर्वोपरि प्रभुः ।

छत्रत्रयसमुद्दीप्तो बभौ सर्वोपरि प्रभुः ॥६०॥

अन्वयार्थ - उग्रेण = उग्र, तपसा = तपश्चरण से, देवः = मुनिराज ने, घातिकर्मक्षयं = घातिया कर्मों का क्षय, व्यधात् = कर दिया, (यदा = जब), चैत्रमासे = चैत्र माह में, सिते दले = शुक्ल पक्ष में, पूर्णिमायाम् = पूर्णिमा के दिन, उच्चैः = उत्कृष्ट, चतुरनन्तैः = अनन्त चतुष्टयों से, युक्तः = युक्त, स = उन्होंने, उत्तमं = उत्तम, केवलज्ञानम् = केवलज्ञान को, अवाप = प्राप्त

किया था। तदा = तभी, वासवाज्ञया = इन्द्र की आज्ञा से, धनेशः = कुबेर ने, अत्यद्भुतं = अत्यधिक आश्चर्यजनक, समवसारं = समवसरण को, व्यरचयत् = रच दिया, तत्र = उस समवसरण में, सर्वोपरि = सबसे ऊपर, यथा = जैसे, खे = आकाश में, गारुडः = कूर्ग, (तथा = वैसे), प्रभुः = भगवान्, छत्रत्रयसमुदीप्तः = तीन छत्रों से चमकते-दमकते हुये, खे = आकाश में, बभौ = सुशोभित हुये।

श्लोकार्थ — उग्र तपश्चरण से उन मुनिराज ने चारों घातिया कर्मों का क्षय कर दिया। जब चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के दिन उत्कृष्ट अनंत चतुष्टयों से युक्त प्रभु ने उत्तम केवलज्ञान प्राप्त किया था। तभी इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने अत्यधिक आश्चर्यकारी समवसरण की रचना कर दी। उस समवसरण में सबसे ऊपर भगवान् तीन छत्रों के साथ दीप्तिमान् होते हुये आकाश में वैसे ही सुशोभित हुये जैसे आकाश में सूर्य दमकता है।

यथासंख्यं गणेन्द्राद्यैः प्रभुर्द्वादशकोष्ठगैः ।

सम्पूजितस्ततो दृष्टो शरदेन्दुरिव व्यभात् ॥६१॥

अन्वयार्थ — ततः = और फिर, यथासंख्यं = क्रमशः, द्वादशकोष्ठगैः = बारह कोठों में स्थित, गणेन्द्राद्यैः = गणधरादि श्रोताओं द्वारा, प्रभुः = भगवान्, सम्पूजितः = पूजा किये जाते हुये, दृष्टः = दिखे, इव = मानों, शरदेन्दुः = शरद ऋतु का चन्द्रमा ही, व्यभात् = सुशोभित हुआ हो।

श्लोकार्थ — समवसरण में क्रमशः बारह कोठों में स्थित गणधरादि श्रोताओं ने भगवान् की पूजा की, ऐसा दिखता था मानों शरद ऋतु का चन्द्रमा सुशोभित हो रहा हो।

भव्यैर्धर्मोपदेशाय सम्पृष्टो भगवांस्तदा ।

उच्चरन्दिव्यनिर्घोषं सर्वतत्त्वप्रकाशकम् ॥६२॥

सर्वधर्मोपदेशाढ्यं सर्वार्थतिमिरापहम् ।

द्वात्रिंशदुक्तसहस्रपुण्यदेशेषु देवराट् ॥६३॥

पद्मप्रभोऽसौ विहरन्भव्यान् प्रतिबोधयन् ।

मासमात्रावशिष्टायुः सम्मेदाचलमाययौ ॥६४॥

अन्वयार्थ - (यदा = जब), भव्यैः = भव्य जीवों द्वारा, धर्मोपदेशाय = धर्म का उपदेश समझने के लिये, भगवान् = भगवान्, सम्पृष्टः = पूछे गये, तदा = तब, सर्वधर्मोपदेशाद्यं = सभी धर्मों के उपदेश से समृद्ध, सर्वार्थतिगिराणहं = सारे पदार्थों के सम्बन्ध में वर्तमान अज्ञान को नाश करने वाली, सर्वतत्त्वप्रकाशकम् = सारे तत्त्वों का प्रकाशन करने वाली, दिव्यनिर्घोषं = दिव्यध्वनि को, उच्चरन् = उच्चरित करते हुये, द्वात्रिंशदुक्तसहस्रपुण्यदेशेषु = बत्तीस हजार पुण्य देशों में, विहरन् = विहार करते हुये, भव्यान् = भव्यजीवों को, प्रतिबोधयन् = प्रतिबोधित करते अर्थात् समझाते हुये, मासमात्राशिष्टायुः = मात्र एक मास अवशिष्ट आयु वाले, असौ = वह, देवराट् = देवाधिदेव तीर्थङ्कर, पद्मप्रभुः = पद्मप्रभु, सम्मेदाचलम् = सम्मेदशिखर पर, आययौ = आ गये।

श्लोकार्थ - जब भव्यजनों द्वारा धर्मोपदेश समझने के लिये भगवान् पूछे गये तब सभी पदार्थों के सम्बन्ध में विद्यमान अज्ञान अन्धकार को नाश करने वाली, सभी धर्मों के विवेचन से समृद्ध, और सारे तत्त्वों को प्रकाशित करने वाली दिव्यध्वनि का उच्चारण करते हुये, बत्तीस हजार पुण्य देशों में विहार करते हुये वहाँ भव्य जीवों को प्रतिबोध अर्थात् धर्म का ज्ञान देते हुये एक माह मात्र आयु अवशिष्ट रहने पर वे देवाधिदेव भगवान्-तीर्थङ्कर पद्मप्रभु सम्मेदशिखर पर आ गये।

संहरन्दिव्यनिर्घोषं शुक्लध्यानपरायणः ।

मोहनाख्यं महाकूटं स्वधाम्ना समपूर्णयत् ॥६५॥

अन्वयार्थ - शुक्लध्यानपरायणः = शुक्लध्यान में तत्पर प्रभु ने, दिव्यनिर्घोषं = दिव्यध्वनि को, संहरन् = समेटते हुये अर्थात् दिव्यध्वनि को बंद करते हुये, मोहनाख्यं = मोहन नामक, महाकूटं = महान् कूट को, स्वधाम्ना = अपने धाम अर्थात् तेज से, समपूर्णयत् = पूर्ण कर दिया।

श्लोकार्थ - अपनी दिव्यध्वनि को रोकते हुये शुक्लध्यान परायण प्रभु ने मोहन नामक महाकूट को अपने तेज से परिपूर्ण कर दिया।

फाल्गुने मासि कृष्णायां चतुर्थ्यां मुनिभिः सह ।

सहस्रैः प्रतिमायोगमादायापामृतं प्रभुः ॥६६॥

सन्ध्यायां मुक्तिकल्याणमस्यापि सिद्धधामनि ।

अखण्डानन्दपीयूषरसास्वादी बभूव सः ॥६७॥

अन्वयार्थ — फाल्गुने = फाल्गुन, मासि = माह में, कृष्णायां = कृष्णपक्ष में, चतुर्थ्यां = चतुर्थी तिथि में, सहस्रैः = हजारों, मुनिभिः = मुनियों के, सह = साथ, प्रभुः = भगवान् ने, प्रतिमायोगं = प्रतिमायोग को, आदाय = लेकर, अमृतं = मरण रहित मोक्ष को, आप = प्राप्त कर लिया, सन्ध्यायां = सायं बेला में, अस्य = इन भगवान् का, मुक्तिकल्याणम् = मोक्ष कल्याणक, अपि = भी, बभूव = हुआ, सः = वह, सिद्धधामनि = सिद्धस्थान में, अखण्डानन्दपीयूषरसास्वादी = अखण्ड आनन्द स्वरूप अमृत रस का अनुभव करने वाला या वेदन करने वाला, बभूव = हुआ ।

श्लोकार्थ — फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी के दिन हजारों मुनियों के साथ भगवान् ने प्रतिमायोग लेकर मोक्ष पद पा लिया । उनका मोक्षकल्याण सन्ध्याकाल में हुआ । वह भगवान् सिद्ध स्थान में खण्डरहित अर्थात् सतत् परिपूर्ण आनन्द रूप अमृत के रसपान का स्वाद लेने वाले हो गये ।

एकोनशतकोट्युक्ताः समुद्राशीतिलक्षकाः ।

नेत्रचत्वारिंशत्सहस्रास्तथा सप्तशतप्रमाः ॥६८॥

सप्तविंशतिसंख्यातास्तत्पश्चात्मोहनाभिधात् ।

कूटात्सिद्धपदं प्राप्ता मुनयो दिव्यचक्षुषः ॥६९॥

अन्वयार्थ — तत्पश्चात् = पदप्रभु के मोक्ष जाने के बाद, एकोनशतकोट्युक्ताः = निन्यानवे करोड़, समुद्राशीतिलक्षकाः = चौरासी लाख, नेत्रचत्वारिंशत्सहस्राः = बयालीस हजार, सप्तशतप्रमाः = सात सौ, तथा = और, सप्तविंशतिसंख्याताः = सत्ताइस संख्याप्रमाण, दिव्यचक्षुषः = दिव्यज्ञान वाले, मुनयः = मुनियों ने, मोहनाभिधानात् = मोहन नामक, कूटात् = कूट से, सिद्धपदं = सिद्धपद को, प्राप्ता = प्राप्त किया ।

श्लोकार्थ — पद्मप्रभु के मोक्ष जाने के बाद निन्यानवे करोड़ चौरासी लाख बयालीस हजार सात सौ और सत्ताइस संख्याप्रमाण दिव्यज्ञान वाले मुनियों ने मोहन नामक कूट से सिद्धपद को प्राप्त किया।

कूटं चानन्दमाहात्म्यं मोहनाख्यं मनोहरम् ।

यात्रायां योऽभिवन्देत भवाब्धिं स तरेद् ध्रुवम् ॥७०॥

अन्वयार्थ — यः = जो, आनन्दमाहात्म्यं = आनन्द रूप महिमा से संयुक्त, च = और, मनोहरम् = मनहरण-सुन्दर, मोहनाख्यं = मोहन नामक, कूटं = कूट को, यात्रायां = तीर्थवन्दना रूप यात्रा में, अभिवन्देत = पूजे, उसकी वन्दना करे, सः = वह, ध्रुवं = निश्चित ही, भवाब्धिं = संसार सागर को, तरेत् = तैर लेवे अर्थात् उससे पार हो जावे।

श्लोकार्थ — जो भी तीर्थवन्दना रूप यात्रा में आनन्द देने वाली महिमा से युक्त और मनोहर, मोहन नामक कूट की वन्दना करता है वह निश्चित ही संसार सागर को तैर लेता है अर्थात् उससे पार हो जाता है।

प्रोषधव्रतकोट्युक्तफलं तद्वन्दनाल्लभेत ।

सर्वकूटाभिवन्दारोः फलं वक्तुं न शक्यते ॥७१॥

अन्वयार्थ — तद्वन्दनात् = उस मोहन कूट की वन्दना से, प्रोषधव्रतकोट्युक्तफलं = एक करोड़ प्रोषधोपवास व्रत के फल को, लभेत = प्राप्त करे तो, सर्वकूटाभिवन्दारोः = सभी कूटों की अभिवन्दना करने वाले भक्त का, फलं = फल को, वक्तुं = कहने के लिये, (कोऽपि = कोई भी), न = नहीं, शक्यते = सकता है।

श्लोकार्थ — एक मोहन कूट की वन्दना करने से जब एक करोड़ प्रोषधोपवास व्रत करने का फल प्राप्त हो जाये तो सभी कूटों की वन्दना करने वाले के फल को कोई भी नहीं कह सकता है।

पूर्वं सुप्रभभूपालः कूटं तं प्राणमन्मुदा ।

संक्षेपतः कथां तस्य वक्ष्ये शृणुत साधवः ॥७२॥

अन्वयार्थ — पूर्व = पहिले, सुप्रभभूपालः = सुप्रभ राजा ने, मुदा = प्रसन्न मन से, तं = उस, कूटं = कूट को, प्राणमत् = प्रणाम किया था, तस्य = उसकी, कथां = कथा को, संक्षेपतः = संक्षेप से, वक्ष्ये = मैं कहता हूँ, साधवः = हे साधुओं!, शृणुत = तुम सब सुनो।

श्लोकार्थ — सुप्रभ राजा ने पहिले प्रसन्न मन से उस मोहनकूट को प्रणाम किया था। उसकी वह कथा मैं संक्षेप से कहता हूँ— हे साधुओं अर्थात् सज्जनों! तुम सब उसे सुनो।

जम्बूनाम्नि शुभे द्वीपे भारते क्षेत्र उत्तमे ।

बंगदेशे प्रभाकर्या नगर्या सुप्रभोऽभवत् ॥७३॥

अन्वयार्थ — जम्बूनाम्नि = जम्बू नामक, शुभे = शुभ, द्वीपे = द्वीप में, उत्तमे = उत्तम, क्षेत्रे = क्षेत्र में, भारते = भारत में, बंगदेशे = बंगदेश में, प्रभाकर्या = प्रभाकरी, नगर्या = नगरी में, सुप्रभः = सुप्रभ राजा, अभवत् = हुआ था।

श्लोकार्थ — शुभ लक्षणों वाले जंबूद्वीप के उत्तम क्षेत्र भारत के बंगदेश में प्रभाकरी नगरी का राजा सुप्रभ था।

तस्य प्रिया सुषेणाख्या सुन्दरी शीलशालिनी ।

गुणाद्या लक्षणाद्या च सत्याख्या सम्बभूव सा ॥७४॥

अन्वयार्थ — तस्य = उस राजा की, सुषेणाख्या = सुषेणा नामक, प्रिया = प्रिय पत्नी (आसीत् = थी), सुन्दरी = रूपवती, शीलशालिनी = उत्तम शील का पालन करने वाली, सा = वह, गुणाद्या = गुणों की खान, लक्षणाद्या = उत्तम लक्षणों की खान, च = और, सत्याख्या = सत्य बोलने वाली, सम्बभूव = हुई—प्रसिद्ध हुई।

श्लोकार्थ — उस सुप्रभ राजा की एक प्रिय रानी थी जो अत्यंत रूपवती और उत्तम शील का पालन करने वाली थी। वह रानी उत्तम लक्षणों से सम्पन्न और अनेक गुणों की खान थी तथा सत्य वादिनी के रूप में प्रसिद्ध हुई थी।

एकदा सुप्रभो भूपः परिवारसमन्वितः ।

स्वेच्छया हर्षसंयुक्तः क्रीडायै गतवान् वनम् ॥७५॥

अन्वयार्थ — एकदा = एक बार, भूपः = राजा, सुप्रभः = सुप्रभ, हर्षसंयुक्तः = हर्ष से भरा हुआ, परिवारसमन्वितः = परिवार सहित, स्वेच्छया = अपनी इच्छानुसार, क्रीडायै = क्रीडा करने के लिये, वनं = वन को, गतवान् = गया ।

श्लोकार्थ — एक बार हर्ष से भरा हुआ वह सुप्रभ राजा अपनी इच्छा से क्रीडा के लिये सपरिवार वन को गया ।

अपश्यच्चारणमुनिं त्रिःपरिक्रम्य तं ततः ।

प्राह भूपश्चारणर्द्धिः कुतः प्राप्ता तव प्रभो ॥७६॥

अन्वयार्थ -- (तत्र = वन में), चारणमुनिं = चारण ऋद्धिधारी मुनि को, अपश्यत् = देखा, ततः = उसके बाद, तं = उन मुनिराज की, त्रिः = तीन, परिक्रम्य = परिक्रमा करके, भूपः = राजा ने, प्राह = कहा, प्रभो = हे स्वामी!, तव = तुम्हारे लिये, चारणर्द्धिः = चारण ऋद्धि, कुतः = किस कारण से, प्राप्ता = प्राप्त हुई ।

श्लोकार्थ — राजा ने वन में चारण ऋद्धिधारी मुनिराज को देखा तथा उनकी तीन परिक्रमा करके प्रणाम किया एवं पूछा हे स्वामी! आपके लिये चारण ऋद्धि किस कारण से प्राप्त हुई ।

मुनिनोक्तं महीपाल सम्मेदाचलवन्दनात् ।

चारणर्द्धिः मया प्राप्ता श्रुत्वाह नृपतिः पुनः ॥७७॥

मुने सम्मेदयात्रायै मन्मनोऽस्ति समुत्सुकम् ।

मुनिस्तं प्राह भूमीश तव यात्रा भविष्यति ॥७८॥

अन्वयार्थ — मुनिना = मुनिराज द्वारा, उक्तं = कहा गया, महीपाल = हे राजन्!, सम्मेदाचलवन्दनात् = सम्मेदशिखर की वन्दना से, मया = मेरे द्वारा, चारणर्द्धिः = चारण ऋद्धि, प्राप्ता = प्राप्त की गयी (इति = ऐसा), श्रुत्वा = सुनकर, नृपः = राजा, पुनः = फिर से, आह = बोला, मुने = हे मुनि, सम्मेदयात्रायै = सम्मेदशिखर की यात्रा के लिये, मम = मेरा, मनः = मन,

समुत्सुकम् = उत्सुक-उत्साहित, अस्ति = है, मुनिः = मुनिराज ने, तं = उसको, प्राह = कहा, भूमीश = हे राजन्!, तव = तुम्हारी, यात्रा = तीर्थवन्दना रूप यात्रा, भविष्यति = हो जायेगी।

श्लोकार्थ - मुनिराज ने कहा-हे राजन्! सम्मेदशिखर की वन्दना करने से मुझे यह चारण ऋद्धि प्राप्त हुई है। मुनिराज से यह सुनकर राजा फिर बोला- हे मुनिराज! मेरा मन सम्मेदशिखर की यात्रा करने के लिये उत्सुक हो रहा है। तब मुनिराज ने कहा-हे राजन्! तुम्हारी तीर्थवन्दना स्वरूप यात्रा अवश्य हो जायेगी।

तदा मुदा समागत्य गृहं यात्रोन्मुखोऽभवत् ।
 संघसम्मानकृद्राजा कोट्युक्तमनुजैः सह ॥७६॥
 गायकान्वादकांस्तद्वत् नर्तकीश्च नर्तकांस्तथा ।
 सार्थकान्संविधायथ दुन्दुभीश्चभिनादयन् ॥८०॥
 उत्तुङ्गध्वजशोभाढ्यो महोत्सवसमन्वितः ।
 सम्मेदयात्रामकरोत् दिनैः कतिपयैर्नृपः ॥८१॥

अन्ययार्थ - तदा = तब, गृहं = घर, समागत्य = आकर, संघसम्मानकृद्राजा = चतुर्विधसंघ का सम्मान करने वाला राजा, मुदा = प्रसन्नता के साथ, कोट्युक्तमनुजैः = एक करोड़ मनुष्यों के, सह = साथ, यात्रोन्मुखः = सम्मेदशिखर की यात्रा के लिये तत्पर, अभवत् = हो गया।

अथ = फिर, गायकान् = गायकों को, वादकान् = तबला आदि बजाने वालों को, च = और, नर्तकीः = नृत्याङ्गनाओं को, नर्तकान् = नर्तकों को, सार्थकान् = साथ में चलने वाला, संविधाय = करके, तथा च = और, दुन्दुभीः = नगाड़ों को, अभिनादयन् = बजवाते हुये, उत्तुङ्गध्वजशोभाढ्यः = ऊँचे ध्वज की शोभा से सम्पन्न, महोत्सवसमन्वितः = महान् उत्सव से संयुक्त होता हुआ, नृपः = राजा ने, कतिपयैः = कुछ, दिनैः = दिनों से, सम्मेदयात्राम् = सम्मेदशिखर की यात्रा को, अकरोत् = कर लिया।

श्लोकार्थ - मुनिराज से सम्मेलनयात्रा का महत्त्व जानकर वह राजा घर आ गया और चतुर्विध संघ का सम्मान करता हुआ प्रसन्न मन से एक करोड़ मनुष्यों के साथ सम्मेलशिखर की यात्रा करने के लिये तत्पर हो गया।

फिर उसने गीत गाने वालों को, बाजे बजाने वालों को, नाचने वालों और नृत्य करने वालों स्त्रियों को साथ में चलने वाला करके तथा नगाड़ों को बजवाते हुये, ऊँचे ध्वज की शोभा से सम्पन्न होते हुये और महान् उत्सव मनाते हुये, कुछ ही दिनों में सम्मेलशिखर की यात्रा कर ली।

सम्प्राप्तं सर्वतः प्रेम कूटं तं मोहनाभिधम् ।

अभिवन्द्याष्टधा पूजां विस्तार्य विधिवत्तदा ॥८२॥

विरक्तो रतिषेणाय राज्यं दत्त्वा च तद्वने ।

मुनिव्रतं स जग्राह तत्रैव दृढभावभाक् ॥८३॥

चतुर्युक्ताशीतिलक्षैः मुनिभिः सह तपोबलात् ।

घातिनां घातनं कृत्वा निर्वाणमगमत्तदा ॥८४॥

अन्वयार्थ - सर्वतः = सभी तरफ से, प्रेम = आनन्द, सम्प्राप्तम् = प्राप्त किया, तदा = तब, विधिवत् = विधानानुसार, अष्टधापूजां = आठ प्रकार के द्रव्यों से युक्त पूजा को, विस्तार्य = विस्तारित करके, तं = उस, मोहनाभिधं = मोहन नामक, कूटं = कूट को, अभिवन्द्य = प्रणाम करके, च = और, विरक्तः = वैराग्य को प्राप्त हुये, सः = उस राजा ने, रतिषेणाय = रतिषेण के लिये, राज्यं = राज्य को, दत्त्वा = देकर, तद्वने = उसी वन में, मुनिव्रतं = मुनिदीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया, तत्रैव = मुनिव्रत पालन में ही, दृढभावभाक् = स्थिर भावना वाला होकर, तपोबलात् = तपश्चरण के बल से, घातिनां = घातिकर्मों का, घातनं = घात नाश करके, तदा = तभी, चतुर्युक्ताशीतिलक्षैः = चौरासी लाख, मुनिभिः = मुनिराजों के, सह = साथ, निर्वाणम् = मोक्ष, अगमत् = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ - सम्मेलशिखर की यात्रा में राजा ने सब तरफ से आनन्द प्राप्त

किया तथा विधिपूर्वक अष्ट द्रव्यों से पूजा को विस्तारित करके उसने मोहन नामक कूट को प्रणाम किया और वैराग्य को प्राप्त हो गया। विरक्त राजा ने रतिषेण को राज्य देकर उसी वन में मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली और मुनिधर्म पालन में ही दृढ़भावना वाला होकर उसने तपश्चरण के बल से घातिया कर्मों का नाश करके चौरासी लाख मुनिराजों के साथ निर्वाण प्राप्त कर लिया।

एवं प्रभावकूटोऽसौ मोहनाख्यः प्रवर्णितः ।

भव्याः प्रयत्नतो जीवा दृष्ट्वा तं प्रणमन्तु हि ॥८५॥

अन्वयार्थ — एवं = इस प्रकार, प्रभावकूटः = प्रभाव वाला कूट, असौ = यह, मोहनाख्यः = मोहन नामक, प्रवर्णितः = वर्णित किया गया है, भव्याः = भव्य, जीवाः = जीव, प्रयत्नतः = प्रयत्न से, तं = उस कूट को, दृष्ट्वा = देखकर, हि = अवश्य ही, प्रणमन्तु = प्रणाम करें।

श्लोकार्थ — इस प्रकार के प्रभाव वाला यह कूट मोहनकूट के नाम से वर्णित हुआ है। भव्य जीव प्रयत्न करके उस कूट को देखकर उसे प्रणाम करें।

यो मोहनाभिधमिदं गिरिवर्यकूटम् ।

भावात्समीक्ष्य परिपूज्य नमेच्च भक्त्या ॥

स्वस्वाभिलाषपरिलब्धिसुखान्वितोऽस्मात् ।

मुक्तो भवेत् कठिनसंसृतिपाशबन्धात् ॥८६॥

अन्वयार्थ — यः = जो, इदं = इस, मोहनाभिधं = मोहन नामक, गिरिवर्यकूटं = श्रेष्ठ पर्वत सम्मेदशिखर की कूट को, भावात् = भाव से, समीक्ष्य = देखकर, च = और, भक्त्या = भक्ति से, परिपूज्य = अच्छी तरह से पूज कर, नमेत् = नमस्कार करे, (सः = वह), अस्मात् = इस, कठिनसंसृतिपाशबन्धात् = भयंकर संसार रूप फंदे के बन्धान से, स्वस्वाभिलाषपरिलब्धिसुखान्वितः = अपनी अभिलाषा को पाले अर्थात् पूर्ण करने रूप सुख से आनन्दित होता हुआ, मुक्तः = मुक्त, भवेत् = हो जाता है।

श्लोकार्थ - जो इस मोहन नामक सम्मेदशिखर के कूट को भावों से देखकर और भक्ति से पूजा कर उसे नमस्कार करता है, वह इस कठिन भयंकर संसार रूप फंदे के बन्धन से अपनी अभिलाषा पूर्ण करने रूप सुख से आनन्दित होता हुआ मुक्त हो जाता है।

[इति दीक्षितदेवदत्तकृते सम्मेदशिखरमाहात्म्ये
मोहनकूटवर्णनं, तीर्थङ्कर पद्मप्रभवृत्तान्त समन्वितं नाम
षष्ठोऽध्यायः समाप्तः।]

{इस प्रकार दीक्षित देवदत्त द्वारा रचित सम्मेदशिखरमाहात्म्य में मोहनकूट का वर्णन करने वाला और तीर्थङ्कर पद्मप्रभ के वृत्त को बताने वाला छठवां अध्याय समाप्त हुआ।}

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीमत्प्रभासकूटे यो निःश्रेयसपदं गतः ।

तस्मै सुपार्श्वनाथाय देवदत्तनमस्कृतिः ॥१॥

अन्वयार्थ — यः = जिन्होंने, श्रीमत्प्रभासकूटे = शोभा सम्पन्न प्रभासकूट पर, निःश्रेयसपदं = मोक्षपद को, गतः = प्राप्त किया, तस्मै = उन, सुपार्श्वनाथाय = सुपार्श्वनाथ भगवान् के लिये, देवदत्तनमस्कृतिः = देवदत्त का नमस्कार, (अस्ति = है) ।

श्लोकार्थ — जिन्होंने श्री शोभा से सम्पन्न प्रभासकूट पर मोक्षपद पाया उन सुपार्श्वनाथ के लिये मुझ देवदत्त कवि का नमस्कार है ।

तत्प्रसादात्कथां तस्य चतुर्वर्गफलप्रदाम् ।

सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्येहं भव्याः शृणुत सादरम् ॥२॥

अन्वयार्थ — तत्प्रसादात् = तीर्थङ्कर सुपार्श्वनाथ के प्रसाद से, अहं = मैं, सङ्ग्रहेण = संग्रह की अपेक्षा से, तस्य = उन सुपार्श्वनाथ की, चतुर्वर्गफलप्रदां = धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष रूप फल को देने वाली, कथां = कथा को, प्रवक्ष्ये = कहूंगा, भव्याः = हे भव्य जीवो!, सादरं = आदर सहित तां = उसको), शृणुत = सुनो ।

श्लोकार्थ — तीर्थङ्कर सुपार्श्वनाथ के प्रसाद से मैं संग्रह की अपेक्षा उन तीर्थङ्कर सुपार्श्वनाथ की धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष स्वरूप फल को देने वाली कथा को कहूंगा । उस कथा को हे भव्य जीवो! तुम सब आदर सहित सुनो ।

प्रसिद्धे धातकीखण्डे पूर्वस्मिन् हलादिनी शुभा ।

सीता तदुत्तरे • भागे कच्छदेशश्च धार्मिकः ॥३॥

अन्वयार्थ — प्रसिद्धे = सुप्रसिद्ध, पूर्वस्मिन् = पूर्व, धातकीखण्डे = धातकी-खण्ड में, शुभा = शुभंकर, हलादिनी = आनंददायिनी, सीता = सीता नदी, (अस्ति = है), च = और, तदुत्तरे = उस नदी

के उत्तर भाग = भाग में, धार्मिकः = धर्मात्माओं से युक्त,
कच्छदेशः = कच्छदेश, (अस्ति = है)।

श्लोकार्थ — सुप्रसिद्ध पूर्व धातकी खण्ड नामक द्वीप में शुभकारिणी और आनन्ददायिनी सीता नदी है। उस नदी के उत्तर भाग में धर्मात्माओं से पूर्ण कच्छदेश है।

तत्रा क्षेमपुरं भास्वत्तस्य राजा सुपुण्यकृत् ।

नन्दिषेणोऽभवद् भूप-शीर्षार्चितपदद्वयः ॥४॥

अन्वयार्थ — तत्र = उस कच्छ देश में, भास्वत् = चमक-दमक से पूर्ण, क्षेमपुरं = क्षेमपुर नामक नगर (आसीत् = था) तस्य = उस नगर का, राजा = राजा, सुपुण्यकृत् = उत्तम पुण्य कार्यो को करने वाला, भूपशीर्षार्चितपदद्वयः = जिसके दोनों पैर राजाओं के सिरों से पूजित थे ऐसा नृपतिवन्दितचरण, नन्दिषेणः = नन्दिषेण, अभवत् = था।

श्लोकार्थ — उस कच्छ देश में चमक-दमक युक्त क्षेमपुर नामक नगर था जिसका राजा नन्दिषेण था वह उत्तम पुण्य कार्यो को करने वाला और राजाओं के मस्तकों से पूजित है दोनों चरण जिसके, ऐसा पूजनीय था।

नन्दिषेणा तस्य राज्ञी तया सह मुमोद सः ।

महाप्रतापदहनज्वालादग्धारिभूरुहः ॥५॥

अन्वयार्थ — तस्य = उस राजा की, राज्ञी = रानी, नन्दिषेणा = नन्दिषेणा (आसीत् = थी), सः = वह, महाप्रतापदहनज्वालादग्धारिभूरुहः = महान् प्रताप रूप अग्नि की ज्वालाओं से दग्ध कर दिये हैं शत्रु रूपी वृक्ष जिसने ऐसा राजा, तया = रानी के, सह = साथ, मुमोद = प्रसन्न हुआ।

श्लोकार्थ — उस राजा की रानी नन्दिषेणा थी। जिसके साथ वह शत्रु रूपी वृक्षों को अपनी प्रतापवह्नि से दग्ध करने वाला राजा प्रसन्नता पूर्वक रहता था।

पुत्रानिय प्रजाः स्वीया ररक्ष सततं नृपः ।

परोपकारी सम्यक्त्वसंयुतः परमोदयः ॥६॥

भक्तः श्रीवीतरागस्य गुणविक्रमसागरः ।

बुद्धिमान् साहसी वीरः सहितो बन्धुभिः स्वकैः ॥७॥

राज्यं बुभोज धर्मेण धर्मतः पालयन्महीम् ।

पोषयन्नर्थिकेदारानखण्डैर्दानवारिभिः ॥८॥

अन्वयार्थ — परोपकारी = परोपकार करने वाला, परमोदयः = पुण्य के उदय से युक्त, सम्यक्त्वसंयुतः = सम्यक्त्व से संयुक्त, नृपः = राजा ने, सततं = निरन्तर, स्वीयाः = अपनी, प्रजाः = प्रजा की, पुत्रानिव = पुत्रों के समान, ररक्ष = रक्षा की। धर्मतः = धर्म से, महीम् = पृथ्वी को, पालयन् = पालता हुआ, अखण्डैः = खण्ड रहित सतत, दानवारिभिः = दान रूपी जल से, अर्थिकेदारान् = प्रार्थी जनों के खेतों को पोषते हुये, गुणविक्रमसागरः = गुणों और पराक्रम का स्वामी, श्रीवीतरागस्य = वीतराग भगवान् जिनेन्द्र का, भक्तः = भक्त, बुद्धिमान् = विवेकी ज्ञानवान्, साहसी = साहस के कार्य करने वाला, वीरः = वीर, स्वकैः = अपने, बन्धुभिः = भाई आदि परिवार जनों से, सहितः = सहित, (असौ = उस राजा ने), धर्मेण = धर्ममार्ग से, राज्यं = राज्य का, बुभोज = पालन किया।

श्लोकार्थ — परोपकारी, पुण्यशाली और सम्यग्दृष्टि राजा ने हमेशा ही अपनी प्रजा की रक्षा पुत्रों के समान की। धर्म से पृथ्वी का पालन करते हुये, निरन्तर अखण्डपने दान रूप वारि द्वारा प्रार्थियों के खेतों को पोषित करते हुये गुणों और पराक्रम के स्वामी, वीतराग जिनेन्द्र के भक्त, बुद्धिमान्, साहसी, वीर और अपने बन्धुजनों से सहित उस राजा ने धर्ममार्ग से राज्य का पालन किया।

एकदा सौधगो भूपः सुखासीनो वियत्पथे ।

विचित्ररङ्गजीभूतान् दृष्ट्वा मोदमवाप सः ॥९॥

अन्वयार्थ — एकदा = एक बार, सौधगः = महल में स्थित, सुखासीनः = सुख से बैठे हुये, सः = उस, भूपः = राजा ने, वियत्पथे = आकाशमार्ग में, विचित्ररङ्गजीभूतान् = विचित्र रंगों वाले मेघों को, दृष्ट्वा = देखकर, मोदम् = हर्ष या प्रसन्नता को, अवाप = प्राप्त किया।

श्लोकार्थ — एक बार महल में सुख से बैठे हुये उस राजा ने आकाशमार्ग में विचित्र रंगों के बादलों को देखकर आनन्द प्राप्त किया।

दृष्टा एव विनष्टास्त एतदद्भुतमवेक्ष्य सः ।

बुद्ध्या सारं हि संसारं विरक्तोऽभून्महीपतिः ॥१०॥

अन्वयार्थ — ते = वे मेघ, दृष्टा एव = देखे जाते हुये ही, विनष्टाः = विनाश को प्राप्त हो गये, एतत् = इस, अद्भुतं = आश्चर्य को, अवेक्ष्य = देखकर, सः = वह, महीपतिः = राजा, संसारं = संसार को, असारं = सारहीन, हि = ही, बुद्ध्या = जानकर, विरक्तः = विरक्त, अभूत् = हो गया।

श्लोकार्थ — वे मेघ देखे जाते हुये ही विनष्ट हो गये इस आश्चर्य को देखकर तथा संसार को असारमूत ही जानकर वह राजा वैराग्य को प्राप्त हो गया।

सुखेनात्मसुतायाथ राज्यं दत्त्वा तदैव हि ।

निर्वाणोद्यमसंयुक्तः तत्क्षणं स वनं ययौ ॥११॥

अन्वयार्थ — अथ = इसके बाद, तदैव = उसी समय, सः = वह राजा, सुखेन = सुखपूर्वक, आत्मसुताय = अपने पुत्र के लिये, राज्यं = राज्य, दत्त्वा = देकर, निर्वाणोद्यमसंयुक्तः = मोक्ष के पुरुषार्थ से जुड़कर, तत्क्षणं = जल्दी, हि = ही, वनं = वन को, ययौ = चला गया।

श्लोकार्थ — विरक्त होने के बाद वह राजा उसी समय सुखपूर्वक अपने बेटे को राज्य देकर तथा मोक्ष पाने के उद्यम से संयुक्त होता हुआ शीघ्र ही वन में चला गया।

तत्रार्हन्नन्दनमुनिं नत्वा तन्निकटादसौ ।

दीक्षां जग्माह जैनेश्वरीं दशैकाङ्गधरो मुनिः ॥१२॥

सम्भाव्य कारणान्युच्चैः, षोडशोक्तानि धैर्यतः ।

तीर्थङ्करो बभूवायं परमं तप आचरन् ॥१३॥

अन्वयार्थ — तत्र = वन में, अर्हन्नन्दनमुनिं = अर्हन्नन्दन मुनि को, नत्वा = नमस्कार करके, तन्निकटात् = उनके पास से, असौ = उस राजा ने, जैनेश्वरीं = जितेन्द्रिय ऐश्वर्य से सम्पन्न, दीक्षां

= मुनिदीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया, दशैकाङ्गधरः = ग्यारह अङ्गों का ज्ञाता, अयं = यह, मुनिः = मुनिराज, धैर्यतः = धैर्य से, परमं = उत्कृष्ट, तपः = तपश्चरण, आचरन् = पालते हुये, उक्तानि = कहे गये, षोडश = सोलह, कारणानि = कारणों को, सम्भाव्य = अच्छी तरह भाकर, उच्चैः = उच्चतम, तीर्थङ्करः = तीर्थङ्कर पुण्य वाला, बभूव = हुआ।

श्लोकार्थ — वन में अर्हन्नन्दन मुनिराज को नमन करके उस राजा ने उनके ही पास से जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली तथा ग्यारह अङ्गों का ज्ञाता होकर यह मुनिराज परम तप का धैर्य पूर्वक पालन करते हुये सोलह कारण भावनायें भाकर उच्चतम तीर्थङ्कर पुण्य वाले हो गये।

अन्ते सन्यासरीत्या च प्राणान् त्यक्त्वा सुखेन हि ।

ग्रैवेयके सुभद्राख्ये विमाने चाहमिन्द्रताम् ॥१४॥

सम्प्राप्य सप्तविंशत्या सागरस्यायुषा युतः ।

सार्धद्विहस्तकायोऽसौ बभूव तपसोज्ज्वलः ॥१५॥

अन्वयार्थ — अन्ते = अन्त समय में, सुखेन = सुख से, हि = ही, असौ = उन मुनिराज ने, सन्यासरीत्या = सन्यासमरण द्वारा, प्राणान् = प्राणों को, त्यक्त्वा = छोड़कर, च = और, ग्रैवेयके = ग्रैवेयक में, सुभद्राख्ये = सुभद्र नामक, विमाने = विमान में, अहमिन्द्रताम् = अहमिन्द्रत्व को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, सागरस्य = सागर की, सप्तविंशत्या = सत्ताइस, आयुषा = आयु से, युतः = युक्त, सार्धद्विहस्तकायः = ढाई हाथ ऊँचे शरीर वाला, तपसोज्ज्वलः = तपसोज्ज्वल नामक अहमिन्द्र देव, बभूव = हुआ।

श्लोकार्थ — अन्त समय में उन मुनिराज ने सन्यास मरण लेकर सुखपूर्वक प्राणों को छोड़ दिया और ग्रैवेयक के सुभद्र विमान में अहमिन्द्र पद प्राप्त कर तपसोज्ज्वल नामक देव हो गये। वहाँ उनकी आयु सत्ताइस सागर और शरीर ढाई हाथ ऊँचा था।

सप्तविंशतिसहस्रवर्षोपरि स मानसम् ।
 आहारमग्रहीतद्वत् सप्तविंशतिपक्षकैः ॥१६॥
 गतैर्निश्वासिकोच्छ्वासः तस्माच्च नरकावधिः ।
 स्वेच्छाप्रमाणक्रोधादि किञ्चित् कुरुते सः ॥१७॥

अन्वयार्थ - सः = वह देव, सप्तविंशतिसहस्रवर्षोपरि = सत्ताइस हजार वर्ष बीतने पर, मानसं = मानस, आहारं = आहार को, अग्रहीत् = ग्रहण करता था, तद्वत् = वैसे ही, सप्तविंशतिपक्षकैः गतैः = सत्ताइस पक्षों के चले जाने से, निश्वासिकोच्छ्वासः = श्वासोच्छ्वास लेने वाला, च = और, तस्मात् = वहाँ से अर्थात् सुभद्र विमान से, नरकावधि = नरक पर्यन्त अवधिज्ञान वाला, (अमृत = हुआ), सः = वह, स्वेच्छाप्रमाणक्रोधादि = स्वयं की इच्छा रूप प्रमाण से, क्रोधादि को, किञ्चित् = कुछ भी, न = नहीं, कुरुते स्म = करता था ।

श्लोकार्थ - वह देव सत्ताइस हजार वर्ष बीत जाने पर एक बार कण्ठ निसृत मानसाहार स्वरूप अमृत को ग्रहण करता था तथा सत्ताइस पक्ष बीत जाने पर एक बार श्वासोच्छ्वास लेता था । नरक पर्यन्त अवधिज्ञान वाला हुआ । अपनी इच्छा के प्रमाण से ही वह क्रोधादि कषायें कुछ भी नहीं करता था ।

ध्यायन् सिद्धान् सदा सिद्धबिम्बान् संपूजयन्नमन् ।
 षण्मासकावशिष्टायुर्महासुखभुगप्यभूत् ॥१८॥

अन्वयार्थ - सदा = हमेशा, सिद्धान् = सिद्ध भगवन्तों का, ध्यायन् = ध्यान करता हुआ, सिद्धबिम्बान् = सिद्धबिम्बों को, संपूजयन् = पूजा करता हुआ, च = और, नमन् = नमस्कार करता हुआ, षण्मासकावशिष्टायुः = छह माह की शेष आयु वाला, (सः = वह देव), अपि = भी, महासुखभुक् = महान् सुख का अनुभव करने वाला, अभूत् = हो गया ।

श्लोकार्थ - सदा ही सिद्धभगवन्तों का ध्यान करता हुआ, सिद्ध बिम्बों की पूजा करता हुआ उन्हें प्रणाम करता हुआ मात्र छह माह की शेष आयु वाला होकर भी वह देव महा सुख को भोगने वाला हुआ ।

जम्बूनाम्नि तदा द्वीपे भरते आर्यखण्डके ।

काशीदेशे सुनगरी वाराणस्याभिधा स्मृता ॥१९॥

अन्वयार्थ — तदा = तब, उस समय, जम्बूनाम्नि = जम्बूनामक, द्वीपे = द्वीप में, भरते = भरतक्षेत्र में, आर्यखण्डके = आर्यखण्ड में, च = और, काशीदेशे = काशी देश में, वाराणसी = बनारस, आभिधा = नाम की, सुनगरी = सुन्दर नगरी, स्मृता = बुधजनों द्वारा याद की गयी थी ।

श्लोकार्थ — उस समय जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में स्थित आर्यखण्ड के काशी देश में वाराणसी नाम की एक सुन्दर नगरी बुधजनों द्वारा याद की जाती थी ।

स्वविभूत्या हसन्तीव भूमिगापि सुरालयम् ।

तस्याभिष्ठात्कुवंशे च गोत्रकाश्यप उत्तमे ॥२०॥

सुप्रतिष्ठोऽभवद्राजा तेजस्वी भव्यसागरः ।

तद्राज्ञी पृथिवीषेणा सती सा धर्मशालिनी ॥२१॥

अन्वयार्थ — (सा = वह नगरी), भूमिगापि = भूमि पर स्थित होकर भी, स्वविभूत्या = अपनी विभूति से, हसन्ती = हँसती हुई, इव = मानो, सुरालयं = स्वर्ग, (स्यात् = हो), तस्यां = उस नगरी में, इक्ष्वाकुवंशे = इक्ष्वाकु वंश में, च = और, उत्तमे = 'गोत्रकाश्यपे' = काश्यपगोत्र में, तेजस्वी = पराक्रमी, भव्यसागरः = भव्यसागर, सुप्रतिष्ठः = सुप्रतिष्ठ नामक, राजा = एक राजा, अभवत् = हुआ था, तद्राज्ञी = उसकी रानी, पृथिवीषेणा = पृथिवीषेणा (आसीत् = थी), सा = वह, सती = पतिव्रता, धर्मशालिनी = धर्म पालन में चतुर अर्थ धर्मवृत्ति परायणा, (आसीत् = थी) ।

श्लोकार्थ — वह वाराणसी नामक नगरी भूमि पर स्थित हुई भी अपने वैभव के कारण हँसती हुई मानों स्वर्ग ही थी । उसमें इक्ष्वाकुवंश में और काश्यपगोत्र में, एक भव्य व पराक्रमी राजा सुप्रतिष्ठ हुआ था । उसकी एक धर्मपरायणा एवं पतिव्रता रानी पृथिवीषेणा थी ।

तस्याश्शुभाङ्गणे श्रीमद्देवागमबुधेन हि ।
 आज्ञप्तो देवराजेन धनेशोऽम्बरमध्यगः ॥२२॥
 मेघवद् बहुधा रत्नवृष्टिं षाण्मासिकीं तदा ।
 प्रसन्नमनसा चक्रे यक्षवृन्दसमन्वितः ॥२३॥

अन्वयार्थ — तदा = तभी, तस्याः = उस रानी के, शुभाङ्गणे = सुन्दर आङ्गन में, हि = ही, श्रीमद्देवागमबुधेन = श्री सम्पन्न देव का आगमन होगा यह जानने वाले, देवराजेन = इन्द्र से, आज्ञप्तः = आज्ञा प्राप्त किये हुये, अम्बरमध्यगः = आकाश में गमन करते हुये, यक्षवृन्दसमन्वितः = यक्षों के समूह से संयुक्त, धनेशः = धनेश-कुबेर ने, प्रसन्नमनसा = प्रसन्न मन से, मेघवद् = मेघों द्वारा हुई वर्षा के समान, बहुधा = अनेक प्रकार से, षाण्मासिकीं = छह माह तक, रत्नवृष्टिं = रत्नों की वर्षा, चक्रे = की।

श्लोकार्थ — तभी, उस पृथिवीषेणा रानी के शुभ-सुन्दर आङ्गन में ही कान्तिमान् श्री-सम्पन्न देव का जन्म होगा यह जानने वाले इन्द्र से आज्ञा प्राप्त किये हुये कुबेर ने आकाश में गमन करते हुये यक्षवृन्दों से युक्त होकर छह माह तक वैसे ही रत्नों की वर्षा की जैसे मेघ जल बरसाते हैं।

वैशाखशुक्लषष्ण्यां सा विशाखायां सुवेश्मनि ।

रात्रौ सुप्ता प्रभाते तान् स्वप्नान् षोडशैश्क्षत ॥२४॥

अन्वयार्थ — वैशाखशुक्लषष्ण्यां = वैशाख शुक्ल षष्ठी के दिन, विशाखायां = विशाखा नक्षत्र में, सा = उस रानी ने, सुवेश्मनि = सुन्दर भवन में, सुप्ता = सोती हुई, रात्रौ = रात्रि में, प्रभाते = प्रभातबेला में, तान् = उन, षोडश = सोलह, स्वप्नान् = स्वप्नों को, ऐक्षत = देखा।

श्लोकार्थ — वैशाख सुदी षष्ठी के दिन विशाखा नक्षत्र में उस रानी ने रात्रि को अपने महल में सोते हुये प्रभात बेला में सोलह स्वप्नों को देखा।

स्वप्नान्ते स्वमुखाम्भोजे प्रविष्टं मत्तवारणम् ।

हृष्टा देवी प्रबुद्धेयं महाविस्मयमाययौ ॥२५॥

अन्वयार्थ — च = और, स्वप्नान्ते = स्वप्न देखने के अन्तिम समय में, स्वमुखाम्भोजे = अपने मुखरूप कमल में, प्रविष्टं = प्रवेश करते हुये, मत्तवारणं = एक मदोन्मत्त हाथी को, (ऐक्षत = देखा), प्रबुद्धा = जागी हुई, (च = और), हृष्टा = हर्षित होती हुई, इयं = यह, देवी = रानी, महाविस्मयं = महान् आश्चर्य को, आययौ = प्राप्त हो गयी।

श्लोकार्थ — तथा स्वप्न देखने के अन्तिम समय में उस रानी ने अपने मुख रूपी कमल में एक मदोन्मत्त हाथी को प्रविष्ट होते हुये देखा। जागने के बाद हर्षित हुई यह रानी महान् आश्चर्य को प्राप्त हुई।

तदैव सान्तिकं भर्तुः गता भर्त्रानुमोदिता ।

तस्मै ज्ञानादितः स्वप्नान् श्रावयामास हर्षिता ॥२६॥

अन्वयार्थ — तदैव = तब ही, भर्तुः = स्वामी के सान्तिकं = निकट, गता = गयी, (च = और), भर्त्रा = स्वामी द्वारा, अनुमोदिता = अनुमोदित की गयी, सा = उस रानी ने, हर्षिता = हर्ष सहित, तस्मै = राजा के लिये, आदितः = शुरु से, तान् = उन, स्वप्नान् = स्वप्नों को, श्रावयामास = सुना दिया।

श्लोकार्थ — तब ही वह रानी पति के पास गई और पति द्वारा आने की अनुमोदना की जाती हुई उसने हर्षित होकर शुरु से उन स्वप्नों को राजा को सुना दिया।

तत्फलं श्रोतुकामां तांभुवाच धरणीपतिः ।

देवि त्वद्गर्भगो देवो देवेन्दैरपि वन्दितः ॥२७॥

ते शुभावसरे साक्षात् रक्षन्ति श्रीनिकेतनम् ।

इति श्रुत्या तदा राज्ञी परमानन्दमाप सा ॥२८॥

अन्वयार्थ — धरणीपतिः = राजा, तत्फलं = स्वप्नों के फल को, श्रोतुकामां = सुनने की कामना वाली, तां = उस रानी को, उवाच = बोला, देवि = हे रानी!, त्वद्गर्भगः = तुम्हारे गर्भ में आया

हुआ, देवः = देव, देवेन्द्रैः = देवेन्द्रों द्वारा भी, वन्दितः = वन्दनीय, (अस्ति = है), शुभावसरे = इस शुभ अवसर पर, ते = वे देव, श्रीनिकेतनं = लक्ष्मी के धाम प्रभु की, साक्षात् = प्रत्यक्ष रूप से, रक्षन्ति = रक्षा करते हैं, तदा = तब, इति = ऐसा, श्रुत्वा = सुनकर, सा = उस, राज्ञी = रानी ने, परमानन्दम् = परम आनन्द को, आप = प्राप्त किया।

श्लोकार्थ — स्वप्नों के फल जानने को उत्सुक रानी को राजा ने कहा— हे रानी! तुम्हारे गर्भ में आया हुआ देव इन्द्रों द्वारा भी वंदनीय है। इस समय उसकी रक्षा वे देवगण कर रहे हैं। तब यह सब सुनकर रानी परम आनन्द को प्राप्त हुई।

अदादानानि विप्रेभ्यो वचसा प्रार्थितानि वै ।

षट्पञ्चाशत्स्थिता देवकुमार्यो गर्भशोधिकाः ॥२९॥

तद्बोधिकास्तदा तत्र बभूवुर्वावासवाज्ञया ।

सेवां तस्याः प्रतिदिनं चक्रुस्तच्चित्तमोदिनीम् ॥३०॥

अन्वयार्थ — (सा = उसने), वै = निश्चित ही, वचसा = वचन से, प्रार्थितानि = माँगे गये, दानानि = दान योग्य वस्तुयें, विप्रेभ्यः = ब्राह्मणों के लिये, अदात् = दी, तदा = तब, तद्बोधिकाः = रानी को जगाने वाली, गर्भशोधिकाः = गर्भ का शोधन करने वाली, षट्पञ्चाशत् = छप्पन, मिता = मितभाषिणी, देवकुमार्यः = देवकुमारियों, तत्र = वहाँ, बभूवुः = उपस्थित हुई, वासवाज्ञया = इन्द्र की आज्ञा से, (ताः = उन्होंने), तस्याः = रानी की, तच्चित्तमोदिनीं = उसके मन को बहलाने वाली, सेवां = सेवा को, प्रतिदिनं = प्रत्येक दिन, चक्रुः = किया।

श्लोकार्थ — उस रानी ने निश्चित ही ब्राह्मणों के लिये उनके द्वारा वचनों से मांगी गयीं वस्तुयें दान में दीं। तभी गर्भशोधन करने वाली और रानी को जगाने आदि के लिये छप्पन देवकुमारियाँ वहाँ उपस्थित हुईं। इन्द्र की आज्ञा से उन्होंने प्रतिदिन रानी के मन को प्रसन्न रखने वाली सेवा की।

ज्येष्ठेऽथ शुक्लद्वादश्यां सा देवी पुण्यसंघयात् ।

असूत् परमेशानं पुत्रं त्रैभुवनप्रियम् ॥३१॥

अन्वयार्थ — अथ = अनन्तर, ज्येष्ठे = जेठ महिने में, शुक्लद्वादश्यां = शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन, पुण्यसंचयात् = संचित पुण्योदय से, सा = उस, देवी = रानी ने, परमेशानं = परम ईश अर्थात् तीर्थङ्कर, त्रैभुवनप्रियम् = तीनों लोकों में सबको प्रिय, पुत्रं = पुत्र को, असूत् = उत्पन्न किया।

श्लोकार्थ — इसके बाद ज्येष्ठ शुक्ला बारहवीं के दिन संचित पुण्य के कारण उस रानी ने तीन लोक में सभी को प्रिय परम ईश अर्थात् तीर्थङ्कर पुत्र को पैदा किया।

स्वावधेर्वासवो ज्ञात्वा भगवज्जन्म तत्क्षणम् ।

तत्रागतस्सुरैस्सार्धं जयनिर्घोषनिर्भरैः ॥३२॥

स मायाबलतस्तस्मात् प्रसूतिभवनात्प्रभुम् ।

बालाकृतिमुपादायाथ स्वर्णशैलं तथागमत् ॥३३॥

पूर्णैः क्षीरोदसलिलैः स्वर्णकुम्भैस्सुविस्तृतैः ।

अष्टोत्तरसहस्रैश्च स चक्रेऽभिषवं प्रभोः ॥३४॥

अन्वयार्थ — स्वावधेः = अपने अवधिज्ञान से, भगवज्जन्म = भगवान् का जन्म, तत्क्षणं = उसी क्षण, ज्ञात्वा = जानकर, वासवः = इन्द्र, जयनिर्घोषनिर्भरैः = जय-जयकार की घोषणा से युक्त, सुरैः = देवों के, सार्धं = साथ, तत्रा = वहाँ, आगतः = आ गया, सः = वह इन्द्र, मायाबलतः = माया के बल से, तस्मात् = उस, प्रसूतिभवनात् = प्रसूतिगृह से, बालाकृतिम् = शिशु स्वरूप, प्रभुं = प्रभु को, उपादाय = लेकर, अथ = अनन्तर, स्वर्णशैलं = स्वर्ण खचित मेरु पर्वत को, अगमत् = चला गया, तथा च = और, स = उसने, सुविस्तृतैः = विशाल, क्षीरोदसलिलैः = क्षीरसागर के जल से, पूर्णैः = भरे हुये, अष्टोत्तरसहस्रैः = एक हजार आठ, स्वर्णकुम्भैः = सोने के कलशों से, प्रभोः = भगवान् का, अभिषवं = अभिषेक, चक्रे = किया।

श्लोकार्थ — भगवान् का जन्म हो गया है यह समाचार अपने अवधिज्ञान से तत्क्षण जानकर इन्द्र जय जयकार की उद्घोषणा करते

देवों के साथ वहाँ पहुँच गया। माया के प्रभाव से प्रसूतिगृह से बालक प्रभु को लेकर इन्द्र सुमेरू पर्वत पर चला गया, वहाँ उसने क्षीरसागर के जल से भरे विशाल एक सौ आठ सोने के घड़ों से प्रभु का अभिषेक किया।

पुनरागत्य हर्षेण वाराणसीपुरमुत्तमम् ।

वासवो देवतैस्सार्धं तत्राप्युत्सवमाकरोत् ॥३५॥

अन्वयार्थ - वासवः = इन्द्र, हर्षेण = हर्ष के साथ, पुनः = फिर से, उत्तमं = श्रेष्ठ, वाराणसीपुरं = वाराणसी नगर को, आगत्य = आकर, तत्र = वहाँ, अपि = भी, दैवतैः = देवताओं के, सार्धं = साथ, उत्सवम् = उत्सव, आकरोत् = किया।

श्लोकार्थ - इन्द्र हर्ष के साथ फिर से उत्तम नगर बनारस में आया और उसने वहाँ भी देवताओं के साथ हर दृष्टि से महान् उत्सव किया।

सुपार्श्वनाम्ना चोक्तं तं मातुरङ्के निधाय च ।

जयेत्युक्त्वा नमस्कृत्य स देवोऽगात्सुरालयम् ॥३६॥

अन्वयार्थ - च = और, सुपार्श्वनाम्ना = सुपार्श्वनाम से, उक्तं = कहे गये, तं = उन प्रभु को, मातुः = माता की, अङ्के = गोद में, निधाय = रखकर, जयेति = जय हो इस प्रकार, उक्त्वा = कहकर, च = और, नमस्कृत्य = नमस्कार करके, सः = वह, देवः = इन्द्र देवता, सुरालयं = स्वर्ग को, अगात् = चला गया।

श्लोकार्थ - बालक का नाम सुपार्श्व रखकर, सुपार्श्व नाम से कहे गये प्रभु को माता की गोद में रखकर, तथा 'जय हो' ऐसा कहकर और उन्हें नमस्कार करके वह इन्द्र देवता स्वर्ग में चला गया।

नवसहस्रकोट्युक्तसागरेषु गतेषु सः ।

पद्मप्रभातदन्तर्वर्त्यायुस्सम्भवत्प्रभुः ॥३७॥

अन्वयार्थ - पद्मप्रभात् = तीर्थङ्कर पद्मप्रभ से, नवसहस्रकोट्युक्तसागरेषु = नौ हजार करोड़ सागर, गतेषु = बीत जाने पर, तदन्तर्वर्त्यायुः = उनके मध्य की आयु वाले, सः = वह, प्रभुः = तीर्थङ्कर सुपार्श्व, समभवत् = उत्पन्न हुये।

श्लोकार्थ — तीर्थङ्कर पद्मप्रभ से नौ हजार करोड़ सागर बीत जाने पर, उनके मध्य की आयु वाले ही सुपार्श्व प्रभु उत्पन्न हुये।

लक्षविंशतिपूर्वोक्तजीवनोयं सतां पतिः ।

शतद्वयधनुष्कायो बभूव जगदीश्वरः ।।३५।।

अन्वयार्थ - सतां = सज्जनों के, पतिः = स्वामी, अयं = यह, जगदीश्वरः = तीर्थङ्कर सुपार्श्वनाथ, लक्षविंशतिपूर्वोक्तजीवनः = बीस लाख पूर्व जीवन वाले, (च = और), शतद्वयधनुष्कायः = दो सौ धनुष प्रमाण शरीर वाले, बभूव = हुये।

श्लोकार्थ — सज्जनों के स्वामी, तीर्थङ्कर सुपार्श्वनाथ की आयु बीस लाख पूर्व थी तथा शरीर दो सौ धनुष प्रमाण ऊँचा था।

पञ्चलक्षोक्तपूर्वाश्च बालकेलिविधौगताः ।

गते कुमारकाले च सञ्जाते यौवनागमे ।।३६।।

लब्ध्वा स पैतृकं राज्यं ररक्षाखिलमेदिनीम् ।

जितेन्द्रियो जितारातिर्निर्विकारो गुणाम्बुधिः ।।४०।।

अन्वयार्थ - च = और, बालकेलिविधौ = बाल क्रीडाओं के करने में, पञ्चलक्षोक्तपूर्वाः = पाँच लाख पूर्व, गताः = व्यतीत हुये, च = और, कुमारकाले = कुमारकाल, गते = समाप्त होने पर, यौवनागमे = युवावस्था में, सञ्जाते = प्रवेश होने पर, पैतृकं = पिता द्वारा प्राप्त, राज्यं = राज्य को, लब्ध्वा = प्राप्त करके, सः = उन, गुणाम्बुधिः = गुणों के सागर, जितारातिः = शत्रुओं को जीतने वाले, निर्विकारः = विकार रहित, जितेन्द्रियः = इन्द्रिय विजेता प्रभु सुपार्श्व ने, अखिलमेदिनीं = सारी पृथिवी का, ररक्ष = पालन किया उसकी रक्षा की।

श्लोकार्थ — बाल्यावस्था की क्रीडाओं में प्रभु की पाँच लाख पूर्व आयु बीत गयी थी। तदनन्तर कुमार काल के बीत जाने पर और यौवनावस्था के आने और उसमें प्रविष्ट हो जाने पर पैतृक राज्य पाकर गुणों के सागर, शत्रुओं को जीतने वाले, विकार

विहीन, जितेन्द्रिय प्रभु सुपाश्व ने सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन किया, उसकी रक्षा की।

कोटिसूर्येन्दुसङ्काशः विश्वनेत्रानुमोदकः ।
 अशेषतापसंहर्ताऽवर्णनीयः प्रभुरयम् ॥४१॥
 सप्ताङ्गराज्यसौख्यं च चिरं भुक्त्वा प्रतापवान् ।
 केनापि हेतुना नूनं विवेक्तुं समुपागतः ॥४२॥

अन्वयार्थ — कोटिसूर्येन्दुसङ्काशः = करोड़ों सूर्य और चन्द्रमा के समान प्रकाशमान, केवलज्ञान रूप विश्वनेत्र के समर्थक, सम्पूर्ण तापों को दूर करने वाले, अवर्णनीयः = वर्णनातीत, प्रतापवान् = पराक्रमी, अयं = इन, प्रभुः = राजा सुपाश्व ने, सप्ताङ्गराज्यसौख्यं = सप्त अङ्गों वाले राज्य सुख को, चिरं = बहुत समय तक, भुक्त्वा, केनापि = किसी भी, हेतुना = बाह्य कारण से, नूनं = निश्चित ही, विवेक्तुं = विरक्ति भाव के लिये, समुपागतः = प्राप्त हो गये।

श्लोकार्थ — करोड़ों सूर्य चन्द्रमाओं के समान प्रकाशमान केवलज्ञान स्वरूप विश्वनेत्र अर्थात् सर्वज्ञत्व के समर्थक, सम्पूर्ण तापों को मिटाने वाले, अवर्णनीय और पराक्रमी यह राजा सुपाश्व बहुत समय तक सप्ताङ्ग सुसज्जित राज्य को भोगकर किसी कारण से निःसन्देह वैराग्यभाव को प्राप्त हो गये।

शरीरादि चाखिलं वस्तु ह्यनित्येन व्यचारयत् ।
 पूर्वं स्यभुक्तभोगान् सः संस्मार्य विषयोचितान् ॥४३॥
 वृथा कालात्ययं मत्वा सुनिर्विण्णेन चेतसा ।
 धिङ् मामिति प्रोक्त्वा महावैराग्यमापवान् ॥४४॥

अन्वयार्थ — सः = उस सुपाश्व राजा ने, पूर्वं = पहिले, विषयोचितान् = इन्द्रियों से भोगे गये भोगों को, संस्मार्य याद करके, अखिलं = सर्व, हि = ही, शरीरादि = शरीर आदि, वस्तु = वस्तुओं को, अनित्येन = क्षणिक रूप से, व्यचारयत् = विचारा, च = और, सुनिर्विण्णेन = विरक्त, चेतसा = मन से, वृथा = व्यर्थ, कालात्ययं = समय की बरबादी, मत्वा = मानकर, माम

= मुझको, धिक् = धिक्कार है, इति = ऐसा, प्रोक्त्वा = कहकर, महावैराग्यं = अत्यधिक दृढ़ वैराग्य को, आपवान् = प्राप्त हो गया।

श्लोकार्थ — उस राजा ने अपने द्वारा पूर्व में भोगे गये इन्द्रिय के विषय पोषण योग्य भोगों को याद करके शरीरादि समस्त वस्तुओं को अनित्यपने से सोचा और वह विरक्त मन से इसमें व्यर्थ ही समय की बरबादी है — ऐसा मानकर तथा मुझको धिक्कार है — यह कहकर अत्यधिक सुदृढ़ वैराग्य को प्राप्त हो गये।

तदा सारस्वतास्तत्रा प्राप्तास्ते देवमुत्तमम् ।

प्रशंशंसुः प्रियवाक्यैः देवर्षिगणहर्षिताः ॥४५॥

अन्वयार्थ — तदा = तभी अर्थात् राजा को वैराग्य होने पर उसी समय, तत्रा = वहाँ, सारस्वताः = सारस्वत जाति के लौकान्तिक देव, प्राप्ताः = प्राप्त हुये अर्थात् आये, देवर्षिगणहर्षिताः = देवर्षियों के समूह में हर्षित होते, ते = लौकान्तिक देव, प्रियवाक्यैः = प्रियवचनों से, उत्तमं = श्रेष्ठ, देवं = प्रभु की, प्रशंशंसुः = प्रशंसा की।

श्लोकार्थ — राजा को वैराग्य होने पर उसी समय वहाँ सारस्वत जाति के लौकान्तिक देव आ गये। देवर्षिगणों से हर्षित उन लौकान्तिक देवों ने प्रभु की खूब प्रशंसा की।

सौधर्मेन्द्रोपि तज्ज्ञात्वा देवैस्सह समाययौ ।

मनोगतिं तदा देवैरुढां तां शिबिकां प्रभुः ॥४६॥

समारुह्य तपस्तप्तुं सहेतुकवनं गतः ।

सहस्रभूमिपैस्सार्धं तत्रा वेलोपयासकृत् ॥४७॥

सर्वसिद्धान्नमस्कृत्य केशानालुञ्च्य मुष्टिभिः ।

पञ्चभिर्विधियत् त्र दीक्षां जग्राह हर्षतः ॥४८॥

अन्वयार्थ — तज्ज्ञात्वा = प्रभु के वैराग्य को जानकर, सौधर्मेन्द्रः = सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र, देवैः = देवताओं के, सह = साथ, समाययौ = आ गया, तदा = तब, देवैः = देवताओं द्वारा, ऊढां = लायी गयी, मनोगतिं = मनोगति नामक, तां = उस, शिबिकां =

पालकी पर, समारूह्य = चढ़कर, प्रभुः = राजा सुपार्श्व, तपः = तप, तप्तुं = तपने के लिये, सहेतुकवनं = सहेतुक वन में, गतः = चले गये, तत्रा = वहाँ, सहस्रभूमिपैः = एक हजार राजाओं के, सह = साथ, वेलोपवासकृत् = बेला अर्थात् दो दिन का उपवास करने वाले प्रभु ने, सर्वसिद्धान् = सभी सिद्धों को, नमस्कृत्य = नमस्कार करके, पञ्चभिः = पाँच, मुष्टिभिः = मुष्टियों से, केशान् = केशों को, आलुञ्च्य = लोंच कर, विधिवत् = नियमानुसार, तत्रा = वहीं, हर्षतः = प्रसन्नता से, दीक्षां = मुनिदीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया।

श्लोकार्थ – राजा सुपार्श्व को वैराग्य हो गया है ऐसा जानकर सौधर्मन्द्र भी वहाँ देवताओं के साथ आ गया। तभी प्रभु भी देवताओं द्वारा लायी गयी मनोगति नामक पालकी पर चढ़कर तपश्चरण करने के लिये वन में चले गये। वहाँ एक हजार राजाओं के साथ बेला उपवास करने वाले प्रभु ने सभी सिद्धों को नमस्कार करके, और पंचमुष्टि केश लोंच करके नियमानुसार हर्ष पूर्वक मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली।

ज्येष्ठशुक्लदले तद्वत् द्वादश्यां सुतिथौ प्रभुः ।

विशाखानाम्नि नक्षत्रे दीक्षितोऽभवदञ्जसा ॥४६॥

अन्वयार्थ – ज्येष्ठशुक्लदले = ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में, द्वादश्यां = बारहवीं, सुतिथौ = सुतिथि को, तद्वत् = उसके समान, विशाखानाम्नि = विशाखा नामक, नक्षत्रे = नक्षत्रा में, अञ्जसा = निर्मल मन से, प्रभुः = राजा, दीक्षितः = दीक्षित हुये, अभवत् = थे।

श्लोकार्थ – जेठ सुदी द्वादशी के शुभ दिन विशाखा नक्षत्रे में राजा सुपार्श्व निर्मल मन से दीक्षित हुये थे।

परे हिम सोमवर्माख्यं पुरं भिक्षार्थमागतः ।

महेन्द्रदत्तभूपाल दत्तमाहारमुत्तमम् ॥५०॥

आश्चर्यपञ्चकैर्दीप्तं गृहीत्वा कृतकृत्यताम् ।

तस्मिन्नारोप्य भूयोऽसौ तपोवनमुपागतः ॥५१॥

अन्वयार्थ — परेहिन् = दूसरे दिन, (सः = वह मुनिराज), भिक्षार्थम् = भिक्षा स्वरूप भोजन प्राप्त करने के लिये, सोमवर्माख्यं = सोमवर्म नामक, पुरं = नगर को, गतः = गये (तत्र = वहाँ, उस नगर में), महेन्द्रदत्तभूपालः = महेन्द्रदत्त राजा ने, उत्तमं = उत्तम, आहारं = भोजन, दत्तम् = दिया, आश्चर्यपञ्चकैः = पंचाश्चर्यों के साथ, दीप्तं = दीप्त, (तत् = आहार को), गृहीत्वा = ग्रहण करके, तस्मिन् = राजा में या दाता में, कृतकृत्यतां = कृतकृत्यता रूप कृतज्ञता, आरोप्य = आरोपित करके, असौ = वे मुनिराज, भूयः = पुनः, तपोवनं = तपोवन में, उपागतः = चले गये।

श्लोकार्थ — दूसरे दिन वे मुनिराज आहार हेतु सोमवर्म नामक नगर में गये वहाँ राजा महेन्द्रदत्त ने उन्हें आहार दिया। पंच आश्चर्यों के साथ आहार ग्रहण करके मुनिराज राजा में कृतकृत्यता आरोपित करके पुनः वन में चले गये।

मौनभृद्विविधेषूच्चैः तपोदशंषु चापयत् ।

महोग्रतपसा दीप्तो ग्रीष्मार्क इव स व्यभात् ॥५२॥

अन्वयार्थ — मौनभृत् = मौन व्रत धारण करने वाले मुनिराज ने विविधेषु = अनेक प्रकार के, देशेषु = स्थानों में, उच्चैः = उत्कृष्ट, तपः = तप, अतपत् = तपा, महोग्रतपसा = अत्यधिक कठिन तपश्चरण से, दीप्तः = दीप्तिमान्, सः = वह मुनिराज, ग्रीष्मार्क इव = ग्रीष्मवर्ती सूर्य के समान, व्यभात् = सुशोभित हुये।

श्लोकार्थ — मौन व्रत धारण किये हुये उन मुनिराज अनेक प्रकार के स्थानों पर उत्कृष्ट तपश्चरण किया और अत्यधिक कठिन उग्र तपश्चरण के कारण ऐसे दीप्तिमान् हो गये मानों ग्रीष्म ऋतु के सूर्य के समान सुशोभित हो रहे हों।

फाल्गुणे कृष्णषष्ठ्याञ्च सन्ध्यायां घाति घातवान् ।

शुक्लध्यानाग्निना देवः केवलज्ञानमाप सः ॥५३॥

अन्वयार्थ — सः = उन, देवः = मुनिराज ने, फाल्गुणे = फाल्गुण मास

में, कृष्णषष्ठां = कृष्ण पक्ष की षष्ठी के दिन, सन्ध्यायां = सन्ध्या-काल में, शुक्लध्यानाग्निना = शुक्लध्यान रूप अग्नि से, घाति = घाति कर्मों को, घातवान् = घात दिया अर्थात् उनका क्षय कर दिया, च = और, केवलज्ञानम् = केवलज्ञान को, आप = प्राप्त किया।

श्लोकार्थ — उन मुनिराज ने शुक्लध्यान रूप अग्नि से घाति कर्मों का क्षय फाल्गुण कृष्णा षष्ठी के सन्ध्याकाल में कर दिया और केवलज्ञान पाया।

देवैस्समवसारोऽपि निर्मितो वासवाज्ञया ।

रराज सूर्यस्तत्रेन्दुविजयी ज्ञानतेजसा ॥५४॥

अन्वयार्थ — वासवाज्ञया = इन्द्र की आज्ञा से, देवैः = देवों द्वारा, समवसारः = समवसरण, निर्मितः = रचा दिया गया, तत्र = उस समवसरण में, ज्ञानतेजसा = केवलज्ञान रूप तेज से, (सः = प्रभु), इन्दुविजयी = चन्द्रकान्ति को जीतने वाले, सूर्य इव = सूर्य के समान, रराज = सुशोभित हुये।

श्लोकार्थ — इन्द्र की आज्ञा से देवों द्वारा समवसरण रचा गया जिसमें भगवान् चन्द्रकान्ति को जीतने वाले सूर्य के समान सुशोभित होने लगे।

द्वादशस्वप्यत्र कोष्ठेषु श्रीमद्गणधरादयः ।

सर्वे बभुर्यथासंख्यं स्थिता देवार्चने रताः ॥५५॥

अन्वयार्थ — अत्र = समवसरण में, द्वादशसु = बारहों, कोष्ठेषु = कोठों में, अपि = भी, यथासंख्यं = यथाक्रम से, स्थिताः = स्थित, देवार्चने = देव की पूजन में, रताः = लगे हुये, श्रीमद्गणधरादयः = श्रीमान् गणधर आदि, सर्वे = सभी, बभुः = सुशोभित हुये।

श्लोकार्थ — समवसरण के बारहों कोठों में भी यथाक्रम से अपना स्थान ग्रहण करने वाले तथा भगवान् पूजा आदि में लगे हुये गणधर आदि सभी लोग सुशोभित हुये।

तत्र स्थितस्स भगवान् सम्पृष्टो मुनिभिस्तदा ।
 उच्चार्य दिव्यनिर्घोषं कुर्वन् धर्मोपदेशनम् ॥५६॥
 त्रोटयन् संशयतरुं तमो गाढं प्रभेदयन् ।
 ज्ञानप्रकाशमतुलं वर्द्धयन् भव्यमानसे ॥५७॥
 देवैर्नयनवस्तोत्रैः स्तुतस्सम्पूजितो मुदा ।
 धर्मक्षेत्रेषु सर्वेषु विजहार दयानिधिः ॥५८॥

अन्वयार्थ — तदा = तभी, मुनिभिः = मुनिराजों द्वारा, सम्पृष्टः = पूछे गये, तत्र = वहीं समवसरण में, स्थितः = बैठे हुये, सः = उन, भगवान् = परमात्मा ने, दिव्यनिर्घोषं = दिव्य निरक्षर घोष का, उच्चार्य = उच्चारण करके, धर्मोपदेशनं = धर्मोपदेश करते हुये, संशयतरुं :: संशय रूपी वृक्ष को, त्रोटयन् = तोड़ते हुये, गाढं = गहन, तमः = अन्धकार को, प्रभेदयन् = भेदते अर्थात् छिन्न-भिन्न करते हुये, भव्यमानसे = भव्यजीवों के मन में, अतुलं = उत्कृष्ट-अनुपम, ज्ञानप्रकाशम् = ज्ञान का प्रकाश, वर्द्धयन् = बढ़ाते हुये, मुदा = मोद के साथ, देवैः = देवताओं द्वारा, नयनवस्तोत्रैः = नये-नये स्तुति गानों से, स्तुतः = स्तुति की जाते हुये, सम्पूजितः = पूजे जाते हुये, दयानिधिः = कृपासिन्धु भगवान् ने, सर्वेषु = सभी, धर्मक्षेत्रेषु = धर्मक्षेत्रों में, विजहार = विचरण-विहार किया ।

श्लोकार्थ — उसी समय गणधरादि मुनियों द्वारा पूछे गये समवसरण में विराजमान भगवान् ने दिव्यध्वनि अर्थात् निरक्षर दिव्य उद्घोष का उच्चारण करके धर्मोपदेश करते हुये, लोगों के संशय रूपी वृक्षों को उखाड़ते हुये, उनके घोर अज्ञानान्धकार को छिन्न-भिन्न करते हुये, भव्य जीवों के मन में ज्ञान का अनुपम प्रकाश वृद्धिगत करते हुये तथा प्रसन्नचित्त देवों द्वारा नये-नये स्तुतिवानों से स्तुत होते हुये और पूजा किये जाते हुये उन कृपासिन्धु भगवान् ने सभी धर्मक्षेत्रों में विहार किया ।

एकमासावशिष्टायुः सम्मेदाख्याचलोपरि ।

प्रभासनाम्नि च सत्कूटे नादं संहृत्य संस्थितः ॥५९॥

अन्वयार्थ — च = और, एकमासावशिष्टायुः = एक माह मात्र अवशिष्ट आयु वाले वह, सम्मेदशिखरचलोपरि = सम्मेद नामक पर्वत के ऊपर, प्रभासनाम्नि = प्रभास नामक, सत्कूटे = प्रशंसनीय टोंक-कूट पर, नादं = दिव्यध्वनि को, संहृत्य = समेटकर अर्थात् रोककर, संस्थितः = स्थित हो गये।

श्लोकार्थ — और जब केवल एक माह ही आयु शेष रही तो वे भगवान् सम्मेदशिखर नामक पर्वत के प्रभास कूट पर दिव्यध्वनि को रोककर स्थित हो गये।

शुक्लध्यानधरस्तत्र फाल्गुने चाऽसिते दले ।

सप्तम्यामनुराधोऽसंयुतायां स ईश्वरः ॥६०॥

प्रतिमायोगमाश्रित्य शुक्लध्यानोग्रवहिनना ।

सर्वकर्मक्षयं कृत्वा सहस्रमुनिभिस्सार्धं ॥६१॥

अखण्डसौख्यसंयुक्तं कैवल्यपदमाप्तवान् ।

एकोनपञ्चाशत्कोटिकोट्यः पश्चादमुष्य वै ॥६२॥

कोट्यशीतिचतुः प्रोक्ता द्विसप्ततियुल्लक्षकः ।

सहस्रसप्तकं तद्वद् द्विचत्वारिंशदुत्तरा ॥६३॥

सप्तशत्युग्रतपसा च बहुसंख्या प्रमाणिता ।

क्षपकश्रेणिमाश्रित्य शुक्लध्यानोग्रवहिनना ॥६४॥

प्रभासकूटाच्च मुनयो घातिकर्मसंक्षयात्तद्यु ।

सम्प्राप्य केवलज्ञानं तस्मात्सिद्धालयं गताः ॥६५॥

अन्वयार्थ — च = और, तत्र = वहाँ सम्मेदशिखर पर, शुक्लध्यानधरः = शुक्लध्यान को धारण करने वाले, सः = उन, ईश्वरः = केवलज्ञानी भगवान् ने, फाल्गुने = फाल्गुन में, असिते = अश्वेत अर्थात् कृष्ण, दले = पक्ष में, अनुराधोऽसंयुतायां = अनुराधा नक्षत्र से युक्त, सप्तम्यां = सप्तमी के दिन, प्रतिमायोगम् = प्रतिमायोग का, आश्रित्य = आश्रय लेकर, शुक्लध्यानोग्रवहिनना = शुक्लध्यान रूपी उग्र वह्नि से, सर्वकर्मक्षयं = सारे कर्मों का क्षय करके, सहस्रमुनिभिः = एक हजार मुनियों के, सार्धं = साथ, अखण्डसौख्यसंयुक्तं =

अखण्ड सुख से परिपूर्ण, कैवल्य = केवलज्ञान से जनित सिद्ध, पदं = पद को, आप्तवान् = प्राप्त कर लिया, अमुष्य = उनके, पश्चात् = बाद में, एकोनपञ्चाशत् = उनचास, कोटिकोटयः = कोड़ाकोड़ी, कोटयशीतिचतुः = चौरासी करोड़, द्विसप्ततियुल्लक्षकः = बहत्तर लाख, सहस्रसप्तकं = सात हजार, सप्तशती = सात सौ, द्विचत्वारिंशत् = बयालीस, (मुनीनां = मुनियों की), बहुसंख्या = बहुत बड़ी संख्या, प्रमाणिता = प्रमाणित, प्रोक्ता = कही गयी है, च = और, (ते = उन), मुनयः = मुनियों ने, तद्वत् = उनके ही समान, क्षपकश्रेणिम् = क्षपक श्रेणी का, आश्रित्य = आश्रय लेकर, घातिकर्मसंक्षयात् = घातिकर्मों का क्षय हो जाने से, केवलज्ञानं = केवलज्ञान को, संप्राप्य = प्राप्त करके, तस्मात् = उसी, प्रभासकूटात् = प्रभास कूट से, लघु = जल्दी ही, सिद्धालयं = सिद्धालय को, गतः = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ — वहीं सम्मेदशिखर के प्रभास कूट पर, शुक्लध्यान के धारी उन सुपार्श्वनाथ भगवान् ने फाल्गुन कृष्ण सप्तमी के दिन अनुराधा नक्षत्र में प्रतिमायोग धारण कर शुक्लध्यान की उग्रवह्नि से सभी कर्मों का क्षय करके एक हजार मुनियों के साथ कैवल्य अर्थात् मुक्तिपद प्राप्त किया। उनके बाद शास्त्रोक्त संख्या अर्थात् ४६ कोड़ाकोड़ी चौरासी करोड़ बहत्तर लाख सात हजार सात सौ बयालीस संख्या प्रमाण बहुत मुनियों ने भी उनके ही समान क्षपक श्रेणी का आलंबन लेकर घातिकर्मों के संक्षय से केवलज्ञान को प्राप्त कर जल्दी ही उसी प्रभासकूट से सिद्धालय को प्राप्त कर लिया।

उद्योतकनरेन्द्रेण तत्पश्चाद् भावतोः गिरेः ।

सम्मेदस्य कृता यात्रा वक्ष्ये तस्य कथां शुभाम् ॥६६॥

अन्वयार्थ — तत्पश्चात् = उसके बाद, उद्योतकनरेन्द्रेण = उद्योतक राजा ने, भावतः = भक्ति भाव से, सम्मेदस्य = सम्मेद नामक, गिरेः = पर्वत की, यात्रा = तीर्थवंदना रूप यात्रा, कृता = की, तस्य = उस राजा की, शुभां = शुभ, कथां = कथा को, वक्ष्ये = मैं कहता हूँ।

श्लोकार्थ -- उसके बाद उद्योतक राजा ने भक्तिभाव से सम्मोदशिखर पर्वत की यात्रा की, उस राजा की शुभ को कथा में कहता हूँ।

जम्बूद्वीपे भारतेऽस्मिन् क्षेत्रे वत्सोपवर्तने ।

कौशाम्बी रम्या दिव्योपवनशोभिता ॥६७॥

विचित्रवापिका तद्वत् रम्या हि सरसीयुत् ।

वारिभिस्सहिता यत्र पौराः पुण्यविशारदाः ॥६८॥

शीलसम्यक्त्वसम्पन्नास्सर्वे सदगुणशालिनः ।

जैनधर्मोज्ज्वलाः शुद्धा दयाविमलमानसाः ॥६९॥

अन्ययार्थ -- जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीपवर्ती, अस्मिन् = इस, भारते = भारत नामक, क्षेत्रे = आर्य क्षेत्र में, वत्सोपवर्तने = वत्स देश में, रम्या = रमणीय, दिव्योपवनशोभिता = दिव्य जानवरों से सुशोभित, कौशाम्बीनगरी = कौशाम्बी नामक नगरी, (आसीत् = थी), (तत्र = वहाँ), तद्वत् = नगरी के समान, हि = ही, रम्या = रमणीय, सरसीयुता = झरनों से युक्त, वारिभिः = जल से, सहिता = सहित, विचित्रवापिका = आश्चर्यकारी बावड़ी, (आसीत् = थी), यत्र = जिस नगर में, सर्वे = सारे, पौराः = प्रजाजन, पुण्यविशारदाः = पुण्य कार्य करने में चतुर, शीलसम्यक्त्वशालिनः = शील और सम्यक्त्व का पालन करने वाले, सदगुणशालिनः = सम्यक् गुणों के धारी, दयाविमलमानसाः = दया के कारण निर्मल चित्त वाले, जैनधर्मोज्ज्वलाः = जैनधर्म का पालन करने में उज्ज्वल कीर्ति वाले, च = और, शुद्धाः = पवित्र, (न्यवसन् = रहते थे)।

श्लोकार्थ -- जम्बूद्वीपवर्ती इस भरतक्षेत्र के वत्स नामक देश में अत्यंत रमणीय और दिव्य उपवनों से सुशोभित एक कौशाम्बी नगरी थी। वहाँ नगर के समान ही रमणीय झरनों से युक्त तथा जल से भरी हुई आश्चर्य कारक बावड़ी थी। जिस नगर में सारे प्रजाजन पुण्य कार्य करने में प्रवीण, शील-सम्यक्त्व का पालन करने वाले, सदगुणों के धारी, दया से निर्मल चित्त वाले, जैनधर्म का पालन करने में उज्ज्वल कीर्ति वाले और पवित्र थे।

तस्यामुद्योतको राजा सर्वशास्त्रविशारदः ।

राज्ञी पतिव्रता नाम्नी सुशीला तस्य चाभवत् ॥७०॥

अन्वयार्थ — तस्याम् = उस कौशाम्बी नगरी में, सर्वशास्त्रविशारदः = सभी शास्त्रों में पारंगत, राजा = नृप, उद्योतकः = उद्योतक, (आसीत् = था), तस्य = उस राजा की, पतिव्रता = पतिव्रत का पालन करने वाली, सुशीला = सुशीला, नाम्नी = नाम की, राज्ञी = रानी, अभवत् = थी ।

श्लोकार्थ — उस कौशाम्बी नगरी में उद्योतक नामक राजा सर्वशास्त्रों में निपुण था उसकी सुशीला नामक एक पतिव्रत का पालन करने वाली रानी थी ।

केनापि कर्मणा चैव तस्य पूर्वा जितेन वै ।

कुष्ठोत्पत्तिरभूद्देहे सन्तप्तस्तेन सोऽभवत् ॥७१॥

अन्वयार्थ — पूर्वार्जितेन = पूर्व में संचित, केनापि = किसी भी, कर्मणा = कर्म के कारण, वै = निश्चय, एव = ही, तस्य = उस राजा के कुष्ठोत्पत्तिः = कुष्ठरोग, अभूत् = हो गया था । च = और, तेन = उस कारण, सः = वह राजा, सन्तप्तः = संतप्त, अभवत् = हो गया ।

श्लोकार्थ — उस राजा के शरीर में किसी भी पूर्व संचित कर्मोदय के कारण कोढ़ रोग हो गया जिससे वह राजा निश्चय ही सन्ताप को प्राप्त हुआ ।

सुदुःखितेन मनसा नानासौख्यरसान्वितम् ।

राज्यं विहाय राजाऽसौ वनवासं चकार तत् ॥७२॥

अन्वयार्थ — सुदुःखितेन = अच्छी तरह से दुःखित, मनसा = मन से, असौ = उस, राजा = राजा ने, नानासौख्यरसान्वितम् = अनेक सुखों से आप्लावित-भरपूर, तत् = उस, राज्यं = राज्य को, विहाय = छोड़कर, वनवासं = वन में वास, चकार = किया ।

श्लोकार्थ — अच्छी तरह से दुःखित मन से उस राजा ने अनेक सुखों से भरपूर उस राज्य को छोड़कर वन में वास किया ।

सापि पतिव्रता देवी गत्वा तदनु काननम् ।

पतिशुश्रूषणं भक्त्या चकार हृदि दुःखिता ॥७३॥

अन्वयार्थ — हृदि = मन में, दुःखिता = दुःखी, सा = उस, पतिव्रता = पतिव्रत पालन करने वाली, देवी = रानी ने, अपि = भी, तदनु = राजा का अनुसरण कर, वनम् = वन में, गत्वा = जाकर, भक्त्या = भक्ति से, पतिशुश्रूषणं = पति की सेवा शुश्रूषा, चकार = की।

श्लोकार्थ — अपने मन में दुःखी तथा पतिव्रत का पालन करने वाली उस रानी ने भी राजा का अनुसरण करते हुये वन में जाकर पति की सेवा की।

एकदारिञ्जयमित्रञ्जयौ द्वौ चारणौ मुनी ।

आयान्तौ वीक्ष्य राजासौ सप्रियश्चाभ्यधावत् ॥७४॥

त्रिः परिक्रम्य भक्त्या तौ प्रणनाम शुचादृतः ।

तं दृष्ट्वा तौ सकरुणौ पप्रच्छतुरिमं तदा ॥७५॥

स्वीयां व्यवस्थां भूपाल कथयस्वास्मदग्रतः ।

तच्छ्रुत्वा तौ मुनी प्राह भूपो वाष्पाम्बुलोचनः ॥७६॥

अन्वयार्थ — एकदा = एक दिन, अरिञ्जयमित्रञ्जयौ = अरिञ्जय और मित्रञ्जय नामक, द्वौ = दो, चारणौ = चारण ऋद्धिधारी, मुनी = मुनिराज, आयान्तौ = आते हुये, वीक्ष्य = देखकर, सप्रियः = प्रिया सहित, असौ = वह, राजा = राजा, अभ्यधावत् = उन मुनिराज की ओर दौड़ा, च = और, शुचादृतः = निर्मल मन से उत्साहित होते हुये, तौ = उन दोनों मुनिराजों को, भक्त्या = भक्ति से, त्रिःपरिक्रम्य = तीन प्रदक्षिणा करके, प्रणनाम = प्रणाम किया, तदा = तब, तं = उस राजा को, दृष्ट्वा = देखकर, तौ = वे दोनों, सकरुणौ = करुणा युक्त मुनिराजों ने, पप्रच्छतम् = पूछा, भूपाल! = हे राजन्, स्वीयां = अपनी, इमां = इस, व्यवस्थां = विशेष अवस्था को, अस्मदग्रतः = हमारे सामने, कथयस्व = कहो, तच्छ्रुत्वा = मुनिराज के ऐसे वचन सुनकर, वाष्पाम्बुलोचनः = अश्रुजलपूरित नेत्रों वाला, भूपः = राजा ने, तौ = उन दोनों, मुनी = मुनिराजों से, प्राह = कहा।

श्लोकार्थ — एक दिन अरिञ्जय और मित्रञ्जय नामक दो चारणऋद्धि धारी मुनिराजों को आते हुये देखकर प्रिया सहित वह राजा उगकी और दौड़ा और पवित्र मन से उत्साहित होकर उसने उन मुनिराजों की तीन परिक्रमायें करके उन्हें प्रणाम किया। तब उन दोनों करुणावन्त मुनिराजों ने उसे देखकर पूछा हे राजन्! तुम अपनी इस विशेष दशा को हमारे सामने कहो। मुनिराज की इस बात को सुनकर वह राजा अश्रुजलपूरित नेत्रों वाला हो गया और उन दोनों मुनिराज से बोला।

श्रूयतां मुनिशार्दूल! मया किं पूर्वजन्मनि ।

कृतं कलुषमत्युग्रं येनाहं कुष्ठरोगभाक् ॥७७॥

अन्वयार्थ — मुनिशार्दूल! = हे मुनिश्रेष्ठ! श्रूयताम् = सुनिये, पूर्वजन्मनि = पूर्वजन्म में, मया = मेरे द्वारा, किं = कोई, अत्युग्रं = अत्यधिक प्रचंड उग्र, कलुषम् = अशुभकर्म, कृतं = किया गया, येन = जिस कारण से, अहं = मैं, कुष्ठरोगभाक् = कोढ़ रोग का भाजन, (अभूत् = हुआ)।

श्लोकार्थ ... हे मुनिश्रेष्ठ! सुनिये, पूर्वजन्म में मैंने कोई ऐसा अत्यधिक उग्र-कष्टकारक अशुभ कर्म किया जिसके कारण मैं आज कोढ़ रोग से ग्रसित हुआ हूँ।

तच्छ्रुत्वा तं मुनिः प्राह शृणु पूर्वं भवं नृप ।

अस्मिन्नेव पुरे पूर्वं सोमदत्ताभिधो द्विजः ॥७८॥

अभूद्वै पण्डितो दीर्घविद्यागर्वितमानसः ।

मुनिं कञ्चिदपि प्रेक्ष्य नमस्कारं स न व्यधात् ॥७९॥

अन्वयार्थ — तच्छ्रुत्वा = उसकी बात सुनकर, मुनिः = मुनिराज, तं = उससे, प्राह = बोले, नृप! = राजन्, पूर्वं = पूर्व, भवं = भव को, शृणु = सुनो, अस्मिन् = इस, एव = ही, पुरे = नगर में, पूर्वं = पहिले, सोमदत्ताभिधः = सोमदत्त नामक, द्विजः = एक ब्राह्मण, अभूत् = हुआ था, वै = निश्चय ही, दीर्घविद्यागर्वितमानसः = दीर्घ काल से विद्याओं के अभिमान

से कलुषित चित्त वाले, सः = उस, पण्डितः = पण्डित ने, कञ्चिद् = किन्हीं, मुनिं = मुनि को, प्रेक्ष्य = देखकर, अपि = भी, नमस्कारं = नमस्कार, न = नहीं, व्यधात् = किया।

श्लोकार्थ — राजा की बात सुनकर मुनिराज उससे बोले— हे राजन्! अब तुम अपना पूर्व भव सुनो। इसी नगर में एक सोमदत्त नामक ब्राह्मण रहता था वह बहुत काल से बहुत सारी विद्याओं के अभिमान से पूर्ण था। निश्चित ही उस पण्डित ने किन्हीं मुनिराज को देखकर भी नमस्कार नहीं किया।

ग्रीष्मर्तावेकदाहारनिमित्तं तपसि स्थितः ।

कश्चिन्मुनिस्समायातो भव्यो भव्यजनार्चितः ॥८०॥

अन्वयार्थ — एकदा = एक दिन, ग्रीष्मर्तौ = ग्रीष्म ऋतु में, तपसि = तपश्चरण में, स्थितः = रत, भव्यजनार्चितः = भव्यजनों द्वारा पूजा किये जाते हुये, कश्चित् = कोई, भव्यः = भव्य, मुनिः = मुनिराज, आहारनिमित्तं = आहार के हेतु से, (तत्र = वहाँ), समायातः = आये।

श्लोकार्थ — एक दिन ग्रीष्मकाल सम्बन्धी तपश्चरण में रत तथा भव्यजनों से पूजित कोई भव्य मुनिराज आहार हेतु वहाँ उस नगर में आये।

श्रेष्ठी तत्र प्रभाचन्द्रः तस्मै भोजनमर्पयत् ।

नमस्कारार्चनापूर्वं मुनिभक्तिपरायणः ॥८१॥

अन्वयार्थ — तत्र = उस नगर में, मुनिभक्तिपरायणः = मुनि भक्ति में तत्पर चित्त वाला, प्रभाचन्द्रः = प्रभाचन्द्र नामक, श्रेष्ठी = सेठ ने, नमस्कारार्चनापूर्वं = नमस्कार और पूजन विधि पूर्वक, तस्मै = उन मुनिराज के लिये, भोजनम् = आहार, अर्पयत् = अर्पित किया।

श्लोकार्थ — उस नगर में मुनि भक्ति में प्रवीण एवं उत्साहशील एक प्रभाचन्द्र नामक सेठ रहता था जिसने नमस्कार और पूजनविधि सम्पन्न करके मुनिराज के लिये आहार दिया।

सोमदत्तेन विप्रेण तेन सार्धं कुबुद्धिना ।

श्रेष्ठिनः प्रियता तस्य परस्परमभूत्तदा ॥८२॥

अन्वयार्थ - तदा = उस समय, तस्य = उस, श्रेष्ठिनः = श्रेष्ठी-सेठ की, कुबुद्धिना = कुबुद्धि वाले, तेन = उस, विप्रेण = ब्राह्मण, सोमदत्तेन = सोमदत्त के, सार्धं = साथ, परस्परं = आपस में, प्रियता = प्रियता-मित्रता, अभूत् = थी ।

श्लोकार्थ - उस समय उस सेठ की और कुबुद्धि सम्पन्न उस ब्राह्मण के साथ परस्पर में मित्रता थी ।

श्रेष्ठिना सोऽथ सम्पृष्टो मुनीनामशनार्पणात् ।

किं फलं मित्र! तद्ब्रूहि विचार्य हृदि तत्त्वतः ॥८३॥

श्रुत्वा च विद्यागर्विष्ठः प्रहस्येति तमब्रवीत् ।

श्रेष्ठिन्योत्र दद्यात्तेभ्यो मुनिभ्यो भोजनं भुवि ॥८४॥

कुष्ठव्याधिं स लभते निशम्येति कुभारतीम् ।

श्रेष्ठी धैर्यं विमुच्याथ विमना संबभूव सः ॥८५॥

अन्वयार्थ - अथ = अनन्तर, मुनीनाम् = मुनिराज के लिये, अशनार्पणात् = भोजन देने के बाद, श्रेष्ठिना = सेठ के द्वारा, सः = वह पण्डित, सम्पृष्टः = पूछा गया, मित्र! = हे मित्र, (अस्य = इस आहार दान का), किं = क्या, फलं = फल, (अस्ति = है), तत्त्वतः = परमार्थ से, तत् = वह, हृदि = मन में, विचार्य = विचार कर, ब्रूहि = कहो । अथ = तब, इति = इस प्रकार सेठ के वचन, श्रुत्वा = सुनकर, च = और, प्रहस्य = हंसकर, विद्यागर्विष्ठः = विद्याओं के अहंकार में स्थित पण्डित, तं = उस श्रेष्ठी को, अब्रवीत् = बोला, श्रेष्ठिन् = हे सेठ! अत्र = इस, भुवि = पृथ्वी पर, यः = जो, तेभ्यः = उन, मुनिभ्यः = श्रमण मुनियों के लिये, भोजनं = आहार, दद्यात् = देवे, सः = वह, कुष्ठव्याधिं = कोढ़ रोग को, लभते = पाता है, इति = इस प्रकार, कुभारतीम् = मिथ्या वाणी को, निशम्य = सुनकर, सः = वह, श्रेष्ठी धैर्यं = धैर्य को, विमुच्य = छोड़कर, विमना = खिन्न मन वाला या उदास, संबभूव = हो गया ।

श्लोकार्थ — मुनिराज को आहार दान देने के बाद उस श्रेष्ठी द्वारा वह सोमदत्त नामक पण्डित पूछा गया कि हे मित्र इसका फल क्या होगा, मन में विचार कर सार रूप से कहो। तब सेठ के ऐसे वचन सुनकर विद्याओं के अभिमान में फूला हुआ वह पण्डित बोला — हे सेठ! इस पृथ्वी पर जो भी उन श्रमण मुनियों को भोजन देवे वह कुष्ठ रोग को पाता है। पण्डित की इस मिथ्यावाणी को सुनकर सेठ धैर्य को छोड़कर खिन्न मन वाला व उदास हो गया।

अनादृत्य मुनिञ्चैव स विप्रो दुर्गतिं गतः ।

प्रथमायां तत्र तद्दुःखमन्वभूदार्तमानसः ॥८६॥

अन्वयार्थ — एवं = इस प्रकार, मुनि = मुनिराज का, अनादृत्य = अनादर करके, सः = वह, विप्रः = ब्राह्मण, दुर्गतिं = दुर्गति को, गतः = चला गया, च = और, तत्र = वहाँ दुर्गति में, प्रथमायां = पहिली भूमि में, आर्तमानसः = आर्तध्यान वाले उसने, तद्दुःखं = मुनिनिन्दा से प्राप्त दुःख को, अन्वभूत् = अनुभूत किया।

श्लोकार्थ — इस प्रकार मुनिराज का अनादर करके उस ब्राह्मण ने दुर्गति प्राप्त की और वहाँ अर्थात् दुर्गति स्वरूप पहिली नरक भूमि में आर्तध्यान वाला होकर उसने मुनिनिन्दा से प्राप्त होने वाला दुःख भोगा।

अन्ते निजाशुभं कर्म श्रुत्वाऽऽत्मानं निनिन्द सः ।

पश्चात्तापं मुहुः कृत्वा दुर्गतौ मृत्युमाप्तवान् ॥८७॥

अन्वयार्थ — अन्ते = नरक पर्याय के अन्त समय में, निजाशुभं = अपने अशुभ, कर्म = कर्म को, श्रुत्वा = सुनकर, सः = उस नारकी ने, आत्मानं = अपने आपकी, निनिन्द = निन्दा की, मुहुः = बार-बार, पश्चात्तापं = पश्चात्ताप को, कृत्वा = करके, दुर्गतौ = तिर्यञ्च नामक दुर्गति में, मृत्युं = मरण को, आप्तवान् = प्राप्त किया।

श्लोकार्थ — नरक आयु के अन्तिम समय में उसने अपने उस अशुभ कर्म

को सुनकर अपनी निंदा की तथा बार-बार पश्चात्ताप करके दुर्गति में अर्थात् तिर्यज्च गति में जाकर मृत्यु को प्राप्त हुआ।

पश्चात्तापजपुण्येन भूप उद्योतकाभिधः ।

सत्यमेवात्र सज्जातो विद्ध्येतन्निश्चयान्नृप ॥८८॥

अन्वयार्थ - भूप! = राजन्!, पश्चात्तापजपुण्येन = पश्चात्ताप की भावना से जनित प्राप्त पुण्य द्वारा, (त्वं = तुम), अत्र = यहाँ, उद्योतकाभिधः = उद्योतक नाम वाले, सः = वह, त्वं = तुम, एव = ही, सज्जातः = हुये हो, नृप = हे राजन्!, त्वम् = तुम, एतत् = यह, विद्धि = जानो।

श्लोकार्थ - हे राजन्! पश्चात्ताप की भावना से जनित पुण्य द्वारा तुम यहाँ उद्योतक नाम वाले जीव हुये हो। हे राजन्! तुम यह निश्चित ही जान लो।

मुनीनाभृतौ कुष्ठं प्रोक्तस्त्वं कुष्ठरोगभाक् ।

चिन्तां त्यज कृतं कर्मावश्यं भोक्तव्यमेव भो! ॥८९॥

अन्वयार्थ - मुनीनां = मुनिराजों की, आभृतौ = आभृति करने अर्थात् आहारदान से भरण करने पर, कुष्ठं = कोढ़, प्रोक्तः = कहने वाले, त्वं = तुम, कुष्ठरोगभाक् = कोढ़रोग के पात्र हुये हो, चिन्तां = चिन्ता को, त्यज = छोड़ो, भो! = अरे!, कृतं = किये गये, कर्म = कर्म, अवश्यमेव = अवश्य ही, भोक्तव्यम् = भोगने योग्य (भवति = होता है)।

श्लोकार्थ - मुनिराजों को आहार देने पर कोढ़ होता है ऐसा कहने वाले होने से तुम अभी कोढ़ रोग से ग्रसित हुये हो। अब चिन्ता छोड़ो, अरे राजन्! किया हुआ कर्म तो अवश्य ही भोगा जाने योग्य होता है।

कृत्वात्मानं च धिक्कृत्वा मुनेर्वाक्यं सुनिश्चितम् ।

कृताञ्जलिः पुनर्भूषो हि तमुवाच परमं मुनिम् ॥९०॥

अन्वयार्थ - मुनेः = मुनिराज के, वाक्यं = वचनों को, सुनिश्चितम् = सुनिश्चित, कृत्वा = करके, च = और, आत्मानं = अपने आप

को, धिक्कृत्वा = धिक्कार करके, कृताञ्जलिः = विनम्रता से हाथ जोड़े हुये, हि = ही, भूपः = राजा ने, तं = उन, परमं = परम, मुनिं = मुनिराज को, पुनः = फिर से, उवाच = कहा ।

श्लोकार्थ — मुनिराज के वचन निश्चित रूप से सही हैं ऐसा निर्णय करके और अपने आपको धिक् अर्थात् धिक्कार करके विनम्रता से हाथ जोड़े हुये वह राजा उन परम मुनिराज से पुनः बोला ।

मुनिवर्याधुना मे तमुपायं दर्शय सत्त्वरम् ।

केनाहं कुष्ठतो नाथ! भुवत्तस्यां दुःखसागरात् ॥६१॥

अन्वयार्थ — मुनिवर्य = हे मुनिराज!, अधुना = अब, सत्त्वरम् = जल्दी ही, मे = मुझे, तम् = उस, उपायं = उपाय को, दर्शय = दिखाओ, नाथ! = हे स्वामिन्!, केन = किस उपाय से, अहं = मैं, कुष्ठतः = कुष्ठ रोग रूप, दुःखसागरात् = दुःख के सागर से, मुक्तः = मुक्त, स्याम् = होऊँ या होऊँगा ।

श्लोकार्थ — हे मुनिवर्य! अब मुझे जल्दी ही उस उपाय को बताओ । हे स्वामी! किस उपाय से मैं कोढ़ रोग रूप दुःख के सागर से छुटकारा पाऊँगा ।

मुनिनोक्तं तदा भूप! भूत्वा त्वं मेघकाम्बरः ।

सम्मोदभूमिभृदयात्रां कुरु रोगापनुत्तये ॥६२॥

अन्वयार्थ — तदा = तब, मुनिना = मुनिराज द्वारा, उक्तं = कहा गया, भूप = हे राजन्!, रोगापनुत्तये = रोग दूर करने के लिये, त्वं = तुम, मेघकाम्बरः = पंचरंगी वस्त्र धारण करने वाले, (भूत्वा = होकर), सम्मोदभूमिभृदयात्रां = सम्मोदशिखर नामक पर्वत की यात्रा को, कुरु = करो ।

श्लोकार्थ — तब मुनिराज ने कहा — हे राजन्! तुम अपना रोग मिटाने के लिये पंचरंगी वस्त्र पहिन कर सम्मोदशिखर की यात्रा करो ।

तच्छ्रुत्वा हर्षपूर्णोऽसौ सङ्घेन सहितो गतः ।

यथा शिखरिणो यात्रा तत्र गत्वा सुभावकः ॥६३॥

गिरेः प्रभासकूटं तमभिवन्द्य जिनेश्वरम् ।

अष्टधा पूजया पूज्यं प्रपूज्य गदशान्तये ॥६४॥

तत्क्षणात्कुष्ठरोगस्य न भूत इव चाभवत् ।

बुद्ध्वा प्रभासमाहात्म्यं विरक्तोऽभूत्स राज्यतः ॥६५॥

अन्वयार्थ — तच्छ्रुत्वा = मुनि के वचन सुनकर, हर्षपूर्णः = हर्ष से भरा हुआ, असौ = वह, यथा = जिस प्रकार, शिखरिणः = शिखर की, यात्रा = यात्रा, (भवेत् = होवे), (तथा = उसी प्रकार), संघेन = संघ के, सहितः = साथ, गतः = गया । तत्र = वहाँ, गत्वा = जाकर, सुभावकः = अच्छे भावों वाले उसने, गिरेः = पर्वत की, प्रभासकूटं = प्रभास कूट को, अभिवन्द्य = नमस्कार करके, तं = उन, पूज्यं = पूज्य, जिनेश्वरं = जिनेन्द्र भगवान् को, अष्टधापूजया = आठ प्रकार के द्रव्यों से युक्त पूजा द्वारा, गदशान्तये = रोग शान्ति के लिये, प्रपूज्य = पूजा करके, (हर्षान्वितोऽभूत् = हर्ष युक्त हुआ), च. = और, तत्क्षणात् = उसी समय, सः = वह, कुष्ठरोगः = कोढ़ रोग, न भूत इव = नहीं हुये के समान, अभवत् = हो गया । सः = वह राजा, प्रभासमाहात्म्यं = प्रभासकूट की महिमा को, बुद्ध्वा = जानकर, राज्यतः = राज्य से, विरक्तः = विरक्त, अभूत् = हो गया ।

श्लोकार्थ — मुनिराज के उपदेश को सुनकर हर्ष से भरा वह राजा संघ सहित वैसे ही शिखर जी की यात्रा के लिये गया जैसे यात्रा करने की विधि है । वहाँ जाकर और सद्भावों से युक्त होकर उसने प्रभास कूट की वन्दना की और वहाँ पूज्य परमात्मा उन सुपार्श्वजिनेश्वर की अष्टविध द्रव्यों से पूजा की । उसका वह कुष्ठरोग उसी समय नहीं हुये के समान हो गया । तब वह राजा प्रभास कूट की महिमा जानकर राज्य से विरक्त हो गया ।

द्वात्रिंशल्लक्षमनुजैः सह तत्रैव भूपतिः ।

राज्यं सुप्रभपुत्राय दत्त्वा दीक्षामग्रहीत् ॥६६॥

अन्वयार्थ — भूपतिः = राजा ने, सुप्रभपुत्राय = सुप्रभ नामक पुत्र के लिये, राज्यं = राज्य को, दत्त्वा = देकर, तत्रैव = उसी प्रभास कूट पर, द्वात्रिंशल्लक्षमनुजैः = बत्तीस लाख मनुष्यों के, सह = साथ, दीक्षां = मुनि दीक्षा, अग्रहीत् = ग्रहण कर ली ।

श्लोकार्थ — राजा ने अपने पुत्र सुप्रभ के लिये राज्य देकर बत्तीस लाख मनुष्यों के साथ उसी प्रभासकूट पर मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली।

मुनिमार्गानुसारी सः विरक्तो विश्वमार्गतः ।

तपः प्रभावतः कृत्वा क्षयं वै घातिकर्मणाम् ॥६७॥

केवलज्ञानसम्पन्नस्तीर्त्वा घोरभवाम्बुधिम् ।

मोहशत्रुं विनिर्जित्य प्राप्तसिद्धिरयं मुनिः ॥६८॥

अन्वयार्थ — विश्वमार्गतः = सभी मार्गों से, विरक्तः = विरक्त होकर, सः = वह, मुनिमार्गानुसारी = मुनि मार्ग का अनुसरण कर, तपःप्रभावात् = तपश्चरण के प्रभाव से, घातिकर्मणां = घातिया कर्मों का, क्षयं = क्षय, कृत्वा = करके, मोहशत्रुं = मोहशत्रु को, विनिर्जित्य = जीतकर, केवलज्ञानसम्पन्नः = केवलज्ञान से सम्पन्न, (अभूत् = हो गये), घोरभवाम्बुधिम् = घोर संसार सागर को, तीर्त्वा = पार करके, वै = निश्चित ही, अयं = इन, मुनिः = केवलज्ञानी मुनि ने, सिद्धिं = सिद्धि को, प्राप्तः = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ — मुनि मार्ग के अलावा सभी मार्गों से विरक्त होकर केवल मुनि मार्ग का अनुसरण करते हुये वे तप प्रभाव से सभी घातिकर्मों का क्षय करके और मोह शत्रु को पूर्णतः जीतकर केवलज्ञान से सम्पन्न हो गये तथा घोर संसार सागर को पार करके इन केवलज्ञानी मुनिराज ने निश्चित ही सिद्ध पद को प्राप्त कर लिया।

तेन षोडशलक्षोक्ताः सार्धं मुनिवरा बुधाः ।

मुक्तिं प्रभासकूटाच्च केवलावगमादगताः ॥६९॥

अन्वयार्थ — तेन = उनके, सार्धं = साथ, षोडशलक्षोक्ताः = सोलह लाख, मुनिवराः = मुनिराज, केवलावगमात् = केवलज्ञान होने से, बुधाः = केवलज्ञानी परमात्मा, प्रभासकूटात् = प्रभासकूट से, मुक्तिं = मोक्ष को, गताः = गये।

श्लोकार्थ — उन्हीं मुनिवर के साथ सोलह लाख भुनिराज केवलज्ञान से युक्त बुध अर्थात् पूर्व ज्ञानी परमात्मा हुये इसी प्रभास कूट से मुक्ति को प्राप्त हुये।

फलं प्रभासकूटस्य वन्दनादतुलं स्मृतम् ।

सर्वकूटनमस्कर्तुः फलं वक्तुं क ईश्वरः ॥१००॥

अन्वयार्थ — प्रभासकूटस्य = प्रभासकूट की, वन्दनात् = वन्दना करने से, अतुलं = अनुपम, फलं = फल, स्मृतम् = स्मरण किया जाता है। सर्वकूटनमस्कर्तुः = सभी कूटों को नमस्कार करने वाले के, फलं = फल को, कः = कौन, वक्तुं = कहने के लिये, ईश्वरः = समर्थ, (अस्ति = है)।

श्लोकार्थ — जब प्रभावकूट की वन्दना करने से होने वाला फल अतुल होता है — ऐसा ज्ञानियों ने याद रखकर कहा है। तब सभी कूटों को नमस्कार करने वाले के फल को कहने में कौन समर्थ हो सकता है अर्थात् कोई नहीं।

द्वात्रिंशत्कोटिसंख्यातप्रोषधव्रतजं फलम् ।

नरः प्राप्नोत्यनायासात् सम्मेदाचलवन्दनात् ॥१०१॥

अन्वयार्थ — नरः = मनुष्य, सम्मेदाचलवन्दनात् = सम्मेदशिखर पर्वत की वन्दना से, अनायासात् = अकस्मात् बिना प्रयास से ही, द्वात्रिंशत्कोटिसंख्यातप्रोषधव्रतजं = बत्तीस करोड़ प्रोषधोपवास व्रत से उत्पन्न, फलं = फल को, प्राप्नोति = प्राप्त करता है।

श्लोकार्थ — कवि कहता है कि सम्मेदशिखर की वन्दना का इतना महत्त्व है कि उसकी वन्दना करने वाले मनुष्य को बत्तीस करोड़ प्रोषधोपवास से प्राप्त होने वाले फल के समान फल मिलता है।

यस्मात्कूटाच्छ्रीसुपाश्वो

महेशः

सिद्धिस्थानं प्राप्तवान् योगिरीत्या ।

भुक्तिं मुक्तिं वन्दकानां ददातु

प्रेम्णा नित्यं तं प्रभासं नमामि ॥१०२॥

अन्वयार्थ — यस्मात् = जिस, कूटात् = कूट से, श्रीसुपार्श्वः = श्री सुपार्श्वनाथ, महेशः = तीर्थङ्कर परमात्मा ने, योगिरीत्या = योगी की पद्धति से सिद्धिस्थानं = सिद्धपद अर्थात् निर्वाण, प्राप्तवान् = प्राप्त किया, वन्दकानां = वन्दना करने वालों के लिये, भुक्तिं = भुक्ति को, (च = और) मुक्तिं = मुक्ति को, ददातु = देवे, (अहं = मैं कवि) तं = उस, प्रभासं = प्रभासकूट को, नित्यं = हमेशा, प्रेम्णा = भक्ति से, नमामि = नमस्कार करता हूँ।

श्लोकार्थ — जिस कूट से श्री सुपार्श्वनाथ तीर्थङ्कर ने योगी की रीति से मुक्तिस्थान अर्थात् सिद्ध पद प्राप्त किया था वह प्रभास कूट वन्दना करने वाले सभी यात्रियों को भुक्ति और मुक्ति प्रदान करे। मैं उस प्रभास कूट को नित्य ही भक्ति सहित नमस्कार करता हूँ।

{इति दीक्षितदेवदत्तकृते सम्मेदशिखरमाहात्म्ये
श्रीसुपार्श्वतीर्थङ्करस्य वृत्तान्तपुरस्सरं प्रभासकूट
वर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः समाप्तः।}

{इस प्रकार दीक्षितदेवदत्त रचित सम्मेदशिखर माहात्म्य नामक काव्य में श्री सुपार्श्वनाथ तीर्थङ्कर का वृत्तान्त बताकर प्रभास कूट का वर्णन करने वाला सातवा अध्याय समाप्त हुआ।}

अथ अष्टमोऽध्यायः

अशेषभव्यभृङ्गालि निषेवितमनारतम् ।

चन्द्रप्रभपदाम्भोजं श्रेयसे नोस्तु सर्वदा ॥१॥

अन्वयार्थ - अनारतम् = हमेशा ही, अशेषभव्यभृङ्गालिनिषेवितम् = सम्पूर्ण भव्य जीवों रूपी भ्रमरों द्वारा सेवित, चन्द्रप्रभपदाम्भोजं = चन्द्रप्रभ भगवान् के चरणकमल, सर्वदा = सदा ही, नः = हमारे, श्रेयसे = कल्याण के लिये, अस्तु = हों ।

श्लोकार्थ - सम्पूर्ण भव्य जीवों रूपी भ्रमरों से सदा काल सेवित श्री चन्द्रप्रभ भगवान् के चरणकमल हमेशा ही हमारे कल्याण के लिये हों ।

श्रीचन्द्रप्रभदेवस्य वक्ष्ये पूर्वभवान् बुधाः ।

एषां श्रवणमात्रेण पापहानिश्च शुभोदयः ॥२॥

अन्वयार्थ - बुधाः = हे विद्वज्जनों!, अहं = मैं, श्रीचन्द्रप्रभदेवस्य = श्री भगवान् चन्द्रप्रभ के, पूर्वभवान् = पूर्व भवों को, वक्ष्ये = कहता हूँ, एषां = इन पूर्वभवों के, श्रवणमात्रेण = सुनने मात्र से, पापहानिः = पापों की हानि, च = और, शुभोदयः = शुभकर्मों का उदय, (भवति = होता है) ।

श्लोकार्थ - हे विद्वज्जनों! मैं भगवान् चन्द्रप्रभ के पूर्वभवों को कहता हूँ क्योंकि इन पूर्वभवों के श्रवणमात्र से पापों की हानि और शुभ कर्मों का उदय होता है ।

श्रीवर्मा पूर्वमभवत् श्रीधराख्यस्ततस्मृतः ।

ततश्चाजितसेनोऽयं महाराजोऽभवद् भुवि ॥३॥

अन्वयार्थ - (श्री चन्द्रप्रभः = तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभ), पूर्व = पहिले अर्थात् अपने पूर्व के भवों में, श्रीवर्मा = श्रीवर्मा, अभवत् = थे, ततः = उसके बाद, श्रीधराख्यः = श्रीधर नामक, (देवः = देव), स्मृतः = स्मृत हुआ, च = और, ततः = उसके बाद, अयं =

यह, भुवि = पृथ्वी पर, महाराजः = महाराज, अजितसेनः = अजितसेन, अमवत् - हुआ।

श्लोकार्थ - तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभ अपने पूर्व के भवों में पहिले श्रीवर्मा थे उसके बाद श्रीधर नामक देव के रूप में याद किये गये हैं और फिर उसके बाद इस पृथ्वी पर यही अर्थात् चन्द्रप्रभ भगवान् का जीव महाराज अजितसेन हुआ था।

ततो दीक्षां गृहीत्वासौ तपः कृत्वा सुदुष्करम्।

त्यक्त्वासून् तत्र सन्यासात् स्वर्गे षोडशमे गतः ॥४॥

अन्वयार्थ - ततः = उसके बाद, असौ = वह राजा अजितसेन, दीक्षां = मुनिदीक्षा को, गृहीत्वा = ग्रहण करके, सुदुष्करं = अच्छा किन्तु कठिन-कठोर, तपः = तपश्चरण, कृत्वा = करके, तत्र = वहीं अर्थात् मुनिदीक्षा में, सन्यासात् = सन्यास मरण से, असून् = प्राणों को, त्यक्त्वा = छोड़कर, षोडशमे = सोलहवें, स्वर्गे = स्वर्ग में, गतः = चले गये।

श्लोकार्थ - उसके बाद वह राजा अजितसेन, मुनिदीक्षा को ग्रहण करके अच्छा किन्तु कठिन तपश्चरण करके मुनिदीक्षा में ही सन्यास मरण से प्राण छोड़कर सोलहवें स्वर्ग में चले गये।

द्वाविंशतिसमुद्रायुश्च स्वर्गसौख्यं समन्वभूत्।

देवस्त्रीकुमुदनीप्रोद्बोधरजनीकरः ॥५॥

अन्वयार्थ - द्वाविंशतिसमुद्रायुः = बावीस सागर की आयु वाले, च = और, देवस्त्रीनेत्रकुमुदनीप्रोद्बोधरजनीकरः = देवाङ्गनाओं की आँखों रूपी कुमुदनियों को प्रफुल्लित करने के लिये चन्द्रमा के समान, (सः = उस देव ने), स्वर्गसौख्यं = स्वर्ग के सुख को, समन्वभूत् = अच्छी तरह से भोगा।

श्लोकार्थ - बावीस सागर की आयु वाले एवं देवाङ्गनाओं के नेत्रों रूप कुमुदनियों को खिलाने वाले चन्द्रमा के समान उस देव ने स्वर्ग के सुख को अच्छी तरह से भोगा।

विदेहे धातकीखण्डे तथैव पूर्वं उत्तमे।

सीतादक्षिणभागेऽस्ति विषयो मङ्गलावती ॥६॥

अन्वयार्थ — तथा = और, धातकीखण्डे = धातकीखण्ड द्वीप में स्थित, पूर्वे = पूर्व, विदेहे = विदेह क्षेत्र में, उत्तमे = उत्तम, सीतादक्षिणभागे = सीतानदी के दक्षिणवर्ती भाग में, मङ्गलावती = मङ्गलावती नामक, विषयः = देश, अस्ति = है।

श्लोकार्थ — तथा धातकीखण्डद्वीप में स्थित पूर्व विदेह क्षेत्र की सीता नदी के श्रेष्ठ दक्षिण भाग में मङ्गलावती नामक एक देश है।

रत्नसञ्चयनाम्ना च प्रसिद्धं तत्र तत्पुरम् ।

तत्र राजा महानासीत् नाम्नासौ कनकप्रभः ॥७॥

अन्वयार्थ — तत्र = उस मङ्गलावती देश में, तत्पुरं = उस देश का एक नगर, रत्नसञ्चयनाम्ना = रत्नसंचय नाम से, प्रसिद्धं = प्रसिद्ध, (आसीत् = था), तत्र = उस नगर में, महान् = एक महान्, राजा = राजा, आसीत् = था, असौ = वह, नाम्ना = नाम से, कनकप्रभः = कनकप्रभ, (उक्तः = कहा गया)।

श्लोकार्थ — उस मङ्गलावती देश में एक रत्नसंचय नाम का नगर था। उस नगर में कनकप्रभ नाम से महान् राजा कहा गया है।

तस्य राज्ञी महापुण्या नाम्ना कनकवल्लभा ।

तस्य गर्भे स आगत्याऽच्युतस्वर्सुरोत्तमः ॥८॥

पुत्रोऽभवत्पद्मनाभः प्रसिद्धो निजसद्गुणैः ।

सुविद्यांस्वल्पकालेन पपाठ सुकृतोदयात् ॥९॥

अन्वयार्थ — तस्य = उस राजा की, नाम्ना = नाम से, कनकवती = कनकवती, राज्ञी = रानी, महापुण्या = अत्यधिक पुण्यशालिनी, (आसीत् = थी), तस्याः = उस रानी के, गर्भे = गर्भ में, सः = वह, सुरोत्तमः = देव, अच्युतस्वरः = अच्युत स्वर्ग से, आगत्य, पद्मनाभः = पद्मनाम नामक, पुत्र = पुत्र, अभवत् = हुआ, निजसद्गुणैः = अपने सद्गुणों से, प्रसिद्धः = प्रसिद्ध उस बालक ने, सुकृतोदयात् = शुभकर्मों के उदय से, स्वल्पकालेन = थोड़े से काल में, सुविद्यां = सुखकर विद्या को, पपाठ = पढ़ लिया।

श्लोकार्थ -- उस राजा की कनकवती नामक एक अतिशय पुण्यशालिनी रानी थी जिसके गर्भ में अच्युत नामक सोलहवें स्वर्ग से चलकर यह अहमिन्द्र देव आकर पद्मनाभ नामक उसका पुत्र हुआ। जो अपने सद्गुणों से प्रसिद्ध था उसने शुभकर्मों के उदय से अल्पकाल में ही सुखकर विद्या को पढ़ लिया।

राज्यं तस्मै स तारुण्ये दत्त्वा श्री कनकप्रभः ।

स्वयं विरक्तहृद्भूत्वा मनोहरवनं गतः ॥१०॥

अन्वयार्थ -- (पुत्रस्य = पुत्र की), तारुण्ये = तरुण अवस्था प्राप्त होने पर, सः = वह, श्रीकनकप्रभः = श्रीसम्पन्न कनकप्रभ राजा, तस्मै = पुत्र के लिये, राज्यं = राज्य को, दत्त्वा = देकर, स्वयं = खुद, विरक्तहृद् = विरक्त मन वाला, भूत्वा = होकर, मनोहर वनं = मनोहर वन को, गतः = चला गया।

श्लोकार्थ -- पुत्र के तरुण होने पर उसके लिये राज्य देकर वह राजा स्वयं विरक्त मन वाला होकर मनोहर वन को चला गया।

तत्रैव श्रीधरनामानं मुनिं नत्वा प्रसन्नधीः ।

तत्सकाशात्सुजग्राह जैनी दीक्षां तपोवने ॥११॥

अन्वयार्थ -- तत्रैव = उस ही, तपोवने = मनोहर वन में, प्रसन्नधीः = प्रसन्नचित्त बुद्धिमान् राजा ने, श्रीधरनामानं = श्रीधर नामक, मुनिं = मुनि को, नत्वा = प्रणाम करके, तत्सकाशात् = उनके पास से, जैनीं = इन्द्रियों पर विजय कराने वाली, दीक्षां = मुनिदीक्षा को, सुजग्राह = अच्छी तरह ग्रहण कर लिया।

श्लोकार्थ -- उसी मनोहर तपोवन में उन प्रसन्नचित्त बुद्धिमान् राजा ने श्रीधर नामक मुनि को प्रणाम करके उनके पास से इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कराने वाली जैनेश्वरी दीक्षा को अङ्गीकार कर लिया।

तदा स पद्मनाभोऽपि यथोक्तानि जिनागमे ।

श्रावकाणां व्रतान्युच्चैः तथापालयदीश्वरः ॥१२॥

अन्वयार्थ -- तदा = तब, सः = उस, पद्मनाभः = पद्मनाभ, ईश्वरः = राजा ने, अपि = भी, श्रावकाणां = श्रावकों के, उच्चैः = उत्कृष्ट,

व्रतानि = व्रत, यथा = जैसे, जिनागमे = जिनागम में, उक्तानि = कहे हुये हैं, तथा = वैसे, अपालयत् = पालन किये।

श्लोकार्थ -- राजा कनकप्रभ के दीक्षा लेने के बाद उस पद्मनाभ राजा ने श्रावकों के उत्कृष्ट व्रत जैसे जिनागम में कहे गये हैं वैसे ही उनका पालन किया।

निष्पापः पूर्वपुण्यैस्सः राज्यं निष्कण्टकं प्रभुः।

सम्प्राप्य सर्वकार्याणि न्यायतोऽनुदिनं व्यधात् ॥१३॥

अन्वयार्थ -- पूर्वपुण्यैः = पूर्वसंचित पुण्य कर्मों के उदय से, निष्कण्टकं = निष्कण्टक, राज्यं = राज्य को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, निष्पापः = पाप रहित, सः = उस, प्रभुः = राजा ने, अनुदिनं = प्रतिदिन, न्यायतः = न्याय मार्ग से, सर्वकार्याणि = सारे कार्य, व्यधात् = किये।

श्लोकार्थ -- पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म के उदय से निष्कण्टक राज्य प्राप्त करके पापाचरण से रहित उस राजा ने प्रतिदिन न्यायमार्ग से अपने सारे कार्य किये।

राजार्हान् निखिलान् भोगाननुभम् परार्थकृत्।

स्वबाहुवीर्यतश्चक्रे निर्भया निखिलाः प्रजाः ॥१४॥

अन्वयार्थ -- परार्थकृत् = परोपकारी, राजा = उस राजा ने, अर्हान् = अपने योग्य, निखिलान् = सभी, भोगान् = भोगों को, अनुभूय = भोगकर, स्वबाहुवीर्यतः = अपनी भुजा के बल से, निखिलाः = सम्पूर्ण, प्रजाः = प्रजा को, निर्भयाः = भय रहित, चक्रे = कर दिया।

श्लोकार्थ -- परोपकारी उस राजा ने अपने योग्य सारे भोगों को भोगकर अपने बाहु बल से सम्पूर्ण प्रजा को भय रहित कर लिया।

एकस्मिन् समये स्वाभी श्रीधरो वनमागतः।

तस्मै जैनेक्षणोत्सवे वनपालेन ज्ञापितः ॥१५॥

अन्वयार्थ -- एकस्मिन् = एक, समये = समय, जैनेक्षणोत्सवे = जैनमुनि के दर्शन के लिये उत्सुक, तस्मै = उस राजा के लिये,

वनपालेन = वनपाल द्वारा वनम् = वन में, आगतः = आये हुये, स्यामी = मुनिराज, श्रीधरः = श्रीधर, ज्ञापितः = बताया गये।

श्लोकार्थ — एक दिन मुनिदर्शन के लिये अत्यधिक उत्कण्ठित उस राजा के लिये वनपाल ने ज्ञान कराया अर्थात् बताया कि मुनिमहाराज श्रीधर वन में आये हुये हैं।

तदैव स्वकसमाजेन सहितः तत्क्षणान्नृपः ।

गतो मुनेस्समीपं सः नत्वा स्तुत्वा च प्रभुम् ॥१६॥

तत्सकाशात् जैनधर्मान् श्रुत्वा संसारमीश्वरः ।

असारं च मनसा ज्ञात्वा विरक्तोऽभूत्स्वमानसे ॥१७॥

अन्वयार्थ — तदा = तब, सः = वह, नृपः = राजा, स्वकसमाजेन = अपनी समाज के अर्थात् स्वकीय परिवार से, सहितः = युक्त हुआ, तत्क्षणात् = जल्दी से, एव = ही, मुनेः = मुनिराज के, समीपं = पास में, गतः = चला गया, च = और, प्रभुं = मुनिराज को, नत्वा = नमस्कार करके, च = और, स्तुत्वा = स्तुति करके, तत्सकाशात् = उनके पास से, जैनधर्मान् = जैनधर्म के सिद्धान्तों को, श्रुत्वा = सुनकर, च = और, मनसा = मन से, संसारं = संसार को, असारं = सार रहित, ज्ञात्वा = जानकर, ईश्वरः = वह राजा, स्वमानसे = अपने मन में, विरक्तः = विरक्त, अभूत् = हो गया।

श्लोकार्थ — तब अर्थात् मुनिराज आये हैं इस समाचार को जानने पर वह राजा अपने परिवार सहित जल्दी ही मुनिराज के समीप गया तथा उन्हें नमस्कार करके एवं उनकी स्तुति करके, उनके पास से जैनधर्मों अर्थात् जैनसिद्धान्तों को सुनकर, मन से संसार को सार रहित जानकर मन ही मन वैराग्य को प्राप्त हो गया।

राज्यं सुवर्णनाभाय स्वपुत्राय समर्प्य सः ।

बहुभिः भूमिपैस्सार्धं जैर्नी दीक्षां समग्रहीत् ॥१८॥

अन्वयार्थ — सः = उस राजा ने, स्वपुत्राय = अपने पुत्र, सुवर्णनाभाय

= सुवर्णनाभ के लिये, राज्य = राज्य, समर्प्य = समर्पित करके अर्थात् देकर, बहुभिः = अनेक, भूमिपैः = राजाओं के, सार्ध = साथ, जैर्ण = जितेन्द्रियता की, दीक्षां = दीक्षा को, समग्रहीत् = ग्रहण कर लिया।

श्लोकार्थ — विरक्त हुये उस राजा ने अपने पुत्र सुवर्णनाभ के लिये राज्य देकर अनेक राजाओं के साथ जितेन्द्रिय साधना वाली जैनेश्वरी पुनि दीक्षा ग्रहण कर ली।

श्रुत्वैकादशसङ्ख्यानि तत्राङ्गानि स भावनाः ।

भावयित्वा षोडशान्तश्च बबन्ध किल तीर्थकृत् ॥१६॥

अन्वयार्थ — तत्र = मुनि दशा में, सः = उन्होंने, एकादशसङ्ख्यानि = ग्यारह, अङ्गानि = अङ्गों को, श्रुत्वा = सुनकर, च = और, षोडश = सोलह, भावनाः = भावनाओं को, अन्तः = मन में, भावयित्वा = भाकर के, किल = निश्चित रूप से, तीर्थकृत् = तीर्थङ्कर नामकर्म को, बबन्ध = बांधा।

श्लोकार्थ — उस मुनिदशा में उन मुनिराज ने ग्यारह अङ्गों को सुनकर सोलह कारण भावनाओं को मन में भाकर निश्चित ही तीर्थङ्कर प्रकृति को बाँध लिया।

उत्तमानि षट्पञ्चाशन्मितानि च व्रतानि वै ।

जैनान्यादाय विपिने तप उग्रं चकार सः ॥२०॥

अन्वयार्थ — सः = उन मुनिराज ने, मितानि = मर्यादित, च = और, उत्तमानि = उत्तम, षट्पञ्चाशत् = छप्पन, जैणानि = जितेन्द्रिय साधना विषयक, व्रतानि = व्रतों को, आदाय = ग्रहण कर, विपिने = वन में, उग्रं = उत्कृष्ट या कठिनतम, तपः = तपश्चरण को, चकार = किया।

श्लोकार्थ — उन मुनिराज ने मर्यादित और सर्वोत्तम जितेन्द्रिय साधना विषयक छप्पन व्रतों को लेकर वन में उत्कृष्ट या कठिनतम तपश्चरण किया।

अन्त्ये सन्यासविधिना हि तनुत्यागं विधाय सः ।

सर्वार्थसिद्धिविमाने च प्रापायमहमिन्द्रताम् ॥२१॥

अन्ययार्थ — सः = उन मुनिराज ने, अन्त्ये = अंतिम समय में, सन्यासविधिना = सन्यास मरण के विधान से, हि = ही, तनुत्यागं = शरीर का त्याग, विधाय = करके, च = और, सर्वार्थसिद्धिविमाने = सर्वार्थसिद्धि के विमान में, अहमिन्द्रतां = अहमिन्द्रत्व को, प्राप = प्राप्त किया, अयं = यह (अगले श्लोक से इसका सम्बन्ध है)।

श्लोकार्थ — उन मुनिराज ने अंतिम समय में सन्यास मरण विधि से ही शरीर का त्याग करके सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र पद प्राप्त किया।

त्रित्रिंशत्सागरमायुश्च प्राप्य हि तत्पदोचितम् ।

सर्वं विधाय सिद्धानां स्मरणे तत्परोऽभवत् ॥२२॥

अहमिन्द्रसुखं दीर्घं भुञ्जानोऽसौ प्रतिक्षणम् ।

अभूत् षण्मासशिष्टायुः महानिर्मलकान्तिभूत् ॥२३॥

अन्ययार्थ — (अयं = यह अहमिन्द्र देव), त्रित्रिंशत्सागरं = तैतीस सागर, आयुः = आयु को, प्राप्य = प्राप्तकर, च = और, तत्पदोचितं = अहमिन्द्र पद के योग्य, सर्वं = सभी कार्य, विधाय = करके, सिद्धानां = सिद्ध भगवन्तों के, स्मरणे = स्मरण में, तत्परः = तत्पर अर्थात् उद्यत, अभवत् = हो गया।

महानिर्मलकान्तिभूत् = महान् स्वच्छधवल कान्ति वाला, असौ = वह देव, प्रतिक्षणं = एक-एक क्षण करके, दीर्घं = लम्बे काल तक, अहमिन्द्रसुखं = अहमिन्द्र के सुख को, भुञ्जानः = भोगता हुआ, षण्मासशिष्टायुः = छह माह की शेष आयु वाला, अभूत् = हो गया।

श्लोकार्थ — यह अहमिन्द्र देव तैतीस सागर की आयु प्राप्त करके और अपने पद के योग्य सभी कार्य करके सिद्ध भगवन्तों के स्मरण में तत्पर अर्थात् उद्यत हो गया।

विपुलधवल कान्ति से सम्पन्न वह देव एक-एक क्षण करके दीर्घकाल तक अहमिन्द्र के सुखों को भोगता हुआ छह माह की शेष आयु वाला हो गया।

तदा हि जम्बूमति द्वीपे शुचिक्षेत्रे त्र भारते ।

काशीदेशे चन्द्रपुरी स्वसमृद्ध्यालकेव सा ॥२४॥

अन्वयार्थ — तदा = उस समय, जम्बूमति = जम्बूवृक्ष वाले, द्वीपे = द्वीप में, शुचिक्षेत्रे = पवित्र आर्य क्षेत्र में, अत्र = यहाँ, भारते = भारत में, काशीदेशे = काशी देश में, चन्द्रपुरी = चन्द्रपुरी, (आसीत् = थी), सा = वह, स्वसमृद्ध्या = अपनी समृद्धि से, सा — वह अलका इव = अलका नगरी के समान (आसीत् = थी) ।

श्लोकार्थ — उस समय जम्बूद्वीप के इस भरतक्षेत्रवर्ती आर्यक्षेत्र में स्थित काशी देश में चन्द्रपुरी अपनी समृद्धि से अलका नगरी के समान सुशोभित थी ।

तत्रेक्ष्वाकुमहावंशे गोत्रे काश्यप उत्तमे ।

महासेनाभिधो राजा बभूवादद्भुतभाग्यभृत् ॥२५॥

अन्वयार्थ — तत्र = उस नगरी में, इक्ष्वाकुमहावंशे = इक्ष्वाकु नामक महान् वंश में, उत्तमे = श्रेष्ठ, काश्यपे = काश्यप, गोत्रे = गोत्र में, अद्भुतभाग्यभृत् = अद्भुतभाग्य से पूर्ण, महासेनाभिधः = महासेन नामक, राजा = एक राजा, बभूव = हुआ था ।

श्लोकार्थ — उस नगरी में महान् इक्ष्वाकुवंश में एवं उत्तम काश्यप गोत्र में एक अद्भुत भाग्यशाली राजा महासेन हुआ था ।

लक्ष्मणानामतस्तस्य देवी प्रोक्ता सुलक्षणा ।

तस्यास्सद्मनि देवेन्द्रनिर्देशादलकाधिपः ॥२६॥

षाण्मासिकी रत्नवृष्टिं मेघवत्खमुपागतः ।

चकार यक्षैस्सहितस्सार्धकैर्जलदैरिव ॥२७॥

अन्वयार्थ — तस्य = उस राजा की, सुलक्षणा = शुभ लक्षणों वाली, देवी = रानी, नामतः = नाम से, लक्ष्मणा = लक्ष्मणा, प्रोक्ता = कही गई, तस्याः = उस रानी के, सद्मनि = महल में, देवेन्द्रनिर्देशात् = देवेन्द्र के निर्देश से, खमुपागतः = आकाश में स्थित हुये, अलकाधिपः = अलका नगरी के कोषाधिपति कुबेर ने, सार्धकैः = सहवर्ती, जलदैः = बादलों के समान,

यक्षैः = यक्षों से, सहितः = होता हुआ, मेघवत् = मेघ के समान, षाण्मासिकी = छह माह तक, रत्नवृष्टिं = रत्नों की बरसात, चकार = की।

श्लोकार्थ - उस राजा की शुभ लक्षणों वाली लक्ष्मणा नाम की एक रानी थी। जिसके महल में इन्द्र की आज्ञा से आकाश में स्थित होकर इन्द्र नगरी अलका के कोष के स्वामी कुबेर ने अपने यक्षों से सहित होकर वैसे ही छह माह तक रत्नों की वर्षा की जैसे अन्य सहवर्ती बादलों से युक्त होकर बादल पानी बरसाते हैं।

एकदा लक्ष्मणादेवी चैत्रमासे सितेतरे ।
 पञ्चम्यां शुभनक्षत्रे ज्येष्ठानाम्नि प्रभातके ॥२८॥
 सुप्ता विचित्रपर्यङ्के स्वप्नान् षोडश चैक्षत ।
 स्वप्नान्ते तन्मुखाम्भोजमविशन्मत्तवारणः ॥२९॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, चैत्रमासे = चैत्र मास में, सितेतरे = कृष्ण पक्ष में, पञ्चम्यां = पञ्चमी में, ज्येष्ठानाम्नि = ज्येष्ठा नामक, शुभनक्षत्रे = शुभनक्षत्र में, प्रभातके = प्रभात बेला अर्थात् रात्रि के अंतिम प्रहर में, विचित्रपर्यङ्के = विचित्र पलंग पर, सुप्ता = सोयी हुयी, लक्ष्मणादेवी = लक्ष्मणा रानी ने, षोडश = सोलह, स्वप्नान् = स्वप्नों को, ऐक्षत = देखा, च = और, स्वप्नान्ते = स्वप्न दर्शन के अन्त में, मत्तवारणः = एक मदोन्मत्त हाथी, तन्मुखाम्भोजम् = उस रानी के मुख रूपी कमल में, अविशत् = प्रविष्ट हुआ।

श्लोकार्थ - एक दिन चैत्र कृष्णा पञ्चमी को ज्येष्ठा नामक शुभनक्षत्र में प्रभातकाल अर्थात् रात्रि के अंतिम प्रहर में अपने रत्न खचित आश्चर्यकारी पलंग पर सोती हुई लक्ष्मणा रानी ने सोलह स्वप्न देखे तथा स्वप्न देखने के अंत में एक मदोन्मत्त हाथी अपने मुख कमल में प्रविष्ट हुआ— यह देखा।

प्रबुद्धैव विलोयथाध मता सा पत्युरन्तिकम् ।
 तस्मात्स्वप्नफलं श्रुत्वा जहर्षातीव मानसे ॥३०॥

अन्वयार्थ — एवं = इस प्रकार स्वप्नों को, विलोक्य = देखकर, प्रबुद्धा = जागी हुयी, सा = वह रानी, पत्युः = पति के, अन्तिकं = पास, गता = गयी, अथ = फिर, तस्मात् = पति से, स्वप्नफलं = स्वप्नों का फल, श्रुत्वा = सुनकर, मानसे = मन में, अतीव = अत्यधिक, जहर्ष = प्रसन्न हुई।

श्लोकार्थ — इस प्रकार स्वप्नों को देखकर जागी हुई वह रानी राजा के पास गयी तथा राजा से स्वप्नों का फल जानकर—सुनकर मन में अत्यंत प्रसन्न हुई।

धृत्वा गर्भेऽहमिन्द्रं सा रराज विशदद्युतिः ।

राकेव गर्भिणा व्योम्नि शारदीय निशोज्ज्वला ॥३१॥

अन्वयार्थ — विशदद्युतिः = निर्मल कान्ति सम्पन्न, गर्भे = गर्भ में, अहमिन्द्रं = अहमिन्द्र को, धृत्वा = धारण कर, गर्भिणा = गर्भ युक्त, सा = वह रानी, व्योम्नि = आकाश में, शारदीयनिशोज्ज्वला = शरत्काल की रात्रियों में चमकती—दमकती स्वच्छ, राकेव = पूर्णिमा की रात्रि के समान, रराज = सुशोभित हुई।

श्लोकार्थ — अपने गर्भ में अहमिन्द्र को धारण कर गर्भयुक्त हुयी निर्मल कान्ति से सम्पन्न वह रानी उसी प्रकार सुशोभित हुई जैसे आकाश में शरत्काल की रात्रियों में पूर्णतः चमकती—दमकती पूर्ण स्वच्छ पूर्णिमा की रात्रि सुशोभित होती है।

सहस्यशुक्लैकादश्यां सुषुवे पुत्रमुत्तमम् ।

सा देव्यथ त्रिलोकीशं मतिश्रुत्यवधीश्वरम् ॥३२॥

अन्वयार्थ — सा = उस, देवी = रानी ने, सहस्यशुक्लैकादश्यां = पौषशुक्ला ग्यारस के दिन, मतिश्रुत्यवधीश्वरं = मति—श्रुत और अवधिज्ञान के स्वामी, उत्तमं = उत्तम, त्रिलोकीशं = तीन लोक के प्रभु तीर्थङ्कर, पुत्रं = पुत्र को, सुषुवे = जन्म दिया।

श्लोकार्थ — उस रानी ने पौष शुक्ला ग्यारस के दिन मति, श्रुत और अवधिज्ञान स्वामी, उत्तम, त्रिलोकीनाथ तीर्थङ्कर पुत्र को उत्पन्न किया।

सौधर्मन्दस्तदागत्य चैशानेन्द्रसमन्वितः ।

तमुपादाय देवेशं जगाम कनकाचलम् ॥३३॥

अन्ययार्थ — तदा = तब अर्थात् तीर्थङ्कर पुत्र का जन्म होने पर, ऐशानेन्द्रसमन्वितः = ऐशान स्वर्ग के इन्द्र सहित, सौधर्मन्दः = सौधर्म इन्द्र, (तत्र = वहाँ), आगत्य = आकर, तं = उन, देवेशं = देवताओं के स्वामी तीर्थङ्कर बालक को, आदाय = ग्रहण करके, कनकाचलं = स्वर्णमय मेरु पर्वत या सुमेरु पर, जगाम = चला गया ।

श्लोकार्थ — तीर्थङ्कर पुत्र का जन्म हो जाने पर तभी सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र ऐशान स्वर्ग के इन्द्र के साथ वहाँ आकर और उन तीर्थङ्कर बालक को लेकर स्वर्णमय सुमेरु पर्वत पर चला गया ।

तत्रासौ कानकैर्कुम्भैः क्षीराब्धिजलपूरितैः ।

देवमस्नापयद् भक्त्या जयशब्दं समुच्चरन् ॥३४॥

अन्ययार्थ — तत्र = सुमेरु पर्वत पर, असौ = उस इन्द्र ने, जयशब्दं = जय-जयकार शब्द, समुच्चरन् = बोलते हुये, भक्त्या = भक्ति से, क्षीराब्धिजलपूरितैः = क्षीरसागर के जल से भरे हुये, कानकैः = स्वर्ण निर्मित, कुम्भैः = कलशों से, देवं = तीर्थङ्कर बालक का, अस्नापयत् = स्नान या अभिषेक किया ।

श्लोकार्थ — उस सुमेरु पर्वत पर उस इन्द्र ने भक्ति भाव से जय जय शब्दों का उदघोष करते हुये क्षीरसागर के जल से भरे हुये स्वर्ण निर्मित कलशों से भगवान् का अभिषेक किया ।

पुनरागत्य तत्रैव यत्राभूदीश्वरोदयः ।

तं दिव्यवस्त्राभरणैः संपूज्यासौ नृपाङ्गणे ॥३५॥

तदग्रे ताण्डवं कृत्वा साङ्गहारं महाद्भुतम् ।

चन्द्रप्रभेति देवस्य नामोच्चार्य प्रसन्नधीः ॥३६॥

लक्ष्मणाङ्के प्रभुं प्रेम्णा संस्थाप्य सह देवतैः ।

मुहुः प्रणम्य देवेशं देवेशोऽगात्सुरालयम् ॥३७॥

अन्यार्थ - यत्र = जहाँ, ईश्वरोदयः = भगवान् का जन्म, अभूत् = हुआ था, तत्रैव = वहीं, पुनः = फिर से, आगत्य = आकर, दिव्यवस्त्राभरणैः = देवोपनीत वस्त्र और, आभूषणों से, तं = उसको, संपूज्य = पूजकर, भूषाङ्गणे = राजा के आँगन में, तदग्रे = उनके सामने, महाद्भुतं = अत्यधिक आश्चर्यकारी, साङ्गहारं = अङ्गहार अर्थात् हाव विलास सहित, ताण्डवं = ताण्डव नृत्य, कृत्वा = करके, देवस्य = भगवान् का, चन्द्रप्रभेति = चन्द्रप्रभ ऐसा, नाम = नाम, उच्चार्य = कहकर, प्रसन्नधीः = प्रसन्नचित्त बुद्धिमान्, असौ = वह, देवेशः = तीर्थङ्कर, प्रभुं = चन्द्रप्रभ को, लक्ष्मणाङ्के = लक्ष्मणा रानी की गोद में, संस्थाप्य = स्थापित करके, मुहुः = बार-बार, प्रणम्य = प्रणाम करके देवतैः = देवताओं के, सह = साथ, सुरालयं = स्वर्ग को, अगात् = चला गया।

श्लोकार्थ - जहाँ भगवान् का जन्म हुआ था वहीं फिर से आकर दिव्य वस्त्रों और आभरणों से उनको पूजकर राजा के आँगन में उनके सामने अत्यधिक आश्चर्यकारी हावविलासपूर्ण ताण्डव नृत्य करके और भगवान् का चन्द्रप्रभ नामकरण करके प्रसन्नबुद्धि वाला वह देवेश प्रभु को प्रेम से माता लक्ष्मणा की गोद में स्थापित करके और बार-बार उन्हें प्रणाम करके देवताओं के साथ स्वर्ग चला गया।

चन्द्रं स्वकान्त्या निर्जित्य देवोऽयं चन्द्रलाञ्छनः ।

जगत्तापहरो भूत्वा दिदीपे राजवेशमनि ।।३८।।

अन्यार्थ - चन्द्रलाञ्छनः = चन्द्रमा के चिन्ह से लांछित, अयं = यह, देवः = तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभ, स्वकान्त्या = अपनी कान्ति से, चन्द्रं = चन्द्रमा को, निर्जित्य = जीतकर, जगत्तापहरः = जगत् का ताप हरने वाले, भूत्वा = होकर, राजवेशमनि = राजमहल में, दिदीपे = चमके अर्थात् सुशोभित हुये।

श्लोकार्थ - चन्द्रमा के चिन्ह से चिन्हित यह देव तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभ अपनी कान्ति से चन्द्रमा को जीतकर जगत् का ताप हरने वाले होकर राजमहल में सुशोभित हुये।

नवशतकोट्युक्तसागरेषु गतेषु वै सुपार्श्वतः ।

देवश्चन्द्रप्रभुरभवत् महान् धर्मप्रभावकः ॥३६॥

अन्ययार्थ — सुपार्श्वतः = तीर्थङ्कर सुपार्श्वनाथ से, नवशतकोट्युक्तसागरेषु = नौ सौ करोड़ सागर, गतेषु = बीत जाने पर, वै = निश्चय ही, महान् = महान्, धर्मप्रभावकः = धर्म की प्रभावना करने वाले, देवः = भगवान्, चन्द्रप्रभुः = चन्द्रप्रभु, अभवत् = हुये थे ।

श्लोकार्थ — तीर्थङ्कर सुपार्श्वनाथ के मुक्त हो जाने पर उससे आगे नौ सौ करोड़ सागर काल बीत जाने पर यर्थाथतः महान् धर्म की प्रभावना करने वाले भगवान् चन्द्रप्रभु हुये थे ।

दशलक्षोक्तपूर्वाणामायुस्तस्य च कीर्तितम् ।

सार्धशतधनुत्सेधो हि कायस्तस्य निगीरितः ॥४०॥

सार्धद्विलक्षपूर्वो हि व्यतीतो बालकौतुके ।

मनोहर्ता च सर्वेषां रूपलावण्यसम्पदा ॥४१॥

कुमारकालगमने सञ्जाते यौवनागमे ।

अभिषेकाभिधानेन राज्यं सम्प्राप पैतृकम् ॥४२॥

अन्ययार्थ — तस्य = उन चन्द्रप्रभु की, आयुः = उम्र, दशलक्षोक्तपूर्वाणाम् = दश लाख पूर्व की, हि = ही, कीर्तितम् = कही गयी है, च = और, तस्य = उनकी, कायः = देह, सार्धशतधनुत्सेधः = एक सौ पचास धनुष ऊँचाई वाली, निगीरितः = बतायी गयी है, बालकौतुके = बालक्रीड़ाओं को करने में, हि = ही, सार्धद्विलक्षपूर्वः = अढ़ाई लाख पूर्व काल, व्यतीतः = बीत गया, (प्रभुः = भगवान्), रूपलावण्यसम्पदा = रूप लावण्य की सम्पदा से, सर्वेषां = सभी के, मनोहर्ता = मन को हरने वाले, (आसीत् = थे), कुमारकालगमने = कुमारकाल के चले जाने पर, यौवनागमे = युवावस्था का आगम, सञ्जाते = हो जाने पर, (सः = उन्होंने), अभिषेकविधानेन = अभिषेक करने की विधि द्वारा, पैतृकम् = प्राप्त किया ।

श्लोकार्थ — चन्द्रप्रभु की आयु दशलाखपूर्व की बतायी गयी उनके शरीर

की ऊँचाई एक सौ पचास धनुष प्रमाण थी। उन्होंने ढाई लाख पूर्व का काल बाल्यकाल की कौतुक क्रीड़ाओं में ही व्यतीत कर दिया। अपनी रूप लावण्य की सम्पदा से वे सभी का मन हरण करने वाले थे। इस प्रकार कुमारकाल के चले जाने पर और यौवन अवस्था का आगम हो जाने पर उन्होंने अभिषेक पूर्वक पैतृक राज्य सम्पदा प्राप्त कर ली।

भूपासनसमासीनो भगवान् धर्मवारिधिः ।

न्यायतोऽखिलकार्याणि चकार सह मन्त्रिभिः ॥४३॥

अन्वयार्थ — भूपासनसमासीनः = राजा के आसन पर बैठे, धर्मवारिधिः = धर्म के जानकार, भगवान् = चन्द्रप्रभु ने, मन्त्रिभिः = मंत्रियों के, सह = साथ, न्यायतः = न्याय मार्ग से, अखिलकार्याणि = सम्पूर्ण कार्य, चकार = किये।

श्लोकार्थ — राज्य सिंहासन पर बैठे हुये धर्म के जानकार भगवान् तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभु ने मंत्रियों के साथ न्यायपूर्वक सारे कार्य किये।

शक्रादप्यधिकं सौख्यं प्रतिक्षणमसौ प्रभुः ।

अन्वभूद्विविधं पुण्यैः पूर्वजन्मनि सञ्चितैः ॥४४॥

अन्वयार्थ — पूर्वजन्मनि = पूर्वजन्म में, सञ्चितैः = संचित, पुण्यैः = पुण्यों के कारण, असौ = उस, प्रभुः = राजा ने, प्रतिक्षणं = हर समय, शक्रात् = इन्द्र से, अपि = भी, अधिकं = अत्यधिक, विविधं = अनेक प्रकार का, सौख्यं = सुख को, अन्वभूत् = भोगा।

श्लोकार्थ — पूर्व जन्म में संचित पुण्यों के कारण उस राजा ने हर समय इन्द्र से भी अधिक अनेक प्रकार का सुख भोगा।

कदाचित्सौधमारुह्य सुखासीनः प्रजापतिः ।

खादुल्कापातमालोक्य विरक्तोऽभूत् स तत्क्षणात् ॥४५॥

अन्वयार्थ — कदाचित् = किसी दिन, सौधम् = महल पर, आरुह्य = चढ़कर, सुखासीनः = सुख से बैठा हुआ, सः = वह, प्रजापतिः

= राजा, खात् = आकाश से, उल्कापातं = तारे को गिरता हुआ, आलोक्य = देखकर, तत्क्षणात् = उसी समय, विरक्तः = विरक्त, अभूत् = हो गया।

श्लोकार्थ – किसी दिन महल पर चढ़कर सुख से बैठा हुआ वह राजा आकाश में उल्कापात अर्थात् गिरते हुये तारे को देखकर उसी समय विरक्त हो गया।

ब्रह्मर्षिभिस्तदैवेत्या वन्दितस्संस्तुतः प्रभुः।

राज्यं श्रीवरचन्द्राय सुपुत्राय समाप्यत् ॥४६॥

अन्वयार्थ – तदैव = उसी समय अर्थात् राजा के विरक्त हो जाने पर ही, ब्रह्मर्षिभिः = ब्रह्मर्षि नामक लौकान्तिक देवों द्वारा, वन्दितः = नमस्कार किये जाते हुये, (च = और), संस्तुतः = स्तुति किये जाते हुये, प्रभुः = राजा ने, इत्या = जाकर, सुपुत्राय = सुपुत्र, श्रीवरचन्द्राय = श्रीवर चन्द्र के लिये, राज्यं = राज्य, समाप्यत् = समर्पित कर दिया।

श्लोकार्थ – उसी समय अर्थात् राजा के विरक्त हो जाने पर ही ब्रह्मर्षि नामक लौकान्तिक देवों द्वारा नमस्कार किये जाते हुये और स्तुति किये जाते हुये, प्रभुः = राजा ने सुपुत्र श्रीवर चन्द्र के लिये राज्य समर्पित कर दिया।

देवोपनीतां शिविकामरुह्य सुरसुन्दरीम्।

देवैरुढो वनं गत्वा विधिवद्दीक्षितोऽभवत् ॥४७॥

अन्वयार्थ – देवोपनीतां = देवों द्वारा लायी गयी, सुरसुन्दरीं = सुरसुन्दरी नामक, शिविकां = शिविका पर, आरुह्य = चढ़कर, देवैः = देवों द्वारा, ऊढः = वहन किया जाता अर्थात् ले जाता हुआ, वनं = वन को, गत्वा = जाकर, विधिवत् = विधिपूर्वक, दीक्षितः = दीक्षित, अभवत् = हो गया।

श्लोकार्थ – देवों द्वारा लायी गयी सुरसुन्दरी नामक शिविका पर चढ़कर देवों द्वारा ले जाता हुआ, वन को जाकर विधिपूर्वक दीक्षित हो गया।

एकादश्यां कृष्णपौषस्थानुराधोदुनि ध्रुवम् ।
 तत्र चैकोपवासेन सहस्रक्षितिपैस्सह ॥४८॥
 दीक्षां गृहीत्वा सोऽन्यस्मिन् दिवसे नलिनं पुरम् ।
 चतुर्थबोधसम्पन्नो भिक्षायै पर्यटत् प्रभुः ॥४९॥
 सोमदत्तो नृपस्तत्र भक्त्या संपूज्य तं प्रभुम् ।
 अदादाहारममलं पंचाश्चर्यानि हि चैक्षत ॥५०॥
 पुनर्मौं न समादाय तपोवनं गतो विभुः ।
 महाव्रतानि पञ्चासौ पालयामास धर्मवित् ॥५१॥

अन्वयार्थ — तत्र = वहाँ, कृष्णपौषस्य = पौष मास में कृष्ण पक्ष की, एकादश्यां = एकादशी के दिन, अनुराधोदुनि = अनुराधा नक्षत्र में, सहस्रक्षितिपैः = एक हजार राजाओं के, सह = साथ, एकोपवासेन, एक उपवास के नियम से, ध्रुवं = दृढ़ता पूर्व, दीक्षां = मुनिदीक्षा को, गृहीत्वा = ग्रहण करके, च = और, चतुर्थबोधसम्पन्नः = चौथेज्ञान से सम्पन्न, सः = उन, प्रभुः = मुनिराज ने, अन्यस्मिन् = अन्य, दिवसे = दिन में, भिक्षायै = आहार के लिये, नलिनं = नलिन, पुरं = पुर में, पर्यटत् = भ्रमण किया ।

तत्र = उस नगर में, नृपः = राजा, सोमदत्तः = सोमदत्त ने, भक्त्या = भक्ति से, तं = उन, प्रभुं = मुनिराज को, संपूज्य = पूजकर, (तस्मै = उनके लिये), अमलं = शुद्ध-निर्मल, आहारम् = आहार, अदात् = दिया, च = और, पञ्च = पाँच, आश्चर्याणि = आश्चर्य, ऐक्षत = देखे ।

मौनं = मौनव्रत, समादाय = लेकर, पुनः = फिर से, तपोवनं = तपोवन को, गतः = गये हुये, असौ = उन, धर्मवित् = धर्मवेत्ता, विभुः = मुनिराज ने, पञ्च = पाँच, महाव्रतानि = महाव्रतों का पालयामास = पालन किया ।

श्लोकार्थ — वहाँ वन में पौष कृष्ण एकादशी के दिन अनुराधा नक्षत्र में एक हजार राजाओं के साथ एक उपवास के नियम पूर्वक दृढ़ता सहित मुनिदीक्षा लेकर और चतुर्थ मनःपर्ययज्ञान से

सम्पन्न उन मुनिराज ने किसी अन्य दिन आहार के लिये आहार हेतु नलिन पुर में भ्रमण किया। वहाँ राजा सोमदत्त ने भक्ति से उन मुनिराज की पूजा करके उन्हें शुद्ध आहार दिया और पांच आश्चर्यों को देखा। मौनव्रत लेकर मुनिराज पुनः वन में चले गये और पंच महाव्रतों का पालन करने लगे।

संधृत्य पञ्चसमितीः गुप्तित्रितयमीश्वरः ।

त्रयोदशविधं भूयः चरित्रं समुपागमत् ॥५२॥

ततः स्वचित्ते संधार्य शुक्लध्यानं चतुर्विधम् ।

कृष्णफाल्गुनसप्तम्यां पञ्चमं ज्ञानमाप सः ॥५३॥

अन्ययार्थ — सः = उन, ईश्वरः = मुनिराज ने, पञ्चसमितीः = पाँच समितियों, (च = और) गुप्तित्रितयं = तीन गुप्तियों को, संधृत्य = धारण करके, त्रयोदशविधं = तेरह प्रकार का, भूयः = प्रचुर, चरित्रं = समुपागमत् = प्राप्त कर लिया, ततः = उससे आगे, चतुर्विधं = चार प्रकार का, शुक्लध्यानं = शुक्लध्यान को, स्वचित्ते = अपने मन में, संधार्य = धारण करके, सः = उन्होंने, कृष्णफाल्गुनसप्तम्यां = फाल्गुन कृष्ण सप्तमी के दिन, पञ्चमं = पाँचवें, ज्ञानम् = केवलज्ञान को, आप = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ — उन मुनिराज ने पाँच समितियों और तीन गुप्तियों को धारण करके तेरह प्रकार के चरित्र को प्रचुरता से प्राप्त कर लिया तथा उससे भी आगे पुरुषार्थ करते चार प्रकार के शुक्लध्यान अपने मन में धारण करके फाल्गुन कृष्ण सप्तमी के दिन पाँचवें ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

ततः शक्राज्ञया देवनिर्मिते परमाद्भुते ।

गतो समवसारेऽसौ व्यराजत् रविर्यथा ॥५४॥

अन्ययार्थ — ततः = उसके बाद, शक्राज्ञया = इन्द्र की आज्ञा से, देवनिर्मिते = देवों द्वारा बनाये गये, परमाद्भुते = परमआश्चर्यकारी, समवसारे = समवसरण में, गतः = स्थित, असौ = वह भगवान्, (तथा = वैसे), व्यराजत् = सुशोभित

हुये, यथा = जैसे, रविः = सूर्य, (नभसि = आकाश में),
(शोभते = शोभित होता है)।

श्लोकार्थ — मुनिराज को केवलज्ञान हो जाने के बाद इन्द्र की आज्ञा से देवों द्वारा बनाये गये परम आश्चर्य कारी समवसरण में स्थित भगवान् वैसे ही सुशोभित हुये जैसे सूर्य आकाश में शोभता है।

यथोक्तदत्तसेनाख्यगणेन्द्राद्यैस्तदाखिलैः।

पूजितो मुनिः सम्पृष्टः स दिव्यध्वनिमाकरोत् ॥५५॥

अन्वयार्थ ... अखिलैः = सम्पूर्ण, यथोक्तदत्तसेनाख्यगणेन्द्राद्यैः = शास्त्रों में कहे गये अनुसार दत्तसेन नामक गणधर मुनिराजों आदि से, पूजितः = पूजा किये जाते हुए, मुनिः = केवलज्ञानी भगवान्, सम्पृष्टः = पूछे गये, तदा = तब, सः = उन्होंने, दिव्यध्वनिं = दिव्यध्वनि को, आकरोत् = किया।

श्लोकार्थ — दत्तसेन नामक शास्त्रोक्त गणधरों और अन्य मुनिराजों आदि द्वारा पूजे गये वह भगवान् पूछे गये तब उन्होंने दिव्यध्वनि द्वारा उपदेश दिया।

घटान्तललिते कूटे सहस्रमुनिभिस्सह ।

शुक्लाष्टम्यां स भाद्रस्य निर्वाणपदमाप्तवान् ॥५६॥

अन्वयार्थ ... सः = उन्होंने, भाद्रस्य = भादों मास की, शुक्लाष्टम्यां = शुक्लाष्टमी के दिन, सहस्रमुनिभिः = एक हजार मुनियों के साथ, घटान्तललिते = घटाओं अर्थात् मेघों से व्याप्त ललित, कूटे = कूट पर, निर्वाणपदं = मोक्षपद को, आप्तवान् = प्राप्त किया।

श्लोकार्थ — उन्होंने भाद्र मास की शुक्ला की अष्टमी को एक हजार मुनिराजों के साथ मेघाच्छन्न ललित कूट पर मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया।

यतुःपराकोट्यर्बुदा द्विसप्तति घ कोट्यः।

अशीतिलक्षाश्चतुरशीतिसहस्रकाणि च ॥५७॥

पञ्चपञ्चाशत् पराणि तथा पञ्चशतानि च ।

एतत्संख्योदीरिताश्च चन्द्रप्रभविभुमनु ॥५८॥

घटाललितात्कूटात् शुक्लध्यानं समाश्रिताः ।

केवलावगमाच्छुद्धा मुनयस्तत्पदं गताः ॥५९॥

अन्वयार्थ — चन्द्रप्रभविभुमनु :: चन्द्रप्रभ भगवान् के बाद, घटान्तललितात् = मेघों की घटाओं से अन्तर्व्याप्त ललित, कूटात् = कूट से, चतुःपराकोट्यर्बुदाः = चार पराकोटि अर्थात् अरब, द्विसप्ततिकोट्यः = बहत्तर करोड़, अशीतिलक्षाः = अस्सी लाख, चतुरशीतिसहस्रकाणि = चौरासी हजार, पञ्चशतानि = पाँच सौ, पराणि = आगे तदुत्तर, पञ्चपञ्चाशत् = पचपन, एतत्संख्योदीरिताः = इस संख्या से कहे गये, शुक्लध्यानं = शुक्लध्यान को, समाश्रिताः = समाश्रित किये अर्थात् धारण किये हुये, केवलावगमात् = केवलज्ञान से, शुद्धाः = शुद्ध, मुनयः = मुनिराज, तत्पदं = मोक्षस्थान को, गताः = गये ।

श्लोकार्थ — चन्द्रप्रभु भगवान् के बाद मेघों की घटाओं से व्याप्त ललित कूट से चार अरब बहत्तर करोड़ अस्सी लाख चौरासी हजार पाँच सौ पचपन मुनिराज जो केवलज्ञान से शुद्ध और शुक्लध्यान के आश्रय वाले थे, मोक्ष स्थान को गये अर्थात् उन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया ।

पश्चात्तललितदत्तेन गिरियात्रा कृता शुभा ।

तत्कथासङ्ग्रहं वक्ष्ये शृणुध्वं साधवो जनाः ॥६०॥

अन्वयार्थ — पश्चात् = भगवान् के मोक्ष गमन के बाद, ललितदत्तेन = ललितदत्त द्वारा, शुभा = शुभकारी, गिरियात्रा = सम्मेदपर्वत तीर्थवन्दना, कृता = की, साधवो जनाः = हे साधु मनुष्यो!, शृणुध्वं = सुनो, तत्कथासङ्ग्रहं = उस कथा के सारसंक्षेप को, वक्ष्ये = मैं कहता हूँ ।

श्लोकार्थ — भगवान् के मोक्षगमन के बाद ललितदत्त ने शुभकारी सम्मेदशिखर की यात्रा की थी मैं कवि उसकी कथा का सार संक्षेप कहता हूँ हे साधुजनो! तुम उसे सुनो ।

प्रसिद्धे पुष्करद्वीपे चतुर्थे मेरुमन्दरे ।
 तत्र पूर्वविदेहे च सीतापश्चिमदिक्कटे ॥६१॥
 विषये पुष्कलावत्यां पुण्डरीकाख्यसत्पुरे ।
 महासेनोऽभवद्राजा महाबलपराक्रमः ॥६२॥

अन्वयार्थ - प्रसिद्धे = विख्यात, पुष्करद्वीपे = पुष्करवर द्वीप में, चतुर्थे = चौथे, मेरुमन्दरे = मेरुमन्दिर पर, तत्र = वहाँ, पूर्वविदेहे = पूर्व विदेह क्षेत्र में, च = और, सीतापश्चिमदिक्कटे = सीता नदी के पश्चिम दिशावर्ती तट पर, पुष्कलावत्यां = पुष्कलावती नामक, विषये = देश में, पुण्डरीकाख्यसत्पुरे = पुण्डरीक नामक सुन्दर नगर में, महाबलपराक्रमः = महान् बल और पराक्रम वाला, राजा = राजा, महासेनः = महासेन, अभवत् = हुआ ।

श्लोकार्थ - सुप्रसिद्ध पुष्करद्वीप में चतुर्थमेरु मन्दर पर स्थित पूर्वविदेह क्षेत्र में सीता नदी के पश्चिमदिशावर्ती तट पर पुष्कलावती देश है वहाँ पुण्डरीक नामक एक सुन्दर नगर है जिसमें महाबलवान् और पराक्रमी राजा महाबल राज्य करता था ।

राज्ञी तस्य महासेना शीलसौन्दर्यशालिनी ।

पत्युः प्राणप्रिया देवी पत्यभिप्रायसाधनात् ॥६३॥

अन्वयार्थ - तस्य = उस महाबल राजा की, महासेना = महासेना नामक, शीलसौन्दर्यशालिनी = शीलवती और सौन्दर्यशालिनी, राज्ञी = रानी, (आसीत् = थी), पत्यभिप्रायसाधनात् = पति के अभिप्राय को साधने वाली होने से, (सा = वह, देवी = रानी), पत्युः = पति के लिये, प्राणप्रिया = प्राणों से भी प्रिय, (आसीत् = थी) ।

श्लोकार्थ - उस राजा महाबल राजा की महासेना नामक शीलवती और सौन्दर्य से परिपूर्ण रानी थी वह रानी पति के अभिप्राय अनुसार कार्य साधने वाली होने से पति के लिये प्राणों से भी अधिक प्यारी थी ।

एकदा स वनं यातो महासेनः प्रतापवान् ।

मुनिं ददर्श तत्रासौ तापसं निर्मलप्रभम् ॥६४॥

तं पृष्ट्वा च प्रणम्याध विरक्तःस्वीयराज्यतः ।

दीक्षां जग्राह धर्मात्मा तपश्चक्रे स निर्मलम् ॥६५॥

अन्वयार्थ — एकदा = एक दिन, सः = वह, प्रतापवान् = प्रतापी राजा, महासेनः = महासेन, वनं = वन को, यातः = गया था, तत्र = वहाँ, असी = उसने, निर्मलप्रभं = निर्मल प्रभा वाले, तापसं = तपस्वी, मुनिं = मुनिराज को, ददर्श = देखा, तं = उन मुनिराज को, प्रणम्य = नमस्कार करके, च = और, पृष्ट्वा = पूँछकर, स्वीयराज्यतः = अपने राज्य से, विरक्तः = विरक्त हुये उस, धर्मात्मा = धर्मात्मा ने, दीक्षां = जैनेश्वरी दीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया, अथ = और, निर्मलं = मल रहित अर्थात् निर्दोष, तपः = तपश्चरण, चक्रे = किया ।

श्लोकार्थ — एक बार वह प्रतापी महासेन वन में गया वहाँ उसने निर्मल स्वच्छ कान्ति वाले तपस्वी मुनिवर्य को देखा उन्हें प्रणाम करके और पूँछकर वह धर्मात्मा राजा अपने राज्य से विरक्त हो गया और उसने मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली तथा निर्दोष तपश्चरण किया ।

देहान्ते पञ्चमे स्वर्गे देवोभूत्स तपोबलात् ।

बुभोज देवसौख्यं स देवस्त्रीनेत्रमोदकः ॥६६॥

अन्वयार्थ — देहान्ते = देह का अंत अर्थात् मरण होने पर, सः = वह मुनिराज, तपोबलात् = तपबल से, पञ्चमे = पाँचवें, स्वर्गे = स्वर्ग में, देवः = देव, अभूत् = हुआ, देवस्त्रीनेत्रमोदकः = देवस्त्रियों अर्थात् देवाङ्गनाओं के नेत्रों को प्रसन्न करने वाले, सः = उस देव ने, देवसौख्यं = देवोचित सुख को, बुभोज = भोगा ।

श्लोकार्थ — मरण हो जाने पर वह मुनिराज तप के बल से पंचम स्वर्ग में देव हुये वहाँ उस देव ने देवाङ्गनाओं को प्रसन्न करते हुये देवत्व सुख को भोगा ।

तदा योधाभिधे देशे पुरे च सुरपुरे नृपः ।

आसीदजितराजाख्यो महादेवी च तत्प्रिया ॥६७॥

अन्वयार्थ — तदा = उस समय, योधाभिधे = योध नामक, देशे = देश में, च = और, सुरपुरे = सुरपुर नामक, पुरे = नगर में, अजितराजाख्यः = अजितराज नामक, नृपः = राजा, च = और, तत्प्रिया = उसकी प्रिय रानी, महादेवी = महादेवी, आसीत् = थी ।

श्लोकार्थ — उस समय योध नामक देश में एवं सुरपुर नामक नगर में अजितराज नामक राजा और महासेना नाम की रानी थी ।

स्वर्गाच्च्युतस्सः तद्गर्भं समागत्याभवत्सुतः ।

नाम्ना ललितदत्तस्सः बभूव शुभलक्षणः ॥६८॥

अन्वयार्थ — स्वर्गात् = स्वर्ग से, च्युतः = च्युत हुआ, सः = वह देव, तद्गर्भं = उस रानी के गर्भ में, समागत्य = आ करके, सुतः = पुत्र, अभवत् = हुआ, नाम्ना = नाम से, ललितदत्तः = ललितदत्त, सः = वह, शुभलक्षणः = शुभलक्षणों से युक्त, बभूव = हुआ ।

श्लोकार्थ — स्वर्ग से होकर वह देव उस महासेना रानी के गर्भ में आकर उनके पुत्र हुआ । नाम से ललितदत्त वह शुभलक्षणों से सम्पन्न था ।

राज्यभारं वहन्योग्यं पुत्रं ज्ञात्वा विचक्षणम् ।

तदा तस्मै स्वराज्यं सोऽजितराजा समर्प्य तत् ॥६९॥

संसारदेहभोगात्स विरक्तोऽभूद्वनं गतः ।

जातरूपोऽभवद् ध्यानबलात्कैवल्यमाप सः ॥७०॥

अन्वयार्थ — तदा = तब, राज्यभारं = राज्य के भार को, वहन् = ढोते हुये अर्थात् पालते हुये, सः = उन, अजितराजा = अजितराज राजा ने, पुत्रं = पुत्र को, योग्यं = योग्य, (च = और), विचक्षणम् = प्रत्युत्पन्नमति अर्थात् चतुर, ज्ञात्वा = जानकर, तस्मै = उसके लिये, तत् = वह, स्वराज्यं = अपना राज्य, समर्प्य = देकर, संसारदेहभोगात् = संसार और देह योग्य भोगों से, विरक्तः = विरक्त, अभूत् = हो गया, वनं = वन

को, गतः = गये हुये, सः = वह, जातरूपः = यथाजात नग्न स्वरूप वाले मुनि, अभवत् = हो गये, सः = उन्होंने, ध्यानबलात् = ध्यान के बल से, कैवल्यं = केवलज्ञान और निर्वाण को, आप = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ — तभी राज्य का पालन करते हुये उन अजितराज राजा ने अपने पुत्र को योग्य और चतुर जानकर अपना वह राज्य उसके लिये दे दिया वन में चले गये वहाँ यथा जात नग्न स्वरूप वाले मुनिराज हो गये। ध्यान के बल से उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष चले गये।

एकस्मिन्समये सोऽपि राजा ललितदत्तकः ।

सम्प्राप्तश्चारणान्साधून् परिपूज्येदमब्रवीत् ॥७१॥

अन्वयार्थ — एकस्मिन्समये = एक समय, सः = उस, ललितदत्तकः = ललितदत्त नामक, राजा = राजा ने, चारणान् = चारण ऋद्धिधारी, साधून् = मुनियों को, सम्प्राप्तः = प्राप्त किया, (च = और), परिपूज्य = उनको पूजकर, इदं = यह, अब्रवीत् = बोला।

श्लोकार्थ — एक समय उस ललितदत्त नामक राजा ने चारण ऋद्धिधारी साधुओं को प्राप्त किया और उनको पूजकर यह बोला।

चारणर्द्धिप्रलाभोऽत्र कथं स्यान्मुनिसत्तम ।

मुनिनोक्तं तदा भूप शृणु तद्वृत्तमुत्तमम् ॥७२॥

अन्वयार्थ — मुनिसत्तम = हे मुनि श्रेष्ठ, अत्र = यहाँ, चारणर्द्धिप्रलाभः = चारण ऋद्धि का लाभ, कथं = कैसे, स्यात् = हो, तदा = तब, मुनिना = मुनि महाराज द्वारा, उक्तं = कहा गया, भूप = हे राजन्!, उत्तमं = श्रेष्ठ, तद्वृत्तं = उस ऋद्धि के वृत्तान्त को, शृणु = सुनो।

श्लोकार्थ — हे मुनिश्रेष्ठ! इस मनुष्य भव में चारण ऋद्धि की प्राप्ति कैसे हो — ऐसा राजा द्वारा पूछने पर मुनि ने कहा हे राजन्! तुम उसका सुन्दर वृत्तान्त सुनो।

सम्मेदभूभृतो यात्रामङ्गीकुरु सुनिश्चयात् ।
 अन्यवार्ता हि परित्यज्य यदि त्वं सिद्धिमिच्छति ॥७३॥
 तत्प्रभावाच्चारणर्द्धिं भूपते प्राप्नुहि ध्रुवम् ।
 इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं भूपते प्रमोदं नृपसत्तमः ॥७४॥

अन्ययार्थ - यदि = अगर, त्वं = तुम, सिद्धिं = सिद्धपद को, इच्छसि = चाहते हो, (तर्हि = तो), अन्यवार्ता = अन्य की बात को, परित्यज्य = छोड़कर, सुनिश्चयात् = सम्यक् निश्चय से, सम्मेदभूभृतः = सम्मेदशिखर पर्वत की, यात्रां = यात्रा को, अङ्गीकुरु = स्वीकार करो, भूपते = हे राजन्!, तत्प्रभावात् = उसके प्रभाव से, चारणर्द्धिं = चारणऋद्धि को, ध्रुवं = निश्चित ही, प्राप्नुहि = प्राप्त करोगे, इति = इस प्रकार, मुनेः = मुनिराज के, वाक्यं = वचन को, श्रुत्वा = सुनकर, नृपसत्तमः = श्रेष्ठ राजा ने, प्रमोदं = हर्ष को, (प्राप्तवान् = प्राप्त किया)।

श्लोकार्थ - यदि तुम सिद्धि पाना चाहते हो तो अन्य सभी बातें छोड़कर निश्चित मन से सम्मेदशिखर की यात्रा करना स्वीकार करो। हे राजन्! उस यात्रा के प्रभाव से तुम निश्चित ही चारण ऋद्धि को प्राप्त करोगे इस प्रकार मुनिराज के वचन सुनकर वह राजा हर्ष को प्राप्त हुआ।

अथ सङ्घाधिपो भूत्वा चैककोटिमितान्वरान् ।
 द्विचत्वारिंशदाख्यातलक्षभव्यान् महीपतिः ॥७५॥
 विधाय सार्धगान् यात्रां चक्रे सम्मेदभूभृतः ।
 घटान्तललितं कूटं ववन्दे भक्तिभावतः ॥७६॥

अन्ययार्थ - अथ = इसके आगे, महीपतिः = वह राजा, सङ्घाधिपः = संघ का अधिपति, भूत्वा = होकर, एककोटिमितान् = एक करोड़ परिमित, च = और, द्विचत्वारिंशदाख्यातलक्षभव्यान् = बयालीस लाख संख्या में भव्यों को, वरान् = श्रेष्ठ, सार्धगान् = साथ वाला, विधाय = करके, सम्मेदभूभृतः = सम्मेदशिखर पर्वत की, यात्रां = यात्रा को, चक्रे = किया, भक्तिभावतः =

भक्तिभाव से, घटान्तललितं = घटान्त ललित, कूटं = कूट की, वन्दे = वन्दना की।

श्लोकार्थ — इसके बाद उस राजा ने एक करोड़ बयालीस लाख संख्या प्रमाण श्रेष्ठ भव्यों को साथ करके सम्मेलशिखर पर्वत की यात्रा की और भक्तिभाव से घटान्त अर्थात् घटाओं से अन्तर्व्याप्त ललितकूट की वन्दना की।

कोटिभव्यैः सह क्षोणिपतिवैराग्यभावसंयुतः ।

तत्रैव दीक्षितो भूत्वा चारणऋद्धिमवाप सः ॥७७॥

पश्चादुग्रतपः कृत्वा केवलज्ञानवान्मुनिः ।

सार्धं पूर्वोक्तभव्यैस्स सिद्धालयमवाप हि ॥७८॥

अन्वयार्थ — कोटिभव्यैः = एक करोड़ भव्यों के, सह = साथ, वैराग्यभावसंयुतः = वैराग्य भावना से युक्त, क्षोणिपतिः = राजा, तत्रैव = वहाँ ही, दीक्षितः = मुनि धर्म में दीक्षित, भूत्वा = होकर, सः = उन मुनिराज ने, चारणऋद्धिं = चारणऋद्धि को, अवाप = प्राप्त कर लिया, पश्चात् = बाद में, उग्रतपः = उग्र तपश्चरण करके, मुनिः = मुनिराज, केवलज्ञानवान् = केवलज्ञानी, (अभूत् = हुये), सः = उन केवलज्ञानी मुनिराज ने, पूर्वोक्तभव्यैः = पूर्व में कहे भव्य जीवों के, सार्धं = साथ, हि = ही, सिद्धालयं = सिद्धालय को, अवाप = प्राप्त हुये।

श्लोकार्थ — एक करोड़ भव्य जीवों के साथ वैराग्य भावों से युक्त वह राजा उसी ललितकूट पर मुनि धर्म में दीक्षित हो गया और उसने चारणऋद्धि को प्राप्त कर लिया फिर उग्र तपश्चरण करके केवलज्ञानी हुये और पूर्वोक्त भव्य जीवों के साथ ही निर्वाण चले गये।

तत्कूटवन्दनाद्भव्यः गतिद्वयविवर्जितः ।

षोडशप्रोषधानां हि व्रतानां फलमाप्नुयात् ॥७९॥

अन्वयार्थ — तत्कूटवन्दनात् = उस ललितकूट की वन्दना से, गतिद्वयविवर्जितः = दो गतियों अर्थात् नरक और तिर्यञ्च गति से रहित, भव्यः = भव्य जीव, षोडशप्रोषधानां = सोलह प्रोषध, व्रतानां = व्रतों का, फलं = फल, हि = निश्चय ही, आप्नुयात् = प्राप्त करे।

श्लोकार्थ - उस ललितकूट की वन्दना करने से नरक और तिर्यञ्चगति से रहित होकर भव्यजीव सोलह प्रोषधोपवास व्रतों का फल निश्चित ही प्राप्त करे।

अवाप्यते फलं चेत्थमेककूटस्य वन्दनात् ।

सर्वप्रणामजं विन्ध्यात्फलं श्रीजिन एव हि ॥८०॥

अन्वयार्थ - एककूटस्य = एक ललितकूट की, वन्दनात् = वन्दना से, इत्थं = ऐसा या इतना, फलं = फल, अवाप्यते = प्राप्त किया जाता है, सर्वप्रणामजं = सारी कूटों को प्रणाम करने से उत्पन्न, फलं = फल को, श्रीजिनः = श्री जिनेन्द्र भगवान्, एव = ही, विन्ध्यात् = जाने।

श्लोकार्थ - जब एक कूट की वन्दना से इतना फल प्राप्त किया जाता है तो सभी कूटों की वन्दना से उत्पन्न होने वाला फल तो श्री जिनेन्द्र भगवान् ही जानें हम असमर्थों की क्या गिनती है।

श्रीचन्द्रप्रभ उदितात्मतत्त्वबोधात्संसिद्धिं

किल परमां गतो हि यस्मात् ।

यो भव्यैः सततसमर्जितप्रयातैः

तत्कूटं ललितवराभिधानमीडे ॥८१॥

यत्सत्कथां ललितकूटवरस्य भक्त्या,

श्रद्धान्वितोऽत्र शृणुयादखिलो हि भव्यः ।

चित्तेप्सितं क्षितितले स लभेत सद्यः

पश्चाद्विरक्तहृदयो भवतो विमुञ्चेत् ॥८२॥

अन्वयार्थ - किल = निश्चित ही, उदितात्मतत्त्वबोधात् = आत्म तत्त्व का बोध उदित हो जाने से, सततसमर्जितप्रयातैः = निरन्तर अर्थात् अपने अपने क्रम से लगातार प्राप्त की है मुक्ति जिन्होंने ऐसे, भव्यैः = भव्य मुनिराजों के, (सह = साथ), यस्मात् = जिस ललितकूट से, श्रीचन्द्रप्रभः = श्री चन्द्रप्रभ भगवान्, परमां = उत्कृष्ट, संसिद्धिं = सिद्धदशा को, गतः

= प्राप्त हुये, ललितवरामिधानं = ललित इस श्रेष्ठ नाम वाली, तत् = उस, कूटं = कूट की, (अहं = मैं), ईडे = स्तुति करता हूँ।

यः = जो, अखिलः = सर्व, हि = ही, भव्यः = भव्य जीव, ललितकूटवरस्य = श्रेष्ठ ललितकूट की, सत्कथां = सच्ची कथा को, भक्त्या = भक्ति से, श्रद्धान्वितः = श्रद्धास्पद होता हुआ, शृणुयात् = सुने, सः = वह, चित्तेप्सितं = मनोभिलषित, यत् = जो, (अस्ति = है), (तत् = उसको), अत्र = इस, क्षितितले = पृथ्वी पर, सद्यः = शीघ्र, लभेत = प्राप्त करे, (च = और) पश्चात् = बाद में, विरक्तहृदयः = वैराग्यसम्पन्न हुआ, भवतः = संसार से, विमुञ्चेत् = विमुक्त हो जावे।

श्लोकार्थ - अपने आत्म तत्त्व का बोध उदित हो जाने से अपने-अपने क्रमानुसार लगातार मुक्ति पाने वाले भव्य मुनिराजों के साथ जिस ललितकूट से श्री चन्द्रप्रभ स्वामी ने परमसिद्धि अर्थात् निर्वाणदशा को प्राप्ति किया उस श्रेष्ठ ललित कूट की मैं स्तुति करता हूँ।

जो कोई भी, सभी ही भव्य जीव श्रेष्ठ ललितकूट की इस सत्कथा को भक्ति से श्रद्धापूर्वक सुनता है वह अपनी मनोवांछित वस्तु को इस पृथ्वी पर शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है तथा बाद में वैराग्य सम्पन्न होकर संसार से मुक्त हो जाता है।

[इति दीक्षितदेवदत्तकृते सम्मेदगिरिमाहात्म्ये, तीर्थङ्कर
चन्द्रप्रभवृतान्तपुरस्सरं घटान्तललितकूटवर्णनं
नामाष्टमोऽध्यायः समाप्तः।]

[इस प्रकार दीक्षितो देवदत्तरचित सम्मेदशिखर माहात्म्य नामक काव्य में तीर्थंकर चन्द्रप्रभु के वृतान्त को प्रस्तुत कर घटान्त ललितकूट का वर्णन करने वाला आठवां अध्याय समाप्त हुआ।]

अथ नवमोऽध्यायः

अथ मोक्षश्रियोपेतं सुरासुरनिषेवितम् ।

पुष्पदंतप्रभुं भक्त्या वन्दे मकरलाञ्छनम् ॥१॥

अन्वयार्थ - अथ = इसके बाद, मोक्षश्रियोपेतं = मोक्षलक्ष्मी से युक्त, सुरासुरनिषेवितं = सुर और असुरों से सेवित, मकरलाञ्छनं = मकर के चिन्ह से चिन्हित, पुष्पदंतप्रभुं = तीर्थङ्कर पुष्पदंत का, (अहं = मैं), भक्त्या = भक्ति से, वन्दे = नमस्कार करता हूँ ।

श्लोकार्थ - चन्द्रप्रभ भगवान् का वर्णन करने के बाद अब मैं मोक्षलक्ष्मी से युक्त, देवताओं और राक्षसों से सेवित एवं मकर के चिन्ह से चिन्हित पुष्पदंत भगवान् को प्रणाम करता हूँ ।

पुष्करार्धवरद्वीपे प्रदीप्ते पूर्वमन्दरे ।

सीतापश्चिमभागेऽस्ति विषयः पुष्कलावती ॥२॥

पुण्डरीकपुरे तत्र महापद्माभिधो नृपः ।

अखण्डं राज्यमकरोत् स अरक्षत् पुत्रवत्प्रजाः ॥३॥

अन्वयार्थ - पुष्करार्धवरद्वीपे = पुष्करार्धवरद्वीप में, प्रदीप्ते = जाज्वल्यमान, पूर्वमन्दरे = पूर्वमन्दर पर, सीतापश्चिमभागे = सीता नदी के पश्चिम भाग में, पुष्कलावती = पुष्कलावती नामक, विषयः = देश, अस्ति = था, तत्र = उस देश में, पुण्डरीकपुरे = पुण्डरीक पुर में, महापद्माभिधः = महापद्म नामक, नृपः = राजा, अखण्डं = अखण्ड, राज्यं = राज्य, अकरोत् = करता था, सः = वह, प्रजाः = जनता को, पुत्रवत् = पुत्र के समान, अरक्षत् = पालता था ।

श्लोकार्थ - पुष्करार्धवरद्वीप में जाज्वल्यमान मन्दर मेरु पर सीता नदी के पश्चिम भाग में एक पुष्कलावती देश था । उस देश में पुण्डरीक पुर में महापद्म नामक राजा अखण्ड रूप से राज्य करता था वह प्रजा की रक्षा पुत्र के समान करता था ।

महादानानि सर्वेभ्यः याचकेभ्यः समर्पयत् ।

आशेषराज्यसौख्यानि बुभुजे नीतितो नृपः ॥४॥

अन्वयार्थ - नृपः = राजा ने, सर्वेभ्यः = सभी, याचकेभ्यः = याचकों के लिये, महादानानि = दान स्वरूप महान् वस्तुयें, समर्पयत् = देता था, च = और, आशेषराज्यसौख्यानि = सम्पूर्ण राज्य सुखों को, नीतितः = नीति न्याय से, बुभुजे = भोगा ।

श्लोकार्थ - राजा ने सभी याचकों के लिये विपुल दान दिया तथा नीतिपूर्वक सम्पूर्ण राज्य का पालन किया और सुख भोगा ।

एकदा धर्मशेषाख्यं मनोहरवने मुनिम् ।

श्रुत्वागतं दर्शनार्थं तस्य भूपोऽचलन्मुदा ॥५॥

त्रिः परिक्रम्य तं तत्र गत्वा नत्वा मुहुर्मुहुः ।

पादौ गृहीत्वा पृच्छ यतिधर्मान् सनातनान् ॥६॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, मनोहरवने = मनोहर वन में, धर्मशेषाख्यं = धर्मशेष नामक, मुनिं = मुनि को, आगतं = आया हुआ, श्रुत्वा = सुनकर, तस्य = उनके, दर्शनार्थं = दर्शन के लिये, भूपः = राजा, मुदा = प्रसन्नता से, अचलत् = चला, तत्र = वहाँ, गत्वा = जाकर, तं = उन मुनि को, मुहुः मुहुः = बार-बार, नत्वा = नमस्कार करके, त्रिः = तीन, परिक्रम्य = परिक्रमा करके, (च = और), पादौ = दोनों चरणों को, गृहीत्वा = पकड़कर, सनातनान् = अनादिनिधन, यतिधर्मान् = मुनिधर्मों को, पृच्छ = पूछा ।

श्लोकार्थ - एक दिन राजा महापद्म "मनोहर वन में धर्मशेष नामक मुनिराज आये हैं" :- ऐसा सुनकर प्रसन्नता से उनके दर्शन करने के लिये, चल दिया, वहाँ जाकर उसने उन मुनि को बार-बार नमस्कार करके उनकी तीन परिक्रमा करके और उनके दोनों चरण पकड़कर अनादिनिधन मुनि के धर्मों को पूछा ।

मुनिस्त्रायोदशविधं चारित्रं स्यागमोदितम् ।

श्रावयामास भूपाय प्रबृद्धस्तन्निषम्य सः ॥७॥

आत्मानमेकं सर्वेषु ज्ञात्वा भूतेषु भूपतिः ।
 पुद्गलाद् भिन्नभ्रमलं विरक्तोऽभूत्स ऐहिकात् ॥८॥
 राज्यं धनदपुत्राय दत्त्वा बहुनृपैः सह ।
 दीक्षां समगृहीद् गत्वा वनं किल तपोरुचिः ॥९॥

अन्वयार्थ — मुनिः = मुनिराज ने, स्वागमोदितं = अपने आगम में कहे अनुसार, त्रयोदशलिङ्गं = तेरह प्रकार का चरित्र = चारित्र्य को, भूपाय = राजा के लिये, श्रावयामास = सुनाया, तन्निषम्य = उसे सुनकर, सः = वह राजा, प्रवृद्धः = वृद्धि को प्राप्त हुआ, च = और, सर्वेषु = सभी, भूतेषु = प्राणियों में, एकं = एक जैसे ही, आत्मानं = आत्मा को, पुद्गलात् = पुद्गल से, भिन्नम् = भिन्न, पृथक्, अमलं = मलरहित, ज्ञात्वा = जानकर, सः = वह, भूपतिः = राजा, ऐहिकात् = इस लोक संबंधी राज्यादिक से, विरक्तः = विरक्त, अभूत् = हो गया, च = और, धनदपुत्राय = धनद नामक पुत्र को, राज्यं = राज्य को, दत्त्वा = देकर, तपोरुचिः = तपश्चरण करने की रुचि वाले उस राजा ने, वनं = वन में, गत्वा = जाकर, बहुनृपैः = अनेक राजाओं के, सह = साथ, दीक्षां = मुनिदीक्षा को, समगृहीत् = ग्रहण कर लिया ।

श्लोकार्थ — मुनिराज ने जिनागम में कहे अनुसार तेरह प्रकार का चारित्र्य राजा को सुनाया जिसे सुनकर राजा वृद्धि को प्राप्त हुआ और सभी प्राणियों में एक जैसे आत्मा को पुद्गल से भिन्न और निर्मल जानकर वह राजा राज्यादि ऐहिक सुख से विरक्त हो गया ।

एकादशाङ्गदृग्भूत्वा तद्वत्षोडशभावनाः ।

भावयित्वा बबन्धासौ गोत्रं तैर्थकरं परम् ॥१०॥

अन्वयार्थ — एकादशाङ्गदृग् = ग्यारह अङ्गों को जानने वाला, भूत्वा = होकर, तद्वत् = उसके समान, षोडशभावनाः = सोलह भावनार्यें, भावयित्वा = भाकर, असौ = उन मुनिराज ने, परमं = उत्कृष्ट, तैर्थकरं = तीर्थङ्कर नामक, गोत्रं = पुण्यविशेष को, बबन्ध = बांध लिया ।

श्लोकार्थ — ग्यारह अङ्गों के जानकार होकर और वैसे ही सोलहकारण भावनाओं को भाकर उन मुनिराज ने उत्कृष्ट तीर्थङ्कर नामक पुण्य को बाँध लिया।

संन्यासविधिना चान्ते तनुं त्यक्त्वा तपोज्ज्वलः ।

स्वर्गे हि पञ्चदशमे मुनिः प्रापाहमिन्द्रताम् ॥११॥

अन्वयार्थ — च = और, तपोज्ज्वलः = तप से उज्ज्वल कीर्ति वाले, मुनिः = उन मुनिराज ने, अन्ते = आयु के अन्त में, संन्यासविधिना = संन्यासमरण की विधि से, तनुं = शरीर को, त्यक्त्वा = छोड़कर, पञ्चदशमे = पन्द्रहवें, स्वर्गे = स्वर्ग में, हि = ही, अहमिन्द्रतां = अहमिन्द्रत्व को, प्राप = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ — तथा तपश्चरण से उज्ज्वल कीर्ति वाले उन मुनिराज ने आयु के अन्त में संन्यासमरण पूर्वक शरीर छोड़ दिया और पन्द्रहवें स्वर्ग में अहमिन्द्र पद प्राप्त किया।

सिन्धुविंशतिकामुश्च सार्धत्रिकरदेहभृत् ।

शुक्ललेश्यायुतः श्रीमान् तेजसार्क इवोज्ज्वलः ॥१२॥

सहस्रविंशतिमितवर्षोपरि स मानसम् ।

आदादाहारममलं स्वानन्दोद्भवतोषभृत् ॥१३॥

अन्वयार्थ — श्रीमान् = श्री सम्पन्न अर्थात् कान्तिमान्, सिन्धुविंशतिकायुः = बीस सागर की आयु वाला, सार्धत्रिकरदेहभृत् = साढ़े तीन हाथ देह वाला, शुक्ललेश्यायुतः = शुक्ललेश्या वाला, तेजसार्क इव = तेज से सूर्य के समान, उज्ज्वलः = उज्ज्वल अर्थात् जाज्वल्यमान्, च = और, स्वानन्दोद्भवतोषभृत् = निजानन्द से उत्पन्न संतोष से पूर्ण, सः = वह अहमिन्द्र, सहस्रविंशतिमितवर्षोपरि = बीस हजार परिमित वर्ष ऊपर होने अर्थात् निकल जाने पर, मानसं = मनोद्भव अमृत स्वरूप, अमलं = निर्मल, आहारं = भोजन को, आदात् = लेता था।

श्लोकार्थ — श्रीसम्पन्न अर्थात् कान्तिमान् बीस सागर की आयु वाला, साढ़े तीन हाथ ऊँची देह वाला, शुक्ललेश्या वाला, तेज की अपेक्षा

सूर्य के समान जाज्वल्यमान और अपने आनन्दानुभव से जनित संतोष से पूर्ण वह अहमिन्द्र बीस हजार वर्ष ऊपर हो जाने पर अर्थात् बीत जाने पर मनोदभव अमृत स्वरूप निर्मल आहार ग्रहण करता था।

पक्षेषु विंशतितमेषु स्वयं परिगतेषु सः।

न्यश्वसत् परमानन्दात् सिद्धध्यानपरायणः ॥१४॥

षष्ठनारकपर्यन्तं तत्स्थानादवधिं दधन्।

सर्वकार्यसमर्थोऽसावुत्कृष्टसुखमन्वभूत् ॥१५॥

अन्वयार्थ — विंशतितमेषु = बीस, पक्षेषु = पखवाड़े, परिगतेषु = बीतने पर, सः = वह, स्वयं = स्वयं, न्यश्वसत् = सांस लेता था, तत्स्थानात् = पन्द्रहवें स्वर्ग से, षष्ठनारकपर्यन्तं = छठवें नरक तक, अवधिं = अवधिज्ञान को, दधन् = धारण करते हुये, सर्वकार्यसमर्थः = सभी कार्यों के करने में समर्थ, परमानन्दात् = परम आनंद को उन्नमोन्नत करने से, सिद्धध्यानपरायणः = सिद्धपरमेष्ठियों के ध्यान में लगे हुये, असौ = उस अहमिन्द्र ने, उत्कृष्टसुखं = उत्कृष्टसुख का, अन्वभूत् = अनुभव किया।

श्लोकार्थ — बीस पक्ष अर्थात् पखवाड़े बीत जाने पर वह देव स्वयमेव सांस लेता था तथा उस अहमिन्द्र ने छठवें नरक तक की मर्यादा वाले अवधिज्ञान को धारण किया, सभी कार्यों के करने में समर्थ तथा परम आनंद की प्राप्ति के कारण सिद्ध परमेष्ठियों के ध्यान में लगे हुये उसने उत्कृष्ट सुख का अनुभव किया।

उत्कृष्टगुणसंयुक्तो व्यतीतायुस्सुखेन सः।

षण्मासकावशिष्टायुरभवत्तत्पदे स्थितः ॥१६॥

अन्वयार्थ — उत्कृष्टगुणसंयुक्तः = उत्कृष्ट गुणों से युक्त, सुखेन = सुख से, व्यतीतायुः = आयु विताने वाला, सः = वह देव, तत्पदे = अहमिन्द्र पद पर, स्थितः = स्थित रहता हुआ, षण्मासकावशिष्टायुः = छह मास मात्र शेष आयु वाला, अमवत् = हो गया।

श्लोकार्थ — अहमिन्द्र के पद पर स्थित रहता हुआ, उत्कृष्ट गुणों से सुशोभित और सुख से आयु बिताने वाला वह देव मात्र छह माह की शेष आयु वाला हुआ ।

तदा जम्बूमतिद्वीपे क्षेत्रे भारतिके शुभे ।

कच्छदेशे सदा भाति काकन्दीनगरं शुभम् ॥१७॥

अन्ययार्थ — तदा = उस समय, जम्बूमति = जम्बूवक्ष वाले, द्वीपे = द्वीप में, भारतिके = भरत क्षेत्र स्थित, शुभे = शुभ अर्थात् आर्य, क्षेत्रे = क्षेत्र में, कच्छदेशे = कच्छदेश में, शुभं = शुभ-सुन्दर, काकन्दीनगरं = काकन्दी नामक नगर, सदा = हमेशा, भाति = सुशोभित होता है ।

श्लोकार्थ — उस समय जम्बूद्वीपवर्ती भरतक्षेत्र के आर्य क्षेत्र में कच्छदेश है जिसमें काकन्दी नामक एक शुभ नगर सदा शोभायमान होता रहता है ।

इक्ष्वाकुवंशे तत्पुर्यां काश्यपे गोत्र उत्तमे ।

सुग्रीवो नाम राजाभूत् धर्मात्मा भाग्यवारिभिः ॥१८॥

अन्ययार्थ — तत्पुर्याम् = उस नगरी में, इक्ष्वाकुवंशे = इक्ष्वाकुवंश में, उत्तमे = श्रेष्ठ, काश्यपे = काश्यप, गोत्रे = गोत्र में, भाग्यवारिभिः = विपुल भाग्यवाला, धर्मात्मा = धर्माचरणशील, सुग्रीवः = सुग्रीव, नाम = नामक, राजा = राजा, अभूत् = हुआ था ।

श्लोकार्थ — उस काकन्दी नगर में इक्ष्वाकु कुल और श्रेष्ठ काश्यप गोत्र में उत्पन्ना एक सुग्रीव नामक राजा हुआ था, जो अत्यधिक भाग्यशाली और धर्माचरणशील था ।

जयरामा तस्य देवी रूपसौभाग्यशालिनी ।

पत्युर्मनोहरा नित्यं स्वैरत्यद्भुतसद्गुणैः ॥१९॥

अन्ययार्थ — तस्य = उस राजा की, जयरामा = जयरामा नामक, देवी = रानी, रूपसौभाग्यशालिनी = रूपवती और सौभाग्यशालिनी, (च = और), स्वैः = अपने, अद्भुतसद्गुणैः = चमत्कारिक सद्गुणों से, नित्यं = हमेशा, पत्युः = पति के, मनोहरा = मन को हरने वाली, (आसीत् = थी) ।

श्लोकार्थ — उस राजा की जयरामा नामक रानी रूपवती, सौभाग्यशालिनी तथा अपने चमत्कारिक गुणों से पति के मन को हरने वाली अर्थात् मुग्ध करने वाली थी ।

तद्गृहे यक्षपतिना वृष्टिः षाण्मासिकी तथा ।

कृता रत्नमयी नित्यं सौधर्मेन्द्रमुखाज्ञया ॥२०॥

अन्वयार्थ — तथा = और, सौधर्मेन्द्रमुखाज्ञया = सौधर्म इन्द्र की मौखिक आज्ञा से, यक्षपतिना = यक्षपति कुबेर द्वारा, तद्गृहे = उस रानी के घर में, नित्यं = प्रतिदिन, षाण्मासिकी = छह माहिने तक, रत्नमयी = रत्नों से भरपूर, वृष्टिः = वर्षा, कृता = की ।

श्लोकार्थ — तथा सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने उस रानी के घर में प्रतिदिन छह माहिने तक रत्नों से भरपूर वर्षा की अर्थात् रत्न बरसाये ।

तत्काले चानतात्स्वर्गात् देवागमनवासरे ।

रात्रौ सुवर्णपर्यङ्के सा देवी संनिवेश हि ॥२१॥

अन्वयार्थ — तत्काले = उस काल में अर्थात् रत्नवृष्टि के काल में, च = और, आनतात् = आनत नामक, स्वर्गात् = स्वर्ग से, देवागमन वासरे = देव के आने अर्थात् च्युत होने वाले दिन, हि = ही, रात्रौ = रात्रि में, सा = वह, देवी = रानी, सुवर्णपर्यङ्के = स्वर्णखचित सुन्दर पलंग पर, संनिवेश = प्रविष्ट हुई अर्थात् सोयी ।

अन्वयार्थ — उसी समय रत्नवृष्टि काल में और उस देव के आनतस्वर्ग से च्युत होकर आने के दिन रात्रि में वह रानी स्वर्णखचित सुन्दर पलंग पर सोयी ।

फाल्गुणे कृष्णपक्षे च नवम्यां मूलमे शुभे ।

स्वप्नानुषसि सा देवी षोडशैक्षत भाग्यतः ॥२२॥

अन्वयार्थ — फाल्गुणे = फाल्गुन माह में, कृष्णपक्षे = कृष्णपक्ष में, नवम्यां = नवमी के दिन, च = और, शुभे = शुभ, मूलमे = मूलनक्षत्र में, सा = उस, देवी = रानी ने, भाग्यतः = भाग्य से, षोडश

= सोलह, स्वप्नान् = स्वप्नों को, उषसि = प्रभात बेला में, ऐक्षत = देखे ।

श्लोकार्थ - फाल्गुन कृष्णा नवमी को शुभ मूलनक्षत्र में उस रानी ने भाग्य से सोलह स्वप्नों को प्रातः बेला में देखा ।

तदन्ते तन्मुखे मत्तसिन्धुरोऽविशदुज्ज्वलः ।

एवं स्वप्नान्निरीक्ष्यैषा नेत्राज्जलमुदधारयत् ॥२३॥

अन्वयार्थ - तदन्ते = स्वप्नदर्शन के अन्त में, तन्मुखे = उस रानी के मुख में, उज्ज्वलः = उज्ज्वल-धवल, मत्तसिन्धुरः = मदोन्मत्त हाथी, अविशत् = प्रविष्ट हुआ, एवं = इस प्रकार, स्वप्नान् = स्वप्नों को, निरीक्ष्य = जल को, उदघाटयत् = उदघाटित कर दिया ।

श्लोकार्थ - सोलह स्वप्न देखने के अन्त में उस रानी के मुख में एक धवल उज्ज्वल मदोन्मत्त हाथी प्रविष्ट हुआ । इस प्रकार स्वप्नों को देखकर इस रानी ने अपने नेत्रों से जलबिन्दु उदघाटित किये अर्थात् आँसू छलक आये ।

उत्थिता विस्मिता देवी प्रमार्ज्य मुखवारिजम् ।

पत्युः समीपे सा स्वप्नानवादीदतिदुर्लभान् ॥२४॥

अन्वयार्थ - उत्थिता = उठी, (च = और), विस्मिता = विस्मय या आश्चर्य को प्राप्त हुई, सा = उस, देवी = रानी ने, मुखवारिजम् = मुखकमल को, प्रमार्ज्य = धोकर, पत्युः = पति के, समीपे = पास में, अतिदुर्लभान् = अत्यधिक दुर्लभ, स्वप्नान् = स्वप्नों को, अवादीत् = कहा ।

श्लोकार्थ - स्वप्न देखकर रानी उठ गई विस्मय को प्राप्त उस रानी ने अपने मुख रूपी कमल को धोकर राजा के पास में उन दुर्लभ स्वप्नों को कहा ।

यथोक्तफलमेतेषां श्रुत्वा पतिमुखात्सती ।

कृतकृत्यमियात्मानममन्यत सा धर्मवत्सला ॥२५॥

अन्वयार्थ - एतेषां = इन स्वप्नों का, यथोक्तफलं = जैसा कहा गया वैसा

फल, पतिमुखात् = पति के मुख से, श्रुत्वा = सुनकर, धर्मवत्सला = धर्मानुरागिणी, सती = पतिव्रता, सा = उस रानी ने, आत्मानं = अपने आपको, कृतकृत्यमिव = कृतकृत्य के समान अर्थात् सिद्ध भगवन्तों जैसा सुखी, अमन्यत = मान लिया।

श्लोकार्थ — राजा के मुख से इन सोलह स्वप्नों का फल सुनकर धर्मानुरागिणी एवं पतिव्रता उस रानी ने अपने आप को कृतकृत्य के समान सिद्धों जैसा सुखी मान लिया।

वर्णनीयं कथं भाग्यं तस्याः देवेन्द्रसेवितः ।

अहमिन्द्रो गर्भगोऽभूद् यस्यास्तीर्थकृदीश्वरः ॥२६॥

अन्वयार्थ — देवेन्द्रसेवितः = इन्द्रराज द्वारा सेवा किया जाता हुआ, अहमिन्द्रः = अहमिन्द्र का जीव, तीर्थकृत् = तीर्थङ्कर, ईश्वरः = परमात्मा, यस्याः = जिसके, गर्भगः = गर्भ में स्थित, अभूत् = हुआ, तस्याः = उसका, भाग्यं = भाग्य, वर्णनीयं = वर्णन किये जाने योग्य, कथं = कैसे, (स्यात् = हो)।

श्लोकार्थ — देवेन्द्र जिसकी सेवा रक्षा करता है ऐसा वह अहमिन्द्र का जीव तीर्थङ्कर भगवान् बनकर जिस रानी के गर्भ में स्थित हुआ हो उस रानी के भाग्य का वर्णन कैसे हो अर्थात् वर्णन नहीं हो सकता है।

मार्गे शुक्लप्रतिपदि मूलभे जगदीश्वरम् ।

सा सुतं सुषुवे देवी त्रिबोधपरिभास्वरम् ॥२७॥

अन्वयार्थ — सा = उस, देवी = रानी ने, मार्गे = मार्गशीर्ष माह में, शुक्लप्रतिपदि = शुक्ला प्रतिपदा के दिन, मूलभे = मूल नक्षत्र में, त्रिबोधपरिभास्वरम् = तीन ज्ञानों से प्रस्फुरित होते-चमकते हुये, जगदीश्वरम् = जगत् के स्वामी, सुतं = पुत्र को, सुषुवे = उत्पन्न किया।

श्लोकार्थ — उस रानी ने मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदा के दिन मूल नक्षत्र में जगत् के स्वामी तथा भूति-श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानों से भास्वरित-सुशोभित पुत्र को उत्पन्न किया।

तदा सौधर्मकल्पेशः तत्रागत्य सुरैस्समम् ।

देवं च स्वयुक्त्यादाय स्वर्णाद्रिमुपागतः ॥२८॥

शिलायां पाण्डुकाख्यायां तत्र संस्थाप्य तं प्रभुम् ।

वारिभिरस्नापद् देवं कुम्भस्थैः क्षीरवारिधेः ॥२९॥

अन्ययार्थ — तदा = तब अर्थात् प्रभु का जन्म होने पर, सौधर्मकल्पेशः = सौधर्म नामक प्रथम विमान का स्वामी इन्द्र ने, सुरैः = देवताओं के, समं = साथ, तत्र = वहाँ, काकन्दी नगरी में माता के घर पर, आगत्य = आकर, स्वयुक्त्या = अपनी युक्ति से, देवं = तीर्थङ्कर शिशु को, आदाय = प्राप्त करके, स्वर्णाद्रिं = सुमेरुपर्वत पर पाण्डुक नाम की, शिलायां = शिला पर, तं = उन, प्रभुं = प्रभु को, संस्थाप्य = स्थापित करके, क्षीरवारिधेः = क्षीरसागर के, कुम्भस्थैः = कलश स्थित, वारिभिः = जल से, देवं = तीर्थङ्कर शिशु को, अस्नापयत् = नहलाया अर्थात् उनका अभिषेक किया ।

श्लोकार्थ — काकन्दी नगरी में तीर्थङ्कर शिशु का जन्म होने पर सौधर्म स्वर्ग का स्वामी इन्द्र देवताओं के साथ वहाँ आकर और युक्ति से तीर्थङ्कर शिशु को लेकर सुमेरु पर्वत पर आ गया, उस पर्वत पर विद्यमान पाण्डुक शिला पर प्रभु को स्थापित करके उसने क्षीरसागर के कुम्भ में स्थित जल से भगवान् का अभिषेक किया ।

काकन्द्यां पुनरागत्य कृत्वा तत्र महोत्सवम् ।

पुष्पदन्ताभिधानं स चक्रे मुदा सुरेश्वरः ॥३०॥

अन्ययार्थ — सः = उस, सुरेश्वरः = देवेन्द्र ने, पुनः = फिर से, काकन्द्यां = काकन्दी में, आगत्य = आकर के, च = और, तत्र = वहाँ, महोत्सवं = महान् उत्सव को, कृत्वा = करके, मुदा = प्रसन्नता से, पुष्पदन्ताभिधानं = पुष्पदन्त नामकरण, चक्रे = किया ।

श्लोकार्थ — उस देवेन्द्र ने पुनः काकन्दी में आकर और वहाँ महोत्सव करके प्रसन्नता से प्रभु का नामकरण पुष्पदन्त किया ।

मातुरङ्गे समर्प्याथ देवं बालस्वरूपिणम् ।

जगाम त्रिदशैस्सार्धं सहर्षस्सोऽमरावतीम् ॥३१॥

अन्वयार्थ — अथ = फिर, बालस्वरूपिणं = बाल स्वरूप वाले, देवं = भगवान् को, मातुः = माता की, अङ्के = गोद में, समर्प्य = समर्पित करके, त्रिदशैः = देवों के, सार्धं = साथ, सहर्षः = हर्ष युक्त होता हुआ, सः = वह इन्द्र, अमरावतीं = अमरावती को, जगाम = चला गया ।

श्लोकार्थ — फिर बालस्वरूपी भगवान् को माता की गोद में समर्पित करके देवों के साथ हर्ष युक्त होते हुये वह इन्द्र अमरावती को चला गया ।

नवकोटिसमुद्रोक्ताऽवसरव्यत्यये प्रभोः ।

चन्द्रप्रभात्तम्यन्तर्वर्त्यायुस्स बभूव हि ॥३२॥

अन्वयार्थ — चन्द्रप्रभात् = तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभ से, नवकोटिसमुद्रोक्ताव-सरव्यत्यये = यथोक्त प्रमाण वाले नव करोड़ सागर का काल बीत जाने पर, तदन्तर्वर्त्यायुः = उस नौ करोड़ सागर के भीतर ही परिगणित है आयु जिनकी, सः = वह पुष्पदन्त प्रभु, बभूव = हुये थे ।

श्लोकार्थ — तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभ से नव करोड़ सागर का काल बीत जाने पर उस काल में ही अन्तर्भूत आयु वाले वह पुष्पदन्त प्रभु हुये थे ।

सः कुन्दकलिकाभासः श्वेतवर्णो महाद्युतिः ।

द्विलक्षमितपूर्वायुः शतकोदण्डदेहभृत् ॥३३॥

अन्वयार्थ — सः = वह पुष्पदन्त, कुन्दकलिकाभासः = कुन्दपुष्प के समान, श्वेतवर्णः = श्वेत रंग वाले, महाद्युतिः = महान् कान्ति वाले, द्विलक्षमितपूर्वायुः = दो लाख पूर्व की आयु वाले, (च = और), शतकोदण्डदेहभृत् = एक सौ धनुष ऊँची देह को धारण करने वाले, (आसीत् = थे) ।

श्लोकार्थ — वह पुष्पदन्त भगवान् कुन्दपुष्प की आभा के समान श्वेत रंग

वाले, महान् कान्ति से युक्त, दो लाख पूर्व की आयु वाले और एक सौ धनुष ऊँची काया को धारण करते थे।

अमेयबलभर्तुश्च

बालकेलिरतप्रभोः ।

पञ्चाशदुक्तसाहस्रपूर्वोक्तायुर्गतं

तदा ॥३४॥

यौवनागमने तस्मै जनको राज्यमपर्यत् ।

राज्यं सम्प्राप्य देवेशः स्वविभूत्या समुदज्वलत् ॥३५॥

अन्वयार्थ — बालकेलिरतप्रभोः = बालक्रीडाओं में लगे हुये प्रभु की, च = और, अमेयबलभर्तुः = असीमित बल के धारी स्वामी की, (यदा = जब), पञ्चाशदुक्तसाहस्रपूर्वोक्तायुः = पचास हजार पूर्व आयु, गतं = बीत गयी, तदा = तब, यौवनागमने = युवावस्था का आगमन होने पर, जनकः = पिता ने, तस्मै = प्रभु के लिये, राज्यम् = राज्य, अपर्यत् = अर्पित कर दिया, देवेशः = देवताओं के स्वामी भगवान्, राज्यं = राज्य को, सम्प्राप्य = पाकर, स्वविभूत्या = अपनी विभूति से समुदज्वलत् = अच्छी तरह व अत्यधिक प्रकाशमान हुये।

श्लोकार्थ — बालक्रीडाओं में लगे हुये प्रभु की और असीमित बल के स्वामी उन भगवान् की पचास हजार पूर्व आयु बीत गयी तो युवावस्था आने पर पिता ने उन्हें राज्य दे दिया। राज्य पाकर प्रभु अपनी विभूति से अच्छी तरह व अत्यधिक प्रकाशमान हुये।

विभूतिमधरीकृत्य शक्रादीनामपि प्रभुः ।

स्ववैभवेनातुलेन प्रजाः शश्वदपालयत् ॥३६॥

अन्वयार्थ — प्रभुः = पुष्पदंत प्रभु ने, शक्रादीनां = इन्द्र आदि की, अपि = भी, विभूतिम् = विभूतिसम्पदा को, अधरीकृत्य = हीन-हल्का करके, अतुलेन = अतुलनीय, स्ववैभवेन = अपने वैभाव से, शश्वत् = निरन्तर, प्रजाः = प्रजा का, अपालयत् = पालन किया।

श्लोकार्थ — पुष्पदंत प्रभु ने इन्द्र आदि की भी विभूति को कम करके अपने अतुलनीय वैभव से निरन्तर प्रजा का पालन किया।

एकदा सौधगो देवः दिक्षु सम्पातदृष्टि सः ।

उल्कापातं विलोक्याशु वैराग्यं विश्वतोऽगमत् ॥३७॥

अन्वयार्थ — एकदा = एक दिन, सौधगः = महल के ऊपर गये हुये, दिक्षु = दशों दिशाओं में, सम्पातदृष्टिः = डाल दी है दृष्टि जिसने ऐसे, सः = उस, देवः = राजा ने, उल्कापातं = उल्कापात को, विलोक्य = देखकर, आशु = शीघ्र ही, विश्वतः = संसार से, वैराग्यं = वैराग्य को, अगमत् = प्राप्त किया ।

श्लोकार्थ — एक दिन वह राजा महल के ऊपर गया हुआ दशों दिशाओं में दृष्टि डाल रहा था तब उसने उल्कापात को देखकर शीघ्र ही संसार से वैराग्य को प्राप्त किया ।

तदा लौकान्तिका देवाः प्रभोस्सम्मुखमागताः ।

तुष्टुवुस्तं शुभैर्वाक्यैः तद्दर्शनसुखान्विताः ॥३८॥

अन्वयार्थ — तदा = तब अर्थात् राजा को वैराग्य होने पर, प्रभोः = प्रभु के, सम्मुखं = सामने, आगताः = आये हुये, तद्दर्शनसुखान्विताः = उनके दर्शन से सुखी होते हुये, लौकान्तिकाः = लौकान्तिक, देवाः = देवों ने, शुभैः = शुभ, वाक्यैः = वाक्यों से, तं = उनकी, तुष्टुवः = स्तुति की ।

श्लोकार्थ — राजा को वैराग्य होने पर प्रभु के सम्मुख आये हुये और उनके दर्शन से सुखी होते हुये लौकान्तिक देवों ने शुभ वाक्यों द्वारा उनकी स्तुति की ।

देवोपनीतां शिबिकामारूह्य स ततः प्रभुः ।

तपोवनं जगामाशु शृण्वन् देवजयध्वनिम् ॥३९॥

अन्वयार्थ — ततः = उसके बाद, सः = वह, प्रभुः = प्रभु, देवोपनीतां = देवों द्वारा लायी गयी, शिबिकां = पालकी पर, आरूह्य = चढ़कर, देवजयध्वनिं = देवों द्वारा की गयी जयकार ध्वनि को, शृण्वन् = सुनते हुये, आशु = शीघ्र ही, तपोवनं = तपोवन को, जगाम = चले गये ।

श्लोकार्थ — उसके बाद वह प्रभु देवों द्वारा लायी पालकी में चढ़कर और

देवों द्वारा की गयी जयकार ध्वनि को सुनते हुये शीघ्र ही तपोवन को चले गये।

मार्गशुक्लदले तत्र च मूलप्रतिपत्तिथौ ।

सहस्रभूमिपैस्सार्धं स मुदा दीक्षितोऽभवत् ॥४०॥

अन्वयार्थ — तत्र = वहाँ तपोवन में, सः = वह, सहस्रभूमिपैः = एक हजार राजाओं के, सार्धं = साथ, मार्गशुक्लदले = मार्गशीर्ष माह के शुक्ल पक्ष में, च = और, मूलप्रतिपत्तिथौ = मूल नक्षत्र सहित प्रतिपदा तिथि में, मुदा = प्रसन्नता से, दीक्षितः = मुनिधर्म में दीक्षित, अभवत् = हुये।

श्लोकार्थ — तपोवन में एक हजार राजाओं के साथ मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदा के मूल नक्षत्र में प्रसन्नता पूर्वक वह मुनिधर्म में दीक्षित हो गये।

अन्तर्मुहूर्ते तत्रैव मनःपर्ययमाप्तवान् ।

भिक्षायै स द्वितीयेहिन ततः शैलपुरं ययौ ॥४१॥

अन्वयार्थ — तत्र = उस तपोवन में, अन्तर्मुहूर्ते = अन्तर्मुहूर्त में, एव = ही, मनःपर्ययम् = मनःपर्ययज्ञान, आप्तवान् = प्राप्त कर लिया, द्वितीये = दूसरे, अहिन = दिन, सः = वह, भिक्षायै = आहार भिक्षा के लिये, ततः = तपोवन से, शैलपुरं = शैलपुर को, ययौ = गये।

श्लोकार्थ — उस तपोवन में अन्तर्मुहूर्त में ही उन्होंने मनःपर्ययज्ञान प्राप्त कर लिया तथा दूसरे दिन वह भिक्षा अर्थात् आहार लेने हेतु शैलपुर नगर में गये।

पुष्यमित्राभिधो भूपः तत्र सत्कृत्य तं प्रभुम् ।

ददायाहारमस्मै सोऽपश्यदाश्चर्यपञ्चकम् ॥४२॥

अन्वयार्थ — तत्र = उस शैलपुर में, पुष्यमित्राभिधः = पुष्यमित्र नामक, भूपः = राजा ने, तं = उन, प्रभुं = मुनिराज को, सत्कृत्य = सत्कार करके, अस्मै = उनके लिये, आहारं = आहार-भोजन, ददौ = दिया, सः = उस राजा ने, आश्चर्यपञ्चकम् = पाँच आश्चर्यों को, अपश्यत् = देखा।

श्लोकार्थ - उस शैलपुर में पुष्पमित्र राजा ने मुनिराज का सत्कार करके विधिपूर्वक उन्हें आहार दिया तथा पंचाश्रयों को देखा।

पुनर्वनमुपागत्य चतुर्वर्षं स मौनभृत् ।

तपश्चकार बहुधा महोग्रं महसोज्ज्वलन् ॥४३॥

अन्वयार्थ - पुनः = फिर से, वनं = वन के, उपागत्य = समीप आकर, चतुर्वर्षं = चार वर्ष तक, मौनभृत् = मौन का पालन करने वाले, महसा = तेज से, उज्ज्वलन् = चमकते-दमकते हुये, सः = उन मुनिराज ने, बहुधा = बहुत प्रकार से, महोग्रं = अत्यधिक कठिन-भीषण, तपः = तप, चकार = किया।

श्लोकार्थ - पुनः वन में आकर चार वर्ष तक मौन धारण करने वाले और तेज की प्रभा से चमकते हुये उन मुनिराज ने बहुत प्रकार अत्यधिक भीषण तपश्चरण किया।

घातिकर्मक्षयं कृत्वा तपसोग्रेण कार्तिके ।

शुक्लपक्षद्वितीयायां सन्ध्यायां बिल्वमूलके ॥४४॥

सम्प्राप्य केवलज्ञानं प्राप्तो देवविनिर्मिते ।

तदा समवसारेऽसौ ज्वलत्कोटिरविः प्रभुः ॥४५॥

यथासंख्यं गणेन्द्राद्यैः स्तुतः सम्पूजितस्तथा ।

तत्पृष्टो दिव्यनिर्घोषाच्चक्रे धर्मोपदेशनम् ॥४६॥

अन्वयार्थ - उग्रेण = उग्र भीषण, तपसा = तपश्चरण से, कार्तिके = कार्तिक मास में, शुक्लपक्षद्वितीयायां = शुक्लपक्ष की द्वितीया के दिन, सन्ध्यायां = संध्या-काल में, बिल्वमूलके = बेलवृक्ष के मूल भाग में अर्थात् नीचे, घातिकर्मक्षयं = घातिकर्मों का क्षय करके, (च = और), केवलज्ञानं = केवलज्ञान को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, देवविनिर्मिते = देवताओं द्वारा बनाये गये, समवसारे = समवसरण में, ज्वलत्कोटिरविः = करोड़ों सूर्य के प्रकाशित होने के समान, असौ = वह, प्रभुः = भगवान्, प्राप्तः = स्थित हुये, तदा = तब, यथासंख्यं = क्रमानुसार, गणेन्द्राद्यैः = गणधर आदि मुनियों, देवों, मनुष्यों द्वारा, स्तुतः = स्तुति किये गये, तथा = और, सम्पूजितः = अच्छी तरह

से पूजे गये, तत्पृष्टः = उनके द्वारा पूछे गये उन्होंने, दिव्यनिर्घोषात् = दिव्य उच्चारण स्वरूप उद्घोष से, धर्मोपदेशनं = धर्म का उपदेश, चक्रे = किया।

श्लोकार्थ — भीषण तपश्चरण से कार्तिक सुदी दूज के दिन सन्ध्याकाल में बेल के वृक्ष के मूलभाग में सारे धातिकर्मों का क्षय करके और केवलज्ञान प्राप्त करके देवताओं द्वारा रचित समवसरण में, करोड़ सूर्यों के प्रकाशित होने के समान वह भगवान् क्रमानुसार गणधर आदि द्वारा स्तुति किये गये और पूजे गये उन्हीं द्वारा पूछे जाने वाले भगवान् ने दिव्यध्वनि के उच्चारण पूर्वक धर्मोपदेश किया।

विहृत्य पुण्यक्षेत्रेषु यथोक्तेषु जिनेश्वरः ।

एकमासावशिष्टायुः सम्मेदाचलमागतः ॥४७॥

सुप्रभं कूटमासाद्य संहतध्वनिरीश्वरः ।

भाद्रशुक्लत्रयोदश्यां च मुनिर्मुक्तिमाप सः ॥४८॥

अन्वयार्थ — जिनेश्वरः = केवलज्ञानी भगवान् पुष्पदंत ने, यथोक्तेषु = जैसे आगम में कहे हैं उन, पुण्यक्षेत्रेषु = पुण्य क्षेत्रों में, विहृत्य = विहार करके, एकमासावशिष्टायुः = एक माह मात्र अवशिष्ट आयु वाले, सम्मेदाचलं = सम्मेदशिखरपर्वत को, आगतः = आये हुये, मुनिः = केवलज्ञानी मुनि ने, सुप्रभं = सुप्रभनामक, कूटं = कूट को, आसाद्य = प्राप्त करके, च = और, संहतध्वनिः = संहत कर ली अर्थात् बंद कर ली है दिव्यध्वनि जिन्होंने, सः = वह, ईश्वरः = भगवान् पुष्पदंत ने, भाद्रशुक्लत्रयोदश्यां = भादो सुदी तेरस के दिन, मुक्तिं = मोक्ष लक्ष्मी को, आप = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ — केवलज्ञानी जिनेश्वर यथोक्त पुण्य क्षेत्रों में विहार करके मात्र एक मास आयु अवशिष्ट रहने पर सम्मेदशिखर पर आ गये वहाँ सुप्रभकूट का आश्रय लेकर दिव्यध्वनि समेटने वाले उन केवलज्ञानी भगवान् अर्थात् स्नातक मुनिराज ने भादों शुक्ला तेरस के दिन मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त कर ली।

सुप्रभाख्यो धन्यकूटः पुष्पदंतमहेशितुः ।

अनंतमहिमादीप्तो भाति सम्मेदपर्वते ॥४६॥

अन्वयार्थ — पुष्पदंतमहेशितुः = भगवान् पुष्पदंत की, अनंतमहिमादीप्तः = अनंत महिमा से प्रदीप्त, सुप्रभाख्यः = सुप्रभनामक, धन्यकूटः = धन्यता को प्राप्त कूट, सम्मेदपर्वते = सम्मेदशिखर पर्वत पर, भाति = सुशोभित होता है।

श्लोकार्थ — महान् ईश भगवान् पुष्पदंत की अनंत महिमा से प्रदीप्त और धन्य हुआ सुप्रभनामक कूट सम्मेदशिखर पर्वत पर आज भी सुशोभित हो रहा है।

पुष्पदंतादनूक्तं यत् तदेकोनशतकोट्यः ।

लक्षाणां नवतिः सप्तसहस्राणि चतुश्शतं ॥५०॥

अशीतिः गणिता एवं मुनयो दिव्यचक्षुषः ।

तस्मात्सुप्रभकूटाच्च पदं नैःश्रेयसं गताः ॥५१॥

अन्वयार्थ — यत् = जो, उक्तं = कहा गया, तत् = वह, एवं = इस प्रकार, पुष्पदंतात् अनु = पुष्पदंत के बाद, एकोनशतकोट्यः = निन्यानवें करोड़, लक्षाणां नवतिः = नब्बे लाख, सप्तसहस्राणि = सात हजार, चतुश्शतम् = चार सौ, च = और, अशीतिः = अस्सी, गणिताः = संख्या में परिगणित, दिव्यचक्षुषः = केवलज्ञानी, मुनयः = मुनिराज, तस्मात् = उस, सुप्रभकूटात् = सुप्रभकूट से, नैःश्रेयसं = पूर्णकल्याणप्रद मोक्ष, पदं = स्थान को, गताः = चले गये।

श्लोकार्थ — जो शास्त्रों में कहा है वह इस प्रकार है कि भगवान् पुष्पदंत के बाद निन्यानवें करोड़ नब्बे लाख सात हजार चार सौ अस्सी की संख्या में परिगणित केवलज्ञान चक्षु वाले मुनिराज उस सुप्रभकूट से मोक्षपद को प्राप्त हुये।

वन्देत सुप्रभं कूटं यो भक्त्या मानवोत्तमः ।

कोटिप्रोषधनाम्ना स व्रतानां फलमश्नुयात् ॥५२॥

अन्वयार्थ — ततः = उसके बाद, सोमप्रभाख्येन = सोमप्रभ नामक, राज्ञा

= राजा द्वारा, शुभा = शुभकारिणी, यात्रा = सम्मेदपर्वत की यात्रा, कृता = की गयी, तां = उस, मनोज्ञां = मनोज्ञ, धर्मवर्धिनीं = धर्मभाव को बढ़ाने वाली, यात्राकथां = यात्रा रूप कथा को, अनु = अनुसरण करके, वक्ष्ये = मैं कहता हूँ।

श्लोकार्थ - उसके सोमप्रभ राजा ने सम्मेदशिखर की शुभकारिणी तीर्थयात्रा की थी। कवि कहता है कि मैं भी मनोज्ञ और धर्म भावना को बढ़ाने वाली उस यात्रा की कथा का अनुसरण करके कुछ कहता हूँ।

जम्बूभरतसुक्षेत्रे आर्यखण्डे महाशुचिः ।

सुमौक्तिकाख्यश्च विषयस्तत्र श्रीपुरमुत्तमम् ॥५३॥

अन्वयार्थ - जम्बूभरतसुक्षेत्र = जम्बूद्वीप के भरत नामक सुन्दर क्षेत्र में, आर्यखण्डे = आर्यखण्ड में, सुमौक्तिकाख्यः = सुमौक्तिक नामक, महाशुचिः = अत्यंत पवित्र, विषयः = एक देश, (आसीत् = था), च = और, तत्र = उस देश में, उत्तमं = श्रेष्ठ, श्रीपुरं = श्रीपुर नामक नगर, (आसीत् = था)।

श्लोकार्थ - जंबूद्वीप के भरतक्षेत्रवर्ती आर्यखण्ड में सुमौक्तिक नामक एक अत्यंत पवित्र देश था जिसमें श्रीपुर नामक सुन्दर और श्रेष्ठ नगर था।

हेमप्रभो बभूवार्स्मिन् पुरे भूपतिरुत्तमः ।

तत्प्रिया विजयाख्याता कान्त्या सौदामिनीव सा ॥५४॥

अन्वयार्थ - अस्मिन् = इस, पुरे = नगर में, उत्तमः = श्रेष्ठ, भूपतिः = राजा, हेमप्रभः = हेमप्रभ, बभूव = हुआ था, तत्प्रिया = उसकी प्रिय रानी, विजया = विजया, (आसीत् = थी), सा = वह रानी, कान्त्या = कान्ति अर्थात् शोभा से, सौदामिनी इव = बिजली की चमक के समान, आख्याता = कही गयी है।

श्लोकार्थ - इस नगर में श्रेष्ठ राजा हेमप्रभ हुआ था उसकी प्रिय रानी विजया थी वह शोभा से बिजली की चमक के समान कही गयी है।

तत्तनुजो रूपराशिः नाम्ना सोमप्रभोऽभवत् ।

महामहप्रतापाब्धिः धर्मवान् गुणवांस्तथा ॥५५॥

अन्वयार्थ — तत्तनुजः = उसका पुत्र, नाम्ना = नाम से, सोमप्रभः = सोमप्रभ, रूपराशिः = सुन्दर, गुणवान् = गुणवान्, धर्मवान् = धर्मात्मा, तथा = और, महामहप्रतापाब्धिः = महान् योद्धा और अत्यधिक प्रतापी, अभवत् = हुआ ।

श्लोकार्थ — उस राजा का पुत्र सोमप्रभ सुन्दर रूपवान्, गुणी, धर्मात्मा और शूरवीर प्रतापी योद्धा था ।

एकदा वीरसेनोऽन्यो राजा मण्डलिको महान् ।

कस्माच्चित् कारणात् क्रुद्धः प्राप्तः श्रीनगरान्तिकम् ॥५६॥

हेमप्रभनरेन्द्रेण सार्धं योद्धुमसौ नृपः ।

महत्या सेनया युक्तः पुरमावृत्य सुरिथतः ॥५७॥

अन्वयार्थ — एकदा = एक बार, वीरसेनः = वीरसेन नामक, अन्य = अन्य, मण्डलिकः = माण्डलिक, महान् = महान्, राजा = राजा, कस्माच्चित् = किसी, कारणात् = कारण से, क्रुद्धः = क्रोधित हो गया, (च = और), श्रीनगरान्तिकम् = श्रीपुर नगर के समीप को, प्राप्तः = प्राप्त हुआ, महत्या = विशाल, सेनया = सेना से, युक्तः = युक्त, असौ = वह, नृपः = वीरसेन राजा, हेमप्रभनरेन्द्रेण = हेमप्रभराजा के, सार्धं = साथ, योद्धुं = युद्ध करने के लिये, पुरम् = नगर को, आवृत्य = घेर कर, सुरिथतः = स्थित था ।

श्लोकार्थ — एक बार वीरसेन नामक कोई महान् माण्डलिक राजा किसी कारण से क्रुद्ध होकर श्रीपुर नगर के समीपवर्ती भाग को प्राप्त हुआ वह हेमप्रभ राजा के साथ युद्ध करने के लिये विशाल सेना लेकर नगर को घेर कर वहाँ ठहरा हुआ था ।

ततो हेमप्रभोऽप्येनं योद्धुकामप्रबुध्य सः ।

ससेनः सन्मुखो भूत्वा तेन सार्धं युयोध हि ॥५८॥

अन्वयार्थ — ततः = इसलिये, सः = वह, हेमप्रभः = हेमप्रभ राजा, अपि

= भी, एनं = इस वीरसेन को, योद्धुकामं = लड़ने की इच्छावाला, प्रबुध्य = जानकर, ससेनः = सेनासहित, सन्मुखः = सामने, भूत्वा = होकर, तेन = उसके, सार्ध = साथ, हि = निश्चित ही, युयोध = युद्ध करने लगा।

श्लोकार्थ — अतः वह हेमप्रभ राजा भी इस वीरसेन को लड़ने की इच्छा वाला जानकर सेना सहित उसके सन्मुख होकर उसके साथ नियमतः युद्ध करने लगा।

परस्परं युध्यमानं बलद्वयमुद्रीक्ष्य सः ।
 पितृपक्षं समाश्रित्य वीरः सोमप्रभस्तदा ॥५६॥
 गदामादाय महतीं युद्धायाभिमुखोऽभवत् ।
 वीर्येण तेजसा यस्य तुलां कोऽपि न लब्धवान् ॥६०॥
 रक्षन्स सैनिकांस्तत्र युद्धे मृत्युरिव भ्रमन् ।
 गदया संजहाराशु वीरसेनस्य भूपतेः ॥६१॥

अन्वयार्थ — तदा = तब, परस्परं = आपस में, युध्यमानं = युद्ध करती हुई, बलद्वयं = दोनों सेनाओं को, उद्रीक्ष्य = देखकर, सः = वह, वीरः = वीर योद्धा, सोमप्रभः = सोमप्रभ, पितृपक्षं = पिता के पक्ष को, समाश्रित्य = आश्रय लेकर, महतीं = विशाल, गदां = गदा को, आदाय = लेकर, युद्धाय = युद्ध के लिये, अभिमुखः = सन्मुख या तैयार, अभवत् = हो गया, कोऽपि = कोई भी, यस्य = जिसके, वीर्येण = पराक्रम बल से, तेजसा = तेज से, तुलां = तुलना को, न = नहीं, लब्धवान् = पा सका, सः = उसने, (आत्मानं = अपने को और अपने पक्ष को), रक्षन् = रक्षा करते हुये, तत्र = उस, युद्धे = युद्ध में, मृत्युरिव = मृत्यु अर्थात् काल के सामने, भ्रमन् = भ्रमण करते हुये, भूपतेः = राजा, वीरसेनस्य = वीरसेन के, सैनिकान् = सैनिकों को, गदया = गदा से, आशु = शीघ्र ही, जहार = मार डाला।

श्लोकार्थ — तब आपस में लड़ती हुई दोनों सेनाओं को देखकर वह सोमप्रभ नाम का वीर योद्धा पिता के पक्ष का आश्रय लेकर

युद्ध के लिये सन्मुख हो गया। उसके बलवीर्य अर्थात् पराक्रम और तेज से तुलना करने वाला कोई नहीं हुआ। मृत्यु अर्थात् काल के समान भ्रमण करते हुये उसने जल्दी ही राजा वीरसेन के सैनिकों को गदा से मार डाला।

गदाचमत्कृतिं तस्य स्वपक्षक्षयकारिणीम् ।

वीक्ष्यानिवारितां सद्यो ह्यभूद्रणपरान्मुखः ॥६२॥

अन्वयार्थ — (वीरसेनः = राजा वीरसेन), तस्य = उस सोमप्रभ की, स्वपक्षक्षयकारिणीं = अपने पक्ष का क्षय करने वाली, (च = और), अनिवारितां = जिसे रोकना संभव नहीं ऐसी, गदाचमत्कृतिं = गदा के चमत्कार पूर्ण गतिशीलता को, वीक्ष्य = देखकर, सद्यः = जल्दी, हि = ही, परान्मुखः = परान्मुख या विमुख, अभूत् = हो गया।

श्लोकार्थ — राजा वीरसेन सोमप्रभ की गदा संचालन की चमत्कारपूर्ण गतिशीलता जो स्वपक्ष अर्थात् वीरसेन के पक्ष का विनाश करने वाली थी और जिसे रोक पाना शक्य नहीं था, को देखकर जल्दी ही युद्ध से परान्मुख या विमुख हो गया।

तदा कोटिभटस्सोमः प्रभो विजयलब्धितः ।

जगर्ज संयुगे वीरः स्थितस्तत्रादिराडिव ॥६३॥

अन्वयार्थ — तदा = तब अर्थात् वीरसेन के युद्ध से परान्मुख हो जाने पर, विजयलब्धितः = विजयलाभ हो जाने से, तत्र = उस, संयुगे = युद्ध स्थल में, अदिराट् इव = पर्वतराज मेरु के समान, स्थितः = खड़ा हुआ, कोटिभटः = कोटिभट, सोमप्रभः = सोमप्रभ नामक, वीरः = वीर योद्धा, जगर्ज = गरजने लगा।

श्लोकार्थ — जब वीरसेन युद्ध से विमुख हो गया तो विजयोपलब्धि से प्रसन्न होकर उस युद्ध स्थल में पर्वतराज मेरु के समान स्थित हुआ वह वीरयोद्धा कोटिभट सोमप्रभ गरजने लगा।

लक्षान्भृतमनुष्यांश्च वीक्ष्य कोटिभटस्तदा ।

निर्विघ्नः प्राप्तवैराग्यमात्मानं धिक् चकार सः ॥६४॥

अन्वयार्थ — तदा = तभी, लक्षान् = लाखों, मृतमनुष्यान् = मरे हुये मनुष्यों

को, वीक्ष्य = देखकर, निर्विघ्नः = बिना विघ्न वाले, सः = उस, कोटिभटः = कोटिभट सोमप्रभ ने, प्राप्तवैराग्यं = वैराग्य को प्राप्त, आत्मानं = अपने आपको, धिक् = धिक्कारित, चकार = किया।

श्लोकार्थ — तभी लाखों मृत मनुष्यों को देखकर बिना विघ्न वाले उस कोटिभट सोमप्रभ ने अपने आपको धिक्कारा और वैराग्य को प्राप्त हुआ।

हेमप्रभं तदोवाच राजन् राजपदाप्तये ।

मया बहूनां निधनं कृतं कृत्वा घसंचयम् ॥६५॥

इत्युक्त्वा स जगामाशु वनं मुनिजनाश्रितम् ।

निरीक्षितस्तत्र तेन स्वामी विमलवाहनः ॥६६॥

अन्वयार्थ — तदा = तब, (सः = वह), हेमप्रभं = हेमप्रभ नामक पिता को, उवाच = बोला, राजन् = हे राजन्! राजपदाप्तये = राजपद की प्राप्ति के लिये, अघसंचयं = पापों का संचय, कृत्वा = करके, मया = मेरे द्वारा, बहूनां = अत्यधिक लोगों का, निधनं = मरण, कृतं = किया गया, इति = इस प्रकार, उक्त्वा कहकर, सः = वह, मुनिजनाश्रितं = मुनिजनों के लिये रहने योग्य, वनं = वन को, आशु = जल्दी, जगाम = चला गया, तत्र = उस वन में, तेन = उस सोमप्रभ द्वारा, स्वामी = स्वामी, विमलवाहनः = विमलवाहन, निरीक्षितः = देखे गये।

श्लोकार्थ — तभी वह अपने हेमप्रभ नामक पिता से बोला— हे राजन्! राजपद की प्राप्ति के लिये पापों का संचय करके मैंने बहुत सारे लोगों को मारा है। इस प्रकार कहकर वह राजा मुनिजनों के रहने योग्य वन में चला गया जहाँ उसने स्वामी विमलवाहन को देखा।

त्रिःपरिक्रम्य तं भक्त्या तदासौ शरणोन्मुखः ।

मुनिं प्रोवाच भो स्वामिन् मयेदं कलुषं कृतम् ॥६७॥

अन्वयार्थ — तदा = तब, तं = उन मुनिराज की, भक्त्या = भक्ति से, त्रिः = तीन, परिक्रम्य = परिक्रमा करके, शरणोन्मुखः = उनकी

शरण के लिये उत्सुक, असौ = वह, मुनि = मुनिराज को, प्रोवाच = बोला, भो स्वामिन् = हे भगवन्, मया = मेरे द्वारा, इदं = यह, कलुषं = पाप, कृतम् = किया गया है।

श्लोकार्थ — तब उन विमलवाहन मुनिराज को भक्ति से प्रणाम करके उनकी तीन परिक्रमा करके उनकी शरण में जाने को उत्सुक वह राजा मुनि से बोला— हे भगवन्! मैंने यह कलुष पाप किया है।

मुनिः प्राह तदा राजकुमार शृणु तत्त्वतः ।

तपसो भवति राज्यं तत्र मग्नमुखोऽत्र यः ॥६८॥

स नारकी भवेन्नूनं त्यक्त्वाभी स्वर्गभाक् तदा ।

क्रमान्मुक्तिपदं गच्छेन्नात्र कार्या विचारणा ॥६९॥

अन्ययार्थ — तदा = तभी, मुनिः = मुनिमहाराज, प्राह = बोले, राजकुमार = हे राजकुमार, शृणु = सुनो, तत्त्वतः = यथार्थ में, तपसः = तप से, अत्र = यहाँ, राज्य = राज्य, भवति = होता है, तत्र = उस राज्य में, मग्नमुखः = मग्न, संलग्न, (भवति = होता है), सः = वह, नूनं = निश्चित ही, नारकी = नारकी, भवेत् = होवे, अभी = इस राज्य सम्पत्ति को, त्यक्त्वा = छोड़कर, (म्रियते = मरता है), तदा = तब, स्वर्गभाक् = स्वर्ग का पात्र, (भूत्वा = होकर), क्रमात् = क्रम से, मुक्तिपदं = मुक्तिपद को, गच्छेत् = जावे, अत्र = यहाँ, विचारणा = तर्क विचार, न = नहीं, कार्या = करना चाहिये।

श्लोकार्थ — तभी मुनिमहाराज कहने लगे — हे राजकुमार! सुनो सचमुच में तपश्चरण के फल से ही यहाँ राज्य मिलता है किन्तु जो उस राज्य में मग्न हो जाता है वह नारकी हो जाता है तथा जो उस राज्यलक्ष्मी को छोड़कर मरता है वह स्वर्ग का भागी होकर क्रमशः मोक्ष हो जाता है — इस बात में कोई भी संशय नहीं करना चाहिये।

सोमप्रभस्तदा प्राह भीतो पापादतीव सः ।

अनित्यत्वं शरीरादिपरार्थेष्वनुमत्य च ॥७०॥

पूर्वजन्मनि भो स्वामिन् मया किं दानमर्पितम् ।
 यस्मात्कोटिभटत्वं च प्राप्तमत्रान्यदुर्लभम् ॥७१॥
 श्रुत्वेति तं मुनिः प्राह पुरेस्मिन्नेव चाभवत् ।
 सुखदत्ताभिधः श्रेष्ठी प्रमत्तो धनसंचयात् ॥७२॥
 लोभान्नकणः कोपि कस्मैचिन्नो समर्पितः ।
 दानोद्यान्तं यान्यमपि स मूढात्मा व्यवर्जयत् ॥७३॥
 न मन्यते स्म तद्वार्ता यस्तेन कलिमाकरोत् ।
 सर्वस्मिन्नगरे तस्यापकीर्तिः प्रसृता तदा ॥७४॥
 तन्नामोच्चारणं कोऽपि व्यधान्नाघशङ्कया ।
 एवं तस्य दिनान्यत्र व्यतीतानि बहूनि च ॥७५॥

अन्ययार्थ — तदा = तब, पापात् = पाप से, अतीव = अत्यधिक, भीतः = डरा हुआ, च = और, शरीरादिपदार्थेषु = शरीर आदि पदार्थों में, अनित्यत्वं = क्षणिकपने को, अनुमत्य = मानकर, सः = वह, सोमप्रभः = सोमप्रभ, प्राह = बोला, भो स्वामिन् = हे भगवन्!, पूर्वजन्मनि = पूर्वजन्म में, मया = मेरे द्वारा, किं = क्या, दानं = दान, अर्पितम् = दिया गया, यस्मात् = जिस कारण से, अन्यत्र = अन्य लोगों में, दुर्लभं = कठिन, कोटिभटत्वं = कोटिभटपना अर्थात् करोड़ों योद्धाओं की शक्ति को, अत्र = इस जीवन में, प्राप्तम् = प्राप्त किया है, इति = इस प्रकार, श्रुत्वा = सुनकर, मुनिः = मुनिराज, तं = उसको, प्राह = बोले, अस्मिन् = इस, एव = ही, पुरे = नगर में, सुखदत्ताभिधः = सुखदत्त नामक, श्रेष्ठी = सेठ, धनसंचयात् = धनसंग्रह के कारण से, प्रमत्तः = अहंकारी व प्रमादी, अभवत् = हुआ था, च = और, (तेन = उस सेठ द्वारा), लोभात् = लोभ के कारण, कोऽपि = कोई भी, अन्नकणः = अन्न का दाना, कस्मैचित् = किसी के लिये, नो = नहीं, समर्पितः = दिया, वा = अथवा, और, दानोद्यान्तं = दान देने में उद्यत, अन्यं = अन्य को, अपि = भी, सः = वह, मूढात्मा = मूर्ख जीव, व्यवर्जयत् = रोक देता था, यः = जो, तद्वार्ता = उसकी बात को, न = नहीं, मन्यते स्म = मानता था, (सः

= वह सेठ), तेन = उसके साथ, कलिं = कलह, आकरोत्
 = करता था, तदा = तब, सर्वस्मिन् = सारे, नगरे = नगर
 में, तस्य = उसकी, अपकीर्तिः = अपयश, प्रसृताः = फैल
 गयी, कोऽपि = कोई भी, तन्नामोच्चारणां = उसके नाम का
 उच्चारण, अधशङ्कया = पाप की आशंका से, न = नहीं,
 व्यधात् = करता था, एवं च = और इस प्रकार, तस्य = उसके,
 बहूनि = बहुत, दिनानि = दिन, अत्र = इसी रूप में, व्यतीतानि
 = बीत गये।

श्लोकार्थ – तब अर्थात् मुनिराज के कहने पर पाप से अत्यंत भयभीत और
 शरीरादि पदार्थों में नश्वरता अर्थात् क्षणिकपने को मानकर
 वह सोमप्रम मुनिराज से बोला— हे स्वामिन्! मैंने पूर्वजन्म में
 क्या दान दिया था जिसके फलस्वरूप मुझे यहाँ अन्य लोगों
 को दुर्लभ कोटिभटत्व प्राप्त हुआ है। उसके उक्त प्रश्न को
 सुनकर मुनिराज उससे बोले – इसी नगर में एक सुखदत्त
 नामक सेठ हुआ था जो अत्यधिक धन संग्रह से अहंकारी
 और प्रमादी था। वह लोभ के कारण एक अन्न का दाना भी
 किसी के लिये नहीं देता था तथा जो दान देने में उद्यत होते
 थे उन्हें रोकता था। जो भी उसकी बात नहीं मानता था उससे
 वह कलह करता था। इसलिये तभी सारे नगर में उसकी
 अपकीर्ति फैल गयी। कोई भी उसके नाम का उच्चारण पाप
 के डर से नहीं करता था। इस प्रकार इस रूप में ही उसके
 बहुत सारे दिन बीत गये।

एकदा देवविमानानि निस्सृतानि हि चात्रपथि ।

तैर्वृष्टी रत्नपुष्पाणां कृता च सुरविमानगैः ॥७६॥

निर्जगाम तदैवासौ लोभाक्रान्तो गृहाद्बहिः ।

तत्राजितारख्यमद्राक्षीत् मुनिं तं प्रति सोऽब्रवीत् ॥७७॥

मुने बहुलपीनोऽसि त्वज्चात्र केन हेतुना ।

तदा तेन तथा यार्ता कथिता चैव तं प्रति ॥७८॥

लब्ध्वा चाहारलब्धिं हि पीनोरिम नात्र संशयः ।

भुक्त्वापि चाल्पमन्नं सः मुनेर्हि संप्रभावतः ॥७९॥

लोभं हित्वाऽकरोदानं पुण्यात्मा च बभूव हि ।

एकदा शुभसेनाख्यो मुनीश्वरत्तेन लक्षितः । ॥८०॥

अन्वयार्थ — एकदा = एक दिन, अत्र = इस नगर में, हि = ही, देवविमानानि = देवताओं के विमान, निस्सृतानि = निकले, च = और, सुरविमानगैः = देवविमानों में स्थित, तैः = उन देवों द्वारा, पथि = रास्ते पर, रत्नपुष्पाणां = रत्नों-कमलों की, वृष्टिः = वर्षा, कृता = की । तदैव = उस ही समय, असौ = वह सेठ, लोभाक्रान्तः = लोभ से आक्रान्त हुआ, गृहात् = घर से, बहिः = बाहर, निर्जगाम = निकला, तत्र = वहाँ, अजिताख्यं = अजित नामक, मुनिं = मुनि को, अद्राक्षीत् = देखा, सः = वह सेठ, तं = उन मुनि के, प्रति = प्रति, अब्रवीत् = बोला, मुने = हे मुनीश! त्वं = आप, अत्र = इस अवस्था में, केन हेतुना = किस कारण से, बहुलपीनः = अत्यधिक मोटे, असि = हो, च = और, तदा = तब, तेन = उन मुनिराज द्वारा, तं = उस सेठ के, प्रति = प्रति, तथा = वैसी, एव = ही, वार्ता = बात, कथिता = कही गयी, आहारलब्धिं = आहारलब्धि को, लब्ध्वा = पाकर, हि = ही, अल्पं = थोड़े, अन्नं = अन्न को, भुक्त्वा = खाकर, अपि = भी, पीनः = मोटा, अस्मि = हूँ, अत्र = इसमें, संशयः = सन्देह, न = नहीं है, मुनेः = मुनि के, संप्रभावतः = सम्यक् वचनों के प्रभाव से, सः = उस सेठ ने, लोभं = लोभ को, हित्वा = छोड़कर, दानं = दान, अकरोत् = किया, च = और, हि = निश्चित ही, पुण्यात्मा = पुण्यशाली, बभूव = हो गया, एकदा = एक दिन, तेन = उस सेठ के द्वारा, शुभसेनाख्यः = शुभसेन नामक, मुनीशः = मुनिराज, लक्षितः = देखे गये ।

श्लोकार्थ — एक दिन इसी नगर में देवताओं के विमान निकले । उन विमानों में बैठे देवों द्वारा मार्ग पर रत्न पुष्पों की वर्षा की गई । उसी समय अत्यंत लोभ से ग्रसित वह सेठ भी घर से बाहर निकला । वहाँ उसने अजित नामक मुनि को देखा उन्हें देखकर वह उनसे बोला — हे मुनिराज! आप किस कारण से इस मुनिदशा में भी इतने अधिक मोटे हो । तब उन मुनिराज

ने उस सेठ से वही बात कह दी कि आहारलब्धि रूप ऋद्धि को पाकर ही थोड़े से अन्न को खाकर भी मैं बहुत मोटा हूँ इसमें कोई सन्देह नहीं है। मुनिराज के इन वचनों के प्रभाव से उस सेठ ने लोभ को छोड़कर दान दिया और सचमुच पुण्यशाली हो गया फिर एक दिन उस सेठ द्वारा शुभसेन नामक मुनिराज देखे गये।

तदा सुप्रभकूटस्य वर्णनं मुनिना कृतम् ।

यात्राभावी स तत् श्रुत्वा बभूव मुनिदर्शनात् ॥८१॥

तदैव कोटिभटता योग्यता तस्य चाभवत् ।

पुण्यवृद्धिर्बभूवास्य तद्यात्राभावनादपि ॥८२॥

अन्वयार्थ — तदा = तब, मुनिना = मुनिराज द्वारा सुप्रभकूटस्य = सुप्रभकूट का, वर्णनं = वर्णन, कृतम् = किया गया, तत् = उस वर्णन को, श्रुत्वा = सुनकर, सः = वह सेठ, यात्राभावी = यात्रा करने की भावना करने वाला, बभूव = हुआ, मुनिदर्शनात् = मुनिराज के दर्शन से, तदैव = उसी समय, तस्य = उस सेठ की, कोटिभटता = कोटिभटपने रूप, योग्यता = योग्यता, अभवत् = हो गयी, तद्यात्राभावनादपि = उस समय सम्मैदशिखर की यात्रा करना है इस भाव के कारण से, अस्य = इस सेठ की, पुण्यवृद्धिः = पुण्य में बढ़ोत्तरी, बभूव = हो गयी थी।

श्लोकार्थ — तभी मुनिराज द्वारा सुप्रभकूट का वर्णन किया गया जिसे सुनकर वह सेठ सम्मैद पर्वत की यात्रा करने की भावना वाला हो गया। मुनि के दर्शन से उसी समय उस सेठ के कोटिभट होने की योग्यता हो गयी थी। इस सेठ के पुण्य में निरन्तर बढ़ोत्तरी 'सम्मैदशिखर की यात्रा करना है' इस भावना से ही हो गयी थी।

सः विदर्भदेशमार्गेण सम्मैदाचलं यातवान् ।

तत्रैव दैवयोगाच्च स श्रेष्ठी तनुमत्यजत् ॥८३॥

अन्वयार्थ — सः = वह सेठ, विदर्भदेशमार्गेण = विदर्भ देश के रास्ते से,

सम्मोदाचलं = सम्मोदशिखर को, यातवान् = चल दिया, च = और, तत्रैव = वहाँ ही, दैवयोगात् = भाग्यवशात्, सः = उस श्रेष्ठी ने, तनुं = देह को, अत्यजत् = छोड़ दिया।

श्लोकार्थ — वह सेठ विदर्भ देश के रास्ते से सम्मोदशिखर को चल दिया किन्तु रास्ते में ही भाग्यवशात् उस सेठ ने देह को छोड़ दिया अर्थात् उसकी मृत्यु हो गयी।

ततः सोमप्रभो भूत्वा चात्रैवाऽभवन्नृपः ।

एवं प्रभासकूटं भो ज्ञात्वा यात्रां कुरु त्वं ॥८४॥

अन्वयार्थ — ततः च = और उसके बाद, सोमप्रभः = सोमप्रभ, भूत्वा = होकर, अत्रैव = यहाँ ही, नृपः = राजा, अभवत् = हो गया, भो = अरे, एवं = इस प्रकार, प्रभासकूटं = प्रभासकूट को, ज्ञात्वा = जानकर, त्वं = तुम, यात्रां = प्रभासकूट की यात्रा को, कुरु = करो।

श्लोकार्थ — यात्रा करने की भावना से मरने के बाद वह सेठ सोमप्रभ होकर इसी नगर में ही राजा हो गया अरे! इस प्रकार के प्रभासकूट को जानकर तुम उसकी यात्रा करो।

मुनिवाक्यमिति श्रुत्वा गृहमागत्य सत्त्वरम् ।

सत्संधसहितो यात्रां सम्मोदस्य चकार सः ॥८५॥

अन्वयार्थ — इति = ऐसा, मुनिवाक्यं = मुनि वचनों को, श्रुत्वा = सुनकर, सत्त्वरं = शीघ्र ही, गृहं = घर को, आगत्य = आकर, सत्संधसहितः = प्रशंसनीय संध सहित, सः = उसने, सम्मोदस्य = सम्मोदपर्वत की, यात्रां = यात्रा को, चकार = किया।

श्लोकार्थ — मुनिराज के ऐसे वचन सुनकर और जल्दी घर आकर, प्रशंसनीय संध को साथ लेकर उसने सम्मोदशिखर की यात्रा की।

तत्र गत्वा सुप्रभं कूटं भक्त्याभिनन्दितः ।

राज्यं च लौकिकं प्राप्य भुक्त्वा भोगाननेकशः ॥८६॥

शुभसेनाख्यपुत्राय राज्यं दत्त्वा ततो नृपः ।

द्वात्रिंशत्कोटिभव्यैश्च सार्धं चक्रे तपो महत् ॥८७॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस सम्मेलशिखर की यात्रा में, सुप्रभं = सुप्रभ नामक, कूटं = कूट पर, गत्वा = जाकर, भक्त्या = भक्ति से, अभिनन्दितः = वन्दित की गई, (येन = जिस कारण से) राज्यं = राजपाट को, च = और, लौकिकं = लौकिक यश को, प्राप्य = प्राप्त कर, अनेकशः = अनेक प्रकार से, भोगान् = भोगों को, भुक्त्वा = भोगकर, नृपः = राजा ने, शुभसेनाख्यपुत्राय = शुभसेन नामक पुत्र के लिये, राज्यं = राज्य, दत्त्वा = देकर, च = और, ततः = उसके बाद, द्वात्रिंशत्कोटिभव्यैः = बत्तीस करोड़ भव्य जीवों के, सार्धं = साथ, महत् = अत्युग्र, तपः = तपश्चरण, चक्रे = किया ।

श्लोकार्थ - सम्मेलशिखर की यात्रा में सुप्रभनामक कूट पर जाकर उस राजा ने उसकी कूट की वन्दना की जिससे राज्य एवं लौकिक यश पाकर और अनेक प्रकार के भोग भोगकर बाद में शुभसेन पुत्र के लिये राज्य देकर बत्तीस करोड़ भव्य जीवों के साथ अत्युग्र तपश्चरण किया ।

केवलज्ञानमासाद्य घातिकर्मक्षयान्मुनिः ।

स्वसंघसहितो मुक्तिं जगाम भुवि दुर्लभाम् ॥८८॥

अन्वयार्थ - घातिकर्मक्षयात् = घातिकर्मों का क्षय हो जाने से, केवलज्ञानम् = केवलज्ञान को, आसाद्य = प्रगट कर या पाकर, स्वसंघसहितः = अपने संघ के साथ, मुनिः = वह मुनि, भुवि = पृथ्वी पर, दुर्लभां = दुर्लभ, मुक्तिं = मोक्ष को, जगाम = चले गये ।

श्लोकार्थ - घातिकर्मों का क्षय हो जाने से केवलज्ञान को प्राप्त कर वह मुनिराज अपने संघ सहित मुक्ति को चले गये ।

महालुब्धोऽपि मंदश्च सम्मेदं भावयन्मुदा ।

भस्मीकृत्याखिलं कर्म कैवल्यपदमाप सः ॥८९॥

अन्वयार्थ - महालुब्धः = महालोभी, अपि = भी, च = और, मंदः = मंद

बुद्धि-अज्ञानी, सः = उस श्रेष्ठी ने, मुदा = प्रसन्नता से, सम्मेदं = सम्मेदशिखर की यात्रा करने की, भावयन् = भावना करते हुये, अखिलं = सम्पूर्ण, कर्म = कर्म, भस्मीकृत्य = भस्म करके, कैवल्यपदं = कैवल्यज्ञान से प्राप्त निर्वाणपद को, आप = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ -- महालोभी और मंदबुद्धि अज्ञानी होकर भी उस श्रेष्ठी ने प्रसन्नता से सम्मेदपर्वत की यात्रा करने की भावना करते हुये सम्पूर्ण कर्मों को भस्म करके मुक्ति पद पा लिया।

ईदृक्प्रभावस्सम्मेदकूटोऽयं सुप्रभाभिधः ।

श्रावणीयो माननीयः सदा वन्द्यो मनीषिभिः ॥६०॥

अन्वयार्थ - ईदृक्प्रभावः = ऐसे प्रभाव वाला, अयं = यह, सुप्रभाभिधः = सुप्रभ नाम वाला, सम्मेदकूटः = सम्मेदाचल का कूट, मनीषिभिः = मनीषियों के द्वारा, सदा = हमेशा, वन्द्यः = वन्दनीय, श्रावणीयः = सुनने-सुनाने योग्य, (च = और), माननीयः = मनन योग्य या आदरणीय, (अस्ति = है)।

श्लोकार्थ -- ऐसे अनुपम प्रभाव वाला यह सुप्रभ नामक सम्मेद पर्वत का कूट बुद्धिजीवी-विचारकों द्वारा सदैव सुनने-सुनाने, मनन करने या आदर करने और वन्दना करने योग्य है।

वन्दनादेककूटस्य फलमीदृक्प्रकाशितम् ।

वन्दनात्सर्वकूटानां वक्तव्यं किं पुनर्बुधा ॥६१॥

अन्वयार्थ -- एककूटस्य = एक कूट की, वन्दनात् = वन्दना से, इदृक् = ऐसा, फलं = फल, प्रकाशितम् = बताया गया या प्रकाशित हुआ, सर्वकूटानां = सभी कूटों की, वन्दनात् = वन्दना से, वक्तव्यं = कहने योग्य फल को, पुनः = फिर से, बुधाः = विद्वान् गण, किं = क्या, (भाषेरन् = कहें)।

श्लोकार्थ -- जब एक कूट की वन्दना करने से ऐसा फल प्रकाशित कर दिया गया है तो सभी कूटों की वन्दना करने से कहने योग्य फल क्या बचता है जिसे विद्वज्जन कहें।

अखिलकलुषराशिध्वंशसनाद्धि प्रवीणम् ।

सुकृतजलधिचन्द्रं पुष्पदन्ताधिवासम् ॥६२॥

तिमिरगजमहीषघ्रातसंहारसिंहम् ।

मनसि निविडभक्त्या सुप्रभं कूटमीडे ॥६३॥

अन्वयार्थ – (अहं = मैं), मनसि = मन में, निविडभक्त्या = सघन भक्ति से, पुष्पदन्ताधिवासं = पुष्पदंत प्रभु के निवास स्थान स्वरूप, सुकृतजलधिचन्द्रं = सुकृत अर्थात् पुण्य के सागर को वृद्धिगत करने में चन्द्र के समान, तिमिरगजमहीषघ्रातसंहारसिंहं = अन्धकारमय अज्ञान रूप बलशाली गजों के झुंड के संहार में सिंह सदृश, अखिलकलुषराशिध्वंसनात् = सम्पूर्ण कलुष राशि अर्थात् कर्मों के ध्वंस में कारण होने से, प्रवीणं = कुशलस्वरूप, सुप्रभं = सुप्रभ नामक, कूटं = कूट की, ईडे = स्तुति करता हूँ।

श्लोकार्थ – अपने मन में सघन-घनीभूत अर्थात् अत्यधिक भक्ति होने से मैं तीर्थङ्कर पुष्पदंत की निर्वाणस्थल स्वरूप, पुण्य के सागर को वृद्धिगत करने में चन्द्रमा समान, अज्ञान स्वरूप अंधकार के प्रतीक काले बलशाली गजों के झुंडों के संहार करने में सिंह के समान और सम्पूर्ण कल्मषों अर्थात् कर्म कालिमा के विनाश में कारण होने से प्रवीण मित्र की तरह सुप्रभ कूट की स्तुति करता हूँ।

[इति दीक्षितदेवदत्तकृते श्री सम्मेदशिखरमाहात्म्ये तीर्थकृतपुष्पदंत-
वृत्तान्तपुररसरं सुप्रभकूटदर्शनस्य फलवर्णनं नाम
नवमस्सर्गः समाप्तः ।]

[इस प्रकार दीक्षितदेवदत्तरचित श्री सम्मेदशिखरमाहात्म्य नामक काव्य में तीर्थङ्कर पुष्पदंत के वृत्तान्त को उजागर करता हुआ सुप्रभकूट के दर्शन के फल का वर्णन करने वाला नौवा सर्ग समाप्त हुआ ।]

अथ दशमोऽध्यायः

विद्युद्वराख्यकूटाद्यः श्रेयस्सम्प्राप निर्मलः ।

जगत्सन्तापहर्तारं शीतलनाथं नमाम्यहम् ॥१॥

अन्वयार्थ — यः = जिन, निर्मलः = मलरहित शीतलनाथ ने, विद्युद्वराख्यकूटात् = विद्युद्वर नामक कूट से, श्रेयः = मोक्ष को, सम्प्राप = प्राप्त किया, (तं = उग), जगत्सन्तापहर्तारं = जगत् के संताप को हरने वाले, शीतलनाथं = शीतलनाथ को, अहं = मैं, नमामि = नमस्कार करता हूँ।

श्लोकार्थ — जिन निर्मल शीतलनाथ ने विद्युद्वरकूट से मोक्ष प्राप्त किया मैं जगत् के संताप को हरने वाले शीतलनाथ को नमस्कार करता हूँ।

पुष्कराख्ये महाद्वीपे मन्दरे कान्तिमन्दिरे ।

नद्याः पूर्वविदेहेस्मिन् सीतायाः दक्षिणे तटे ॥२॥

वत्सदेशे सुसीमाख्यं नगरं किल शोभते ।

पद्मगुल्मस्तत्रा राजा बभूव सुकृताम्बुधिः ॥३॥

अन्वयार्थ — पुष्कराख्ये = पुष्कर नामक, महाद्वीपे = महाद्वीप में, कान्तिमन्दिरे = कान्ति के मन्दिर स्वरूप, अस्मिन् = इस, मन्दरे = मन्दर मेरु पर, पूर्वविदेहे = पूर्वविदेह क्षेत्र में, सीतायाः = सीता, नद्याः = नदी के, दक्षिणे = दक्षिण, तटे = तट पर, वत्सदेशे = वत्सदेश में, सुसीमाख्यं = सुसीमा नामक, नगरं = नगर, शोभते = सुशोभित होता है, किल = अव्यय, तत्र = उस नगर में, सुकृताम्बुधिः = पुण्य का सागर अर्थात् महान् पुण्यात्मा, पद्मगुल्मः = पद्मगुल्म नामक, राजा = राजा, बभूव = हुआ था।

श्लोकार्थ — पुष्करवर महाद्वीप के मेरुमन्दर पर्वत पर स्थित पूर्वविदेह क्षेत्र को सीतानदी के दक्षिण तट पर वत्सदेश में एक सुसीमा

नामक नगर है। उसमें अत्यधिक पुण्यशाली महान् पुण्यात्मा पद्मगुल्म नामक राजा हुआ था।

महाप्रतापवान् सर्वं न्यायतः कर्म स व्यधात् ।
 श्रीकान्ताख्या तस्य राज्ञी बभूवातीव सुन्दरी ॥४॥
 सुशीला गुणराशिश्च तस्याश्चन्दनपुत्रकः ।
 एकस्मिन्दिवसे चाभ्रविभ्रमं वीक्ष्य सोऽम्बरे ॥५॥
 स्वयं मुनिर्बभूवासौ वनं गत्वा तपस्विनाम् ।
 भूत्वा चाग्रेश्वरो धीमान् तपः तप्या विशेषतः ॥६॥
 साधूनामीश्वरो भूत्वा धर्मदेशनमाकरोत् ।
 धृत्वाचैकादशाङ्गानि भावनानि च षोडश ॥७॥
 दधे तैर्धकरं गोत्रं चान्ते सन्यासरीतितः ।
 तनुं त्यक्त्यारणे पञ्चदशमे कल्प उत्तमे ॥८॥
 संप्राप सोऽहमिन्द्रत्वं द्वाविंशत्यर्णवायुषः ।
 तत्प्रमाणसहस्राब्दगमने मानसं प्रभुः ॥९॥
 द्वाविंशत्पक्षोपरि स आहारमग्रहीद् ध्रुवम् ।
 आश्वसद् धर्मभृद्देवः परमानन्दनिर्भरः ॥१०॥
 ज्ञानलोचनतस्तस्मान्नरकावधिं प्राबोधयत् ।
 सर्वं कर्तुं समर्थोऽभूत् सिद्धबिम्बान् समर्चयन् ॥११॥

अन्वयार्थ - महाप्रतापवान् = महाप्रतापी-पराक्रमी, सः = वह राजा, न्यायतः = न्याय-नीति मार्ग से, सर्वं = सारे, कर्म = कार्य, व्यधात् = करता था, तस्य = उस राजा की, श्रीकान्ताख्या = श्रीकान्ता नामक, अतीव = अत्यधिक, सुन्दरी = रूपवती, सुशीला = शीलवती, च = और, गुणराशिः = गुणों की खान स्वरूप, राज्ञी = रानी, (आसीत् = थी) तस्याः = उसका, चन्दनपुत्रकः = चन्दन नामक पुत्र, बभूव = हुआ था, एकस्मिन् = एक, दिवसे = दिन, सः = वह, अम्बरे, आकाश में, अभ्रविभ्रमं = बादलों के विभ्रमोत्पादक स्वरूप को, वीक्ष्य = देखकर, स्वयं = खुद ही, मुनिः = मुनि, बभूव = हो गया, च = और, वनं = वन में, गत्वा = जाकर, च = तथा, विशेषतः = विशेष

रूप से, तपः = तपश्चरण को, तप्त्वा = तप कर, असौ = वह, धीमान् = बुद्धिमान्, तपस्विनां = तपस्वियों का, अग्रेश्वरः = अग्रणी, भूत्वा = होकर, च = और, साधूनाम् = सज्जनों का, ईश्वरः = स्वामी, प्रभु, भूत्वा = होकर, धर्मदेशनं = धर्मोपदेश को, अकरोत् = करने लगा, च = और, एकादशाङ्गानि = ग्यारह अङ्गों को, च = और, षोडश = सोलह, भावनानि = भावनाओं को धृत्वा = धारण कर व भाकर, तैर्थकरं = तीर्थङ्कर नामक, गोत्रं = महापुण्य को, दधे = धारण किया अर्थात् बांधा, अन्ते = आयु के अन्त में, सन्यासरीतितः = सन्यासमरण की विधि से, तनुं = शरीर को, त्यक्त्वा = छोड़कर, पञ्चदशमे = पन्द्रहवें, उत्तमे = उत्तम, आरणे = आरण नामक, कल्पे = विमान में, सः = उसने, द्वाविंशत्यर्णवायुषः = बाबीस सागर आयु का, अहमिन्द्रत्वं = अहमिन्द्रपना, संप्राप्त = प्राप्त कर लिया, सः = वह, प्रभुः = समर्थ देव, तत्प्रमाणसहस्राब्दगमने = आयु प्रमाण अर्थात् बाबीस हजार वर्ष जाने पर, मानसं = मानसिक अर्थात् मन द्वारा उत्पन्न अमृत स्वरूप, आहारं = भोजन को, अग्रहीत् = लेता था, च = और, परमानन्दनिर्भरः = परम आनन्द से पूर्ण, धर्मभृद् = धर्मात्मा, देवः = अहमिन्द्र देव, ध्रुवम् = निश्चित ही, द्वाविंशतिपक्षोपरि = बाबीस पखवाड़े अर्थात् ग्यारह माह ऊपर होने पर अर्थात् बीतने पर, आश्वसत् = स्वांस लेता था, ज्ञानलोचनतः = ज्ञान नेत्र से, (सः = वह), तस्मात् = वहाँ से लेकर, नरकावधिं = नरक पर्यन्त, प्राबोधयत् = जानता था, (तथा च = और) सिद्धबिम्बान् = सिद्ध बिम्बों की, समर्चयन् = सम्यक् अर्चना करता हुआ, सर्व = सब कुछ, कर्तुं = करने के लिये, समर्थः = समर्थ, अभूत् = था ।

तदा जम्बूमति द्वीपे भरते क्षेत्र उत्तमे ।

आर्यखण्डे शुभे देशे नगरे भद्रनाम्नि ॥१२॥

इक्ष्वाकुवंशे राजाऽभून्नाम्ना वृद्धरथो महान् ।

सुनन्दाख्या महाराज्ञी सुभगा देवतोपमा ॥१३॥

अन्वयार्थ - तदा = तभी, जम्बूमति = जम्बूवृक्ष वाले, द्वीपे = द्वीप में, उत्तमे = उत्तम, भरते = भरत, क्षेत्रे = क्षेत्र में, आर्यखण्डे = आर्यखण्ड में, शुमे = शुभ, देशे = देश में, भद्रनाम्नि = भद्र नामक, नगरे = नगर में, इक्ष्वाकुवंशे = इक्ष्वाकुवंश में, नाम्ना = नाम से, दृढरथः = दृढरथ, महान् = एक महान्, राजा = राजा, अभूत् = हुआ, (तस्य = उसकी), देवतोपमा = देवाङ्गना तुल्य, सुभगा = सौन्दर्यशालिनी, सुनन्दाख्या = सुनन्दा नाम की, महाराज्ञी = महारानी, (आसीत् = थी)।

श्लोकार्थ - उस समय जम्बूद्वीप के उत्तम भरतक्षेत्र में आर्यखण्डवर्ती शुभ देश में एक भद्र नामक नगर है जिसमें इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न एक महान् राजा दृढरथ हुये थे। उनकी देवाङ्गना तुल्य और सुन्दर सुनन्दा नाम की महारानी थी।

प्रभोरागमनं तस्य गृहे ज्ञात्वा स वासवः ।

यक्षराजं महोत्साहात् रत्नवृष्ट्यर्थमादिशत् ॥१४॥

षण्मासमेकरीत्या सः प्रेमजीमूतवत्तदा ।

सुवृष्टिं च मुदा चक्रे मुसलाकारधारिकाम् ॥१५॥

अन्वयार्थ - तस्य = उस राजा के, गृहे = घर में, प्रभोः = भगवान् का, आगमनं = जन्म लेना, ज्ञात्वा = जानकर, सः = उस, वासवः = इन्द्र ने, महोत्साहात् = अति उत्साह से, यक्षराजं = यक्षाधिपति कुबेर को, रत्नवृष्ट्यर्थ = रत्नों की वर्षा करने के लिये, आदिशत् = आदेश दिया, तदा = तब, अर्थात् इन्द्र का आदेश मिलने पर, सः = उस कुबेर ने, षण्मासं = छह माह तक, एकरीत्या = एक जैसी विधि से, प्रेमजीमूतवत् = प्रेमपूर्वक बादलों के समान, मुसलाकारधारिकाम् = मूसल के आकार बराबर धारा वाली अर्थात् मूसलाधार, सुवृष्टिं = सुन्दर वर्षा-रत्नों की बरसात, मुदा = प्रसन्न मन से, चक्रे = की।

श्लोकार्थ - उस राजा के घर में प्रभु का आगमन होगा ऐसा जानकर इन्द्र ने कुबेर को अति उत्साह से रत्नों की वर्षा करने की आज्ञा दे दी। आज्ञा पाने पर कुबेर ने लगातार छह माह तक

एक ही जैसी विधि से प्रेमपूर्वक बादलों के समान, मूसलाधार
रत्नों की वर्षा की।

एकदा रत्नपर्यङ्के देवी समाविशत्सती ।

चैत्रकृष्णदले षष्ठ्यां पूर्वाषाढामिधे शुभे ॥१६॥

अर्धयामावशिष्टायां रात्रौ स्वप्नांश्च षोडशान् ।

दृष्ट्वाऽपश्यदन्ते सा वक्त्रगं मत्तसिन्धुरं ॥१७॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, चैत्रकृष्णदले = चैत्रमास के कृष्ण पक्ष में, षष्ठ्यां = षष्ठी के दिन, शुभे = शुभ, पूर्वाषाढामिधे = पूर्वाषाढ नामक नक्षत्र में, रात्रौ = रात्रि में, सा = वह, सती = शीलवती, देवी = रानी, रत्नपर्यङ्के = रत्नमय पलंग में, समाविशत् = प्रविष्ट हुई अर्थात् सोयी, च = और, अर्धयामावशिष्टायां = आधा एहर रात्रि शेष रहने पर, षोडश = सोलह, स्वप्नान् = स्वप्नों को, दृष्ट्वा = देखकर, अन्ते = अन्त में, वक्त्रगं = मुख में जाता हुआ, मत्तसिन्धुरं = उन्मत्त हाथी को, अपश्यत् = देखा।

श्लोकार्थ - एक दिन चैत्रकृष्णा को शुभ पूर्वाषाढ नक्षत्र में वह सती रानी रात्रि में रत्नमय पलंग पर सोयी तथा आधा प्रहर रात्रि शेष रहने पर उसने सोलह स्वप्नों को देखकर अपने मुख में जाते हुये उन्मत्त हाथी को देखा।

एवं स्वप्नान् समीक्ष्येयं प्रबुद्धा पुलकाञ्चिता ।

प्रफुल्लवदना देवी गता सा स्वपत्युरन्तिकम् ॥१८॥

सादरं सा शुभे पीठे भूपालेनोपवेशिता ।

दृष्टस्वप्नान् समुच्चार्याऽपृच्छत्स्वप्नफलं तदा ॥१९॥

अन्वयार्थ - एवं = इस प्रकार, स्वप्नान् = स्वप्नों को समीक्ष्य = देखकर, इयं = यह रानी, प्रबुद्धा = जाग गयी, (च = और), पुलकाञ्चिता = रोमाञ्चित, प्रफुल्लवदना = प्रसन्नमुख वाली, सा = वह, देवी = रानी, स्वपत्युरन्तिकं = अपने पति के पास, गता = गयी, भूपालेन = राजा द्वारा, सादरं = आदर सहित, शुभे = शुभ, पीठे = पीठ पर, उपवेशिता = बैठायी गयी, तदा

= तब, सा = उस रानी ने, दृष्टस्वप्नान् = देखे गये स्वप्नों को, समुच्चार्य = कहकर, स्वप्नफलं = स्वप्नों के फल को, अपृच्छत् = पूछा।

श्लोकार्थ — इस प्रकार स्वप्नों को देखकर रानी जाग गयी और रोमाञ्चित शरीर और प्रसन्न मुख वाली होकर वह रानी अपने पति के पास गयी राजा द्वारा आदर सहित बैठायी गयी तब उस रानी ने देखे गये स्वप्नों को कहकर राजा से स्वप्नों का फल पूछा।

ततः स्वप्नफलं राजा संविचार्याह तां प्रियाम् ।

तव गर्भे समायातो देवदेवो महान् ध्रुवम् ॥२०॥

अन्वयार्थ — ततः = उसके बाद, स्वप्नफलं = स्वप्नों के फल को, संविचार्य = अच्छी तरह विचार कर, राजा = राजा, तां = उस, प्रियां = प्रिय रानी को, आह = बोला, तव = तुम्हारे, गर्भे = गर्भ में, ध्रुवं = निश्चित ही, महान् = एक महान्, देवदेवः = देवों का भी देव अर्थात् तीर्थङ्कर जीव, समायातः = आ गया है।

श्लोकार्थ — उसके बाद स्वप्नों के फल को अच्छी तरह से सोचकर वह राजा अपनी उस प्रिय रानी को बोला— तुम्हारे गर्भ में निश्चित ही एक महान् देवों का भी स्वामी अर्थात् तीर्थङ्कर सत्वी जीव आ गया है।

इति श्रुत्वा तदा देवी परमानन्दसंप्लुता ।

धन्यत्वं स्वात्मनि स्थाप्यातिष्ठदाजगृहे मुदा ॥२१॥

अन्वयार्थ — इति = इस प्रकार स्वप्न फल को, श्रुत्वा = सुनकर, तदा = तब, परमानन्दसंप्लुता = परमानन्द में डूबी हुई अर्थात् आनंदित होती हुई, देवी = रानी ने, स्वात्मनि = अपने में, धन्यत्वं = धन्यता को, स्थाप्य = स्थापित करके, मुदा = प्रसन्न मन से, राजगृहे = राजभवन में, अतिष्ठत् = वास किया।

श्लोकार्थ — इस प्रकार स्वप्नों के फल को सुनकर उसी समय परमानन्द में डूबी हुई उस रानी ने अपने आप में धन्यता स्थापित कर अर्थात् अपने को धन्य मानकर वह प्रसन्न मन से राजगृह में रहती थी।

गर्भागतोऽहमिन्द्रोऽभूत्सर्वदिक्षु प्रकाशकम् ।

गगनं निर्मलञ्चासीद् ववुर्वाताः सुखावहाः ॥२२॥

चक्रुस्तस्यास्तदा गर्भशोधनं षट्कुमारिकाः ।

दास्ये हि स्थिता चासन् नानासेवातत्पराः ॥२३॥

माघमासे ततः कृष्णद्वादश्यां गर्भगः शुभे ।

जगविरासीजगन्नाथः तस्यां सिन्धौ विधुर्यथा ॥२४॥

अन्वयार्थ — (यदा = तब), अहमिन्द्र = वह अहमिन्द्र देव, गर्भागतः = गर्भ में आया, तदा = तब, सर्वदिक्षु = सभी दिशाओं में, प्रकाशकम् = प्रकाश करने वाला, (तेजः = तेज), अभूत् = हो गया, गगनं = आकाश, निर्मलं = साफ-स्वच्छ, आसीत् = था, वाताः = हवायें-वायु, सुखावहाः = सुखप्रद, ववुः = बह रही थीं। षट्कुमारिकाः = छह कुमारियों ने, तस्या = उस रानी के, गर्भशोधनं = गर्भ का शोधन, चक्रुः = किया, च = और, नानासेवातत्पराः = नानाविध सेवा करने में तत्परता से उद्यमशील, दास्ये = दास्य कर्म में, हि = ही, स्थिताः = उपस्थित, आसन् = रहती थीं।

ततः = उसके बाद, माघमासे = माघ महिने में, शुभे = शुभ, कृष्णद्वादश्यां = कृष्ण पक्ष की बारहवीं के दिन, गर्भगः = गर्भ में स्थित, जगन्नाथ = जगत् के स्वामी तीर्थङ्कर, तस्यां = उस रानी में, (तथा = वैसे ही), आविः = उत्पन्न, आसीत् = हुये, यथा = जैसे, सिन्धौ = समुद्र में, विधुः = चन्द्रमा।

श्लोकार्थ — जब वह अहमिन्द्र रानी के गर्भ में आया, तो सभी दिशाओं में प्रकाश करने वाला तेज व्याप्त हो गया, आकाश स्वच्छ हुआ और सुखप्रद हवायें बहने लगीं।

षट्कुमारिकाओं ने उस रानी के गर्भ का शोधन किया और नाना प्रकार से उनकी सेवा में तत्पर अर्थात् तैयार होकर हमेशा दासी के करने योग्य दास्य कर्म के करने में ही प्रसन्न रहने लगीं।

उसके बाद माघ महिने में कृष्णपक्ष की द्वादशी के शुभ दिन गर्भ में स्थित जगत् के स्वामी भगवान् का जन्म रानी में वैसे ही हुआ जैसे समुद्र में चन्द्रमा।

जैसे चन्द्रमा उदय होने पर समुद्र में लहरों की गतिशीलता से वृद्धि होती है वैसे ही प्रभु का जन्म होने पर रानी में प्रसन्नता की वृद्धि हुई।

प्रबुद्धयावधितस्तस्य प्राभवं विश्वमोदकम् ।

सौधर्मेशस्तदा देवैस्सार्धं तत्राभ्युपाययौ ॥२५॥

अन्वयार्थ - तदा = तभी, सौधर्मेशः = सौधर्म इन्द्र, अवधितः = अवधिज्ञान से, विश्वमोदकं = सभी को प्रसन्न करने वाला, तस्य = उन प्रभु का, प्राभवं = जन्म को, प्रबुद्धय = जानकर, देवैः = देवताओं के, सार्धं = साथ, तत्र = उस भद्र पुर नगर में, अभ्युपाययौ = अभ्युत्थान की भावना से आया।

श्लोकार्थ - तभी जगत् को मोदकारी, अर्थात् प्रसन्न करने वाला उन भगवान् का जन्म हो गया है— यह अवधिज्ञान से जानकर सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र देवों के साथ वहाँ आ गया।

तं समादाय देवेन्द्रः सादरं श्रीपतिं प्रभुम् ।

बालरूपं गतो मेरुं जयशब्दं समुच्चरन् ॥२६॥

अन्वयार्थ - देवेन्द्रः = देवों का स्वामी इन्द्र, तं = उन, श्रीपतिं = लक्ष्मीपति, बालरूपं = शिशुस्वरूप, प्रभुं = प्रभु को, समादाय = लेकर, जयशब्दं = जय-जयकार के शब्द, समुच्चरन् = उच्चारित करता हुआ, मेरुं = मेरु पर्वत पर, गतः = गया।

श्लोकार्थ - इन्द्र बाल स्वरूप कान्ति शोभां या लक्ष्मी के स्वामी उन भगवान् को लेकर जयघोष करता हुआ मेरु पर्वत पर गया।

तत्राभिषेकमकरोत् पूर्णैः क्षीरोदवारिभिः ।

कलशैर्हमरचितैः देवदेवस्य सादरम् ॥२७॥

अन्वयार्थ - तत्रः = वहाँ पाण्डुकशिला पर, क्षीरोदवारिभिः = क्षीरसागर के जल से, पूर्णैः = भरे हुये, हेमरचितैः = स्वर्णरचित, कलशैः = कलशों से, सादरं = आदर सहित, देवदेवस्य = देवों के भी देव तीर्थङ्कर का, अभिषेकम् = अभिषेक, अकरोत् = किया।

श्लोकार्थ - वहाँ पाण्डुकशिला पर उस इन्द्र ने क्षीरोदधि के जल से भरे हुये स्वर्ण निर्मित कलशों से तीर्थङ्कर बालक का अभिषेक किया।

अभिषिच्यथ संभूष्य दिव्यैराभरणैः प्रभुम् ।

स तमनयत्पुनर्भद्रपुरे राजगृहं प्रति ॥२८॥

अन्वयार्थ - अभिषिच्य = अभिषेक करके, अथ = और, दिव्यैः = दिव्य, आभरणैः = वस्त्र-आभूषणों से, प्रभुम् = भगवान् को, संभूष्य = अलङ्कृत करके, सः = वह इन्द्र, तम् = उस तीर्थङ्कर शिशु को, पुनः = फिर से, भद्रपुरे = भद्रपुर में, राजगृहं प्रति = राजभवन की ओर, आनयत् = ले आया।

श्लोकार्थ - अभिषेक करके और प्रभु को दिव्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करके वह इन्द्र भगवान् को पुनः भद्रपुर में राजभवन तक ले आया।

तत्र संपूज्य भक्त्या तं तदग्रेऽद्भुतताण्डवम् ।

विधाय तस्य देवस्य शीतलाख्यां चकार सः ॥२९॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस राजभवन में, तं = शिशु तीर्थङ्कर को, भक्त्या = भक्ति पूर्वक, संपूज्य = पूजकर, तदग्रे = उनके आगे, अद्भुतं = चमत्कारिक, ताण्डवम् = ताण्डव नृत्य को, विधाय = करके, सः = उस इन्द्र ने, तस्य = उन, देवस्य = तीर्थङ्कर शिशु का, शीतलाख्यां = शीतलनाथ नाम, चकार = किया।

श्लोकार्थ - उस राजभवन में तीर्थङ्कर शिशु की भक्ति भाव से पूजा करके और उसके आगे चमत्कारिक ताण्डव नृत्य करके इन्द्र ने उनका नाम शीतलनाथ कर दिया।

स्तुत्या मुहुः सुरेन्द्रस्तं मातुरङ्के विधाय च ।

जयनिर्घोषणं कुर्वन् स स्वर्गात्रां मुदा व्यधात् ॥३०॥

अन्वयार्थ - मुहुः = बार बार, स्तुत्या = स्तुति करके, च = और, तं = उन तीर्थङ्कर शिशु को, मातुरङ्के = माता की गोद में, निधाय = रखकर, सः = उस, सुरेन्द्रः = सुरेन्द्र ने,

जयनिर्घोषणं = जय जय की घोषणा को, कुर्वन् = करता हुआ, मुदा = प्रसन्नता से, स्वर्गात्रा = स्वर्ग की यात्रा, व्यधात् = की।

श्लोकार्थ — बार-बार प्रभु की स्तुति करके और माता की गोद में बालक प्रभु को रखकर जयघोष का उच्चारण करते हुये उस सुरेन्द्र ने स्वर्ग की यात्रा की अर्थात् स्वर्ग चला गया।

पुष्पदन्ताद् गते काले नवकोट्यधिसम्मिते।

शीतलाख्योऽभवन्नाथः तदभ्यन्तरजीवनः ॥३१॥

अन्वयार्थ — पुष्पदन्ताद् = तीर्थङ्कर पुष्पदन्त से, नवकोट्यधिसम्मिते = नौ करोड़ सागर के बराबर, काले = काल, गते = बीत जाने पर, तदभ्यन्तरजीवनः = उस उक्त काल के भीतर ही जिनका जीवन है ऐसे वह, शीतलाख्यः नाथः = शीतलनाथ, अभवत् = हुये थे।

श्लोकार्थ — तीर्थङ्कर पुष्पदन्त के निर्वाण काल से नौ करोड़ सागर के बराबर काल बीत जाने पर इस काल में ही गर्भित जीवन वाले शीतलनाथ हुये थे।

स एकलक्षपूर्वायुः धनुर्नवतिदेहभृत् ।

कुमारकालं क्रीडाभिर्यथोक्तं च व्यतीतवान् ॥३२॥

अन्वयार्थ — एक लक्षपूर्वायुः = एक लाख पूर्व की आयु वाले, च = और, धनुर्नवतिदेहभृत् = नब्बेधनुष प्रमाण देह वाले, सः = उन शीतलनाथ ने, यथोक्तं = जैसा कहा गया है उतना, कुमारकालं = कुमारावस्था के समय को, क्रीडाभिः = क्रीड़ाओं द्वारा, व्यतीतवान् = व्यतीत कर दिया।

श्लोकार्थ — एक लाख पूर्व की आयु वाले और नब्बे धनुषप्रमाण शरीर धारण करने वाले शीतलनाथ ने शास्त्रोक्त कुमार काल अर्थात् कुमारावस्था का समय बाल्यक्रीड़ाओं के साथ व्यतीत कर दिया।

तारुण्ये पैतृकं राज्यं संप्राप्य हि रराज सः ।

शत्रूणां गर्वहृद्देवो मित्राणां सुखवर्धनः ॥३३॥

अन्यार्थ — तारुण्ये = तरुण अवस्था को प्राप्त होने पर, हि = ही, पैतृक = पिता द्वारा प्रदत्त, राज्यं = राज्य को, संप्राप्य = प्राप्त करके, शत्रूणां = शत्रुओं का, गर्वहृत् = गर्व हरण करने वाले, (च = और), मित्राणां = मित्रों का, सुखवर्धनः = सुख बढ़ाने वाले, सः = वह, देवः = स्वामी शीतलनाथ, रराज = सुशोभित हुये ।

श्लोकार्थ — तरुण होने पर पिता का राज्य पाकर शत्रुओं का गर्व दूर करने वाले और मित्रों का सुख बढ़ाने वाले वह शीतलनाथ सुशोभित हुये ।

एकदा पटगं दृष्ट्वा तुष्टारं तत्क्षणादवेः ।

अर्कस्य स्याद्विनष्टं स विरक्तोऽभूत्स्वराज्यतः ॥३४॥

अन्यार्थ — एकदा = एक दिन, रवेः = सूर्य के, (पुरः = सामने), तुष्टारं = संतुष्ट करने वाले, पटगं = आवरण स्वरूप वस्त्र को, दृष्ट्वा = देखकर, तत्क्षणात् = उसके बाद, अर्कस्य = सूर्य के, प्रकाश का, विनष्टं = विनाश, स्यात् = होगा, (इति = यह), दृष्ट्वा = देखकर, सः = वह, स्वराज्यतः = अपने राज्य से, विरक्तः = विरक्त, अभूत् = हो गया ।

श्लोकार्थ — एक दिन सूर्य के सामने करके पर वस्त्र से तुष्ट करने वाले को देखकर उसी क्षण सूर्य के भी प्रकाश का विनाश होगा यह जानकर वह राजा अपने राज्य से विरक्त हो गया ।

स्वपुत्राय समर्थाय राज्यं संदाय मुक्तये ।

लौकान्तिकस्तुतः शक्रप्रभामारुह्य सत्वरम् ॥३५॥

देवोपनीतां शिविकां चेन्द्रादिकृतमङ्गलः ।

स्वयं जगाम तपसे यनं मुनिजनालयम् ॥३६॥

अन्यार्थ — समर्थाय = समर्थ, स्वपुत्राय = अपने पुत्र के लिये, राज्यं = राज्य को, संदाय = देकर, लौकान्तिकस्तुतः = लौकान्तिक देवों से स्तुति किया जाता हुआ, च = और, इन्द्रादिकृतमङ्गलः = इन्द्र आदि द्वारा किये गये हैं मङ्गल जिसके ऐसा वह, मुक्तये = मुक्त होने के लिये, सत्वरम् = जल्दी ही, देवोपनीतां

= देवों द्वारा लायी गयी, शक्रप्रभां = शक्रप्रभा नामक, शिबिकां
 = पालकी पर, आरुह्य = चढ़कर, तपसे = तप के लिये,
 मुनिजनालयं = मुनिजनों के लिये घर स्वरूप, वनं = वन
 को, स्वयं = स्वयं की इच्छा से, जगाम = चला दिया।

श्लोकार्थ - अपने समर्थ पुत्र को राज्य देकर लौकान्तिक देवों से स्तुति
 किया जाता हुआ तथा इन्द्रादि द्वारा जिसके मङ्गल किये
 जा रहे हैं ऐसा वह राजा मुक्त होने के लिये जल्दी ही देवों
 द्वारा लायी गयी शक्रप्रभा नामक पालकी में चढ़कर तपश्चरण
 करने के लिये मुनिजनों के लिये घर स्वरूप वन में चला गया।

द्वादश्यां माघमासे स कृष्णायां जन्मभे शुभे ।

दीक्षां जग्राह शुद्धात्मा जैनी जैनजनार्चितः ॥३७॥

अन्वयार्थ - माघमासे = माघ मास में, कृष्णायां = कृष्णपक्ष संबंधी,
 द्वादश्यां = बारहवीं तिथि में, शुभे = शुभ, जन्मभे = जन्म
 नक्षत्र में, जैनजनार्चितः = जैन अर्थात् जिन भक्त जनों द्वारा
 पूजित होते हुये, सः = उस, शुद्धात्मा = शुद्ध-आत्मा ने, जैनीं
 = जैनेश्वरी, दीक्षां = मुनिदीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर
 लिया।

श्लोकार्थ - माघ कृष्णा द्वादशी के दिन शुभस्वरूप जन्म नक्षत्र में जैन
 जनों से पूजा किया जाता हुआ उस राजा ने जैनेश्वरी
 मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली।

सहेतुकवने धृत्वा दीक्षां वेलोपवासकृत् ।

सहस्रक्षितिपैस्सार्धं रराजार्कसमप्रभः ॥३८॥

अन्वयार्थ - वेलोपवासकृत् = दो दिन के उपवास की प्रतिज्ञा वाला वह,
 सहेतुकवने = सहेतुक वन में, सहस्रक्षितिपैः = एक हजार
 राजाओं के, सार्धं = साथ, दीक्षां = मुनिदीक्षा को, धृत्वा =
 धारण करके, अर्कसमप्रभः = सूर्य के समान प्रभा वाला वह,
 रराज = सुशोभित हुआ।

श्लोकार्थ - सहेतुक वन में एक हजार राजाओं के साथ मुनिदीक्षा को
 धारण कर दो दिन के उपवास की प्रतिज्ञा वाला वह सूर्य
 की प्रभा समान आभा वाला होकर सुशोभित हुआ।

अन्तर्मुहूर्ते स ज्ञानं चतुर्थं प्राप्य ध्यानतः ।

भिक्षार्थमरिष्टनगरं हि द्वितीये प्राप्तवान् प्रभुः ॥३६॥

अन्वयार्थ — स प्रभुः = उन मुनिराज ने, ध्यानतः = ध्यान के बल से, अन्तर्मुहूर्ते = अन्तर्मुहूर्त में, हि = ही, चतुर्थं = चौथे मनःपर्यय नामक, ज्ञानं = ज्ञान को, प्राप्य = प्राप्त करके, द्वितीये = दूसरे दिन, भिक्षार्थम् = भिक्षा के लिये, अरिष्टनगरं = अरिष्ट नगर को, प्राप्तवान् = प्राप्त किया ।

श्लोकार्थ — उन मुनिराज ने ध्यान के बल से अन्तर्मुहूर्त में ही चौथे मनःपर्यय-ज्ञान को प्राप्त कर लिया और दूसरे दिन आहार के लिये अरिष्ट नगर को प्राप्त हुये ।

पुनर्वसुनाममहीपालेन सत्कृतो मुनिः भूरिशः ।

कृत्वाऽऽहारं गतप्रायः तदैवाश्चर्यपञ्चकम् ॥४०॥

अन्वयार्थ — पुनर्वसुनाममहीपालेन = पुनर्वसु नामक राजा द्वारा, भूरिशः = प्रचुरता से, सत्कृतः = सत्कार किये गये, मुनिः = मुनिराज, आहारं = आहार, कृत्वा = करके, गतप्रायः = गये ही थे कि, तदैव = उसी समय, आश्चर्यपञ्चकम् = पंचाश्चर्य, (अभूत् = हुये) ।

श्लोकार्थ — पुनर्वसु नामक राजा द्वारा अनेक प्रकार से सत्कार किये गये मुनिराज आहार करके गये ही थे कि उसी समय वहाँ पंचाश्चर्य हुये ।

छद्मस्थोऽभूत् त्रिवर्षं स तप उग्रं समाचरन् ।

पुण्यकृष्णचतुर्दश्यां जन्मभे भगवान् वने ॥४१॥

अधस्ताद् बिल्ववृक्षस्थः कृत्वा घातिक्षयं विभुः ।

सम्प्राप्य केवलज्ञानं सर्वतत्त्वप्रकाशकम् ॥४२॥

अनगार गणेन्द्राद्यैः यथासंख्यैः समाश्रितः ।

स्थितैर्द्वादशकोष्ठेषु बभ्राजे दिनराडिव ॥४३॥

अन्वयार्थ — सः = वह मुनिराज, उग्रं = उग्र कठोर, तपः = तपश्चरण को, समाचरन् = करते हुये, त्रिवर्षं = तीन वर्ष तक, छद्मस्थः

= छद्मस्थ, अभूत् = रहे, वने = वन में, बिल्ववृक्षस्य = बेल के पेड़ के, अधस्तात् = नीचे, घातिकर्मो = घातिकर्मों के क्षय को, कृत्वा = करके, पुष्यकृष्णचतुर्दश्यां = पौष कृष्ण चतुर्दशी के दिन, जन्मभे = जन्मनक्षत्र में, सर्वतत्त्वप्रकाशकम् = सारे तत्त्वों को जानने वाले, केवलज्ञानं = केवलज्ञान को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, विभुः = सर्वविद् या सर्वव्यापक, भगवान् = भगवान्, द्वादशकोष्ठेषु = बारह कोठों में, स्थितैः = स्थित, यथासंख्यैः = जैसा क्रम है उसके अनुसार, अनगारगणेन्द्राद्यैः = अनगार गणधर आदि द्वारा, समाश्रितः = आश्रयणीय भगवान् शीतलनाथ, दिनराडिव = सूर्य के समान, बभ्राजे = प्रकाशमान हुये।

श्लोकार्थ - वह मुनिराज उग्र तप करते हुये तीन वर्ष तक छद्मस्थ रहे। फिर एक दिन पौष कृष्णा चतुर्दशी के दिन जन्म नक्षत्र में बेलवृक्ष के नीचे घातिकर्मों का क्षय करके सारे पदार्थों को युगपत् समवसरण में अनगार गणधर आदि द्वारा यथाक्रम से आश्रय लिये जाते हुये वह सर्वज्ञ भगवान् शीतलनाथ स्वामी सूर्य के समान प्रकाशमान हुये।

तदासौ भव्यसम्पृष्टः सर्वतत्त्वावबोधकम् ।

दिव्यघोषं समुच्चरन् पीयूषक्षेपकं मुदा ॥४४॥

पुण्यक्षेत्रेष्वशेषेषु सविलासं महाप्रभुः ।

शृण्वन् देव जयध्वनिं विजहार यदृच्छया ॥४५॥

अन्वयार्थ - तदा = तभी, भव्यसम्पृष्टः = भव्य जीवों द्वारा पूछे गये, असौ = उन, देवः = भगवान्, महाप्रभुः = तीर्थकर, शीतलनाथ ने, सर्वतत्त्वावबोधकं = सारे तत्त्वों का ज्ञान कराने वाला, मुदा = प्रसन्नता के हेतु से, पीयूषक्षेपकं = अमृत बरसाने वाला, दिव्यघोषं = दिव्य उद्घोष याने धर्मोपदेश को, समुच्चरन् = उच्चारित करते हुये, सविलासं = हाव विलास सहित, जयध्वनिं = जयध्वनि को, शृण्वन् = सुनते हुये, अशेषेषु = सम्पूर्ण, पुण्यक्षेत्रेषु = पुण्य क्षेत्रों में, यदृच्छया = स्वतंत्रपणे, विजहार = विहार किया।

श्लोकार्थ — तभी मव्यजीवों द्वारा पूछे गये उन महाप्रभु तीर्थङ्कर शीतलनाथ ने सारे तत्त्वों का ज्ञान कराने वाला और अमृत बरसाने वाला दिव्य उद्घोष याने धर्मोपदेश करते हुये व हाव विलास सहित जयध्वनि को सुनते हुये सभी पुण्यक्षेत्रों में अपनी इच्छा से अर्थात् स्वतंत्र वृत्ति से विहार किया।

एकमासावशिष्टायुः सम्मेदाख्यधराधरे ।

विद्युद्वराभिधे कूटेऽतिष्ठत् संहृत्य तदध्वनिं ॥४६॥

अन्वयार्थ — एकमासावशिष्टायुः = एक माह है अवशिष्ट आयु जिनकी ऐसे वह प्रभु शीतलनाथ, तदध्वनिं = दिव्यध्वनि को, संसृत्य = रोककर, सम्मेदाख्यधराधरे = सम्मेद नामक पर्वत पर, विद्युद्वराभिधे = विद्युद्वर नामक, कूटे = कूट पर, अतिष्ठत् = ठहर गये।

श्लोकार्थ — एक मास मात्र आयु शेष रहने पर वह प्रभु शीतलनाथ दिव्यध्वनि को रोककर सम्मेद पर्वत की विद्युद्वर कूट पर ठहर गये।

श्रावणे मासि शुक्लायां पूर्णिमायां जगत्पतिः ।

सहस्रमुनिभिस्सार्धं कैवल्यपदमाप्तवान् ॥४७॥

अन्वयार्थ — श्रावणे = श्रावण, मासि = माह में, शुक्लायां = शुक्लपक्ष की, पूर्णिमायां = पूर्णिमा के दिन, जगत्पतिः = जगत् के स्वामी तीर्थङ्कर शीतलनाथ ने, सहस्रमुनिभिः = एक हजार मुनियों के, सार्धं = साथ, कैवल्यपदं = निर्वाण या मोक्षस्थान को, आप्तवान् = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ — श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को जगत्पति तीर्थङ्कर शीतलनाथ ने एक हजार मुनियों के साथ मोक्षपद प्राप्त कर लिया।

अष्टादशोक्तकोटीनां कोट्युत्तरस्तद्वतः परम् ।

द्विचत्वारिंशदुक्ताश्च कोट्यो द्वात्रिंशदीरिताः ॥४८॥

लक्षास्तद्वद्विचत्वारिंशत्सहस्राण्यतः परम् ।

शतानि नव पञ्चेति संख्योक्तास्तापसाः गिरौ ॥४९॥

तस्मात्कूटाच्छिवं याताः तदन्यविधलो नृपः ।

चालयामास सत्सङ्घं शीतलानन्तरं महत् ॥५०॥

अन्वयार्थ — अष्टादशोक्तकोटीनां कोट्युक्तः = अठारह कोड़ा-कोड़ी, तद्वतः परम् = उसके बाद, द्विचत्वारिंशदुक्ताश्च कोटयः = और बयालीस करोड़, द्वात्रिंशदीरिताः लक्षाः = बत्तीस लाख, तद्वत् = वैसे ही आगे, चत्वारिंशत्सहस्राणि = बयालीस हजार, अतः परं = इससे आगे, शतानि नव = नौ सौ, पञ्च = पाँच, इति = इस प्रकार, संख्योक्ताः = संख्या में कहे गये, तापसाः = तपस्वी मुनि, गिरौ = सम्मेदशिखर पर्वत पर, तस्मात् = उसी विद्युद्गर नामक, कूटात् = कूट से, शिवं = मोक्ष को, याताः = गये, शीतलानन्तरं = शीतलनाथ भगवान् के मोक्ष जाने के बाद, तदनु = उनके ही पीछे, अविचलः = अविचल नामक, नृपः = राजा ने, महत् = विशाल, सत्सङ्घं = चतुर्विध संघ को, चालयामास = चलाया ।

श्लोकार्थ — अठारह कोड़ा-कोड़ी, बयालीस करोड़, बत्तीस लाख, बयालीस हजार नौ सौ पाँच की संख्या से कहे गये तपस्वी मुनि भी सम्मेदशिखर की इसी विद्युद्गर कूट से मोक्ष गये । तीर्थङ्कर शीतलनाथ के मोक्ष पाने के बाद अविचल नामक राजा ने विशाल चतुर्विधसंघ को चलाया ।

भद्राभिधे पुरे धीमान् देशे मलयसंज्ञके ।

अभून्मेघरथो राजा धर्मकर्मपरायणः ॥५१॥

अन्वयार्थ — मलयसंज्ञके = मलय नामक, देशे = देश में, भद्राभिधे = भद्र नामक, पुरे = नगर में, धर्मकर्मपरायणः = धर्म और कर्म करने में तत्पर, धीमान् = बुद्धिमान्, राजा = राजा, मेघरथ, अभूत् = हुआ था ।

श्लोकार्थ — मलयदेश के भद्रपुर में एक बुद्धिमान और धर्म एवं कर्म करने में चतुर राजा मेघरथ राज्य करता था ।

एकस्मिन्समये सिंहासनस्थे बलवारिधिः ।

पप्रच्छ मन्त्रिणः श्रेयान् किं दानं हि महाफलम् ॥५२॥

अन्वयार्थ — एकस्मिन् = एक, समये = समय में, सिंहासनादयः = सिंहासन पर बैठा हुआ, बलवारिधिः = अत्यधिक बलशाली, श्रेयान् = कल्याणकर्ता, (राजा = राजा ने) मन्त्रिणः = मन्त्रियों को, पप्रच्छ = पूछा, महाफलं = महाफल स्वरूप, दानं = दान, किं = क्या, (अस्ति = है)।

श्लोकार्थ — एक समय सिंहासनारूढ़ बलशाली एवं हितकारी राजा ने मन्त्रियों को पूछा कि जो दान महाफल देता है वह क्या है?

भूपालभारती श्रुत्वा सुमतिर्मन्त्रिसत्तमः ।

प्राह भूपं महाराज! शृणु दानचतुष्टयम् ॥५३॥

अन्वयार्थ — मन्त्रिसत्तमः = श्रेष्ठ मन्त्री, सुमतिः = सुमति, भूपालभारती = राजा की वाणी को, श्रुत्वा = सुनकर, भूपं = भूप से, प्राह = कहा, महाराज = हे राजन्!, दानचतुष्टयं = चार प्रकार के दान को, शृणु = सुनो।

श्लोकार्थ — श्रेष्ठ मन्त्री सुमति ने राजा की वाणी को सुनकर भूप से कहा हे राजन्! चार प्रकार के दान को सुनो।

प्रथममाहारदानं शास्त्रदानं द्वितीयकम् ।

तृतीयमौषधं दानं चतुर्थमभयाभिधम् ॥५४॥

अन्वयार्थ — प्रथमं = पहला, आहारदानम् = आहारदान, द्वितीयकम् = दूसरा, शास्त्रदानं = शास्त्रदान, तृतीयम् = तीसरा, औषधं दानं = औषधिदान, चतुर्थम् = चौथा, अभयाभिधम् = अभय नाम वाला दान।

श्लोकार्थ — पहला दान आहारदान है, दूसरा दान शास्त्र दान है, तीसरा दान औषधिदान है और चौथा दान अभयदान है।

चतुर्दानानि दानानां प्रधानानि बुधा जगुः ।

येभ्यः एवात्र भव्यानां सम्यक्त्वं जायते ध्रुवम् ॥५५॥

अन्वयार्थ — बुधाः = विद्वज्जनों ने, दानानां = दानों में, प्रधानानि = प्रधान, चतुर्दानानि = चार दान, जगुः = कहे हैं, येभ्यः = जिनसे, एव = ही, अत्र = यहाँ, भव्यानां = भव्य जीवों के लिये, ध्रुवं

= निश्चित ही, सम्यक्त्वं = सम्यक्त्व, जायते = हो जाता है।

श्लोकार्थ - दानों में प्रधान चार दान विद्वज्जनों ने कहे हैं जिनसे ही यहाँ भव्यजीवों के लिये सम्यक्त्व हो जाता है।

इति श्रुत्वा मेघरथः पुनः प्राह स मन्त्रिणः ।

अन्यानि विप्रदानानि ब्रूत मे दानवित्तमाः ॥५६॥

अन्वयार्थ - इति = इस प्रकार मन्त्रि के कथन को, श्रुत्वा = सुनकर, सः = वह, मेघरथः = मेघरथ राजा, पुनः = फिर से, मन्त्रिणः = मंत्रियों को, प्राह = बोला, दानवित्तमाः = हे दानधर्म को जानने वालों में श्रेष्ठ मंत्रियो!, मे = मुझे, अन्यानि = अन्य, विप्रदानि = ब्राह्मणदान को, ब्रूत = कहो।

श्लोकार्थ - मन्त्रि के इस प्रकार कथन को सुनकर वह मेघरथ राजा पुनः मंत्रियों से बोला हे दानधर्म को जानने वालों में श्रेष्ठ मंत्रियो! अन्य विप्रदानों का कथन भी मुझे कहो।

सोमशर्मा द्विजस्तत्र प्राह तं शृणु भूपते ।

चतुर्दानानि पूर्वोक्तानीह सन्त्यधनेभ्यो वै ॥५७॥

अन्वयार्थ - तत्र = वहाँ, सोमशर्मा = सोमशर्मा नामक, द्विजः = ब्राह्मण ने, तं = राजा को, प्राह = कहा, भूपते = हे राजन्!, शृणु = सुनो, इह = यहाँ, पूर्वोक्तानि = पहिले कहे गये, चतुर्दानानि = चारों दान, वै = निश्चित ही, अधनेभ्यः = निर्धनों के लिये, सन्ति = हैं।

श्लोकार्थ - वहाँ अर्थात् राजा सभा में सोमशर्मा ब्राह्मण राजा से बोला हे राजन्! जो पहिले अभी चार प्रकार का दान बताया है वह निर्धनों के लिये है।

भूपानामन्यदानानि दशप्रोक्तानि चागमे ।

शृणु भूपेन्द्र चैतानि मया संभाषितानि वै ॥५८॥

कन्याश्वगजदारस्यस्त्ररथालयधनान्यपि ।

भूरिशस्तिलगोधूमदशदानान्यनुक्रमात् ॥५९॥

अन्वयार्थ — च = और, भूपानाम् = राजाओं के लिये, आगमे = आगम में, अन्य दानानि = उन चार दानों से भिन्न दान, दश = दश, भूरिशः = अच्छी तरह से, प्रोक्तानि = कहे गये हैं, भूनेन्द्र = हे राजन्!, मया = मेरे द्वारा, वै = अच्छी तरह से, संभाषितानि = कहे गये, एतानि = इनको, शृणु = सुनो, अनुक्रमात् = क्रमशः, कन्याश्वगजदारस्यस्त्ररथालयधनानि = कन्या, अश्व, गज, दासी, अस्त्र, रथ, आलय, धन, तिलगोधूमदशदानानि = तिल और गेहूं आदि दश दान, (सन्ति = हैं)।

श्लोकार्थ — तथा राजाओं के लिये आगम में पूर्वोक्त चार दानों से अलग अन्य दश दान अच्छी तरह से कहे गये हैं हे राजन्! उन्हें सुनो क्रमशः ये दश दान इस प्रकार हैं - (१) कन्यादान, (२) अश्वदान, (३) गजदान, (४) दासी का दान, (५) अस्त्रदान, (६) रथदान, (७) आलय दान, (८) धन का दान, (९) तिल का दान, (१०) गोधूम का दान।

श्रुत्वा दानानि संदातुमुद्यतोऽभून्महीपतिः ।

कस्मै देयानि दानानि इति वाक्यं समुच्चरन् ॥६०॥

अन्वयार्थ — दानानि = दानों को, श्रुत्वा = सुनकर, कस्मै = किसके लिये, दानानि = दान, देयानि = देना चाहिये, इति = इस, वाक्यं = वाक्य को, समुच्चरन् = बोलता हुआ, महीपतिः = राजा, संदातुं = दान देने के लिये, उद्यतः = तैयार, अभूत् = हो गया।

श्लोकार्थ — इन दश दानों को सुनकर, ये दान किसको देना चाहिये इस वाक्य को बोलता हुआ वह राजा दान देने के लिये उद्यत हो गया।

सोमशर्मा एवतो मूढः बालस्तान्यतिलोभतः ।

शास्त्रवत्प्रतिजग्राह दानान्युक्तानि दुष्टधीः ॥६१॥

स्वतः स्वीकृत्य दानानि नृपात्तुष्टोऽभवत्तदा ।

तन्मेघरथवंशोऽभूत् भूपोऽविचलनाभकः ॥६२॥

अन्वयार्थ — तदा = तब, स्वतः = स्वयं से, मूढः = मूर्ख, बालः = भोला-मुग्ध, दुष्टधीः = दुष्टबुद्धि वाले, सोमशर्मा = सोमशर्मा ने, अतिलोभतः = अत्यधिक लोभ से, तानि = वे, उक्तानि = कहे गये, दानानि = दान, शास्त्रघातः = शास्त्र के समान, प्रतिजग्राह = ग्रहण कर लिये, नृपात् = राजा से, दानानि = दान, स्वीकृत्य = स्वीकार करके, स्वतः = स्वयं से, संतुष्टः = संतुष्ट, अभवत् = हो गया, तन्मेघरथवंशे = उस मेघरथ के कुल में, अविचलनामकः = अविचल नामक, भूपः = राजा, अभूत् = हुआ।

श्लोकार्थ — तब खुद ही मूर्ख बन गये अज्ञानी उस सोमशर्मा ने अत्यधिक लोभ के कारण कहे गये उनको शास्त्र के समान ग्रहण कर लिया तथा राजा से दान स्वीकार करके स्वयमेव संतुष्ट हुआ। उसी मेघरथ राजा के कुल में अविचल नाम का एक राजा हुआ था।

मुनिचारणसंगाच्च निर्मले तस्य मानसे।

सम्भेदभूमिभृद्भक्तिर्जाता ह्यचिरकालतः ॥६३॥

अद्भुतो महिमा तस्य श्रुतः श्रुत्वा जहर्ष सः।

तदा संघसमेतोऽसौ शैलसददर्शनोत्सुकः ॥६४॥

अन्वयार्थ — तस्य = उस राजा के, निर्मले = निर्मल निर्विकार, मानसे = मानस या मन में, सम्भेदभूमिभृद्भक्तिः = सम्भेद पर्वत की भक्ति, जाता = उत्पन्न हो गयी, अचिरकालतः = जल्दी से, हि = ही, मुनिचारणसंगात् = चारण मुनियों का संग मिल जाने से, (तेन = उस राजा द्वारा) तस्य = सम्भेदपर्वत की, अद्भुतः = आश्चर्यकारी, महिमा = महिमा, श्रुतः = सुनी गयी, च = और, (तं = उसको) श्रुत्वा = सुनकर, सः = वह राजा, जहर्ष = हर्षित हुआ, तदा = तब, असौ = वह राजा, संघसमेतः = संघ के साथ, शैलसददर्शनोत्सुकः = पर्वत के दर्शन अच्छी तरह से करने के लिये उत्सुक, (अभूत् = हो गया)।

श्लोकार्थ — उस अविचल राजा के निर्मल मन में सम्भेदाचल पर्वत की भक्ति उत्पन्न हो गयी, जल्दी ही चारण मुनियों के समागम

से उस राजा ने सम्मेदपर्वत की अद्भुतकारी महिमा सुनी, और सुनकर वह अत्यंत प्रसन्न हुआ तभी वह राजा संघ के साथ सम्मेदाचल पर्वत के दर्शन अच्छी तरह से करने के लिये उत्सुक हो गया।

द्वात्रिंशल्लक्षमनुजैः समं यात्रां चकार सः ।

प्राप्य विद्युद्वरं कूटमभिवन्द्य समर्च्य च ॥६५॥

षोडशप्रोक्तलक्षोक्तभव्यजीवैः समं नृपः ।

दीक्षामविचलो धृत्वा श्रीमेघरथवंशजः ॥६६॥

दग्ध्वाऽघवनं पूर्णं शुक्लध्यानोऽप्रवह्निना ।

सम्यक्त्वादिगुणोपेतः पदं स प्राप शाश्वतम् ॥६७॥

अन्वयार्थ — सः = उस राजा ने, द्वात्रिंशल्लक्षमनुजैः = बत्तीस लाख मनुष्यों के, समं = साथ, यात्रां = यात्रा को, चकार = किया, विद्युद्वरं = विद्युद्वर नामक, कूटं = कूट को, प्राप्य = प्राप्त करे, अभिवन्द्य = वंदना करके, च = और, समर्च्य = पूजा करके, सः = उस, श्रीमेघरथवंशजः = श्रीमेघरथ के वंश में उत्पन्न, अविचलः = अविचल, नृपः = राजा ने, षोडशप्रोक्तलक्षोक्तभव्यजीवैः = सोलह लाख भव्य जीवों के, समं = साथ, दीक्षां = मुनि दीक्षा को, धृत्वा = धारण करके, शुक्लध्यानोऽवह्निना = शुक्लध्यान रूपी उग्र तपाग्नि से, पूर्ण = सारा, अघवनं = पाप समूह को, दग्ध्वा = जलाकर, सम्यक्त्वादिगुणोपेतः = सम्यक्त्वादिगुणों से सहित होते, शाश्वतं = शाश्वत, पदं = पद अर्थात् मोक्ष को, प्राप = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ — उस राजा ने बत्तीस लाख मनुष्यों के साथ सम्मेदाचल की यात्रा की तथा विद्युद्वर कूट को प्राप्त कर उसकी वंदना की, पूजा की एवं श्रीमेघरथ के वंश में उत्पन्न उस अविचल राजा ने सोलह लाख भव्य जीवों के साथ मुनिदीक्षा धारण करके शुक्लध्यान रूप अग्नि से सारे कर्मसमूह को जलाकर सम्यक्त्व आदि गुणों से विभूषित हो शाश्वत सिद्ध पद को प्राप्त कर लिया।

यस्माच्छीतलनाथ उत्तमतपःतेजःकृशानुज्वल-
 ज्वालासम्परिदग्धकर्मविपिनः सिद्धालयेशोऽभवत् ।
 ध्यानाद्वन्दनतो हि यस्य मनुजः कैवल्यपात्रं भवेत् ।
 तं विद्युद्वरकूटमुत्तमतरं भक्त्या प्रवंदामहे ॥६८॥

अन्वयार्थ — उत्तमतपःतेजःकृशानुज्वलज्वालासम्परिदग्धकर्मविपिनः = उत्तम तप के तेज रूपी अग्नि की प्रज्वलित ज्वालाओं में पूर्ण रूप से दग्ध कर दिया है कर्म रूपी वन को जिसने ऐसे, शीतलनाथः = शीतलनाथ भगवान्, यस्मात् = जिस कूट से, सिद्धालयेशः = सिद्धालय के स्वामी, अभवत् = हुये।

मनुजः = मनुष्य, यस्य = जिसके, ध्यानात् = ध्यान से, वन्दनतः = वन्दना से, कैवल्यपात्रं = निर्वाण-मोक्ष का पात्र, भवेत् = हो जावे, तं = उस, उत्तमतरं = श्रेष्ठतर, विद्युद्वरकूटं = विद्युद्वर कूट को, भक्त्या = भक्ति से, प्रवंदामहे = हम सब प्रणाम करते हैं।

श्लोकार्थ — उत्तम तपश्चरण से प्रस्फुरित तेज रूपी अग्नि की प्रदीप्त ज्वालाओं में पूर्णतः दग्ध कर दिया है कर्म वन जिन ने ऐसे शीतलनाथ भगवान् जिस विद्युद्वरकूट से सिद्धालय के स्वामी हुये अर्थात् निर्वाण को प्राप्त हुये तथा मनुष्य जिस कूट की वन्दना करने से एवं ध्यान करने से मोक्ष का पात्र हो जाता है हम सब उस श्रेष्ठतर विद्युद्वर कूट को भक्तिभाव से प्रणाम करते हैं।

[इति दीक्षितब्रह्मदेवदत्तविरचिते सम्मेदशैलमाहात्म्ये श्रीशीतलनाथ-
 तीर्थेशवृत्तान्तसहितं विद्युद्वरकूटवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः समाप्तः।]

[इस प्रकार दीक्षित ब्रह्मदेवदत्त विरचित सम्मेदशैलमाहात्म्य नामक काव्य में श्रीशीतलनाथ तीर्थङ्कर के वृत्तान्त सहित विद्युद्वर कूट का वर्णन करने वाला दशम अध्याय समाप्त हुआ।]

अथैकादशोऽध्यायः

अथोत्तमतपोमूर्तिं केवलज्ञानसागरं ।

श्रेयस्करं वन्दकानां श्रेयांसं तं नमाम्यहम् ॥१॥

अन्वयार्थ — अथ = अब, उत्तमतपोमूर्तिं = उत्तम तप की मूर्ति स्वरूप, केवलज्ञानसागरं = केवल-ज्ञान के सागर, वन्दकानां = वन्दना करने वालों के (लिये), श्रेयस्करं = कल्याणकारक, तं = उन, श्रेयांसं = तीर्थङ्कर श्रेयांसनाथ को, अहं = मैं कवि, नमामि = नमस्कार करता हूँ।

श्लोकार्थ — अब मैं कवि उत्तम तप की मूर्तिस्वरूप, केवलज्ञान के सागर और वन्दना करने वालों को कल्याण प्रद भगवान् श्रेयांसनाथ को प्रणाम करता हूँ।

गतः संकुलकूटाद्यो मुक्तिं संसारदुर्लभाम् ।

श्रेयसीं तत्कथां पुण्यां वक्ष्ये संक्षेपतोऽधुना ॥२॥

अन्वयार्थ — यः = जो, संकुलकूटात् = संकुलकूट से, संसारदुर्लभां = संसार में दुर्लभ, मुक्तिं = मुक्ति को, गतः = गये, श्रेयसीं = श्रेयस्करी, पुण्यां = पवित्र स्वरूप वाली, तत्कथां = श्रेयांसनाथ भगवान् की कथा को, अधुना = अब, संक्षेपतः = संक्षेप से, वक्ष्ये = कहता हूँ।

श्लोकार्थ — जो संकुलकूट से संसार में दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त हो गये उन तीर्थकर श्रेयांसनाथ की श्रेयस्करी और पुण्यस्वरूपा कथा को अब मैं संक्षेप से कहता हूँ।

द्वीपेऽस्मिन्पुष्करार्धाख्ये शुचौ पूर्वविदेहके ।

मन्दरे शैवलिन्याश्च सीताया उत्तरे तटे ॥३॥

कच्छदेशो महान् तत्र भातिक्षेमपुरं महत् ।

तस्य राजा महानासीत् नामतो नलिनप्रभः ॥४॥

अन्वयार्थ — अस्मिन् = इस, पुष्करार्धाख्ये = पुष्करार्ध नामक, द्वीपे = द्वीप

में, शुचौ = पवित्र, पूर्व विदेहके = पूर्व विदेह में, मन्दरे = मन्दर पर्वत पर, च = और, सीतायाः = सीता, शैवलिन्याः = नदी के, उत्तरे = उत्तरवर्ती, तटे = तट पर, महान् = विशाल, कच्छदेशः = कच्छदेश, (आसीत् = था) तत्र = उस देश में, महत् = बड़ा, क्षेमपुरं = क्षेमपुर नगर, भाति = सुशोभित होता है, तस्य = उस नगर का, महान् = महान्, राजा = राजा, नामतः = नाम से, नलिनप्रभः = नलिनप्रभ, आसीत् = था।

श्लोकार्थ — इस पुष्करार्ध द्वीप में पवित्र पूर्वविदेह क्षेत्र के मन्दर पर्वत पर और सीतानदी के उत्तर तट पर एक विशाल कच्छदेश था जिसमें क्षेमपुर नामक एक बड़ा नगर सुशोभित है इस नगर का महान् राजा नलिनप्रभ था।

न्यायकर्त्ता प्रतापाब्धिः सुखी धर्मरतस्सदा ।

राज्यं चकार स्वकृतैः सुकृतैः पूर्वजन्मनि ॥५॥

अन्वयार्थ — पूर्वजन्मनि = पूर्व जन्म में, स्वकृतैः = स्वयं उपार्जित किये, सुकृतैः = पुण्यों के कारण, न्यायकर्त्ता = न्याय करने वाले, प्रतापाब्धिः = परमप्रतापी, सुखी = सुखी, सदा = हमेशा, धर्मरतः = धर्म में लगे हुये, (सः = उस राजा ने), राज्यं = राज्य, चकार = किया।

श्लोकार्थ — पूर्वजन्म में स्वयं किये पुण्यकर्मों के फल से न्यायप्रिय, परमप्रतापी, सुखी और सदैव धर्म पालन में लगे राजा ने राज्य किया।

सहस्रवन एकस्मिन् समये नन्दनामके ।

समागतोऽजितस्वामी तपसा भास्करोपमः ॥६॥

श्रुत्वा तमागतं राजा परिवारसमन्वितः ।

मुदा तद्दर्शनाकाङ्क्षी गत्वा तत्र ननाम तम् ॥७॥

यतिधर्मास्ततः पृष्ट्वा श्रुत्वा वैराग्यमाप्तवान् ।

राज्यं समर्प्य पुत्राय स स्वयं दीक्षितोऽभवत् ॥८॥

बहुभूपैस्समं तत्र दीक्षां सन्धार्य पावनीम् ।

एकादशाङ्गविद्भूत्वा तपः षोडशभावनाः ॥९॥

संभाव्य तीर्थकृद्गोत्रं सम्प्राप्यन्ते तपोनिधिः ।

सन्यासेन तनुं त्यक्त्वा स्वर्गं षोडशमं ययौ ॥१०॥

अन्वयार्थ - एकस्मिन् = एक, समये = समय, नन्दनामके = नन्द नामक, सहस्रवने = सहस्रवन में, तपसा = तपश्चरण से, भास्करोपमः = सूर्य के समान, अजितस्वामी = अजितस्वामी मुनिराज, समागतः = आये, आगतं = आये हुये, तं = उन मुनिराज को, श्रुत्वा = सुनकर, परिवारसमन्वितः = परिवार सहित, राजा = राजा नलिनप्रभ ने, मुदा = हर्ष से, तद्दर्शनाकांक्षी = उनके दर्शन का आकांक्षी, तत्र = वन में, गत्वा = जाकर, तं = उन मुनिवर को, ननाम = नमस्कार किया, ततः = उसके बाद, यतिधर्मान् = मुनि के धर्मों का, पृष्ट्वा = पूछकर, श्रुत्वा = सुनकर, वैराग्यं = विरक्तिभाव को, आप्तवान् = प्राप्त हो गया, पुत्राय = पुत्र के लिये, राज्यं = राज्य, समर्प्य = देकर, सः = वह, स्वयं = खुद, बहुभूपैः = अनेक राजाओं के, समं = साथ, पावनीं = पवन स्वरूप वाली, दीक्षां = दीक्षा को, संधार्य = धारण करके, एकादशाङ्गविद् = ग्यारह अंगों का ज्ञाता, भूत्वा = होकर, तपः = तप को, (च = और), षोडश = सोलह, भावनाः = भावनाओं को, संभाव्य = अच्छी तरह करके एवं भाकर, तीर्थकृत् = तीर्थङ्कर नामक, गोत्रं = उच्च पुण्य को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, अन्ते = अन्त में, तपोनिधिः = वह तपस्वी, संन्यासेन = संन्यासमरण से, तनुं = शरीर को, त्यक्त्वा = छोड़कर, षोडशमं = सोलहवें, स्वर्गं = स्वर्ग को, ययौ = चले गये ।

श्लोकार्थ - एक बार नन्द नामक सहस्र वन में मुनिराज अजित स्वामी आये वे तपश्चरण के कारण सूर्य के समान कान्ति सम्पन्न थे । मुनिराज को आया हुआ सुनकर परिवार सहित राजा नलिनप्रभ प्रसन्नता से उनके दर्शन का आकांक्षी होकर और वन में जाकर उन्हें प्रणाम किया उसके बाद उनसे यति के धर्मों का पूछकर तथा सुनकर विरक्ति को प्राप्त हो गया तथा अपने पुत्र के लिये राज्य देकर वह खुद अनेक राजाओं के साथ पावन स्वरूप वाली दीक्षा को धारण करके और ग्यारह

अङ्गों का ज्ञाता होकर, तप का पालन कर एवं सोलह कारण भावनाओं को भाकर, तीर्थङ्कर नामक उच्च पुण्य को प्राप्त करके आयु के अन्त समय में संन्यासमरण से देह छोड़कर सोलहवें स्वर्ग में चला गया।

तत्र पुष्योत्तराख्ये स विमाने स्वतपोबलात् ।

सम्प्राप्य चाहमिन्द्रत्वं रेजे शारदचन्द्रवत् ॥११॥

अन्वयार्थ - च = और, तत्र = वहाँ, सः = वह, पुष्योत्तराख्ये = पुष्योत्तर नामक, विमाने = विमान में, स्वतपोबलात् = अपने तप बल से, अहमिन्द्रत्वं = अहमिन्द्रपने को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, शारदचन्द्रवत् = शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान, रेजे = सुशोभित हुआ।

श्लोकार्थ - सोलहवें स्वर्ग में वह देव अपने तपोबल से पुष्योत्तर नामक विमान में अहमिन्द्रपने को पाकर शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान सुशोभित हुआ।

द्वाविंशतिसमुद्रायुः शुक्ललेश्यालसत्तनुः ।

त्रिहस्तप्रमितोत्सेधो बभूवादद्भुतदर्शनः ॥१२॥

गतेष्वब्देषु तत्रासौ द्वाविंशतिसहस्रकैः ।

मितेषु मानसाहारमग्रहीत्सुखसंप्लुतः ॥१३॥

तथा गतेषु पक्षेषु द्वाविंशतिमितेषु सः ।

श्वासोच्छ्वासधरः श्रीमान् सर्वकार्यक्षमोऽभवत् ॥१४॥

अन्वयार्थ - (सः = वह देव), अद्भुतदर्शनः = अद्भुत सौन्दर्य के कारण दर्शनीय, शुक्ललेश्यालसत्तनुः = शुक्ललेश्या से सुशोभित शरीर वाला, द्वाविंशतिसमुद्रायुः = बावीस सागर प्रमाण आयु वाला, त्रिहस्तप्रमितोत्सेधः = तीन हाथ प्रमाण ऊँची देह वाला, बभूव = हुआ।

तत्र = वहाँ स्वर्ग में, सुखसंप्लुतः = सुख में मग्न, असौ = वह देव, द्वाविंशतिसहस्रकैः = बावीस हजार, मितेषु = परिमित, अब्देषु = वर्षों के, गतेषु = बीत जाने पर, मानसाहारं = मानसिक अमृत आहार को, अग्रहीत् = ग्रहण करता था।

श्लोकार्थ — संसार में दीपक के समान प्रकाश करने वाला वह देव जिस प्रकार से भूमि पर आया वह मैं कहता हूँ। जिसके सुनने से सारे पापों का क्षय होवे।

जम्बूद्वीपे शुभे क्षेत्रे भारते कौशलाभिधे ।

देशे सिंहपुरी तत्र चेक्ष्वाकौ वंश उत्तमे ॥१७॥

विष्णुर्नामाभवद्राजा भाग्यसिंधुः प्रतापवान् ।

सत्कीर्तिः स्वविभूत्या स देवेन्द्रमप्यलज्जयत् ॥१८॥

अन्वयार्थ — जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, भारते क्षेत्रे = भरत क्षेत्र में, शुभे = शुभ आर्य खण्ड में, कौशलाभिधे = कौशल नामक, देशे = देश में, सिंहपुरी = सिंहपुरी नामक नगर, (आसीत् = था), तत्र = वहाँ, उत्तमे = श्रेष्ठ, इक्ष्वाकौ = इक्ष्वाकु, वंशे = वंश में, विष्णुः = विष्णु, नामा = नाम वाला, राजा = राजा, अभवत् = हुआ, भाग्यसिन्धुः = समुद्र सम अपार भाग्य वाला, प्रतापवान् = पराक्रमी-प्रतापी, सत्कीर्तिः = सुयशसम्पन्न, सः = वह राजा, स्वविभूत्या = अपनी विभूति से, देवेन्द्रं = देवेन्द्र को, अपि = भी, अलज्जयत् = लज्जित करता था।

श्लोकार्थ — जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में शुभ कौशल नामक देश है उसमें सिंहपुरी नाम की नगरी है। जिस सिंहपुरी में उत्तम इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न विष्णु नामक राजा थे। अपार भाग्यशाली अत्यधिक पराक्रमी और सुविख्यात कीर्ति वाला वह राजा अपनी विभूति से देवेन्द्र को भी लज्जित करता था।

नंदाख्या तस्य महिषी शुभलक्षणलक्षिता ।

प्राणेशप्राणसदृशा स्वकीयैः सद्गुणैर्ध्रुवम् ॥१९॥

तया सह स धर्मात्मा शीलसम्पन्नया तथा ।

रेमे राजगृहे शय्या त्रिदिवे देवराडिव ॥२०॥

अन्वयार्थ -- तस्य = उस राजा की, नंदाख्या = नंदा नाम की, महिषी = रानी, ध्रुवं = निश्चित ही, स्वकीयैः = अपने, सद्गुणैः = सद्गुणों द्वारा, प्राणेशप्राणसदृशा = पति के लिये प्राणों के

समान प्रिय, (च = और), शुभलक्षणलक्षिता = शुभ लक्षणों से परिलक्षित, अभूत् = थी।

शीलसम्पन्नया = शीलाचरण से सम्पन्न, तया = उस रानी के, सह = साथ, सः = वह, धर्मात्मा = धर्मप्रिय राजा, राजगृहे = राजभवन में, तथा = उसी तरह, रेमे = रमण करता था, इव = यथा, देवराड् = देवेन्द्र, शच्या = शची के साथ, त्रिदिवे = स्वर्ग में (रेमे = रमण करता था)।

श्लोकार्थ — उस राजा की नंदा नाम की रानी निश्चित रूप से अपने सद्गुणों के कारण पति के लिये प्राणों के समान प्रिय और सभी शुभ लक्षणों से परिपूर्ण थी। वह धर्मात्मा राजा उस शीलवती रानी के साथ राजभवन में उसी प्रकार रमण करता था जैसे इन्द्र शची के साथ स्वर्ग में रमण किया करता था।

ज्ञात्वा तयोर्गृहे देवागमनं भाविनं तथा ।

शक्राज्ञया धनाधीशो वसुवृष्टिं चकार सः ॥२१॥

तां दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे सन्ततापातनिर्भराम् ।

अन्वमन्यन्त भवने राज्ञो भावि शुभं महत् ॥२२॥

अन्वयार्थ — तयोः = उन राजा-रानी के, गृहे = घर में, भाविनं = आगे होने वाला, देवागमनं = तीर्थङ्कर का आगमन, ज्ञात्वा = जानकर, सः = उस, धनाधीशः = कुबेर ने, शक्राज्ञया = इन्द्र की आज्ञा से, वसुवृष्टिं = मणि-रत्नों की वर्षा को, चकार = किया, सन्ततापातनिर्भरां = निरन्तर गिराते हुये रत्नों से भरी, तां = उस वर्षा को, दृष्ट्वा = देखकर, सर्वे = सभी लोग, विस्मिताः = आश्चर्यचकित हुये, राज्ञः = राजा के, भवने = भवन में, भावि = भविष्यत्काल में, महत् = बहुत, शुभं = शुभ, (स्यात् = होगा), (इति = ऐसा), अन्वमन्यन्त = मानने लगे।

श्लोकार्थ — उन दोनों राजा रानी के घर में भावि तीर्थङ्कर के आगमन को जानकर इन्द्र की आज्ञा से उस कुबेर ने रत्नों की बरसात कर दी। निरन्तर गिराते हुये रत्नों भरी उस वर्षा को देखकर

आश्चर्य से पूर्ण सभी लोग मानने लगे कि राजा के भवन में भविष्य में बहुत कुछ शुभ होगा ।

ज्येष्ठे कृष्णदले षष्ठ्यां श्रवणर्क्षे नृपप्रिया ।

निशावसाने साऽपश्यत् स्वप्नान् षोडशमन्दिरे ॥२३॥

स्वप्नान्ते सा करटिनं मत्तं स्वमुखपङ्कजे ।

प्रविशन्तं समालोक्य प्रबुद्धा विस्मिताऽभवत् ॥२४॥

अन्वयार्थ — ज्येष्ठे = जेठ के महिने में, कृष्णदले = कृष्णचन्द्रा में, षष्ठ्यां = षष्ठी के दिन, श्रवणर्क्षे = श्रवणनक्षत्रा में, सा नृपप्रिया = राजा की, उस रानी ने, मन्दिरे = अपने महल में, निशावसाने = रात्रि के अंतिम प्रहर में, षोडश = सोलह, स्वप्नान् = स्वप्नों को, अपश्यत् = देखा, स्वप्नान्ते = स्वप्न के अन्त में, स्वमुखपङ्कजे = अपने मुख कमल में, प्रविशन्तं = प्रवेश करते हुये, मत्तं = उन्मत्त, करटिनं = हाथी को, समालोक्य = देखकर, सा = वह रानी, प्रबुद्धा = जाग गयी, (च = और), विस्मिता = आश्चर्यचकित, अभवत् = हो गई ।

श्लोकार्थ — जेठ कृष्णा षष्ठी को श्रवण नक्षत्र में राजा की उस रानी ने अपने महल में रात्रि के अंतिम प्रहर में सोलह स्वप्नों को देखा । स्वप्नों को देखने के बाद अपने मुख कमल में प्रवेश करते हुये उन्मत्त हाथी को देखकर वह रानी जाग गई और आश्चर्यचकित हुई ।

तदैव मुखमाकेशं संमार्ज्य विमलैर्जलैः ।

गता पतिसमीपं सा स्वश्रौषीत्स्वाप्तिकं फलम् ॥२५॥

श्रुत्वाद्भुतं फलं तेषां गर्भे सन्धार्य दैवतम् ।

रराज मन्दिरे देवी महासुकृतभूरिव ॥२६॥

अन्वयार्थ — तदैव = तभी, विमलैः = स्वच्छ, जलैः = जल से, आकेशं = बालों तक, मुखं = मुख को, संमार्ज्य = धोकर, सा = वह रानी, पतिसमीपं = पति के पास, गता = गयी, (च = और), स्वाप्तिकं स्वप्न = स्वप्न सम्बन्धी, फलं = फल को, स्वश्रौषीत् = अच्छी तरह से सुना, तेषां = उनका, अद्भुतं

= आश्चर्यपूर्ण—चमत्कारिक, फलं = फल को, शुन्वा = सुनकर, दैवतम् = देव से तीर्थङ्कर के रूप में आये जीव को, गर्भे = गर्भ में, सन्धार्य = धारण करके, देवी = वह रानी, मन्दिर = महल में, महासुकृतभूः इव = महापुण्यों की भूमि के समान, रराज = सुशोभित होने लगी।

श्लोकार्थ — तभी स्वच्छ जल से केश पर्यन्त अपने मुख को धोकर वह रानी पति के पास गयी और स्वप्नविषयक फल को ध्यान से सुनने लगी। स्वप्नों के फल को सुनकर तथा तीर्थङ्कर बालक को गर्भ में धारण कर वह रानी महा पुण्यों की भूमि के समान महल में सुशोभित हुई।

दशमे मासि फाल्गुणकृष्णैकादश्यां चोत्तमे ।

भूपगृहे जनिं लेभे सोऽयं तेजसां निधिः ॥२७॥

अन्वयार्थ — च = और, दशमे = दसवीं, मासि = माह होने पर, फाल्गुणकृष्णैकादश्यां = फाल्गुण कृष्ण एकादशी के दिन, उत्तमे = उत्तम, भूपगृहे = राजा के घर में, सः = उस, तेजसां = तेजों का, निधिः = पुञ्ज स्वरूप, अयं = 'इस बालक ने, जनिं = जन्म, लेभे = प्राप्त किया।

श्लोकार्थ — गर्भकाल पूरा होने से दसवीं माह आने पर फाल्गुन कृष्णा ग्यारस के दिन तेजोनिधि इस बालक ने राजा के उत्तम गृह में जन्म प्राप्त किया।

त्रिज्ञानलोचनोद्भासी शुभलक्षणदीपितः ।

तपोनिधिः प्रसन्नात्मा भ्राजते स्म रविर्यथा ॥२८॥

अन्वयार्थ — शुभलक्षणदीपितः = शुभलक्षणों से सुशोभित, त्रिज्ञानलोचनोद्भासी = तीन ज्ञान रूपी नेत्रों से जानने वाले, प्रसन्नात्मा = प्रसन्न स्वरूप वाले, तपोनिधिः = तपोनिधि प्रभु, (तथैव = वैसे ही), भ्राजते स्म = शोभायमान हुये, यथा = जैसे, रविः = सूर्य।

श्लोकार्थ — शुभलक्षणों से सुशोभित, तीन ज्ञान अर्थात् मति, श्रुत और अवधिज्ञान रूपी नेत्रों से जानने वाले, प्रसन्नता से परिपूर्ण, तपोनिधि प्रभु वैसे ही प्रकाशमान हुये जैसे रवि होता है।

तदैवावधितो शक्रो ज्ञात्वाऽऽवतरं प्रभोः ।

जयेत्युच्चार्य सहसा स देवस्तत्र चागमत् ॥२६॥

अन्वयार्थ - तदैव = तब ही, अवधितः = अवधिज्ञान से, प्रभोः = भगवान् का, अवतरं = आगमन-जन्म, ज्ञात्वा = जानकर, च = और, जय = जय हो, इति = ऐसा, उच्चार्य = कहकर, सहसा = अचानक, उतावलीपूर्वक, सः = वह, देवः = इन्द्र, तत्र = वहाँ, आगमत् = आ गया ।

श्लोकार्थ - तभी अपने अवधिज्ञान से प्रभु का जन्म हो गया है ऐसा जानकर और जय हो ऐसा उच्चारण करके वह इन्द्र उतावलीपूर्वक वहाँ आ गया ।

ततः प्रभुं समादाय सादरं भक्तिनम्रधीः ।

विमाने स्वाङ्कगं कृत्वा गतः स्वर्णाचलं मुदा ॥३०॥

शिलायां पाण्डुकाख्यायां ततस्संस्थाप्य तं प्रभुं ।

चक्रे घटाभिषेकं स क्षीरोदधिजलैश्शुभैः ॥३१॥

अन्वयार्थ - ततः = उसके बाद, भक्तिनम्रधीः = भक्ति से विनम्र बुद्धि वह इन्द्र, प्रभुं = प्रभु को, सादरं = आदर सहित, समादाय = लेकर, (च = और), विमाने = विमान में, स्वाङ्कगं = अपनी गोद में स्थित, कृत्वा = करके, मुदा = प्रसन्नता से, स्वर्णाचलं = सुमेरु पर्वत पर, गतः = गया, ततः = उसके बाद, सः = उस इन्द्र ने, पाण्डुकाख्यायां = पाण्डुक नामक, शिलायां = शिला पर, तं = उन, प्रभुं = भगवान् को, संस्थाप्य = स्थापित करके, शुभैः = सुन्दर, क्षीरोदधिजलैः = क्षीरसागर के जल से, घटाभिषेकं = घटाभिषेक, चक्रे = किया ।

श्लोकार्थ - भक्ति से विनम्र बुद्धि इन्द्र प्रभु को आदर सहित लेकर तथा विमान में उन्हें अपनी गोद में बिठाकर प्रसन्नता से मेरु पर्वत पर गया । वहाँ पाण्डुक शिला पर प्रभु को स्थापित करे क्षीरसागर के जल से भरे घटों द्वारा उनका अभिषेक किया ।

पुनर्गन्धोदकस्नानं समाप्य विधिवन्मुदा ।

दिव्यैराभरणैर्देवं समाभूषयदद्भुतैः ॥३२॥

ततो जयध्वनिं कृत्वा पुनरायान् नृपालयं ।
 तत्र संपूज्य देवेशं चक्रे ताण्डवमुत्तमम् ॥३३॥
 श्रेयस्करत्वात् श्रेयानित्यभिधां त्रिजगद्गुरोः ।
 कृत्वा मात्रे समर्प्येनं गतरस्वर्गं स वासवः ॥३४॥

अन्वयार्थ - पुनः = फिर, गन्धोदकस्नानं = गंधोदक स्नान को, समाप्य = समाप्त कर, मुदा = हर्ष से, अद्भुतैः = अद्भुत, दिव्यैः = दिव्य कांतिपूर्ण, आभरणैः = वस्त्राभूषणों से, विधिवत् = यथाविधि, देवं = प्रभु को, समभूषयत् = अलङ्कृत किया, ततः = उसके बाद, जयध्वनिं = जयकार को, कृत्वा = करके, पुनः = फिर से, नृपालयं = राजा के घर को, आयात् = आ गया, तत्र = वहाँ, देवेशं = देवों के स्वामी तीर्थङ्कर शिशु की, संपूज्य = पूजा करके, (सः = उसने), उत्तमं = उत्तम, ताण्डवम् = ताण्डवनृत्य को, चक्रे = किया, श्रेयस्करत्वात् = कल्याण को करने वाले होने से, त्रिजगद्गुरोः = तीन लोक के गुरु का, श्रेयान् = श्रेयांसनाथ, इति = यह, अभिधां = नाम, कृत्वा = करके, (च = और), एनं = इन बालक प्रभु को, मात्रे = माता के लिये, समर्प्य = देकर, सः = वह, वासवः = इन्द्र, स्वर्गं = स्वर्ग को, गतः = चला गया ।

श्लोकार्थ - फिर प्रभु का गन्धोदक स्नान बंद करके, हर्ष से इन्द्र ने प्रभु को अद्भुत दिव्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित किया तथा उसके बाद जयध्वनि करके पुनः राजा के घर आ गया वहाँ तीर्थङ्कर शिशु की पूजा करके उसने मनोहर ताण्डव नृत्य किया । कल्याण को करने वाले होने से उसने तीनों जगत् के स्वामी का नाम श्रेयांसनाथ करके उन्हें माता के लिये दे दिया । फिर वह इन्द्र स्वर्ग को चला गया ।

षट्षष्टिकोटिसम्प्रोक्तसागरेषु गतेषु वै ।
 शीतलेशादभूच्छ्रेयान् तन्मध्ये प्राप्तजीवनः ॥३५॥
 चतुर्युक्ताशीतिलक्षवर्षायुरभवत्प्रभुः ।
 चापाशीत्युन्नतिं विभ्रद्विवाकरजयीरुचिः ॥३६॥

एकविंशतिलक्ष वर्षा युःपर्यन्तं बालकेलिषु ।

आसक्तः स्वेच्छया देवः सुखं पित्रोर्ददौ महत् ॥३७॥

अन्वयार्थ — शीतलेशात् = तीर्थङ्कर शीतलनाथ से, वै = निश्चय ही, षट्षष्टिकोटिसम्प्रोक्तसागरेषु = छयासठ करोड़ सागर, गतेषु = बीत जाने पर, तन्मध्ये = उक्त काल के भीतर ही, प्राप्तजीवनः = जिन्होंने जीवनप्राप्त किया था ऐसे, श्रेयान् = श्रेयांसनाथ, अभूत् = हुये, चतुर्युक्ताशीतिलक्षावर्षायुषः = चौरासी लाख वर्ष पर्यन्त आयु वाले, चापाशीत्युन्नतिं = अस्सी धनुष की ऊँचाई को, बिभ्रदिदवाकरजयीरुचिः = धारण कर सूर्य को जीतने वाली कान्ति से युक्त, प्रभुः = तीर्थङ्कर श्रेयांसनाथ, अभवत् = हुये थे, एकविंशतिलक्ष-वर्षायुःपर्यन्तं = इक्कीस लाख वर्ष आयु तक, बालकेलिषु = बालक्रीड़ाओं में, आसक्तः = लगे हुये, देवः = बाल तीर्थङ्कर ने, स्वेच्छया = अपनी इच्छा से, पित्रोः = माता पिता के लिये, महत् = अत्यधिक, सुखं = सुख, ददौ = दिया ।

श्लोकार्थ — तीर्थङ्कर शीतलनाथ के बाद छयासठ करोड़ सागर बीत जाने पर इस काल में ही होने वाले तीर्थङ्कर श्रेयांसनाथ हुये थे । इनकी आयु चौरासीलाख वर्ष थी तथा शरीर की ऊँचाई अस्सी धनुष प्रमाण थी । यह प्रभु सूर्य की कान्ति को जीतने वाली कान्ति से युक्त थे । इक्कीस लाख वर्ष तक बाल क्रीड़ाओं में लगे हुये प्रभु ने अपनी इच्छा से माता-पिता को अत्यधिक सुख दिया ।

कुमारवयसि श्रीमान् रूपलावण्यसागरः ।

अशेषसुरमर्त्यानां मनोऽहरदवेक्षणः ॥३८॥

अन्वयार्थ — कुमारवयसि = कुमारावस्था में, रूपलावण्यसागरः = सागर के समान अपरिमित रूप और लावण्य से युक्त, अवेक्षणः = सुन्दर नयन दृष्टि, श्रीमान् = शोभासम्पन्न, सः = वह, अशेषसुरमर्त्यानां = सभी देव और मनुष्यों के, मनः = मन को, अहरत् = हर लेता था ।

श्लोकार्थ — कुमारावस्था में वह कुमार सागर के समान अपरिमित रूप

और लावण्य से युक्त, सुन्दर नयन दृष्टि और शोभा सम्पन्न होता हुआ सारे देवों और मनुष्यों के मन को हर लेता था।

नीतिशास्त्रोक्तकर्माणि नीतिशास्त्राध्ययनतत्परः ।

नीतिशास्त्रोक्तकर्माणि नीतिविन्नीतिमाचरत् ॥३६॥

अन्वयार्थ — नीतिशास्त्रप्रियः = नीतिशास्त्र को अच्छा मानने वाले, नीतिशास्त्राध्ययनतत्परः = नीतिशास्त्र के अध्ययन में तत्पर, नीतिविद् = नीति के जानकार प्रभु ने, नीतिशास्त्रोक्तकर्माणि = नीतिशास्त्र में कहे गये कर्मों को, (च = और), नीतिं = को, आचरत् = आचरण किया।

श्लोकार्थ — कुमार नीतिशास्त्र को अच्छा मानते थे उसके अध्ययन में तत्पर थे और नीति के ज्ञाता होकर नीतिशास्त्रोक्तकर्माणि अर्थात् नीति के अनुसार ही कर्मों को करते थे तथा नीति का पालन करते थे।

प्रजानुरागी सततं प्रजारक्षणकोविदः ।

प्रजासङ्गीतिकीर्त्यासौ प्रजानाथममोदयत् ॥३७॥

अन्वयार्थ — प्रजानुरागी = प्रजा से स्नेह रखने वाले, प्रजारक्षणकोविदः = प्रजा के रक्षण कार्य में दक्ष, असौ = उन कुमार ने, प्रजासङ्गीतिकीर्त्या = प्रजा जनों द्वारा गायी गयी कीर्ति से, प्रजानाथं = राजा अर्थात् अपने पिता को, अमोदयत् = प्रसन्न किया।

श्लोकार्थ — प्रजा जनों में स्नेह रखने वाले, तथा प्रजा की रक्षा करने में चतुर उन कुमार ने प्रजाजनों द्वारा गायी गयी अपनी कीर्ति से अपने पिता प्रजानाथ अर्थात् राजा को प्रसन्न किया।

तारुण्यागमने तस्मै विष्णुभूपतिसत्तमः ।

सर्वथा योग्यमालक्ष्य स्वयं राज्यं ददौ मुदा ॥३८॥

अन्वयार्थ — विष्णुभूपतिसत्तमः = विष्णु नामक श्रेष्ठ राजा ने, तारुण्यागमने = कुमार की तरुण अवस्था आ जाने पर, सर्वथा = सर्व प्रकार से योग्य, आलक्ष्य = समझकर, स्वयं = खुद ही, मुदा =

प्रसन्नता से, तस्मै = उसके लिये, राज्यं = राज्य को, ददौ = दे दिया।

श्लोकार्थ — राजाओं में श्रेष्ठ विष्णु नृपति ने पुत्र की तरुण अवस्था आ जाने पर उसे सर्वथा योग्य समझकर हर्ष पूर्वक स्वयं ही उसके लिये राज्य दे दिया।

सम्प्राप्य पैतृकं राज्यं सिंहासनस्थितः प्रभुः ।

शुशुभेऽतितरां दीप्त्या देवेन्द्रं व्रीडयन्निव ॥४२॥

अन्वयार्थ — पैतृकं = पिता के, राज्यं = राज्य को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, सिंहासनस्थितः = सिंहासन पर विराजमान, प्रभुः = राजा श्रेयांसनाथ, दीप्त्या = अपनी कान्ति से, इव = मानों, देवेन्द्र = इन्द्र को, व्रीडयन् = लज्जित करते हुये, अतितरां = अत्यधिक, शुशुभे = सुशोभित हुये।

श्लोकार्थ — पिता के राज्य को पाकर सिंहासन पर विराजमान राजा श्रेयांसनाथ अपनी दीप्ति से मानों इन्द्र को लज्जित करते हुये अतिशय शोभा को प्राप्त हो रहे थे।

तस्य राज्येऽखिला पृथ्वी तरकरैर्वञ्चकैर्विना ।

परमानन्दमन्वभूत् निर्भया निरुपद्रवा ॥४३॥

अन्वयार्थ — तस्य = उनके, राज्ये = राज्य में, अखिला = सम्पूर्ण, पृथ्वी = धरती ने, तरकरैः = तस्करों के, वञ्चकैः = वञ्चकों के, विना = बिना, निर्भया = भय से रहित, निरुपद्रवा = उपद्रव से रहित, (भूत्वा = होकर), परमानन्दं = परम आनन्द का, अन्वभूत् = अनुभव किया।

श्लोकार्थ — उनके राज्य में तस्करों और ठगों के बिना सारी पृथ्वी ने भय और उपद्रव से रहित होकर परमानन्द का अनुभव किया।

विपक्षाहतपक्षा च तं मत्वा विजयेश्वरम् ।

सन्तारणोपायनीकृत्य शरण्यं शरणंगताः ॥४४॥

अन्वयार्थ — च = और, विपक्षाहतपक्षाः = शत्रुओं द्वारा खण्डित नष्ट न किये जाने योग्य उनके भागों पक्षों के राजाओं ने, तं = उन राजा को, सन्तारणोपायनीकृत्य = तीर्थ स्वरूप पार लगाने

वाला मानकर और भेंट देकर, विजयेश्वरं = विजय जिनका ऐश्वर्य है ऐसे विजेता, शरण्यं = शरण पाने का आश्रय मानकर, शरणंगताः = उनकी शरण में चले गये।

श्लोकार्थ — तथा शत्रुओं द्वारा नष्ट न हो सकने वाले उनके पक्ष वाले राजाओं ने विविध वस्तुयें भेंट में प्रस्तुत कर उन्हें विजेता और शरण का आश्रय मानकर उनकी शरण में चला गया।

परैरखण्डितं राज्यं संप्राप्य जगदीश्वरः।

नरेन्द्रकन्यासहितः परमं सुखमन्वभूत् ॥४५॥

अन्वयार्थ — परैः = शत्रुओं द्वारा, अखण्डितं = खण्डित न किया जाने योग्य, राज्यं = राज्य को, संप्राप्य = प्राप्त करके, जगदीश्वरः = जगत् के प्रभु राजा श्रेयांसनाथ ने, नरेन्द्रकन्यासहितः = राज कन्याओं से परिणय करके उनके साथ रहते हुये, परमं = उत्कृष्ट, सुखं = सुख का, अन्वभूत् = अनुभव किया।

श्लोकार्थ - शत्रुओं द्वारा खण्डित न किये जाने योग्य राज्य को प्राप्त करके जगत् के प्रभु राजा श्रेयांसनाथ ने राज कन्याओं से परिणय करके उनके साथ रहते हुये उत्कृष्ट सुख का अनुभव किया।

आद्विचत्वारिंशल्लक्षवर्षं सुखमयं नृपः।

कृत्वा राज्यं हतारातिर्बसन्तर्तुं समैक्षत ॥४६॥

अन्वयार्थ — हतारातिः = नष्ट कर दिये है शत्रु जिसने ऐसा यह, नृपः = राजा श्रेयांसनाथ ने, आद्विचत्वारिंशल्लक्षवर्षं = बयालीस लाख वर्ष पर्यन्त, सुखमयं = सुखपूर्ण, राज्यं = राज्य को, कृत्वा = करके, बसन्तर्तुं = बसन्त ऋतु को, समैक्षत = देखा।

श्लोकार्थ — शत्रुओं को नष्ट करने वाले राजा श्रेयांसनाथ ने बयालीस लाख वर्ष तक सुखमय राज्य को करके एक बार बसन्त ऋतु को इस प्रकार देखा।

प्रफुल्लान्भूरूहांस्तद्वत् फलितान् वीक्ष्य नित्यशः।

कदाचित्पुनश्च तानेय सोऽपश्यत् विवर्जितान् ॥४७॥

अन्वयार्थ — प्रफुल्लान् = विकसित खिले हुये, भूरूहान् = वृक्षों को, तद्वत्

= खिले हुये के समान, फलितान् = फलयुक्त, नित्यशः = प्रतिदिन, वीक्ष्य = देखकर, च = और, कदाचित् = कभी, पुनः = फिर से, तान् = उन वृक्षों को, एव = ही, सः = उस राजा ने, विवर्जितान् = फल और विकसित शोभा से रहित, अपश्यत् = देखा।

श्लोकार्थ — बसन्त ऋतु में प्राकृतिक सौन्दर्य को देखते हुये राजा ने एक दिन प्रतिदिन फूलों और फलों से युक्त वृक्षों को देखकर किसी समय उन्हीं वृक्षों को फल और फूलों से रहित देखा।

एवमेव जगत्सर्वमिति मत्वा स्वमानसे ।

विरक्तोऽभूत्तदा श्रेयान् संसाराद् दुःखवारिधेः ॥४८॥

अन्वयार्थ — तदा = तब, सर्व = सारा, जगत् = संसार, एवं = ऐसा, एव = ही, इति = इस प्रकार, मत्वा = मानकर, स्वमानसे = अपने मन में, श्रेयान् = तीर्थङ्कर श्रेयांसनाथ, दुःखवारिधेः = दुख के समुद्र स्वरूप, संसारात् = संसार से विरक्तः = विरक्त, अभूत् = हो गया।

श्लोकार्थ — तब अर्थात् वृक्षों को फूल आदि से शून्य देखकर राजा श्रेयांस सारे जगत् को भी ऐसा ही मानकर दुःखों के समुद्र स्वरूप संसार से विरक्त हो गये।

सारस्वतास्तदागत्य तं दृष्ट्वा स्फारितेक्षणः ।

तुष्टुवुर्विविधैर्वाक्यैः वैराग्यसारगर्भितैः ॥४९॥

अन्वयार्थ — तदा = तब अर्थात् राजा को वैराग्य होने पर, (तत्र = वहाँ), आगत्य = आकर, (च = और), तं = उसको, दृष्ट्वा = देखकर, स्फारितेक्षणाः = प्रस्फुट नेत्रों वाले, सारस्वताः = सारस्वत जाति के लौकान्तिक देवों ने, विविधैः = अनेक प्रकार के, वैराग्यसारगर्भितैः = वैराग्य के सार तत्त्व और महत्त्व को बताने वाले, वाक्यैः = वाक्यों से, तुष्टुवुः = स्तुति की।

श्लोकार्थ — राजा के वैराग्य को प्राप्त होने का समाचार जानकर सारस्वत जाति के लौकान्तिक देवों ने वहाँ आकर विस्फारित नेत्रों

से पूर्ण होते हुये वैराग्यपूर्ण सारगर्भित वचनों से उनकी स्तुति की।

देवेन्द्रोऽपि जयेत्युक्त्वा तत्रागत्यानमत्प्रभुम् ।

देवदेवीगणोपेतः शिरस्सन्धार्य भूतले ॥५०॥

अन्वयार्थ — देवदेवीगणोपेतः = देव और देवियों के समूहों से युक्त, देवेन्द्रः = इन्द्र ने, अपि = भी, जय = जय हो, इति = ऐसा, उक्त्वा = कहकर, तत्र = वहाँ, आगत्य = आकर, भूतले = पृथ्वी पर, शिरः = मस्तक को, सन्धार्य = लगाकर, प्रभुं = प्रभु को, अनमत् = प्रणाम किया।

श्लोकार्थ — देव-देवियों के समूह से सहित देवेन्द्र ने भी जय शब्द का उच्चारण करके और वहाँ आकर पृथ्वी पर सिर लगाकर भगवान् को नमस्कार किया।

देवोपनीतां विमलप्रभाख्यां शिबिकां प्रभुः ।

समारुह्य तदैवाशु सहेतुकवनं ययौ ॥५१॥

अन्वयार्थ — तदैव = तभी, प्रभुः = प्रभु, देवोपनीतां = देवों द्वारा लायी गयी, विमलप्रभाख्यां = विमलप्रभ नामक, शिबिकां = पालकी पर, समारुह्य = चढ़कर, आशु = शीघ्र ही, सहेतुकवनं = सहेतुक वन को, ययौ = चला गया।

श्लोकार्थ — तभी प्रभु देवों द्वारा लायी गयी विमलप्रभ नामक पालकी पर चढ़कर शीघ्र ही सहेतुक वन को चला गया।

तत्र दीक्षाविधानेन सिद्धान्समभिवन्द्य सः ।

कृष्णैकादशिकायां च फाल्गुने श्रावणोदुनि ॥५२॥

जैर्नी मुक्तिनिदानां सदीक्षां जग्राह तत्त्ववित् ।

सहस्रप्रमितैर्भूपैः सार्धं भूत्वावधीक्षितः ॥५३॥

अन्वयार्थ — तत्र = उस सहेतुकवन में, फाल्गुने = फाल्गुन माह में, कृष्णैकादशिकायां = कृष्ण पक्ष की एकादशी के दिन, श्रावणोदुनि = श्रावण नक्षत्र में, अवधीक्षितः = अवधिज्ञान से जानते हुये, भूत्वा = होकर, तत्त्ववित् = तत्त्ववेत्ता-तत्त्वज्ञानी, सः = उन प्रभु ने, सिद्धान् = सिद्धों को, अभिवन्द्य = प्रणाम

करके, दीक्षाविधानेन = दीक्षा लेने की विधि से, सहस्रप्रमितैः = एक हजार, भूपैः = राजाओं के, सार्ध = साथ, मुक्तिनिदानं = मुक्ति के लिये कारणभूत, जैनीं = जैनेश्वरी, सददीक्षां = प्रशंसनीय मुनिदीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया।

श्लोकार्थ उस सहेतुकवन में फाल्गुन कृष्ण ग्यारस के दिन श्रावणनक्षत्र में अधिज्ञान के स्वामी तत्त्वज्ञानी प्रभु ने सिद्धों को नमस्कार करके दीक्षा ग्रहण करने की रीति से एक हजार राजाओं के साथ मुक्ति के लिये कारण प्रशंसनीय जैनेश्वरी मुनिदीक्षा को ग्रहण कर लिया।

सिद्धार्थ स द्वितीयेऽहिनि भिक्षायै गतवान्पुरम् ।

नन्दिषेणाभिधो राजा तस्मै सदभोजनं ददौ ॥५४॥

अन्वयार्थ - सः = वह मुनिराज, द्वितीये = दूसरे, अहिनि = दिन, भिक्षायै = आहार के लिये, सिद्धार्थ = सिद्धार्थ, पुरं = नगर को, गतवान् = गया, (तत्र = वहाँ), नन्दिषेणाभिधः = नन्दिषेण नामक, राजा = ने, तस्मै = उनके लिये, सदभोजनं = अच्छा सात्विक भोजन, ददौ = दिया।

श्लोकार्थ - वह मुनिराज दूसरे दिन आहार लेने के लिये सिद्धार्थ नगर गये वहाँ राजा नन्दिषेण ने उनके लिये सात्विक भोजन प्रदान किया।

पुनर्वनं समासाद्य द्विवर्षावधिभौनभाक् ।

नानाशुचिप्रदेशेषु तपश्चक्रे सुदारुणम् ॥५५॥

अन्वयार्थ - पुनः = पश्चात्, वनं = वन को, समासाद्य = प्राप्त करके, द्विवर्षावधिभौनभाक् = दो वर्ष पर्यन्त तक मौन धारण करने वाले उन मुनिराज ने, नानाशुचिप्रदेशेषु = अनेक पवित्र स्थानों पर, सुदारुणं = कठोरतम, तपः = तपश्चरण को, चक्रे = किया।

श्लोकार्थ फिर उसके बाद वन में आकर दो वर्ष तक मौन व्रत धारण करने वाले उन मुनिराज ने अनेक पवित्र स्थानों में भीषणकाल कठोर तपश्चरण किया।

घातिकर्ममहारण्यं तपोऽग्निज्वालाया तदा ।

भस्मीचक्रे ततो मोहशत्रुक्षयमपि व्यधात् ॥५६॥

अन्वयार्थ - तदा = तब, तपोऽग्निज्वालाया = तपः रूप अग्नि की ज्वालाओं से, घातिकर्ममहारण्यं = घातिकर्म रूप भयंकर वन को भस्म कर दिया, ततः = उसके बाद, मोहशत्रुक्षयम् = मोह रूप शत्रु का क्षय भी, व्यधात् = कर दिया ।

श्लोकार्थ - भीषण तपश्चरण करने पर उन मुनिराज ने तपश्चरण स्वरूप अग्नि ज्वालाओं से घातिकर्मों के विशाल वन को जला दिया उससे मोहशत्रु का भी क्षय कर दिया गया ।

अमायां माघमासस्य तिन्दुकद्रुमतले प्रभुः ।

लेभे स केवलज्ञानं मोक्षसंप्राप्तिकारणम् ॥५७॥

अन्वयार्थ - माघमासस्य = माघ मास की, अमायां - अमावस्या के दिन, तिन्दुकद्रुमतले = तेदूँ वृक्ष के नीचे, सः = उन, प्रभुः = भगवान् ने, मोक्षसम्प्राप्ति कारणं = मोक्ष प्राप्त करने में कारण स्वरूप, केवलज्ञानं = केवलज्ञान को, लेभे = प्राप्त कर लिया ।

श्लोकार्थ - माघ माह की अमावस्या को तेदूँ वृक्ष के नीचे मुनिराज श्रेयांसनाथ ने मोक्ष के कारण स्वरूप केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया ।

तदैवागत्य देवेन्द्रः सार्धं निखिलदेवतैः ।

प्रभोश्च समवसारमसौ रचयत्यमरोद्भुतं स्म ॥५८॥

अन्वयार्थ - तदैव = उस ही समय, निखिलदेवतैः = सम्पूर्ण देवताओं के, सार्धं = साथ, आगत्य = आकर, असौ = उस, देवेन्द्रः = देवेन्द्र ने, प्रभोः = केवलज्ञानी भगवान् का, अमरोद्भुतम् = देवों के लिये भी आश्चर्यकारी, समवसारम् = समवसरण, रचयति स्म = रचा ।

श्लोकार्थ - उस ही समय सभी देवताओं के साथ आकर उस इन्द्र ने भगवान् का देवों को भी आश्चर्यकारी समवसरण रच दिया ।

कुन्धुसेनादिभिस्तत्र यथोक्तैः सर्वकोष्ठगैः ।

स्तुतः सम्पूजितो देवः स्वतेजोभिर्यभात्तराम् ॥५९॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस समवसरण में, यथोक्तैः = जैसे कहे गये हैं वैसे, सर्वकोष्ठगैः = सारे कोठों में स्थित, कुन्धुसेनादिभिः = कुन्धुसेन आदि द्वारा, स्तुतः = स्तुति किये जाते हुये, सम्पूजितः = प्रशंसा से पूजित होते हुये, देवः = भगवान्, स्वतेजोभिः = अपने तेज पुञ्ज से, व्यभात्तराम् = अतिशय शोभायमान हुये।

श्लोकार्थ - समवसरण जिस प्रकार कहे गये हैं वैसे ही सारे कोठों में स्थित कुन्धुसेनादि के द्वारा स्तुत और संपूजित भगवान् अपने तेजपुञ्ज से अतिशय शोभा को प्राप्त हुये।

सम्पृष्टोऽयं गणेन्द्राद्यैस्तत्त्वं जिज्ञासुभिस्तदा ।

चक्रे च तत्त्वव्याख्यानं सार्वं सर्वप्रकाशकम् ॥६०॥

अन्वयार्थ - यदा = जब, तत्त्वं = तत्त्व, जिज्ञासुभिः = जिज्ञासु, गणेन्द्राद्यैः = गणधरादिकों द्वारा, अयं = यह भगवान्, सम्पृष्टः = पूछे गये, तदा = तब, सः = भगवान् ने, सार्वं = सभी पदार्थों से सम्बन्धित, सर्वप्रकाशकम् = सभी का प्रकाशन करने वाला, तत्त्वव्याख्यानं = तत्त्व का व्याख्यान, चक्रे = किया।

श्लोकार्थ - तभी तत्त्व को समझने के जिज्ञासु गणधरादिकों द्वारा यह भगवान् पूछे गये तब भगवान् ने सभी पदार्थों के तत्त्व को प्रकाशित करने वाला सारभूत व्याख्यान किया।

हर्षयन् दिव्यनिर्घोषात् सर्वास्तत्त्वव्यवस्थितान् ।

व्याहरत्पुण्यदेशेषु

परमानन्दसागरः ॥६१॥

अन्वयार्थ - दिव्यनिर्घोषात् = दिव्यध्वनि से, सर्वान् = सभी, तत्त्वव्यवस्थितान् = तत्त्व में व्यवस्थित है बुद्धि जिनकी अर्थात् तत्त्वजिज्ञासुओं को, हर्षयन् = प्रसन्न करते हुये, परमानन्दसागरः = परम आनन्द के स्वामी भगवान् श्रेयांसनाथ ने, पुण्यदेशेषु = पुण्य देशों में, व्याहरत् = विहार किया।

१ नेकार्थ - तत्त्व में व्यवस्थित है बुद्धि जिनकी ऐसे सभी तत्त्वजिज्ञासुओं को अपनी दिव्यध्वनि से हर्षित करते हुये परम आनन्द के सागर भगवान् श्रेयांसनाथ ने सभी पुण्यदेशों में विहार किया।

आयुर्मासावशिष्टत्वं ज्ञात्वा संहृत्य तद्ध्वनिम् ।
 सम्मेदपर्वतं प्राप सहस्रमुनिसंयुतः ॥६२॥
 तत्र संकुलकूटेऽसौ स्थित्वा मासावधिः प्रभुः ।
 महायोगसमारूढो सर्वकर्मक्षयंकरः ॥६३॥
 प्रतिमायोगमास्थाय श्रावणे पूर्णिमातिथौ ।
 साधकैर्मुनिभिः सार्धं सुखं सिद्धालयं गतः ॥६४॥

अन्वयार्थ - सहस्रमुनिसंयुतः = एक हजार मुनियों से युक्त प्रभु,
 आयुर्मासावशिष्टत्वं = आयु की एक मास अवशिष्टता को,
 ज्ञात्वा = जानकर, तद्ध्वनिं = दिव्यध्वनि को, संहृत्य =
 समेटकर, सम्मेदपर्वतं = सम्मेदपर्वत को, प्राप = प्राप्त हो
 गये, तत्र = वहाँ, संकुलकूटे = संकुलकूट पर, स्थित्वा =
 ठहरकर, असौ = वह, महायोगसमारूढः = महायोग में
 आरूढ़, सर्वकर्मक्षयंकरः = सारे कर्मों का क्षय करने वाले,
 मासावधिः = एक माह तक ठहरे हुये, प्रभुः = भगवान्, श्रावणे
 = श्रावण मास में, पूर्णिमातिथौ = पूर्णिमा तिथि में,
 प्रतिमायोगमास्थाय = प्रतिमायोग को धारण करके, साधकैः
 = साधक, मुनिभिः = मुनियों के, सार्धं = साथ, सुखं = सुख
 स्वरूप, सिद्धालयं = सिद्धशिला पर, गतः = चले गये ।

श्लोकार्थ - एक हजार मुनियों से युक्त प्रभु एक माह आयु शेष रहने पर
 दिव्य ध्वनि को रोककर सम्मेदपर्वत पर चले गये । वहाँ
 संकुलकूट पर स्थित होकर एक माह की संसारावधि वाले,
 महान् योग में संलग्न और सारे कर्मों का क्षय करने वाले
 उन श्रेयांसनाथ भगवान् ने प्रतिमायोग लगाकर साधक
 मुनिराजों के साथ श्रावण पूर्णिमा को सुखमय सिद्धालय को
 चले गये ।

षण्णवत्युक्तकोटीनां कोट्यस्तावन्त्य एव च ।
 कोट्यष्टषण्णवत्युक्ता लक्षोक्तनवतिकाद्धकम् ॥६५॥
 सहस्राणि तथा पञ्च शतानि तदनन्तरम् ।
 द्विधत्वारिंशतिश्चैवं गणिताः मुनिनायकाः ॥६६॥

प्रभोरनन्तरं तस्मात् कूटात्सङ्कुलनामकात् ।

तपस्तेजोऽर्करुचिराः सम्प्राप्ताः परमं पदम् ॥६७॥

अन्वयार्थ — षण्णवत्युक्तकोटीनां कोटयः = छियानवें कोड़ाकोड़ी, च = और, तावन्त्यः = उत्तने, एव = ही, षण्णवत्युक्ता कोटयः = छियानवें करोड=, लक्षोक्तनवतिकार्द्धकं सहस्राणि = एक लाख पैंतालीस हजार, तथा च = और, पञ्चशतानि = पाँच सौ, तदनन्तरं = उसके आगे, द्विचत्वारिंशतिः = बयालीस, एवं = इस प्रकार इतनी संख्या में, गणिताः = गिने गये या परिगणित, तपस्तेजोऽर्करुचिराः = तप के तेज से सूर्य समान कान्तिमान्, मुनिनायकाः = मुनिराज, प्रभोः = चन्द्रप्रभु भगवान् के, अनन्तरं = पीछे या बाद में, तस्मात् = उस, संकुलनामकात् = संकुल नामक, कूटात् = कूट से, परमं = उत्कृष्ट, पदं = सिद्ध स्थान को, सम्प्राप्ताः = प्राप्त हो गये ।

श्लोकार्थ — चन्द्रप्रभु भगवान् के बाद उस संकुलकूट से छियानवें कोड़ाकोड़ी छियानवें करोड एक लाख पैंतालीस हजार पाँच सौ बयालीस तपश्चरण के तेज से सूर्यसम कान्तिमान् मुनिराज मोक्ष गये ।

तत्पश्चान्नन्दिषेणाख्यो यात्रां चक्रे गिरेर्नृपः ।

तत्कथां पावनीं धीराः शृणुध्वं श्रद्धयान्विताः ॥६८॥

अन्वयार्थ — तत्पश्चात् = उसके बाद, नन्दिषेणाख्यः = नन्दिषेण नामक, नृपः = राजा ने, गिरेः = सम्मेदशिखर पर्वत की, यात्रां = यात्रा को, चक्रे = किया, श्रद्धयान्विताः = श्रद्धा से युक्त होते हुये, धीराः = हे! धैर्यशील युद्धिमान् लोग, पावनीं = पवित्र करने वाली, तत्कथां = उस कथा को, शृणुध्वं = सुनो ।

श्लोकार्थ — तत्पश्चात् नन्दिषेण नामक राजा ने सम्मेदगिरि की यात्रा की । हे धीर पुरुषों! श्रद्धा से युक्त होकर तुम उस पावन कथा को सुनो ।

जम्बूमति शुभे क्षेत्रे भारते चार्यखण्डे ।
 विषये नलिनाख्येतिरम्यं कल्पपुरं महत् ॥६६॥
 नृप आनन्दसेनोऽभूत् राज्ञी विजयसेनिका ।
 सती लक्षणसम्पन्ना शरच्चन्द्रनिभानना ॥७०॥
 तया सह स धर्मात्मा स्वपूर्वकृतपुण्यतः ।
 अभुञ्जत परं सौख्यं धर्मो हि सुखकारणम् ॥७१॥

अन्वयार्थ — जम्बूमति = जम्बू वृक्ष वाले, द्वीपे = द्वीप में, शुभे = सुन्दर, भारते = भरत, क्षेत्रे = क्षेत्र में, आर्यखण्डके = आर्यखण्ड में, नलिनाख्ये = नलिन नामक, विषये = देश में, अतिरम्यं = अत्यधिक मनोहर, महत् = विशाल, कल्पपुरं = कल्पपुर नामक नगर, (आसीत् = था), (तत्र = उस नगर में), नृपः आनन्दसेनः = राजा आनन्द सेन, च = और, राज्ञी = रानी, सती = पतिव्रता, लक्षणसम्पन्ना = शुभलक्षणों से युक्त, शरच्चन्द्रनिभानना = शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान मुख वाली, विजयसेनिका = विजयसेनिका, अभूत् = थी, तया = उस रानी के, सह = साथ, सः = उस, धर्मात्मा = धर्मशील राजा ने, स्वपूर्वकृतपुण्यतः = अपने पूर्वसंचितपुण्योदय से, परं = उत्कृष्ट, सुखं = सुख को, अभुञ्जत = भोगा, धर्मः = धर्म, हि = ही, सुखकारणम् = सुख का कारण, (अस्ति = है) ।

श्लोकार्थ — जम्बूद्वीप के सुन्दर भरतक्षेत्र में आर्यखण्ड के नलिन नामक देश में अत्यधिक मनोहर और विशाल नगर कल्पपुर था जिसमें राजा आनन्दसेन और रानी पतिधर्म का पालन करने वाली, शुभलक्षणों से युक्त और शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान मुख वाली विजयसेनिका थी । उस रानी के साथ उस धर्मात्मा राजा ने अपने पूर्व संचित पुण्य कर्मों के उदय से उत्कृष्ट सुखों को भोगा । सचमुच, धर्म ही सुख का कारण होता है ।

एकदाप्रवने श्रुत्वा गुणभद्रं समागतम् ।
 स्वामिनं शीलसम्पन्नं द्रष्टुं केवलिनं ययौ ॥७२॥

महानुभावं गुणितं समीक्ष्यानन्दसेनकः ।

त्रिः परिक्रम्य तं भक्त्या नत्वा पुनरुवाच सः ॥७३॥

स्वामिन्! निर्वाणकाङ्क्षा मे तदर्थं यतनं मुने ।

कष्टं कृत्वा तपः कर्तुमुत्सहे भवदाज्ञया ॥७४॥

अन्वयार्थ — एकदा = एक दिन, आम्रवने = आम्र वन में, गुणभद्रं = गुणभद्र, स्वामिनं = स्वामी को, समागतं = आया हुआ, श्रुत्वा = सुनकर, शीलसम्पन्नं = उत्कृष्ट शील से सम्पन्न, केवलिनं = केवली परमात्मा को, द्रष्टुं = देखने के लिये, ययौ = गया, सः = वह, आनन्दसेनकः = आनन्दसेन राजा, महानुभावं = उन महापुरुष को, गुणितं = जितना सुना था उससे कई गुणा अधिक, समीक्ष्य = देखकर, तं = उनको, भक्त्या = भक्ति से, नत्वा = नमस्कार करके, (च = और), त्रिः परिक्रम्य = तीन परिक्रमा करके, पुनः = फिर से, उवाच = बोला, स्वामिन् = हे भगवान्! मे = मेरी, निर्वाणकाङ्क्षा = मोक्ष पाने की अभिलाषा, (अस्ति = है), मुने! = हे मुनिवर्या! तदर्थं = उसके लिये, यतनं = यत्न को, कृत्वा = करके, कष्टं = कठोर (कष्ट से करणीय), तपः = तपश्चरण को, कर्तुं = करने के लिये, भवदाज्ञया = आपकी कृपा पूर्ण आज्ञा से, अहं = मैं, उत्सहे = उत्साहित हूँ।

ततः प्राह मुनिभूपं यदि निःश्रेयसमभिवाञ्छसि ।

तर्हि सम्मेदशैलस्य यात्रां कुरु महामते ॥७५॥

अन्वयार्थ — ततः = राजा के वैसा करने के बाद, मुनिः = मुनिराज, भूपं = राजा से, प्राह = बोले, यदि = यदि, निःश्रेयसं = मोक्ष को, अभिवाञ्छसि = तुम चाहते हो, तर्हि = तो, महामते = हे बुद्धिमान्, सम्मेदशैलस्य = सम्मेदशैल की, यात्रां = यात्रा को, कुरु = करो।

श्लोकार्थ — राजा के वैसा कहने पर मुनिराज ने राजा से कहा— हे बुद्धिमान्! यदि तुम मोक्ष चाहते हो तो सम्मेद पर्वत की यात्रा करो।

त्वमस्मिन्नेव पर्याये मुक्तिं यास्यसि निश्चितम् ।

इति श्रुत्वा नन्दिषेणः तदैवानन्दभेरिकाम् ॥७६॥

अकारयत्स निर्घोषं संघपूजां विधाय च ।

दृढभक्त्या शिखरिणा यात्रां चक्रे महामतिः ॥७७॥

अन्वयार्थ - त्वम् = तुम, अस्मिन् = इस, एव = ही, पर्याये = पर्याय में, निश्चितम् = निश्चित ही, मुक्तिं = मुक्ति को, यास्यसि = जाओगे, इति = ऐसा, श्रुत्वा = सुनकर, नन्दिषेणः = नन्दिषेण राजा ने, तदैव = उस ही समय, आनन्दभेरिकां = आनन्दभेरी को, अकारयत् = बजवाया, च = और, सः = उस, महामतिः = महामति ने, निर्घोषं = उद्घोष को, (च = और), संघपूजां = संघों की पूजा को, विधाय = करके, दृढभक्त्या = सुदृढ भक्ति से, शिखरिणः = शिखर की, यात्रां = यात्रा को, चक्रे = किया ।

श्लोकार्थ - हे राजन्! तुम इसी पर्याय में निश्चित ही मोक्ष जाओगे । मुनि के यह वचन सुनकर नन्दिषेण राजा ने उसी समय आनन्दभेरी बजवा दी, तथा उसने उद्घोषणा करके एवं संघों की पूजा करके सुदृढ भक्ति भाव से शिखर की यात्रा की ।

तत्र गत्वा सङ्कुलाख्यं ववन्दे कूटमुत्तमम् ।

पश्चादिगम्बरो भूत्वा कोटिभव्यैः समन्वितः ॥७८॥

दीक्षितोऽयं दग्धकर्मा तपसा मुक्तिमाप सः ।

कोट्युत्तप्रोषधानां यत्फलं प्रोक्तं मुनीश्वरैः ॥७९॥

अनायासात्तमेन्मर्त्यः तत्फलं सङ्कुलेक्षणात् ।

वन्दनात् सर्वकूटानां फलं हि कोऽनुवर्ण्यत ॥८०॥

अन्वयार्थ - तत्र = वहाँ अर्थात् सम्मेद पर्वत पर, गत्वा = जाकर, संकुलाख्यं = संकुल नामक, उत्तमं = श्रेष्ठ, कूटं = कूट को, ववन्दे = प्रणाम किया, पश्चात् = फिर, अयं = यह राजा, कोटिभव्यैः = एक करोड़ भव्यों के, समन्वितः = साथ, दिगम्बरः = दिगम्बर=नग्न, भूत्वा = होकर, दीक्षितः = दीक्षित हुआ, तपसा = तपश्चरण से, दग्धकर्मा = कर्मों को नष्ट करने

वाले, सः = उसने, मुक्तिं = मोक्ष को, आप = प्राप्त कर लिया।

मुनीश्वरैः = केवलज्ञानियों द्वारा, कोट्युक्तप्रोषधानां = एक करोड़ प्रोषधोपवासों का, यत्फलं = जो फल, प्रोक्तं = कहा गया है, तत्फलं = उस फल को, मर्त्यः = मनुष्य, संकुलेक्षणात् = संकुल कूट के दर्शन से, अनायासात् = बिना किसी प्रयास के, लभेत् = प्राप्त कर लेवे, सर्वकूटानां = सारी कूटों की, वन्दनात् = वन्दना करने से, (यत् = जो) फलं = फल है, (तत् = उस फल को), कः = कौन, अनुवर्ण्यत = वर्णित करे।

श्लोकार्थ — राजा ने सम्मेदशिखर पर्वत पर जाकर संकुल नामक उस श्रेष्ठ कूट को प्रणाम किया। फिर यह राजा एक करोड़ भव्यों के साथ नग्न दिगम्बर होकर दीक्षित हुआ तथा तपश्चरण से सारे कर्मों को दग्ध करने वाले उसने मुक्ति प्राप्त कर ली। एक करोड़ प्रोषधोपवासों का जो फल मुनिराजों ने कहा है उस फल को संकुलकूट के दर्शन से मनुष्य अनायास ही प्राप्त कर लेता है। तो सम्पूर्ण कूटों की वन्दना से प्राप्त होने वाले फल का वर्णन कौन कर सके?

श्रेयान् यतः परमदुस्सहतीव्रतेजः।

सूक्ष्मप्रदग्धनिखिलायतकर्मबन्धः॥

मोक्षं जगाम बहुभव्यशिवं प्रदाता।

श्रेयस्करो भवतु मे सततं स कूटः॥८१॥

अन्वयार्थ — परमदुस्सहतीव्रतेजः = अत्यधिक दुस्सह अर्थात् कठोर या उग्र तपश्चरण से तीव्र हो गया है तेज जिनका ऐसे वह, सूक्ष्मप्रदग्धनिखिलायतकर्मबन्धः = सूक्ष्म ध्यान से जला दिया है सम्पूर्ण व्याप्त कर्म बन्ध को जिन्होंने ऐसे वह, श्रेयान् = श्रेयांसनाथ, यतः = जिस सङ्कुल कूट से, मोक्षं = मोक्ष को, जगाम = गये, बहुभव्यशिवं = अनेक भव्य जीवों के लिये मोक्ष को, प्रदाता = देने वाला, सः = वह, कूटः = कूट, मे = मुझे, सततं = सदा, श्रेयस्करः = कल्याण करने वाला, भवतु = होवे।

श्लोकार्थ — अत्यधिक कठोर तपश्चरण व्रत का परिपालन करने से जिनका तेज अर्थात् प्रभामण्डल बढ़ गया है और जिन्होंने सूक्ष्म ध्यान से सम्पूर्ण कर्मबन्ध समूह को दग्ध कर दिया है ऐसे श्रेयांसनाथ भगवान् जिस कूट से मोक्ष गये, वह कूट जो अनेक भव्य जीवों को मोक्ष का प्रदाता है, मुझे भी निरन्तर कल्याणकारक अर्थात् श्रेयस्कर होवे।

[इति दीक्षितब्रह्मदत्तविरचिते सम्मेदशैलमाहात्म्ये तीर्थङ्कर
श्रेयोनाथवृत्तान्तसमन्वितं संकुलकूटवर्णनं नाम
एकदशमोऽध्यायः समाप्तिङ्गतः।]

{इस प्रकार दीक्षित ब्रह्मदत्त रचित सम्मेदशिखर माहात्म्य नामक काव्य में तीर्थङ्कर श्रेयांसनाथ के वृत्तान्त से पूर्ण संकुलकूट का वर्णन करने वाला ग्यारहवां अध्याय समाप्त हुआ।}

अथ द्वादशोऽध्यायः

विमलो ज्ञानसम्पन्नो विमलो विमलद्युतिः ।

नाम्ना विमलनाथो नः कुरुताद्विमलं मनः ॥१॥

अन्वयार्थ — विमलः = विमलनाथ, ज्ञानसम्पन्नः = ज्ञान से समृद्ध सम्पन्न हैं, विमलः = विमलनाथ, विमलद्युतिः = विमल अर्थात् स्वच्छ धवल कान्ति वाले हैं, नाम्ना = नाम से, (अपि = भी), विमलनाथः = विमलनाथ, नः = हमारे, मनः = मन को, विमलं = निर्मल अर्थात् राग-द्वेष से रहित, कुरुतात् = करें।

श्लोकार्थ — विमलनाथ तीर्थङ्कर केवलज्ञान से सम्पन्न हैं तथा विमल अर्थात् स्वच्छ धवल कान्ति से सुशोभित हैं ऐसे नाम से भी विमलनाथ जी हमारे मन को विमल कर दें।

धन्यो जिनस्त्वं विमलो धन्योऽसौ जैनधार्मिकः ।

धन्य इक्ष्वाकुवंशश्च धन्या सा कम्पिलापुरी ॥२॥

अन्वयार्थ — विमलः = विमलनाथ, जिनः = जिनेन्द्र, त्वं = तुम, धन्यः = धन्य, (असि = हो), असौ = वह, जैनधार्मिकः = जैनधर्म का पालन करने वाला, धन्यः = धन्य, (अस्ति = है), इक्ष्वाकुवंशः = इक्ष्वाकुवंश, धन्यः = धन्य, (अस्ति = है), च = और, कम्पिलापुरी = कम्पिलानगरी नामक, सा = वह नगरी, धन्या = धन्य, (अस्ति = है)।

श्लोकार्थ — हे विमलनाथ जिनेन्द्र! तुम धन्य हो, वह जैनधार्मिक इक्ष्वाकुवंश और कम्पिलानगरी भी धन्य है।

यद्वागादर्शमध्येऽत्र भासते निखिलं जगत् ।

तस्मै विमलनाथाय प्रणामो मे त्रिकालतः ॥३॥

अन्वयार्थ — अत्र = इस भारत भूमण्डल पर, यद्वागादर्शमध्ये = जिनके वचन रूपी दर्पण में, निखिलं = सम्पूर्ण, जगत् = संसार, भासते = प्रतिमासित होता है, तस्मै = उन, विमलनाथाय =

विमलनाथ के लिये, मे = मेरा, त्रिकालतः = तीनों काल की अपेक्षा से, प्रणामः = प्रणाम है।

श्लोकार्थ — इस भारत भूमण्डल पर जिनके वचन रूपी दर्पण में सारा जगत् प्रतिभासित होता है उन विमलनाथ प्रभु के लिये मेरा त्रिकाल वन्दना की अपेक्षा से अथवा हर समय नमस्कार है।

प्रसिद्धे धातकीखण्डे मेरौ दीप्तेऽथ पश्चिमे ।
 तत्पश्चिमे विदेहाख्यं क्षेत्रं परममुत्तमम् ॥४॥
 सरित्त्रास्ति सीतोदा पवित्रतरवारिभृत् ।
 तदभागे दक्षिणे भाति महारम्येन पत्तनम् ॥५॥
 पुरे तत्राभवद्राजा महानगरेऽतिनाम्नि ।
 पद्मसेनः स भिक्षूणां गीर्वाणतरुसन्निभिः ॥६॥
 स्वपूर्वजन्मसुकृतैः स्वमहिष्या समं प्रभुः ।
 शक्रवद् बुभुजे स्वीयं राज्यं निहतकण्डकम् ॥७॥

अन्वयार्थ — अथ = अनन्तर, प्रसिद्धे = सुप्रसिद्ध, धातकीखण्डे = धातकीखण्ड द्वीप में, दीप्ते = कान्तिपूर्ण, पश्चिमे = पश्चिम, मेरौ = सुमेरु पर्वत पर, तत्पश्चिमे = उसके पश्चिम में, परं = उत्कृष्ट, उत्तमं = उत्तम, विदेहाख्यं = विदेह नामक, क्षेत्रं = क्षेत्र, (अस्ति = है), तत्र = पश्चिम विदेह में, पवित्रतरवारिभृत् = पवित्र जल से भरी, सीतोदा = सीतोदा, सरित् = नदी, (अस्ति = है) तदभागे दक्षिणे = उस नदी के दक्षिण में, महारम्या इव = अत्यधिक रमणीय के समान, पत्तनम् = एक नगर (आसीत् = था), तत्र = उस महानगरेति = महानगर इस, नाम्नि = नामक, पुरे = नगर में, पद्मसेनः = पद्मसेन नामक, राजा = राजा, अभवत् = हुआ था, भिक्षूणां = भिक्षुओं के लिये, गीर्वाणतरुसन्निभिः = देववृक्ष अर्थात् कल्पवृक्ष के समान, सः = उस, प्रभुः = राजा ने, स्वपूर्वजन्मसुकृतैः = अपने पूर्वजन्म के पुण्यों के कारण, स्वमहिष्या = अपनी रानी के, समं = साथ, स्वीयं = अपने, निहतकण्डकम् = कण्टक रहित, राज्यं = राज्य को, शक्रवत् = इन्द्र के समान, बुभुजे = पालन किया।

श्लोकार्थ — सुप्रसिद्ध धातकीखण्ड द्वीप में कान्तिपूर्ण पश्चिम मेरु पर्वत पर उत्तम और सुन्दर पश्चिम विंदह क्षेत्र है जहाँ पवित्र जल से पूर्ण सीतोदा नदी है उस नदी के दक्षिण में अत्यधिक रमणीय एक नगर है उस महानगर नामक नगर में पद्मसेन राजा रहता था वह राजा भिक्षुओं के लिये देवदारु कल्पवृक्ष के समान था उसने अपने पूर्वोपार्जित शुभ कर्मों के कारण अपने कण्टकविहीन राज्य का पालन अपनी रानी के साथ वैसे ही किया जैसे इन्द्र अपने राज्य का पालन करता है।

एकरिमन्समये पीताम्बरं धृत्वा वने शुभे ।
बहुभिर्मुनिभिस्सार्धं पद्मसेनः समाययौ ॥८॥
श्रुत्वा तं मुनिशार्दूलं समायातं महाप्रभुं ।
तद्वन्दनार्थं भूपालः प्रत्यगात्स जनैः समम् ॥९॥

अन्वयार्थ — एकरिम्न = एक, समये = समय में, पद्मसेनः = पद्मसेन राजा, पीताम्बरं = पीले वस्त्र को, धृत्वा = धारण कर, शुभे = सुन्दर, वने = वन में, समाययौ = गया, बहुभिः = अनेक, मुनिभिः = मुनियों के, सार्धं = साथ, मुनिशार्दूलं = मुनि श्रेष्ठ, तं = उन, महाप्रभुं = महाप्रभु को, समायातं = आया हुआ, श्रुत्वा सुनकर, तद्वन्दनार्थं = उनकी वन्दना करने के लिये, स = वह, भूपालः = राजा, जनैः = लोगों के, समं = साथ, प्रत्यगात् = गया।

श्लोकार्थ — एक समय राजा पद्मसेन पीले वस्त्र पहिनकर एक सुन्दर वन में गया। उस वन में मुनिश्रेष्ठ महाप्रभु को आया हुआ सुनकर उनकी वन्दना करने के लिये वह लोगों के साथ वहां गया।

तत्र गत्वा भिवन्द्यैनं चतुर्वर्गा कथां शुभाम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाप्तिप्रयत्नवरगर्भिताम् ॥१०॥
श्रुत्वैषः सत्सकाद्धि भवनिर्विण्णमानसः ।
जैर्नी दीक्षां समुत्सह्य राज्ये पुत्रं नियोज्य च ॥११॥
अगृहीच्छ्रद्धयाङ्गानि धृत्वैकादश धैर्यवान् ।
अखिलाः जैनशास्त्रोक्ताः भावयामास भावनाः ॥१२॥

अन्वयार्थ - तत्र = वहाँ, गत्वा = जाकर, एनं = इन मुनिराज को, अभिवन्द्य = नमस्कार करके, धर्मार्थकाममोक्षाप्ति-प्रयत्नवरगर्भितां = धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति के लिये श्रेष्ठ प्रयत्न से गर्भित, चतुर्वर्गा = चतुर्वर्ग की, शुभां = शुभ, कथां = कथा को, श्रुत्वा = सुनकर, भवनिर्विण्णमानसः = संसार से विरक्त मन वाले, एषः = इस राजा ने, राज्ये = राज्य में, पुत्रं = पुत्र को, नियोज्य = नियुक्त करके, च = और, समुत्सह्य = अच्छी तरह से उत्साहित होकर, (तस्य = उन मुनिराज के), सकाशात् = पास से, हि = ही, जैनीं = जैनेश्वरी, दीक्षां = दीक्षा को, अग्रहीत् = ग्रहण कर लिया, धैर्यवान् = धैर्य सम्पन्न उन मुनिराज ने, एकादश = ग्यारह, अङ्गानि = अङ्गों को, धृत्वा = धारण कर, श्रद्धया = श्रद्धा से, जैनशास्त्रोक्ताः = जैन आगम में कही गयीं, अखिलाः = सारी, भावनाः = भावनाओं को, भाषयान्तरं = गाया।

श्लोकार्थ - वन में जाकर वहाँ मुनिराज को प्रणाम करके, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के प्रयत्न को बताने वाली शुभ कथा को सुनकर संसार से विरक्त मन उस राजा ने अपने पुत्र को राज्य में नियुक्त करके और अच्छी तरह से उत्साहित होकर उन मुनिराज के पास से ही जैनेश्वरी दीक्षा को ग्रहण कर लिया तथा धैर्य से पूर्ण उत्तम मुनिराज ने ग्यारह अङ्गों को धारण कर श्रद्धा से शास्त्रों में प्रतिपादित सारी भावनाओं को भाया अर्थात् उनका चिन्तन किया।

बद्ध्वा स तीर्थकृद्गोत्रमन्ते सन्यासरीतितः ।

तपोनिधिस्तनुं त्यक्त्वा तपस्सुकृतसञ्चयात् ॥१३॥

सहस्रारे सुकल्पे स अहमिन्द्रो हि बभूव च ।

अष्टादशसहस्रोक्तवर्षोपरि स मानसम् ॥१४॥

आहारमगृहीदष्टादशपक्षोपरि ध्रुवम् ।

अश्वसच्छान्वभूत्तत्र दिव्योद्भवसुखं परम् ॥१५॥

अन्वयार्थ - सः = उन, तपोनिधिः = तपस्वी मुनिराज ने, तीर्थकृत् = तीर्थङ्कर नामक, गोत्रं = उत्तम पुण्य को, बद्ध्वा = बांधकर,

अन्त्ये = आयु के अन्त में, सन्यासरीतिः = सन्यास मरण की रीति से, तनुं = शरीर को, त्यक्त्वा = छोड़कर, तपःसुकृतसंचयात् = तपश्चरण से किये गये पुण्य बंध से, सः = वह, सहस्रार = सहस्रार नामक, सुकल्पे = उत्तम विमान में, अहमिन्द्रः = अहमिन्द्र, बभूव = हो गया सः = वह, हि = ही, अष्टादशसहस्रोक्तवर्षोपरि = अठारह हजार वर्षों बाद, मानसं = 'मनोभिलषित' अमृत स्वरूप, आहारं = भोजन को, अगृहीत् = ग्रहण करता था, च = और, अष्टादशपक्षोपरि = अठारह पक्ष बीतने पर, अश्वसत् = सांस लेता था, तत्र = वहाँ, ध्रुवं = स्थायी अर्थात् अधिक काल तक रहने वाले, परम् = उत्कृष्ट, दिव्योद्भवसुखं = दिव्यता से उत्पन्न सुख को, सान्वभूत् = अनुभूत किया।

श्लोकार्थ — उन तपस्वी मुनिराज ने तीर्थङ्कर नामक महापुण्य को बांधकर तथा आयु के अन्त में सन्यास मरण की रीति से शरीर छोड़कर तपश्चरण से कमाये गये पुण्योदय से वह सहस्रारस्वर्ग में अहमिन्द्र देव हुये। वहाँ वह अठारह हजार वर्षों के निकल जाने पर एक बार मानस आहार अर्थात् अमृत पान करते थे तथा अठारह पक्ष के बाद सांस लेते थे। वहाँ उन्होंने अधिक काल तक स्थायी रहने वाले उत्कृष्ट दिव्य सुखों का उपभोग किया।

सर्वकार्यक्षमो देवः स्वावधेश्च प्रमाणतः ।

सिद्धस्मरणकृत्तत्र सिद्धबिम्बसमर्चकः ॥१६॥

अन्वयार्थ — तत्र = उस स्वर्ग में, सिद्धस्मरणकृत् = सिद्धों का स्मरण करने वाला, च = और, सिद्धबिम्बसमर्चकः = सिद्धबिम्बों की अर्चना करता हुआ, देवः = वह देव, स्वावधेः प्रमाणतः = अपने अवधिज्ञान के प्रमाण से, सर्वकार्यक्षमः = सारे कार्यों को करने में समर्थ, (अभूत् = हुआ)।

श्लोकार्थ — उस स्वर्ग में सिद्धों का स्मरण करने वाला और सिद्ध भगवन्तो की पूजन में रत वह देव अपने अवधिज्ञान के प्रमाण से सारे कार्यों को करने में समर्थ हुआ।

आसीत्तत्र सुखेनासौ षण्मासावधिजीवनः ।

तस्यावतारचरितं श्रवणात् कल्मषापहम् ॥१७॥

वक्ष्ये संक्षेपरीत्याहं शृणुध्वं पुरुषोत्तमाः ।

जम्बूनाम्नि महाद्वीपे भरतक्षेत्रे उत्तमे ॥१८॥

विद्युत्तरेव सा शुभ्रा काम्पिलाख्या महापुरी ।

कृतवर्मा महीपालः तां स्नेहात् पर्यपालयत् ॥१९॥

अन्वयार्थ — तत्र = उस स्वर्ग में, सुखेन = सुख से, असौ = वह, षण्मासावधिजीवनः = छह माह शेष आयु वाला, अभूत् = हुआ, श्रवणात् = सुनने से, कल्मषापहं = कल्मष अर्थात् पाप को दूर करने वाले, तस्य = उस देव के, अवतारचरितं = स्वर्ग से च्युत होने के वृत्तान्त को, संक्षेपरीत्या = संक्षेप रीति से, अहं = मैं, वक्ष्ये = कहता हूं, पुरुषोत्तमाः = हे पुरुषोत्तमो!, शृणुध्वं = तुम उसे सुनो।

जम्बूनाम्नि = जम्बू नामक, महाद्वीपे = महाद्वीप में, उत्तमे = उत्तम, भरतक्षेत्रे = भरत क्षेत्र में, विद्युत्तरेव = बिजली की चमक के समान, शुभ्रा = शुभ्र - श्वेत, सा = वह, महापुरी = महानगरी, काम्पिलाख्या = काम्पिला नाम वाली, आसीत् = थी, महीपालः = राजा, कृतवर्मा = कृतवर्मा, तां = उसका, स्नेहात् = स्नेह से, पर्यपालयत् = परिपालन करता था।

श्लोकार्थ — उस स्वर्ग में सुख से आयु पूर्ण करता हुआ वह छह माह की शेष आयु वाला हुआ। कवि कहता है कि मैं उसके अवतार की कथा को कहता हूं। हे श्रेष्ठ पुरुषों! तुम उसे सुनो यह कथा सुनने से पापों का नाश होता है। जम्बूद्वीप के उत्तम भरतक्षेत्र में धवलकान्ति से पूर्ण अत्यधि शुभ एक महानगरी थी वह काम्पिला के नाम से जानी जाती थी। कृतवर्मा राजा प्रेम से उसका परिपालन किया करता था।

जयश्यामाभिधा तस्य राज्ञी लोकेतिविश्रुता ।

भविष्यत्यवतारो वै तस्य देवस्य निर्मलम् ॥२०॥

बुद्ध्या धनेशं तत्रासौ सौधर्मेन्द्रस्समादिशत् ।

इन्द्राज्ञप्तस्स यक्षेन्द्रः क्षितीशागर उत्तमे ॥२१॥

षाण्मासिकीं रत्नवृष्टिं चकार प्रमदोदगमात् ।
 ज्येष्ठकृष्णदशम्यां सा जयश्यामा नृपप्रिया ॥२२॥
 प्रसुप्तहर्मुखे स्वप्नान् षोडशैक्षत् तान् शुभान् ।
 स्वप्नान्ते सिन्धुरं वक्त्रे प्रविशन्तं मदोद्धतम् ॥२३॥
 संवीक्ष्योन्मील्य नयने प्रबुद्धाथ समुत्थिता ।
 मुखं प्रक्षाल्य विधिवत्सुगन्धितजलेन सा ॥२४॥
 पत्युस्समीपमगमत्तान् स्वप्नान् सम्प्रभाषितुम् ।
 आगच्छ सादरं तेनेत्युक्ता तत्रोपविश्य सा ॥२५॥
 स्वप्नान्निवेद्य चापृच्छत् फलं तेषां सुविस्मिता ।
 श्रुतस्वप्नो महीपालः सुखाश्रुकलितेक्षणः ॥२६॥
 देवीं ग्राह क्षुण्ण प्राप्ते! तत्र गर्भे लग्नव्रतिः ।
 नूनं समागतस्तेन सत्पुत्रा त्वं भविष्यसि ॥२७॥

अन्वयार्थ - तस्य = उस राजा की, जयश्यामामिधा = जयश्यामा नाम की, लोके = लोक में, अतिविश्रुता = अत्यधिक प्रसिद्ध, राज्ञी = रानी: (आसीत् = थी), तत्र = उस रानी के गर्भ में, तस्य = उस, देवस्य = अहमिन्द्र का, अवतारः = अवतरण, भविष्यति = होगा, (इति = ऐसा), वै = निश्चय से, बुद्ध्या = जानकर, असौ = उस, सौधर्मेन्द्रः = सौधर्म इन्द्र ने, धनेशं = कुबेर को, समादिशत् = आदेश दिया, इन्द्राज्ञप्तः = इन्द्र से आज्ञा प्राप्त, सः = उस, यक्षेन्द्रः = यक्षों के स्वामी कुबेर ने, उत्तमे = उत्तम, क्षितीशागारे = राजा के घर में, प्रमदोदगमात् = हर्ष के उदगम से, षाण्मासिकीं = छह महिने तक होने वाली, रत्नवृष्टिं = रत्नों की वर्षा को, चकार = किया, ज्येष्ठकृष्णदशम्यां = जेठ बदी दशमी के दिन, नृपप्रिया = राजा की रानी, सा = उस, जयश्यामा = जयश्यामा ने, प्रसुप्ता = सोते हुये, अर्हमुखे = प्रमातबेला में, षोडश = सोलह, तान् = उन, शुभान् = शुभ, स्वप्नान् = स्वप्नों को, ऐक्षत् = देखा, स्वप्नान्ते = स्वप्न देखने के अन्त में, वक्त्रे = अपने मुख में, प्रविशन्तं = प्रवेश करते हुये, मदोद्धतम् =

मदोन्मत्त, सिन्धुरं = हाथी को, संवीक्ष्य = देखकर, नयने = दोनों नेत्रों को, उन्मील्य = खोलकर, प्रबुद्धा = जाग गयी, अथ = तथा फिर, समुत्थिता = उठी हुयी, सा = वह, सुगन्धितजलेन = सुगन्धितजल से, विधिवत् = विधिपूर्वक, मुखं = मुख को, प्रक्षाल्य = धोकर, तान् = उन, स्वप्नान् = स्वप्नों को, संप्रभाषितुं = कहने के लिये, पत्युः = पति के, समीप = पास में, अगमत् = गयी, तेन = पति द्वारा, सादरं = आदर सहित, आगच्छ = आओ, इति = इस प्रकार, उक्ता = कही गयी, सा = वह रानी, तत्र = वहाँ, उपविश्य = बैठकर, च = और, स्वप्नान् = स्वप्नों को, निवेद्य = निवेदित करके, सुविस्मिता = आश्चर्य से भरी हुयी, तेषां = उनका, फलं = फल, अपृच्छत् = पूछा, सुखाश्रुकलितेक्षणः = सुख के कारण से निकले हैं आँसू जिसके ऐसे नेत्रों वाले, श्रुतस्वप्नः = स्वप्नों को सुनने वाले, महीपालः = उस राजा ने, देवी = रानी को, प्राह = कहा, प्राज्ञे! = हे बुद्धिमते!, शृणु = सुनो, तव = तुम्हारे, गर्भे = गर्भ में, नूनं = निश्चित ही, जगत्पतिः = जगत् के स्वामी तीर्थङ्कर, समागतः = आ गये हैं, तेन = उस पुत्र के होने से, त्वं = तुम, सत्पुत्रा = सार्थक पुत्र वाली माता, भविष्यसि = हो जाओगी।

श्लोकार्थ — उस राजा की लोक में अत्यधिक प्रसिद्ध जयश्यामा नाम की रानी थी। उस रानी के गर्भ में उस अहमिन्द्र का अवतार होगा — ऐसा जानकर सौधर्म इन्द्र ने कुबेर को आदेश दिया। इन्द्र के आदेश से उस यक्षपति कुबेर ने हर्षपूर्वक राजा के उत्तम घर में छह माह तक रत्नों की बरसात की। जेठ बदी दशमी के दिन उस जयश्यामा नामक राजा की रानी ने सोते हुये प्रभातबेला में सोलह शुभ स्वप्नों को देखा तथा स्वप्न दर्शन के अन्त में अपने मुख में प्रविष्ट होते हुये एक मदोन्मत्त हाथी को देखकर व अपने दोनों नेत्रों को खोलकर जाग गयी फिर उठकर सुगन्धित जल से अपने मुख को धोकर वह राजा के पास गयी। राजा द्वारा आदर सहित आओ ऐसा कही गयी वह वहीं बैठ गयी और आश्चर्य सहित उन स्वप्नों को पति

से कहकर उनके फल पूछने लगी। स्वप्नों को सुनकर राजा भी हर्ष के कारण साश्रुजल मुख वाला हो गया और रानी से बोला हे सौभाग्यशालिनी बुद्धिमते! निश्चित ही तुम्हारे गर्भ में तीर्थङ्कर आ गये हैं। जिसको जन्म देने से तुम सार्धक पुत्र वाली माता हो जाओगी।

श्रुत्वेति हृदि सा लेभे सुखं यद्वागगोचरम् ।

गर्भा गतेन सा देवी प्रभुणामानृपालये ॥२८॥

मुक्तिमूर्तिमतीवैवं परमानन्दगर्भिता ।

अथ माघ चतुर्दश्यां शुक्लायां उत्तरादिभे ॥२९॥

राज्ञः प्रसूतिभवने देव्यां देवोऽभ्यजायत ।

सर्वागमैर्गता कीर्तिस्त्रिज्ञानसहितः प्रभुः ॥३०॥

अन्वयार्थ - इति = ऐसा, श्रुत्वा = सुनकर, सा = उस रानी ने, हृदि = मन में, यत् = जो, सुखं = सुख, लेभे = पाया, (तत् = वह) वागगोचरं = वाणी से अगोचर, (अस्ति = है), गर्भागतेन = गर्भ में आये, प्रभुणा = प्रभु के द्वारा, सा = वह, देवी = रानी, नृपालये = राजा के महल में, मूर्तिमती मुक्ति इव = मूर्तिमती मुक्ति के समान, एवं = और, परमानन्दगर्भिता = परम आनन्द को अपने में समेटे हुयी, अभात् = सुशोभित हुई।

अथ = इसके बाद, माघचतुर्दश्यां = माघ मास की चतुर्दशी के दिन, शुक्लायां = शुक्लपक्ष में, उत्तरादिभे = उत्तराषाढ नक्षत्र में, राज्ञः = राजा के, प्रसूतिभवने = प्रसूतिभवन में, देव्यां = देवी की कोख में, देवः = भगवान्, अभ्यजायत = पैदा हुये, प्रभुः = भगवान्, सर्वागमैः = सारे शास्त्रों से, गताकीर्तिः = जानी गयी है कीर्ति जिनकी ऐसे, च = और, त्रिज्ञानसहितः = तीन ज्ञान के धारी, (आसीत् = थे)।

श्लोकार्थ - स्वप्नों का फल सुनकर उस रानी ने अपने मन में वाणी से न कहा जा सकने योग्य सुख को प्राप्त किया। गर्भ में आगत प्रभु के कारण वह रानी राजा के महल में मूर्तिस्वरूप मुक्ति के समान परम आनन्द को अपने में समेटे हुयी सुशोभित हुई।

इसके बाद माघ शुक्ला चतुर्दशी के दिन उत्तराषाढा नक्षत्र में, राजा के प्रसूतिगृह में देवी की कोख में, भगवान् का जन्म हुआ। वह प्रभु तीन ज्ञान के धारी और शास्त्रों से जिनकी कीर्ति जानी गयी थी ऐसे थे।

देव्यामाधृत ईशानः प्राच्यामिव दिवाकरः ।
 तदागत्य सुरेशानः तं देवं देवतार्चितम् ॥३१॥
 स्वाङ्गैः कृत्वा गतो मेरुं स्वर्देवो जयघोषयन् ।
 तत्र क्षीरोदवारिभिः प्रपूर्णैर्हमकुम्भकैः ॥३२॥
 देयमस्नापयदभक्त्या दिव्यगन्धोदकैस्ततः ।
 आयुत्याभरणैर्दिव्यैरथ तं बालमीश्वरम् ॥३३॥
 काम्पिलामगमद् भूपः पुरुहूतः स सामरः ।
 नृपाङ्गणे दिव्यपीठे समारोप्य जगत्पतिम् ॥३४॥
 नत्वा सम्पूज्य तस्याग्रे देवेन्द्रस्ताण्डवं व्यधात् ।
 सर्वार्थविमलत्वात्तद्विमलाख्यां विधाय सः ॥३५॥
 मातुरङ्के प्रभुं कृत्वा गतोऽसौ देवतालयम् ।
 मुक्तिंगते वासुपूज्ये त्रिंशत्सागरोपरि ॥३६॥
 तदभ्यन्तरजीवी स विमलोऽभान्नृपालये ।
 षष्टिचापमितोत्सेधः षष्टिलक्षाब्दजीवनः ॥३७॥
 जाम्बूनदप्रभः श्रीमान् विविधैर्बालचेष्टितैः ।
 पितरौ मोदयामास भाग्यसिन्धुर्जगत्प्रभुः ॥३८॥

अन्वयार्थ — देव्याम् = रानी में, आधृतः = धारण किये हुये, ईशानः = प्रभु, प्राच्यां = पूर्व दिशा में, दिवाकरः इव = सूर्य के समान, (रराज = सुशोभित हुये), तदा = तभी, स्वर्देवः = स्वर्ग के देव, सुरेशानः = इन्द्र, आगत्य = आकर, देवतार्चितम् = देवताओं द्वारा पूज्य, तं = उन, देवं = प्रभु को, स्वाङ्गैः कृत्वा = अपनी गोद में लेकर, जयघोषयन् = जयकार की घोषणा करता हुआ, मेरुं = मेरु पर, आगतः = आ गया, तत्र = वहाँ, क्षीरोदवारिभिः = क्षीरसागर के जल, दिव्यगन्धोदकैः =

दिव्यगन्धयुक्तं जल से, प्रपूर्णेः = भरे हुये, हेमकुम्भकैः = स्वर्णकलशों से, देवं = तीर्थङ्कर शिशु का, अस्नापयत् = स्नान अभिषेक किया, ततः = उसके बाद, भक्त्या = भक्तिभाव से, तामराः = देवताओं सहित, सः = वह, पुरुहूतः = इन्द्र, दिव्यैः = देवों पुनीत, आभरणैः = वस्त्राभूषणों से, तं = उन, बालं = शिशु, ईश्वरं = तीर्थङ्कर को, आवृत्य = अलङ्कृत करके, कम्पिलाम् = कम्पिला नगरी को, अगमत् = चला गया, अथ = फिर, नृपाङ्गणे = राजा के आंगन में, दिव्यपीठे = दिव्यपीठ पर, जगत्पतिं = जगत् के स्वामी प्रभु को, समारोप्य = विराजमान कर, नत्वा = उन्हें प्रणाम कर, संपूज्य = उनकी पूजा करके, सः = उस, देवेन्द्रः = देवेन्द्र ने, तस्य = उन प्रभु के, अग्रे = सामने, ताण्डवं = ताण्डव नृत्य को, व्यधात् = किया, (च = और) सर्वार्थविमलत्वात् = सारे अर्थों में निर्मलता होने से, विमलाख्यां = विमल नाम को, विधाय = करके, मातुः = माता की, अङ्के = गोद में, प्रभुं = प्रभु को, कृत्वा = करके, असौ = वह इन्द्र, देवालयं = स्वर्ग को, गतः = चला गया।

वासुपूज्ये = तीर्थङ्कर वासुपूज्य के, मुक्तिंगते = मोक्ष चले जाने पर, त्रिंशत्सागरोपरि = तेतीस सागर बीतने पर, तदभ्यन्तरजीवी = उसी काल में जिनका जीवन अन्तर्हित है, सः = वह, विमलः = विमलनाथ, नृपालये = राजा के महल में, अभात् = सुशोभित हुये।

षष्टिचापमितोत्सेधः = साठ धनुष प्रमाण ऊँची देह वाले, षष्टिलक्षाब्दजीवनः = साठ लाख वर्ष जीवन वाले, जाम्बूनवप्रभः = स्वर्णकान्ति से पूर्ण, भाग्यसिन्धुः = सौभाग्य के सागर, श्रीमान् = शोभा सम्पन्न पूज्यनीय, जगत्प्रभुः = जगत् के स्वामी विमलनाथ ने, विविधैः = अनेक, बालचेष्टितैः = बालोचित केलियों से, पितरौ = माता-मिता को, मोदयामास = प्रसन्न किया।

श्लोकार्थ — रानी की गोद में धारण किये हुये प्रभु वैसे ही सुशोभित हुये जैसे प्राची में सूर्य सुशोभित रहता है।

उसी समय स्वर्ग का देव इन्द्र वहाँ आकर भगवान् को अपनी गोद में बिठाकर जय घोष करता हुआ मेरु पर्वत पर आ गया वहाँ उसने क्षीर सागर के दिव्य सुगंधित जल से परिपूर्ण स्वर्ण कलशों से बाल तीर्थङ्कर का अभिषेक किया फिर कान्तिभाव से देवताओं सहित वह इन्द्र उन्हें दिव्य वस्त्राभूषणों से अलङ्कृत करके कम्पिला नगरी आ गया। वहाँ राजा के आँगन में देवोपनीत सिंहासन पर बाल प्रभु को स्थापित करके उन्हें प्रणाम करके, उनकी पूजा करके उनके सामने इन्द्र ने ताण्डव नृत्य किया तथा सभी अर्थों में विमलता के कारण उनका नामकरण विमलनाथ करके फिर माता की गोद में बालक को सौंपकर वह स्वर्ग चला गया।

तीर्थङ्कर वासुपूज्य के मोक्ष जाने के बाद तेतीस सागर के काल में जिनका जीवन भी शामिल है ऐसे विमलनाथ राजा के महल में सुशोभित हुये। इनके शरीर की ऊँचाई साठ धनुष प्रमाण तथा आयु साठ लाख वर्ष की थी। स्वर्ण के समान कान्तिमान्, सौभाग्य के सागर, श्री शोभा से पूर्ण पूज्यनीय जगत्प्रभु विमलनाथ ने अपनी अनेक बालकीड़ाओं से माता-पिता को प्रसन्न किया।

कुमारकालकं पञ्चदशलक्षोक्तवत्सरान् ।
 व्यतीयुरस्याथ तनोः प्राप्ते तारुण्य उत्तमे ॥२६॥
 कृतवर्मा ददावस्मै राज्यं राज्यभरालसः ।
 राजसिंहासने देवो देवभानवसेवितः ॥४०॥
 शशास पृथिवीं कृत्स्नां निर्विपक्षां स नीतिमान् ।
 सम्यक्त्वराज्यभोगं च विचित्रैः वस्त्ररत्नकः ॥४१॥

अन्वयार्थ — पञ्चदशलक्षोक्तवत्सरान् = पन्द्रह लाख वर्ष पर्यन्त, अस्य = इनका, कुमारकालकं = कुमारकाल, व्यतीयुः = व्यतीत हुआ, अथ = फिर, तनोः = शरीर की, उत्तमे = उत्तम, तारुण्ये = तरुण अवस्था, प्राप्ते = प्राप्त होने पर, कृतवर्मा = कृतवर्मा राजा ने, अस्मै = कुमार के लिये, राज्यं = राज्य को, ददौ = दे दिया, राज्यसिंहासने = राज्य सिंहासन पर,

राज्यभरालसः = राज्य के भार सहित, देवमानवसहितः = देवों और मानवों से पूजित सेवित होते हुये, विचित्रैः = अनेक प्रकार से, वस्त्ररत्नकः = रत्नजडित वस्त्रों को धारण किये, सः = उन, नीतिमान = न्याय और नीति को समझने वाला, देवः = राजा विमलनाथ ने, निर्विपक्षां = शत्रुओं से रहित, कृत्सनां = सारी, पृथिवीं = पृथ्वी को, च = और, सम्यक्त्वरज्य भोगं = सम्यक्त्व के साथ राज्य के भोग को, शशास = शासन किया।

श्लोकार्थ - पन्द्रह लाख वर्ष तक का इनका कुमारकाल व्यतीत हुआ, तब शरीर की तरुणावस्था आने पर राजा कृतवर्मा ने इन्हें राज्य दे दिया। राज्यसिंहासन पर राज्य भार से युक्त होकर देवों और मनुष्यों से सेवा पूजा किये जाते हुये तथा रत्नखचित विविध वस्त्रों को धारण किये हुये नीति - न्याय के जानकार उन विमलनाथ राजा ने शत्रुविहीन सम्पूर्ण पृथ्वी का शासन किया तथा सम्यक्त्व के साथ राज्य सम्पदा का भोग किया।

तुषारपटलं वीक्ष्य विरक्तस्तत्क्षणादभूत् ।
 दृष्टनष्टहिमानीव दृष्टनष्टमिदं जगत् ॥४२॥
 विचार्य मोक्षसंसिद्धयै विरक्तो देहभोगतः ।
 तदा लौकान्तिकाः देवाः स्वमागत्य जगत्पतिम् ॥४३॥
 प्रशस्य विविधैर्वाक्यैः मुदमापुस्तदीक्षणात् ।
 सदेवः देवराजोऽपि प्रभोरन्तिकमागतः ॥४४॥

अन्वयार्थ - (एकदा = एक दिन), तुषारपटलं = हिमपटल को, वीक्ष्य = देखकर, तत्क्षणात् = उसी क्षण, विरक्तः = वैराग्यभाव को प्राप्त, अभूत् = हो गया, दृष्टनष्टहिमानीव = दिखाई देकर अर्थात् प्रत्यक्ष नष्ट होते हिम खण्डों के समान, इदं = यह, जगत् = संसार, दृष्टनष्टम् = दिखकर नष्ट होने वाला, (अस्ति = है), (इति = ऐसा), विचार्य = विचार करके, मोक्षसंसिद्धयै = मोक्ष की सिद्धि करने के लिये, देहभोगतः = शरीर और विषय भोगों से, विरक्तः = विरक्त, (अभूत् = हुआ), तदा = तभी, लौकान्तिकाः = लौकान्तिक, देवाः =

देव, स्वमागत्य = स्वयं आकर, जगत्पतिं = जगत् के स्वामी की, प्रशस्य = प्रशंसा करके, विविधैः = अनेकविध, वाक्यैः = वचनों से, मुदं = प्रसन्नता या हर्ष को, आपुः = प्राप्त किया, दीक्षणात् = वह जानकर, संदेहः = देवों के साथ, देवराजः = देवराज इन्द्र, अपि = भी, प्रभुः = प्रभु के, अन्तिकम् = समीप में, आगतः = आ गया।

श्लोकार्थ - एक दिन हिमपटलों को देखकर वह उसी समय विरक्त हो गया, प्रत्यक्ष नष्ट होते हुये हिम खण्डों के समान यह जगत् भी प्रत्यक्ष नष्ट है —ऐसा विचारकर देह और भोगों से विरक्त हुआ। उसी समय लौकान्तिक देवों ने स्वयं आकर जगत् के स्वामी की प्रशंसा की और अनेक प्रकार से वचन बोलकर हर्ष को प्राप्त हुये। यह जानकर देवों सहित इन्द्र भी वहाँ प्रभु के निकट आ गया।

उच्चरञ्जयनिर्घोषं प्रचन्द्य विमलं प्रभुं ।
 देवोपनीतां शिविकां देवदत्ताभिधां ततः ॥४५॥
 समारूढ्य जगदबन्धुः सहेतुकवनं ययौ ।
 माघशुक्लचतुर्थ्यां स जन्मर्क्षे क्षितिनायकैः ॥४६॥
 सहस्रसंमितैस्सार्धं विधिवद्दीक्षितोऽभवत् ।
 अन्तर्मुहूर्ते तत्रैव चतुर्थज्ञानभागभूत् ॥४७॥
 द्वितीयेऽह्नि स भिक्षायै नन्दनपुरमभ्यगात् ।
 तं समागतमालोक्य जयाख्यो नृपसत्तमः ॥४८॥
 आहारमस्मै पंचासौ तत्त्वाश्चर्याण्यवाप च ।
 त्रिवर्षमौनमास्थाय ततः स मुनिराट् प्रभुः ॥४९॥
 महाघोरतपस्तेपे विविक्तासनसंस्थितः ।
 घातिकर्मक्षयान्माघशुक्लषष्ठ्यां महाप्रभुः ॥५०॥
 जम्बूवृक्षतले सोऽभूत् केवलावगमी तदा ।
 ततः समवसारेऽसौ चकादिसुरनिर्मिते ॥५१॥
 विभ्राजमानप्रभया हि तरुणार्क इवावभौ ।
 ततः मन्दरसेनाद्या यथासंख्या प्रमाणिताः ॥५२॥

तदा द्वादशकोष्ठेषु स्थिता देवार्चने रताः ।
 सादरं भव्यकैः पृष्टः तत्त्वाजिज्ञासुभिः प्रभुः ॥५३॥
 चक्रे दिव्यध्वनिं मोहध्यान्तक्षपणकोविदम् ।
 हर्षयस्तेन भव्यौघान् पुण्यक्षेत्रेष्वसौ विभुः ॥५४॥
 विजहार महानन्दसिन्धुर्भव्यजनसमर्चितः ।
 एकमासप्रमाणं स्वभायुस्सम्बुध्य भव्यराट् ॥५५॥
 सं हृत्य दिव्यनिर्घोषं सम्मेदाचलमाययौ
 महामोहजयी देव शुक्लध्यानपरायणः ॥५६॥
 वीरसङ्कुलकूटात् स सहस्रमुनिसंयुतः ।
 आषाढविशदाष्टम्यां निर्वाणपदमाप्तवान् ॥५७॥

अन्वयार्थ - जयनिर्घोषं = जयकार की घोषणा करते हुये, विमलप्रभुं = विमलनाथ प्रभु को, प्रबन्ध = प्रणाम करके, ततः = उसके बाद, जगद्बन्धुः = जगत् के स्वामी राजा विमलप्रभु, देवोपनीतां = देवों के द्वारा लायी गयी, देवदत्ताभिधां = देवदत्त नाम वाली, शिविकां = पालकी पर, समारूढ्य = चढ़कर, सहेतुकवनं = सहेतुक वन को, ययौ = चले गये, माघशुक्लचतुर्थ्यां = माघशुक्ला चतुर्थी को, जन्मक्षेत्रे = जन्म नक्षत्र में, सः = वह, सहस्रसंमितैः = एक हजार परिमित, क्षितिनायकैः = राजाओं के, सार्ध = साथ, विधिबद्ध = विधि के अनुसार, दीक्षितः = दीक्षा को धारण करने वाले, अभूत् = हुये, तत्रैव = वहाँ ही, अन्तर्मुहूर्ते = अन्तर्मुहूर्त में, चतुर्थज्ञानभाक् = चौथे मनःपर्ययज्ञान के भागी, अभूत् = हुये, द्वितीये = दूसरे, अह्नि = दिन, सः = वह मुनिराज, भिक्षायै = भिक्षा के लिये, नन्दनं = नन्दन, पुरं = नगर को, अभ्यगात् = गये, तं = उन मुनिराज को, समागतं = आया हुआ, आलोक्य = देखकर जयाख्यः = जय नामक, नृपसत्तमः = श्रेष्ठ राजा ने, अस्मै = इन मुनिराज के लिये, आहारं = भोजन, दत्त्वा = देकर, पंच = पांच, आश्चर्याणि = आश्चर्य, अवाप = प्राप्त किये, च = और, सः = उन, मुनिराट् = मुनिराज, प्रभुः = तीर्थङ्ककर प्रभु ने, विविक्तासनसंस्थितः = एकान्त में

आसनस्थ होते हुये, त्रिवर्षमौनम् = तीन वर्ष तक मौन,
 आस्थाय = लेकर, महाघोरतपः = अत्युग्र तपश्चरण को, तेपे
 = तपा, तदा = तभी, माघशुक्लषष्ठ्यां = माघशुक्ला षष्ठी
 के दिन, घातिकर्मक्षयात् = घाति कर्मों का क्षय हो जाने से,
 सः = वह, महाप्रभुः = तीर्थङ्कर मुनिराज, जम्बूवृक्षतले =
 जम्बूवृक्ष के नीचे, केवलावगमी = केवलज्ञानी, अभूत् = हो
 गये, ततः = उसके बाद, असौ = वह केवलज्ञानी भगवान्,
 चक्रादिसुरनिर्मिते = चक्र आदि सम्पदा के स्वामी इन्द्र द्वारा
 रचित समवसारे = समवसरण में विभ्राजमानपभया = अपनी
 सुशोभित प्रभा से, तरुणार्क = युवा सूर्य के, इव = समान,
 आबभौ = पूर्णतया सुशोभित हुये, ततः = आगे, देवार्चने =
 देव की पूजा में, रताः = लगे हुये, यथासङ्ख्याप्रमाणिताः =
 जैसी संख्या प्रमाणित है वैसे, मन्दिर, सेनाद्या = मन्दिरसेन
 आदि गणधर वगैरह, द्वादशकोष्ठेषु = बारह कोठों में, स्थिताः
 = स्थित हुये, तत्त्वात् = तत्त्वतः अर्थात् यथार्थ रूप से,
 जिज्ञासुभिः = जिज्ञासु, भव्यकैः = भव्यजनों द्वारा, सादरं =
 आदर सहित, पृष्टः = पूछे गये, प्रभुः = केवलज्ञानी प्रभु ने,
 मोहध्वान्तक्षपणकोविदं = मोह को नष्ट करने में कुशल,
 दिव्यध्वनिं = दिव्यध्वनि को, चक्रे = किया, तेन = उस दिव्य
 वनि से, भव्यौघान् = भव्य जीवों के समूह को, हर्षयन् =
 प्रसन्न करते हुये, असौ = वह, प्रभुः = केवलज्ञानी, पुण्यक्षेत्रेषु
 = पुण्यक्षेत्रों में, विजहार = विहार किया, भव्यजनार्चितः =
 भव्यजनों द्वारा पूजित, महानन्दसिन्धुः = महा आनन्द के
 सागर, भव्यराट् = भव्य सम्राट् प्रभु, एकमासप्रमाणं = एक
 माह प्रमाण मात्र, स्वं = अपनी, आयुः = आयु को, सम्बुध्य
 = जानकर, दिव्यनिर्घोषं = दिव्यध्वनि को, संहृत्य = रोककर
 या बंद करके, सम्मेदाचलं = सम्मेदशिखर पर्वत को, आययौ
 = आ गये, सहस्रमुनिसंयुतः = एक हजार मुनियों से युक्त,
 महामोहजयी = महामोह को जीतने वाला, शुक्लध्यान-
 परायणः = शुक्लध्यान में लगे हुये, सः = उन, देवः = भगवान्
 ने, वीरसंकुलकूटात् = वीरसंकुलकूट से, आषाढविशदाष्टम्यां

= आषाढशुक्ल अष्टमी के दिन, निर्वाणपदम् = मोक्षपद को, आप्तवान् = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ - तभी जयकार करता हुआ इन्द्र वहाँ आया और विमलनाथ प्रभु को प्रणाम करके उपस्थित हो गया। उसके बाद जगत् के हितकारी बन्धु वह राजा देवों द्वारा लायी गयी देवदत्त नाम वाली पालकी में चढ़कर सहेतुक बन में चले गये और माघशुक्ला चतुर्थी को जन्म नक्षत्र में उन राजा ने एक हजार राजाओं के साथ नियम पूर्वक मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली वहाँ ही उन्हें अन्तर्मुहूर्त में चौथा मनःपर्ययज्ञान हो गया। दूसरे दिन वह मुनिगन्त भिक्षा के लिये नन्दन पुर गये। उन मुनिराज को आया हुआ देखकर जय नामक श्रेष्ठ राजा ने इन मुनिराज के लिये आहार देकर पांच आश्चर्य प्राप्त किये। उसके बाद वह मुनिराज प्रभु ने तीन वर्ष तक का मौन व्रत लेकर एकान्त में आसनस्थ होते हुये कठिन तपश्चरण किया। तपश्चरण करने पर सभी घातिकर्मों का क्षय हो जाने पर वह माघशुक्लाषष्ठी को जम्बूवृक्ष के नीचे केवलज्ञानी हो गये। केवलज्ञान हो जाने के बाद वह प्रभु इन्द्रादि द्वारा रचित समवसरण में अपनी उज्ज्वल प्रभा से युवा सूर्य के समान सुशोभित हुये। उनकी पूजा में लगे हुये प्रमाणोक्त संख्या में मन्दरसेन आदि गणधर और अन्य मुनिजन, देवता, मनुष्य आदि अपने-अपने बारहों कोठों में स्थित हो गये। तभी यथार्थ रूप से जिज्ञासु भव्यजीवों द्वारा पूछे गये भगवान् ने दिव्यध्वनि को किया। इस प्रकार दिव्यध्वनि से भव्यजीवों के समूह को हर्षित करते हुये उन्होंने अनेक पुण्य क्षेत्रों में विहार किया। अन्त में जब भव्यजनों से पूजित होते हुये महानन्द के सिन्धु भव्यजीवों के सम्राट् भगवान् ने अपनी वर्तमान आयु एक माह शेष जान ली तो वे दिव्यध्वनि रोककर सम्मेदशिखर पर्वत पर आ गये। वहाँ वीर संकुलकूट से एक हजार मुनियों से युक्त, मोह के विजेता और शुक्लध्यान में संलग्न उन प्रभु ने आषाढ शुक्ला अष्टमी को निर्वाण पद प्राप्त कर लिया।

तत्पश्चात् सप्ततिः प्रोक्तः कोट्यः षष्ट्युत्तलक्षकाः ।

षट्सहस्राणि सप्तैव शतानि कथितानि च ॥५८॥

द्विचत्वारिंशदित्युक्ता भव्या कूटाक्षतः शुभात् ।

सुबन्धुमुनयः प्राप्तास्तपसा दग्धकल्मषाः ॥५९॥

केवलज्ञानसम्पन्ना घातिकर्मक्षयात्परम् ।

ततः सुप्रभनाम्ना वै संघभक्तिः कृता कृता ॥६०॥

अन्वयार्थ -- तत्पश्चात् = तीर्थङ्कर विमलनाथ के मोक्ष जाने के बाद, सप्ततिः कोट्यः = सात करोड़, षष्ट्युत्तलक्षकाः = साठ लाख, षट्सहस्राणि = छह हजार, सप्त शतानि = सात सौ, कथितानि = कहे गये, च = और, द्विचत्वारिंशत् = बयालीस, इति = इस प्रकार, उक्ताः = कहे गये, तपसा = तप से, दग्धकल्मषाः = पापों या कर्मों को नष्ट करने वाले, भव्याः = भव्य, सुबन्धुमुनयः = सुबन्धु मुनिराजों ने, घातिकर्मक्षयात् = घातिकर्म का क्षय होने से, केवलज्ञानसम्पन्ना = केवलज्ञान से सम्पन्न होते हुये, परं = उत्कृष्ट मोक्ष पद को, प्राप्ताः = प्राप्त हुये ।

ततः = उसके बाद, सुप्रभनाम्ना = सुप्रभ नामक, (नृपेण = राजा द्वारा), संघभक्तिः = संघों की भक्ति, कृता = की गयी, (तथा = तथा), कृता = सम्मेदशिखर की यात्रा भी की ।

श्लोकार्थ -- तीर्थङ्कर विमलनाथ के मोक्ष जाने के बाद सात करोड़ साठ लाख छह हजार सात सौ बयालीस की संख्या में कहे गये भव्य व तप से कर्मों को दग्ध करने वाले सुबन्धु मुनिराजों ने घातिकर्म का क्षय होने से केवलज्ञान से सम्पन्न होते हुये परम पद निर्वाण को प्राप्त कर लिया ।

आगे सुप्रभ नामक राजा ने संघ भक्ति की तथा सम्मेदशिखर की यात्रा की ।

यात्रा सम्मेदशैलस्यानन्तशक्तिरभूदसौ ।

तत्कथां कर्णसुखदां श्रवणात्पातकापहाम् ॥६१॥

वक्ष्येऽहं निर्मलश्लोकैः शृणुध्वं निर्मला जनाः ।
जम्बूद्वीपेऽत्र पूर्वस्मिन् विदेहे प्रथिता नदी ॥६२॥
सीताख्या तत्र देशोऽस्ति कच्छनामर्द्धिमो महान् ।
मनोरमा पुरी तत्र नाम्ना या विप्रकावती ॥६३॥

अन्वयार्थ - सम्मेदशैलस्य = सम्मेदशिखर पर्वत की, यात्रा = यात्रा, (कृता = की), असौ = वह राजा, अनन्तशक्तिः = अनन्तशक्ति सम्पन्न, अभूत् = हो गया, श्रवणात् = सुनने से, पातकापहाम् = पापों को नष्ट करने वाली, कर्णसुखदां = कानों को सुख देने वाली, तत्कथां = उस राजा की कथा को, अहं = मैं कवि, निर्मलश्लोकैः = निर्दोष श्लोकों से, वक्ष्ये = कहता हूँ, निर्मला जनाः = निर्मल मन वाले लोगों!, शृणुध्वं = तुम उसे सुनो, अत्र = इस, जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, पूर्वस्मिन् = पूर्व, विदेहे = विदेह क्षेत्र में, सीताख्या = सीता नामक, नदी = नदी, प्रथिता = प्रसिद्ध है, तत्र = वहाँ, कच्छनाम = कच्छ नामक, ऋद्धिमः = ऋद्धि से पूर्ण, महान् = विशाल, देशः = देश, अस्ति = है, तत्र = उस देश में, मनोरमा = मनोहर -रमणीय, पुरी = एक नगरी, (अस्ति = है), या = जो, नाम्ना = नाम से, विप्रकावती = विप्रकावती, प्रोक्ता = कही गयी है।

श्लोकार्थ - सुप्रभ राजा ने सम्मेदशिखर की यात्रा की और वह अनन्तशक्ति युक्त हो गया। उस राजा की कथा, जिसके सुनने से पाप मिटते हैं और जो कानों को सुख देने वाली है, निर्मलश्लोकों से मैं उसे कहता हूँ है निर्मलचित्त वाले मनुष्यों तुम उसे सुनो - जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में सीता नामक एक सुप्रसिद्ध नदी है। वहाँ पर ही ऋद्धि से पूर्ण एक कच्छ नामक विशाल देश है। उस देश में विप्रकावती नामक मनोहर व रमणीय एक नगरी है।

तस्यां वैश्रवणो राजा बभूव सुकृती महान् ।
विजयन्ती तस्य राज्ञी शोभिता स्वीयसद्गुणैः ॥६४॥

रूपशीलवती तद्वत् महागुणवतीप्यभूत् ।
 राजा विजयसेनाख्य एकदा केनचित्तदा ॥६५॥
 हेतुना तं प्रति क्रोधात् प्राप्तो वैश्रवणं नृपम् ।
 तेन वैश्रवणः सार्धं संयुध्य सह सेनया ॥६६॥
 पराजयं गतः क्रोधात्तप्तो दीक्षां समग्रहीत् ।
 आयुष्यान्ते तनुं त्यक्त्वा चतुर्थं स्वर्गमेव सः ॥६७॥
 सम्प्राप्य देवतारूपः तत्रास्थात् स्वकृताच्छुभात् ।
 तस्माच्छ्रुतो मालवाख्ये सुदशेऽवन्तिकापुरे ॥६८॥
 रुद्रदत्तोऽभवद्राजा बलवान् मतिमांस्तथा ।
 सुधर्माख्या तस्य राज्ञी च द्विसंयोगतस्तदा ॥६९॥
 पुत्रः सुप्रभनामासीत् कान्त्या शशिसमप्रभः ।
 सुरूपवान् शीलवांश्च ज्ञानवांस्तेजसन्निधिः ॥७०॥

अन्वयार्थ -- तस्यां = उस विप्रकावती नगरी में, वैश्रवणः = वैश्रवण नामक,
 सुकृती = पुण्यात्मा, महान् = महान्, राजा = राजा, बभूव
 = हुआ था, तस्य = उस राजा की, विजयन्ती = विजयन्ती
 नामक, स्वीयसद्गुणैः = अपने अच्छे गुणों के कारण, शोभिता
 = सुशोभित, रूपशीलवती = रूपवती व शीलवती, (च =
 और), तद्वत् = उसके समान, महागुणवती = अत्यधिक गुणों
 की स्वामिनी, अपि = भी, अभूत् = थी, एकदा = एक बार,
 विजयसेनाख्यः = विजयसेन नामक राजा, केनचित् = किसी,
 हेतुना = कारण से, तं = उस, वैश्रवणं = वैश्रवण, नृपं =
 राजा के, प्रति = प्रति, क्रोधात् = क्रोध से, प्राप्तः = भर गया,
 सेनया = सेना के, सह = साथ, वैश्रवणः = वैश्रवण राजा,
 तेन = उस विजयसेन राजा के, सह = साथ, संयुध्य = युद्ध
 करके, पराजयं = पराजय को, गतः = प्राप्त हो गया, क्रोधात्
 = क्रोध से, तप्तः = खेद खिन्न होकर दुखी हुये, सः = उस
 राजा ने, दीक्षां = दीक्षा को, समग्रहीत् = ग्रहण कर लिया,
 स्वकृतात् = स्वयं द्वारा किये गये शुभात् = शुभ कर्म से,
 आयुष्यान्ते = आयु के अन्त में, तनुं = शरीर को, त्यक्त्वा

= छोड़कर, चतुर्थ = चौथे, एव = ही, स्वर्ग = स्वर्ग को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, देवतारूपः = देव होकर, तत्र = वहीं, अस्थात् = रहा, तस्मात् = उस स्वर्ग से, च्युतः = च्युत हुआ, (सः = वह देव), मालवाख्ये = मालवा नामक, सुदेशे = सुन्दर देश में, अवन्तिकापुरे = अवन्तिका पुर में, रुद्रदत्तः = रुद्रदत्त नामक, बलवान् = बलशाली, तथा = और, मतिमान् = बुद्धिमान्, राजा = राजा, अभवत् = हुआ था, च = और, तस्य = उसके, सुधर्माख्या = सुधर्मा नामक, राज्ञी = रानी, आसीत् = थी, तदा = तब, द्विसंयोगतः = दोनों के संयोग से, सुरूपवान् = सुन्दर, शीलवान् = चरित्रवान्, तेजसन्निधिः = प्रतापपुञ्ज, ज्ञानवान् = ज्ञानी, च = और, कान्त्या = कान्ति से, शशिसमप्रभः = चन्द्रमा के समान आभा वाला, सुप्रभनामा = सुप्रभ नामक, पुत्रः = पुत्र, आसीत् = हुआ था।

श्लोकार्थ - उस विप्रकावती नगरी में वैश्रवण नामक एक पुण्यात्मा व महान् राजा हुआ उसकी रानी विजयन्ती अपने गुणों से सुशोभित होती हुई सौन्दर्यशालिनी, शीलवती और महान् गुणों की खान थी।

एक बार विजयसेन नामक राजा किसी कारण से वैश्रवण राजा के प्रति क्रोध से भर गया और वहाँ सेना सहित लड़ने आ गया। वैश्रवण अपनी सेना सहित उसके साथ युद्ध करके पराजित हो गया तथा क्रोध से खेदखिन्न होकर उसने मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली। अपने शुभ कर्मों के कारण उसने आयु के अन्त में शरीर छोड़कर चौथे स्वर्ग में देव पर्याय प्राप्त कर ली और वहीं सुख से रहने लगा। वहाँ से च्युत होकर मालव नामक सुन्दर देश की अवन्तिका पुरी में बलवान् और बुद्धिमान् राजा रुद्रदत्त तथा सुधर्मा नामक रानी के संयोग से उनके यहाँ सुन्दर, चरित्रनिष्ठ, प्रतापी, ज्ञानी और कान्ति में चन्द्रमा के समान प्रभा वाला पुत्र हुआ।

तपस्वी गुणगंभीरः साहसी वीरवन्दितः ।
धैर्यवानेकदा भूपः सुप्रभो मुनिमागतम् ॥७१॥

सुधर्माख्यं निशम्याथ गतस्तद्वन्दनाय सः ।

अभिवन्द्य स्तुतिं कृत्वा पपृच्छ च मुनिसत्तमम् ॥७२॥

क्व गामिनो मुनीशान भव्याः संसारिणस्तथा ।

अचिरं मोक्षसंल्लब्धिः कथं वद महामुने ॥७३॥

अन्वयार्थ — एकदा = एक दिन, सः = वह, तपस्वी = तपस्वी, गुणगंभीरः = गुणों के कारण गंभीर, साहसी, वीरवन्दितः = वीरों द्वारा वन्दनीय, धैर्यवान् = धैर्यशील, भूपः = राजा, सुप्रभः = सुप्रभ, आगतं = आये हुये, सुधर्माख्यं = सुधर्म नामक, मुनिं = मुनिराज को, निशम्य = सुनकर, तद्वन्दनाय = उनकी वन्दना के लिये, गतः = गया, अथ = उसके बाद, मुनिसत्तमं = मुनिवर्य को, अभिवन्द्य = प्रणाम करके, च = और, स्तुतिं कृत्वा = उनकी स्तुति करके, पपृच्छ = पूछा, मुनीशानः = हे मुनीश!, संसारिणः = संसारी, भव्याः = भव्य जीव, क्व = कहाँ, गामिनः = जाने वाले, (भवन्ति = होते हैं), तथा = और, महामुने = हे महामुनि, वद = कहिये, अचिरं = शीघ्र, मोक्षसंल्लब्धिः = मोक्ष की प्राप्ति, कथं = कैसे, (भवति = होती है) ।

श्लोकार्थ — एक दिन वह तपस्वी, गुणगंभीर, साहसी, प्रतापी, वीरों द्वारा पूज्य, धैर्यशील राजा सुप्रभ नगर में मुनिराज सुधर्म आये हैं — ऐसा सुनकर उनकी वन्दना के लिये गया । वहाँ पहुँच कर उसने उनको प्रणाम करके और उनकी स्तुति करके पूछा — हे मुनीश! संसारी भव्य जीव कहाँ जाने वाले होते हैं? तथा हे महान् महात्मा! मुझे बताइये जल्दी ही मोक्ष की प्राप्ति कैसे होती है?

तच्छ्रुत्वा मुनिराहैनं शृणु भूपतिसत्तम ।

संसारिणोऽत्र ये जीवास्ते वै गतिचतुष्टये ॥७४॥

भव्या मोक्षपदं नूनं प्राप्नुवन्ति न संशयः ।

सम्पेदगिरियात्रातः सत्थरं मुक्तिराप्यते ॥७५॥

अन्वयार्थ — तच्छ्रुत्वा = राजा की बात सुनकर, मुनिः = मुनिराज ने, एनं = इस राजा को, आह = कहा, भूपतिसत्तम = हे श्रेष्ठ राजन्!,

शृणु = सुनो, ये = जो, जीवाः = जीव, गतिचतुष्टये = चार गतियों में अर्थात् मनुष्य, देव, तिर्यञ्च और नरक इन चारों अवस्थाओं में, (वर्तते = रहते हैं), ते = वे, संसारिणः = संसारी जीव, (भवन्ति = होते हैं), अत्र = इनमें, भव्याः = भव्यजीव, नूनं = निश्चित ही, मोक्षपदं = मोक्षपद को, प्राप्नुवन्ति = प्राप्त करते हैं, (इति = इसमें), संशयः = सन्देह, न = नहीं है, सम्मेदगिरियात्रातः = सम्मेदशिखर की यात्रा करने से, सत्वरं = जल्दी ही, मुक्तिः = मोक्ष लक्ष्मी, आप्यते = प्राप्त की जाती है।

श्लोकार्थ — राजा की बात सुनकर मुनिराज उससे बोले — हे राजन्! सुनो, जो जीव चतुर्गति में वास करते हैं वे संसारी जीव हैं उन जीवों में जो भव्य हैं वे अवश्य ही मोक्षपद को प्राप्त कर लेते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है। सम्मेदशिखर की यात्रा करने से जल्दी ही मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त कर ली जाती है।

सुगमं मुक्तिमार्गं च इति ज्ञात्वा जहर्ष सः ।
 एकार्बुदं चतुरशीतिकोटिसंस्मितजीवकैः ॥७६॥
 सहितः संघभवत्तोऽसौ सम्मेदगिरिमभ्यगात् ।
 तत्राभ्यवन्दत नृपः तत्कूटं वीरसंकुलम् ॥७७॥
 संपूज्यविधिवद् भक्त्या जैर्नी जग्राह दीक्षिकाम् ।
 एकार्बुदनवप्रोक्तैः कोटिभक्त्यैः समं गतः ॥७८॥
 शास्त्रोक्तविधिना घोरं तपः कृत्वाऽष्टकर्मणाम् ।
 नाशं कृत्वा हि कूटात्ते सानन्दं मुक्तिमाप्नुवन् ॥७९॥

अन्वयार्थ — च = और, इति = इस प्रकार, सः = वह सुप्रभ राजा, मुक्तिमार्गं = मुक्ति के मार्ग को, सुगमं = सुगम, ज्ञात्वा = जानकर, जहर्ष = हर्षित हुआ, संघभक्तः = मुनि-आर्यिका आदि संघों की गति में तत्पर, असौ = वह, एकार्बुदं = एक अरब, चतुरशीतिकोटिसंस्मितजीवकैः = चौरासी करोड़ प्रसन्नचित्त जीवों के, सहितः = साथ, सम्मेदगिरिम् = सम्मेदशिखरपर्वत को, अभ्यगात् = गया, तत्र = वहाँ, नृपः

= राजा ने, वीरसंकुलं = वीर संकुल नाम, तत्कूटं = उस पर्वत की कूट को, अभ्यवन्दत = प्रणाम किया, भक्त्या = भक्ति से, संपूज्य = उसे पूजकर, विधिवत् = नियमपूर्वक, जैनीं = जैनेश्वरी, दीक्षिकां = मुनिदीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया।

एकार्बुदनवप्रोक्तैः = एक अरब नौ, कोटिभव्यैः = करोड़ भव्यों के, समं = साथ, शास्त्रोक्तविधिना = शास्त्र में कहे उपाय से, घोरं = उग्र - कठिन, तपः = तपश्चरण को, कृत्वा = करके, अष्टकर्मणां = आठों कर्मों का, नाशं = विनाश, कृत्वा = करके, कूटात् = इस कूट से, मुक्तिं = मोक्ष को, गतः = चला गया, ते = वे मुनिराज, सानन्दं = आनन्द सहित, मुक्तिं = मुक्ति को, आप्नुवन् = प्राप्त हो गये।

श्लोकार्थ — इस प्रकार वह सुप्रग राजा मुक्तिमार्ग को सुगम जानकर प्रसन्न हुआ। मुनि आर्यिका संघ की भक्ति से पूर्ण वह एक अरब चौरासी करोड़ भव्य जीवों के साथ सम्पेदशिखर पर्वत पर गया। वहाँ उसने वीरसङ्कुल नामक कूट को प्रणाम किया भक्ति से उसकी पूजा की और उसने नियमपूर्वक एक अरब नौ करोड़ भव्य जीवों के साथ जैनेश्वरी दीक्षा को ग्रहण कर लिया। फिर शास्त्रों में कथित उपाय से कठिन तपश्चरण करके और आठों कर्मों का नाश करके इस कूट से मोक्ष चला गया। वे मुनिराज भी आनन्द सहित मुक्ति को प्राप्त हुये।

यतो गतः श्री विमलेश्वरः शिवम् ।

तदन्विता वै बहवश्शिवालयम् ॥

सुभक्तिमुक्तिप्रदमर्चनाद् ध्रुवम् ।

नमामि कूटं किल वीरसङ्कुलम् ॥८०॥

अन्वयार्थ — यतः = जिस कूट से, श्रीविमलेश्वरः = श्री विमलनाथ प्रभु, शिवं = मोक्ष को, गतः = गये, (च = और), बहवः = बहुत सारे, तदन्विताः = उनका अनुसरण करने वाले मुनिराज, वै = निश्चित ही, शिवालयं = सिद्धालय को, (गताः = चले गये), अर्चनात् = पूजन से, ध्रुवं = नियम से, सुभक्तिमुक्तिप्रदं =

सच्ची भाक्ति करने वालों को मुक्तिप्रद, वीरसंकुल = वीरसंकुल नामक, कूट = कूट को, दिज = दृढ़ता से, नमामि = मैं नमस्कार करता हूँ।

श्लोकार्थ — जिस कूट से तीर्थङ्कर श्री विमलनाथ प्रभु मोक्ष को गये तथा उनका अनुसरण कर बहुत सारे भव्य जीव मुनिजन मोक्ष को प्राप्त हुये तो जो नियम से अर्चना करने से सद्भक्तों को मुक्ति देने वाली है उस वीर संकुल नामक कूट को मैं नमस्कार करता हूँ।

[इति श्रीदीक्षितब्रह्मनेमिदत्तविरचिते सम्मोदशिखरमाहात्म्ये
तीर्थङ्करविमलनाथवृत्तान्तसमन्वितं वीरसंकुलकूटवर्णनं
नाम द्वादशमोऽध्यायः समाप्तः।]

{इस प्रकार श्री दीक्षित ब्रह्मनेमिदत्त द्वारा लिखित सम्मोदशिखर
माहात्म्य नामक काव्य में तीर्थङ्कर विमलनाथ के वृत्तान्त
से पूर्ण वीरसंकुल नामक कूट का वर्णन करने
वाला बारहवां अध्याय समाप्त हुआ।}

अथ त्रयोदशमोऽध्यायः

अनन्तगुणसम्पन्नमनन्तज्ञानसागरम् ।

अनन्तसुखभोक्तारमनन्तजिनमाश्रये ॥१॥

अन्वयार्थ - (अहं = मैं कवि), अनन्तगुणसम्पन्नं = अनन्त गुणों से पूर्ण, अनन्तज्ञानसागरम् = अनन्तज्ञान रूपी सागर, अनन्तसुखभोक्तारं = अनन्तसुख के भोक्ता, अनन्तजिनम् = अनन्तनाथ तीर्थङ्कर का, आश्रये = आश्रय लेता हूँ।

श्लोकार्थ - मैं कवि अनन्त गुणों के स्वामी, अनन्तज्ञान के सागर और अनन्तसुख को भोगने वाले अनन्तनाथ तीर्थङ्कर की शरण में जाता हूँ।

स्वयंभूनामकूटाद्यो गतः सिद्धालयं प्रभुः ।

तत्कथापूर्वकं तस्य कूटं स्तोष्ये यथामतिः ॥२॥

अन्वयार्थ - यः = जो, प्रभुः = भगवान्, स्वयंभूनामकूटात् = स्वयंभू नामक कूट से, सिद्धालय को गये, तत्कथापूर्वकं = उन प्रभु की कथा पूर्वक, तस्य = उस सम्मेशिखर की, कूटं = कूट की, यथामतिः = जितनी बुद्धि है, तथा = वैसा, अहं = मैं, स्तोष्ये = स्तुति करता हूँ।

श्लोकार्थ - जिस स्वयंभू कूट से जो प्रभु सिद्धालय को चले गये उन प्रभु की कथा पूर्वक मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सम्मेशिखर की कूट की स्तुति करता हूँ।

प्रसिद्धे धातकीखण्डे पूर्वमेरौ महान् किल ।

दुर्गदेशोऽस्ति विख्यातः तत्रारिष्टपुरं महत् ॥३॥

अन्वयार्थ - प्रसिद्धे = विख्यात, धातकीखण्डे = धातकीखण्ड द्वीप में, पूर्वमेरौ = पूर्वमेरु पर्वत पर, दुर्गदेशः = दुर्ग नामक देश, महान् = विशाल, विख्यातः = सुप्रसिद्ध, अस्ति किल = था, तत्र = उस देश में, महत् = बड़ा, अरिष्टपुरं = अरिष्टपुर नामक नगर, आसीत् = था।

श्लोकार्थ - सुप्रसिद्ध धातकीखण्ड द्वीप में पूर्व मेरु पर्वत पर स्थित एक महान् दुर्ग देश था। उसमें अरिष्टपुर नामक विशाल नगर था।

तस्य पद्मरथो राजा गुणज्ञो गुणवान् स्वयं ।

महाप्रतापवानासीदनेकनृपसंस्तुतः ॥४॥

पूर्वजन्मोद्भवैः पुण्यैः राज्यं प्राप्य महानृपः ।

अकरोत् राज्यभोगं स देवेन्द्रसमवैभवम् ॥५॥

अन्वयार्थ - तस्य = उस अरिष्टपुर का, पद्मरथः = पद्मरथ नामक, राजा = राजा, गुणज्ञः = गुणों का जानकार, स्वयं = स्वयं, गुणवान् = गुणों का स्वामी, अनेकनृपसंस्तुतः = अनेक राजाओं द्वारा संस्तुत, महाप्रतापवान् = अत्यधिक पराक्रमी, आसीत् = था। सः = उस, महानृपः = महान् राजा ने, पूर्वजन्मोद्भवैः = पूर्वजन्म में अर्जित, पुण्यैः = पुण्यों से, देवेन्द्रसमवैभवं = देवेन्द्र के समान वैभव वाले, राज्यं = राज्य को, प्राप्य = प्राप्त करके, राज्यभोगं = राज्य का भोग, अकरोत् = किया।

श्लोकार्थ - अरिष्टपुर नगर का राजा पद्मरथ महान् पराक्रमी, अनेक राजाओं से पूजित होता हुआ गुणों का जानकार एवं खुद भी गुणवान् था। अपने पूर्वजन्म में अर्जित पुण्य कर्म के कारण उसने देवेन्द्र के वैभव से समानता रखने वाले राज्य को प्राप्त करके उसका भोग किया।

एकस्मिन्समये प्राप्तसतीर्थकर्तृस्वयंप्रभं ।

अभिवन्द्यार्च्यं तं राजा यतिधर्मान् स पृष्ठवान् ॥६॥

अन्वयार्थ - एकस्मिन् = एक, समये = समय, सः = उस, राजा = राजा ने, तीर्थकर्तृस्वयंप्रभं = तीर्थङ्कर स्वयंप्रभ को, प्राप्तः = प्राप्त, (मूत्वा = होकर), तं = उनको, अभिवन्द्य = प्रणाम करके, आर्च्यं = पूजकर, यतिधर्मान् = मुनिधर्मों को, पृष्ठवान् = पूछा।

श्लोकार्थ - एक समय तीर्थङ्कर स्वयंप्रभ के सामीप्य को प्राप्त करके

उस राजा ने उन्हें प्रणाम किया उनकी पूजा की और मुनिधर्म को पूछा ।

श्रुत्वा तन्मुखचन्द्राच्च यतिधर्मान् सुनिर्मलान् ।

मिथ्यात्ववर्जितो राजा विरक्तस्सम्बभूव सः ॥७॥

अन्वयार्थ - च = और, तन्मुखचन्द्रात् = उन तीर्थङ्कर स्वयंप्रभ के मुख कमल से, सुनिर्मलान् = सुनिर्मल, यतिधर्मान् = मुनि के धर्मों को, श्रुत्वा = सुनकर, मिथ्यात्ववर्जितः = मिथ्यात्व से रहित, सः = वह, राजा = राजा, विरक्तः = वैराग्य भाव को प्राप्त, सम्बभूव = हो गया ।

श्लोकार्थ - तीर्थङ्कर स्वयंप्रभ के मुख से मुनिधर्म के निर्मल स्वरूप को सुनकर वह पद्मरथ नामक सम्यग्दृष्टि राजा विरक्त हो गया ।

तदा घनरथायासौ राज्यं दत्त्वात्मपुत्राय ।

वनं गत्वा तपोदीक्षां जग्राह परमार्थवित् ॥८॥

अन्वयार्थ - तदा = तब अर्थात् विरक्त होने पर, असौ = उस, परमार्थवित् = परमार्थ के ज्ञाता राजा ने, आत्मपुत्राय = अपने पुत्र, घनरथाय = घनरथ के लिये, राज्यं = राज्य, दत्त्वा = देकर, (च = और), वनं = वन को, गत्वा = जाकर, तपोदीक्षां = तप करने के लिये मुनिदीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया ।

श्लोकार्थ - विरक्त होने पर परमार्थ के ज्ञाता उस राजा ने अपने पुत्र घनरथ के लिये राज्य देकर और वन को जाकर तपश्चरण हेतु मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली ।

एकादशाङ्गभृद्धीरो भावयित्वा सुभावनाः ।

बबन्ध तीर्थकृद्गोत्रं कर्मासौ स्वतपोबलात् ॥९॥

अन्वयार्थ - स्वतपोबलात् = अपने तपश्चरण के बल से, असौ = उन, धीरः = धैर्यवान्, एकादशाङ्गभृत् = ग्यारह अङ्गों को धारण करने वाले मुनिराज ने, सुभावनाः = दर्शनविशुद्धि आदि भावनाओं को, भावयित्वा = भाकर, तीर्थकृत् = तीर्थङ्कर नामक, गोत्रं = उच्चपुण्य, कर्म = कर्म को, बबन्ध = बांधा ।

श्लोकार्थ - अपनी तपश्चर्या से धीरभाव को प्राप्त वह मुनिराज ग्यारह अङ्गों के धारी हो गये उन्होंने सोलह कारणादि सुन्दर भावनाओं को भाकर तीर्थङ्कर नामक सर्वोत्कृष्ट पुण्य कर्म को भी बाँध लिया।

अन्ते संन्यासविधिना तनुं त्यक्त्वा च धैर्यवान् ।

स्वात्मध्यानबलान्मोहवीरारिं स विजित्य हि ॥१०॥

शुद्धचित्तो हि षोडशे कल्पे जज्ञे सोऽच्युतनाम्नि ।

पुण्यादिन्द्रत्यगापेदे पुष्योत्तर विमानगः ॥११॥

अन्वयार्थ - स्वात्मध्यानबलात् = अपनी आत्मा के ध्यान से, मोहवीरारिं = मोह रूप बलवान् शत्रु को, विजित्य = जीतकर, च = और, अन्ते = अन्त में, संन्यासविधिना = संन्यासमरण की विधि से, हि = ही, तनुं = शरीर को, त्यक्त्वा = छोड़कर, सः = वह, शुद्धचित्तः = निर्विकार मन वाले, धैर्यवान् = धीर वीर मुनिराज ने, अच्युतनाम्नि = अच्युत नामक, षोडशे = सोलहवें, कल्पे = विमान में, जज्ञे = उत्पन्न हुये अर्थात् जन्म लिया, पुष्योत्तरविमानगः = पुष्योत्तर विमान में रहते हुये, सः = उस देव ने, पुण्यात् = पुण्य से, हि = ही, इन्द्रत्वं = इन्द्रत्व को, आपेदे = प्राप्त किया।

श्लोकार्थ - अपनी आत्मा के ध्यान से मोहरूपी बलवान् शत्रु को जीतकर और अन्त में संन्यास मरण पूर्वक देह को छोड़कर उन शुद्धचित्त धीर वीर मुनिराज ने सोलहवें अच्युत नामक स्वर्ग में जन्म लिया। अच्युत स्वर्ग के पुष्योत्तर विमान में उत्पन्न हुये उस देव ने पुण्य से ही इन्द्र पद प्राप्त किया।

द्वाविंशतिसमुद्रायुः सम्प्राप्य सुरसत्तमः ।

द्वाविंशतिसहस्राब्दपरं सोऽभून्मनो शनः ॥१२॥

अन्वयार्थ - द्वाविंशतिसमुद्रायुः = बाबीस सागर की आयु को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, सः = वह, सुरसत्तमः = देवोत्तम इन्द्र, द्वाविंशतिसहस्राब्दपरं = बाबीस हजार वर्ष के बाद, मनो शनः = मन से आहार करने वाला, अभूत् = हुआ।

श्लोकार्थ - बाबीस सागर की आयु प्राप्त करके वह श्रेष्ठ देव बाबीस हजार वर्ष के बाद मानसिक आहार अर्थात् अमृत आहार करने वाला हुआ ।

द्वाविंशत्युक्तपक्षेषु गतेषूच्छ्वासमग्रहीत् ।

दिव्यस्वर्गीयसौख्यात् स प्रोत्फुल्लवदनाम्बुजः ॥१३॥

अन्वयार्थ - दिव्यस्वर्गीयसौख्यात् = स्वर्ग के दिव्य सुखों से, प्रोत्फुल्लवदनान्बुजः = प्रफुल्लित कमल सदृश मुख वाला अर्थात् प्रसन्न, सः = वह देव, द्वाविंशत्युक्तपक्षेषु = बाबीस पक्ष अर्थात् पखवाड़े, गतेषु = बीत जाने पर, उच्छ्वासम् = सांस को, अग्रहीत् = ग्रहण करता था ।

श्लोकार्थ - स्वर्ग के दिव्य सुखों के कारण प्रफुल्लित मुख वाला अर्थात् प्रसन्नवदन वह देव बाबीस पक्ष बीतने पर श्वासोच्छ्वास लेता था ।

स्वावधिज्ञानक्षेत्रेषु सर्वकार्यकृतिक्षमः ।

अनादिसिद्धान् सन्ध्यायन् षण्मासायुर्बभूव सः ॥१४॥

अन्वयार्थ - स्वावधिज्ञानक्षेत्रेषु = अपने अवधिज्ञान की मर्यादा वाले क्षेत्रों में, सर्वकार्यकृतिक्षमः = सारे कार्यों को करने में सक्षम, सः = वह देव, अनादिसिद्धान् = अनादिसिद्धों को, सन्ध्यायन् = ध्याते हुये, षण्मासायुः = छह माह की शेष आयु वाला बभूव = हो गया ।

श्लोकार्थ - अपने अवधिज्ञान के मर्यादा क्षेत्र में सारे कार्यों को करने में सक्षम वह देव अनादिसिद्धों को ध्याते हुये मात्र छह माह की शेष आयु वाला हो गया ।

अथ तस्यावतारस्य कथां श्रवणसौख्यदाम् ।

कलुषघ्नीं प्रवक्ष्येऽहं महासुकृतवर्धिनीम् ॥१५॥

अन्वयार्थ - अथ = अब, तस्य = उस देव के, अवतारस्य = अवतरण की, श्रवणसौख्यदां = सुनने में सुखद, कलुषघ्नीं = पाप को नष्ट करने वाली, महासुकृतवर्धिनीं = महापुण्य को बढ़ाने वाली, कथां = कथा को, अहं = मैं, प्रवक्ष्ये = कहता हूँ ।

श्लोकार्थ - अब मैं उस देव के अवतरण की कथा, जो सुनने में सुख देने वाली, पाप को नष्ट करने वाली और महापुण्य को बढ़ाने वाली है, को कहता हूँ।

जम्बूद्वीपे पुण्यभूमौ क्षेत्रे भारत उत्तमे ।

कौशलं विषयेऽयोध्या त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥१६॥

अन्वयार्थ - जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, भारते = भरत, क्षेत्रे = क्षेत्र में, पुण्यभूमौ = पुण्य भूमि पर, उत्तमे = उत्तम, कौशलं = कौशल नामक, विषये = देश में, त्रिषु = तीनों, लोकेषु = लोकों में, विश्रुता = विख्यात, अयोध्या = अयोध्या नगरी, (अस्ति = है)।

श्लोकार्थ - जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में पुण्यभूमि पर स्थित कौशल नामक उत्तम देश में अयोध्या नगरी है जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है।

तस्यामिक्ष्वाकुसद्वंशे काश्यपे गोत्र उज्ज्वले ।

सिंहसेनोऽभवदाजा महापुण्यसरित्पतिः ॥१७॥

अन्वयार्थ - तस्यां = उस अयोध्या में, इक्ष्वाकुसद्वंशे = उत्तम इक्ष्वाकुवंश में, उज्ज्वले = उज्ज्वल, काश्यपे = काश्यप, गोत्रे = गोत्र में, महापुण्यसरित्पतिः = महापुण्य का सागर समान स्वामी, सिंहसेनः = सिंहसेन नामक, राजा = राजा, अभवत् = हुआ।

श्लोकार्थ - उस अयोध्या नगरी में उत्तम इक्ष्वाकुवंश में उज्ज्वल काश्यप गोत्र में महापुण्य के स्वामी सिंहसेन राजा हुये थे।

जयश्यामा तस्य राज्ञी राज्ञः ताराशशिप्रभा ।

महासुशीलसन्दीप्ता रूप सौभाग्यशालिनी ॥१८॥

अन्वयार्थ - तस्य = उस, राज्ञः = राजा की, जयश्यामा = जयश्यामा नामक, ताराशशिप्रभा = तारागणों में चन्द्रमा के समान प्रभा वाली, महासुशीलसन्दीप्ता = शीलव्रत रूप महान् व्रत का पालन करने के तेज से चमकने-दमकने वाली, रूपसौभाग्यशालिनी = सौन्दर्य एवं अच्छे भाग्य से परिपूर्ण, राज्ञी = रानी, (आसीत् = थी)।

श्लोकार्थ - उस राजा की जयश्यामा नामक रानी थी। जो तारामण्डल

में चन्द्रमा के समान शोभायमान, शीलव्रत के तेज से चमकती हुयी सौन्दर्यवती एवं सद्भाग्य की स्वामिनी थी।

तयोर्गृहे श्रीभगवदवतारं च भाविनम् ।

ज्ञात्वा शक्राज्ञयाऽमुञ्चद्धनदा रत्नसंचयम् ॥१६॥

अन्वयार्थ - तयोः = उन दोनों के, गृहे = घर में, भाविनं = भविष्य में होने वाला, श्रीभगवदवतारं = श्री सम्पन्न भगवान् के अवतरण को, ज्ञात्वा = जानकर, शक्राज्ञया = इन्द्र की आज्ञा से, धनदः = धनदा कुबेर ने, रत्नसंचयं = रत्नों के समूह, अमुञ्चत् = छोड़े अर्थात् बरसाये।

श्लोकार्थ - उन दोनों अर्थात् सिंहसेन राजा और जयश्यामा रानी के घर में भावि तीर्थङ्कर का अवतरण होगा ऐसा जानकर इन्द्र ने कुबेर को आज्ञा दी तब कुबेर ने रत्नों की राशि बरसायी।

षाण्मासिकीं रत्नवृष्टिं तदा पौरा हि सांततीम् ।

विस्मिता भाविसद्भद्रनृपगेहं प्रप्रेदिरे ॥२०॥

अन्वयार्थ - तदा = तब, सांततीं = लगातार-प्रतिदिन, हि = ही, षाण्मासिकीं = छह माह तक होने वाली, रत्नवृष्टिं = रत्नवृष्टि को, (दृष्ट्वा = देखकर), विस्मिताः = विस्मय को प्राप्त हुये, पौराः = प्रजाजन भाविसद्भद्रनृपगेहं = भविष्य में अच्छे कल्याण का केन्द्र राजा के घर को, प्रप्रेदिरे = मानने लगे।

श्लोकार्थ - तब प्रतिदिन छह माह तक होने वाली रत्नवृष्टि को देखकर आश्चर्यचकित प्रजा मानने लगी कि राजा का यह घर भविष्य में सच्चे कल्याण को बताने का केन्द्र होगा।

एकदा कार्तिके कृष्णपक्षे प्रतिपदातिथौ ।

सुप्ता देवी प्रभाते सा स्वप्नानेक्षत षोडश ॥२१॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, कार्तिके = कार्तिक मास में, कृष्णपक्षे = कृष्णपक्ष में, प्रतिपदातिथौ = प्रतिपदा की तिथि में, सुप्ता = सोयी हुई, सा = उस, देवी = रानी ने, प्रभाते = प्रभात काल में, षोडश = सोलह, स्वप्नान् = स्वप्नों को, ऐक्षत् = देखा।

श्लोकार्थ - एक दिन कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा को सोयी हुई रानी ने प्रभातबेला में सोलह स्वप्नों को देखा।

स्वप्नान्ते मत्तमातङ्गं शरच्चन्द्रप्रभोज्ज्वलम् ।

मुखं प्रविष्टमालोक्य प्रबुद्धा विस्मिताऽभवत् ॥२२॥

अन्वयार्थ - स्वप्नान्ते = स्वप्न दर्शन के अन्त में, शरच्चन्द्रप्रभोज्ज्वलं = शरत्कालीन चन्द्रमा की कान्ति से उज्ज्वल-धवल, मुखं = मुख में, प्रविष्टं = प्रविष्ट होते हुये, मत्तमातङ्गं = मदोन्मत्त हाथी को, आलोक्य = देखकर, प्रबुद्धा = जाग गयी, विस्मिता = आश्चर्यचकित अभ्यस्त = हुई।

श्लोकार्थ - सोलह स्वप्नों को देखने के अन्त में शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान उज्ज्वल कान्ति वाले मत्त हाथी को अपने मुख में प्रविष्ट होता हुआ देखकर वह रानी जाग गयी और आश्चर्य को प्राप्त हुई।

ततः पत्युःसमीपं सा प्राप्य स्वप्नानवोचत ।

तन्मुखात्फलं श्रुत्वा महामोदमवाप सा ॥२३॥

अन्वयार्थ - ततः = उसके बाद, पत्युः = पति की, समीपं = समीपता को, प्राप्य = प्राप्त करके, सा = वह रानी, स्वप्नान् = स्वप्नों को, अवोचत = कहने लगी, तन्मुखात् = राजा के मुख से, तत्फलं = स्वप्नों का फल, श्रुत्वा = सुनकर, सा = वह, महामोदं = महा आनन्द को, अवाप = प्राप्त हुई।

श्लोकार्थ - उसके बाद वह रानी पति के समीप गई तथा स्वप्नों को कहने लगी। पति के मुख से स्वप्नों का फल सुनकर वह रानी अत्यंत हर्ष को प्राप्त हुई।

गर्भागतस्त्रयज्ञानेन्द्रो यदा तदा मरुतोऽभवत् ।

जगत्प्रसादमापेदे निर्मलं गगनं ह्यभूत् ॥२४॥

अन्वयार्थ - यदा = जब, त्रयज्ञानेन्द्रः = तीन ज्ञान का स्वामी इन्द्र, मरुतः = वह देवता, गर्भागतः = गर्भ में आया, अभवत् = हो गया, तदा = तब, जगत् = सारे जगत् ने, प्रसादं = प्रसन्नता को,

आपेदे = प्राप्त कर लिया, गगनं = आकाश, निर्मलं = निर्मल
अर्थात् स्वच्छ, अमूत = हो गया।

श्लोकार्थ - जब तीन ज्ञान का स्वामी वह देव गर्भ में आ गया तब जगत्
ने प्रसन्नता को प्राप्त किया तथा आकाश भी स्वच्छ हो गया।

ज्येष्ठमासेऽथ कृष्णायां द्वादश्यां भूपतिप्रिया।

भगवन्तं सुखं सूते त्रिज्ञानधरमीश्वरम् ॥२५॥

अन्वयार्थ - अथ = इसके बाद अर्थात् गर्भकाल बीतने पर, ज्येष्ठमासे =
जेठ माह में, कृष्णायां = कृष्ण पक्ष में, द्वादश्यां = द्वादशी
के दिन, भूपतिप्रिया = राजा की रानी ने, त्रिज्ञानधरं = तीन
ज्ञानों को धारण करने वाले, ईश्वरं = ऐश्वर्य सम्पन्न, भगवन्तं
= तीर्थङ्कर शिशु को, सुखं = सुख पूर्वक, सूते = जन्म
दिया।

श्लोकार्थ - गर्भकाल बीत जाने के बाद जेठ कृष्ण द्वादशी के दिन राजा
की रानी ने तीनज्ञान के स्वामी ऐश्वर्य सम्पन्न तीर्थङ्कर शिशु
को जन्म दिया।

द्यौश्चन्द्रेण यथा प्राची बालार्केण सुतेजसा।

तथा देवेन सा देवी रराज शिशुमूर्तिना ॥२६॥

अन्वयार्थ - यथा = जैसे, चन्द्रेण = चन्द्रमा से, द्यौः = आकाश, (च =
और), बालार्केण = बालसूर्य के द्वारा, प्राची = पूर्व दिशा,
रराज = सुशोभित हुयी, तथा = वैसे, सुतेजसा = शुभ कान्ति
युक्त, शिशुमूर्तिना = शिशु रूप, देवेन = तीर्थङ्कर से, सा
= वह, देवी = रानी, रराज = सुशोभित हुयी।

श्लोकार्थ - जैसे चन्द्रमा से आकाश तथा बालसूर्य से प्राची सुशोभित
होती है वैसे ही शुभकान्ति से पूर्ण शिशुरूप तीर्थङ्कर से
वह रानी सुशोभित हुई।

तदैवेन्द्रोऽवधिज्ञानाद् भगवज्जन्म तद्वरम्।

प्रबुध्य देवतैस्सार्धं त्वरया तत्र समाययौ ॥२७॥

अन्वयार्थ - तदा = तभी, एव = ही, इन्द्रः = इन्द्र, अवधिज्ञानात् =
अवधिज्ञान से, तद्वरं = उस शुभ, भगवज्जन्म = भगवान् के

जन्म को, प्रबुध्य = जानकर, त्वरया = शीघ्रता से, देवतैः = देवताओं के, सार्ध = साथ, तत्र = वहाँ, समाययौ = आ गया।

श्लोकार्थ - तभी अवधिज्ञान से प्रभु का वह शुभ जन्म जानकर जल्दी से देवताओं सहित वहाँ आ गया।

बालं प्रभुं समादाय सूर्यकोटिसमप्रभम् ।

सुवर्णाद्रिं गतः शीघ्रं जयध्वानं समुच्चरन् ॥२८॥

पाण्डुकायां शिलायां तं संस्थाप्य जगदीश्वरम् ।

कलशाभिषेकं चक्रे पयोनिधिजलैर्मुदा ॥२९॥

अन्वयार्थ - सूर्यकोटिसमप्रभं = करोड़ों सूर्य के समान प्रभा वाले, बालं = शिशु, प्रभुं = तीर्थङ्कर को, समादाय = लेकर, जयध्वानं = जय शब्द को, समुच्चरन् = उच्चारित करते हुये वह इन्द्र, शीघ्रं - जल्दी ही, सुवर्णाद्रिं = स्वर्ण निर्मित मेरु पर्वत पर, गतः = गया, पाण्डुकायां = पाण्डुक, शिलायां = शिला पर, तं = उन, जगदीश्वरं = जगत् के ईश्वर अर्थात् शिशु तीर्थङ्कर को, संस्थाप्य = स्थापित करके, पयोनिधिजलैः = क्षीरसागर के जल से, मुदा = प्रसन्नता से, कलशाभिषेकं = कलशों से अभिषेक, चक्रे = किया।

श्लोकार्थ - करोड़ों सूर्य के समान है आभा जिनकी ऐसे बाल तीर्थङ्कर को लेकर इन्द्र जय ध्वनि करता हुआ मेरु पर्वत पर गया। वहाँ पाण्डुकशिला पर प्रभु का स्थापित करके उसने क्षीरसागर के जल से उनका कलशाभिषेक किया।

पुनर्गन्धाभिषेकं स कृत्वा दिव्यविभूषणैः ।

सम्भूष्य देवदेवं तामयोध्यां पुनरागमत् ॥३०॥

तत्र भूपाङ्गणं देवं सिंहासनविराजितम् ।

समर्च्य तत्पुरोभागे ताण्डवं विधिवत्कृतम् ॥३१॥

अनन्तगुणबोधत्वादनन्तारस्थं प्रभोरनु ।

कृत्वा मात्रे समर्प्याथ गतोऽयममरावतीम् ॥३२॥

अन्वयार्थ - पुनः = दुबारा, गन्धाभिषेकं = सुगन्धित जल से अभिषेक को, कृत्वा = करके, सः = वह इन्द्र, दिव्यविभूषणैः = दिव्य

आभूषणों से, देवदेवं = देवताओं के भी स्वामी उन प्रभु को, सम्भूष्य = अलङ्कृत करके, पुनः = पुनः, तां = उसी, अयोध्यां = अयोध्या में, अगमत् = आ गया, तत्र = उस अयोध्या में, भूपाङ्गणे = राजा के आँगन में, सिंहासनविराजितम् = सिंहासन पर सुशोभित, देवं = बालप्रभु को, समर्च्य = पूजकर, तत्पुरोभागे = उनके सामने के भाग में, विधिवत् = विधि अर्थात् समुचित रीति से, (तेन = उस इन्द्र द्वारा), ताण्डवं = ताण्डव नृत्य, कृतम् = किया, अनु = उसके पश्चात्, अनंतगुणबोधत्वात् = अनंतगुणों का बोध कराने वाले होने से, प्रभोः = प्रभु का, अनन्ताख्यं = अनन्तनाथ नामकरण, कृत्वा = करके, माते = माता के लिये, समर्प्य = देकर, अयं = यह इन्द्र, अमरावतीं = अमरावती को, गतः = चला गया।

श्लोकार्थ - प्रभु का दुबारा सुगन्धित जल से अभिषेक करके और दिव्य आभूषणों से प्रभु को अलङ्कृत करके वह इन्द्र पुनः अयोध्या में आ गया। वहाँ राजा के आँगन में प्रभु को सिंहासन पर विराजमान करके तथा उनकी पूजा करके उसने प्रभु के सामने साङ्गोपाङ्गक ताण्डवनृत्य किया।

फिर अनंतगुणों को जानने वाले एवं उनका बोध कराने वाले होने से इन्द्र ने प्रभु का अनंत नाथ यह नामकरण कर दिया तथा बालक को माता के लिये देकर अमरावती को चला गया।

श्रीमद्विमलनाथाच्च गतेषु नववार्धिषु।

तदप्यन्तरजीवी स बभूवानन्त ईश्वरः ॥३३॥

अन्ययार्थ - श्रीमद्विमलनाथात् = श्री सम्पन्न तीर्थङ्कर विमलनाथ से, नववार्धिषु = नौ सागर, गतेषु = चले जाने पर, तदप्यन्तरजीवी = उस नव सागर में अन्तर्भूत जीवन वाले, सः = वह, अनन्तः = अनन्तनाथ, ईश्वरः = तीर्थङ्कर, बभूव = हुये।

श्लोकार्थ - तीर्थङ्कर विमलनाथ के मोक्ष जाने के बाद अनन्तनाथ तीर्थङ्कर हुये। इनकी आयु भी उपर्युक्त नौ सागर में अन्तर्भूत जानना चाहिये।

त्रिंशल्लक्षमितायुश्च पञ्चाशद्वनुरुन्नतः ।
 बालकेलिभिरत्यन्तं पितरौदयमिदं यन् ॥३३॥
 कौमारं सो व्यतीयाथ शरीरे यौवनागमे ।
 प्राप्य तत्पैतृकं राज्यं बुभुजे भोगमुत्तमम् ॥३५॥

अन्वयार्थ - त्रिंशल्लक्षमितायुः = तीस लाख वर्ष प्रमाण आयु वाले, च = और, पञ्चाशद् = पचास, धनुरुन्नतः = धनुष ऊँचाई वाले, सः = उन बाल तीर्थङ्कर ने, बालकेलिभिः = बाल क्रीडाओं से, पितरौ = अपने माता-पिता को, अत्यन्तं = अत्यधिक, अभिमोदयन् = प्रसन्न करते हुये, कौमारं = कुमार काल को बिताकर, शरीरे = शरीर में, यौवनागमे = युवावस्था आने पर, तत्पैतृकं = उस पैतृक, राज्यं = राज्य को, प्राप्य = प्राप्त कर, उत्तमं = सर्वोत्तम, भोगम् = भोग को, बुभुजे = भोगा ।

श्लोकार्थ - तीस लाख वर्ष प्रमाण आयु वाले और पचास धनुष ऊँचाई वाले उन बाल तीर्थङ्कर ने अपनी बाल क्रीडाओं से माता-पिता को अत्यधिक प्रसन्न किया और कुमारकाल बिताकर शरीर में यौवन का आगमन होने पर पैतृक राज्य को प्राप्तकर उत्तमोत्तम भोगों को भोगा ।

एकदा सौधमारुह्य सिंहासनगतः प्रभुः ।
 तारापातं ददर्शाथ विरवत्तस्तत्क्षणादभूत् ॥३६॥
 तारापातवदेषोऽपि संसारः क्षणभङ्गुरः ।
 अत्र मूढाः प्रमाद्यन्ते आत्मवन्तो न वै बुधाः ॥३७॥
 नरत्वं दुर्लभं प्राप्य तपस्सारं महात्मनाम् ।
 तपसः कर्मनाशः स्यात् कर्मनाशात्परं पदं ॥३८॥
 इति चिन्तयतस्तस्य स्तवार्थं सुरसत्तमाः ।
 सारस्वतादयः प्राप्तास्तेजोभिर्भास्करा इव ॥३९॥
 इन्द्रोऽपि स्वावधिज्ञानात्तपः कर्तुं समुद्यतम् ।
 ज्ञात्वा देवं तदा प्राप सदेवो देवसन्निधिम् ॥४०॥
 तदा सागरदत्ताख्यां शिविकां देवसंस्तुतः ।
 समारुह्य स समुत्सह्य सहेतुकं वनं ययौ ॥४१॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक बार, सौधम् = महल पर, आरूढ्य = चढ़कर, सिंहासनगतः = सिंहासन पर बैठे हुये, प्रभुः = स्वामी ने, तारापातं = तारे का गिरना, ददर्श = देखा, अथ = उसके बाद, तत्क्षणात् = उसी समय, विरक्तः = वैराग्यभाव को प्राप्त, अभूत् = हो गया।

एषः = यह, संसारः = संसार भी, तारापातवत् = तारों के गिरने के समान, क्षणभङ्गुरः = नाशवान् या क्षणिक, (अस्ति = है), अत्र = इस संसार में, मूढाः = मूर्खजन, प्रमाद्यन्ते = प्रमाद का कार्य करते हैं, आत्मवन्तः = आत्मज्ञानी, बुधाः = विद्वज्जन, न = नहीं, वै = सचमुच, दुर्लभं = कठिनता से प्राप्त, नरत्वं = मनुष्यपना को, प्राप्य = प्राप्त करके, महात्मनां = महापुरुषों के लिये, सारं = सारभूत, तपः = तपश्चरण, (अस्ति = है), तपसा = तपश्चरण से, कर्मनाशः = कर्मों का नाश, स्यात् = होता है, कर्मनाशात् = कर्मों का नाश हो जाने से, परं = उत्कृष्ट, पदं = स्थान, (त्वात् = हो), इति = इस प्रकार, चिन्तयतः = विचार करते हुये, तस्य = उन प्रभु का, स्तवार्थं = स्तवन करने के लिये, सारस्वतादयः = सारस्वत आदि, सुरसत्तमाः = श्रेष्ठ देवगण, तेजोभिः = प्रकाश से, भास्कराः = सूर्य के, इव = समान, प्राप्ताः = उपस्थित हुये, तदा = तभी, स्वावधिज्ञानात् = अपने अवधिज्ञान से, तपः = तपश्चरण को, कर्तुं = करने के लिये, समुद्यतं = तैयार, देवं = प्रभु को, ज्ञात्वा = जानकर, इन्द्रः = इन्द्र, अपि = भी, देवसन्निधिं = प्रभु की समीपता को, प्राप = प्राप्त हुआ। तदा = उसी समय, सागरदत्ताख्यां = सागरदत्त नाम की, शिबिकां = पालकी पर, समारूढ्य = चढ़कर, (च = और), समुत्सह्य = उत्साहित होकर, देवसंस्तुतः = देवताओं द्वारा स्तुति किया जाता हुआ, सः = वह देव, सहेतुकं = सहेतुक नामक, वनं = वन को, ययौ = चले गये।

श्लोकार्थ - एक बार उन राजा ने महल के ऊपर सिंहासन पर बैठे हुये तारों का गिरना देखा जिससे वह उसी क्षण विरक्त हो गये और विचार करने लगे - यह संसार भी तारापात के समान

ही क्षणमंगुर अर्थात् विनाशीक है। इस संसार में मूर्खजन ही प्रमाद का आचरण करते हैं आत्मा को जानने वाले विद्वज्जन नहीं। सचमुच ही कठिनता से प्राप्त होने वाला यह मनुष्यत्व है इसे प्राप्त कर महापुरुष तपश्चरण करते हैं क्योंकि तपश्चरण से कर्मों का नाश होता है और कर्मों के नाश हो जाने से परम पद अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार विचारमग्न विरक्त राजा की स्तुति करने के लिये सारस्वत जाति के देव वहाँ आ गये। उसी समय अपने अवधिज्ञान से प्रभु को तपश्चरण हेतु उद्यमशील जानकर इन्द्र भी प्रभु के पास आ गया।

तब सागरदत्त नामक पालकी पर चढ़कर और तप के लिये उत्साहित होकर देवों से स्तुति किये जाते हुये वह प्रभु सहेतुक वन में चले गये।

ज्येष्ठमाससितायां हि द्वादश्यां भूपिपैः सह ।

सहस्रप्रमितैर्दीक्षां जग्राह शिवकारणाम् ॥४२॥

अन्वयार्थ - ज्येष्ठमाससितायां = जेठ मास के शुक्लपक्ष में, द्वादश्यां = बारहवीं के दिन, हि = ही, सहस्रप्रमितैः = एक हजार संख्या परिमित, भूमिपैः = राजाओं के, सह = साथ, (सः = उन्होंने), शिवकारणां = मोक्ष की कारण स्वरूप, दीक्षां = मुनिदीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया।

श्लोकार्थ - जेठ सुदी बारहवीं के दिन एक हजार राजाओं के साथ उसने मोक्ष की कारण स्वरूप मुनिदीक्षा को ग्रहण कर लिया।

ततस्तस्यान्तर्मुहूर्ते त्रिबोधनयनस्य हि ।

आसीच्चतुर्थं तज्ज्ञानं मनःपर्ययसंज्ञकम् ॥४३॥

अन्वयार्थ - ततः = मुनिदीक्षा लेने के बाद, तस्य = उन, त्रिबोधनयनस्य = तीन ज्ञान के धारी मुनिराज के, अन्तर्मुहूर्ते = अन्तर्मुहूर्त में, चतुर्थ = चौथा, तत् = वह, मनःपर्ययसंज्ञकं = मनःपर्यय नामक, ज्ञानं = ज्ञान, आसीत् = हुआ।

श्लोकार्थ - मुनिदीक्षा लेने के बाद अन्तर्मुहूर्त में ही उन तीन ज्ञान के धारी मुनिराज को चौथा मनःपर्यय नामक ज्ञान हो गया।

द्वितीयदिवसेऽयोध्यायां भिक्षार्थं गतवान् प्रभुः ।

विशाखो नृपतिस्तत्र प्रभुं सम्पूज्य सादरं ॥४४॥

आहारं कारयामास तस्य साश्चर्यपञ्चकम् ।

गृहीत्वाहारमायातस्तस्मिन्नेव वने प्रभुः ॥४५॥

द्विवर्षं मौनगारथाय नानाशुचिपदेषु सः ।

महोग्रं दुस्सहं चक्रे तपश्शिवपदोत्सुकः ॥४६॥

अन्वयार्थ - द्वितीयदिवसे = दूसरे दिन, प्रभुः = मुनिराज, अयोध्यायां = अयोध्या में, भिक्षार्थं = भिक्षा के लिये, गतवान् = गये, तत्र = वहाँ, विशाखः = विशाख नामक, नृपतिः = राजा ने, सादरं = आदर सहित, सम्पूज्य = पूजकर, साश्चर्यपञ्चकम् = पांच आश्चर्यों के साथ, तस्य (कृते) = उनके लिये, आहारं = आहार, कारयामास = कराया, आहारं = आहार को, गृहीत्वा = ग्रहण करके, तस्मिन्नेव = उस ही, वने = वन में, प्रभुः = मुनिराज, आयातः = आ गये, द्विवर्षं = दो वर्ष तक, मौनं = मौन, आस्थाय = लेकर, नानाशुचिपदेषु = अनेक पवित्र स्थानों पर, महोग्रं = अत्यधिक उग्र, दुस्सहं = कठिनता से सह्य, तपः = तपश्चरण को, सः = उन, शिवपदोत्सुकः = शिवपद पाने को उत्सुक, मुनिराज ने, चक्रे = किया ।

श्लोकार्थ - दूसरे दिन मुनिराज अयोध्या में भिक्षा के लिये गये । वहाँ विशाख नामक राजा ने आदर सहित उन्हें पूजकर पंचाश्चर्य सहित आहार कराया । आहार करके मुनिराज उसी वन में आ गये । दो वर्ष तक मौनव्रत लेकर शिव पद पाने के इच्छुक उन्होंने अत्यधिक उग्र और दुर्गमता से सहे जाने वाले तप को किया ।

चैत्रमासे ह्यमायां स घातिकर्माणि भस्मसात् ।

कृत्वा वटवृक्षतले प्राप केवलज्ञानमुज्ज्वलम् ॥४७॥

अन्वयार्थ - चैत्रमासे = चैत्र माह में, अमायां = अमावस्या के दिन, हि = ही, सः = उन्होंने, घातिकर्माणि = घातिकर्मों को, भस्मसात् = भस्म, कृत्वा = करके, वटवृक्षतले = वटवृक्ष के नीचे,

उज्ज्वलम् = उज्ज्वल, केवलज्ञानं = केवलज्ञान को, प्राप = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ - चैत्र माह की अमावस्या को घातिकर्मों को भस्म करके वट वृक्ष के नीचे उन्होंने उज्ज्वल केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया।

तज्ज्ञानस्य प्रकाशात्स यज्जगति तज्ज्ञातवान् ।

न भूतं नास्ति नो भावि नामरूपगुणादिभृत् ॥४८॥

अन्वयार्थ - तज्ज्ञानस्य = उस केवलज्ञान के, प्रकाशात् = प्रकाश से, सः = उन्होंने, जगति = जगत में, यत् = जो है, तत् = उसको, ज्ञातवान् = जान लिया, नामरूपादिगुणादिभृत् = नाम रूप आदि गुणों से युक्त जगत्, न भूतं = केवल भूत नहीं रहा, न अस्ति = केवल वर्तमान नहीं रहा, नो भावि = केवल भविष्यत् नहीं रहा।

श्लोकार्थ - उस केवलज्ञान के प्रकाश से प्रभु ने जगति में नामरूपगुणादि से भरपूर जो कुछ भी था उसे जान लिया उन्हें अब भूत-वर्तमान और भविष्य सब युगपत् जानने में आते थे।

प्रभोः केवलबोधाप्तिं ज्ञात्वा देवपतिस्तदा ।

चित्रं समयसारं स तदैवागत्य संव्यधात् ॥४९॥

अन्वयार्थ - देवपतिः = इन्द्र ने, प्रभोः = प्रभु के, केवलबोधाप्तिं = केवलज्ञान की प्राप्ति को, ज्ञात्वा = जानकर, तदैव = उसी समय, आगत्य = आकर, चित्रं = विचित्र आश्चर्योत्पादक, समयसारं = समयसरण को, संव्यधात् = रच दिया।

श्लोकार्थ - देवपति इन्द्र ने प्रभु को केवलज्ञान हो गया है— ऐसा जानकर उसी समय वहाँ आ गया और उसने आश्चर्योत्पादक समयसरण को रच दिया।

तस्मिन् सहस्ररविरुक् प्रभुः सर्वोपर्युदारधीः ।

सर्वोपरि स बभ्राज भव्यवृन्दसमर्चितः ॥५०॥

अन्वयार्थ - भव्यवृन्दसमर्चितः = भव्यजीवों के समूहों से पूजे जाते हुये, सहस्ररविरुक् = हजार सूर्यों के तेज से युक्त, (च = और),

सर्वोपर्युदारधीः = सभी जीवों पर समान बुद्धि रखने वाले,
सः = वह, प्रभुः = भगवान्, तस्मिन् = उस समवसरण में,
सर्वोपरि = सबसे ऊपर, बभ्राज = सुशोभित हुये।

श्लोकार्थ - भव्यजीवों के समूहों द्वारा पूजित होते हुये, हजार सूर्यों के तेज से युक्त लगते हुये और सभी पर उदार बुद्धि रखने वाले वह प्रभु उस समवसरण में सबसे ऊपर सुशोभित हुये।

जयसेनादयस्तत्र गणेन्द्राश्च तदादिभिः।

यथोक्तैरखिलैर्भव्यैः स्तुतो द्वादशकोष्ठगैः ॥५१॥

दिव्यस्वनेन तत्त्वानां प्रकाशं व्यधात्प्रभुः।

सम्मेदपर्वतं प्राप्य स्वयंभूकूटेऽवस्थितः ॥५२॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस समवसरण में, जयसेनादयः = जयसेन आदि, गणेन्द्राः = गणधर, (आसन् = थे), तदादिभिः = उनको आदि लेकर, यथोक्तैः = जैसे कहे गये हैं वैसे, द्वादशकोष्ठगैः = बारह कोठों में स्थित, अखिलैः = सभी, भव्यैः = भव्य जीवों द्वारा, स्तुतः = स्तुति किये जाते हुये, प्रभुः = भगवान् ने, दिव्यस्वनेन = दिव्यध्वनि द्वारा, तत्त्वानां = तत्त्वों के, प्रकाशं = प्रकाश को, व्यधात् = किया, च = और, सम्मेदपर्वतं = सम्मेद शिखर पर्वत को, प्राप्य = प्राप्त करके, स्वयंभूकूटे = स्वयंभूकूट पर, अवस्थितः = अवस्थित हो गये।

श्लोकार्थ - उस समवसरण में जयसेन आदि गणधर थे उनको आदि लेकर जैसे कहे गये हैं तदनुसार बारह कोठों में स्थित सभी भव्य जीवों द्वारा स्तुत होते हुये भगवान् ने दिव्यध्वनि से निखिल तत्त्वों का प्रकाश किया और सम्मेदशिखर पर्वत को प्राप्त करके स्वयंभूकूट पर अवस्थित हो गये।

कृष्णद्वादशिकायां च माघे मासि तपोनिधिः।

कायोत्सर्गविधानेन षट्सहस्रमुनीश्वरैः ॥५३॥

सार्धं ध्यानं समारूढ्य शुक्लाख्यं योगवित्तमः।

निरामयं मुक्तिपदं प्राप सर्वभक्त्यजनार्थितम् ॥५४॥

अन्वयार्थ - च = और, माघे = माघ, मासि = मास में, कृष्णद्वादशिकायां

= कृष्ण पक्ष की द्वादशी के दिन, योगवित्तमः = योगविद्,
तपोनिधिः = उन तपोनिधि भगवान् ने, षट्सहस्रमुनीश्वरैः =
छह हजार मुनिराजों के, साध्वः = साथ, कायोत्सर्गविधानेन
= कायोत्सर्ग के विधान से, शुक्लाख्यं = शुक्ल नामक, ध्यानं
= ध्यान में, समारुह्य = लगकर, सर्वभव्यजनार्थितं = सभी
भव्य जनों द्वारा पूजित, निरामयं = सर्व आमयों अर्थात् रोगों
से रहित, मुक्तिपदं = मोक्षपद को, प्राप = पा लिया।

श्लोकार्थ - साधकृष्णा द्वादशी के दिन योग के जानकारों में श्रेष्ठ उन
तपोनिधि भगवान् ने छह हजार मुनिराजों के साथ कायोत्सर्ग
के विधान से शुक्ल-ध्यान में लगकर सभी भव्यों से पूजित
और रोगरहित मुक्तिपद को पा लिया।

स्वयंभूकूटतस्सर्वे गता ये साधवः शिवम् ।

नैष्कर्मसिद्धिसन्दीप्तान् वन्दे तान् प्रतिवासरम् ॥५५॥

अन्वयार्थ - ये = जो, सर्वे = सभी, साधवः = मुनिराज, स्वयंभूकूटात् =
स्वयंभूकूट से, शिवं = मोक्ष को, गताः = गये, तान् = उन,
नैष्कर्मसिद्धिसन्दीप्तान् = नैष्कर्मसिद्धि से प्रदीप्त अर्थात् कान्ति
सम्पन्न सभी सिद्धों को (अहं = मैं), प्रतिवासरं = प्रत्येक दिन,
वन्दे = प्रणाम करता हूँ।

श्लोकार्थ - जो भी साधु स्वयंभूकूट से मोक्ष को गये, उन सभी सिद्ध
भगवन्तों को मैं प्रतिदिन प्रणाम करता हूँ।

तत्पश्चात्प्रणवत्युक्ताः कोटीनां कोटिरीरिताः ।

सप्तत्युक्ताः कोट्यश्च तथा सप्ततिलक्षकाः ॥५६॥

सप्तयुक्तसहस्राणि तथा सप्तशतानि च ।

इत्युक्तास्मुनयस्तस्मात् कूटात्सिद्धिं गता ध्रुवम् ॥५७॥

अन्वयार्थ - तत्पश्चात् = उसके बाद, अर्थात् अनन्तनाथ भगवान् के मोक्ष
जाने के बाद, प्रणवत्युक्ताः = नब्बे, कोटीनां कोटिरीरिताः =
कोड़ा कोड़ी, सप्तत्युक्ताः कोट्यः = सत्तर करोड़, तथा च
= और, सप्ततिलक्षकाः = सत्तर लाख, सप्तयुक्तसहस्राणि
= सात हजार, तथा च = और, सप्तशतानि = सात सौ, इति

= इस संख्या में, उक्ताः = कहे गये, मुनयः = मुनिराज,
तस्मात् = उसी, कूटात् = कूट से, ध्रुवां = अचल, सिद्धिं
= सिद्धि को, गताः = प्राप्त हुये।

श्लोकार्थ - अनंतनाथ भगवान् के मोक्ष चले जाने के बाद नब्बे कोड़ा
कोड़ी सत्तर करोड़ सत्तर लाख सात हजार सात सौ मुनिराज
उसी स्वयंभूकूट से अचल-शाश्वत सिद्धि को प्राप्त हुये।

तेषामन्वभयद्राजा चारुसेनः सुधार्मिकः ।

सङ्घं संचालयामास यात्रायै भूपतिरसौ ॥५८॥

अन्ययार्थ - तेषां = उनके, अनु = पश्चात् = सुधार्मिकः = धर्मात्मा, राजा
= राजा, चारुसेनः = चारुसेन, अभवत् = हुआ, असौ = उस,
भूपतिः = राजा ने, यात्रायै = यात्रा करने के लिये, संघं =
संघ को, संचालयामास = चलाया।

श्लोकार्थ - उनके पश्चात् एक चारुसेन नामक धर्मात्मा राजा हुआ। उस
राजा ने सम्मेदशिखर की यात्रा के लिये संघ को संचालित
किया था।

तत्कथां श्रवणात्पुण्यवर्धिनां शिवदायिनीम् ।

वक्ष्ये भव्यजनास्सर्वे शृणुध्वं धर्मवत्सलाः ॥६०॥

अन्ययार्थ - श्रवणात् = सुनने से, पुण्यवर्धिनीं = पुण्य को बढ़ाने वाली,
(च = और), शिवदायिनीं = मोक्ष देने वाली, (च = और),
तत्कथां = उस यात्रा की कथा को, (अहं = मैं कवि),
वक्ष्ये = कहता हूं, सर्वे = सभी, धर्मवत्सलाः = धर्मस्नेही,
भव्यजनाः = भव्यजनो ! शृणुध्वं = सुनो।
सुनो।

श्लोकार्थ - जिसके सुनने से पुण्य वृद्धिगत होता है और जो मोक्ष देने
वाली है ऐसी उस राजा द्वारा की गयी यात्रा की कथा को
मैं कहता हूं। हे भव्यजनों ! तुम सभी धर्मस्नेही होकर उसे
सुनो।

जम्ब्याख्ये महति द्वीपे भरतक्षेत्रमध्यगा ।

कौशाम्बी नगरी रम्या तत्र श्रेष्ठी प्रबोधवान् ॥६१॥

वातसेनाभिधस्तस्य शुभसेना सुधर्मिणी ।

तयोस्समुद्रदत्ताख्यः तनयोऽभूदभाग्यवान् ॥६२॥

अन्वयार्थ - जम्बूवाख्ये = जम्बू नामक, महति = महान्, द्वीपे = द्वीप में, भरतक्षेत्रमध्यगा = भरतक्षेत्र के बीच, रम्या = रमणीय, कौशाम्बी = कौशाम्बी, नगरी = नगरी, (आसीत् = थी), तत्र = उसमें, वातसेनाभिधः = वातसेन नामक, प्रबोधवान् = ज्ञानवान्, श्रेष्ठी = सेठ, (अवसत् = रहता था), तस्य = उसकी, शुभसेना = शुभसेना नामक, सुधर्मिणी = धर्मपत्नी (आसीत् = थी), तयोः = उन दोनों के, समुद्रदत्ताख्यः = समुद्रदत्त नामक, अभाग्यवान् = भाग्यहीन, तनयः = पुत्र, अभूत् = हुआ ।

श्लोकार्थ - जम्बू नामक महान् द्वीपे में भरत के अन्दर एक रमणीय कौशाम्बी नगरी थी । उस नगर में वातसेन नामक एक ज्ञानी सेठ रहता था उसकी धर्मपत्नी शुभसेना थी । उन दोनों के एक भाग्यहीन समुद्रदत्त नामक पुत्र हुआ ।

महादारिद्र्यपात्रं स जातमात्रो त्रऽपञ्चताम् ।

एतस्य पितरौ यातौ बुभोजादौ दरिद्रताम् ॥६२अ॥

अन्वयार्थ - अत्र = जन्म होने पर, एतस्य = उस पुत्र के, पितरौ = माता-पिता, पञ्चताम् = मृत्यु को, यातौ = प्राप्त हुये, जातमात्रः = मात्र जन्म लेने वाला, सः = वह, महादारिद्र्यपात्रं = अत्यधिक दरिद्रता का पात्र, (अभवत् = हुआ), आदौ = बाल्यकाल में, दरिद्रतां = गरीबी को, बुभोज = भोगा ।

श्लोकार्थ - जन्म होने पर ही उस पुत्र के माता पिता मृत्यु को प्राप्त हो गये इस प्रकार मात्र जन्म लेने वाला वह अत्यधिक दरिद्रता का पात्र हो गया उसने बाल अवस्था में दरिद्रता गरीबी को ही भोगा ।

एकदा मुनिमेकं स भाग्यतः परिष्वजि ।

समुद्रदत्तो दुःखाभिभूतो भाग्यविवर्जितः ॥६३॥

आधाय पादयोस्तस्य मस्तकं स दरिद्रकः ।

करुणाद्रदृशायं दृष्टस्तेनेदं वाक्यमब्रवीत् ॥६४॥

किमत्र पातकं नाथ ! कृतं पूर्वभवे मया ।

यतोऽकिञ्चनतां प्राप्य भुञ्जेऽहं दुखमुत्बणम् ॥६५॥

अन्वयार्थ - एकदा = एकदा, दुःखाभिभूतः = दुःखों से घिरा हुआ, (च = और), भाग्यविवर्जितः = भाग्यविहीन, सः = उस, समुद्रदत्तः = समुद्रदत्त ने, भाग्यतः = भाग्य से, एकं = एक, मुनिं = मुनि को, परिष्वजि = निकटता से मिला, सः = उस, दरिद्रकः = गरीब समुद्रदत्त ने, तस्य = उन मुनिराज के, पादयोः = चरणों में, मस्तकं = सिर को, आधाय = रखकर, (प्रणनाम = प्रणाम किया), करुणाद्रदृशा = करुणा से नाम दृष्टि वाले, तेन = उन मुनिराज द्वारा, अयं = यह दरिद्र, दृष्टः = देखे गये, (सः = उसने) इदं = यह, वाक्यं = वाक्य, अब्रवीत् = बोला, नाथ! = हे मुनिराज!, मया = मेरे द्वारा, पूर्वभवे = पूर्वभवे में, किं = क्या, पातकं = पाप, कृतम् = किया, यतः = जिस कारण से, अत्र = इस भव में, अकिञ्चनतां = अकिञ्चनता अर्थात् गरीबी को, प्राप्य = प्राप्त करके, उत्बणं = भयंकर, अतितीव्र, दुःखं = दुःख को, भुञ्जे = भोग रहा हूँ।

श्लोकार्थ - एक दिन दुःखों से घिरा हुआ और भाग्यविहीन उस समुद्रदत्त ने भाग्य से एक मुनिराज से भेंट की। उस गरीब ने उन मुनिराज के चरणों में मस्तक को रखकर उन्हें प्रणाम किया। करुणा से नम दृष्टि वाले उन मुनिराज द्वारा देखा गया वह यह वाक्य बोला, हे मुनिराज! मैंने पूर्व भव में कौन सा पाप किया है जिससे इस जन्म में गरीबी को प्राप्त करके अत्यंत तीव्र दुःख को भोग रहा हूँ।

मुनिः प्राहान्यपर्याये कृतं पुण्यं न च त्वया ।

ततो दरिद्रतां प्राप्तः त्वं पुण्यादेव शर्मता ॥६६॥

अन्वयार्थ - मुनिः = मुनिराज, प्राह = बोले, अन्यपर्याये = अन्य पर्याय

में, त्वया = तुम्हारे द्वारा, पुण्यं = पुण्य कार्य, न = नहीं, कृतम् = किया गया, ततः = उसी पुण्य नहीं करने रूप कारण से, त्वं = तुम, दरिद्रतां = गरीबी को, प्राप्तः = प्राप्त हुये हो, च = और, पुण्यात् = पुण्य से, एव = ही, शर्मता = सुख या सौख्य, (प्राप्यते = प्राप्त किया जाता है)।

श्लोकार्थ - मुनिराज ने कहा — तुम्हारे द्वारा अन्य पर्याय अर्थात् पिछले भव में पुण्य नहीं किया गया उस कारण से ही तुम यहाँ दरिद्रता को प्राप्त हो गये हो। निश्चित ही यह जान लो कि सुख पुण्य से ही मिलता है।

पुनः सः सं मुनिं प्राह यतो मे दुःखसञ्चयः ।

नश्येत्तयं समाख्याहि यदि मय्यस्ति ते कृपा ॥६७॥

अन्वयार्थ - सः = वह समुद्रदत्त, पुनः = फिर से, तं = उन, मुनिं = मुनिराज से, प्राह = बोला, यतः = जिस कारण से, मे = मेरे, दुःखसञ्चयः = दुःखों का संचय, (अभूत् = हुआ), तत् = वह कारण, नश्येत् = नष्ट हो, (इति = ऐसा), त्वं = आप, समाख्याहि = अच्छी तरह से कहो, यदि = यदि, ते = तुम्हारी, कृपा = कृपा—दया, मयि = मुझ पर, अस्ति = है।

श्लोकार्थ - वह समुद्रदत्त फिर से उन मुनिराज से बोला— यदि तुम्हारी मुझ पर कृपा है तो आप उस को अच्छी तरह से बताइये जिससे मेरे यह दुःखों का संचय हुआ तथा वह कैसे नष्ट होवेगा यह भी बताइये।

तदोवाच मुनीशस्तं विवेकरहितं जडम् ।

तपोव्रतजपान्कर्तुमसमर्थं शुचार्दितम् ॥६८॥

सम्मोदशैलराजस्य यात्रां दारिद्र्यनाशिनीम् ।

धृत्वा पीताम्बराण्यङ्गे कुरु त्वमविचारयन् ॥६९॥

दारिद्र्यं न तवागारे स्थास्यत्यत्र न संशयः ।

इति श्रुत्वा तदैवासौ गतः पुण्याद्धि पर्वतम् ॥७०॥

अन्वयार्थ - तदा = तब, मुनीशः = मुनिराज ने, विवेकरहितं = विवेकहीन, जडं = मूर्ख, तपोव्रतजपान् = तपश्चरण, व्रत, और जप को,

कर्तुं = करने के लिये, असमर्थ = असमर्थ, शुचा = शोक से, आर्दितम् = दुखी, तं = उसको, उवाच = कहा, त्वम् = तुम, अविचारयन् = बिना कुछ विचार किये हुये, सम्मेदशैलराजस्य = शैलराज सम्मेद शिखर की, दारिद्र्यनाशिनी = दारिद्र्य को नष्ट करने वाली, यात्रा = यात्रा को, अङ्गे, = शरीर पर, पीताम्बराणि = पीले वस्त्रों को, धृत्वा = धारण करके, कुरु = करो, तव = तुम्हारे, आगारे = घर में, दारिद्र्यं = दारिद्र्यता, न = नहीं, स्थस्यति = ठहरेगी, अत्र = इस में, संशयः = सन्देह, न = नहीं, (आस्ते = है), इति = ऐसा, श्रुत्वा = सुनकर, असौ = वह, तदैव = उसी समय, पुण्यात् = पुण्यवशात्, हि = ही, पर्वतं = पर्वत की ओर, गतः = गया।

श्लोकार्थ - तब मुनिराज ने उस विवेकहीन मूर्ख और व्रत तप जप करने में असमर्थ दुखों से पीड़ित समुद्रदत्त को कहा, तुम बिना कुछ विचार किये दारिद्र्य दुख मिटाने वाली सम्मेदशिखर की यात्रा को अपने शरीर में पीत वस्त्र धारण करके करो। तुम्हारे घर में दारिद्र्यता नहीं ठहरेगी— इसमें कोई भी संशय नहीं है। मुनिराज के ऐसे वचन सुनकर वह उसी समय पुण्य के फल से पर्वत की ओर चल दिया।

आम्रवृक्षस्थले स्थित्वा चिन्तां चक्रे स्वमानसे ।

कस्यापि महतः पुंसः सकाशान्मे हृद्यं विधिः ॥७१॥

चिन्तां यावच्चकारेमां तावद्विद्याधरस्तदा ।

सुकैताख्यो विमानाच्यायात्तत्रैव भाग्यतः ॥७२॥

अन्वयार्थ - मे = मेरी, अयं = यह, हि = ही, विधिः = यात्रा करने हेतु पीत वस्त्र पहिनने का उपाय, कस्यापि = किसी, महतः = महान्, पुंसः = पुरुष के, सकाशात् = पास से, (भविष्यति = होगा) (इति = इस प्रकार), चिन्तां = चिन्ता को, आम्रवृक्षस्थले = आम्रवृक्ष के नीचे स्थल पर, स्थित्वा = बैठकर, स्वमानसे = अपने मन में, चकार = कर रहा था।

यावत् = जितने समय में, इमां = इस, चिन्तां = चिन्ता को,

चकार = किया, तावत् = उतने समय में, तदा = तभी, सुकेताख्यः = सुकेत नामक, विद्याधरः = विद्याधर, भाग्यतः = भाग्य से, तत्रैव = वहीं, विमानात् = विमान से, आयात् = आया।

श्लोकार्थ - मेरी यह विधि अर्थात् यात्रा के लिये पीत वस्त्र पहिनकर पर्यंत पर जाने का उपाय किस महापुरुष के पास से अर्थात् किस महापुरुष की सहायता से बन पायेगा इस प्रकार की चिंता को वह अपने मन में आम वृक्ष के नीचे बैठकर कर रहा था। उसने जितने समय में उस चिन्ता को किया उतने समय में ही तभी वहाँ एक सुकेत नामक विद्याधर वहाँ विमान से आ गया।

कनकादिधरा तस्य प्रिया सार्धं तया हि सः ।

पूजां पद्मप्रभस्यैव कर्तुकामः कृतोत्सवः ॥७३॥

अभ्यधावत् तं दृष्ट्वा तद्भावेन तदैव तत् ।

विमानं कीलितं गंतुं शशाक न किलाभ्रतः ॥७४॥

अन्वयार्थ - तस्य = उस विद्याधर की, प्रिया = प्रियरानी, कनकादिधरा = कनकादिधरा, (आसीत् = थी), तया = उसके, सार्धं = साथ, हि = ही, सः = वह, पद्मप्रभस्य = तीर्थङ्कर पद्म प्रभु की, पूजां = पूजा को, एव = ही, कर्तुकामः = करने की कामना करता हुआ, (च = और) कृतोत्सवः = उत्सव करता हुआ, अभ्यधावत् = दौड़ता हुआ सा जा रहा था, तदैव = उसी समय, तद्भावेन = उसी इच्छा की पूर्ति अर्थात् पीले वस्त्र प्राप्त करने के भाव से, तं = उस विद्याधर को, दृष्ट्वा = देखकर, (अचिन्तयत् = उस समुद्रदत्त ने सोचा), तदैव = तभी, तत् = वह, विमानं = विमान, कीलितं = कीलित हो गया, किल = निश्चित ही, अभ्रतः = आकाश से, गंतुं = जाने के लिये, न = नहीं, शशाक = समर्थ हुआ।

श्लोकार्थ - उस सुकेत विद्याधर की कनकादिधरा नाम की प्रिया थी जिसके साथ वह विद्याधर पद्मप्रभस्वामी की पूजा को करने की कामना और उत्सव करता हुआ दौड़ा सा जा रहा था।

समुद्रदत्त ने उस विद्याधर को पीतवस्त्र प्राप्त करने के भाव से देखकर विचार किया तब उस ही समय वह विमान कीलित हो गया सचमुच ही आकाश से जाने के लिये समर्थ नहीं हुआ ।

तदा विस्मितचित्तोऽसौ कारणान्वेषणोत्सुकः ।

समुद्रदत्तमायातं ददर्शातीव दुःखितम् ॥७५॥

उत्ततार तदा तत्र विमानं तत्स्पृहेरितम् ।

विद्याधरः प्रसन्नोऽभूत् तस्योपरि दयावशात् ॥७६॥

पीतानि वस्त्ररत्नानि तस्मै दत्त्वा स्वयं तथा ।

विद्याधरैरनेकैश्च तेन सार्धं चचालः ॥७७॥

अन्वयार्थ - तदा = तभी, विस्मितचित्तः = आश्चर्य से चकित चित्त वाला, कारणान्वेषणोत्सुकः = विमान रुक जाने के कारण को खोजने के उत्सुक, असौ = उस विद्याधर ने, आयातं = आते हुये, अतीव = अत्यधिक, दुःखितं = दुःखी होते हुये, समुद्रदत्तं = समुद्रदत्त को ददर्श = देखा, तदा = तब, तत्स्पृहेरितम् = उसकी इच्छा से प्रेरित, विमानं = विमान को, तत्र = वहीं, उत्ततार = उतार दिया, तस्य = उस समुद्रदत्त के, उपरि = ऊपर, दयावशात् = दया आ जाने से, विद्याधरः = विद्याधर, प्रसन्नः = प्रसन्न, अभूत् = हो गया, तथा = और, स्वयं = स्वयं ही, तस्मै = उसके लिये, पीतानि = पीले, वस्त्ररत्नानि = रत्न जड़ित वस्त्रों को, दत्त्वा = देकर, अनेकैः = अनेकों, विद्याधरैः = विद्याधरों के, च = और, तेन = उस समुद्रदत्त के, सार्धं = साथ, सः = वह सुकेत विद्याधर, चचाल = चला ।

श्लोकार्थ - तभी अर्थात् विमान के कीलित होने से आश्चर्य चकित चित्त वाला और विमान रुकने के कारण को खोजते हुये उस विद्याधर ने आते हुये तथा अत्यधिक दुःखी होते हुये समुद्रदत्त को देखा तब उसकी इच्छा से प्रेरित विमान को वहीं उतार दिया, समुद्रदत्त के ऊपर दया आ जाने से विद्याधर प्रसन्न हो गया तथा स्वयं ही उसके लिये पीले रत्नखचित वस्त्र देकर अनेकों विद्याधरों और उस समुद्रदत्त के साथ ही वह विद्याधर यात्रा के लिये चल दिया ।

विद्याधरस्य सामर्थ्यात् यात्रां सम्मेदभूभृतः ।

कृत्वा समुद्रदत्तोऽयं विरक्तस्सम्बभूव हि ॥७८॥

अन्वयार्थ - अयं = यह, समुद्रदत्त = समुद्रदत्त, विद्याधरस्य = विद्याधर की, सामर्थ्यात् = सामर्थ्य से, सम्मेदभूभृतः = सम्मेदशिखर की, यात्रां = यात्रा को, कृत्वा = हि = ही, विरक्तः = विरक्त, सम्बभूव = हो गया ।

श्लोकार्थ - यह समुद्रदत्त विद्याधर की सामर्थ्य से सम्मेदशिखर की यात्रा को करके ही विरक्त हो गया ।

स्वयं दीक्षां गृहीत्वासौ जैनीं परमपावनीम् ।

भावलिङ्गी बभूवासौ दुर्धरं द्वादशं तथा ॥७९॥

तपः कृत्वा महोग्रं च संन्यासविधिना ततः ।

तनुं त्यक्त्वा षोडशमे स्वर्गे प्रापदेन्द्रताम् ॥८०॥

अन्वयार्थ - असौ = वह समुद्रदत्त, स्वयं = स्वयं ही, परमपावनीं = परम पवित्र, जैनीं = जैनेश्वरी, दीक्षां = दीक्षा को, गृहीत्वा = ग्रहण करके, भावलिङ्गी = भावलिङ्गी मुनि, बभूव = हो गया, तथा = और, असौ = उसने, दुर्धरं = कठिनता से धारण किया जाने वाला, महोग्रं = अत्यधिक उग्र, द्वादशं = बारह प्रकार का, तपः = तपश्चरण, कृत्वा = करके, संन्यासविधिना = संन्यासमरण की विधि से, तनुं = शरीर को, त्यक्त्वा = छोड़कर, ततः = वहाँ से, षोडशमे = सोलहवें, स्वर्गे = स्वर्ग में, ऐन्द्रताम् = इन्द्रत्व को, प्रापत् = प्राप्त किया ।

श्लोकार्थ - वह समुद्रदत्त स्वयं ही परम पवित्र जैनेश्वरी दीक्षा को ग्रहण करके भावलिङ्गी मुनि हो गया और उसने दुर्धर एवं अत्यधिक उग्र बारहों तपों को करके संन्यासमरण की विधि से शरीर को छोड़कर वहीं से सोलहवें स्वर्ग में इन्द्रत्व को प्राप्त कर लिया ।

द्वाविंशतिसमुद्रायुश्च प्रापद्धि भवतारकः ।

तत्रासौ दिव्यसौख्यं हि तपसोग्रेण चान्वभूत् ॥८१॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस सोलहवें स्वर्ग में, भवतारकः = भाव को तरने

वाले, असौ = उस देव ने, द्वाविंशतिसमुद्रायुः = बाबीस सागर की आयु को, प्रापत् = प्राप्त किया, च = और, उग्रेण = उग्र, तपसा = तप के कारण, दिव्यसौख्यं = देवों को सुलभ सुखों को, अन्यमूत् = भोगा अर्थात् उनका अनुभव किया।

श्लोकार्थ - सोलहवें स्वर्ग में भवतारक उन मुनिराज ने देव होकर बाबीस सागर की आयु प्राप्त की और उग्र तपश्चरण के कारण प्राप्त दिव्य सुखों का अनुभव किया।

अथ जम्बूमति द्वीपे क्षेत्रे भारतभूमतः ।

कुरुजाङ्गलदेशोऽस्ति रमणीयः शुभाश्रयः ॥८२॥

हस्तिनागपुरं तत्र रत्नसेनो महीपतिः ।

मलयाख्या तस्य राज्ञी महासुकृतदीपिता ॥८३॥

अन्वयार्थ - अथ = इसके आगे, जम्बूमति = जम्बूवृक्ष से युक्त, द्वीपे = द्वीप में, भारतभूमतः = भारत भूभाग के, क्षेत्रे = क्षेत्र में, रमणीयः = मनोहर, (च = और), शुभाश्रयः = सुन्दरता का आश्रय, कुरुजाङ्गलदेशः = कुरुजाङ्गल नामक देश, अस्ति = है, तत्र = उस देश में, हस्तिनागपुरं = हस्तिनागपुर, (अस्ति = है), (तत्र = उस नगर में), रत्नसेनः = रत्नसेन नामक, महीपतिः = राजा, (च = और), तस्य = उस राजा की, महासुकृतदीपिता = अत्यधिक पुण्य से कान्ति युक्त, मलयाख्या = मलया नामक, राज्ञी = रानी, (आसीत् = थी)।

श्लोकार्थ - जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के भूभाग पर एक रमणीय और सुन्दरता का आश्रय स्वरूप कुरुजाङ्गल देश है जिसमें हस्तिनागपुर नामक नगर है जिसके राजा रत्नसेन थे और उनकी रानी मलया थी जो अत्यधिक पुण्यशाली थी।

तत्सुतो दिविजेन्द्रोऽभूत् चारुषेणाख्य उत्तमः ।

महाप्रतापवान् धीरः पुण्यवान् पुण्यकृतप्रियः ॥८४॥

चारुसेनस्य मन्दिरे चक्रवर्तिनृपाच्चापि ।

बहवो निधयो जाताः तत्सुखं स नृपोऽन्यभूत् ॥८५॥

अन्वयार्थ - दिविजेन्द्रः = स्वर्ग का वह इन्द्र, चारुषेणाख्यः = चारुषेण

नामक, उत्तमः = उत्तम, महाप्रतापवान् = अत्यंत पराक्रमी, धीरः = धीर, पुण्यवान् = पुण्योदय से युक्त, पुण्यकृतप्रियः = पुण्य करने से प्रिय, तत्सुतः = राजा रत्नसेन और रानी मलया का पुत्र, अमूत् = हुआ, चारुसेनस्य = चारुसेन के, मन्दिरे = महल या मन्दिर में, चक्रवर्तिनृपात् = चक्रवर्ती राजा से, अपि = भी, बहवः = अधिक-बहुत, निधयः = निधियां, जाताः = उत्पन्न हुई, च = और, सः = उस, नृपः = राजा ने, तत्सुखं = उस सुख का, अन्वभूत् = अनुभव किया।

श्लोकार्थ - स्वर्ग का वह इन्द्र रत्नसेन और मलया का उत्तम, अत्यंत पराक्रमी, धीर, पुण्यवान् और पुण्य करने से प्रिय पुत्र हुआ। चारुसेन के महल में चक्रवर्ती राजा से भी अधिक निधियां उत्पन्न हुई तथा उस राजा ने उस का अनुभव किया।

एकदा स वनंयातः क्रीडां कुर्वन् सुखान्वितः ।

दरिद्रमेकं दृष्ट्वा च पूर्वजन्म समस्मरत् ॥८६॥

ईदृग्विधो भवे पूर्वभवं चाहमपीक्षितम् ।

सम्मेदशैलयात्रातः क्षितीशोस्मीह साम्प्रतम् ॥८७॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, सः = वह राजा, क्रीडां = क्रीडा को, कुर्वन् = करता हुआ, सुखान्वितः = सुख से युक्त हुआ, वनं = वन में, यातः = गया, (तत्र = वहाँ), एकं = एक, दरिद्रं = दरिद्र को, दृष्ट्वा = देखकर, पूर्वजन्म = पूर्व के जन्म को, समस्मरत् = अच्छी तरह से याद किया, पूर्वं = पूर्व, भवे = भव में, अहम् = मैं, अपि = भी, ईदृग्विधः = इस प्रकार ही अथवा इसके जैसा ही दरिद्र, अभवम् = था, साम्प्रतं = अब वर्तमान में, सम्मेदशैलयात्रातः = सम्मेदशिखर की तीर्थवन्दना रूप यात्रा से, इह = यहाँ या इस नगर में, क्षितीशः = राजा, अस्मि = हूं, इति = ऐसा, ईक्षितम् = विचार किया।

श्लोकार्थ - एक दिन वह राजा क्रीडा करता हुआ और सुख का अनुभव करता हुआ एक वन में गया वहाँ उसने एक दरिद्र को देखा जिसे देखकर उसे अपना पूर्व जन्म याद आ गया अहो ! मैं पूर्वभव में इसके जैसा ही दरिद्र था अभी वर्तमान में

सम्मदशिखर की यात्रा के कारण ही इस नगर में राजा बन गया हूँ— इस प्रकार उस राजा ने सोचा ।

पराधीनतया यात्रा कृता सम्मदभूभृतः ।

ईदृक्फलं स्वतन्त्रेण कृता कीदृक्फला भवेत् ॥८८॥

अन्वयार्थ - (मया = मेरे द्वारा), सम्मदभूभृतः = सम्मदशिखर पर्वत की, यात्रा = यात्रा, पराधीनतया = दूसरे की अधीनता से, कृता = की गयी थी, (तस्याः = उस यात्रा का), ईदृक्फलं = ऐसा फल, (अस्ति = है), (तर्हि = तो), स्वतन्त्रेण = स्वतंत्र रूप से, कृता = की गयी, (यात्रा = सम्मदशिखर की वन्दना रूप यात्रा), कीदृक्फला = कितने या कैसे फल वाली, भवेत् = होगी ।

श्लोकार्थ - मेरे द्वारा सम्मदशिखर पर्वत की यात्रा विद्याधर के सहयोग रूप पराधीनता को स्वीकार करके की गयी थी उसका इतना या ऐसा फल मिला है तब स्वतन्त्र रूप से अर्थात् अन्य किसी के सहयोग विना की गयी यात्रा का फल कितना और कैसा होता होगा ।

इति संचिन्त्य हृदये स यात्रासम्मुखोऽभवत् ।

अष्टादशभिरक्षोणी मितान् जनवरान् नृपः ॥८९॥

सार्धकान् च विधायासौ संघभक्तिसमन्विताः ।

पीतवस्त्रधरो धीमान् शैलयात्रां चकार हि ॥९०॥

अन्वयार्थ - इति = इस प्रकार, हृदये = मन में, संचिन्त्य = विचारकर, सः = वह राजा, यात्रासम्मुखः = सम्मदशिखर की यात्रा करने के लिये सम्मुख अर्थात् तैयार, अभवत् = हो गया, संघभक्तिसमन्वितः = मुनिसंघ की भक्ति से पूर्ण होते हुये, असौ = उस, धीमान् = बुद्धिमान्, नृपः = राजा ने, पीतवस्त्रधरः = पीले वस्त्र धारण करते हुये, अष्टादशभिः = अठारह, अक्षोणी = अक्षोणी, मितान् = प्रमाण, जनवरान् = श्रेष्ठ अर्थात् भव्य मनुष्यों को, सार्धकान् = साथ चलने वाला, विधाय = करके, शैलयात्रां = सम्मद पर्वत की यात्रा को, चकार = किया ।

श्लोकार्थ - स्वतंत्र रूप से यात्रा उससे भी अधिक फल देने वाली होगी यह अपने मन में सोचकर वह राजा सम्मेदशिखर की यात्रा करने के लिये सम्मुख हो गया। संघ की भक्ति में तत्पर उस बुद्धिमान् राजा ने पीले वस्त्र पहिने हुये अठारह अक्षौहणी संख्या के बराबर प्रमाण में श्रेष्ठ-भव्य मनुष्यों को साथ चलने वाला करके सम्मेद पर्वत की यात्रा को किया।

नवमोक्तशतान्येष रत्नानि प्राप्य भूमिपः ।

अनेकलोकसम्पन्नो बभूवाऽस्य प्रयाणतः ॥६१॥

अन्वयार्थ - एषः = यह, भूमिपः = राजा, अस्य = इस सम्मेद पर्वत के, प्रयाणतः = प्रयाण अर्थात् यात्रा के उद्यम से, नवमोक्तशतानि = नौ सौ, रत्नानि = रत्नों को प्राप्य = प्राप्त कर, अनेकलोकसम्पन्नः = अनेक लोगों में सम्पन्न, बभूव = हो गया।

श्लोकार्थ - यह राजा इस सम्मेदशिखर पर्वत की यात्रा से नौ सौ रत्नों को पाकर के अनेक लोगों में सम्पन्न हो गया।

अवर्णनीया तद्भूतिः नानारत्नमयी किल ।

वर्णनाद् ग्रन्थविस्तारो भवेत्तस्मान्न चोच्यते ॥६२॥

अन्वयार्थ - किल = सचमुच ही, नानारत्नमयी = अनेक रत्नों से परिपूर्ण, तद्भूतिः = उस राजा का वैभव, अवर्णनीया = वर्णनातीत था, तस्मात् = उस, वर्णनात् = वर्णन से, ग्रन्थविस्तारः = ग्रन्थ का विस्तार, भवेत् = होगा, तस्मात् = इसलिये, न = नहीं, उच्यते = कहा जाता है।

श्लोकार्थ - उस राजा का अनेक रत्नों से परिपूर्ण वैभव अवर्णनीय था उसका वर्णन करने से ग्रन्थ बढ़ जायेगा इसलिये वह वर्णन नहीं किया जा रहा है।

ईदृग्विधमपि स्वीयं चारुषेणस्स भव्यराट् ।

राज्यं त्यक्त्वा विरक्तोऽभूत् जैनी दीक्षामथाग्रहीत् ॥६३॥

अन्वयार्थ - सः = वह उस, भव्यराट् = भव्य सम्राट्, चारुषेणः = चारुषेण

राजा, ईदृग्विधमपि = इस प्रकार के भी, स्वीयं = अपने, राज्यं = राज्य को, त्यक्त्वा = छोड़कर, विरक्तः = विरक्तो, अभूत् = हो गया, अथ = उसके बाद, जैनीं = जैनेश्वरी, दीक्षां = मुनिदीक्षा को, अग्रहीत् = ग्रहण कर लिया।

श्लोकार्थ - वह गव्यों का सम्राट् राजा चारुषेण अपने इस प्रकार के राज्य को छोड़कर विरक्त हो गया फिर उसने जैनेश्वरी दीक्षा को ग्रहण कर लिया।

ध्वनिं जयजयेत्युच्चैः शृण्वन् सततमाचरन् ।

स्वयम्भूनाम तत्कूटमभिवन्द्य मुदान्वितः ॥६४॥

एकाब्धुदं चतुर्युक्ताशीतिकोटिमुनीश्वरैः ।

सार्धं सः शिवपदं प्राप्य बभूव भवनिर्वृत्तः ॥६५॥

अन्वयार्थ - सततं = निरन्तर, आचरन् = आचरण करते हुये, जयजयेति = जय हो, जय हो इस प्रकार, उच्चैः = उच्च स्वर वाली तेज, ध्वनिं = ध्वनि को, शृण्वन् = सुनते हुये, स्वयम्भूनाम् = स्वयंभू नामक, तत्कूटं = उस कूट को, अभिवन्द्य = प्रणाम करके, मुदान्वितः = प्रसन्नता से भरे हुये, सः = वह मुनिराज, एकाब्धुदं = एक अरब, चतुर्युक्ताशीतिकोटिमुनीश्वरैः = चौरासी करोड़ मुनिराजों के, सार्धं = साथ, शिवपद = मोक्ष पद को, प्राप्य = प्राप्त करके, भवनिर्वृत्तः = संसार से मुक्त, बभूव = हुये।

श्लोकार्थ - निरन्तर आचरण करते हुये तथा जय हो, जय हो ऐसी उच्च स्वर वाली ध्वनि को सुनते हुये स्वयंभू नाम कूट को प्रणाम करके प्रसन्नता से भरे हुये वह मुनिराज एक अरब चौरासी करोड़ मुनिराजों के साथ मोक्षपद पाकर भव से मुक्त हुये।

महामोक्षपदं तस्य कूटं भव्यजनाश्रितम् ।

श्रद्धया योऽभिवन्देत स निर्वाणपदं लभेत ॥६६॥

अन्वयार्थ - तस्य = सम्पेद शिखर पर्वत की, भव्यजनाश्रितं = भव्य जनों के आश्रय स्वरूप, महामोक्षपदं = महान् मोक्ष का कारण स्थान, कूटं = कूट को, यः = जो, श्रद्धया = श्रद्धा से,

अभिवन्देत = प्रणाम करे, सः = वह, निर्वाणपदं = निर्वाणपद को, लभेत = पाये।

श्लोकार्थ - सम्पेदशिखर की कूट, जो भव्यजनों का आश्रय स्थल एवं महान् मोक्ष की कारण है, को जो भी श्रद्धा से प्रणाम करे वह निर्वाण पद को पाये।

यस्माच्च श्रीमान् विश्वनाथो ह्यनन्तः

सिद्धस्थानं विश्ववाञ्छितं जगाम।

यो भव्यौघैः पूजितो वन्दितश्च

कूटं शुद्धं तं स्वयम्भवाख्यमीडे ॥६७॥

अन्वयार्थ - यस्मात् = जिस कूट से, श्रीमान् = श्री अर्थात् अन्तरङ्ग बहिरङ्ग, लक्ष्मी सहित, विश्वनाथः = जगत् के स्वामी, अनन्तः = भगवान् अनन्तनाथ, हि = निश्चित रूप से, विश्ववाञ्छितं = सभी के लिये इच्छित, सिद्धस्थानं = मोक्षस्थान को, जगाम = गये, च = और, यः = जो कूट, भव्यौघैः = भव्य जीवों के समूहों से, पूजितः = पूजी जाती है, वन्दितः = वन्दना की जाती है, तं = उस, शुद्धं = शुद्ध अर्थात् पवित्र, स्वयम्भवाख्यं = स्वयंभू नामक, कूटं = कूट को, (अहं = मैं), ईडे = नमस्कार करता हूं, उसकी स्तुति करता हूं।

श्लोकार्थ - जिस कूट से अन्तरङ्ग बहिरङ्ग लक्ष्मी के धनी अर्थात् केवलज्ञानी भगवान् अनन्तनाथ निश्चित ही विश्ववाञ्छित पद मोक्ष स्थान को गये तथा जो कूट भव्यजनों के समूहों द्वारा वन्दनीय, पूजनीय है उस पवित्र स्वयंभू नामक कूट को मैं प्रणाम करता हूं, उसकी स्तुति करता हूं।

[इति दीक्षितह्यनेमिदत्तविरचिते श्री सम्पेदशैलमाहात्म्ये

तीर्थङ्करानन्तनाथवृत्तान्तपुरस्सरं श्रीस्वयंभूकूटवर्णनं

नाम त्रयोदशमोऽध्यायः समाप्तः।]

[इस प्रकार दीक्षितह्यनेमिदत्त द्वारा रचित श्री सम्पेदशैलमाहात्म्य नामक काव्य में तीर्थङ्कर अनन्तनाथ का वृत्तान्त बताता हुआ श्री स्वयंभूकूट का वर्णन करने वाला तेरहवां अध्याय समाप्त हुआ।]

अथ चतुर्दशमोऽध्यायः

धर्मान्दशविधान्मोक्ष भव्यानां पुण्यकर्मणाम् ।

उपादिशत्तमीशानं धर्मनाथं सदा नुमः ॥१॥

अन्वयार्थ - यः = जिन्होंने, अत्र = यहाँ, पुण्यकर्मणां = पुण्य करने वाले, भव्यानां = भव्य जीवों के, (कृते = लिये), दशविधान् = दश प्रकार के, धर्मान् = धर्मों को, उपादिशत् = उपदेश रूप से कहा, तम् = उन, ईशानं = तीर्थङ्कर, धर्मनाथ = धर्मनाथ को, सदा = हमेशा, नुमः = हम नमस्कार करते हैं ।

श्लोकार्थ - जिन्होंने यहाँ पुण्यात्मा भव्य जीवों के लिये दश प्रकार के धर्मों का उपदेश दिया उन तीर्थङ्कर प्रभु धर्मनाथ को हम सब प्रणाम करते हैं ।

यो वै दत्तवरात्कूटात्धर्माधर्मौ विभज्य च ।

शुक्लध्यानात् गतो मोक्षं वक्ष्ये तच्चरितं शुभम् ॥२॥

अन्वयार्थ - यः = जो, दत्तवरात् = दत्तवर नामक, कूटात् = कूट से, धर्माधर्मौ = धर्म और अधर्म को, विभज्य = अलग करके, शुक्लध्यानात् = शुक्लध्यान से, मोक्षं = मोक्ष को, गतः = गये, तच्चरितं = उनके चरित को, वै = निश्चित ही, शुभं = शुभ, वक्ष्ये = मैं कहता हूँ ।

श्लोकार्थ - जो धर्म और अधर्म का भेद करके या धर्म को अधर्म से अलग बताकर दत्तवर कूट से शुक्लध्यान के वश से मोक्ष चले गये उनके निश्चित ही शुभ चरित को मैं कहता हूँ ।

धातकीनामसद्वीपे विदेहे पूर्व उत्तमे ।

सीतादक्षिणभागेऽस्ति यत्सदेशः शुभालयः ॥३॥

सुसीमानगरं तत्रा राजा दशरथो महान् ।

प्रतापवान् मित्रागणाह्लादकपूर्णचन्द्रमाः ॥४॥

शत्रूणां कालरूपश्च स्वर्णकान्तिर्ज्वलत्तनुः ।

धर्मकृद्धारुणोऽसौ शशास पृथिवीं प्रभुः ॥५॥

अन्वयार्थ - धातकीनामसद्वीपे = धातकीखण्ड नामक सुन्दर द्वीप में, पूर्वे = पूर्व, विदेहे = विदेह क्षेत्र में, उत्तमे = उत्तम, सीतादक्षिणभागे = सीतानदी के दक्षिण भाग में, शुभालयः = सुन्दरता का घर, वत्सदेशः = एक वत्स नामक देश, (आसीत् = था) तत्र = वहाँ, सुसीमानगरं = सुसीमा नगर, (आसीत् = था), (तत्र = वहाँ), दशरथः = दशरथ नामक, प्रतापवान् = प्रतापी, मित्रागणाह्लादकपूर्णचन्द्रमाः = मित्र जनों को प्रसन्न करने हेतु पूर्ण चन्द्रमा के समान, स्वर्णकान्तिः (इव) = स्वर्ण की कान्ति के समान, ज्वलत्तनुः = प्रकाशित-तेजस्वी शरीर वाला, च = और, शत्रूणां = शत्रुओं के लिये, कालरूपः = काल अर्थात् मृत्युस्वरूप, महान् = एक महान्, राजा = राजा, (अभूत् = हुआ), धर्मकृत् = धर्म करने वाला, (च = और) धर्मरूपः = धर्म स्वरूप, असौ = उस, प्रभुः = राजा ने, पृथिवीं = पृथ्वी पर, शशास = शासन किया ।

श्लोकार्थ - सुंदर धातकीखण्ड द्वीप के विदेहक्षेत्र में सीता नदी के दक्षिण दिशा में स्थित उत्तम भाग में सुन्दरता का घर स्वरूप एक वत्स नामक देश था, जहाँ सुसीमानगर में दशरथ नामक एक प्रतापी, पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान मित्रों को खुश रखने वाला, स्वर्णकान्ति के समान तेजस्वी शरीर वाला और शत्रुओं के लिये काल अर्थात् मृत्यु स्वरूप महान् राजा राज्य करता था । स्वयं धर्म करने वाला और धर्मस्वरूप उस राजा ने पृथ्वी पर शासन किया ।

स शरत्पूर्णिमां दृष्ट्वा पूर्णचन्द्रसमुज्ज्वलाम् ।

नश्वरीं तत्क्षणादेव विरक्तोऽभूत्स्वराज्यतः ॥६॥

अन्वयार्थ - पूर्णचन्द्रसमुज्ज्वलां = पूर्ण चन्द्रमा के कारण उज्ज्वलता को प्राप्त, शरत्पूर्णिमां = शरद ऋतु की पूर्णिमा को, नश्वरीं = नष्ट होने वाली, दृष्ट्वा = देखकर, तत्क्षणात् एव = उस ही समय, सः = वह राजा, स्वराज्यतः = अपने राज्य से, विरक्तः = विरक्त, अभूतः = हो गया ।

श्लोकार्थ - पूर्ण चन्द्रमा के कारण अत्यंत उज्ज्वलता को प्राप्त शरत्कालीन पूर्णिमा को नष्ट होता हुआ देखकर तत्क्षण ही वह राजा अपने राज्य से विरक्त हो गया।

राज्यं च महारथायाथ दत्त्वा हि जिनसेवितः ।

तपो दीक्षां स जग्राह विपिने च मुनिसेविते ॥७॥

अन्वयार्थ - अथ च = और इसके पश्चात्, महारथाय = महारथ के लिये, राज्यं = राज्य को, दत्त्वा = देकर, हि = ही, सः = उस, जिनसेवितः = जितेन्द्रियता को चाहने वाले जिनेन्द्र भगवान् के भक्त ने, मुनिसेविते = मुनियों द्वारा सनाथ, विपिने = जङ्गल में, तपोदीक्षां = तपश्चरण करने के लिये मुनिदीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया।

श्लोकार्थ - इसके बाद महारथ के लिये राज्य देकर उस जिनसेवित राजा ने मुनियों से युक्त वन में तपश्चरण हेतु मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली।

एकादशाङ्गदृक् चाथ षोडशामलभावनाः ।

भावयित्वा बबन्धासौ गोत्रां तीर्थकरं वरम् ॥८॥

अन्वयार्थ - च = और, अथ = फिर, असौ = उन, एकादशाङ्गदृक् = ग्यारह अङ्गों के ज्ञाता मुनिराज ने, षोडश = सोलह, अमलभावनाः = निर्मलभावनाओं को, भावयित्वा = भाकर, वरं = श्रेष्ठ, तीर्थकरं = तीर्थङ्कर, गोत्रां = पुण्य को, बबन्ध = बाँधा।

श्लोकार्थ - फिर ग्यारह अङ्गों के ज्ञाता उन मुनिराज ने सोलह निर्मल भावनाओं को भाकर सर्वश्रेष्ठ तीर्थकर प्रकृति नामक पुण्य को बांध लिया।

अन्ते सन्यासविधिना प्राणत्यागं विधाय सः ।

सर्वार्थसिद्धिमगमत् तत्रा प्रापाहमिन्द्रताम् ॥९॥

अन्वयार्थ - अन्ते = आयु के अन्त में, सः = उन मुनिराज ने, सन्यासविधिना = सन्यासमरण की विधि से, प्राणत्यागं = प्राणों का त्याग, विधाय = करके, सर्वार्थसिद्धिम् =

सर्वार्थसिद्धि को, अगमत् = चले गये, तत्रा = वहाँ, अहमिन्द्रतां = अहमिन्द्र पद को, प्राप = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ - आयु के अन्त में संन्यासमरण की विधि से प्राणों का त्याग करके वह मुनिराज सर्वार्थसिद्धि चले गये और वहाँ अहमिन्द्रता को प्राप्त कर लिया।

तत्रा प्रभुर्यथोक्तायुराहारोच्छ्वाससंयुतः ।

त्रि ज्ञानाधीश्वरो भूत्वा सर्वकार्यक्षमोऽभवत् ॥१०॥

अन्वयार्थ - तत्रा = उस सर्वार्थसिद्धि में, प्रभुः = वह प्रभु, यथोक्तायुराहारोच्छ्वाससंयुतः = जैसा शास्त्रों में कथित है वैसे ही आयु, आहार और उच्छ्वास से युक्त वह अहमिन्द्र, त्रि-ज्ञानाधीश्वरः = तीन ज्ञान का स्वामी, भूत्वा = होकर, सर्वकार्यक्षमः = सारे कार्यों को करने में समर्थ, अभवत् = हुआ।

श्लोकार्थ - उस सर्वार्थसिद्धि में उन प्रभु ने शास्त्रोक्त अर्थात् तैत्तीस मागर की आयु प्राप्त की तैत्तीस हजार वर्ष में अमृत आहार और तैत्तीस पक्ष में श्वासोच्छ्वास लेते थे। इस प्रकार तीन ज्ञान के स्वामी होकर वह सारे कार्यों को करने में सक्षम थे।

परमानन्दभोक्ता स सिद्धध्यानपरायणः ।

तत्रा षण्मासशिष्टायुः तथानासक्तमानसः ॥११॥

ततश्च्युतो यस्मिन् देशे यन्नृपस्य शुभे गृहे ।

अवतीर्णो जगत्स्वामी तद्वक्ष्ये शृणुतामलाः ॥१२॥

अन्वयार्थ - तत्रा = वहाँ, परमानन्दभोक्ता = परम आनन्द को भोगने वाला, षण्मासशिष्टायुः = छह माह मात्र अवशिष्ट आयु वाला, सिद्धध्यानपरायणः = सिद्धभगवन्तों के ध्यान में तत्पर, तथा = और, अनासक्तमानसः = अनासक्त मन वाला, सः = वह देव, ततः = सर्वार्थसिद्धि से, च्युतः = च्युत हुआ, यस्मिन् = जिस, देशे = देश में, यन्नृपस्य = जिस राजा के, शुभे = शुभ, गृहे = घर में, जगत्स्वामी = जगत् का स्वामी, अवतीर्णः = अवतरित, उत्पन्न हुआ, तत् = उस अवतरण को, वक्ष्ये

= मैं कहता हूँ, अमलाः = हे निर्मल मन वाले लोगों, शृणुत
= तुम सब सुनो।

श्लोकार्थ - सर्वार्थसिद्धि में परम आनंद को भोगने वाला, छह माह शेष आयु वाला, सिद्ध भगवन्तों के ध्यान में अत्यंत चतुर और अनासक्त चित्तवाला वह देव सर्वार्थसिद्धि से च्युत होकर जिस देश में, जिस राजा के शुभ घर में जगत्स्वामी बनकर अवतीर्ण हुआ मैं उस अवतरण कथा को कहता हूँ। हे निर्मलचित्त वालों तुम सब उसे सुनो।

जम्बूमति महापुण्ये द्वीपे क्षेत्रे च भारते।

कौशलाख्ये शुभे देशे भाति रत्नपुरं महत् ॥१३॥

अन्वयार्थ - जम्बूमति = जम्बू वृक्ष वाले, द्वीपे = द्वीप में, महापुण्ये = महापुण्यशाली, भारते = भारत, क्षेत्रे = क्षेत्र में, कौशलाख्ये = कौशल नामक, शुभे = शुभ, देशे = देश में, महत् = बड़ा, रत्नपुरं = रत्नपुर नामक नगर, भाति = सुशोभित होता था।

श्लोकार्थ - जम्बूद्वीप के महापुण्यशाली भरतक्षेत्र में कौशल नामक एक सुन्दर देश था जिसमें रत्नपुर नामक एक बड़ा नगर सुशोभित होता था।

इक्ष्वाकुवंशे सद्गोत्रो काश्यपे भानुभूपतिः।

अभवत्तत्पुरत्राता चादभुतोयं निधिर्महान् ॥१४॥

अन्वयार्थ - तत्पुरत्राता = उस रत्नपुर नगर का पालनहार रक्षक, भानुभूपतिः = भानु राजा, इक्ष्वाकुवंशे = इक्ष्वाकुवंश में, काश्यपे = काश्यप नामक, सद्गोत्रे = शुभ गोत्र में, अभवत् = हुआ था, अयं = यह राजा, अदभुत = आश्चर्यकारी, निधिः = पुण्यनिधि, च = और, महान् = महान्, (अभवत् = था)।

श्लोकार्थ - उस रत्नपुर नगर के रक्षक या पालन कर्त्ता राजा भानु इक्ष्वाकुवंश के काश्यप नामक शुभ गोत्र में हुये थे यह महान् राजा अदभुत पुण्य की निधि अर्थात् अत्यधिक पुण्यशाली था।

सुव्रता तस्य महिषी सती धर्मपरायणा।

त्रिजगत्सुन्दरी मौलिरत्नं स्त्रीरत्नसंज्ञिता ॥१५॥

अन्वयार्थ - तस्य = उस राजा की, सुव्रता = सुव्रता नाम की, सती = सतीत्व धर्म का पालन करने वाली शीलवती, धर्मपरायणा = धर्मशीला, त्रिजगत्सुन्दरी = तीनों जगत् में सर्वाधिक सुन्दरता को धारण करने वाली, मौलिरत्नम् (इव) = मुकुट में जड़ित रत्न के समान, स्त्रीरत्नसंज्ञिता = स्त्रीरत्न संज्ञा से विभूषित, महिषी = रानी, (आसीत् = थी)।

श्लोकार्थ - उस राजा की सुव्रता नाम की शीलवती धर्मनिष्ठा सम्पन्न धर्मक्रियाओं को करने वाली तीन लोक में सर्वाधिक सौन्दर्य को धारण करने वाली तथा मौलिरत्न के समान स्त्रीरत्न की संज्ञा से विभूषित एक रानी थी।

तथा सह स धर्मात्मा शास्त्रविन्नीतिवित्तथा ।

धर्म्यान्भोगान् यथाकालं बुभुजे वासवोपमः ॥१६॥

अन्वयार्थ - तथा = उस रानी के, सह = साथ, धर्मात्मा = धर्मानुरागी या धर्म मार्ग पर चलने वाले, शास्त्रवित् = शास्त्र के ज्ञाता, तथा = और, नीतिवित् = नीतियों के ज्ञाता, सः = उस, वासवोपमः = इन्द्र के समान राजा ने, यथाकालं = उचितकाल में, धर्म्यान् = धर्म की मर्यादा के योग्य, भोगान् = भोगों को, बुभुजे = भोगा।

देवावतारं तद्गोहे जगत्प्रवनमुत्तमम् ।

ज्ञात्वा शक्राज्ञया चक्रे रत्नवृष्टिं धनाधिपः ॥१७॥

अन्वयार्थ - जगति = जगत् में, उत्तमं = उत्तम, अवतारं = पालनहार स्वरूप, देवावतारं = प्रभु के जन्म को, ज्ञात्वा = जानकर, धनाधिपः = कुबेर ने, इन्द्राज्ञया = इन्द्र की आज्ञा से, तद्गोहे = उस राजा के घर में, रत्नवृष्टिं = रत्नों की वर्षा, चक्रे = की।

श्लोकार्थ - जगत् में उत्तम पालनहार प्रभु का जन्म जानकर इन्द्र की आज्ञा से उस राजा के घर में कुबेर ने रत्नों की वर्षा की।

षण्मासावध्यहोरात्रमेकरूपां किलाद्भुताम् ।

रत्नवृष्टिं समीक्ष्यैनां भावि भर्द जगुर्बुधाः ॥१८॥

अन्वयार्थ - षण्मासमध्यहोरात्रं = छह माह तक दिन रात, एकरूपाम् = एक जैसी, अद्भुतां = आश्चर्यकारी, एनां = इस, रत्नवृष्टिं = रत्नों की वर्षा को, समीक्ष्य = देखकर, बुधाः = विद्वज्जनों ने, भावि = आगे, मर्द = कल्याण-अच्छाई को, जगुः = जान लिया।

श्लोकार्थ - छह माह तक दिन रात लगातार एक जैसी एवं आश्चर्यकारी इस रत्नवृष्टि को देखकर विद्वज्जनों ने भावि कल्याण को जान लिया।

वैशाखे मासि शुक्लायां त्रयोदश्यां चतुष्कमे ।

सुप्ता देवी प्रभाते सा स्वप्नानैक्षत षोडश ॥१६॥

अन्वयार्थ - वैशाखे = वैशाख, मासि = महीने में, शुक्लायां = शुक्ल पक्ष में, त्रयोदश्यां = तेरस के दिन, चतुष्कमे = चौथे अर्थात् रोहिणी नक्षत्र में, प्रभाते = प्रभात बेला में, सुप्ता = सोयी हुयी, सा = उस, देवी = रानी ने, षोडश = सोलह, स्वप्नान् = स्वप्नों को, ऐक्षत = देखा।

श्लोकार्थ - वैशाख शुक्ल तेरस को चौथे रोहिणी नक्षत्र के होने पर प्रभातबेला में सोयी हुयी उस रानी ने सोलह स्वप्नों को देखा।

तदन्ते मत्तमातङ्गं प्रविष्टं मुखपङ्कजे ।

समालोक्य प्रबुद्धा सा मानसेनाद्भुतमलभत् ॥२०॥

अन्वयार्थ - तदन्ते = स्वप्न देखने के अन्त में, मुखपङ्कजे = मुखकमल में, प्रविष्टं = प्रविष्ट होते हुये, मत्तमातङ्गं = उन्मत्त हाथी को, समालोक्य = देखकर, प्रबुद्धा = जागी हुयी, सा = उस रानी ने, मानसेन = मन द्वारा, अद्भुतं = आश्चर्य को, अलभत् = प्राप्त किया।

श्लोकार्थ - स्वप्न देखने के अन्त में उस रानी ने अपने मुख में प्रविष्ट होते हुये उन्मत्त हाथी को देखा। जागी हुई उस रानी ने मन में कुछ अद्भुत आश्चर्यकारी अनुभव किया अर्थात् वह आश्चर्य को प्राप्त हुई।

पत्युस्समीपं गत्वाथ तन्मुखास्वप्नसत्फलम् ।

श्रुत्याऽनन्दमवाप्योच्चैः गर्भवत्यभवत्सती ॥२१॥

अन्ययार्थ - अथ = इसके बाद, पत्युः = पति के, समीपं = पास में, गत्वा = जाकर, तन्मुखात् ! = पति के मुख से, स्वप्नसत्फलं = स्वप्न के शुभ फल को, श्रुत्वा = सुनकर, उच्चैः = उत्कृष्ट, आनन्दं = आनन्द को, अवाप्य = प्राप्त करके, (सा = वह), सती = पतिव्रता रानी, गर्भवती = गर्भधारण करने वाली, अभवत् = हुई।

श्लोकार्थ - स्वप्न देखने के बाद पति के पास जाकर, उनके मुख से स्वप्नों के शुभ फल को सुनकर और उत्कृष्ट आनंद प्राप्त करके वह पतिव्रता रानी गर्भवती हुयी।

माघे मासि त्रयोदश्यां शुक्लायां पुष्यमे शुभे ।

असूत साऽद्भुतं पुत्रं सर्वदेवगणेश्वरम् ॥२२॥

अन्ययार्थ - माघे = माघ, मासि = माह में, शुक्लायां = शुक्ल पक्ष में, त्रयोदश्यां = तेरस के दिन, शुभे = शुभ, पुष्यमे = पुष्य नक्षत्र में, सा = उस रानी ने, सर्वदेवगणेश्वरं = सभी देवता गणों के स्वामी, अद्भुतं = विलक्षण आश्चर्योत्पादक, पुत्रं = पुत्र को, असूत = उत्पन्न किया।

श्लोकार्थ - माघ मास की शुक्ला त्रयोदशी के दिन शुभकारी पुष्य नक्षत्र में सभी देवताओं के ईश्वर स्वरूप अद्भुत अर्थात् विलक्षण पुत्र को जन्म दिया।

इन्द्रादिदेवास्तज्ज्ञात्वा जयशब्दपुरस्सराः ।

तदैयागत्य तत्रैव समादायाद्भुतं शिशुम् ॥२३॥

सुमेरुपर्वतं गत्वा चक्रुस्तत्रोत्सवं पृथुम् ।

अभिषिच्य प्रभुं शक्रः क्षीरवारिधिवारिभिः ॥२४॥

तदन्ते प्रभुमाभूष्य दिव्यभूषणमालया ।

पुनः रत्नपुरं प्राप्य तत्राप्युत्सवमाकरोत् ॥२५॥

अन्ययार्थ - तज्ज्ञात्वा = प्रभु के जन्म को जानकर, तदैव = उस ही समय,

जयशब्दपुरस्सराः = जय शब्दों को पुरस्कृत अर्थात् सामने उच्चरित करते हुये, इन्द्रादिदेवाः = इन्द्र आदि देवता, तत्रैव = वहीं, आगत्य = आकर, अद्भुतं = अलौकिक, शिशुं = तीर्थङ्कर शिशु को, समादाय = लेकर, (च = और), सुमेरुपर्वतं = सुमेरुपर्वत पर, गत्वा = जाकर, तत्र = वहाँ, पृथुं = बहुत बड़ा या प्रशस्त, उत्सवं = उत्सव को चक्रुः = किया, शक्रः = इन्द्र ने, क्षीरवारिधिवारिभिः = क्षीरसागर के जल से, प्रभुं = प्रभु का, अभिषिज्य = अभिषेक करके, तदन्ते = अभिषेक के बाद, दिव्यभूषणमालयाः = दिव्य वस्त्र आभूषणों की माला से, प्रभुं = प्रभु को, अभूष्य = अलङ्कृत करके, पुनः = फिर से, रत्नपुरं = रत्नपुर को, प्राप्य = प्राप्त करके, तत्रापि = उस रत्नपुर में भी, उत्सवं = उत्सव को, आकरोत् = किया।

श्लोकार्थ - प्रभु के जन्म को जानकर उस ही समय जयशब्द करते हुये इन्द्र आदि देव गणों ने वहाँ आकर तथा प्रभु को लेकर और सुमेरु पर्वत पर जाकर वहाँ प्रशस्त और विशाल उत्सव किया। इन्द्र ने क्षीरसागर के जल से प्रभु का अभिषेक करके और उसके अन्त में प्रभु को दिव्य आभूषणों की माला से अलङ्कृत करके पुनः रत्नपुर आ गया जहाँ उसने उत्सव किया।

धर्मकृद्वा धर्मभृद्वा धर्मविद्वा सुरेश्वरः ।

तद्धर्मनाथनामानं कृत्वा स्वर्गमथाऽगमत् ॥२६॥

अन्वयार्थ - अथ = इसके बाद, धर्मकृत् = धर्म करने वाला, वा = अथवा, धर्मभृद् = धर्म से पूर्ण, वा = अथवा, धर्मविद् = धर्म को जानने वाला, (सः = वह), सुरेश्वरः = देवताओं का स्वामी इन्द्र, तद्धर्मनाथनामानं = उनका धर्मनाथ नाम, कृत्वा = करके, स्वर्गम् = स्वर्ग को, अगमत् = चला गया।

श्लोकार्थ - धर्म करने वाले अथवा धर्म को धारण करने वाले अथवा धर्म को जानने वाले इन्द्र उनका नाम धर्मनाथ रखकर स्वर्ग चला गया।

अनन्तनाथाद् गच्छत्सु चतुर्वर्धिषु स प्रभुः ।

तन्मध्ये जीवी धर्माख्य नाथः समभवत्किल ॥२७॥

अन्वयार्थ - अनन्तनाथात् = तीर्थङ्कर अनन्तनाथ से, चतुर्वर्धिषु = चार सागर, गच्छत्सु = चले जाने पर, तन्मध्ये = उसके मध्य में, जीवी = जीवन् वाले, धर्माख्यनाथः = धर्मनाथ नामक, सः = वह, प्रभुः = तीर्थङ्कर, समभवत्किल = हुये ।

श्लोकार्थ - तीर्थङ्कर अनन्तनाथ के मोक्ष जाने के बाद चार सागर का काल बीत जाने पर तीर्थङ्कर धर्मनाथ हुये वे उक्त काल के अन्तर्जीवी हुये थे अर्थात् अनन्तनाथ के मोक्ष जाने के बाद चार सागर बीतने पर तीर्थङ्कर धर्मनाथ मोक्ष चले गये ।

दशलक्षाष्टगीतायुः उत्सेधस्तस्य सत्तनोः ।

पञ्चचत्वारिंशदुक्तधनुर्मित उदाहृतः ॥२८॥

अन्वयार्थ - तस्य = उनकी, दशलक्षाष्टगीतायुः = दस लाख आठ वर्ष कही गयी आयु, सत्तनोः = सुन्दर शरीर की, उत्सेधः = ऊँचाई, पञ्चचत्वारिंशदुक्तधनुर्मितः = पैंतालीस धनुष प्रमाण, उदाहृतः = कही गयी है ।

श्लोकार्थ - उनकी अर्थात् तीर्थङ्कर धर्मनाथ की आयु दस लाख आठ वर्ष और उनके शरीर की ऊँचाई पैंतालीस धनुष प्रमाण शास्त्रों में कही गयी है ।

मोदयित्वा स कौमारे पितरौ भाग्यसागरौ ।

तारुण्ये पैतृकं राज्यं प्राप्य शक्रं रुचाजयत् ॥२९॥

अन्वयार्थ - सः = उन्होंने, कौमारे = कुमारावस्था में, भाग्यसागरौ = अतिशय भाग्य वाले, पितरौ = माता पिता को, मोदयित्वा = प्रसन्न करके, (च = और), तारुण्ये = तरुणावस्था में, पैतृकं = पिता के, राज्यं = राज्य को, प्राप्य = प्राप्त करके, रुचा = अपने तेज से, शक्रं = इन्द्र को, अजयत् = जीत लिया ।

श्लोकार्थ - उन्होंने कुमारावस्था में अतिशय भाग्य वाले माता-पिता को प्रसन्न करके और तरुणावस्था में पैतृक राज्य प्राप्त करके अपने तेज से इन्द्र को जीत लिया ।

शक्रादप्यधिकं सौख्यं भुक्त्वा राज्ये स ईश्वरः ।

प्रजाः च पालयामास पुत्रानिव सुनीतिवित् ॥३०॥

अन्वयार्थ - सः = उन, सुनीतिवित् = नीति के जानकार, ईश्वरः = राजा धर्मनाथ ने, शक्रादप्यधिकं = शक्र से भी अधिक, सौख्यं = सुख को, भुक्त्वा = भोगकर, च = और, राज्ये = राज्य में, पुत्रान् इव = पुत्रों के समान, प्रजाः = प्रजा को, पालयामास = पाला ।

श्लोकार्थ - नीति के जानकार उन राजा धर्मनाथ ने इन्द्र से भी अधिक सुख भोगकर राज्य में पुत्रों के समान प्रजा का पालन किया ।

एकदा सौधगो देवः सिंहासने विराजितः ।

धनेषु धनुरुद्धीक्ष्य नश्वरं नश्वरी श्रियम् ॥३१॥

विचार्य मनसा तज वैराग्यं मोक्षकारणम् ।

अगमत्तत्क्षणादेव भव्यशीर्षशिरोमणिः ॥३२॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, सौधगः = महल के ऊपर गये, (च = और), सिंहासने = सिंहासन पर, विराजमानः = विराजमान हुये, भव्यशीर्षशिरोमणिः = भव्यों में शीर्षशिरोमणि, देवः = उन राजा ने, धनेषु = बादलों में, धनुः = धनुष को, नश्वरं = नष्ट होता हुआ या नश्वर, उद्धीक्ष्य = देखकर, श्रियं = लक्ष्मी, को, नश्वरी = नष्ट होने वाली, मनसा = मन से, विचार्य = विचार करके, तत्क्षणादेव = उस क्षण से ही, तत्र = वहाँ, मोक्षकारणं = मोक्ष के कारण, वैराग्यं = वैराग्य को, अगमत् = प्राप्त हो गये ।

श्लोकार्थ - एक दिन महल की छत पर सिंहासन पर बैठे हुए भव्यों में शीर्ष शिरोमणि उन राजा ने बादलों में, धनुष को नष्ट होता अर्थात् नश्वर देखकर, लक्ष्मी भी नश्वर है ऐसा मन से विचार करके, उसी समय ही वहाँ पर मोक्ष के कारण भूत वैराग्य को प्राप्त हो गये ।

लौकान्तिकास्तदाम्येत्य कलधर्णाङ्कितैः पदैः ।

तद्वैराग्यप्रशंसां ते चक्रुर्विमलविग्रहाः ॥३३॥

अन्वयार्थ - तदा = तभी, ते = वे, विमलविग्रहाः = निर्मलस्वच्छ शरीर वाले, लौकान्तिकाः = लौकान्तिक देवों ने, अभ्येत्य = आकर, कलवर्णाङ्कितैः = मधुर शब्दों से अंकित, पदैः = पदों द्वारा, तद्वैराग्यप्रशंसां = उनके वैराग्य की प्रशंसा, चक्रुः = की।

श्लोकार्थ - तभी विमल व स्वच्छ शरीरधारी लौकान्तिक देवों ने आकर मधुर शब्दों से अङ्कित-निर्मित पदों द्वारा उनके वैराग्य की प्रशंसा की।

इन्द्रादयोऽपि सम्प्राप्ता देवस्तुतिपरायणाः ।

प्रणेमुस्तं महेशानं भूम्यामाधाय मस्तकम् ॥३४॥

अन्वयार्थ - सम्प्राप्ताः = वहाँ पर प्राप्त हुये अर्थात् आये, देवस्तुतिपरायणाः = प्रभु की स्तुति करने में लगे हुये, इन्द्रादयः = इन्द्र आदि देवों ने, अपि = भी, भूम्यां = भूमि पर, मस्तकं = मस्तक को, आधाय = लगाकर, तं = उन, महेशानं = महाप्रभु को, प्रणेमुः = प्रणाम किया।

श्लोकार्थ - वहाँ उपस्थित हुये देवभावित में तत्पर इन्द्र आदि देवों ने भी भूमि पर मस्तक लगाकर उन महाप्रभु को प्रणाम किया।

तदा राज्यं स्वपुत्राय समर्प्य जगदीश्वरः ।

नाभिदत्ताभिधां देवोपनीतां शिविकां वराम् ॥३५॥

सुरैरुढां समारूढ्य प्रोच्चरदिभर्जयस्वनम् ।

सप्त सप्त पदान्येव नृपैर्विद्याधरैस्तथा ॥३६॥

स्कन्धमारोप्य चचाल तां शिविकां भक्तितस्तैर्हि ।

लवणाख्यं स्तुतो देवैः वनं स समुपाययौ ॥३७॥

अन्वयार्थ - तदा = तभी, जगदीश्वरः = जगत् के स्वामी ने, राज्यं = राज्य को, स्वपुत्राय = अपने पुत्र के लिये, समर्प्य = देकर-सौंपकर, देवोपनीतां = देवताओं द्वारा लायी गयी, नाभिदत्ताभिधां = नाभिदत्त नाम वाली, वरां = श्रेष्ठ, शिविकां = पालकी को, समारूढ्य = चढ़कर, जयस्वनं = जय-जयकार ध्वनि को, प्रोच्चरदिभः = बोलते हुये, सुरैः = देवों द्वारा, उढां = ढोयी जाती हुयी, तां = उस, शिविकां = पालकी को, भक्तितः =

भक्ति से, स्कन्धम् = स्कन्ध पर, आरोप्य = आरोपित करके, विद्याधरैः = विद्याधर, नृपैः = राजाओं द्वारा, सप्त-सप्त = सात-सात, पदानि = पद अर्थात् कदम, चलाय = चलायी गयी, तथा हि = वैसे ही, सः = वह, देवैः = देवों द्वारा, स्तुतः = स्तुत होता हुआ, लवणाख्यं = लवण नामक, वनं = वन को, समुपाययौ = पहुँच गया।

श्लोकार्थ - तभी जगत् के स्वामी धर्मनाथ राज्य अपने पुत्र के लिये सौंपकर, देवों द्वारा लायी गयी नाभिदत्त नामक श्रेष्ठ पालकी पर चढ़कर देवों द्वारा स्तुति किया जाते हुआ लवण नामक वन में पहुँच गये। उनकी वह पालकी जयध्वनि बोलते हुये देवों द्वारा ढोयी गयी किन्तु भक्ति के कारण वह पालकी सात-सात काम विद्याधर राजाओं और उनके द्वारा कन्धों पर आरोपित करके चलायी गयी थी।

माघशुक्लत्रयोदश्यां पुष्यर्क्षे भव्यभूमिपैः ।

सहस्रप्रमितैस्सार्धं दीक्षां जग्राह तद्वने ॥३८॥

अन्वयार्थ - माघशुक्लत्रयोदश्यां = माघशुक्ला त्रयोदशी के दिन, पुष्यर्क्षे = पुष्य नक्षत्र में, सहस्रप्रमितैः = एक हजार संख्या प्रमाण, भव्यभूमिपैः = भव्यराजाओं के, सार्धं = साथ, (सः = उन्होंने), तद्वने = उस लवण वन में, दीक्षां = मुनिदीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया।

श्लोकार्थ - माघ शुक्ला तेरस के दिन पुष्य नक्षत्र में एक हजार राजाओं के साथ उन्होंने उसी लवण वन में मुनिदीक्षा को ग्रहण कर लिया।

त्रिज्ञानस्वामिनस्तस्य चतुर्थज्ञानमुत्तमम् ।

तदैवाविरभूदन्तर्मुहूर्ते जगदीशितुः ॥३९॥

अन्वयार्थ - तदैव = तब ही अर्थात् दीक्षा ले लेने पर ही, अन्तर्मुहूर्ते = एक अन्तर्मुहूर्त में, त्रिज्ञानस्वामिनः = तीन ज्ञान के स्वामी, तस्य = उन, जगदीशितुः = जगत् के ईश मुनिराज के, उत्तमम् = उत्तम या श्रेष्ठ, चतुर्थज्ञानम् = चौथा मनःपर्यय-ज्ञान, आविः = उत्पन्न, अभूत् = हो गया।

श्लोकार्थ - तभी अर्थात् दीक्षा लेने के तत्काल बाद अन्तर्मुहूर्त में ही तीन ज्ञान के धारी उन जगदीश्वर स्वरूप मुनिराज के चौथा उत्तम अर्थात् विपुलमति नामक मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया।

पुरं पाटलिपुत्राख्यं द्वितीयेहिनगतः प्रभुः ।

भिक्षायै धन्यसेनाख्यो भूपतिस्तमपूजयत् ॥४०॥

अन्वयार्थ - प्रभुः = मुनिराज, द्वितीय = दूसरे, अहिन = दिन, भिक्षायै = भिक्षा अर्थात् आहार के लिये, पाटलिपुत्राख्यं = पाटलिपुत्र नामक, पुरं = नगर को, गतः = गये, धन्यसेनाख्यः = धन्यसेन नामक, भूपतिः = राजा ने, तं = उनको, अपूजयत् = पूजा।

श्लोकार्थ - दूसरे दिन वह मुनिराज आहार के लिये पाटलिपुत्र नामक नगर में गये वहाँ राजा धन्यसेन ने उनकी पूजा की।

परमेश्वरबुद्ध्या तं सम्पूज्य विधिवन्नृपः ।

दत्त्वाहारं तदा तस्मै पञ्चाश्चर्याण्यवैक्षत ॥४१॥

अन्वयार्थ - नृपः = राजा ने, परमेश्वरबुद्ध्या = परमेश्वर बुद्धि से, तं = उनको, सम्पूज्य = अच्छी तरह पूजकर, विधिवत् = विधि के अनुसार, आहारं = आहार को, दत्त्वा = देकर, तदा = तभी, पञ्चाश्चर्याणि = पञ्चाश्चर्यों को, ऐक्षत = देखा।

श्लोकार्थ - राजा ने उन्हें परमेश्वर मानकर उनकी पूजा करके विधि के अनुसार उन्हें आहार देकर तभी पञ्चाश्चर्य देखे।

स छद्मस्थैकवर्षस्य नानादेशं गतः प्रभुः ।

महाघोरतपश्चक्रे शीतवातातपान् सहन् ॥४२॥

भस्मीकृत्याथघातीनि पौष्ये सत्पूर्णिमादिने ।

तूलीवृक्षतले ज्ञानं केवलं प्राप्तवान् प्रभुं ॥४३॥

अन्वयार्थ - छद्मस्थैकवर्षस्य = छद्मस्थ अर्थात् अल्पज्ञ अवस्था में स्थित एक वर्ष के काल में, नानादेशं = अनेक देशों को, गतः = गये हुये, सः = उन, प्रभुः = मुनिराज ने, शीतवातातपान् = शीत, हवा और आतप अर्थात् गर्मी को, सहन् = सहन करते हुये, महाघोरतपः = अत्यधिक घोर तपश्चरण को, चक्रे = किया।

अथ = फिर, प्रभुः = मुनिराज ने, पौष्ये = पौष माह में, सत्पूर्णिमादिने = शुभ पूर्णिमा के दिन, घातीनि = घातिया कर्मों को, भस्मीकृत्य = भस्म करके, तूलीवृक्षतले = शहतूत के पेड़ के नीचे, केवलं = केवल, ज्ञानं = ज्ञान को, प्राप्तवान् = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ - अत्यज्ञ अप्रज्ञा के एक वर्ष वनिमित काल में अनेक देशों में गये हुये उन मुनिराज ने, शीत, हवा और गर्मी को सहन करते हुये अत्यधिक घोर तपश्चरण किया। फिर उन मुनिराज ने पौष्य शुक्ला पूर्णिमा के शुभ दिन घातिया कर्मों का नाश करके तूल अर्थात् शहतूत वृक्ष के नीचे केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

यथादर्शं मुखाम्भोजं प्राप्ते सम्यक् प्रदर्श्यते ।

लोकालोकद्वयं तद्वत् वीक्ष्यते तत्र केवले ॥४४॥

अन्वयार्थ - यथा = जिस प्रकार, आदर्शं = दर्पण, प्राप्ते = प्राप्त होने पर, मुखाम्भोजं = मुख रूप कमल, सम्यक् = सही, प्रदर्श्यते = देखा जाता है, तद्वत् = वैसे ही, तत्र = उस, केवले = केवलज्ञान में, लोकालोकद्वयं = लोक और अलोक दोनों, वीक्ष्यते = देखे जाते हैं।

श्लोकार्थ - जिस प्रकार दर्पण के मिल जाने पर मुखकमल सही देख लिया जाता है वैसे ही उस केवलज्ञान के हो जाने पर लोकालोक दोनों ही देख लिये जाते हैं।

तदा समवसारं ते समरचयज्जगदीश्वरम् ।

तत्रस्थं पूजयामासुः देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥४५॥

अन्वयार्थ - तदा = तभी अर्थात् प्रभु को केवलज्ञान हो जाने पर, ते = उन, इन्द्रपुरोगमाः = इन्द्र की प्रधानता वाले, देवाः = देवों ने, समवसारं = समवसरण को, अरचयत् = रच दिया, च = और, तत्रस्थं = उस समवसरण में स्थित, जगदीश्वरं = जगत् के स्वामी भगवान् को, पूजयामासुः = पूजा की।

श्लोकार्थ - प्रभु को केवलज्ञान हो जाने पर इन्द्र की प्रमुखता में उन देवताओं ने समवसरण की रचना की तथा उसमें विराजमान जगत् के भगवान् की पूजा की।

भव्याश्चारिष्टसेनाद्याः गणेन्द्राश्च तदादिकाः ।

सर्वे द्वादशकोष्ठेषु यथोक्तास्तस्थुरुत्तमाः ॥४६॥

अन्वयार्थ - (तस्य = उस समवसरण के), द्वादश कोष्ठेषु = बारह कोठों में, यथोक्ताः = जैसे शास्त्र में कहे गये हैं तदनुसार, अरिष्टसेनाद्याः = अरिष्टसेन आदि, गणेन्द्राः = गणधर, च - और, तदादिकाः = उनको प्रमुख या आदि मानकर जो, उत्तमाः = उत्तम, भव्याः = भव्यजीव, (ते = वे), सर्वे = सभी, तस्थुः = स्थित थे ।

श्लोकार्थ - जैसे शास्त्रों में कहा गया है तदनुसार ही समवसरण के बारहों कोठों में अरिष्टसेन आदि गणधर और उनको आदि करके अन्य सभी उत्तम भव्य जीव स्थित थे ।

स्वाभिर्विभूतिभिर्दीप्तः प्रभुः पृष्ठो मुनीश्वरैः ।

दिव्यनादेन सर्वेभ्यः चक्रे धर्मोपदेशनम् ॥४७॥

अन्वयार्थ - मुनीश्वरैः = गणधरादि मुनिप्रमुखों द्वारा, पृष्ठः = पूछे गये, स्वाभिः = अपनी, विभूतिभिः = अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग विभूतियों से, दीप्तः = कान्तिमान्, प्रभुः = भगवान् ने, दिव्यनादेन = दिव्यध्वनि से, सर्वेभ्यः = सभी के लिये, धर्मोपदेशनम् = धर्म के उपदेश को, चक्रे = किया ।

श्लोकार्थ - गणधर आदि मुनिराजों द्वारा जब भगवान् पूछे गये तो अपनी स्वयं की विभूतियों दीप्त अर्थात् तेजोमय भगवान् ने दिव्यध्वनि से सभी के लिये धर्म का उपदेश दिया ।

उच्चरन् दिव्यनिर्घोषं सर्वेषां संशयान् दहन् ।

पुण्यक्षेत्रेषु देशेषु विजहार जगत्पतिः ॥४८॥

अन्वयार्थ - जगत्पतिः = जगत् के स्वामी भगवान् ने, दिव्यनिर्घोषं = दिव्यध्वनि के घोष को, उच्चरन् = उच्चरित करते हुये, (च = और), सर्वेषां = सभी लोगों के, संशयान् = संशयों को, दहन् = जलाते नष्ट करते हुये, पुण्यक्षेत्रेषु = पुण्यक्षेत्र स्वरूप, देशेषु = देशों में, विजहार = विहार किया ।

श्लोकार्थ - जगत्पति भगवान् ने दिव्यदेशना करते हुये तथा सभी लोगों

के संशय दूर करने हुये पुण्यक्षेत्र स्वरूप सगी देशों में विहार किया ।

जीवनं मासमात्रं स्वं प्रबुध्य परमेश्वरः ।

संहृत्य दिव्यनिर्घोषं सम्मेदाचलमध्यगात् ॥४६॥

अन्वयार्थ - परमेश्वरः = केवलज्ञानी अर्हन् भगवान्, स्वं = अपना, जीवनं = जीवन अर्थात् आयु, मासमात्रं = एक माह मात्र, प्रबुध्य = जानकर, (च = और), दिव्यनिर्घोषं = दिव्यध्वनि को, संहृत्य = रोककर, सम्मेदाचलं = सम्मेदाचल पर्वत पर, अध्यगात् = चले गये ।

श्लोकार्थ - केवलज्ञानी अर्हन्त भगवान् धर्मनाथ अपनी वर्तमान आयु एक मास मात्र जानकर और दिव्यध्वनि को रोककर सम्मेदशिखर पर चले गये ।

शुभे सः दत्तवरकूटे शुक्लध्यानकृतादरः ।

ज्येष्ठे शुक्लचतुर्थ्या हि प्रतिमायोगमधारयत् ॥५०॥

अन्वयार्थ - शुक्लध्यानकृतादरः = शुक्लध्यान में संलग्न, सः = उन प्रभु ने, ज्येष्ठे = जेठ माह में, शुक्लचतुर्थ्या = शुक्ल पक्ष की चतुर्थी के दिन, हि = ही, शुभे = शुभ, दत्तवरकूटे = दत्तवर नामक कूट पर, प्रतिमायोगं = प्रतिमायोग को, आधारयत् = धारण किया ।

श्लोकार्थ - शुक्लध्यान में आदर से संलग्न उन भगवान् ने जेठ सुदी चतुर्थी को दत्तवर नामक शुभ कूट पर प्रतिमायोग धारण कर लिया ।

कर्मबन्धविनिर्मुक्तः सहस्रमुनिभिस्समम् ।

देवो जगाम कैवल्यं दुर्लभं मुनिवाञ्छितम् ॥५१॥

अन्वयार्थ - कर्मबन्धविनिर्मुक्तः = कर्म के बन्धन से मुक्त हुये, देवः = उन भगवान् ने, सहस्रमुनिभिः = एक हजार मुनियों के, समं = साथ, मुनिवाञ्छितं = मुनियों द्वारा चाहा गया, दुर्लभं = दुर्लभ, कैवल्यं = केवलज्ञान से प्राप्त निर्वाण को, जगाम = चले गये ।

श्लोकार्थ - सारे कर्मों के बन्धन से मुक्त हुये उन भगवान् धर्मनाथ ने एक हजार मुनियों के साथ कठिनता से प्राप्त और मुनियों के लिये इष्ट मोक्ष को प्राप्त कर लिया।

एकोनविंशतिकोटीनां कोट्यस्तत्त्वान्नगोरु ।

एकोनविंशतिकोट्यस्तु नवलक्षारस्तथेरिताः ॥५२॥

नवैव च सहस्राणि तथा सप्तशतानि च ।

पञ्चोत्तर नवत्या संयुता नित्येव सङ्ख्याया ॥५३॥

गणिता दत्तधवलात् भव्याः मुक्तिपदं गताः ।

ईदृशो दत्तधवलः कूटः साम्मेदिकः स्मृतः ॥५४॥

अन्वयार्थ - तस्मात् = उस, दत्तधवलात् = दत्तधवल नामक कूट से, प्रभोः = धर्मनाथ भगवान् के, अनु = पश्चात्, एकोन विंशतिकोटीनां कोट्यः = उन्नीस कोड़ा कोड़ी, एकोनविंशतिकोट्यः = उन्नीस करोड़, नवलक्षाः = नौ लाख, तथेरिताः = वैसे ही कहे गये, तथा च = और, नव सहस्राणि = नौ हजार, सप्तशतानि = सात सौ, च = और, पञ्चोत्तरनवत्या = नब्बे से पांच ऊपर अर्थात् पञ्चानवे, संख्याया = संख्या से, एव = ही, संयुताः = युक्त, नित्या इव = हमेशा की तरह, गणिताः = गिने गये या परिगणित, भव्याः = भव्य जीव, मुक्तिपदं = मोक्षपद को, गताः = प्राप्त हुये, ईदृशः = ऐसा, दत्तधवलः = दत्तधवल नामक, साम्मेदिकः = सम्मेदपर्वत का अपनी, कूटः = कूट, स्मृतः = याद की जाती है।

श्लोकार्थ - उस दत्तधवल नामक कूट से भगवान् धर्मनाथ के बाद उन्नीस कोड़ा-कोड़ी, उन्नीस करोड़, नौ लाख, नौ हजार, सात सौ पञ्चानवे भव्य मुनिराज मोक्ष को गये। इस प्रकार यह सम्मेदशिखर की दत्तधवलकूट है, जिसे विद्वज्जनों ने याद रखा है।

अथ श्री भावदत्ताख्यो नृपः सम्मेदभूभृतः ।

यात्रां कृत्वा गतो मुक्तिं वक्ष्ये हं तत्कथां शुभाम् ॥५५॥

अन्वयार्थ - अथ = अब, श्रीभावदत्ताख्यः = श्रीभावदत्त नामक, नृपः =

राजा, सम्मेदभूमृतः = सम्मेदशिखर पर्वत की, यात्रां = यात्रा को, कृत्वा = करके, मुक्तिं = मोक्ष को, गतः = चला गया, अहं = मैं, शुभां = शुभ, तत्कथां = उसकी कथा को, वक्ष्ये = कहता हूँ।

श्लोकार्थ - अब श्रीभावदत्त नामक राजा ने सम्मेदशिखर पर्वत की यात्रा करके मुक्ति प्राप्त की इसकी शुभ कथा को मैं कहता हूँ।

द्वीपे जम्बूमतिख्याते भरतक्षेत्र उत्तमे ।

पाञ्चालविषयो भाति श्रीपुरं श्रीनिकेतनम् ॥५६॥

अन्वयार्थ - ख्याते = सुप्रसिद्ध, जम्बूमति = जंबूवृक्ष से युक्त, द्वीपे = द्वीप में, उत्तमे = श्रेष्ठ, भरतक्षेत्रे = भरतक्षेत्र में, पाञ्चालविषयः = पाञ्चाल देश, भाति = सुशोभित होता है, (तत्र = वहाँ), श्रीनिकेतनम् = लक्ष्मी के निवास स्वरूप, श्रीपुरं = श्रीपुर नामक नगर, (आसीत् = था)।

श्लोकार्थ - सुप्रसिद्ध जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र के उत्तम पाञ्चाल देश में लक्ष्मी का निवास स्वरूप श्रीपुर नामक नगर था।

भावदत्तो नृपस्तत्र सम्यक्त्वादिगुणान्वितः ।

महेन्द्रदत्तया देव्या रराजेव हरिश्रिया ॥५७॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस श्रीपुर नगर में, सम्यक्त्वादिगुणान्वितः = सम्यक्त्व आदि गुणों से विभूषित, भावदत्तः = भावदत्त नामक, नृपः = राजा, हरिश्रिया इव = इन्द्र की लक्ष्मी के समान, महेन्द्रदत्तया = महेन्द्रदत्तया नामक, देव्या = रानी के साथ, रराज = सुशोभित हुआ।

श्लोकार्थ - श्रीपुर नगर में सम्यक्त्वादि गुणों से विभूषित भावदत्त नामक राजा इन्द्र की लक्ष्मी के समान महेन्द्रदत्ता रानी के साथ सुशोभित हो रहा था।

चिरम्युभोज राज्यं स सर्वसौख्यरसान्वितम् ।

धर्मविन्नीतिविद्वन्धः शास्त्रविद्धर्मकार्मुकः ॥५८॥

अन्वयार्थ - सः = उस, धर्मविद् = धर्म के जानकार, नीतिविद = नीति

के जानकार, शास्त्र विद् = शास्त्र के जानकार, धर्मकार्मुकः = धर्मकार्य करने के योग्य, वन्द्यः = वन्दनीय राजा ने, सर्वसौख्यरसान्वितम् = सभी सुखों से भरपूर, राज्य = राज्य को, धिरं = धिरकाल तक, बुभोज = भोगा, उसका पालन किया।

श्लोकार्थ - उस धर्मज्ञ, नीतिज्ञ, शास्त्रज्ञ, धर्म कार्य करने का इच्छुक और वन्दनीय राजा ने सारे सुखों से भरपूर राज्य का बहुत समय तक पालन किया।

उवाच सत्सभामध्ये सौधर्मेन्द्र स एकदा ।

नानागीर्वाणदृग्भृङ्गसमाराध्यमुखाम्बुजः ॥५६॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, नानागीर्वाणदृग्भृङ्गसमाराध्यमुखाम्बुजः = अनेक देवों के नेत्र रूप भौरों से समाराधित मुख रूपी कमल वाला, सः = वह, सौधर्मेन्द्रः = सौधर्म इन्द्र, सत्सभामध्ये = सज्जनों की सभा में, उवाच = बोल रहा था।

श्लोकार्थ - एक दिन अनेक देवों ने नेत्रों रूपी भौरों से समाराधित मुख रूपी कमल वाला वह सौधर्मेन्द्र सज्जनों की सभा में बोल रहा था।

तत्र प्रसङ्गश्चलितः क्षेत्रे कोऽप्यस्ति भारते ।

सम्यक्त्वगुणसम्पन्नः तदा प्राह स्वयं हरिः ॥६०॥

भावदत्ताभिधो भूपः एकः सम्यक्त्वसंयुतः ।

कीर्त्या भूमितले भाति कौमुद्याः ग्लौरिवाम्बरे ॥६१॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस सभा में, प्रसङ्गः = एक प्रसङ्ग, चलितः = चल गया, भारते = भरत, क्षेत्रे = क्षेत्र में, सम्यक्त्वगुणसम्पन्नः = सम्यक्त्व गुण से सम्पन्न अर्थात् सम्यग्दृष्टि, कोऽपि = कौन, अस्ति = है, तदा = तब, हरिः = इन्द्र, स्वयं = स्वयं, प्राह = बोला।

एकः = एक, भावदत्ताभिधः = भावदत्त नामक, भूपः = राजा, सम्यक्त्वसंयुतः = सम्यग्दृष्टि, (अस्ति = है), अम्बरे = आकाश में, ग्लौः इव = चन्द्रमा के समान, भूमितले = भूमितल पर,

कौमुद्याः = कौमुदी की, कीर्त्या = कीर्ति से, भाति = सुशोभित होता है।

श्लोकार्थ - उस सभा में एक प्रसङ्ग चल गया कि भरत क्षेत्र में सम्यग्दृष्टि कौन है तब इन्द्र ने स्वयं कहा— एक भावदत्त नामक राजा वहाँ सम्यग्दृष्टि है जो आकाश में चन्द्रमा के समान भूमेतल पर अपनी कीर्ति कौमुदी से सुशोभित होता है।

इति श्रुत्वाम्बिको देवः आगतो यत्र भूपतिः ।

नवरत्नमयं पात्रं नृपाग्रेऽधत्त सोऽद्भुतम् ॥६२॥

अन्वयार्थ - इति = यह सब, श्रुत्वा = सुनकर, अम्बिकः = अम्बिक नामक, देवः = देव, यत्र = जहाँ, भूपतिः = राजा, (आसीत् = था), (तत्र = वहाँ), आगतः = आया, सः = उस देव ने, अद्भुतम् = आश्चर्य पूर्ण, नवरत्नमयं = नौ रत्नों से युक्त, पात्रं = एक पात्र, नृपाग्रे = राजा के आगे, अधत्त = रख दिया।

श्लोकार्थ - इस प्रकार यह सब सुनकर वह अम्बिक नामक देव जहाँ भूपति था वहाँ आ गया। उस देव ने एक अद्भुत नवरत्नों से युक्त एक पात्र—वर्त्तन राजा के सामने रख दिया।

अपृच्छत्किमिति श्रीमान् तदा देव उवाच तम् ।

इन्द्रेण प्रेषितं पात्रं प्रगृहाण तव प्रभो ॥६३॥

चतुर्दश नवोक्तानां रत्नानां निधीनां तथा ।

निधानं कनकस्रावि पात्रमेतन्महीश्वर ॥६४॥

अन्वयार्थ - श्रीमान् = उस राजा ने, अपृच्छत् = पूछा, किमिति = यह क्या है?, तदा = तब, देवः = देव ने, तम् = उस राजा को, उवाच = कहा, प्रभो! = हे राजन्, तव = तुम्हारे, (कृते = लिये), इन्द्रेण = इन्द्र द्वारा, एतत् = यह, पात्रं = पात्र, प्रेषितम् = भेजा गया है, चतुर्दश = चौदह, नव = नौ, उक्तानां = कहे गये, रत्नानां = रत्नों के, तथा = और, निधीनां = निधियों के, निधानं = खजाने, कनकस्रावि = स्वर्ण को निकालने वाले, पात्रं = पात्र को, महीश्वर = हे राजन्, प्रगृहाण = ग्रहण करो।

श्लोकार्थ - भावदत्त नामक राजा ने पूछा— यह क्या है? तब देव ने राजा

से कहा - हे राजन्! यह पात्र इन्द्र ने तुम्हारे लिये भेजा है। यह पात्र चौदह रत्नों और नव निधियों का खजाना है स्वर्ण को उत्पन्न करने वाला है अतः हे महीपते! तुम इसे ग्रहण करो।

इति श्रुत्वा देववाक्यं भावदत्तस्तमब्रवीत् ।

मत्कार्यस्य किमेतेन तदन्यस्मै दीयताम् ॥६५॥

अन्वयार्थ - इति = इस प्रकार, देववाक्यं = देव के वाक्यों को, श्रुत्वा = सुनकर, भावदत्तः = भावदत्त राजा ने, तम् = उस देव को, अब्रवीत् = कहा, मत्कार्यस्य = मेरे कार्य के लिये, एतेन = इससे, किम् = क्या प्रयोजन, अन्यस्मै = अन्य राजा के लिये, तत् = वह पात्र, दीयताम् = दे दो।

श्लोकार्थ - इस प्रकार देव वचन को सुनकर वह भावदत्त राजा देव से बोला - इस पात्र से मेरे कार्य का क्या प्रयोजन तुम इसे किसी अन्य राजा को दे दो।

निर्बन्धो बहुधा तेन कृतो देवेन तं प्रति ।

अङ्गीचकार नैवासौ पात्रं तल्लोकदुर्लभम् ॥६६॥

अन्वयार्थ - तं प्रति = उस पात्र को ग्रहण करने के बारे में, तेन = उस, देवेन = देव द्वारा, बहुधा = अनेक प्रकार से, निर्बन्धः = आग्रह, कृतः = किया, असौ = उस राजा ने, लोकदुर्लभम् = लोक में कठिनता से प्राप्त, तत् = वह, पात्रं = पात्र, नैव = नहीं ही, अङ्गीचकार = ग्रहण किया।

श्लोकार्थ - उस पात्र को ग्रहण करने के प्रति उस देव ने राजा से बहुत प्रकार से आग्रह किया तथापि उस राजा ने वह लोकदुर्लभ पात्र स्वीकार नहीं किया।

परीक्ष्य तस्य सद्भावं भूपतेराह सोऽमरः ।

धन्यस्त्वं भूमिगो राजन्नेदृशी यदकामना ॥६७॥

अन्वयार्थ - सः = उस, अमरः = देव ने, तस्य = उस, भूपतेः = राजा के, सद्भावं = सद्भाव की, परीक्ष्य = परीक्षा करके, आह

= बोला, राजन् = हे राजन्, भूमिगः = भूमि पर रहने वाले, त्वं = तुम, धन्यः = धन्य, (असि = हो), यत् = क्योंकि, ईदृशी = ऐसी, अकामना = निस्पृहता, (अन्यथा = अन्य प्रकार से अर्थात् सम्यक्त्व के बिना), न = नहीं, (भवितुमर्हति = हो सकती है)।

श्लोकार्थ - उस देव ने राजा के सद्भाव की परीक्षा करके कहा कि हे राजन्! भूमिगोचरियों में तुम धन्य हो क्योंकि ऐसी अकामना अर्थात् निस्पृहता सम्यक्त्व के बिना नहीं हो सकती है।

सम्यक्त्वानां प्रसङ्गित्वे देवराजेन संसदि ।

सम्यक्त्ववान् त्वमेवैकः प्रोक्तस्तन्मुखेन हि ॥६८॥

यथोक्तस्त्वं तथैवात्र दृष्टो भूपशिरोमणि ।

इव्युक्त्वा सोम्यिकस्तस्मै प्रार्थनां तस्य भूयसीम् ॥६९॥

दत्त्वा भेरीं तथाप्येकां प्रभावध्वनिमुत्तमाम् ।

यद्ध्वनिश्रवणादत्र कोटिरोगक्षतिर्भवेत् ॥७०॥

अन्वयार्थ - संसदि = इन्द्र की सभा में, सम्यक्त्वानां = सम्यक्त्व सम्पन्न लोगों का, प्रसङ्गित्वे = प्रसङ्ग आने पर, देवराजेन = इन्द्र द्वारा, त्वम् = तुम, एव = ही, एकः = अकेले, सम्यक्त्ववान् = सम्यग्दृष्टि, प्रोक्तः = कहे गये, (असि = हो), तन्मुखेन = उनके मुख से, यथा = जैसे, हि = ही, त्वं = तुम, उक्तः = कहे गये, तथैव = वैसे ही, अत्र = यहाँ, भूपशिरोमणे = हे भूपशिरोमणि, (त्वं = तुम), दृष्टः = देखे गये, इति = ऐसा, उक्त्वा = कहकर, सः = उस, अम्यिकः = अम्बिक देव ने, तस्य = उस सम्यक्त्वी राजा की, भूयसीं = अत्यधिक, प्रार्थनां = प्रार्थना प्रशंसा, (कृत्वा = करके), तथा = और, तस्मै = उसके लिये, एकां = एक, उत्तमाम् = सर्वोत्तम, प्रभावध्वनिं = प्रभावक ध्वनि वाली, भेरीं = भेरी को, दत्त्वा = देकर, (अवोचत् = कहा), यद्ध्वनिश्रवणात् = जिसकी ध्वनि को सुनने, अत्र = यहाँ, कोटिरोगक्षतिर्भवेत् = करोड़ों रोगों की हानि होवे।

श्लोकार्थ - इन्द्र की सभा में सम्यक्त्ववान् लोगों का प्रसङ्ग उपस्थित

होने पर स्वयं इन्द्र ने कहा था कि भरत क्षेत्र में अभी तुम ही अकेले सम्यग्दृष्टि हो। हे राजशिरोमणि उनके मुख से जैसा सुना था यहाँ तुम वैसे ही देखे गये हो — इस प्रकार कहकर उस अम्बिक नामक देव ने उस सम्यग्दृष्टी राजा की बहुत प्रकार से प्रार्थना व प्रशंसा की तथा उसके लिये एक अत्युत्तम एवं प्रभावोत्पादक ध्वनि वाली एक भेरी देकर कहा इस भेरी की ध्वनि को सुनने से यहाँ करोड़ों रोगों की हानि होगी।

परोपकारहेतोः देवनिर्बन्धतो नृपः ।

तां भेरिकां च जग्राह विश्वरोगोपशान्तये ॥७१॥

अन्वयार्थ - देवनिर्बन्धतः = देव के आग्रह से, सः = उस, नृपः = उस राजा ने, परोपकारहेतोः = दूसरों का उपकार करने के निमित्त से, च = और, विश्वरोगोपशान्तये, = सभी के सारे रोगों को मिटाने के लिये, तां = उस, भेरिकां = भेरी को, जग्राह = ग्रहण कर लिया।

श्लोकार्थ - देव के आग्रह से उस राजा ने परोपकार करने के हेतु से और सभी के सारे रोगों को शान्त करने के लिये वह भेरी ग्रहण कर ली।

तस्या उपर्यसौ राजा चतुरो मानवोत्तमान् ।

संस्थाप्य सादरं देवं ह्यम्बिकं विससर्ज वै ॥७२॥

अन्वयार्थ - तस्याः = उस भेरी के, उपरि = विषय में, असौ = उस, राजा = राजा ने, चतुरः = चार, मानवोत्तमान् = उत्तम मनुष्यों को, संस्थाप्य = नियुक्त करके, वै = निश्चित ही, सादरं हि = आदर के साथ ही, अम्बिकं = अम्बिक नामक, देवं = देव को, विससर्ज = विदा किया।

श्लोकार्थ - उस भेरी को बजाने के विषय में उस राजा ने चार उत्तम मनुष्यों को नियुक्त करके निश्चित ही आदर सहित उस अम्बिक नामक देव को विदा किया।

मास एकदिने तस्याः प्रतिप्रहरमुत्तमम् ।

शब्दोऽभूत्तेन बहवो रोगिणः सुखिनोऽभवत् ॥७३॥

अन्वयार्थ - मासे = माह में, एकदिने = एक दिन, प्रतिप्रहरम् = प्रत्येक प्रहर, तस्याः = उस भेरी का, उत्तमं = उत्तम, शब्दः = शब्द, अभूत् = होता था, तेन = उससे, बहवः = बहुत, रोगिणः = रोगी, सुखिनः = सुखी, अभवन् = हो गये ।

श्लोकार्थ - माह में एक दिन प्रत्येक प्रहर उस भेरी का उत्तम शब्द होता था उससे अनेक रोगी सुखी हो गये ।

महती यात्रिकी लग्ना रोमिभिर्निलिखलैः कृता ।

श्रुतस्तस्ययाः प्रभावो यैरागच्छन्ति तदुपेतताम् ॥७४॥

आगतस्तत्र यस्तया ह्यशृणोत् घोषमुत्तमम् ।

स तत्क्षणादपापोच्चैरायोग्यं चिरवाञ्छितम् ॥७५॥

अन्वयार्थ - निलिखलैः = सम्पूर्ण, रोगिभिः = रोगियों द्वारा, कृता = प्रचारित की गयी, महती = बहुत बड़ी, यात्रिकी = यात्रा करने वालों की भीड़ या ख्याति, (तत्र = वहाँ), लग्ना = जुड़ गयी । यैः = जिन रोगियों या लोगों के द्वारा, तस्याः = उस भेरी का प्रभाव, श्रुतः = सुना गया, (ते = वे), तदुपेततां = उस भेरी की समीपता को, (लब्धुं = पाने के लिये), आगच्छन्ति (स्म) = आ जाते थे ।

यः = जो, तत्र = वहाँ, आगतः = आया, (च - और), तया = उस भेरी से, उत्तमम् = उत्तम, घोषम् = घोष को, अशृणोत् = सुना, सः = वह, तत्क्षणात् = उसी समय, हि = ही, अपापोच्चैः = उत्कृष्ट पुण्य के कारण, चिरवाञ्छितम् = चिर अभिलषित, आरोग्यं = निरोगता को, (लब्धवान् = प्राप्त हुआ) ।

श्लोकार्थ - जो उस भेरी के घोष को सुनकर निरोगी हो गये थे उन सभी रोगियों द्वारा भेरी का प्रचार किया गया जिससे उस भेरी की बहुत बड़ी ख्याति फैल गयी और यात्रियों की भीड़ वहाँ लगने लगी । जिन लोगों के द्वारा उस भेरी का प्रभाव सुना गया

वे उस भेरी की समीपता पाने के लिये वहाँ आ जाते थे। जो भी वहाँ आया और जिसने उस भेरी से निकले उत्तम घोष को सुना वह उसी समय उत्कृष्ट पुण्यों से चिरअभिलाषित निरोगता को प्राप्त हुआ।

एकदा भूपतिः राजगृहग्रामेश्वरो महान्।

महेन्द्रनामतो वातपीडिताङ्गो बभूव सः ॥७६॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक बार, राजगृहग्रामेश्वरः = राजगृह ग्राम के स्वामी, महेन्द्रनामतः = महेन्द्र नाम से, (ख्यातः = प्रसिद्ध), सः = वह, महान् = महान्, भूपतिः = राजा, वातपीडिताङ्गः = वात रोग से पीडित शरीर वाला, बभूव = हो गया।

श्लोकार्थ - एक बार राजगृह ग्राम का स्वामी तथा महेन्द्र नाम से जाना जाने वाला वह महान् राजा वातरोग से पीडित हो गया।

उपाया बहवस्तेन, कृताः वातोपशान्त्ये।

शान्तो नैवा भवद्वायुर्देहपीडाकरो ध्रुवम् ॥७७॥

अन्वयार्थ - तेन = उस राजा द्वारा, बहवः = बहुत, उपायाः = उपाय, वातोपशान्त्ये = वायु का शमन करने के लिये, कृताः = किये गये, (तथापि = फिर भी), वायुः = वायु, शान्तः = शान्त, नैव = नहीं ही, अभवत् = हुआ, ध्रुवं = निश्चित ही, देहपीडाकरः = देह पीडित करने वाला हुआ।

श्लोकार्थ - उस राजा द्वारा वायु का उपशमन करने के लिये बहुत सारे उपाय किये गये तथापि उसका वह वायु रोग शान्त नहीं हुआ अपितु निश्चित ही देह को कष्टकर हुआ।

भेरीप्रभावमाकर्ण्य ततो सौऽतत्र चाप्तवान्।

एकघसान्तरे मासात् चिन्तामाप गरीयसीम् ॥७८॥

अन्वयार्थ - ततः = उसके बाद, भेरीप्रभावं = भेरी के प्रभाव को, आकर्ण्य = सुनकर, असौ = वह राजा, तत्र = वहाँ श्रीपुर नगर में, मासात् = एक मास से, एकघसान्तरे = एक दिन के भीतर प्रति प्रहर एक बार, (भेरी = भेरी), (ताह्यते = बजायी जाती है), (इति = इस), (वृत्तान्तं = समाधार को), आप्तवान् = प्राप्त किया, ततः = उससे, गरीयसीं = बहुत बड़ी भारी, चिन्तां = चिन्ता को, आग = प्राप्त हो गया।

श्लोकार्थ - उसके बाद भेरी के प्रभाव को सुनकर वह राजा श्रीपुर नगर में आया वहाँ उसने समाचार प्राप्त किया कि भेरी माह में एक दिन ही बजायी जाती है तो वह बहुत भारी चिन्ता में पड़ गया।

तदा पुरुषसेनाख्यं पप्रच्छ सचिवं नृपः ।

को वा यत्नो मया कार्य इदानीं मंत्रिसत्तम ॥७६॥

मासे गते ध्वनिश्चास्याः भविष्यति नृपालये ।

समेति दुर्लभः कष्टान् त्वयाऽप्यत्र विचार्यताम् ॥८०॥

अन्ययार्थ - तदा = तब, नृपः = राजा ने, पुरुषसेनाख्यं = पुरुषसेन नामक, सचिवं = सचिव को, पप्रच्छ = पूछा, मंत्रिसत्तम = हे मंत्रिश्रेष्ठ!, इदानीं = अब, मया = मेरे द्वारा, को वा = कौन सा, यत्नः = यत्न, कार्यः = करना चाहिये, नृपालये = राजा के भवन में, अस्याः = इस भेरी की, ध्वनिः = ध्वनि, मासे = एक माह, गते = बीतने पर, भविष्यति = होगी, दुर्लभः = यह दुर्लभ ध्वनि, कष्टान् = कष्टों को, समेति = शमन करती है, अत्र = यहाँ, त्वयापि = तुम्हारे द्वारा भी, विचार्यताम् = विचार किया जाये।

श्लोकार्थ - तब राजा ने पुरुषसेन नामक सचिव से पूछा हे मंत्रिश्रेष्ठ! अब मेरे द्वारा ऐसा कौन सा प्रयत्न करना चाहिये राजा के महल में तो इस भेरी की ध्वनि तो अब एक माह बीत जाने पर ही होगी जैसे यह दुर्लभ ध्वनि कष्टों को शमन करती है वैसा करने हेतु आप यहाँ विचार करें।

मन्त्रिणोक्तं महीपाल । बहुद्रव्यव्ययाद् ध्रुवम् ।

अकालेऽपि ध्वनिं श्रोतुं शक्यः स्यादन्यथा नहि ॥८१॥

अन्वयार्थ - मन्त्रिणा = मंत्री द्वारा कहा गया, महीपाल = हे महीपाल!, ध्रुवं = निश्चित ही, बहुद्रव्यव्ययात् = अत्यधिक द्रव्य खर्च करने से, अकालेऽपि = अकाल में भी, ध्वनिं = ध्वनि को, श्रोतुं = सुनना, शक्यः = संभव, स्यात् = होवे, अन्यथा = अन्य प्रकार से, न हि = नहीं।

श्लोकार्थ - मंत्री ने कहा— हे महीपाल! निश्चित ही बहुत धन खर्च करके अकाल में भी ध्वनि को सुनना संभव है अन्यथा यह संभव नहीं है।

अथवा श्रवणाद्यस्याः ध्वनेः रोगक्षयो ध्रुवम् ।

घृष्टाङ्गेऽसौ वशं लग्नां व्याधिं न नाशयेत्किम् ॥८२॥

अन्वयार्थ - यस्याः = जिस भेरी की, ध्वनेः = ध्वनि के, श्रवणात् = सुनने से, ध्रुवं = निश्चित ही, रोगक्षयः = रोग का नाश, (भवति = होता है), अथवा = या, अङ्गे = शरीर में, घृष्टा = घिसी गयी अरगौ = यह भेरी, वशं = जबरजस्ती, लग्नां = लग गयी, व्याधिं = व्याधि का, किं = क्या, न = नहीं, नाशयेत् = नष्ट करेगी।

श्लोकार्थ - जिस भेरी के ध्वनि को सुनने से निश्चित ही रोग का नाश होता है अथवा शरीर में घिसी गयी वह भेरी जबरजस्ती शरीर में लग गयी व्याधि को नष्ट नहीं करेगी।

श्रुत्वैवं स नृपो भेरीपालमाहूय सत्त्वरम् ।

प्राहार्धं भेरीनिर्घोषं श्रावय व्याधिनाशकम् ॥८३॥

अन्वयार्थ - एवं = ऐसा, श्रुत्वा = सुनकर, सः = उस, नृपः = राजा ने, भेरीपालं = भेरी पालक को, आहूय = बुलाकर, प्राह = कहा, सत्त्वरं = जल्दी ही, व्याधिनाशकं = व्याधि को दूर करने वाले, भेरीनिर्घोषं = भेरी के निर्घोष को, अर्धं = धीरे से, श्रावय = सुना दो।

श्लोकार्थ - ऐसा सुनकर उस राजा ने भेरी पालक को बुलाकर कहा कि जल्दी ही तुम मुझे व्याधि मिटाने वाले भेरी के निर्घोष को आधी आवाज अर्थात् धीरे से सुना दो।

स्वर्णकोटिं प्रदास्यामि तुभ्यं श्रुत्वापि हर्षतः ।

तद्वाक्यं भूपसन्त्रासात् भेरीपालः स नाग्रहीत् ॥८४॥

अन्वयार्थ - तुभ्यं = भेरीपाल तुम्हारे लिये, स्वर्णकोटिं = एक करोड़ स्वर्ण मुद्रायें, प्रदास्यामि = दूँगा, (इति = इस प्रकार), हर्षतः = हर्ष से, श्रुत्वापि = सुनकर भी, भूपसन्त्रासात् = राजा के भय

से, सः = उस, भेरीपालः = भेरी पालक ने, तद्वाक्यं = राजा के वाक्य को, न = नहीं, अग्रहीत् = ग्रहण किया।

श्लोकार्थ - तुम मुझे भेरी की ध्वनि धीरे से सुना दो मैं तुम्हें एक करोड़ स्वर्ण मुद्रायें दूंगा। हर्ष से सुनकर भी भेरीपाल ने अपने राजा के डर से उस राजा की बात नहीं मानी।

पुरस्तं प्राह नृपति सः चेन्न वादयसीह तां ।

किञ्चिच्छित्त्वा तर्हि तां मे देहि मद्भोगशान्तये ॥८५॥

अन्वयार्थ - सः = उस, नृपतिः = राजा ने, तं = उसको, पुनः = फिर से, प्राह = कहा, चेत् = यदि, इह = यहाँ, तां = उस भेरी को, न = नहीं, वादयसि = बजाते हो, तर्हि = तो, तां = उसको, किञ्चिच्छित्त्वा = कुछ छेदकर या तोड़कर, मद्भोगशान्तये = मेरे रोग को शान्त करने के लिये, मे = मेरे लिये, देहि = दे दो।

श्लोकार्थ - उस राजा ने पुनः उस भेरीपालक को कहा यदि तुम यहाँ अभी उस भेरी को नहीं बजाते हो तो भेरी को कुछ थोड़ा सा तोड़कर मेरे रोग की शान्ति के लिये मुझे दे दो।

लोभतोऽथ सुवर्णस्य कोट्युक्तस्य स भेरीपः ।

उक्तं हेमं गृहीत्वा तां भित्त्वा किञ्चित्समै ददौ ॥८६॥

अन्वयार्थ - अथ = उसके बाद, सः = उस, भेरीपः = भेरीपाल ने, कोट्युक्तस्य = कहे गये एक करोड़ मुद्रा, सुवर्णस्य = स्वर्ण के, लोभतः = लोभ से, उक्तं = उपर्युक्त, हेमं = स्वर्ण को, गृहीत्वा = लेकर, तां = भेरी को, किञ्चित् = थोड़ा सा, भित्त्वा = तोड़कर, तस्मै = उस राजा के लिये, ददौ = दे दिया।

श्लोकार्थ - उसके बाद उस भेरीपाल ने एक करोड़ स्वर्णमुद्राओं के लोभ से उपर्युक्त स्वर्ण मुद्राओं को लेकर उस भेरी को थोड़ा-सा तोड़कर उस राजा के लिये दे दी।

सङ्घृष्य देहे लिप्त्वा तां स च क्षितिनायकः ।

व्यथां संहृत्य सर्वाङ्गो निर्व्यथुस्तत्क्षणादभूत् ॥८७॥

अन्वयार्थ - तां = उस भेरी के टुकड़े को, सङ्घृष्य = घिसकर, च = और, देहे = देह में, लिप्त्वा = लिप्त करके, सः = उस,

क्षितिनायकः = राजा ने, व्यथां = व्याधि को, संहृत्य = दूर कर, तत्क्षणात् = उस क्षण से, सर्वाङ्गो = सर्व शरीरी, निर्व्यथुः = व्यथा रहित, अभूत् = हो गया।

श्लोकार्थ- भेरी के टुकड़े को घिसकर और अपने शरीर पर लगाकर उस राजा ने व्याधि को दूर कर उसी क्षण सारे शरीर में व्याधिरहित हो गया।

रीत्यानयैव सा भेरी द्रव्यलोभान्वितैर्नरैः ।

छित्त्वा दत्त्वा च तस्मान्न दोषाय यथा भवेत् ॥८८॥

तथा भेरी नवीनैका स्थापिता राजमन्दिरे ।

तन्नादश्रवणाद्दोगी रोगशान्तिं नान्वभवत् ॥८९॥

अन्वयार्थ- अनया = इसी, रीत्या = रीति से, एव = ही, सा = वह, भेरी, द्रव्यलोभान्वितैः = द्रव्य के लोभ से प्रेरित, नरैः = मनुष्यों के द्वारा, छित्त्वा = तोड़-तोड़कर, दत्त्वा = दे दी गई, च = और, यथा :- जैसे, (भेरीनाष्टः = भेरी का नष्ट हो जाना), दोषाय = दोष के लिये, न = नहीं, भवेत् = हो, तस्मात् = इसलिये, तथा = वैसी ही, एका = एक, नवीना = नई, भेरी = भेरी, राजमन्दिरे = राज मन्दिर में, स्थापिता = स्थापित कर दी गयी, (किन्तु = किन्तु), तन्नादश्रवणात् = उस भेरी के नाद को सुनने से, रोगी = रोगी ने, रोगशान्तिं = रोगशान्ति को, नान्वभवत् = अनुभव नहीं किया।

श्लोकार्थ- इसी रीति से ही वह भेरी द्रव्य के लोभ से प्रेरित होकर मनुष्यों के द्वारा तोड़-तोड़कर नष्ट कर दे दी गयी और जिस प्रकार भेरी का नष्ट होना दोष के लिये न हो इसलिये वैसी ही एक नई भेरी राजमन्दिर में स्थापित कर दी गयी किन्तु उसके नाद को सुनने से रोगियों को रोगशान्ति का अनुभव नहीं किया।

ततः प्रतिदिनं तस्याः महिमा न्यूनतां गतः ।

पूर्ववच्चैव तद्यात्रा रोगहर्तुं न प्राभवत् ॥९०॥

अन्वयार्थ- ततः = उस कारण से, प्रतिदिनं = एक-एक दिन, तस्याः

= उस भेरी की, महिमा = प्रसिद्धि-ख्याति या प्रभाव, न्यूनतां = न्यूनता को, गतः = प्राप्त हो गया, च = और, पूर्ववत् = पूर्व के समान, एव = ही, तद्यात्रा = उसके शब्द सुनने हेतु की गयी यात्रा, रोगहर्तुं = रोग दूर करने के लिये, न = नहीं, प्राभवत् = समर्थ हुई

श्लोकार्थ- रोग न मिटने के कारण हर दिन उस भेरी की महिमा कम होती चली गयी और पहिले के समान अब उसके शब्द सुनकर रोग मिटाने के लिये लोगों की यात्रा रोग मिटाने में समर्थ नहीं हुई।

तद्वृत्तान्तः श्रुतो राज्ञा तदा दुःखमवाप सः ।

मनस्यचिन्तयत् कस्माद्धेतोः सा मोद्यतां गता ॥६१॥

अन्वयार्थ- राज्ञा = राजा द्वारा, तद्वृत्तान्तः = भेरी का वह समाचार, श्रुतः = सुना गया, तदा = तब, सः = वह राजा, दुःखं = दुख को, अवाप = प्राप्त हुआ, (च = और), (सः = उसने), मनसि = मन में, अचिन्तयत् = सोचा, कस्मात् = किस, हेतोः = हेतु से, सा = वह भेरी, मोद्यतां = निरर्थकता या प्रभावहीनता को, गता = प्राप्त हो गयी।

श्लोकार्थ- जब राजा द्वारा भेरी का वह समाचार सुना गया तो वह दुःख से भर गया उसने सोचा किस कारण से वह भेरी बेकार हो गयी।

ध्यायतो भूपतेस्तस्य देवः प्रत्यक्षतां गतः ।

कथितः सर्ववृत्तान्तः तेन राज्ञा श्रुतोऽखिलः ॥६२॥

भावदत्तस्तदा भूपो हर्षितो देवसङ्गमात् ।

संसाराद् विरक्तोऽभूत् मुमुक्षुः मोक्षसिद्धये ॥६३॥

अन्वयार्थ- तदा = तभी, ध्यायतः = ध्यान करते हुये, तस्य = उस, भूपतेः = राजा के लिये, देवः = वह देव, प्रत्यक्षतां = प्रत्यक्षता को, गतः = प्राप्त हो गया, तेन = उस देव द्वारा, सर्ववृत्तान्तः = सारी बात, कथितः = कह दी गयी, राज्ञा = राजा के द्वारा, अखिलः = सारा, (वृत्तान्तः = समाचार), श्रुतः = सुना गया,

देवसङ्गमात् = देव का संग मिलने से, हर्षितः = प्रसन्न हुआ, (सः = वह), मुमुक्षुः = मोक्षेच्छु, भावदत्तः = भावदत्त नामक, भूपः = राजा, मोक्षसिद्धये = मोक्ष पाने के लिये, संसारात् = संसार से, विरक्तः = विरक्त, अनूत् = हो गया।

श्लोकार्थ- तभी ध्यान करते उस राजा के लिये वह देव प्रत्यक्ष अर्थात् सामने उपस्थित हो गया और उसने सारा वृत्तान्त राजा को कह दिया राजा ने सब कुछ सुना तथा देव के संग से प्रसन्न हो गया अतः मोक्षाभिलाषी वह मोक्ष पाने के लिये संसार से विरक्त हो गया।

त्रित्रिंशत्कोटिभव्यैः स सार्धं सङ्घसमर्चकः।

यात्रां सम्मेदशैलस्य श्रेष्ठां चक्रे महामतिः॥६४॥

अन्वयार्थ- सः = उस, सङ्घसमर्चकः = चतुर्विध संघ की यथायोग्य अर्चना करने वाले, महामतिः = महान् ज्ञानी राजा ने, त्रित्रिंशत्कोटिभव्यैः सार्धं = तेतीस करोड भव्य जीवों के साथ, सम्मेदशैलस्य = सम्मेदाचल पर्वत की, श्रेष्ठां = श्रेयस्कर, यात्रां = यात्रा को, चक्रे = किया।

श्लोकार्थ- संघ के समर्थक व प्रपूजक उस बुद्धिमान् राजा ने तेतीस करोड भव्य जीवों के साथ सम्मेदशिखर की श्रेयस्कर यात्रा को किया।

तत्र गत्या महीपालः नाम्ना दत्तवरं गिरेः।

कूटं भावेन वयन्दे मुक्तः संसारबन्धनात्॥६५॥

अन्वयार्थ- महीपालः = राजा ने, तत्र = वहाँ, गत्या = जाकर, गिरेः = पर्वत की, नाम्ना = नाम से, दत्तवरं = दत्तवर नामक, कूटं = कूट को, भावेन = भावसहित, वयन्दे = प्रणाम किया, येन = जिससे, संसारबन्धनात् = संसार के बन्धन से, (सः = वह), मुक्तः = मुक्त, (स्यात् = हो)।

श्लोकार्थ- महीपाल ने पर्वत पर जाकर पर्वत की दत्तवर नामक कूट को भाव सहित प्रणाम किया जिससे वह संसार के बन्धन से मुक्त हो जावे।

तत्कूटवन्दनाद् भक्त्या मानवस्य महीतले ।

अनायासाद् भवेदेव कोटिप्रोषधजं फलम् ॥६६॥

अन्वयार्थ- महीतले = पृथ्वी पर, भक्त्या = भक्ति से, तत्कूटवन्दनात् = उस कूट की वन्दना करने से, मानवस्य = मनुष्य के लिये, कोटिप्रोषधजं = एक करोड़ प्रोषधोपवास से जनित, फलं = फल, अनायासाद् = बिना प्रयास से, एव = ही, भवेत् = होवे ।

श्लोकार्थ- पृथ्वी पर भक्ति भाव से उस कूट की वन्दना करने से एक करोड़ प्रोषधोपवास से उत्पन्न होने वाले फल की प्राप्ति मनुष्य के लिये अनायास ही हो जावे ।

श्रीधर्मनाथः किल धर्मभूषो धर्मोपदिष्टाखिलधर्मधारी ।

यस्माद् गतो मुक्तिपदं तमेव कूटं गिरैर्दत्तवरं नमामि ॥६७॥

अन्वयार्थ- यस्मात् = जिस कूट से, किल = वस्तुतः, धर्मभूषः = धर्म के राजा, धर्मोपदिष्टा = धर्म का ही उपदेश देने वाले, अखिलधर्मधारी = सम्पूर्ण धर्म को धारण करने वाले, श्रीधर्मनाथः = श्री धर्मनाथ तीर्थङ्कर, मुक्तिपदं = मोक्षस्थान को, गतः = गये, तं = उस, गिरेः = पर्वत की, दत्तवरं = दत्तवर नामक, कूटं = कूट को, एव = ही, नमामि = मैं नमस्कार करता हूँ ।

श्लोकार्थ- जिस कूट से सचमुच मैं धर्म के ही राजा, धर्म का ही उपदेश देने वाले, सर्वधर्म के धारी तीर्थङ्कर धर्मनाथ मोक्ष को गये मैं सम्मेदशिखर पर्वत की उसी दत्तवर कूट को ही नमस्कार करता हूँ ।

{ इति दीक्षितब्रह्मणेमिदत्तविरचिते श्रीसम्मेदशैलमाहात्म्ये

तीर्थङ्करधर्मनाथवृत्तान्तसमन्वितं दत्तवरकूटवर्णनं

नाम चतुर्दशमोऽध्यायः समाप्तः । }

{ इस प्रकार दीक्षित ब्रह्मणेमिदत्त द्वारा रचित श्री सम्मेदशैल माहात्म्य नामक काव्य में तीर्थङ्कर धर्मनाथ के वृत्तान्त से पूर्ण दत्तवर कूट का वर्णन करने वाला यह चौदहवां अध्याय समाप्त हुआ । }

अथ पञ्चदशमोऽध्यायः

सिद्धास्पदकृतायासं परमानन्दविग्रहम् ।

महाशान्तिप्रदातारं शान्तिनाथं स्मराम्यहम् ॥१॥

अन्वयार्थ — अहं = मैं, परमानन्दविग्रहं = परम आनंद ही जिनका शरीर है ऐसे, महाशान्तिप्रदातारं = परम शान्ति को देने वाले, सिद्धास्पदकृतायासं = सिद्ध स्थान अर्थात् निर्वाण पद में जो प्रतिष्ठित हैं उन, शान्तिनाथं = शान्तिनाथ को, स्मरामि = प्रसन्नता पूर्वक याद करता हूँ।

श्लोकार्थ — मैं परम आनंद ही है शरीर जिनका ऐसे आनन्द शरीर वाले, महा शान्ति के देने वाले और सिद्धालय में रहने वाले शान्तिनाथ भगवान् को प्रसन्नता सहित याद करता हूँ।

शान्तिनाथप्रसादाय पञ्चकल्याणदायकम् ।

वक्ष्येऽहं चरितं तस्य श्रवणात् सर्वसिद्धिदम् ॥२॥

अन्वयार्थ — अहं = मैं, शान्तिनाथप्रसादाय = शान्तिनाथ जैसी प्रसन्नता पाने के लिये, तस्य = उन शान्तिनाथ का, पञ्चकल्याणदायकं = पाँच कल्याणकों के देने वाले, श्रवणात् = सुनने से, सर्वसिद्धिदं = सारी सिद्धियों को देने वाले, चरितं = चरित को, वक्ष्ये = कहता हूँ।

श्लोकार्थ — शान्तिनाथ भगवान् जैसी प्रसन्नता पाने के लिये पाँच कल्याणक स्वरूप पुण्य को देने वाले और सुनने से सभी सिद्धियों के देने वाले उन शान्तिनाथ भगवान् के चरित को कहता हूँ।

यस्मात्कूटाद् गतो मुक्तिं शान्तिनाथो महेश्वरः ।

वक्ष्ये तस्यापि माहात्म्यं शृणुध्वं भव्यसत्तमाः ॥३॥

अन्वयार्थ — यस्मात् = जिस, कूटात् = कूट से, शान्तिनाथः = शान्तिनाथ

नामक, महेश्वरः = तीर्थङ्कर प्रभु, मुक्तिं = मुक्ति को, गतः = गये, तस्य = उस कूट के, माहात्म्यं = माहात्म्य को, वक्ष्ये = मैं कहता हूँ, मध्यसत्तमाः = हे भव्यों में श्रेष्ठ जनो!, शृणुध्वं = तुम सब सुनो।

श्लोकार्थ — जिस कूट से तीर्थङ्कर शान्तिनाथ मोक्ष को गये उस कूट के माहात्म्य को मैं कहता हूँ— हे भव्यों में श्रेष्ठ! तुम सब उसे सुनो।

जम्बूद्वीपे विदेहेऽथ पुण्डरीकपुरं महत् ।

श्रीषेणो नृपतिस्तत्र बभूव गुणसागरः ॥४॥

अन्वयार्थ — अथ = प्रारंभ सूचक अव्यय इस, जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, विदेहे = विदेह क्षेत्र में, महत् = बहुत बड़ा, पुण्डरीकपुरं = पुण्डरीकपुर नामक नगर (आसीत् = था) तत्र = उस नगर में, गुणसागरः = गुणों के सागर अर्थात् अतिशय गुणशाली, श्रीषेणः = श्रीषेण नामक, नृपतिः = राजा, बभूव = था।

श्लोकार्थ — इस जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में एक विशाल पुण्डरीकपुर नामक नगर था उसमें अतिशय गुणशाली राजा श्रीषेण राज्य करता था।

केनापि हेतुना राजा विरक्तः संसृतेः किल ।

राज्यं त्यक्त्वा स जग्राह दीक्षां जिनमतोचिताम् ॥५॥

अन्वयार्थ — केनापि = किसी भी, हेतुना = कारण से, राजा = राजा, संसृतेः = संसार से, विरक्तः = विरक्त, (बभूव = हो गया), राज्यं = राज्य को, त्यक्त्वा = छोड़कर, किल = निश्चय ही, सः = उसने, जिनमतोचितां = जिनमत के योग्य, दीक्षां = मुनिदीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया।

श्लोकार्थ — किसी भी कारण से वह राजा संसार से विरक्त हो गया। उसने राज्य को छोड़कर निश्चय ही जैनमत के सिद्धान्तों के अनुरूप मुनि दीक्षा को अङ्गीकार कर लिया।

अङ्गान्येकादशारण्ये संसाध्य मुनिसत्तमः ।

भावयामास तत्त्वेन कारणानि सः षोडश ॥६॥

अन्वयार्थ — सः = उन, मुनिसत्तमः = मुनिराज ने, अरण्ये = वन में, एकादश = ग्यारह, अङ्गानि = अङ्गों को, संसाध्य = साधकर, तत्त्वेन = भाव से, षोडश = सोलह, कारणानि = कारणों को, भावयामास = माया।

श्लोकार्थ — उन मुनिराज ने वन में ग्यारह अङ्गों को साधकर अर्थात् जानकर तत्त्व सहित सोलहकारण भावनाओं का चिन्तन किया।

संन्यासेन तनुं त्यक्त्वा स्वायुषोन्ते तपोनिधिः ।

सर्वार्थसिद्धौ संलेभे दुर्लभमहमिन्द्रताम् ॥७॥

अन्वयार्थ — तपोनिधिः = तपस्वी मुनिराज ने, स्वायुषः = अपनी आयु के, अन्ते = अन्त में, संन्यासेन = संन्यास मरण से, तनुं = शरीर को, त्यक्त्वा = छोड़कर, सर्वार्थसिद्धौ = सर्वार्थसिद्धि में, दुर्लभां = दुर्लभ, अहमिन्द्रतां = अहमिन्द्रता को, संलेभे = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ — तपस्वी मुनिराज ने अपनी आयु के अन्त में संन्यासमरण से शरीर को छोड़कर सर्वार्थसिद्धि में दुर्लभ अहमिन्द्रपद को प्राप्त कर लिया।

त्रित्रिंशत्सागरायुः स स्वतपोवैभवेन च ।

तत्रोक्तदेहनिश्वास ऋद्धिविक्रमवानभूत् ॥८॥

अन्वयार्थ — स्वतपोवैभवेन = अपने तप के वैभव से, सः = वह अहमिन्द्र, त्रित्रिंशत्सागरायुः = तैतीस सागर की आयु वाला, तत्रोक्तदेहनिश्वासः = सर्वार्थसिद्धि में शास्त्रोक्त देह परिमाण व उच्छ्वास को धारण करने वाला, च = और, ऋद्धिविक्रमवानभूत् = विक्रिया आदि ऋद्धि और पराक्रम वाला हुआ।

श्लोकार्थ — अपने तपश्चरण रूप वैभव से वह अहमिन्द्र तैतीस सागर की आयु वाला, सर्वार्थसिद्धि के योग्य शास्त्रनिर्दिष्ट देहपरिमाण और श्वासोच्छ्वास धारण करने वाला तथा विक्रियादि ऋद्धियों को धारण करने वाला हुआ।

अतीन्द्रियसुखं तत्र ह्यनन्ताख्यं बुभोज सः ।

तत्त्वचर्चानिमग्नोऽसौ नित्यं श्रीसिद्धध्यानतः ॥६॥

सिद्धार्चायां सदासक्तो नित्यानन्दपरायणः ।

तत्र षण्मासशिष्टायुः तथा वैराग्यभाजनम् ॥१०॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस सर्वार्थसिद्धि में, हि = ही, सः = उस अहमिन्द्र ने, अनन्ताख्यं = अनन्त नामक, अतीन्द्रियसुखं = अतीन्द्रिय सुख को, बुभोज = भोगा, नित्यं = हमेशा, तत्त्वचर्चानिमग्नः = तत्त्वचर्चा में मग्न, श्रीसिद्धध्यानतः = श्री सिद्धभगवन्तो के ध्यान से, सदा = हमेशा, सिद्धार्चायां = सिद्धों की पूजा में, आसक्तः = लगा हुआ, नित्यानन्दपरायणः = हमेशा आनन्द में तल्लीन, असौ = वह अहमिन्द्र देव, तत्र = सर्वार्थसिद्धि में, षण्मासशिष्टायुः = छह माह मात्र अवशिष्ट आयु वाला, तथा = और, वैराग्यभाजनं = वैराग्य का पात्र, अभूत् = हो गया ।

श्लोकार्थ - उस अहमिन्द्र देव ने सर्वार्थसिद्धि में ही अनन्त नामक अतीन्द्रिय सुख को भोगा । हमेशा तत्त्वचर्चा में मग्न, श्रीसिद्ध भगवन्तो के ध्यान से सदैव उनकी पूजा में लगा हुआ और शाश्वत आनन्द में तल्लीन वह अहमिन्द्र सर्वार्थसिद्धि नामक विमान में मात्र छह माह की शेष आयु और वैराग्य का पात्र हो गया ।

अथ तस्यावतारस्य कथां कल्मषनाशिनीम् ।

श्रोत्राभिरामां शिवदां वक्ष्येऽहं जिनभाषितः ॥११॥

अन्वयार्थ - अथ = अब, अहं = मैं, जिनभाषितः = जिनेन्द्र कथित, नाशिनीं = पाप को नष्ट करने वाली, शिवदां = मोक्ष को देने वाली, श्रोत्राभिरामां = सुनने में अच्छी लगने वाली, तस्य = उस देव की, अवतारस्य = अवतरण की, कथां = कथा को, वक्ष्ये = कहता हूँ ।

श्लोकार्थ - अब मैं जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कही उस देव के अवतरण की, पाप को नष्ट करने वाली, मोक्ष सुख देने वाली और सुनने में मनोरम, कथा को कहता हूँ ।

जम्बूद्वीपेऽस्ति भरतं विषयः कुरुजाङ्गलः ।

हस्तिनागपुरं तत्र देवेन्द्रपुरोपमम् ॥१२॥

अन्वयार्थ — जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, भरते = भरत क्षेत्र में, कुरुजाङ्गलः = कुरुजाङ्गल नामक, विषयः = देश, अस्ति = है, तत्र = वहाँ, देवेन्द्रपुरोपमं = देवेन्द्र के नगर के समान, हस्तिनागपुरं = हस्तिनागपुर, अस्ति = है।

श्लोकार्थ — जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में कुरुजाङ्गल देश है वहाँ देवेन्द्र की अमरावती के समान हस्तिनागपुर नगर है।

अपालयद्विश्वसेनः तत्पुरं धर्मकोविदः ।

ऐराख्या तस्य महिषी रूपशील गुणान्विता ॥१३॥

अन्वयार्थ -- धर्मकोविदः = धर्म को जानने वाला, विश्वसेनः = राजा विश्वसेन, तत्पुरं = उस हस्तिनागपुर को, अपालयत् = पालता था, तस्य = उस राजा की, ऐराख्या = ऐरा नामक, रूपशीलगुणान्विता = रूपशील और गुणों से युक्त, महिषी = रानी, (आसीत् = थी)।

श्लोकार्थ — हस्तिनागपुर का पालन धर्मवेत्ता राजा विश्वसेन करता था उसकी एक ऐरा देवी नामक रूपवती, शीलवती और गुणवती रानी थी।

तयोः गृहे भगवतो ज्ञात्याऽवतरणं हरिः ।

भाव्यथादिशदानन्दात् रत्नवृष्टयै धनेश्वरम् ॥१४॥

अन्वयार्थ — अथ = इसके पश्चात्, हरिः = इन्द्र ने, तयोः = उन राजा-रानी के, गृहे = घर में, भावि = भविष्य में, भगवतः = भगवान् के, अवतरणं = अवतार जन्म को, ज्ञात्या = जानकर, आनन्दात् = आनन्द से, रत्नवृष्टयै = रत्नों की वृष्टि करने के लिये, धनेश्वरं = धनपति कुबेर को, आदिशत् = आदेश दिया।

श्लोकार्थ — राजा विश्वसेन और रानी ऐरादेवी के घर 'भविष्य में भगवान् का जन्म होगा' — ऐसा जानकर अति आनन्द से भरकर इन्द्र ने धनपति कुबेर को रत्नवृष्टि करने के लिये आदेश दिया।

तदाज्ञप्तो यक्षपतिः तद्गृहे गगनागतः ।

यसून्यवर्षदत्युच्चैर्नानाजातीन्यसौ मुदा ॥१५॥

अन्वयार्थ — तदा = तब, गगनागतः = आकाश से आये, आज्ञप्तः = इन्द्र की आज्ञा को मानने वाले, यक्षपतिः = कुबेर ने, मुदा = हर्ष के साथ, तद्गृहे = उन राजा—रानी के घर में, नानाजातीनि = अनेक प्रकार के, अत्युच्चैः = अति उत्कृष्ट, वसूनि = रत्नों को, अवर्षत् = बरसाया ।

श्लोकार्थ — तभी आकाश से आये और इन्द्र की आज्ञा को मानने वाले यक्षपति कुबेर ने बड़ी प्रसन्नता के साथ उन राजा—रानी के घर में अनेक प्रकार के अति उत्कृष्ट रत्नों को बरसाया ।

एकदा भाद्रसप्तम्यां कृष्णायां भूपतिप्रिया ।

भरण्यामैक्षत प्रातः सा स्वप्नान् षोडशाद्भुताम् ॥१६॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, भाद्रसप्तम्यां = भाद्रमास की सप्तमी को, कृष्णायां = कृष्ण पक्ष में, भरण्यां = भरणी नक्षत्र में, सा = उस, भूपतिप्रिया = राजा की रानी ने, षोडश = सोलह, अद्भुतान् = आश्चर्यकारी, स्वप्नान् = स्वप्नों को, प्रातः = प्रातः बेला में, ऐक्षत = देखा ।

श्लोकार्थ — एक दिन भादों वदी सप्तमी को भरणी नक्षत्र में प्रातः बेला में उस रानी ने सोलह अद्भुत स्वप्न देखे ।

स्वप्नान्त्ये वारणं वक्त्रे प्रविष्टमनुवीक्ष्य सा ।

कुरुवंशोद्भवं भूपं प्रबुद्धा प्रत्यगात्तथा ॥१७॥

अन्वयार्थ — तथा = और, स्वप्नान्त्ये = स्वप्न देखने के अन्त में, वक्त्रे = मुख में, प्रविष्टं = प्रविष्ट होते हुये, वारणं = हाथी को, अनुवीक्ष्य = देखकर, प्रबुद्धा = जागी हुयी, सा = वह रानी, कुरुवंशोद्भवं = कुरुवंश में उत्पन्न, भूपं = राजा की, प्रति = तरफ, अगात् = गयी ।

श्लोकार्थ — तथा स्वप्न देखने के बाद अपने मुख में प्रविष्ट होते हुये एक हाथी को देखकर जागी हुयी वह रानी कुरुवंशीय राजा की ओर गयी ।

स्वप्नान् संश्राव्य तद्वक्त्रात् श्रुत्वा स्वप्नफलानि सा ।

वागगोचरमानन्दमन्तः प्राप्तवती सती ॥१८॥

अन्वयार्थ — स्वप्नान् = स्वप्नों को, संश्राव्य = सुनाकर, तद्वक्त्रात् = उनके मुख से, स्वप्नफलानि = स्वप्न के फलों को, श्रुत्वा = सुनकर, सा = उस, सती = पतिव्रता रानी, वागगोचरं = वाणी से नहीं कहा जा सकने योग्य, अन्तः = अन्तरङ्ग में, आनन्दं = आनंद को, प्राप्तवती = प्राप्त किया ।

श्लोकार्थ — स्वप्नों को सुनाकर और उनके मुख से स्वप्नों के फल को सुनकर उस रानी ने अनिर्वचनीय अन्तःसुख को प्राप्त किया ।

गर्भागतरस भगवान् यस्त्रिज्ञानविलोचनः ।

तपोनिधिः स्वतेजोभिः सहस्रार्कसमप्रभः ॥१९॥

ज्येष्ठेऽथ कृष्णचतुर्दश्यां भरण्यां नृपवेश्मनि ।

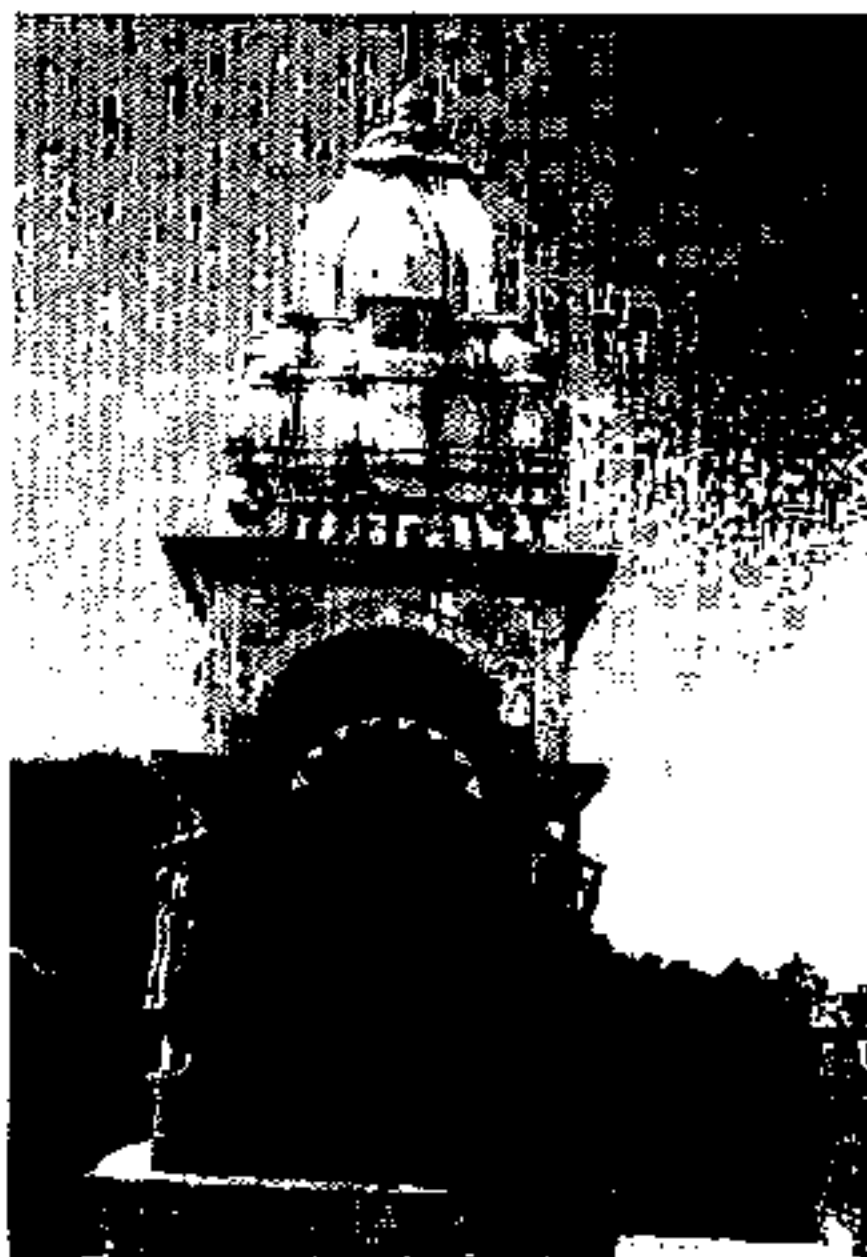
प्रादुर्बभूव तस्यां सः प्राच्यानिव दिवाकरः ॥२०॥

अन्वयार्थ — यः = जो, त्रिज्ञानविलोचनः = तीन ज्ञान से जानने वाला, तपोनिधिः = तपश्चरण से प्राप्त फल का खजाना, (च = और), स्वतेजोभिः = अपने तेज से, सहस्रार्कसमप्रभः = हजार सूर्यों के समान तेज वाला, (देवः = देव), सः = वह, गर्भागतः = गर्भ में आ गया ।

अथ = गर्भ काल के बाद, सः = वह, भगवान् = प्रभु, ज्येष्ठे = जेठ माह में, कृष्णचतुर्दश्यां = कृष्णा चतुर्दशी को, भरण्यां = भरणी नक्षत्र में, नृपवेश्मनि = राजा के महल में, तस्यां = उन ऐरादेवी रानी में, प्राच्यां = पूर्व दिशा में, दिवाकरः = सूर्य के समान, प्रादुर्बभूव = उत्पन्न हुये ।

श्लोकार्थ — जो तीन ज्ञान से जानने वाला तपश्चरण के फल को भोगने वाला और अपने तेज से हजार सूर्यों के समान कान्तिमान जो देव था वह अब गर्भ में आ गया ।

गर्भकाल बीत जाने के बाद जेठ बदी चतुर्दशी को भरणी नक्षत्र में राजा के भवन में उस रानी की कोख से भगवान् का जन्म पूर्वदिशा में सूर्य के उदय होने के समान हुआ ।



श्री शान्तिनाथ स्वामी-प्रभास कूट

त्रयाधीशः तेजसां राशिः श्रीनिवासः सतां पतिः ।

सार्वः सर्वगुणाम्बोधिः प्रभुः सज्जनवन्दितः ॥२१॥

अन्वयार्थ - प्रभुः = वह भगवान्, त्रयाधीशः = तीन ज्ञान के स्वामी, तेजसां राशिः = कान्ति के भण्डार, श्रीनिवासः = लक्ष्मी के आलय, सतां = सज्जनों के, पतिः = स्वामी, सार्वः = सभी के अपने हितैषी, सर्वगुणाम्बोधिः = सभी गुणों के सागर, (च = और), सज्जनवन्दितः = सज्जनों द्वारा वन्दनीय, (आसीत् = थे) ।

श्लोकार्थ - वह भगवान् तीन ज्ञान के स्वामी, कान्ति के धनी, लक्ष्मी के निवास, सज्जनों के स्वामी, सबके हितैषी, सभी गुणों के समुद्र समान स्वामी, और सज्जनों द्वारा वंदनीय थे ।

अथैरावतमारुह्य सगीर्वाणसुरेश्वरः ।

तूर्णं समागमत्तत्र महामोदसमन्वितः ॥२२॥

अन्वयार्थ - अथ = इसके बाद, ऐरावतं = ऐरावत हाथी पर, आरुह्य = चढ़कर, महामोदसमन्वितः = अत्यधिक आनंद से भरा हुआ, सगीर्वाणसुरेश्वरः = देवताओं के साथ इन्द्र, तत्र = वहाँ, तूर्णं = जल्दी ही समागमत् = आ गया ।

श्लोकार्थ - प्रभु का जन्म होने पर अत्यधिक आनंद से भरा हुआ इन्द्र ऐरावत हाथी पर चढ़कर देवताओं के साथ हस्तिनागपुर में राजा के घर पर आ गया ।

युक्त्या प्रभुमथादाय शक्र आकाशवर्त्मना ।

उदीरयञ्जयध्वानं गतः स्वर्णाद्रिमञ्जसा ॥२३॥

अन्वयार्थ - अथ = तत्पश्चात्, युक्त्या = युक्ति से, प्रभुं = तीर्थङ्कर शिशु को, आदाय = लेकर, जयध्वानं = जयध्वनि को, उदीरयन् = बोलते हुये, अञ्जसा = यथा रीति, आकाशवर्त्मना = आकाश मार्ग से, स्वर्णाद्रिं = सुमेरु पर, गतः = गया ।

श्लोकार्थ - तत्पश्चात् युक्ति से तीर्थङ्कर शिशु को लेकर जय ध्वनि बोलते हुये यथायोग्य आकाश मार्ग से सुमेरु पर्वत पर चला गया ।

पाण्डुकायामथो देवः संस्थाप्य भुवनेश्वरम् ।

क्षीरोदवारिसम्पूर्णैः घटैरस्नापयत् विभुम् ॥२४॥

अन्वयार्थ — अथ = फिर, देव = इन्द्र ने, पाण्डुकायां = पाण्डुकशिला पर, भुवनेश्वरं = जगत् के प्रभु को, संस्थाप्य = संस्थापित करके, क्षीरोदवारिसम्पूर्णैः = क्षीरोदधि के जल से पूर्ण, घटैः = घटों से, विभुं = शिशु प्रभु को, अस्नापयत् = नहलाया, अर्थात् = उनका अभिषेक किया ।

श्लोकार्थ -- फिर इन्द्र ने पाण्डुकशिला पर जगत् के स्वामी को स्थापित करके क्षीरोदधि के जल से पूर्ण घटों से शिशु प्रभु का अभिषेक किया ।

गन्धोदकैः पुनर्देवमभिषिच्य स सादरम् ।

सम्भूष्य भूषणैर्भूयः तं दिव्यैश्चाभिवन्दितः ॥२५॥

हस्तिनागपुरं शक्रस्ततः संप्राप्य सत्वरम् ।

नृपाङ्गणे तमारोप्य सम्पूज्याथ प्रणम्य च ॥२६॥

ताण्डवं संविधायासौ विश्वशान्तिप्रदान्वितं ।

शान्तिनाथाभिधां कृत्वा तस्य विश्वपतेस्तथा ॥२७॥

समर्प्य सादरं मातुः परमोत्सवसंयुतः ।

गीर्वाणैः समं प्रीत्या जगाम त्रिदशालयम् ॥२८॥

अन्वयार्थ -- सः = उस इन्द्र ने, गन्धोदकैः = गन्धोदक अर्थात् सुगंधित जल से, पुनः = दुबारा, देवं = शिशु प्रभु का, अभिषिच्य = अभिषेक करके, च = और, दिव्यैः = दिव्य, भूषणैः = आभूषणों से, भूष्य = अलङ्कृत करके, तं = उन प्रभु की, भूयः = खूब, अभिवन्दितः = अभिवन्दना की, ततः = उसके बाद, असौ = उस, शक्रः = इन्द्र ने, सत्वरं = शीघ्र ही, हस्तिनागपुरं = हस्तिनागपुर को, संप्राप्य = प्राप्त करके, नृपाङ्गणे = राजा के आंगन में, तं = उन प्रभु को, आरोप्य = आरोपित-स्थापित करके, सम्पूज्य = उनकी पूजा करके, प्रणम्य = प्रणाम करके, अथ च = और, विश्वशान्तिप्रदान्वितं = सभी को शान्ति प्रदान करने वाला, ताण्डवं = ताण्डव

नृत्य को, संविधाय = करके, तस्य = उन, विश्वपतेः = सभी के स्वामी को, शान्तिनाथाभिधां = शान्तिनाथ नाम, कृत्वा = करके, तथा = और, मातुः = माता के लिये, सादरं = आदर सहित, समर्प्य = देकर, गीर्वाणैः = देवताओं के, समं = साथ, प्रीत्या = प्रीति से, परमोत्सवसंयुतः = परम उत्सव से युक्त होता हुआ, त्रिदशालयं = स्वर्ग को, जगाम = चला गया।

श्लोकार्थ - उस इन्द्र ने सुगन्धित जल से पुनः शिशु प्रभु का अभिषेक करके और दिव्य आभूषणों से अलङ्कृत करके उन प्रभु की खूब वंदना की।

उसके बाद इन्द्र शीघ्र ही हस्तिनागपुर आ गया, तथा उसने राजा के आंगन में प्रभु को आरोपित करके उनकी पूजा करके, प्रणाम करके और उनके सामने सभी को शान्ति प्रदान वाला ताण्डव नृत्य किया। फिर सभी के स्वामी उन शिशु प्रभु का नाम शान्तिनाथ रखकर, पुनः शिशु को माता के लिये देकर प्रीतिपूर्वक परम उत्सव मनाता हुआ देवताओं के साथ स्वर्ग को चला गया।

लक्षवर्षायुरभवत् स देवो देवतार्चितः ।

चत्वारिंशद्धनुष्कोऽयं ईश्वरो जगतां किल ॥२६॥

अन्वयार्थ - देवतार्चितः = देवताओं द्वारा पूजित, सः = वह, देवः = भगवान्, लक्षवर्षायुः = एक लाख वर्ष आयु वाले, अभवत् = थे, अयं = यह, जगतां = तीनों लोक के, ईश्वरः = स्वामी, किल - निश्चय ही, चत्वारिंशद्धनुष्कः = चालीस धनुष प्रमाण, (अभवत् = थे)।

श्लोकार्थ - देवताओं द्वारा पूजित उन भगवान् की आयु एक लाख वर्ष और शरीर चालीस धनुष प्रमाण था।

सर्वेषां सुखदो बाल्ये पित्रोश्चायं विशेषतः ।

ववृधे भूमिपागारे बालचन्द्र इयानिशम् ॥३०॥

अन्वयार्थ - बाल्ये = बाल्यावस्था में, सर्वेषां = सभी के लिये, विशेषतः

= विशेष रूप से, पित्रोः = माता-पिता के लिये, सुखदः = सुख देने वाला, अयं = यह बालक, भूमिपागारे = राजा के घर में, अनिशं = निरन्तर, बालचन्द्र इव = बालचन्द्रमा के समान, ववृधे = वृद्धि को प्राप्त हुये।

श्लोकार्थ - बालावस्था में सभी के लिये विशेषतः माता-पिता के लिये सुखद यह निरन्तर राजा के घर में बाल चन्द्रमा के समान वृद्धि को प्राप्त हुये।

पञ्चविंशतिसहस्रवर्षाणि व्यतीत्य जगदीश्वरः ।

कैतकेन निनायासौ कौमार्ये स्मरकोटिभिः ॥३१॥

पितृणामथ राज्यं प्राप्य चक्रवर्ती बभूव सः ।

चतुर्दशास्य रत्नानि बभूवुः निधयो नव ॥३२॥

अन्वयार्थ - असौ = उन जगदीश्वरः = जगत् के स्वामी तीर्थङ्कर शांतिनाथ ने, पञ्चविंशतिसहस्रवर्षाणि = पच्चीस हजार वर्ष, व्यतीत्य = बिताकर, स्मरकोटिभिः = करोड़ों कामदेवों या मदनों की अपेक्षा से, कैतकेन = खिले हुये केवड़े के पुष्प समान, कौमार्ये = कुमारावस्था में, निनाय = ले जाये गये या पहुँचे।

अथ = कुमारावस्था प्राप्त होने पर, सः = वह, पितृणां = पिता के, राज्यं = राज्य को, प्राप्य = प्राप्त करके, चक्रवर्ती = चक्रवर्ती सम्राट्, बभूव = हुये, अस्य = इनके, चतुर्दश = चौदह, रत्नानि = रत्न, नव = नौ, निधयः = निधियां, बभूवुः = थीं।

श्लोकार्थ - उन जगदीश तीर्थङ्कर शांतिनाथ ने पच्चीस हजार वर्ष बिताकर करोड़ों की अपेक्षा से खिले हुये केवड़े के समान कुमारावस्था में प्रवेश किया। तत्पश्चात् वह पिता के राज्य को प्राप्तकर चक्रवर्ती सम्राट् बन गये। इनके पास चौदह रत्न और नौ निधियाँ थीं।

सर्वशत्रून्वशीकृत्य विजयी स नरेश्वरः ।

राज्यं बुभोज धर्मेण देवराजसमं विभुः ॥३३॥

अन्वयार्थ -- सः = उन, विजयी = चक्रवर्ती, नरेश्वरः = राजा, विभुः = प्रभु ने, सर्वशत्रून् = सारे शत्रुओं को, वशीकृत्य = वश में करके, धर्मेण = धर्म मार्ग से, देवराजसमं = इन्द्र के समान, राज्यं = राज्य को, बुभोज = भोगा, उसका पालन किया।

श्लोकार्थ -- उन चक्रवर्ती राजा प्रभु शांतिनाथ ने सारे शत्रुओं को अपने वश में करके इन्द्र समान राज्य का पालन किया।

एकस्मिन् दिवसे विद्युल्लतां दृष्ट्वा क्षणप्रभाम् ।

क्षणिकं विश्वमाबुध्य विरक्तस्स संसृतेरभूत् ॥३४॥

अन्वयार्थ -- एकस्मिन् = एक, दिवसे = दिन, क्षणप्रभां = क्षणिक कान्ति स्वरूप, विद्युल्लतां = बिजली को, दृष्ट्वा = देखकर, विश्वं = संसार या सभी को, क्षणिकं = क्षणिक-विनश्वर, आबुध्य = जानकर, सः = वह, संसृतेः = संसार से, विरक्तः = विरक्त, अभूत् = हो गया।

श्लोकार्थ -- एक दिन क्षणभंगुर कान्ति वाली बिजली को देखकर वह सारे पदार्थों को या संसार को क्षणिक जानकर संसार से विरक्त हो गया।

ब्रह्मर्षयस्तदा प्राप्ताः देवं संवीक्ष्य हर्षिताः ।

प्रशंशंसुः प्रभुं वाक्यैः विरक्तिरसवर्धकैः ॥३५॥

अन्वयार्थ -- तदा = तभी, देवं = प्रभु को, संवीक्ष्य = देखकर, हर्षिताः = हर्षित हुये, ब्रह्मर्षयः = ब्रह्मर्षि नामक लौकान्तिक देव, (तत्र = वहाँ), प्राप्ताः = उपस्थित हुये, (च = और), विरक्तिरसवर्धकैः = वैराग्य रस को बढ़ाने वाले, वाक्यैः = वाक्यों से, प्रभुं = भगवान् की, प्रशंशंसु = प्रशंसा की।

श्लोकार्थ -- तभी प्रभु के वैराग्य भाव को देखकर ब्रह्मर्षि जाति के लौकान्तिक देव वहाँ उपस्थित हुये और वैराग्य भाव को बढ़ाने वाले वाक्यों से प्रभु की प्रशंसा की।

द्वादशायमनुप्रेक्षाः संभाव्य भुवनाधिपः ।

नारायणात्मजायाथ ददौ राज्यमनूत्तमम् ॥३६॥

अन्वयार्थ — अथ = तत्पश्चात्, अयं = इस, भुवनाधिपः = राजा ने, द्वादश = बारह, अनुप्रेक्षाः = अनुप्रेक्षायें, संभाव्य = भाकर, अनूत्तमं = उत्तम, राज्यं = राज्य को, नारायणात्मजाय = नारायण नामक पुत्र के लिये, ददौ = दे दिया।

श्लोकार्थ — तत्पश्चात् इस राजा ने बारह अनुप्रेक्षाओं को अच्छी तरह भाकर—विचारकर अपना उत्तम राज्य पुत्र नारायण को दे दिया।

सर्वार्थसिद्धिशिविकां समारूह्य ततः प्रभुः ।

देवोपनीतामतुलां जयशब्दपुरस्सरः ॥३७॥

ज्येष्ठकृष्णचतुर्थ्यां स सहस्रक्षितिपैः सह ।

यथायुक्तवनमासाद्य दीक्षां जग्राह धर्मवित् ॥३८॥

अन्वयार्थ — ततः = उसके बाद, धर्मविद् = धर्म के ज्ञाता, (च = और), जयशब्दपुरस्सरः = जय शब्द जिनके आगे हो रहे हैं ऐसे, सः - उस, प्रभुः = विरक्त राजा ने, देवोपनीतां = देवों द्वारा लायी गयी, अतुलां = अनुपम, सर्वार्थसिद्धिशिविकां = सर्वार्थसिद्धिनामक पालकी में, समारूह्य = चढ़कर, ज्येष्ठकृष्णचतुर्थ्यां = जेठ कृष्ण चौथ के दिन, यथायुक्तवनं = यथायोग्य निर्दिष्ट वन को, आसाद्य = प्राप्त करके, सहस्रक्षितिपैः = एक हजार राजाओं के, सह = साथ, दीक्षां = दीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया।

श्लोकार्थ — उसके धर्मज्ञ और जय शब्दों से सम्मानित उस विरक्त राजा ने देवों द्वारा लायी गयी, अनुपम सर्वार्थसिद्धि नामक पालकी पर चढ़कर ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्थी के दिन यथायोग्य वन में जाकर एक हजार राजाओं के साथ मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली।

मनःपर्ययनामास्योदभूत् बोधश्चतुर्थकः ।

तेन विश्वमनोवार्तां ज्ञातुं सर्वामभूत् क्षमः ॥३९॥

अन्वयार्थ — अस्य = इन मुनिराज के, मनःपर्ययनामा = मनःपर्ययनामक, चतुर्थकः = चौथा, बोधः = ज्ञान, अभूत् = उत्पन्न हो गया, तेन = उस ज्ञान से, (सः = वह), सर्वा = सारी,

विश्वमनोवार्ता = सारे लोगों के मन में स्थित बात को, ज्ञातुं = जानने के लिये, क्षमः = समर्थ अभूत् = हो गये।

श्लोकार्थ — उन मुनिराज के मनःपर्यय नामक चतुर्थ ज्ञान उत्पन्न हो गया। उस ज्ञान से वह विश्व में स्थित मन वालों की मनोगत बात को जानने में समर्थ हो गये।

द्वितीयेऽहिनि स भिक्षार्थं मन्दराख्यं पुरं गतः ।

सुमित्रभूमिपेनायं हि पूजितः सादरं प्रभुः ॥४०॥

अन्वयार्थ — द्वितीये = दूसरे, अहिनि = दिन, सः = वह मुनिराज, भिक्षार्थं = भिक्षा के लिये, मन्दराख्यं = मन्दर नामक, पुरं = नगर को, गतः = गये, (तत्र = वहाँ), सुमित्रभूमिपेन = सुमित्र राजा द्वारा, अयं = यह, हि = ही, प्रभुः = मुनिराज, पूजितः = पूजे गये।

श्लोकार्थ — दूसरे दिन वह मुनिराज भिक्षा के लिये मन्दर नामक नगर को गये। वहाँ सुमित्र राजा ने इन मुनिराज की आदर सहित पूजा की।

जग्राहाहारमुचितं तदा तद्भूपतेर्गृहे ।

पञ्चाश्चर्याणि दिव्यानि बभूवुर्मोदकानि वै ॥४१॥

अन्वयार्थ — (सः = मुनिराज ने), तद्भूपतेः = उस राजा के, गृहे = घर पर, उचितं = उचित, आहारं = आहार को, जग्राह = ग्रहण किया, तदा = तब (तत्र = वहाँ), वै = निश्चित, दिव्यानि = दिव्य, मोदकानि = प्रसन्न करने वाले, पञ्चाश्चर्याणि = पाँच आश्चर्य, बभूवुः = हुये।

श्लोकार्थ — उन मुनिराज ने राजा के घर पर उचित आहार ग्रहण किया। तभी उसके घर में दिव्य और आनन्ददायी पाँच आश्चर्य हुये।

तपोवनमथासाद्य प्रभुर्वेलोपवासकृत् ।

महोग्रं तपः आरेभे विश्वदुर्लभं भुक्तये ॥४२॥

अन्वयार्थ — अथ = उसके बाद, वेलोपवासकृत् = वेलोपवास की प्रतिज्ञा वाले, प्रभुः = मुनिराज ने, तपोवनं = तपोवन को, आसाद्य = प्राप्त करके, भुक्तये = भुक्ति के लिये, विश्वदुर्लभं =

सबके लिये कठिन, महोग्रं = अत्यधिक उग्र-भीषण, तपः = तपश्चरण को, आरंभे = आरंभ किया।

श्लोकार्थ - उसके बाद बेला अर्थात् एक दिन के उपवास की प्रति वाले उन मुनिराज ने तपोवन को प्राप्त करके मुक्ति के लिये किन्तु सभी के लिये कठिन और अत्यधिक उग्र-भीषण तपश्चरण प्रारंभ कर दिया।

तपो नानाप्रदेशेषु कृत्वा मौनधरो विभुः।

दग्ध्वासौ निजकर्माणि शुक्ल ध्यानोग्रवहिनना ॥४३॥

ततः पौषदशम्यां हि शुक्लायां मुनिवन्दितः।

केवलानन्दसन्दोहं केवलज्ञानमाप च ॥४४॥

अन्वयार्थ - असौ = उन, मौनधरः = मौन धारण करने वाले, विभुः = मुनिराज ने, नानाप्रदेशेषु = अनेक स्थानों पर, तपः = तपश्चरण, कृत्वा = करके, शुक्लध्यानोग्रवहिनना = शुक्लध्यान रूप उग्र अग्नि से, निजकर्माणि = अपने कर्मों को, दग्ध्वा = जलाकर, च = और, ततः = उसके बाद, मुनिवन्दितः = मुनिराजों से वन्दित होते हुये, पौषदशम्यां = पौष शुक्ला दशमी के दिन, केवलानन्दसन्दोहं = केवल आनंद अर्थात् अनंत सुख के साथ होने वाला, केवलज्ञानं = केवलज्ञान को, आप = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ - उसके बाद उन मौन व्रतधारी मुनिराज ने अनेक स्थानों पर तपश्चरण करके शुक्लध्यान रूप उग्र अग्नि द्वारा अपने कर्मों को जलाकर और मुनिराजों से वन्दित होते हुये पौष शुक्ला दशमी के दिन अनंत आनंद से संयुक्त केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया।

तदा शक्रादयो देवाः प्राप्तास्तत्रैव हर्षिताः।

कृतरसमवसारस्तैरद्भुतो रत्ननिर्मिताः ॥४५॥

अन्वयार्थ - तदा = तभी, शक्रादयः = इन्द्र आदि, देवाः = देवजन, हर्षिताः = प्रसन्न होते हुये, तत्रैव = वहीं, प्राप्ताः = उपस्थित हुये, तैः = उनके द्वारा, अद्भुतः = अतिशय आश्चर्यकारी,

रत्ननिर्मितः = रत्नों से बना, समवसारः = समवसरण, कृतः = तैयार किया गया।

श्लोकार्थ — तभी इन्द्र आदि देव प्रसन्न होते हुये वहाँ आ गये उनके द्वारा अतिशय आश्चर्यकारी और रत्नों से निर्मित समवसरण की रचना की गयी।

चक्रायुधादयस्तत्र गणेन्द्रास्ते तदादिभिः ।

यथोक्तैर्द्वादशोक्तेषु कोष्ठेषु समवस्थितैः ॥४६॥

सर्वैः स संस्तुतो देवो भक्तिनम्रकरैर्जनैः ।

धर्मोपदेशं कृतवान् सर्वेभ्यो दिव्यनादतः ॥४७॥

अन्वयार्थ — तत्र = उस समवसरण में, ते = आपके अर्थात् भगवान् के, चक्रायुधादयः = चक्रायुध आदि, गणधराः = गणधर (आसन = थे), तदादिभिः = उन गणधरों को आदि करके, उक्तेषु = कहे गये, द्वादश = बारह, कोष्ठेषु = कोठों में, यथोक्तैः = जैसे बताये गये हैं तदनुसार, समवस्थितैः = बैठे हुये, सर्वैः = सभी, भक्तिनम्रकरैः = भक्ति से विनम्र हाथों वाले, जनैः = लोगों के द्वारा, संस्तुतः = स्तुति किये जाते हुये, सः = उन, देवः = भगवान् ने, दिव्यनादतः = दिव्यध्वनि से, सर्वेभ्यः = सभी के लिये, धर्मोपदेशं = धर्मोपदेश को, कृतवान् = किया।

श्लोकार्थ — उस समवसरण में उन प्रभु के चक्रायुध आदि गणधर थे। उनको आदि करके बारहों कोठों में यथोक्त क्रम से बैठे हुये सभी भक्ति से हाथ जोड़े हुये लोगों के द्वारा स्तुति किये जाते हुये उन भगवान् ने अपनी दिव्यध्वनि से सभी के लिये धर्मोपदेश दिया।

सम्प्रेदपर्वतं गत्वा सहस्रमुनिसंयुतः ।

प्रभासकूटे स्थितवान् विशदध्यानतत्परः ॥४८॥

अन्वयार्थ — जगदीश्वरः = जगत् के स्वामी भगवान् शान्तिनाथ ने, सर्वेषु = सभी, उपदेशेषु = निकटवर्ती देशों में, विहरति स्म =

विहार किया, च = और, एकमासवशिष्टायुः = एक माह मात्र आयु शेष, ज्ञात्वा = जानकर, तदध्वनिं = दिव्यध्वनि को, संहृत्य = समेटकर-रोककर, सम्मेदपर्वतं = सम्मेदपर्वत को, गत्वा = जाकर, विशदध्यानतत्परः = विशद-निर्मल ध्यान में लगे हुये, सहस्रमुनिसंयुतः = एक हजार मुनिराजों से युक्त, (असौ = वह प्रभु), प्रभासकूटे = प्रभास नामक कूट पर, स्थितवान् = स्थित हो गये।

श्लोकार्थ - जगत् के प्रभु तीर्थङ्कर शांतिनाथ ने निकटवर्ती सभी देशों में विहार किया और एक माह आयु शेष जानकर, दिव्यध्वनि को रोककर और सम्मेदपर्वत पर जाकर निर्मल ज्ञान संयुक्त वह प्रभु एक हजार मुनियों के साथ प्रभासकूट पर स्थित हो गये।

स्थित्यैकमासं तत्रासौ प्रतिमायोगवान्प्रभुः ।

वैशाखशुक्लप्रतिपद्याप सिद्धपदं मुदा ॥५०॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस प्रभासकूट पर, एकमासं = एकमास तक, स्थित्वा = ठहर कर, प्रतिमायोगवान् = प्रतिमायोग धारण किये, असौ = उन, प्रभुः = भगवान् ने, मुदा = प्रसन्नता से, वैशाखशुक्लप्रतिपदि = वैशाखशुक्ला प्रतिपदा के दिन, सिद्धपदं = सिद्धपद को, आप = प्राप्त किया।

श्लोकार्थ - उस प्रभासकूट पर एक मास तक स्थित रहकर प्रतिमायोग धारण किये हुये उन भगवान् ने प्रसन्नता से वैशाख सुदी प्रति पदा के दिन सिद्धपद को प्राप्त किया।

ततश्चैककोटिकोटीनां नवकोट्यस्ततः परम् ।

नवलक्षा सहस्राणि नवैव तदनन्तरम् ॥५१॥

सैकोनशतरन्धोक्ता शतानीत्येव संख्यया ।

प्रभासकूटान्निर्वाणपदं भव्याः प्रपेदिरे ॥५२॥

अन्वयार्थ - ततश्च = और इसके बाद, एककोटिकोटीनां = एक कोड़ाकोड़ी, नवकोट्यः = नौ करोड़, ततः परं = उससे आगे, नवलक्षाः = नौ लाख, नव एव = नौ ही, सहस्राणि = हजार,

तदनन्तरं = उससे आगे, सैकोनशतरन्धोक्ता शतानि = नौ सौ निन्यान्वे, इत्येवं = इस प्रकार ही, संख्यया = संख्या से, (गणिताः = परिगणित), भव्याः = भव्य मुनिराज, प्रभासकूटात् = प्रभासकूट से, निर्वाणपदं = मोक्षपद को, प्रवेदिरे = गये।

श्लोकार्थ — तीर्थङ्कर शान्तिनाथ के बाद एक कोखाढीसी नौ करोड़, नौ लाख, नौ हजार नौ सौ निन्यान्वे भव्य मुनिराज इस प्रभासकूट से मोक्ष गये हैं।

ततः सुदर्शनो राजा सङ्घं सम्पूज्य भक्तितः।

सम्मदयात्रां कृतवान् वक्ष्येऽहं तत्कथां शुभाम्॥५३॥

अन्वयार्थ -- ततः = उसके बाद, राजा = राजा, सुदर्शनः = सुदर्शन ने, भक्तितः = भक्ति से, संघं = मुनि आदि संघों को, सम्पूज्य = पूजकर, सम्मदयात्रां = सम्मद शिखर की तीर्थवंदना रूप यात्रा को, कृतवान् = किया, अहं = मैं, शुभां = शुभ, तत्कथां = उसकी कथा को, वक्ष्ये = कहता हूँ।

श्लोकार्थ -- भगवान् के मोक्ष जाने के बाद राजा सुदर्शन ने भक्तिभाव से मुनि आदि संघों को पूजकर सम्मदशिखर पर्वत की यात्रा की। मैं कवि उस राजा द्वारा की गयी यात्रा की कथा को कहता हूँ।

जम्बूद्वीपे शुचिक्षेत्रे भरते विषयो महान्।

विरञ्चिनामा तत्रास्ति ख्यातं मित्रपुरं महत्॥५४॥

अन्वयार्थ -- जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, भरते = भरत, शुचिक्षेत्रे = पवित्र आर्य क्षेत्र में, विरञ्चिनामा = विरञ्चि नामक, महान् = महान्, विषयः = देश, तत्र = उस देश में, महत् = एक विशाल, मित्रपुरं = मित्रपुर नामक नगर, ख्यातं = विख्यात, अस्ति = है (था)।

श्लोकार्थ -- जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में पवित्र आर्य खण्ड में विरञ्चि नामक एक महान् देश था जहाँ एक प्रसिद्ध एवं विशाल नगर मित्रपुर था।

सुदर्शनो नाम राजा तत्राभूत् तस्य तु प्रिया ।

नाम्ना विजयसेना सा शीलशोभाखनी स्मृता ॥५५॥

अन्वयार्थ - तत्र = वहाँ, सुदर्शनः = सुदर्शन नामक, राजा = राजा, अभूत् = हुआ था, तस्य = उस राजा की, प्रिया = प्रिय रानी, नाम्ना = नाम से, विजयसेना = विजयसेना, (अभूत् = थी), सा = वह रानी, शीलशोभाखनी = शील और सौन्दर्य की खान, स्मृता = मानी गयी थी ।

श्लोकार्थ - वहाँ सुदर्शन नामक एक राजा हुआ था जिसकी प्रिय रानी विजयसेना रूप सौन्दर्य और शील की खान थी ।

एकदा स गतो राजा वनक्रीडार्थमञ्जसा ।

वने तत्र ददर्शासौ मुनिं ज्वलनसन्निभम् ॥५६॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, सः = वह, राजा = राजा, वनक्रीडार्थ = वन क्रीड़ा के लिये, अञ्जसा = यथायोग्य रूप से शीघ्र ही, गतः = गया, तत्र = उस, वने = वन में, असौ = उस राजा ने, ज्वलनसन्निभम् = कान्तिपूर्ण, मुनिं = मुनिराज को, ददर्श = देखा ।

श्लोकार्थ - एक दिन वह राजा यथायोग्य रूप से शीघ्र ही वनक्रीड़ा के लिये वन में गया वहाँ उस राजा ने जलते हुये दीपक के समान आभा वाले मुनिराज को देखा ।

अनन्तवीर्यनामानं केवलज्ञानदीपितम् ।

त्रिः परिक्रम्य तं राजा प्रणनाम कृताञ्जलिः ॥५७॥

अन्वयार्थ - कृताञ्जलिः = हाथ जोड़े हुये, राजा = राजा ने, केवलज्ञानदीपितं = केवलज्ञान से सुशोभित, अनन्तवीर्यनामानं = अनन्तवीर्य नामक, तं = मुनिराज को, त्रिःपरिक्रम्य = तीन बार परिक्रमा लगाकर, प्रणनाम = प्रणाम किया ।

श्लोकार्थ - हाथ जोड़े हुये राजा ने केवलज्ञान से आलोकित अनन्तवीर्य नामक उन मुनिराज को तीन परिक्रमा देकर प्रणाम किया ।

ततो नृपः स्वपर्यायान् पृच्छ मुनिसत्तमम् ।

तमब्रवीन्मुनीशानः स्वजनुष्यवृत्तं शृणु ॥५८॥

अन्वयार्थ - ततः = उसके बाद, नृपः = राजा ने, मुनिसत्तमं = मुनिराज से, स्वपर्यायान् = अपनी पर्यायों को, पृच्छ = पूछा, मुनीशानः = मुनिराजों के स्वामी केवलज्ञानी ने, तं = उससे, अब्रवीत् = कहा, स्वजनुष्यवृत्तं = अपने जन्म सम्बंधी समाचार को, शृणु = सुनो।

श्लोकार्थ - उसके बाद राजा ने उन मुनिराज से अपनी पूर्व पर्यायों को पूछा तो वह मुनिश्रेष्ठ उस राजा से बोले— राजन् तुम अपने जन्मों से संबंधित वृत्त को सुनो।

पूर्वजन्मनि भूपाल त्वया सम्मेदभूभृतः ।

यात्रा कृता मनोवाग्भ्यां कायेन श्रद्धया मुदा ॥५९॥

अन्वयार्थ - भूपाल = हे राजन्!, त्वया = तुम्हारे द्वारा, पूर्वजन्मनि = पूर्व जन्म में, सम्मेदभूभृतः = सम्मेदशिखर पर्वत की, यात्रा = यात्रा, मुदा = प्रसन्नता से, श्रद्धया = आस्था के साथ, मनोवाग्भ्यां = मन वाणी से, (च = और), कायेन = शरीर से, कृता = की थी।

श्लोकार्थ - हे राजन्! तुमने अपने पूर्व भव में सम्मेदशिखर पर्वत की यात्रा प्रसन्नता और श्रद्धा के साथ मन, वचन, काय की शुद्धि पूर्वक की थी।

तस्मात्त्वमस्मिन्पर्याये भूपोसि हे महानृप ।

किञ्चिदन्यदपि क्षोणीपते शृणु कथानकम् ॥६०॥

अन्वयार्थ - तस्मात् = उसी कारण से, अस्मिन् = इस पर्याय में, हे महानृप = हे महा राजन्!, त्वं = तुम, भूपः = राजा, असि = हो, क्षोणीपते = हे नृपश्रेष्ठ!, किञ्चिद् = कोई, अन्यदपि = दूसरे भी, कथानकं = कथानक को, शृणु = सुनो।

श्लोकार्थ - हे राजन्! उस सम्मेदगिरि की यात्रा करने के फल से तुम इस पर्याय में राजा हुये हो। हे नृपश्रेष्ठ! तुम एक कोई अन्य कथानक को भी सुनो।

पोदनाख्यपुरे विप्र एक आसीत् पुरोऽधनः ।

सोमशर्माभिधानोऽसौ महादारिद्र्यपीडितः ॥६१॥

अन्वयार्थ - पोदनाख्यपुरे = पोदनपुर नामक नगर में, एकः = एक, विप्रः = ब्राह्मण, पुरः = सबके सामने अर्थात् स्पष्टतया, अधनः = निर्धन, आसीत् = था, सोमशर्माभिधानः = सोमशर्मानामक, असौ = वह, महादारिद्र्यपीडितः = अत्यधिक दारिद्र्य से पीडित, आसीत् = था ।

श्लोकार्थ - पोदनपुर नामक नगर में निस्सन्देह रूप से गरीब एक ब्राह्मण रहता था । सोमशर्मा नामक वह दारिद्र्य से अत्यधिक पीडित था ।

स चारणमुनिं दृष्ट्वैकदा तमभिवन्द्य वै ।

प्राह दारिद्र्यपीडा मे कथं नश्येद् दयानिधे ॥६२॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, सः = उसने, चारणमुनिं = चारणऋद्धिधारी, मुनिं = मुनि को, दृष्ट्वा = देखकर, तं = उन्हें, अभिवन्द्य = प्रणाम करके, वै = निश्चित रूप से, प्राह = बोला, दयानिधे! = हे दयासिन्धु!, मे = मेरी, दारिद्र्यपीडा = गरीबी का दुख, कथं = कैसे, नश्येत् = नष्ट होगा ।

श्लोकार्थ - एक दिन उस ब्राह्मण चारणऋद्धिधारी मुनिराज को देखकर उन्हें प्रणाम किया और निश्चित मन से उनको पूछा हे कृपासिन्धु मेरी गरीबी का दुख कैसे नष्ट होगा ।

मुनिनोक्तं तदा विप्र गच्छ सम्मेदपर्वतम् ।

निश्चयेन गते तत्र दारिद्र्यं गमिष्यति ॥६३॥

अन्वयार्थ - तदा = तब, मुनिना = मुनिराज द्वारा, उक्तं = कहा गया, विप्र = हे ब्राह्मण!, सम्मेदपर्वतं = सम्मेदशिखर पर्वत को, गच्छ = जा, निश्चयेन = निश्चित ही, तत्र = वहाँ, गते = जाने पर, ते = तुम्हारी, दारिद्र्यं = गरीबी, गमिष्यति = चली जायेगी ।

श्लोकार्थ - तब मुनिराज ने कहा- हे विप्र! तूम सम्मेदशिखर पर्वत पर

जाओ। वहाँ जाने पर निश्चित ही तुम्हारी गरीबी नष्ट हो जायेगी।

इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा तत्क्षणादेव सिद्धिजम् ।

अचलच्छैलयात्रायै धनावाप्त्यै नरोत्तमः ॥६४॥

अन्वयार्थ - मुनेः = मुनिराज के, इति = ऐसे, सिद्धिजं = सिद्धि सम्पन्न, वाक्यं = वाक्य को, श्रुत्वा = सुनकर, तत्क्षणादेव = उस समय से ही, (सः = वह), नरोत्तमः = श्रेष्ठ ब्राह्मण, धनावाप्त्यै = धन पाने के लिये, शैलयात्रायै = सम्मेदपर्वत की यात्रा करने के लिये, अचलत् = चल दिया।

श्लोकार्थ - मुनिराज के इस प्रकार सिद्धि पूर्ण वाक्य को सुनकर वह नरोत्तम ब्राह्मण शीघ्र ही धन पाने के लिये सम्मेदगिरि की यात्रा के लिये चल दिया।

पथि गच्छन् स एकाकी भूत्वा गुप्तिसमन्वितम् ।

विद्याधरं महासुज्ञं तत्रागतमपश्यत् ॥६५॥

अन्वयार्थ - पथि = मार्ग पर, गच्छन् = जाते हुये, एकाकी = अकेले, भूत्वा = होकर, सः = उस ब्राह्मण को, गुप्तिसमन्वितं = गुप्त रहने योग्य धन आदि से युक्त, महासुज्ञं = महान् ज्ञानी, विद्याधरं = विद्याधर को, तत्रागतं = वहाँ आया हुआ, अपश्यत् = देखा।

श्लोकार्थ - मार्ग पर जाते हुये उस एकाकी हुये ब्राह्मण ने गोपनीयता से पूर्ण या धन वैभव सम्पन्न महान् ज्ञानी एक विद्याधर को वहाँ आया हुआ देखा।

तद्विभूतिं स दृष्ट्वा तं निदानमनुबद्धकृत् ।

एतदेव फलं मेऽस्तु यात्रायां मनसार्पयत् ॥६६॥

अन्वयार्थ - तं = उस विद्याधर को, (च = और), तद्विभूतिं = उसके वैभव को, दृष्ट्वा = देखकर, निदानमनुबद्धकृत् = निदान अर्थात् इच्छापूर्वक फल कामना स्वरूप बंध से युक्त, सः = वह ब्राह्मण, मनसा = मन से, आर्पयत् = प्रेरित हुआ, यात्रायां

= यात्रा के विषय में, मे = मेरा, एतत् = यह, एव = ही, फलं = फल, अस्तु = हो।

श्लोकार्थ - विद्याधर और उसकी विभूति को देखकर वैसे ही फल की प्राप्ति इस यात्रा से गुड़े हो ऐसे निदान बंध से युक्त हुआ वह ब्राह्मण मन से प्रेरित हुआ।

सम्मेदयात्राकर्त्ताऽसौ ततः सम्प्राप्य पञ्चताम्।

स्वर्गे चतुर्थे देवोऽभूत् महाभूतिप्रदीपितः ॥६७॥

अन्वयार्थ - ततः = उसके बाद, सम्मेदयात्राकर्त्ता = सम्मेदशिखर की यात्रा करने वाला, असौ = वह ब्राह्मण, पञ्चतां = मृत्यु को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, चतुर्थे = चौथे, स्वर्गे = स्वर्ग में, महाभूतिप्रदीपितः = महान् विभूति से चमकता-प्रकाशित होता हुआ, देवः = देव, अभूत् = हुआ।

श्लोकार्थ - उसके बाद सम्मेदशिखर की यात्रा करने वाला वह ब्राह्मण मर कर चौथे स्वर्ग में महान् विभूति युक्त एवं दिव्य ज्योति पूर्ण देव हो गया।

ततः स्वर्गाच्च्युतो भूम्यां भूपतिः स महानभूत्।

यात्रां सम्मेदशैलस्थ चकार विधिवत्पुनः ॥६८॥

अन्वयार्थ - ततः = उस, स्वर्गात् = स्वर्ग से, च्युतः = च्युत हुआ, सः = वह, भूम्या = पृथ्वी पर, महान् = एक महान्, भूपतिः = राजा, अभूत् = हुआ, पुनः = फिर से, (सः = उसने), विधिवत् = विधिपूर्वक, सम्मेदशैलस्थ = सम्मेदशिखर पर्वत की, यात्रां = यात्रा को, चकार = किया।

श्लोकार्थ - उस चौथे स्वर्ग से च्युत हुआ वह देव पृथ्वी पर एक महान् राजा हुआ। तब उसने फिर से सम्मेदशिखर पर्वत की यात्रा की।

यात्रां कृत्वा विरक्तोऽयं दीक्षां धृत्वाथ पायनीम्।

एककोटिचतुर्युक्ताऽशीतिलक्षमुनीश्वरैः ॥६९॥

केवलज्ञानमासाद्य शुक्लध्यानधरोऽनघः।

अभिवन्द्य प्रभासाख्यं कूटं सम्प्राप सिद्धताम् ॥७०॥

अन्वयार्थ — अथ = अब, यात्रा = सम्मेदगिरि की यात्रा को, कृत्वा = करके, विरक्तः = विरक्त हुये, अयं = इस राजा ने, पावनीं = पावन, दीक्षां = दीक्षा को, धृत्वा = धारण करके, एक कोटिचतुर्युक्ताऽशीतिलक्षमुनीश्वरैः = एक करोड़ चौरासी लाख मुनिराजों के साथ, केवलज्ञानं = केवलज्ञान को, आसाद्य = प्राप्त करके, अथ = और, प्रभासाख्यं = प्रभास नामक, कूटं = कूट को, अभिवाच्य = प्रणाम करके, जनयः = कर्मरहित, शुक्लध्यानधरः = शुक्लध्यान को धारण किये हुये, सिद्धतां = सिद्धता को, सम्प्राप = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ — सम्मेदशिखर की यात्रा करके विरक्त हुये इस राजा ने पवित्र मुनि दीक्षा को धारण करके, एक करोड़ चौरासी लाख मुनिराजों के साथ केवलज्ञान प्राप्त करके और प्रभासकूट को प्रणाम करके सिद्ध पद प्राप्त कर लिया।

एककूटस्य मुनिना फलभीदृक् प्रकाशितम् ।

तद्वन्दको न नरकं न पशुत्वं क्वचिल्लभेत् ॥७१॥

अन्वयार्थ — मुनिना = मुनि द्वारा, एककूटस्य = एक कूट का, ईदृक् = ऐसा, फलं = फल, प्रकाशितम् = प्रकाशित किया है, तद्वन्दको = उस कूट की वन्दना करने वाला, क्वचित् = कभी भी, नरकं = नरक को, न = नहीं, लभेत् = प्राप्त करे, पशुत्वं = पशुत्व को, (अपि = भी), न = नहीं, लभेत् = प्राप्त करे।

श्लोकार्थ - मुनिराज द्वारा एक कोटि का इतना और ऐसा फल प्रकाशित किया है कि उस कूट की वन्दना करने वाला कभी भी नरक और पशुपना प्राप्त नहीं करे।

श्रीशान्तिनाथेन विधाय वासं,

यस्मिंश्च मासावधियोगसिद्धैः ।

सिद्धालयो लब्ध उदारबुद्ध्या

प्रभासकूटं शिरसा नमामि ॥७२॥

अन्वयार्थ — च = और, यस्मिन् = जिस कूट पर, श्रीशान्तिनाथेन = तीर्थङ्कर शान्तिनाथ द्वारा, मासावधियोगसिद्धैः = एक माह तक योग सिद्ध पुरुषार्थों से, वासं = निवास, विधाय = करके, उदारबुद्ध्या = विस्तृत केवलज्ञान रूप बुद्धि से, सिद्धालयः = सिद्धालय, लब्धः = प्राप्त किया, (तं = उस), प्रभासकूटं = प्रभासकूट को, शिरसा = सिर से, नमामि = नमस्कार करता हूँ।

श्लोकार्थ — जिस कूट पर तीर्थङ्कर शान्तिनाथ ने एक माह तक सिद्ध योगों से निवास करके सिद्धालय को प्राप्त किया उस कूट को मैं सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

[इति दीक्षितब्रह्मनेमिदत्तविरचिते सम्मेदशैलमाहात्म्ये तीर्थङ्कर-
शान्तिनाथवृत्तपुरुष्कारं प्रभासकूटवर्णनं नाम
पंचदशमोऽध्यायः सम्पूर्णः।]

[इस प्रकार दीक्षित ब्रह्मनेमिदत्त द्वारा रचित सम्मेदशैलमाहात्म्य नामक काव्य में तीर्थङ्कर शान्तिनाथ के वृत्त को बताने वाले प्रभासकूट का वर्णन करने वाला यह पन्द्रहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।]

अथ षोडशतमोऽध्यायः

कूटं ज्ञानधरं वन्दे कुन्थुनाथमहेशितुः ।

यतो मुक्तिपदं यातः कुन्थुनाथो जगत्पतिः ॥१॥

अन्वयार्थ - जगत्पतिः = जगत् के स्वामी, कुन्थुनाथः = तीर्थङ्कर कुन्थुनाथ, यतः = जिस कूट से, मुक्तिपदं = मुक्तिस्थान सिद्धालय को, यातः = गये, (तं = उस), कुन्थुनाथमहेशितुः = तीर्थङ्कर कुन्थुनाथ की, ज्ञानधरं = ज्ञानधर नामक, कूटं = कूट को, वन्दे = मैं प्रणाम करता हूँ।

श्लोकार्थ - जिस कूट से तीर्थङ्कर कुन्थुनाथ मोक्ष को गये मैं उस तीर्थेश कुन्थुनाथ की ज्ञानधर कूट को प्रणाम करता हूँ।

भव्यरक्षाकरो यस्तु उज्झित्वा पापसंचयम् ।

मनसा वचसा मूर्ध्ना कुन्थुनाथं तमाश्रये ॥२॥

अन्वयार्थ - यः = जो, पापसञ्चयं = पाप के समूह को, उज्झित्वा = छोड़कर, भव्यरक्षाकरः = भव्य जीवों की रक्षा करने वाले हैं, तं = उन, कुन्थुनाथं = कुन्थुनाथ का, (अहं = मैं), मनसा = मन से, वचसा = वाणी से, मूर्ध्ना = भस्त्रक या शरीर से, आश्रये = आश्रय लेता हूँ।

श्लोकार्थ - जो पापों के समूह को छोड़कर भव्य जीवों की रक्षा करने वाले हैं उन कुन्थुनाथ का मैं मन-वचन-काय से आश्रय लेता हूँ।

कुन्थोश्च कूटस्य चरितं पञ्चसूचिकम् ।

माहात्म्यं विमलश्लोकैः वक्ष्ये श्रुणुत सज्जनाः ॥३॥

अन्वयार्थ - कुन्थोः = कुन्थुनाथ का, पञ्चसूचिकं = पंचकल्याणकों से सूचित, चरितं = चरित्र को, च = और, तस्य = उनकी, कूटस्य = कूट अर्थात् ज्ञानधर कूट के, माहात्म्यं = माहात्म्य

को, विमलश्लोकैः = निर्दोष श्लोकों से, वक्ष्ये = कहता हूँ।
सज्जनाः = हे सज्जनो! श्रुणुत = तुम सब उसे सुनो।

श्लोकार्थ — कुन्थुनाथ स्वामी के पंचकल्याणक सूचक चरित को और उस
ज्ञानधर कूट के महत्व को निर्दोष श्लोकों से कहता हूँ हे
सज्जनो! तुम सब उसे सुनो।

जम्बूद्वीपे विदेहेऽस्मिन् पूर्वे सीतासरित्तटे ।

दक्षिणे वत्सविषयो भव्यानामाकरो महान् ॥४॥

नाम्ना सिंहस्थस्तत्र तेजोराशिर्महायशाः ।

राजा बभूव धर्मात्मा पराक्रमनिधिर्महान् ॥५॥

अन्वयार्थ — अस्मिन् = इस, जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, पूर्वे = पूर्व, विदेहे
= विदेह में, दक्षिणे = दक्षिण में, सीतासरित्तटे = सीता नदी
के तट पर, भव्यानाम् = भव्य जीवों का, आकरः = खजाना
या स्रोत स्वरूप, महान् = एक विशाल, वत्सविषयः = वत्स
नामक देश, (अस्ति = है), तत्र = उस देश में, महान् = एक
महान्, पराक्रमनिधिः = अत्यधिक पराक्रमी, तेजोराशिः =
तेजपुञ्ज, महायशाः = महान् यशस्वी, धर्मात्मा = धर्मात्मा,
राजा = राजा, नाम्ना = नाम से, सिंहस्थः = सिंहस्थ, बभूव
= था।

श्लोकार्थ — इस जम्बूद्वीप में पूर्वविदेह क्षेत्र के दक्षिण भाग में सीता नदी
के तट पर भव्य जीवों से व्याप्त एक महान् वत्स नामक देश
था। उस देश में एक महान् अतिशय पराक्रमी, तेजपुञ्ज,
महान् यशस्वी, धर्मात्मा राजा सिंहस्थ रहता था।

त्रुट्यत्तारामेकदाऽसौ दृष्ट्वा प्राप्य विरक्तताम् ।

राज्यं समर्प्य पुत्राय बहुभिः सह भूमिपैः ॥६॥

दीक्षां गृहीत्वाङ्गान्येका द शसंधार्य वै ततः ।

पूर्वाश्चतुर्दशाधीत्या भावयिता च भावनाः ॥७॥

स वद्ध्या तीर्थकृद्गोत्रं तपस्तप्त्वा वने महत् ।

संन्यासेनायुषोऽन्तेन तनुं त्यक्त्वाथ दीपितः ॥८॥

सर्वार्थसिद्धावभवदहमिन्द्रः

सुरार्चितः ।

त्रयस्त्रिंशत्सागरायुः तत्सुखं सममन्वभूत् ॥६॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, त्रुद्यत्तारां = टूटते हुये तारा को, दृष्ट्वा = देखकर, विरक्ततां = विरक्तता को, प्राप्य = प्राप्त करके, पुत्राय = पुत्र के लिये, राज्यं = राज्य, समर्प्य = देकर, बहुभिः = बहुत, भूमिपैः = राजाओं के, सह = साथ, दीक्षां = दीक्षा को, गृहीत्वा = ग्रहण करके, ततः = और उसके बाद, एकादश = ग्यारह, अङ्गानि = अङ्गों को, संधार्य = धारण करके, चतुर्दश = चौदह, पूर्वान् = पूर्वो को, अधीत्य = जानकर, च = और, भावनाः = भावनाओं को, भावयित्वा = भाकर, तीर्थकृत् = तीर्थङ्कर नामक, गोत्रं = उत्कृष्ट पुण्य को, बद्ध्वा = बांधकर, वने = वन में, महत् = महान्, तपः = तपश्चरण को, तप्त्वा = तप कर, आयुषः = आयु के, अन्तेन = अन्त होने के कारण, संन्यासेन = संन्यास मरण द्वारा, तनुं = शरीर को, त्यक्त्वा = छोड़कर, सः = वह, सर्वार्थसिद्धौ = सर्वार्थसिद्धि में, अहमिन्द्रः = अहमिन्द्र, अभवत् = हुआ, (तत्र = वहाँ), सुरार्चितः = देवताओं द्वारा पूजित, (च = और), त्रयस्त्रिंशत्सागरायुः = तैतीस सागर आयु वाले, (असौ = उस देव ने), तत्सुखं = सर्वार्थसिद्धि में प्राप्त देवोचित सुख को, समन्वभूत् = भोगा अर्थात् उस सुख का अनुभव किया ।

श्लोकार्थ - एक दिन टूटते हुये तारे को देखकर, विरक्त होकर एवं पुत्र के लिये राज्य देकर बहुत सारे राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण करके, ग्यारह अङ्गों को धारण करके, चौदह पूर्वो को पढ़कर उनका अध्ययन करके और भावनाओं को भाकर तीर्थङ्कर नामक पुण्य को बांधकर, वन में महान् तपश्चरण करके आयु के अन्त में संन्यास मरण से शरीर को छोड़कर वह सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ । वहाँ देवताओं से पूजित होते हुये और तैतीस सागर आयु वाले उस देव ने उस सर्वार्थसिद्धि के सभी सुखों को अनुभव किया ।

तत्रोक्ताहारनिश्वाससम्प्राप्तपरिपूरितः ।

सिद्धान्ववन्द तद्ध्यात्वा सम्यग्भावसमन्वितः ॥१०॥

अन्वयार्थ — तत्र = वहाँ, उक्ताहारनिश्वाससम्प्राप्तपरिपूरितः = शास्त्र में निर्दिष्ट के अनुसार आहार, श्वासोच्छ्वास को प्राप्त होते हुये जिसने आयु पूर्ण कर ली है वह, सम्यग्भावसमन्वितः = सम्यक्त्व भाव से सहित उस देव ने, तद्ध्यात्वा = सिद्धों का ध्यान करके, सिद्धान् = सिद्धों को, ववन्द = प्रणाम किया ।

श्लोकार्थ — वहाँ सर्वार्थसिद्धि में उस देव ने शास्त्र में बताये अनुसार आहार, श्वासोच्छ्वास को प्राप्त होते हुये आयु पूर्ण कर ली । उस समय सम्यक्त्वभाव से सहित उस देव ने सिद्ध भगवन्तों को ध्यान करके उन्हें प्रणाम किया ।

पुनश्चायं प्रकारेणावतरद्वसुधातले ।

तद्वक्ष्ये संग्रहेणाहं ध्यात्वा चित्ते तमेव हि ॥११॥

अन्वयार्थ — पुनश्च = और फिर, अयं = यह देव, (येन = जिस), प्रकारेण = प्रकार से, वसुधातले = पृथिवी पर, अवतरत् = अवतरित हुआ, अहं = मैं, तमेव = उनको ही अर्थात् तीर्थकर कुन्थुनाथ को ही, चित्ते = मन में, ध्यात्वा = ध्याकर, संग्रहेण = संग्रह रूप से, हि = ही, तत् = उस अवतरण को, वक्ष्ये = कहता हूँ ।

श्लोकार्थ — दुबारा फिर से यह देव जिस प्रकार से पृथ्वी पर अवतरित हुआ उसको मैं कवि उन्हीं को अर्थात् तीर्थङ्कर कुन्थुनाथ को ही मन में करके उस देव की तीर्थङ्कर के रूप में अवतरित होने की कथा को मैं कहता हूँ ।

जम्बूद्वीपे महाद्वीपे भारतक्षेत्रे उत्तमे ।

कुरुजाङ्गलदेशोऽस्ति प्रसिद्धो धर्मसागरः ॥१२॥

अन्वयार्थ — जम्बूद्वीपे = जम्बू वृक्ष वाले, महाद्वीपे = महान् द्वीप में, उत्तमे = श्रेष्ठ, भारतक्षेत्रे = भरत क्षेत्र में, प्रसिद्धः = विख्यात, (च = और), धर्मसागरः = धर्म एवं धर्मात्मा के सागर स्वरूप, कुरुजाङ्गलदेशः = कुरुजाङ्गल देश, अस्ति = है या था ।

श्लोकार्थ — जम्बू नामक महाद्वीप के उत्तम भरतक्षेत्र में कुरुजाङ्गल नामक सुप्रसिद्ध और धर्मात्माओं का सागर स्वरूप एक देश है या था।

हस्तिनागपुरे तत्र कुरुवंशोऽतिनिर्मले ।

सूर्यषेणोऽभवद्राजा तेजसा सूर्यसन्निभः ॥१३॥

श्रीकान्ता तरय महिषी भूमिगा श्रीरिवापरा ।

सती धर्मयुता शीलराशिः सर्वगुणान्विता ॥१४॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस देश में, हस्तिनागपुरे = हस्तिनागपुर नगर में, अतिनिर्मले = अत्यधिक विमल, कुरुवंशे = कुरुवंश में, तेजसा = कान्ति से, सूर्यसन्निभः = सूर्य के समान प्रभा वाला, सूर्यषेणः = सूर्यषेण नामक, राजा = राजा, अभवत् = हुआ। तरय = उस राजा की, श्रीकान्ता = श्रीकान्ता नामक, सर्वगुणान्विता = सारे गुणों से युक्त, शीलराशिः = अतिशय शीलवती, सती = पतिव्रतधर्म का पालन करने वाली, धर्मयुता = धर्मानुरागिणी, भूमिगा = भूमि रहने वाली, अपरा = दूसरी, श्रीः इव = लक्ष्मी के समान, महिषी = रानी, अभवत् = थी।

श्लोकार्थ -- कुरुजाङ्गल देश के हस्तिनागपुर नगर में अत्यधिक विमल कुरुवंशोत्पन्न राजा सूर्यषेण हुये जो कान्ति से सूर्य के समान थे। उनकी रानी श्रीकान्ता सर्वगुणसम्पन्न, शीलवती, पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली, धर्मानुरागिणी, भूमि पर रहने वाली दूसरी लक्ष्मी के समान थी।

षण्मासस्याग्रतश्चास्य भवने धनदः स्वयम् ।

शक्राज्ञप्तः सुररत्नानि ववर्ष घनवन्मुदा ॥१५॥

अन्वयार्थ — अस्य = उस राजा के, भवने = भवन में, षण्मासस्य = छह माह के, अग्रतः = पहिले से, शक्राज्ञप्तः = शक्र की आज्ञा से युक्त, स्वयं = खुद, धनदः = धनपति कुबेर ने, मुदा = प्रसन्नता से, घनवत् = बादलों के समान, सुररत्नानि = देवताओं के अमूल्य रत्न, ववर्ष = बरसा दिये।

श्लोकार्थ — इस सूर्यषेण राजा के महल में छह माह पहिले से ही इन्द्र

की आज्ञा प्राप्त स्वयं कुबेर ने मेघवृष्टि के समान दिव्य रत्नों को बरसाया ।

एकदा श्रावणे मासे दशम्यां कृष्णपक्षके ।

कृत्तिकायां स्वपर्यङ्के सुप्ता सा भूपतिप्रिया ॥१६॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, श्रावणे = श्रावण, मासे = मास में, कृष्णपक्षके = कृष्ण पक्ष में, दशम्यां = दशमी के दिन, कृत्तिकायां = कृत्तिका नक्षत्र में, सा = वह, भूपतिप्रिया = राजा की प्रिय पत्नी, स्वपर्यङ्के = अपने पलंग पर, सुप्ता = सोयी ।

श्लोकार्थ - एक दिन श्रावणवदी दशमी को कृत्तिका नक्षत्र में वह रानी अपने पलंग पर सोयी हुई थी ।

निशावसाने सा देवी स्वप्नानैक्षत षोडश ।

स्वप्नान्ते प्राविशत्स्ववक्त्रान्ते भक्तसिन्धुरम् ॥१७॥

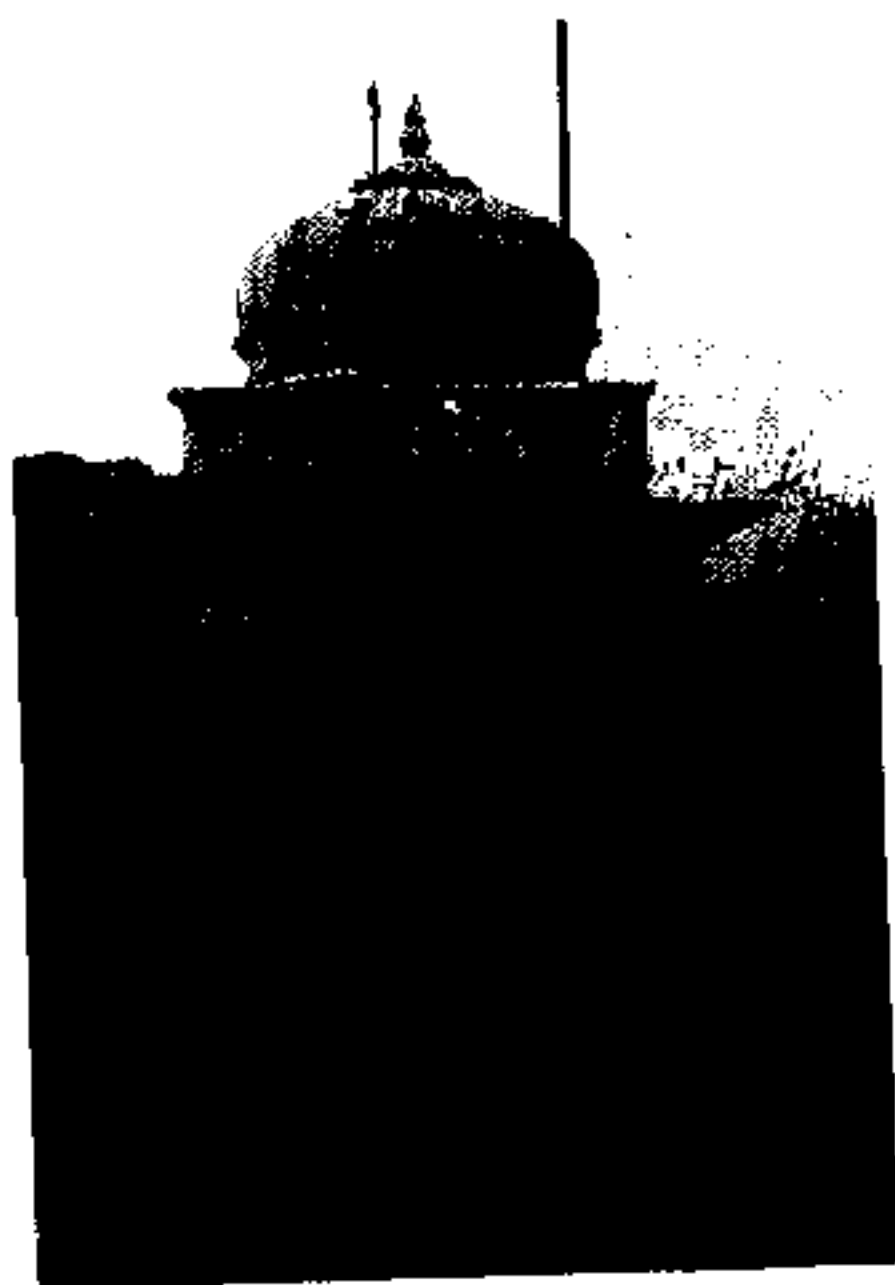
अन्वयार्थ - निशावसाने = रात्रि के अन्त में, सा = उस सोयी हुयी, देवी = रानी ने, षोडश = सोलह, स्वप्नान् = स्वप्नों को, ऐक्षत = देखा, स्वप्नान्ते = स्वप्न देखने के बाद, स्ववक्त्रान्ते = अपने मुख में भीतर, प्राविशत्स्ववक्त्रान्ते = प्रविष्ट होते मदोन्मत्त हाथी को, ऐक्षत् = देखा ।

श्लोकार्थ - रात्रि के अन्तिम प्रहर में उस सोती हुयी रानी ने सोलह स्वप्नों को देखा तथा स्वप्न देखने के अन्तिम क्षणों में अपने मुख के भीतर प्रविष्ट होते हुये एक मदोन्मत्त हाथी को देखा ।

ततः प्रबुद्धा सा देवी विस्मिता पत्युरन्तिके ।

स्वप्नानकथयत्तान्सः तच्छ्रुत्वा जहर्ष वै ॥१८॥

अन्वयार्थ - ततः = उसके बाद, प्रबुद्धा = जागी हुयी, (च = और), विस्मिता = विस्मय से भरी, सा = उस, देवी = देवी ने, पत्युः = पति के, अन्तिके = समीप में, तान् = उन, स्वप्नान् = स्वप्नों को, अकथयत् = कहा, तच्छ्रुत्वा = उनको सुनकर, सः = वह राजा, वै = यर्थाथतः, जहर्ष = हर्षित हुआ ।



श्री कुन्धनाथ स्वामी-ज्ञानधर कूट

श्लोकार्थ — स्वप्न दर्शन के बाद जागी हुयी एवं विस्मय से पूर्ण उस रानी ने पति के समीप में उन स्वप्नों को कहा तथा उनको सुनकर वह राजा प्रसन्न हुआ ।

श्रुत्वा पतिमुखात्स्वप्नफलं भावि सुभामिनी ।

वाचामगोचरं प्राप सुखं तारेश्वरानना ॥१६॥

अन्वयार्थ — पतिमुखात् = पति के मुख से, भावि = मविष्य विषयक, स्वप्नफलं = स्वप्न के फल को, श्रुत्वा = सुनकर, तारेश्वरानना = चन्द्रमुखी, सुभामिनी = सुन्दर रानी ने, वाचां = वाणों के, अगोचरं = विषयातीत, सुखं = सुख को, प्रापत = प्राप्त किया ।

श्लोकार्थ — पति के मुख से भावि स्वप्न फल को सुनकर उस चन्द्रमुखी सुन्दर रानी ने शब्दातीत सुख को प्राप्त किया ।

तत्फलप्राप्तिसिद्धयर्थं त्रिविधेभ्यो धनं महत् ।

सुपात्रेभ्यः प्रतिदिनं ददावानन्दसंप्लुता ॥२०॥

अन्वयार्थ — तत्फलप्राप्तिसिद्धयर्थं = उनका फल प्राप्त हो इसकी सिद्धि के लिये, आनन्दसंप्लुता = आनन्द से भरी उस रानी ने, त्रिविधेभ्यः = तीन प्रकार के, सुपात्रेभ्यः = सत्पात्रों के लिये, प्रतिदिनं = प्रत्येक दिन, महत् = विपुल, धनं = धन को, ददौ = दिया ।

श्लोकार्थ — स्वप्नों के फल की प्राप्ति हो इसकी सिद्धि के लिये आनन्द से भरी उस रानी ने तीन प्रकार के सुपात्रों को प्रतिदिन विपुल धन दिया ।

तद्गर्भमागते देवे दिशः सर्वाश्चकाशिरे ।

गगनं निर्मलं चासीत् मरुतस्त्रिविधा ववुः ॥२१॥

अन्वयार्थ — देवे = देव के, तद्गर्भं = रानी के गर्भ में, आगते = आने पर, सर्वाः = सारी, दिशः = दिशाएँ, चकाशिरे = चमकने लगीं, गगनं = आकाश, निर्मलं = निर्मल, आसीत् = हो गया, च = और, त्रिविधाः = तीन प्रकार की, मरुतः = हवाएँ, ववुः = बहने लगीं ।

श्लोकार्थ — अहमिन्द्र देव का जीव रानी के गर्भ में आने पर सारी दिशायें प्रकाशमान हो गयीं आकाश निर्मल हो गया, और शीतल सुखकर, मन्द और सुगन्धित हवायें बहने लगीं।

वैशाखमासे शुक्लायां गर्भमे प्रतिपत्तिथौ ।

देवः प्रादुरभूतस्यां तपस्तेजोनिधिः प्रभुः ॥२२॥

अन्वयार्थ — वैशाखे मासे = वैशाख माह में, शुक्लायां = शुक्ल, प्रतिपत्तिथौ = प्रतिपदा तिथि में, गर्भमे = गर्भ गक्षण में, तपस्तेजोनिधिः = तपश्चरण करने के योग्य तेज से सम्पन्न, प्रभुः = तीर्थङ्कर, देवः = वह देव, तस्यां = उस रानी के कोख में, प्रादुरभूत = उत्पन्न हुआ।

श्लोकार्थ — वैशाख शुक्ला एकम के दिन गर्भनक्षत्र में तपश्चरण करने हेतु तेजपुञ्ज वह तीर्थङ्कर के रूप में समर्थ वह देव उस रानी से उत्पन्न हुआ।

सौधर्मेशस्तदैवान्तर्मुदितोऽवधितः प्रभोः ।

ज्ञात्वोऽवतरणं तत्र प्राप्तस्सह सुरासुरैः ॥२३॥

अन्वयार्थ — तदैव = उस ही समय, अवधितः = अवधिज्ञान से, प्रभोः = तीर्थङ्कर का, अवतरणं = जन्म, ज्ञात्वा = जानकर, अन्तर्मुदितः = मन में प्रसन्न हुआ, सौधर्मेशः = सौधर्म स्वर्ग का स्वामी इन्द्र, सुरासुरैः = सुर और असुरों के, सह = साथ, तत्र = वहाँ, प्राप्तः = प्राप्त हुआ अर्थात् पहुँचा।

श्लोकार्थ — तभी तीर्थङ्कर कुन्धुनाथ का जन्म अपने अवधिज्ञान से जानकर प्रसन्न मन, सौधर्म इन्द्र देवों और असुरों के साथ वहाँ आ गया।

स्थयुक्त्या तं महेशानं समादाय रविप्रभम् ।

अद्भुताकारमापेदे तत्क्षणात्स्वर्णभूधरम् ॥२४॥

तत्र क्षीरोदवारिभिः च पूरितैरायतैर्घटैः ।

कानकैः पाण्डुकायां सोऽस्नापयज्जगदीश्वरम् ॥२५॥

अन्वयार्थ — अद्भुताकारं = आश्चर्यकारी शरीराकृति वाले, रविप्रभुं =

सूर्य के समान आभा वाले, तं = उन, महेशानं = महाप्रभु तीर्थङ्कर को, स्वयुक्त्या = अपनी युक्ति से, समादाय = लेकर, तत्क्षणात् = जल्दी से, सः = वह इन्द्र, स्वर्णभूधरं = सुमेरुपर्वत को, आपेदे = प्राप्त हुआ, च = और, तत्र = वहाँ सुमेरु पर्वत पर, पाण्डुकायां = पाण्डुकशिला पर, क्षीरोदवारिणिः = क्षीरसागर के जल से, पूरितैः = भरे हुये, आयतैः = विस्तृत, कानकैः = स्वर्ण से बने, घटैः = कलशों के द्वारा, जगदीश्वरं = जगत् के स्वामी तीर्थङ्कर शिशु को, अस्तनयत् = स्नान कराया अर्थात् उनका अभिषेक किया।

श्लोकार्थ — अद्भुत शरीराकृति वाले तथा सूर्य के समान कान्ति से पूर्ण उन महाप्रभु तीर्थङ्कर को अपनी युक्ति प्राप्त करके वह इन्द्र जल्दी से सुमेरु पर्वत पर चला गया और वहाँ उसने पाण्डुकशिला तीर्थङ्कर शिशु को विराजमान कर क्षीरसागर के जल से पूर्ण विशाल कलशों से उनका न्हवन किया अर्थात् अभिषेक किया।

पुनर्गन्धोदकस्नानं कारयित्वाऽथ भूषणैः ।

दिव्यैस्सम्भूष्य तं देवं स्तुत्वा भक्त्याभिवन्दितः ॥२६॥

अन्वयार्थ — अथ = फिर, पुनः = दुबारा, गन्धोदकस्नानं = सुगन्धित जल से स्नान को, कारयित्वा = कराकर, दिव्यैः = दिव्य, भूषणैः = आभूषणों से, तं = उन, देवं = प्रभु को, सम्भूष्य = अलङ्कृत करके, भक्त्या = भक्ति से, स्तुत्वा = स्तुति करके, अभिवन्दितः = प्रणाम किया।

श्लोकार्थ — इसके बाद पुनः प्रभु का सुगन्धित जल से स्नान कराकर तथा दिव्य आभूषणों से उन्हें अलङ्कृत करके भक्ति से उनकी स्तुति करके इन्द्र आदि ने उन्हें प्रणाम किया।

अथ स्वाङ्के समारोप्य तं देवं देवताधिपः ।

देवैस्सह जयध्यानमुच्चरन्मोदनिर्भरात् ॥२७॥

हस्तिनागपुरे भूपं सम्प्राप्य मनुजेशितुः ।

हेमाङ्गणे तमारोप्य सम्पूज्य विधिवत्ततः ॥२८॥

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो विधायादद्भुतताण्डवम् ।

आचकर्ष मनस्तत्र सर्वेषामङ्गहारदः ॥२६॥

कुन्थुनाथाभिधां तस्य सर्वेषां पापकुन्थनात् ।

कृत्वा मात्रे समर्प्य हृष्टोऽगादमरावतीम् ॥३०॥

अन्वयार्थ - अथ = इसके बाद, देवताधिपः = इन्द्र ने, तं = उन, देवं = प्रभु को, स्वाङ्के = अपनी गोद में, समारोप्य = आरोपित करके अर्थात् बैठाकर, मोदनिर्भरात् = प्रसन्नता से मरे होने से, देवैः = देवताओं के, सह = साथ, जयध्वानम् = जय ध्वनि को, उच्चरन् = उच्चारित करते हुये, हस्तिनागपुरे = हस्तिनागपुर में, भूपं = राजा को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, मनुजेशितुः = राजा के, हेमाङ्गणे = सिंहासन युक्त आँगन में, तं = उन शिशु प्रभु को, आरोप्य = आरोपित करके, विधिवत् = विधिपूर्वक, संपूज्य = पूजा करके, ततः = उससे, पुलकाङ्कित = रोमाञ्चित, सर्वाङ्गः = शरीर, अङ्गहारदः = अङ्गहार देते हुये, अद्भुतताण्डवं = आश्चर्यकारी ताण्डव नृत्य को, विधाय = करके, तत्र = उस नृत्य में, सर्वेषां = सभी का, मनः = चित्त को, आचकर्ष = आकर्षित कर लिया, अथ = फिर, सर्वेषां = सभी लोगों के, पापकुन्थनात् = पापों का नाश करने से, तस्य = उन प्रभु का, कुन्थुनाथाभिधां = कुन्थुनाथ नाम को, कृत्वा = करके, मात्रे = माता के लिये, समर्प्य = देकर, हृष्टः = हर्षित होता हुआ, अमरावतीम् = अमरावती को, अगात् = चला गया ।

श्लोकार्थ - इसके बाद इन्द्र ने उन प्रभु को अपनी गोद में बैठाकर व प्रसन्नता से मरे होने से जय ध्वनि बोलते हुये देवताओं के साथ हस्तिनागपुर आ गया और राजा के भवन को प्राप्त करके राजा के आँगन में सिंहासन पर प्रभु को बैठाकर विधिपूर्वक उनकी पूजा करके तथा पूजा से पुलकित रोमाञ्चित शरीर वाले इन्द्र ने अङ्गहारों का प्रयोग दर्शाते हुये आश्चर्यकारी ताण्डव नृत्य किया उसने उस नृत्य में सभी के मन को आकर्षित कर लिया । फिर सभी के पापों का नाश का कारण होने से उनका नाम कुन्थुनाथ करके और शिशु

प्रभु को माता के लिये सौंपकर हर्षित होता हुआ अमरावती चला गया ।

एकपल्यमिते काले शान्तिनाथाद् गते विभुः ।

तन्मध्यजीविदेवार्च्यः कुन्थुनाथोऽभवत् तदा ॥३१॥

अन्वयार्थ — शान्तिनाथात् = तीर्थङ्कर शान्तिनाथ से, एकपल्यमिते = एक पल्य प्रमाण, काले = काल, गते = बीतने पर, तन्मध्यजीविदेवार्च्यः = उस काल में ही अन्तर्भूत जीवन वाले तथा देवताओं द्वारा पूज्य, विभुः = प्रभु, कुन्थुनाथः = तीर्थङ्कर कुन्थुनाथ, अभवत् = हुये ।

श्लोकार्थ — तीर्थङ्कर शान्तिनाथ के मोक्ष चले जाने के बाद एक पल्य प्रमाण काल बीतने पर तत्काल में ही जिनका काल गर्भित है ऐसे देवताओं से पूजित प्रभु कुन्थुनाथ हुये ।

पञ्चोत्तरनवतिसहस्रमायुरादाय स प्रभुः ।

पञ्चत्रिंशद् धनुष्कायो बभूव बसुधातले ॥३२॥

अन्वयार्थ — सः = वह, प्रभुः = कुन्थुनाथ प्रभु, पञ्चोत्तरसहस्रम् = पञ्चान्वे हजार, आयुः = आयु, आदाय = लेकर, बसुधातले = पृथ्वी पर, पञ्चत्रिंशद्धनुष्कायः = पैंतीस धनुष काया वाले, बभूव = हुये ।

श्लोकार्थ — वह कुन्थुनाथ स्वामी पञ्चान्वे हजार वर्ष आयु लेकर पैंतीस धनुष प्रमाण देह वाले इस पृथ्वी पर हुये ।

कौमारेऽस्य त्रयोविंशत्युक्तसहस्रवत्सराः ।

सार्धसप्तशतोक्ताश्च व्यतीयुर्बालकेलितः ॥३३॥

अन्वयार्थ — अस्य = इन प्रभु के, कौमारे = कुमारावस्था में, बालकेलितः = बालक्रीडाओं से, त्रयोविंशत्युक्तः = सहस्रवत्सराः = तेवीस हजार वर्ष, च = और, सार्धसप्तशतोक्ताः = साढ़े सात सौ, व्यतीयुः = व्यतीत हुये ।

श्लोकार्थ — इन प्रभु के कुमारकाल में बालक्रीडाओं से तेवीस हजार सात सौ पचास वर्ष व्यतीत हुये ।

राज्यं सः पैतृकं प्राप्य चाथ तारुण्यदीपितः ।

चक्रवर्त्यभवद् भूपो जितः सर्वविपक्षकं ॥३४॥

अन्वयार्थ — अथ च = और इसके बाद, पैतृकं = पिता से प्राप्त, राज्यं = राज्य को, प्राप्य = प्राप्त करके, तारुण्यदीपितः = तरुणाई से सुशोभित, सः = वह प्रभु कुन्धुनाथ, सर्वविपक्षकं = सारे विपक्ष को, जितः = जीतने वाले, चक्रवर्ती = चक्रवर्ती, भूपः = राजा, अभवत् = हुये ।

श्लोकार्थ — इसके बाद तरुणाई से सुशोभित वह प्रभु पैतृक राज्य प्राप्त करके सारे विपक्ष को वश में कराने वाले चक्रवर्ती सम्राट् हो गये ।

भूभृत्किरीटसंलग्नप्रदीप्यद्रत्नराजिभिः ।

सन्दीपितपदाम्भोजः परमं सुखमन्वभूत् ॥३५॥

अन्वयार्थ — भूभृत्किरीटसंलग्नप्रदीप्यद्रत्नराजिभिः = राजाओं के मुकुट में लगे चमकते रत्नों की कान्ति से, सन्दीपितपदाम्भोजः = चमक रहे हैं चरण कमल जिनके ऐसे उस कुन्धुनाथ ने, परमं = उत्कृष्ट, सुखं = सुख को, अन्वभूत् = अनुभव किया ।

श्लोकार्थ — राजाओं के मुकुटों में लगे चमकते हुये रत्नों की कान्ति से जिनके चरण कमल चमक रहे हैं ऐसे कुन्धुनाथ ने परम सुख का अनुभव किया ।

एकस्मिन् समये देवः स्वात्मध्यानपरायणः ।

देहाद्विभिन्नमात्मानं बद्धं हि विकृतिस्तनोः ॥३६॥

विज्ञाय तत्क्षणादेहात् विरक्तोऽभून्महामतिः ।

तदा लौकान्तिकाः देवाः आगतास्तं प्रतुष्टुवः ॥३७॥

अन्वयार्थ — एकस्मिन् = एक, समये = समय में, स्वात्मध्यानपरायणः = अपनी आत्मा के ध्यान में तत्पर, महामतिः = बुद्धिमान्, देवः = प्रभु कुन्धुनाथ, ततोः = शरीर के कारण से, विकृतिः = विकार, (अस्ति = है), बद्धं = बंध को प्राप्त, आत्मानं = आत्मा को, हि = ही, देहात् = देह से, भिन्नम् = भिन्न, विज्ञाय

= जानकर, तत्क्षणात् = उसी समय, देहात् = शरीर से, विरक्तः = विरक्त, अमृत = हो गया, तदा = तभी, लौकान्तिकाः = लौकान्तिक, देवाः = देव, आगताः = आ गये, तं = उनकी, प्रतुष्टुवः = स्तुति करने लगे।

श्लोकार्थ - एक समय अपनी आत्मा के ध्यान में तत्पर अति बुद्धिमान् उन प्रभु कुन्धुनाथ ने यह विकार शरीर के कारण से ही है, यह बंध को प्राप्त हुआ आत्मा देह से भिन्न है... ऐसा विचार करके उसी समय वैराग्य प्राप्त कर लिया। तभी आये हुये लौकान्तिक देवों ने उनकी स्तुति की।

मघवापि तदा प्राप्तो देवैः सह मुदान्वितः।

जयदेव समुच्चार्य भक्त्या तं प्रणनाम च॥३८॥

अन्यार्थ - तदा = उसी समय, देवैः = देवताओं के, सह = साथ, (तत्र = वहाँ), प्राप्तः = प्राप्त हुये, मघवा = इन्द्र ने, अपि = भी, जय देव! = प्रभु की विजय हो, (इति = इस प्रकार), समुच्चार्य = कहकर, च = और, भक्त्या = भक्ति से, तं = उनको, प्रणनाम = नमस्कार किया।

श्लोकार्थ - और उसी समय देवताओं के साथ वहाँ उपस्थित हुये इन्द्र ने भी प्रभु की जय हो इस प्रकार कहकर और भक्ति से प्रभु को नमस्कार किया।

विजयाख्यां तदारुह्य शिविकां स जगत्पतिः।

सहेतुकवनं भूपैः सहस्रैः सहितो ययौ॥३९॥

अन्यार्थ - तदा = तभी, सः = वह, जगत्पतिः = जगत् के प्रभु, विजयाख्यां = विजय नामक, शिविकां = पालकी पर, आरुह्य = चढ़कर, सहस्रैः = एक हजार, भूपैः = राजाओं के, सहितः = साथ, सहेतुकवनं = सहेतुक वन को, ययौ = चले गये।

श्लोकार्थ - तब वह कुन्धुनाथ तीर्थङ्कर विजय नाम की पालकी पर चढ़कर एक हजार राजाओं के साथ सहेतुक वन को चले गये।

तत्र वैशाखमासस्य शुक्लायां प्रतिपद्यासौ ।

सहस्रकैः भूमिपैः सार्धं जैनीं दीक्षां समग्रहीत् ॥४०॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस सहेतुक वन में, वैशाखमासस्य = वैशाख माह की, शुक्लायां = शुक्ल पक्ष में, प्रतिपदि = एकम के दिन, सहस्रकैः = एक हजार, भूमिपैः = राजाओं के, सार्धं = साथ, जैनीं = जैनेश्वरी, दीक्षां = दीक्षा को, समग्रहीत् = ग्रहण किया ।

श्लोकार्थ - उस सहेतुक वन में वैशाख सुदी प्रतिपदा के दिन एक हजार राजाओं के साथ जैनेश्वरी दीक्षा को ग्रहण कर लिया ।

मनःपर्ययमापासौ तदैव ज्ञानमुत्तमम् ।

द्वितीये घस्रे भिक्षायै हस्तिनागपुरं गतः ॥४१॥

अन्वयार्थ - तदैव = तब ही, अपसौ = उन मुनिराज ने, उत्तमं = श्रेष्ठ, मनःपर्ययम् = मनःपर्यय, ज्ञानं = ज्ञान को, आप = प्राप्त कर लिया, द्वितीये = दूसरे, घस्रे = दिन, भिक्षायै = आहार के लिये, हस्तिनागपुरं = हस्तिनागपुर को, गतः = गये ।

श्लोकार्थ - तभी उन मुनिराज ने उत्तम मनःपर्ययज्ञान को प्राप्त कर लिया । दूसरे दिन भिक्षा के अर्थात् आहार के लिये हस्तिनागपुर को गये ।

धर्ममित्रो महीपालस्तत्र तस्मै महादरात् ।

ददौ शुचि तदाहारं पञ्चाश्चर्यान् एक्षत् ॥४२॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस हस्तिनागपुर में, धर्ममित्रः = धर्ममित्र नामक, महीपालः = राजा ने, तस्मै = उन मुनिराज के लिये, महादरात् = महान् आदर से, शुचि = पवित्र, शुद्ध, आहारं = आहार को, ददौ = दिया, तत् = उस कारण से, पञ्च = पाँच, आश्चर्यान् = आश्चर्यों को, एक्षत् = देखा ।

श्लोकार्थ - उस हस्तिनागपुर में धर्ममित्र नामक राजा ने उन मुनिराज के लिये महान् आदर से शुद्ध आहार दिया जिससे पाँच आश्चर्य को देखा ।

पुनर्वनमसौ प्राप्य षोडशाब्दं च मौनभाक् ।

महोर्गं तप आरेभे दुष्करं प्राकृतैर्जनैः ॥४३॥

अन्वयार्थ — पुनः = फिर से, वनं = वन को, प्राप्य = प्राप्त करके, च = और, मौनभाक् = मौनधारण करने वाले, असौ = उन मुनिराज ने, षोडशाब्दं = सोलह वर्ष तक, प्राकृतैः = साधारण सामान्य, जनैः = लोगों द्वारा, दुष्करं = कठिनाई से करने योग्य, महोर्गं = महान् उग्र, तपः = तपश्चरण को, आरेभे = किया ।

श्लोकार्थ — फिर से वन को प्राप्त करके मौन धारण करके उन मुनिराज ने सोलह वर्ष पर्यन्त अत्यधिक उग्र कठोर तथा सामान्य जनों द्वारा कठिनाई से किया जाने योग्य तपश्चरण किया ।

तपसा च दग्धकर्मासौ तिलकद्रुमाधः प्रभुः ।

चैत्रशुक्लतृतीयायां केवलज्ञानमाप्तवान् ॥४४॥

अन्वयार्थ — च = और, चैत्रशुक्लतृतीयां = चैत्र सुदी तृतीया के दिन, तपसा = तपश्चरण से, दग्धकर्मा = कर्मों को जलाने वाले, असौ = उन, प्रभुः = मुनिराज ने, तिलकद्रुमाधः = तिलकवृक्ष के नीचे, केवलज्ञानं = केवलज्ञान को, आप्तवान् = प्राप्त कर लिया ।

श्लोकार्थ — और चैत्रशुक्ला तृतीया के दिन तपश्चरण से कर्मों को जला देने वाले उन मुनिराज ने तिलकवृक्ष के नीचे केवलज्ञान प्राप्त कर लिया ।

तप एव परं श्रेयः तपसा कर्मणां क्षतिः ।

कर्मक्षयाद् भवेज्ज्ञानं ज्ञानात्मोक्षपदस्थितिः ॥४५॥

अन्वयार्थ — तपः = तपश्चरण, एव = ही, परं = उत्कृष्ट, श्रेयः = कल्याण (अस्ति = है), (यतः = क्योंकि), तपसा = तपश्चरण से, कर्मणां = कर्मों की, क्षति = नाश, (भवति = होता है), कर्मक्षयात् = कर्म के क्षय से, ज्ञानं = केवलज्ञानं, भवेत् = हो, (तथा च = और), ज्ञानात् = ज्ञान से, मोक्षपदस्थितिः = निर्वाण पद अर्थात् सिद्धस्थान में स्थिति, (भवति = होती है) ।

श्लोकार्थ — तपश्चरण परम कल्याणकारक है क्योंकि उससे ही केवलज्ञान की प्राप्ति होती है तथा केवलज्ञान से मोक्षपद मिलता है।

ततः समवसारेऽसौ धनदादिविनिर्मिते ।

शक्रादिसंस्तुतो देवः शुशुभे कोटिसूर्यरूक् ॥४६॥

अन्वयार्थ — ततः = तत्पश्चात्, असौ = वह, कोटिसूर्यरूक् = एक करोड़ सूर्य के तेजपुञ्ज, शक्रादिसंस्तुतः = इन्द्र आदि द्वारा स्तुति किये जाते हुये, देवः = केवलज्ञानी प्रभु, धनदादिविनिर्मिते = कुबेर आदि द्वारा बनाये गये, समवसारे = समवसरण में, शुशुभे = सुशोभित हुये।

श्लोकार्थ — तत्पश्चात् वह करोड़ सूर्य की प्रभा से सम्पन्न तथा इन्द्र आदि द्वारा स्तुत भगवान् कुन्धुनाथ कुबेर आदि द्वारा रचित समवसरण में सुशोभित हुये।

स्वयम्भूगणपालाद्यैः यथोक्तैरखिलैः स्तुतः ।

सम्पूजितो वन्दितश्च रराज परमेश्वरः ॥४७॥

अन्वयार्थ — यथोक्तैः = जैसे कहे गये हैं, (तथा = वैसे), अखिलैः = सम्पूर्ण, स्वयम्भूगणपालाद्यैः = स्वयंभू गणधरादिकों द्वारा, स्तुतः = स्तुति किये जाते हुये, सम्पूजितः = पूजा किये जाते हुये, च = और, वन्दितः = प्रणाम किये जाते हुये, परमेश्वरः = भगवान्, रराज = सुशोभित हुये।

श्लोकार्थ — जैसे कहे गये हैं तदनुसार सभी स्वयंभू नामक गणधरों और देवों, मनुष्यों आदि से स्तुत पूजित और अभिवन्दित भगवान् सुशोभित हुये।

दिव्यध्वनिं समुच्चार्य धर्मानुपदिशन्सताम् ।

सर्वक्षेत्रेषु विहरन् मासावधि निजायुषः ॥४८॥

प्रमाणं बुधि सम्बुध्य मौनमास्थाय च प्रभुः ।

सम्मेदं प्राप्य सोऽतिष्ठत् कूटे ज्ञानधराभिधे ॥४९॥

अन्वयार्थ -- सः प्रभुः = वह केवली प्रभु, दिव्यध्वनिं = दिव्यध्वनि का,

समुच्चार्य = उच्चारण करके, सतां = सज्जनों के लिये, धर्मान् = धर्म का, उपदिशन् = उपदेश देते हुये, सर्वक्षेत्रेषु = सारे क्षेत्र में, विहरन् = विहार करते हुये, निजायुषः = अपनी वर्तमान पर्याय की आयु का, मासावधि = एक माह काल, प्रमाणं = प्रमाण, बुधि = अपने ज्ञान में, सम्बुध्य = जानकर, मौनं = मौन, आस्थाय = लेकर, च = और, सम्मेदं = सम्मेदशिखर पर्वत को, प्राप्य = प्राप्त करके, ज्ञानधरामिधे = ज्ञानधर नामक, कूटे = कूट पर, अतिष्ठत् = ठहर गये।

श्लोकार्थ — वह केवलज्ञानी प्रभु दिव्यध्वनि खिराते हुये, सज्जनों को धर्म का उपदेश देते हुये तथा सारे क्षेत्र में विहार करते हुये अपनी इस पर्याय की आयु का काल एक मास जानकर मौन लेकर और सम्मेदाचल पर्वत को प्राप्त करके ज्ञानधर नामक कूट पर स्थित हो गये।

पूर्णयोगं समारूढ्य शुक्लध्यानधरो विभुः ।

सहस्रमुनिभिः साकं निःश्रेयसपदं गतः ॥५०॥

अन्वयार्थ — शुक्लध्यानधरः = शुक्लध्यान धारण करने वाले, प्रभुः = भगवान् ने, पूर्णयोगं = पूर्णतः योग का, समारूढ्य = आरोहण करके, सहस्रमुनिभिः = एक हजार मुनियों के, साकं = साथ, निःश्रेयसपदं = सिद्धपद को, गतः = गये।

श्लोकार्थ — शुक्लध्यान धारण करने वाले भगवान् ने पूर्णतः योग का आरोहण करके एक हजार मुनियों के साथ निर्वाणपद को प्राप्त हो गये।

चैत्रामायां गते तस्मिन् मोक्षसिद्धिं जगत्पतौ ।

तत्पश्चात् षण्णवत्युक्तकोटीनां कोटिकाः स्मृताः ॥५१॥

षण्णवत्युक्तकोट्यश्च द्वात्रिंशन्मितलक्षकाः ।

षण्णवत्युक्तसहस्रयुक्तासप्तशती तथा ॥५२॥

द्विचत्वारिंशदित्युक्तसङ्ख्यया गणिताः शिवम् ।

तस्मादेव गिरेः कूटात् गता भव्यास्तपोज्ज्वलाः ॥५३॥

अन्वयार्थ — चैत्रामायां = चैत्र मास की अमावस्या के दिन, तस्मिन् =

उस ज्ञानधर कूट पर, जगत्पतौ = जगत् के स्वामी भगवान् के, मोक्षसिद्धिं = मोक्षपद को, गते = चले जाने पर, तत्पश्चात् = उनके बाद, षण्णवत्युक्तकोटीनां कोटिकाः = छियान्वे कोडाकोड़ी, षण्णवत्युक्तकोट्यः = छियान्वे करोड़, द्वात्रिंशन्मितलक्षकाः = बत्तीस लाख, षण्णवत्युक्तस हस्रयुक्ता = छियान्वे हजार से युक्त, सप्तशती = सात सौ, तथा = और, द्विचत्वारिंशत् = बयालीस, इत्युक्तसंख्यया = इस प्रकार कही गयी संख्या से, गणिताः = गिने गये, च = और, स्मृताः = स्मरण किये गये, भव्याः = भव्य, तपोज्ज्वलाः = तप से उज्ज्वल अर्थात् पवित्र मुनिराज, गिरेः = सम्मोदशिखर पर्वत की, तस्मात् = उस, कूटात् = कूट से, एव = ही, शिवं = मोक्ष को, गताः = गये।

श्लोकार्थ — चैत्र की अमावस्या को उस कूट पर से जगत्पति केवलज्ञानी कुन्थुनाथ के मोक्ष चले जाने पर उनके बाद छियान्वे कोडाकोड़ी, छियान्वे करोड़, बत्तीस लाख छियान्वे हजार सात सौ बयालीस संख्या प्रमाण भव्य मुनिराज सम्मोदपर्वत की इसी ज्ञानधर कूट से मोक्ष को गये।

अथ सोमधरो राजा गिरियात्रां चकार सः ।

तत्कथां भव्याः मदुक्तां शृणुताधुना ॥५४॥

अन्वयार्थ — अथ = अनन्तर, सः = उस, सोमधरः = सोमधर नामक, राजा = राजा ने, गिरियात्रां = पर्वत की यात्रा को, चकार = किया, भव्याः = हे भव्य जीवो!, मदुक्तां = मेरे द्वारा कही गयी, पावनीं = पावन, तत्कथां = उस यात्रा की कथा को, अधुना = अब, शृणुत = सुनो।

श्लोकार्थ — इसके बाद उस राजा सोमधर ने सम्मोदशिखर पर्वत की यात्रा की थी। उस यात्रा की पावन कथा जो मेरे द्वारा कही जा रही है। हे भव्य जीवो! तुम सब उसे सुनो।

जम्बूमति शुभे क्षेत्रे भरतस्योपवर्तनम् ।

वत्साख्यं तत्र चाभाति सम्बलं नगरं महत् ॥५५॥

अन्यार्थ — जम्बूमति = जम्बूद्वीप से युक्त, (द्वीपे = द्वीप में), भरतस्य = भरत के, शुभे = शुभ, क्षेत्रे = क्षेत्र में, वत्सख्यं = वत्स नामक, उपवर्तनम् = राज्य, (अस्ति = है), च = और, तत्र = उस राज्य में, महत् = विशाल, सम्बलं = सम्बल नामक, नगरं = नगर, आभाति = सुशोभित होता है।

श्लोकार्थ — जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के शुभ आर्य खण्ड में वत्स नामक एक राज्य उस राज्य में सम्बल नामक एक विशाल नगर सुशोभित हो रहा है।

महासेनोऽभवदाजा तत्त्वज्ञानसमन्वितः ।

सोमश्री तस्य महिषी तयोः सोमधरः सुतः ॥५६॥

अन्यार्थ — तत्र = उस नगर में, तत्त्वज्ञानसमन्वितः = तत्त्वज्ञान से युक्त, महासेनः = महासेन नामक, राजा = राजा, अभवत् = था, तस्य = उस राजा की, महिषी = रानी, सोमश्री = सोमश्री, (आसीत् = थी), तयोः = उन दोनों का, सोमधरः = सोमधर नामक, सुतः = पुत्र, अभवत् = हुआ।

श्लोकार्थ — उस नगर में तत्त्वज्ञान से भी पूर्ण महासेन नामक राजा राज्य करता था उसकी रानी सोमश्री थी। उन दोनों का सोमधर नामक पुत्र हुआ।

स तु पुण्यनिधिर्नित्यं याचकेभ्य उदारधीः ।

ददौ दानानि बहुशो याचितानि च याचितैः ॥५७॥

अन्यार्थ — सः = उस, पुण्यनिधिः = पुण्यात्मा, उदारधीः = उदारबुद्धि वाले राजा ने, याचितैः = याचकों द्वारा, याचितानि = माँगे गये, बहुशः = बहुत प्रकार से, दानानि = दान की वस्तुयें, नित्यं = हमेशा, प्रतिदिन, याचकेभ्यः = याचकों के लिए, ददौ = दीं।

श्लोकार्थ — उस पुण्यात्मा और उदार बुद्धि सम्पन्न राजा ने याचकों के लिए उनके द्वारा माँगी गयीं बहुत प्रकार की वस्तुयें प्रतिदिन = हमेशा दान में दीं।

शीलसन्तोषिताऽशेषैः सदगुणैः समलङ्कृतः ।

तपस्वी गृहमध्येऽपि स कदाचिद्वनं ययौ ॥५८॥

अन्वयार्थ — शीलसन्तोषिताऽशेषैः = शीलसन्तोष आदि सभी, सदगुणैः = अच्छे गुणों से, समलङ्कृतः = अलङ्कृत, गृहमध्ये = घर में, अपि = भी, तपस्वी = तपस्वी, सः = वह, कदाचिद् = कभी, वनं = वन में, ययौ = गया ।

श्लोकार्थ — शील—सन्तोष आदि अनेक सदगुणों से अलङ्कृत तथा घर में भी तपस्वी वह राजा किसी समय वन में गया ।

तत्रैकं मुनिराजं स वने संवीक्ष्य तापसम् ।

अपृच्छन्मुक्तिमार्गं स प्रणम्य तमथानघम् ॥५९॥

अन्वयार्थ — तत्र = उस, वने = वन में, सः = उस राजा ने, एकं = एक, तापसं = तपस्वी, मुनिराजं = मुनिराज को, संवीक्ष्य = देखकर, अथ = तदनन्तर, तं = उन, अनघं = पापशून्य मुनिराज को, प्रणम्य = नमस्कार करके, मुक्तिमार्गं = मुक्तिमार्ग को, अपृच्छत् = पूछा ।

श्लोकार्थ — उस वन में उस राजा ने एक तपस्वी मुनिराज को देखकर और पापशून्य मुनिवर्य को प्रणाम करके उनसे मुक्ति मार्ग को पूछा ।

दर्शितो ह्यचिरं तेन मुक्तिमार्गः समुज्ज्वलम् ।

पुनस्सम्मोदमाहात्म्यं कथितं मुनिना भृशम् ॥६०॥

अन्वयार्थ — तेन = उन, मुनिना = मुनिराज द्वारा, अचिरं = जल्दी, हि = ही, समुज्ज्वलः = अच्छी तरह से स्पष्ट करते हुये, मुक्तिमार्गः = मोक्षमार्ग, दर्शितः = दिखाया, पुनः = फिर, भृशं = अत्यधिक, सम्मोदमाहात्म्यं = सम्मेदशिखर की वन्दना का महत्त्व, कथितम् = कहा गया ।

श्लोकार्थ — उन मुनिराज द्वारा जल्दी ही सुस्पष्ट मुक्तिमार्ग दिखाया फिर सम्मेदशिखर की वन्दना का अत्यधिक महत्त्व भी कहा ।

तदैव सः गृहमागत्य सम्मोदधरणीभृतः ।

यात्रोद्योगं चकारासौ भेरीध्वानमकारयत् ॥६१॥

अन्वयार्थ — तदा एव = उस ही समय, गृहम् = घर, आगत्य = आकर, सः = उसने, सम्मेदधरणीभृतः = सम्मेदपर्वत की, यात्रोद्योगं = यात्रा का उद्योग प्रयत्न, चकार = किया, (प्रथमं = पहिले), असौ = उसने, भेरीध्वानं = भेरी ताड़न अर्थात् नगाड़े की शब्द ध्वनि पूर्व सूचना, अकारयत् = करा दी।

श्लोकार्थ — उस ही समय घर आकर उस राजा ने सम्मेद-शिखर की यात्रा का प्रयत्न किया। सबसे पहिले उसने नगाड़ों से ध्वनि पूर्वक सूचना करवायी।

हस्त्यश्वरथपत्तीश्च सम्भूष्य बहुधा नृपः ।

सङ्घं चतुर्विधं तत्र पूजयन्नमृताम्बुधिः ॥६३॥

ततः सुखेन मार्गेऽसौ वसन् कतिपयैर्दिनैः ।

प्राप सम्मेदशैलेन्द्रं भव्यजीवनमस्कृतम् ॥६४॥

अन्वयार्थ — हस्त्यश्वरथपत्तीश्च = हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकों को, बहुधा = बहुत प्रकार से, सम्भूष्य = सजाकर, तत्र = वहाँ, चतुर्विधं = चारों प्रकार के, सङ्घं = सङ्घ को, पूजयन् = पूजते हुये, असौ = वह, अमृताम्बुधिः = अमृतत्व के सागर स्वरूप अनादि निधन आत्मा को मानने वाला, नृपः = राजा, मार्गे = मार्ग में, सुखेन = सुख से, वसन् = बसता हुआ अर्थात् रुकता हुआ, कतिपयैः = कुछ ही, दिनैः = दिनों से, भव्यजीवनमस्कृतं = भव्यजीवों द्वारा नमस्कार किये गये, सम्मेदशैलेन्द्रं = सम्मेदशिखर पर्वत को, प्राप = प्राप्त किया।

श्लोकार्थ — हाथी, घोड़ों, रथों और पदातियों की सेना को अनेक प्रकार सुसज्जित करके और वहाँ चतुर्विध अर्थात् मुनि, आर्यिका, श्रावक एवं श्राविका सङ्घों की विधिवत् पूजा करते हुये अमरत्व से पूर्ण आत्मा की श्रद्धा में सागर जैसा गंभीर वह राजा मार्ग में बसता—रुकता हुआ कुछ ही दिनों में सुखपूर्वक भव्यजीवों से नमस्कार किये गये सम्मेदाचल पर्वत पर पहुँच गया।

तत्र ज्ञानधरं कूटमभिवन्द्य समर्च्य च ।

एकार्बुदचतुर्युक्ताऽशीतिकोटिप्रमाणितैः ॥६५॥

भव्यैस्सह तपोदीक्षां गृहीत्वा तप आचरन् ।

घातिकर्माणि सर्वाणि दग्ध्वा घोरं तपोऽग्निना ॥६६॥

केवलज्ञानसम्पन्नः शुक्लध्यानप्रयोगतः ।

मुनिः सोमधरो मुक्तिपदं प्राप सुदुर्लभम् ॥६७॥

अन्वयार्थ — तत्र = उस सम्मेद पर्वत पर, ज्ञानधरं = ज्ञानधर नामक, कूटं = कूट का, अभिवन्द्य = प्रणाम करके, च = और, समर्च्य = अच्छी तरह से पूजकर, एकार्बुदचतुर्युक्ताऽशीति—कोटिप्रमाणितैः = एक अरब चौरासी करोड़ प्रमाण, भव्यैः = भव्यों के, सह = साथ, तपोदीक्षां = तपश्चरण के लिये मुनिदीक्षा को, गृहीत्वा = ग्रहण करके, तपः = तपश्चरण, आचरन् = आचरते हुये अर्थात् करते हुये, घोरं तपोऽग्निना = घोर तपश्चरण स्वरूप अग्नि से, सर्वाणि = सारे, घातिकर्माणि = घातिकर्मों को, दग्ध्वा = जलाकर, केवलज्ञानसम्पन्नः = केवलज्ञान से सम्पन्न होते अर्थात् केवलज्ञानी होते हुये, शुक्लध्यान प्रयोगतः = शुक्लध्यान के प्रयोग से, मुनिः = मुनिराज, सोमधरः = सोमधर ने, सुदुर्लभम् = सुनिश्चित दुर्लभ, मुक्तिपदं = मोक्ष पद को, प्राप = प्राप्त कर लिया ।

श्लोकार्थ — उस सम्मेदशिखर पर्वत पर ज्ञानधर नामक कूट को प्रणाम करके और अच्छी तरह से उसकी पूजा करके एक अरब चौरासी करोड़ संख्या प्रमाण भव्यजनों के साथ तपश्चरण का आचरण करते हुये घोर तपश्चरण रूप अग्नि से सारे घातिया कर्मों को जलाकर केवलज्ञानी होते हुये शुक्लध्यान के प्रयोग से उन मुनिराज सोमधर ने जिसे पाना निश्चित ही दुर्लभ है ऐसे मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया ।

इत्थमेकस्य कूटस्य फलं तत्सर्वजं फलम् ।

जिनेन्द्र एव जानाति नान्यो लघुमतिर्भुवि ॥६८॥

यथा श्रुतं तथा घोक्तं सर्वकूटाभिवन्दनात् ।

यत्फलं तत्फलं सत्यं प्राप्यते नैव याग्बलात् ॥६९॥

अन्वयार्थ — एकस्य = एक, कूटस्य = कूट का, इत्थं = ऐसा, फलं = फल, (आस्ते = है), तत् = तो, सर्वजं = सारी कूटों की वन्दना से उत्पन्न, फलं = फल, जिनेन्द्र = जिनेन्द्र भगवान् ही, जानाति = जानते हैं, भुवि = पृथ्वी पर, अन्यः = अन्य कोई, लघुमतिः = अल्पबुद्धि, न = नहीं।

सर्वकूटाभिवन्दनात् = सारी कूटों की वन्दना से, यत्फलं = जो फल, यथा = जिस प्रकार या जैसा, (मया = मेरे द्वारा), श्रुतं = सुना, तत्फलं = उस फल को, तथा = उसी प्रकार या वैसा ही, उक्तं = कहा गया, (वस्तुतः = वास्तव में), यत्फलं = जो फल, (अस्ति = है), तत्फलं = वह फल, सत्यं = सचमुच, प्राप्यते = प्राप्त किया जाता है, (किन्तु = किन्तु), वाग्बलात् = वाणी के बल से, (वक्तुं = कहा), न = नहीं, शक्यते = जा सकता है।

श्लोकार्थ — एक कूट की वन्दना करने का जब ऐसा फल है तो सारी कूटों की वन्दना से उत्पन्न होने वाला फल जिनेन्द्र भगवान् ही जानते हैं पृथ्वी अन्य कोई भी अल्पबुद्धि नहीं।

मेरे द्वारा तो सारी कूटों की वन्दना का जो फल जैसा सुना गया है वैसा ही कह दिया गया है। वस्तुतः वो फल है वह सचमुच में प्राप्त किया जाता है किन्तु वाणी के बल से उसे कहा नहीं जा सकता है।

प्राप्यान्तः शुचिकेवलं स्वतपसा कृत्वा क्षयं कर्मणाम्।

स्थित्वा यत्र जगत्पतिः शिवपदं श्रीकुन्धुनाथो गतः॥

तत्पश्चाद्यत एव यत्प्रणमनात्संसारवारांनिधिम्।

तीर्त्वा ज्ञानधरं गताश्च बहवः सिद्धिं तमीडे सदा॥७०॥

अन्वयार्थ — स्वतपसा = अपने तपश्चरण से, अन्तः = अन्तरङ्ग में, शुचिकेवलं = पवित्र केवलज्ञान को, प्राप्य = प्राप्त करके, जगत्पतिः = जगत् के स्वामी, श्रीकुन्धुनाथः = तीर्थङ्कर प्रभु कुन्धुनाथ, यत्र = जिस ज्ञानधर कूट पर, स्थित्वा = ठहरकर, कर्मणां = कर्मों का, क्षयं = नाश, कृत्वा = करके, शिवपदं

= मोक्ष को, गतः = गये, (च = और), तत्पश्चात् = उनके, यतः = जिस कूट से, एव = ही, यत्प्रणमनात् = जिसको प्रणाम करने से, बहवः = बहुत सारे भव्य जीव, संसारवारांनिधिं = संसार सागर को, तीर्त्वा = तैरकर, सिद्धिं = सिद्धि को, गताः = गये, तं = उस, ज्ञानधरं = ज्ञानधर कूट को, (अहं = मैं), सदा = हमेशा, स्तुति से प्रणाम करता हूं, अर्थात् उनकी स्तुति करता हूं।

श्लोकार्थ — अपने तपश्चरण से अपने में पवित्र केवलज्ञान को प्राप्त करके जगत् के कूट पर स्थित होकर सारे कर्मों का नाश करके मोक्ष को प्राप्त किया और उनके पश्चात् जिस कूट से, जिसकूट को प्रणाम करने से बहुत सारे भव्य जीव संसार सागर को तैर कर सिद्धि को चले गये उस ज्ञानधर नामक कूट की मैं सदैव स्तुति करता हूं।

[इति दीक्षितब्रह्मनेमिदत्तविरचिते श्रीसम्मेदशैलमाहात्म्ये
तीर्थङ्कर कुन्धुनाथवृत्तान्तपुरस्सरं ज्ञानधरकूटवर्णनं
नाम षोडशमोऽध्यायः समाप्तः।]

{इस प्रकार दीक्षितब्रह्मनेमिदत्तविरचित श्रीसम्मेदशिखर माहात्म्य नामक काव्य में तीर्थङ्कर कुन्धुनाथ के वृत्तान्त को उजागर करते हुये ज्ञानधरकूट का वर्णन करने वाला सोलहवां अध्याय समाप्त हुआ।}

अथ सप्तदशमोऽध्यायः

देवीभिर्देववर्यैश्च तं पदस्तुतिवन्दनैः ।

पूज्यं सिद्धपदाधीशं ह्यरनाथं नमाम्यहं ॥१॥

अन्वयार्थ — पदस्तुतिवन्दनैः = चरणों की स्तुति और वन्दना करने वाले, देववर्यैः = उत्तम देवों द्वारा, च = और, देवीभिः = देवियों द्वारा, पूज्यं = पूजे जाने योग्य, तं = उन, सिद्धपदाधीशं = सिद्धपद के स्वामी, अरनाथं = तीर्थङ्कर अरनाथ को, हि = ही, अहं = मैं, नमामि = नमस्कार करता हूँ।

श्लोकार्थ — चरणों की वन्दना और स्तुति करने में तत्पर उत्तम वैमानिक देवों और देवियों द्वारा जो पूज्य हैं ऐसे उन सिद्धपद के अधीश्वर तीर्थङ्कर अरहनाथ को मैं प्रणाम करता हूँ।

तत्कथापूर्वकं तस्य कूटस्य गिरिभूपतेः ।

माहात्म्यं श्रवणीयं यच्च तद्वक्ष्येऽहं समासतः ॥२॥

अन्वयार्थ — तत्कथापूर्वकं = उन तीर्थङ्कर अरहनाथ की कथा पूर्वक, गिरिभूपतेः = पर्वतराज सम्मेदशिखर का, च = और, तस्य = उस, कूटस्य = कूट का, यत् = जो, श्रवणीयं = सुनने योग्य, माहात्म्यं = महिमा पूर्ण महत्त्व, (आस्ते = है), अहं = मैं, तत् = उसको समासतः = संक्षेप से, वक्ष्ये = कहता हूँ।

श्लोकार्थ — तीर्थङ्कर अरनाथ की कथा पूर्वक पर्वतराज सम्मेदशिखर का और उस नाटक कूट का जो सुनने योग्य माहात्म्य है उसको मैं संक्षेप में कहता हूँ।

जम्बूमति महाद्वीपे पूते पूर्वविदेहके ।

कच्छनामा महादेशो सीतायाः सरिदुत्तरे ॥३॥

अस्त्य हि सदा भव्याः षट्कर्मनिरतास्तथा ।

मोक्षं यान्ति च यास्यन्ति नित्यं तत्रा न संशयः ॥४॥

अन्वयार्थ — जम्बूमति = जम्बूवृक्ष वाले, महाद्वीपे = विशाल द्वीप में, पूते = पवित्र, पूर्व विदेहके = पूर्वविदेह में, सीतायाः = सीता नाम की, सरिदुत्तरे = नदी के उत्तर में, कच्छनामक = कच्छ नामक, महादेशः = महान् देश, अस्ति = है (था), तथा = तथा, अत्र = इस देश में, सदा = हमेशा, षट्कर्मनिरताः = छह आवश्यक कर्मों में लगे हुये, भव्याः = भव्य जीव, मोक्षं = मोक्ष को, यान्ति = जाते हैं, च = और, नित्यं = सदैव, यास्यन्ति = जाते रहेंगे, तत्र = उसमें, संशयः = सन्देह, न = नहीं, अस्ति = है।

श्लोकार्थ — जम्बू नामक विशाल द्वीप में स्थित पवित्र पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर भाग में कच्छ नामक एक विशाल देश था। उस देश में हमेशा छह आवश्यक कर्मों को करते हुये भव्य जीव मोक्ष जाते हैं और नित्य मोक्ष जाते रहेंगे। उसमें कोई संशय नहीं है।

तत्र क्षेमपुरं दिव्यं धनधान्यसमृद्धिभिः ।

पूर्णं पुण्यजनाकीर्णं शोभते स्वरूपा सदा ॥५॥

अन्वयार्थ — तत्र = उस कच्छ देश में, पुण्यजनाकीर्णं = पुण्यात्मा लोगों से भरा, दिव्यं = दिव्य अर्थात् प्रकाश के समान धवल, (च = और), धनधान्यसमृद्धिभिः = धनधान्य की समृद्धि से, पूर्णं = परिपूर्ण, क्षेमपुरं = क्षेमपुर नामक नगर, सदा = हमेशा, स्वरूपा = अपनी उज्ज्वल कान्तिरूप शोभा से, शोभते = सुशोभित होता है या था।

श्लोकार्थ — उस कच्छ देश में पुण्यात्मा लोगों से भरा प्रकाश के समान चमकता धवल और धन-धान्य आदि से पूर्णतः समृद्ध क्षेमपुर नामक नगर सदैव अपनी उज्ज्वल कान्ति से सुशोभित होता था।

तस्य राज्ञा धनपतिः बभूव सुकृतालयः ।

धनसेना तस्य राज्ञी रूपराशिरिवोज्ज्वला ॥६॥

अन्वयार्थ — तस्य = उस क्षेमपुर का, सुकृतालयः = पुण्यात्मा, धनपतिः

= धनपति नामक, राजा = राजा, कल्प = हुआ, ताना = उस राजा की, रूपराशिः इव = रूपराशि के समान, उज्ज्वला = उज्ज्वल, धनसेना = धनसेना नामक, राज्ञी = रानी, (आसीत् = थी)।

श्लोकार्थ — उस क्षेमपुर नगर में एक पुण्यात्मा राजा धनपति हुआ था जिसकी रानी धनसेना रूप राशि के समान उज्ज्वल थी।

सः धर्मेणाकरोद्वाज्यं नीतिमान् न्यायवित्तमः ।

सुखमत्यः प्रजास्तत्रस्थाः देशस्य पुण्यतः ॥७॥

अन्वयार्थ — नीतिमान् = नीतिमान्, न्यायवित्तमः = श्रेष्ठ न्याय वेत्ता, सः = उस राजा ने, धर्मेण = धर्म मार्ग से, राज्यं = राज्य, अकरोत् = किया, देशस्य = देश के, पुण्यतः = पुण्य से, तत्रस्थाः = वहाँ स्थित, प्रजाः = प्रजा, सुखमत्यः = सुख से पूर्ण, (आसन् = थी)।

श्लोकार्थ — श्रेष्ठ न्याय वेत्ता और नीतिपूर्ण आचरण करने वाले, उस राजा ने धर्म मार्ग से राज्य किया। देश के पुण्य से वहाँ की प्रजा सुख से रहती थी।

प्रातरुत्थाय ताः सर्वाः सुखाधिक्यं गतास्ततः ।

वर्धतां वर्धतां भूप! इत्याशीर्वचनं जगुः ॥८॥

अन्वयार्थ — सुखाधिक्यं = अत्यधिक सुख को, गताः = प्राप्त, ताः सर्वाः = उस सारी प्रजा ने, प्रातः = सुबह, उत्थाय = उठकर, भूपः = हे राजन्!, वर्धतां वर्धताम् = अतिशय वृद्धि को प्राप्त होओ, इति = इस प्रकार, आशीर्वचनं = आशीष वचनों को, जगुः = स्पष्ट रूप से कहते थे।

श्लोकार्थ — अत्यधिक सुख को प्राप्त उनकी सारी प्रजा प्रातः उठकर— "हे राजन् तुम्हारी वृद्धि हो, वृद्धि हो" इस प्रकार आशीष वचन बोलती थी।

तेन राज्यं धनपतेस्तथा महीभर्तुरवर्धत ।

यथा निशापतेर्बिम्बं प्रजानेत्राभिनन्दितम् ॥९॥

अन्वयार्थ - तेन = प्रजाजनों के आशीर्वाद से, महीभर्तुः = राजा, धनपतिः = धनपति का, प्रजानेत्राभिनन्दितं = प्रजा नेत्रों को आनन्दित करने वाला, राज्यं = राज्य, तथा = उस प्रकार, अवर्धत् = वृद्धि को प्राप्त हुआ, यथा = जैसे, निशापतेः = चन्द्रमा का, बिम्बं = बिम्ब, (वर्धते = वृद्धि को प्राप्त होता है)।

श्लोकार्थ - प्रजाजनों के आशीर्वाद से राजा धनपति का राज्य जो प्रजा के नेत्रों को आनन्दित करने वाला था उसी प्रकार वृद्धिगत हुआ जैसे चन्द्रमा का बिम्ब प्रतिदिन वृद्धिगत होता है।

एकदानन्दविपिने तीर्थकृतपसन्निधिः ।

नाम्नार्हन्नन्दनः प्राप ज्ञानवान् भव्यसेवितः ॥१०॥

श्रुत्वा तमागतं राजा सहसोत्थाय धासनात् ।

ससम्भ्रमं पुनस्तत्र प्रीत्युत्पुलकितः गतः ॥११॥

अभिवन्द्य मुनिं प्रेम्णा धर्मान् पपृच्छ सार्थकान् ।

श्रुत्वा तान् तन्मुखाद्वाजा विरक्तस्संसृतेरभूत् ॥१२॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, आनन्दविपिने = आनंद नामक वन में, ज्ञानवान् = ज्ञानी, भव्यसेवितः = भव्य जनों द्वारा पूजित, तपसन्निधिः = परम तपस्वी, नाम्ना = नाम से, अर्हन्नन्दनः = अर्हन्नन्दन, तीर्थकृत् = तीर्थङ्कर, प्राप = प्राप्त हुये अर्थात् आये हुये हैं, तम् = उनको, आगतं = आया हुआ, श्रुत्वा = सुनकर, राजा = राजा, आसनात् = आसन से, सहसा = आकस्मिक रूप से, उत्थाय = उठकर, च = और, पुनः = फिर से, ससम्भ्रमं = आश्चर्य के साथ, प्रीत्युत्पुलकितः = हर्ष से रोमाञ्चित शरीर, राजा = वह राजा, तत्र = वहाँ वन में, गतः = गया, मुनिं = मुनिराज को, अभिवन्द्य = प्रणाम करके, प्रेम्णा = प्रेम से अर्थात् विनय से, सार्थकान् = सार्थक, उपयोगी, धर्मान् = धर्मों को, पपृच्छ = पूछा, तन्मुखात् = उनके मुख से, तान् = उन धर्मों को, श्रुत्वा = सुनकर, राजा = राजा, संसृतेः = संसार से, विरक्तः = विरक्त, अभूत् = हो गये।

श्लोकार्थ - एक दिन आनंद नामक वन में भव्यजनों से सेवा किये जाते

हुये अर्थात् पूजित, ज्ञानी, परम तपस्वी तीर्थकर अहन्नन्दन प्राप्त हुये— इस प्रकार उनको आया हुआ सुनकर वह राजा आसन से सहसा उठकर और आश्चर्य से पुनः हर्ष से रोमाञ्चित शरीर राजा वन में गया। वहाँ उसने मुनिराज को प्रणाम करके विनय से सार्थक धर्म विषयों को पूछा तथा उनके मुख से उन धर्मों को सुनकर वह राजा संसार से विरक्त हो गया।

राज्यं त्यक्त्वा सुधर्मात्मा संयुतो बहुभूमिपैः।

दीक्षां जग्राह मोहाख्यग्रहसम्भोचनोचिताम् ॥१३॥

अन्वयार्थ — बहुभूमिपैः = बहुत राजाओं से, संयुतः = युक्त, सुधर्मात्मा = धर्मपालक राजा ने, राज्यं = राज्य को, त्यक्त्वा = छोड़कर, मोहाख्यग्रहसम्भोचनोचिताम् = मोह नामक ग्रह या पिशाच को छोड़ने के उचित अर्थात् योग्य, दीक्षा = मुनिदीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया।

लोकार्थ — अनेक राजाओं से युक्त उस धर्मात्मा राजा ने राज्य छोड़कर मोहरूपी पिशाच को छोड़ने में समर्थ जैनेश्वरी मुनिदीक्षा को ग्रहण कर लिया।

एकादशाङ्गविद् भूत्वा पूर्वाश्चापि चतुर्दश।

सन्धार्य ज्ञानवान् तद्वत् शीलवान् सुविचारवान् ॥१४॥

षडुत्तरदशोक्तानि कारणानि विभाव्य सः।

बबन्ध तीर्थकृद्गोत्रं तपसोग्रेण दीपितः ॥१५॥

अन्वयार्थ — एकादशाङ्गविद् = ग्यारह अङ्गों के जानकार, भूत्वा = होकर, च = और, तद्वत् = वैसे ही, चतुर्दश = चौदह, पूर्वान् = पूर्वों को, सन्धार्य = धारण करके, ज्ञानवान् = ज्ञानी, शीलवान् = चारित्रधारी, सुविचारवान् = सुविचारक, उग्रेण = कठिन, तपसा = तपश्चरण से, दीपितः = सुशोभित, सः = उन मुनिराज ने, षडुत्तरदशोक्तानि = सोलह शास्त्रोक्त, कारणानि = कारणों को, विभाव्य = अच्छी तरह से भाकर, तीर्थकृत् = तीर्थङ्कर, गोत्रं = महापुण्य को, बबन्ध = बाँधा।

श्लोकार्थ - ग्यारह अङ्गों के जानकार होकर और वैसे ही चौदह पूर्वों को धारण करके ज्ञानी, चारित्रधारी सुविचारक और कठिन तपश्चरण से सुशोभित उन मुनिराज ने सोलहकारण भावनाओं को भाकर तीर्थङ्कर पुण्य प्रकृति को बांध लिया।

ततोऽन्त्ये स्वायुषः प्राज्ञः धृत्वा संन्यासमुत्तमम् ।

जहौ तपःशुचितनुं स्वास्थिचमार्वशेषताम् ॥१६॥

अन्वयार्थ - ततः = उसके बाद, स्वायुषः = अपनी आयु के, अन्त्ये = अंतिम समय में, प्राज्ञः = बुद्धिमान मुनिराज ने, उत्तमं = उत्तम, संन्यासं = संन्यासमरण की विधि को, धृत्वा = धारण करके, स्वास्थिचमार्वशेषताम् = हड्डी-चमड़ा मात्र शेष, तपःशुचितनुं = तपस्या से पवित्र शरीर को, जहौ = छोड़ दिया।

श्लोकार्थ - उसके बाद अपनी आयु के अंतिम समय में उन बुद्धिमान मुनिराज ने उत्तम संन्यास को धारण करके हड्डी-चमड़ा ही शेष बचा है जिसमें तपःपूत शरीर को छोड़ दिया।

ततः सर्वार्थसिद्धिं च सम्प्राप्य स्वतपोबलात् ।

अहमिन्द्रपदं लेभे दुर्लभं देवदानवैः ॥१७॥

अन्वयार्थ - च = और, ततः = उसके बाद, सर्वार्थसिद्धिं = सर्वार्थसिद्धि को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, स्वतपोबलात् = अपने तपश्चरण के बल से, देवदानवैः = देव और दानवों द्वारा, दुर्लभं = कठिनायी से प्राप्त किये जाने योग्य, अहमिन्द्रपदं = अहमिन्द्र पद को, लेभे = प्राप्त कर लिया।

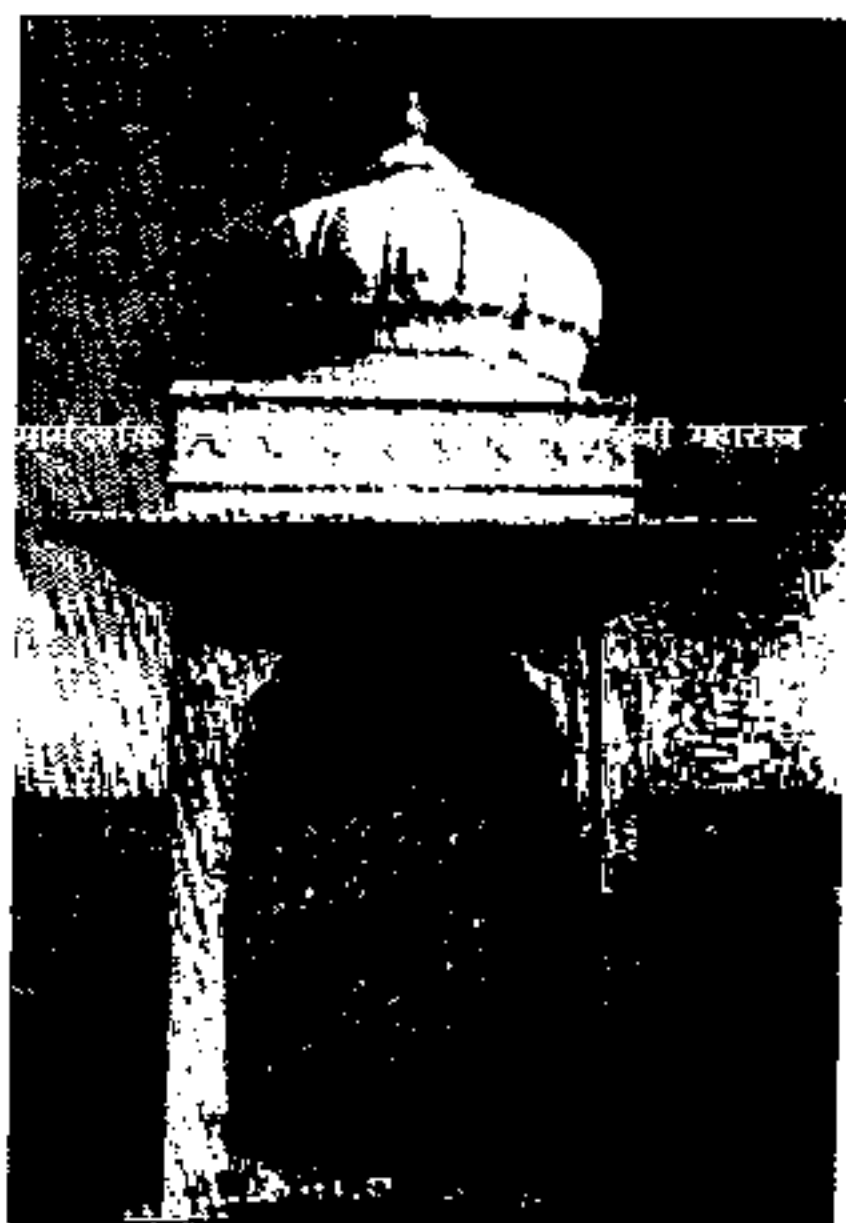
श्लोकार्थ - और उसके बाद अर्थात् शरीर छूट जाने पर उन मुनिराज ने सर्वार्थसिद्धि को पाकर वहाँ देव दानवों द्वारा जिसे पाना दुर्लभ है ऐसे अहमिन्द्र पद को प्राप्त कर लिया।

आयुश्चात्राभवत्तस्य त्रिंशत्सागरोपमम् ।

तत्रोक्ताहारनिश्वासः सार्द्धिश्च सः हर्षतः ॥१८॥

अनन्तसुखभुक् सिद्धध्यानसंलीनमानसः ।

षट्कमासायुरभवत् तत्र देवगणैः स्तुतः ॥१९॥



श्री अरुनाथ स्वामी-नाटक कूट

अन्वयार्थ — अत्र = इस सर्वार्थसिद्धि में, तस्य = उस अहमिन्द्र की, आयुः = उम्र, त्रिंशत् = तेतीस, सागरोपमं = सागर प्रमाण, अभवत् = थी, च = और, तत्र वहाँ, उक्ताहारनिश्वासः = जितना कहा गया है उतने समय में आहार और निश्वास वाला, सार्द्धः = ऋद्धि सहित, अनन्तसुखभुक् = अनन्तसुख को भोगता हुआ, च = और, सिद्धध्यानसंलीनमानसः = सिद्धों के ध्यान में मग्न मन वाला, सः = वह देव, हर्षतः = हर्ष से, षट्कमासायुः = छह माह की आयु वाला, अभवत् = हुआ, तत्र = उस दशा में, देवगणैः = देवों के समूह से, स्तुतः = स्तुति किया गया।

श्लोकार्थ — सर्वार्थसिद्धि में उस अहमिन्द्र की आयु, तेतीस सागर प्रमाण थी वहाँ वह शास्त्र में कहे अनुसार आहार और श्वासोच्छ्वास लेने वाला अर्थात् तेतीस वर्ष में आहार तथा तेतीस पक्ष में श्वासोच्छ्वास लेने वाला हुआ। ऋद्धि सहित, अक्षीण सुख को भोगने वाले और सिद्ध भगवन्तों के ध्यान में मन लगाने वाले उस देव की मात्र छह माह आयु शेष रही तब उस अवस्था में देवताओं द्वारा वह स्तुत हुआ।

अथावतारचरितं वक्ष्ये तस्य महात्मनः ।

श्रवणात्पातकघ्नं यत् सर्वमङ्गलकारणम् ॥२०॥

अन्वयार्थ — अथ = अब, तस्य = उस, महात्मनः = तीर्थङ्कर सत्वी महान् आत्मा अर्थात् देव के, अवतारचरितं = सर्वार्थसिद्धि से अवतरित होने के चरित को, वक्ष्ये = कहता हूँ, यत् = जो, श्रवणात् = सुनने से, पातकघ्नं = पापों को नष्ट करने वाला, (च = और), सर्वमङ्गलकारणम् = सारे मङ्गलों का कारण, (अस्ति = है)।

श्लोकार्थ — अब मैं उस महान् आत्मा अर्थात् तीर्थङ्कर सत्वी अहमिन्द्र देव के अवतरित होने के चरित को कहता हूँ। जिस चरित को सुनने से पापों का नाश होता है और जो सारे मङ्गल कार्यों का कारण है।

जम्बूद्वीपे शुभे क्षेत्रे भारते कुरुजाङ्गलः ।

देशो महान् हस्तिनागपुरं तत्र महोज्ज्वलम् ॥२१॥

अन्वयार्थ — जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, शुभे = शुभ, भारते = भरत नामक, क्षेत्रे = क्षेत्र में, कुरुजाङ्गलः = कुरुजाङ्गल नामक, महान् = एक विशाल, देशः = देश, (अस्ति = है) तत्र = उस देश में, महोज्ज्वलं = अत्यधिक धवल, हस्तिनागपुरं = हस्तिनागपुर, (अस्ति = है) ।

श्लोकार्थ — जम्बूद्वीप के शुभ भरत क्षेत्र में कुरुजाङ्गल एक महान् देश है जहाँ हस्तिनागपुर नामक अत्यधिक उज्ज्वल अर्थात् कीर्ति से धवल एक नगर है ।

सोमवंशोद्भवस्तस्य राजा नाम्ना सुदर्शनः ।

मित्रसेनाऽभवतस्य राज्ञी सुकृतसत्खनी ॥२२॥

अन्वयार्थ — तस्य = उस, हस्तिनागपुर नगर का, राजा = राजा, सोमवंशोद्भवः — सोमवंश में उत्पन्न, नाम्ना = नाम से सुदर्शन, अभवत् = हुआ था, तस्य = उस राजा की, सुकृतसत्खनी = पुण्य की खान स्वरूप अर्थात् अतिशय पुण्यशालिनी, मित्रसेना = मित्रसेना नामक, राज्ञी = रानी, अभवत् = थी ।

श्लोकार्थ — उस हस्तिनागपुर नागपुर नगर का सोमवंश में उत्पन्न सुदर्शन नामक एक राजा हुआ था जिसकी मित्रसेना नामक रानी अतिशय पुण्यशालिनी थी ।

धनदेन कृता रत्नवृष्टिः सदमनि चैतयोः पुनः ।

षण्मासेभ्यो हि पूर्व च प्रजाविस्मयकारिणी ॥२३॥

अन्वयार्थ — पुनः च = और फिर, एतयोः = इन राजा रानी के, सदमनि = महल में, धनदेन = कुबेर द्वारा, षण्मासेभ्यः = छह मास से, पूर्व = पहिले, हि = ही, प्रजाविस्मयकारिणी = प्रजाजनों में विस्मय-आश्चर्य उत्पन्न करने वाली, रत्नवृष्टिः = रत्नों की वर्षा, कृता = की गयी ।

श्लोकार्थ — फिर इन दोनों राजा रानी के महल में कुबेर के द्वारा छह

माह पहिले से ही प्रजाजनों में विस्मय-आश्चर्य पैदा करने वाली रत्नवृष्टि की गयी।

फाल्गुणस्य तृतीयायां शुक्लायामन्त्यभे शुभे ।
 एकदा रत्नपर्यङ्के सुप्ता राज्ञी सुलक्षणा ॥२४॥
 अहर्मुखे ददर्शेषा स्वप्नान् षोडशचोत्तमान् ।
 मुखे प्रविष्टं मातङ्गं निद्रां जहौ सती ॥२५॥
 भूपालनिकटं हर्षात् गता स्वप्नफलं ततः ।
 श्रुत्वा पुलकिताङ्गी सा गर्भेऽधारयदीश्वरम् ॥२६॥
 तद्दिनान्नवमासान्तं देवस्त्रीकृतसेवना ।
 प्रासूत सौत्तमं पुत्रं सर्वपुत्रशिरोमणिम् ॥२७॥

अन्वयार्थ — एकदा — एक बार, फाल्गुणस्य = फाल्गुन मास के, शुक्लायां = शुक्लपक्ष की, तृतीयायां = तृतीया तिथि के दिन, शुभे = शुभ, अन्त्यभे = अंतिम अभिजित् नक्षत्र के रहने पर, रत्नपर्यङ्के = रत्नखचित पलङ्ग पर, सुप्ता = सोयी हुयी, सुलक्षणा = सद्गुणों से लक्षित, एषा = इस, राज्ञी = रानी मित्रसेना ने, अहर्मुखे = दिन के मुख स्वरूप प्रातः काल में, उत्तमान् = उत्तम, षोडश = सोलह, स्वप्नान् = स्वप्नों को, च = और, मुखे = मुख में, प्रविष्टं = प्रवेश करते हुये, मातङ्गं = हाथी को, ददर्श = देखा, सती = शीलवती उस रानी ने, निद्रां = निद्रा को, जहौ = छोड़ दिया, हर्षात् = प्रसन्न मन से, भूपालनिकटं = राजा के पास, गता = गयी, ततः = उन से, स्वप्नफलं = स्वप्नों का फल, श्रुत्वा = सुनकर, पुलकिताङ्गी = रोमाञ्चित शरीर वाली, सा = उस रानी ने, गर्भे = गर्भ में, ईश्वरं = तीर्थङ्कर प्रभु को, आधारयत् = धारण किया, तद्दिनात् = उस दिन से, नवमासान्तं = नौ महिने तक, देवस्त्रीकृतसेवना = देवियों द्वारा की गयी है सेवा जिसकी ऐसी, सा = उस रानी ने, सर्वपुत्रशिरोमणिं = सारे पुत्रों में सिरमौर अर्थात् सर्वश्रेष्ठ, उत्तमं = सर्वोत्तम, पुत्रं = पुत्र को, प्रासूत = जन्म दिया।

श्लोकार्थ - एक बार फाल्गुन सुदी तृतीया को शुभ अभिजित नक्षत्र का उदय होने पर रत्नखचित पलंग पर शुभ लक्षणों से लक्षित तथा सोयी हुई रानी मित्रसेना ने प्रातः बेला में उत्तम सोलह स्वप्नों को और अपने मुख में प्रविष्ट होते हुये हाथी को देखा। उसके बाद निद्रा छोड़कर जागी हुयी रानी हर्ष से राजा के पास गई। राजा के मुख से स्वप्नों का फल सुनकर रोमाञ्चित शरीर वाली उस रानी ने गर्भ में तीर्थङ्कर प्रभु को धारण किया। उस दिन से नौ महिने तक देवियों द्वारा जिसकी सेवा की गई ऐसी उस रानी ने सारे पुत्रों में सिरमौर अर्थात् सर्वश्रेष्ठ सर्वोत्तम पुत्र को जन्म दिया।

तदा देवेन्द्र आगत्य प्रेमविस्फारितेक्षणः ।

सकौतुकं सुरैः सार्धं समादाय प्रभुं मुदा ॥२८॥

हेमाचलं जगामाथ पाण्डुकायां जगत्पतिम् ।

समारोप्य घटैर्दीर्घैर्देवानीतैः सुवेगतः ॥२९॥

क्षीरोदसलिलपूर्णंरभिषेकं जगद्गुरोः ।

चकार विधिवत्तत्र जयनिर्घोषमुच्चरन् ॥३०॥

अन्वयार्थ - तदा = तभी, प्रेमविस्फारितेक्षणः = प्रेम या विनय से खुले हैं नेत्र जिसके ऐसा वह, देवेन्द्रः = इन्द्र ने, सुरैः = देवताओं के, सार्धं = साथ, (तत्र = वहाँ), आगत्य = आकर, सकौतुकं = कौतुक सहित, प्रभुं = तीर्थङ्कर शिशु को, समादाय = लेकर, मुदा = प्रसन्न मन से, हेमाचलं = सुमेरु पर्वत को, सुवेगतः = तेज गति से, जगाम = गया, अथ = इसके बाद, पाण्डुकायां = पाण्डुक शिला पर, जगत्पतिं = जगत् के स्वामी को, समारोप्य = विराजमान करके, देवानीतैः = देवों द्वारा लाये गये, क्षीरोदसलिलपूर्णैः = क्षीरसागर के जल से भरे, दीर्घैः = बड़े-बड़े, घटैः = कलशों से, तत्र = वहाँ, जयनिर्घोषं = जय जयकार ध्वनि को, उच्चरन् = करते हुये, विधिवत् = विधिपूर्वक, जगद्गुरोः = तीर्थङ्कर शिशु का, अभिषेकं = अभिषेक, चकार = किया।

श्लोकार्थ - तभी प्रेम या विनय से स्फारित नेत्र वाले इन्द्र ने देवताओं

के साथ वहाँ आकर तथा कौतुकपूर्ण होकर प्रभु को लेकर तेज गति से अर्थात् जल्दी ही सुमेरु पर्वत पर चला गया। इसके बाद वहाँ पाण्डुकशिला पर जगत्पति शिशु को बैठाकर देवों द्वारा लाये गये क्षीर-सागर के जल से भरे हुये बड़े-बड़े कलशों से जयध्वनि का उच्चारण करते हुये जगद्गुरु तीर्थङ्कर शिशु का विधिपूर्वक अभिषेक किया।

पुनर्गन्धोदकैर्देवमभिषिच्याथ भूषणैः ।

दिव्यैः सम्भूष्य देवेशं कृतवान् तन्मुतिं हरिः ॥३१॥

अन्वयार्थ - अथ = और, गन्धोदकैः = सुगन्धित जल से, पुनः = दुबारा, देवं = प्रभु का, अभिषिच्य = अभिषेक करके, दिव्यैः = दिव्य, भूषणैः = आभूषणों से, देवेशं = उन तीर्थङ्कर प्रभु को, सम्भूष्य = अलङ्कृत करके, हरिः = इन्द्र ने, तन्मुतिं = उनकी वन्दना स्तुति को, कृतवान् = किया।

श्लोकार्थ - सुगन्धित जल से पुनः प्रभु का अभिषेक करके और दिव्य आभूषणों से उन्हें सुराजित करके इन्द्र ने उनकी वन्दना की।

भूयस्सम्प्राप्य देवेन्द्रो हस्तिनागपुरं मुदा ।

भूपाङ्गणे प्रभुं प्रेम्णा संस्थाप्याथ समर्चितम् ॥३२॥

ताण्डवाडम्बरं कृत्वा तस्याग्रे स पश्यतः ।

तस्यारनाम कृतवान् स्मरणात्सर्वसिद्धिदम् ॥३३॥

मात्रे समर्प्य पश्चात्तं सुदर्शनाभिमतं स ।

जयदेवमघोच्चार्य गतः स्वर्गं सहामरैः ॥३४॥

अन्वयार्थ - अथ = अनन्तर, देवेन्द्रः = देवों का स्वामी इन्द्र, मुदा = हर्ष से, भूयः = पुनः, हस्तिनागपुरं = हस्तिनागपुर को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, भूपाङ्गणे = राजा के आंगन में, प्रेम्णा = स्नेह अथवा विनय से, समर्चितं = पूजा किये जाते हुये, प्रभुं = प्रभु को, संस्थाप्य = स्थापित करके, पश्यतः = देखते हुये, तस्य = प्रभु के, अग्रे = आगे, ताण्डवं = ताण्डव नृत्य को, कृत्वा = करके, सः = उस इन्द्र ने, तस्य = उनका, स्मरणात्

= स्मरण से, सर्वासिद्धिदं = सारी सिद्धियों को देने वाला, अरनामक = अरनाथ नाम, कृतवान् = किया, पश्चात् = इसके बाद, तं = उन शिशु तीर्थङ्कर को, मात्रे = माता के लिये, समर्प्य = देकर, सुदर्शनाभिमतैन = राजा सुदर्शन के, अभितेन = अनुमति प्राप्त कर लेने से, अथ = और, जय देवम् = प्रभु की जय हो, (इति = ऐसा), उच्चार्य = कहकर, अमरैः = देवताओं के साथ, सः = वह, स्वर्ग = स्वर्ग को, गतः = चला गया।

श्लोकार्थ - वह देवेन्द्र प्रसन्न होता हुआ पुनः हस्तिनागपुर आ गया वहाँ राजा के आँगन में विनयपूर्वक पूजा किये जाते हुये प्रभु को स्थापित करके देखते हुये उन प्रभु के सामने उस इन्द्र ने ताण्डव नृत्य किया और उन्मत्त स्मरण से सर्वसिद्धिदायक नाम अरनाथ कर दिया। फिर प्रभु को माता के लिये सौंपकर और राजा सुदर्शन से अनुमति ले लेने के कारण प्रभु की जय हो ऐसा कहकर देवताओं के साथ स्वर्ग को चला गया।

कुन्थुनाथाच्चतुर्भागपत्यकाले गते प्रभुः ।

अरस्तन्मध्यसञ्जीवी बभूव जगतां पतिः ॥३५॥

अन्वयार्थ - कुन्थुनाथात् = तीर्थङ्कर कुन्थुनाथ से, चतुर्भागपत्यकाले = चौथाई पत्यकाल, गते = बीत जाने पर, तन्मध्यसञ्जीवी = उस काल के अन्दर ही जिनका जीवन सम्मिलित है ऐसे, जगतां = जगत् जीवों के, पतिः = स्वामी, अरः = अरनाथ, प्रभुः = भगवान्, बभूव = हुये।

श्लोकार्थ - तीर्थङ्कर कुन्थुनाथ के बाद चौथाई पत्य काल बीत जाने पर उस काल में ही जिनकी आयु अन्तर्भूत है ऐसे अरनाथ प्रभु उत्पन्न हुये।

चतुर्युक्ताशीतिश्चेति सहस्रायुः पुरीश्वरः ।

त्रिंशच्चापशरीरोऽयं बभूवातीव सुन्दरः ॥३६॥

अन्वयार्थ - अयं = यह, पुरीश्वरः = प्रभु, चतुर्युक्ताशीतिः = चौरासी, सहस्रायुः = हजार आयु वाले, च = और, त्रिंशच्चापशरीरः

= तीस धनुष प्रमाण शरीर वाले, अतीव = अत्यधिक, सुन्दर
= कामदेव जैसे सुन्दर, बभूव = हुये।

श्लोकार्थ - यह प्रभु चौरासी हजार वर्ष की आयु वाले और तीस धनुष प्रमाण शरीर वाले अत्यधिक सुन्दर थे।

हेपकः शतकामानां तप्तजाम्बूनदद्युतिः ।

प्रत्यहं मोहयामास पितरौ बालकेलिभिः ॥३७॥

अन्वयार्थ - तप्तजाम्बूनदद्युतिः = तपाये हुये स्वर्ण की कान्ति के समान, (च - और), शतकामानां = सैकड़ों कामदेवों के लिये, हेपकः = लज्जाकारक, (प्रभुः = उन प्रभु ने), बालकेलिभिः = बालक्रीडाओं से, प्रत्यहं = प्रतिदिन, पितरौ = माता-पिता को, मोहयामास = प्रसन्न किया।

श्लोकार्थ - तपाये हुये सोने की कान्ति समान सुन्दर और सैकड़ों काम देवों को लज्जित करते हुये उन शिशु प्रभु ने अपनी बाल क्रीडाओं से माता-पिता को प्रसन्न किया।

एकविंशतिसाहस्रवर्षाणि क्रीडनादिभिः ।

बाल्ये तस्य व्यतीतानि शारदीन्दुसमद्युतेः ॥३८॥

अन्वयार्थ - तस्य = उन, शारदीन्दुसमद्युतेः = शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान है कान्ति जिनकी ऐसे प्रभु के, एकविंशतिसाहस्रवर्षाणि = इक्कीस हजार वर्ष, बाल्ये = बाल्यकाल में, क्रीडनादिभिः = क्रीडा आदि के द्वारा, व्यतीतानि = बीत गये।

श्लोकार्थ - शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान कान्ति वाले उन शिशु तीर्थङ्कर के इक्कीस हजार वर्ष बाल्यकाल में क्रीडा आदि से व्यतीत हो गये।

पितृराज्यं ततो लब्धं चक्रवर्त्यभवत्प्रभुः ।

तत्रापि मोहजस्तस्य मदो नाभून्नृपश्रिया ॥३९॥

अन्वयार्थ - ततः = उसके बाद, प्रभुः = प्रभु ने, पितृराज्यं = पैतृक राज्य, लब्धं = प्राप्त किया, च = और, चक्रवर्ती = चक्रवर्ती सम्राट्, अभवत् = हुये, तत्रापि = चक्रवर्ती होने पर भी, तस्य = उनके,

नृपश्रिया = राजलक्ष्मी के कारण, मोहजः = मोह से जनित, मदः = अहंकार, न = नहीं, अभूत् = हुआ।

श्लोकार्थ - उसके बाद प्रभु ने पिता के राज्य को प्राप्त किया और चक्रवर्ती हो गये। चक्रवर्ती होने पर भी उनके राजलक्ष्मी के कारण होने वाला मोह से जनित होने वाला अहंकार नहीं हुआ।

एकदायं नृपाराध्यः चक्रवर्ती सुसौधगः ।

तत्र पयोधरघटामग्रे कमनीयां च ददर्श हि ॥४०॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, अयं = यह, नृपाराध्यः = राजाओं से आराधित, चक्रवर्ती = चक्रवर्ती, सुसौधगः = महल के ऊपर बैठे हुये, आसीत् = थे, च = और, तत्र = वहाँ, (सः = उन्होंने), अग्रे = आकाश में, हि = ही, कमनीयां = सुन्दर अच्छी लगने वाली, पयोधरघटां = बादलों की घटा को, ददर्श = देखा।

श्लोकार्थ - एक दिन यह चक्रवर्ती राजाओं से आराधित होता हुआ महल पर बैठा था वहाँ उसने आकाश में ही बादलों की सुन्दर कमनीय घटा को देखा।

तत्क्षणादेव खे लीनां दृष्ट्वा तां राजभोगतः ।

विरक्तहृदयो भूत्वा तपस्सारममन्यत ॥४१॥

अन्वयार्थ तत्क्षणात् = उस समय, एव = ही, तां = उस मेघों की बदली को, खे = आकाश में, लीनां = विलीन होती, दृष्ट्वा = देखकर, राजभोगतः = राज्य सम्बन्धी भोगों से, विरक्तहृदयः = विरक्त मन वाला, भूत्वा = होकर, तपः = तपश्चरण को, सारं = सारभूत, अमन्यत = मानने लगा।

श्लोकार्थ - उसी समय वह राजा उस सुन्दर बदली को आकाश में ही विलीन होती देखकर राज्य के भोगों से विरक्त मन होकर तपश्चरण को सारभूत मानने लगा।

तदा सारस्वतास्तत्र प्राप्ता देवं प्रतुष्टुयुः ।

धन्योसि त्वां पिना कोऽत्र कुर्यादेवं विवेचनम् ॥४२॥

अन्वयार्थ - तदा = तभी, तत्र = वहाँ, प्राप्ताः = उपस्थित हुये, लौकान्तिक

देवों ने, देवं = प्रभु की, प्रतुष्टुवुः = स्तुति की, (त्वं = तुम),
 धन्यः = धन्य, असि = हो, त्वां = तुम्हारे, विना = विना, अत्र
 = यहाँ, एवं = इस प्रकार, विवेचनं = भेद ज्ञान परक विचार
 को, कः = कौन, कुर्यात् = करे।

श्लोकार्थ — तभी वहाँ उपस्थित हुये लौकन्तिक देवों ने प्रभु की स्तुति
 की और कहा है प्रभु! तुम धन्य हो तुम्हारे सिवा यहाँ और
 कौन है जो ऐसा भेदविज्ञान परक विचार करे।

इन्द्रस्तदैव सम्प्राप्तस्तदानीं तां प्रभामयीम् ।

वैजयन्तीं समारुह्य शिबिकां भास्करद्युतिः ॥४३॥

सहेतुकवनं रम्यं प्राप देवगणस्तुतः ।

माघे शुक्लदशम्यां स रेवत्यां सत्तपोवने ॥४४॥

सहस्रभूमिपैः सार्धं दीक्षां धृत्वा स्वमानसे ।

मनःपर्ययनामानं प्रबोधं लब्धवान् प्रभुः ॥४५॥

अन्वयार्थ — तदैव :: तब ही, इन्द्रः = इन्द्र, सम्प्राप्तः = आ पहुँचा,
 देवगणस्तुतः = देवताओं के समूह से स्तुत, (च = और),
 भास्करद्युतिः = सूर्य के समान कान्ति वाले प्रभु, (अपि = भी),
 तदानीं = उस ही समय, प्रभामयीं = कान्तियुक्त, वैजयन्तीं
 :: वैजयन्ती नामक, तां :: उस, पालकीं = पालकी पर,
 समारुह्य = चढ़कर, रम्यं = रमणीय, सहेतुकवनं =
 सहेतुकवन को, प्राप = प्राप्त हो गये, सः = उन, प्रभुः =
 प्रभु ने, माघे = माघ मास में, शुक्लदशम्यां = शुक्ल पक्ष की
 दशमी के दिन, रेवत्यां = रेवती नक्षत्र में, सत्तपोवने = शुभ
 तपोवन में, सहस्रभूमिपैः = एक हजार राजाओं के, सार्धं =
 साथ, दीक्षां = मुनि दीक्षा को, धृत्वा = धारण करके, स्वमानसे
 = अपने मानस में, मनःपर्ययनामानं = मनःपर्यय नामक, प्रबोधं
 = ज्ञान को, लब्धवान् = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ — तभी इन्द्र वहाँ आ गया तथा सूर्य के समान कान्ति वाले और
 देवों के समूह से स्तुति किये जाते हुये प्रभु भी उसी समय
 कान्तिमयी वैजयन्ती नामक पालकी पर चढ़कर रमणीय

सहेतुक वन में चले गये । उस शुभ तपोवन में माघ सुदी दशमी को रेवती नक्षत्र में उन प्रभु ने एक हजार राजाओं के साथ मुनिदीक्षा धारण करके अपने अंतरङ्ग में मनःपर्यय नामक ज्ञान प्राप्त कर लिया ।

द्वितीयदिवसे चक्रपुरे भिक्षार्थमागतः ।
 अपराजितभूपेन भोजितः श्रद्धया मुदा ॥४६॥
 पञ्चाशचर्येणेषणात्तेन हृष्टेन बहुवन्दितः ।
 कृपार्द्रयादिशा वीक्ष्य तं पुनः प्राप्य तद्वनम् ॥४७॥
 छद्मस्थः षोडशाब्दं स तप उग्रं समाचरन् ।
 चतुर्धातीनि संहृत्य सुतीक्ष्णेन तपोऽसिना ॥४८॥
 द्वादश्यां कार्तिके मासे शुक्लपक्षे जगत्प्रभुः ।
 रसालतरुमूले च केवलज्ञानमाप्तवान् ॥४९॥

अन्ययार्थ - द्वितीयदिवसे = दूसरे दिन, (सः - वह मुनिराज), भिक्षार्थ = भिक्षा के लिये, चक्रपुरं = चक्रपुर नगर में, आगतः = आये, (तत्र = वहाँ), मुदा = प्रसन्नाचित्त, अपराजितभूपेन = अपराजित नामक राजा द्वारा, श्रद्धया = श्रद्धा के साथ, सः = वह, भोजितः = भोजन कराये गये, च = और, पञ्चाशचर्येणेषणात् = पाँच आश्चर्यों को देखने से, हृष्टेन = हर्षित, तेन = उस राजा द्वारा, बहुवन्दितः = बार बार प्रणाम किये गये, (सः = उन्होंने), कृपार्द्रया = कृपा से संसिक्त आर्द्र, दिशा = दृष्टि से, तं = उस राजा को, वीक्ष्य = देखकर, पुनः = दुबारा, तद्वनं = उसी वन को, प्राप्य = प्राप्त करके, षोडशाब्दं = सोलह वर्ष तक, उग्रं = कठिन, तपः = तपश्चरण का, समाचरन् = सम्यक् आचरण करते हुये, छद्मस्थः = अल्पज्ञानी, सः = उन, जगत्प्रभुः = मुनिराज ने, सुतीक्ष्णेन = अत्यंत पैनी, तपोऽसिना = तपश्चरण रूपी तलवार से, चतुर्धातीनि = चार घातिया कर्मों का, संहृत्य = संहार करके, कार्तिके मासे = कार्तिक माह में, शुक्लपक्षे = शुक्लपक्ष में, द्वादश्यां = द्वादशी के दिन, रसालतरुमूले = रसाल अर्थात्

आम के पेड़ के नीचे, केवलज्ञानम् = केवलज्ञान को, आप्तवान् = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ — वह मुनिराज दूसरे दिन भिक्षा के लिये चक्रपुर नगर में आ गये वहाँ प्रसन्नचित्त राजा अपराजित ने श्रद्धापूर्वक उन्हें भोजन कराया और पंचाश्रयों को देखने से हर्ष से पुष्ट उस राजा द्वारा वह मुनिराज बार बार प्रणाम किये गये। कृपा से भीगी दृष्टि द्वारा उस राजा को देखकर पुनः वन में आकर, सोलह वर्ष तक कठिन तपश्चरण करते हुये अल्पज्ञानी उन मुनिराज ने अत्यंत पैनी या तीक्ष्ण तप रूपी तलवार से चारों घातियाँ कर्मों का संहार करके कार्तिक सुदी बारह के दिन आम के पेड़ के नीचे केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया।

तदा समवसारेऽथ शक्रादिसुरनिर्मिते ।

यथोक्तकुन्थुऽसेनादिज्वलद्द्वादशकोष्ठके ॥५०॥

बहुशोभासभायुक्ते स्थितोऽयं जगदीश्वरः ।

दिव्यघोषेण सम्पृष्टो भव्यैः सुकृतमुज्जगौ ॥५१॥

अन्वयार्थ — अथ = इसके बाद, तदा = तभी, शक्रादिसुरनिर्मिते = इन्द्र आदि देवताओं द्वारा निर्मित, यथोक्तकुन्थुऽसेनादिज्वलद्द्वादशकोष्ठके = जैसे कहे गये हैं उन कुन्थुसेन आदि गणधरों एवं अन्य भव्यजीवों से शोभित बारह कोठों वाले, बहुशोभासभायुक्ते = अनेकविधशोभा वाली धर्मसभा से युक्त, समवसारे = समवसरण में, स्थितः = विराजमान, अयं = यह, जगदीश्वरः = जगत् के प्रभु तीर्थङ्कर अरनाथ, भव्यैः = भव्यजीवों द्वारा, सम्पृष्टः = पूछे गये, (तदा = तब), दिव्यघोषेण = दिव्यध्वनि द्वारा, सुकृतं = धर्मोपदेश या पुण्योपदेश को, उज्जगौ = उत्कृष्टतया और सुविशद रूप से कहने लगे।

श्लोकार्थ — केवलज्ञान होने के बाद उसी समय इन्द्र आदि देवों द्वारा रचे गये व जैसा क्रम कहा गया है तदनुसार कुन्थुसेन आदि गणधरों एवं भव्य जीवों से शोभित बारह कोठों वाले तथा अनेक प्रकार की शोभा से युक्त धर्मसभा रूप समवसरण में

विराजमान यह जगत् के प्रभु तीर्थङ्कर अरनाथ भव्य जीवों द्वारा पूछे गये और उन्होंने दिव्यध्वनि द्वारा धर्मोपदेश या पुण्योपदेश को उजागर किया अर्थात् स्पष्ट रूप से धर्म का उपदेश दिया।

पुण्यक्षेत्रेषु विहरन् मासावधितनुस्थितिः।

संहृत्य दिव्यनिर्घोषं गतः सम्मेदपर्वतम् ॥५२॥

अन्वयार्थ – पुण्यक्षेत्रेषु = पुण्यक्षेत्रों में, विहरन् = विहार करते हुये, मासावधितनुस्थितिः = एक माह शरीर की स्थिति वाले प्रभु, दिव्यनिर्घोषं = दिव्यध्वनि को, संहृत्य = रोककर— समेटकर, सम्मेदपर्वतं = सम्मेदशिखर पर्वत पर, गतः = गये।

श्लोकार्थ – पुण्य क्षेत्रों में विहार करते हुये शरीर की स्थिति एक मास पर्यन्त रहने पर वे प्रभु दिव्यध्वनि को समेटकर या रोककर सम्मेदशिखर पर्वत पर चले गये।

तत्र नाटकनाम्नि कूटे स्थितश्च स उदारधीः।

शुक्लध्यानसमारूढः वरं योगं प्रसाधयन् ॥५३॥

चैत्रामायां सहस्रैस्सह मुनिभिर्मुदिताशयः।

गतस्तन्नाटकात्कूटात् निर्वाणं विश्वदुर्लभम् ॥५४॥

अन्वयार्थ – तत्र = उस सम्मेदशिखर पर, नाटकनाम्नि = नाटक नामक, कूटे = कूट पर, सः = वह, उदारधीः = विस्तृत बुद्धि अर्थात् केवलज्ञानी अरनाथ, स्थितः = स्थित हो गये, च = और, शुक्लध्यानसमारूढः = शुक्लध्यान में आरूढ हुये, वरं = श्रेष्ठ सर्वोत्तम, योगं = योग को, प्रसाधयन् = साधते हुये, चैत्रामायां = चैत्र मास की अमावस्या के दिन, मुदिताशयः = मोद व सुख के आशय स्वरूप स्रोत अर्थात् अनंत सुखी वह अरनाथ, तन्नाटकात् = उस सम्मेदशिखर पर्वत की नाटक कूट से, विश्वदुर्लभम् = विश्व के लिये दुर्लभ, निर्वाणं = निर्वाण को, सहस्रैः = एक हजार, मुनिभिः = मुनिराजों के, सह = साथ, गतः = गये।

श्लोकार्थ – उस सम्मेदशिखर की नाटक नामक कूट पर केवलज्ञानी प्रभु

तीर्थङ्कर अरनाथ स्थित हो गये और शुक्लध्यान में अच्छी तरह आरुढ़ होते हुये एवं सर्वोत्तम योग को साधते हुये चैत्रमास की अमावस्या को अगंतसुख के निधान या परम मोद के आशय अरनाथ प्रभु उस नाटक कूट से ही एक हजार मुनियों के साथ मोक्ष चले गये।

एकोनशतकोट्यश्च लक्षास्तावन्त एव हि ।
 तावन्त्येव सहस्राणि इत्युक्ता मुनिनायकाः ॥५५॥
 अन्येऽपि बहवः सिद्धिं प्राप्तास्तेऽस्मादनीश्वरी ।
 सुप्रभेनाथ भूपेन सङ्घपूजनपूर्वकम् ॥५६॥
 यात्रा सम्मेदशैलस्य कृता तस्य कथां शृणु ।
 जम्बूद्वीपे विदेहेऽस्ति पश्चिमे सकलाभिधः ॥५७॥
 देशो महान् भद्रपुरनाम तत्र सम्यक् प्रकाशते ।
 तस्य राजा नन्दसेनो ब्रह्मशूरतमोऽभवत् ॥५८॥

अन्वयार्थ - एकोनशतकोट्यः = निन्यानवे करोड़, तावन्त = उतने, एव = ही, लक्षाः = लाख, तावन्ति = उतने, एव = ही, सहस्राणि = हजार, इति = इस संख्या से, उक्ताः = कहे गये, मुनिनायकाः = मुनिश्रेष्ठ, च = और, अन्येऽपि = अन्य भी, बहवः = अनेक, ते = भव्य जीव, अस्मात् = उस नाटक कूट से, अनश्वरीम् = शाश्वत्, सिद्धिं = सिद्धि अर्थात् मोक्ष को, प्राप्ताः = प्राप्त हुये।

अथ = इसके बाद, सुप्रभेन = सुप्रभ नामक, भूपेन = राजा द्वारा, सङ्घपूजनपूर्वकम् = पहिले संघ की पूजा करके, सम्मेदशैलस्य = सम्मेदशिखर पर्वत की, यात्रा = यात्रा, कृता = की, तस्य = उस राजा की, कथां = कथा को, शृणु = सुनो, जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, पश्चिमे = पश्चिम, विदेहे = विदेह क्षेत्र में, सकलाभिधः = सकल नामक, महान् = एक महान्, देशः = देश, अस्ति = है या था, तत्र = उस देश में, भद्रपुरनाम = भद्रपुर नामक, (पुरं = नगर), सम्यक् = अच्छी तरह से, प्रकाशते = सुशोभित होता है, तस्य = उस

नगर का, नन्दसेनः = नन्दसेन नामक, महाशूरतमः = महान् योद्धाओं से सर्वश्रेष्ठ, राजा = राजा, अभवत् = हुआ।

श्लोकार्थ — निन्यानवे करोड़, निन्यानवे लाख, निन्यानवे हजार मुनिराज और अन्य भी अनेक भव्य जीव इस कूट से मोक्ष को प्राप्त हुये हैं तथा इसके बाद सुप्रभ राजा के द्वारा चतुर्विध संघ की पूजन करके सम्पेदशिखर पर्वत की यात्रा की गयी। उस राजा की कथा को सुनो।

जम्बूद्वीप में पश्चिमविदेह क्षेत्र में सकल नामक एक महान् देश है उसमें भद्रपुर नाम का एक नगर सुशोभित होता है। उस नगर का राजा नन्दसेन एक सर्वश्रेष्ठ योद्धा था।

विजयाख्या तस्य राज्ञी चतुर्था दान तत्परा ।

तया सह सुधर्मात्मा भुञ्जन् भोगान्महीपतिः ॥५६॥

विचार्यासौ बहुदानानि दत्तवान् प्रतिवासरम् ।

दूरीकृत्य स दीनानां दुःखं वाञ्छितदानतः ॥६०॥

सर्वसद्गुणसम्पन्नो रराज क्षितिमण्डले ।

एकदासौ सभामध्ये सिंहासनगतो नृपः ॥६१॥

सज्जीकृत्य स्वात्मानं बभौ भानुरिवापरः ।

वनपालस्तदाभ्येत्य प्रसूननिघ्नयं वरम् ॥६२॥

अथ नृपस्य पुरतः सुरभीकृतं वै दिङ्मुखम् ।

एकं कुसुममादाय कौतुकेन महीपतिः ॥६३॥

भ्रामयामास वेगेन करस्थं हर्षिताननः ।

तस्मात् प्रपात भ्रमरो मृत एव सभाभुवि ॥६४॥

अन्वयार्थ — तस्य = उस राजा की, विजयाख्या = विजया नामक, राज्ञी = रानी, चतुर्था = चार प्रकार से, दानतत्परा = दान देने में उत्सुक व प्रवीण, (आसीत् = थी), तया = उसके, सह = साथ, भोगान् = भोगों को, भुञ्जन् = भोगते हुये, सुधर्मात्मा = सद्धर्म का पालन करने वाले, असौ = उस, महीपतिः = राजा ने, विचार्य = सोच समझकर, प्रतिवासरं = प्रत्येक दिन, बहुदानानि = बहुत दान, दत्तवान् = दिया, (इति = इस

प्रकार), वाञ्छितदानतः = चाहे गये दान से, दीनानां = दीन याचकों के, दुःखं = दुःख को, दूरीकृत्य = दूर करके, सर्वसद्गुणसम्पन्नाः = सारे सद्गुणों से युक्त हुआ, सः = वह राजा, क्षितिमण्डले = पृथ्वी तल पर, रराज = सुशोभित हुआ।

एकदा = एक दिन, स्वात्मानं = अपने आपको, सज्जीकृत्य = सुसज्जित करके, सिंहासनगतः = सिंहासन पर बैठा हुआ, नृपः = राजा, सभामध्ये = सभा में, अपरः = दूसरे, भानुः इव = सूर्य के समान, बभौ = सुशोभित हुआ।

अथ = तत्पश्चात्, वनपालः = एक वनपाल ने, अभ्येत्य = आकर, नृपस्य = राजा के, पुरतः = सामने, दिङ्मुखं = सभी दिशाओं के कुछ भाग को, वै = सचमुच, सुरभीकृतं = सुगन्धित कर देने वाले, वरं = सुन्दर प्रसूननिचयं = फूलों के समूह को, (क्षिप्तवान् = रख दिया), तदा = एव, हर्षिताननः = प्रसन्नमुख, महीपतिः = राजा ने, कौतुकेन = कौतुक से, ततः = उस पुष्प के पिटारे से, एकं = एक, कुसुमं = फूल को, आदाय = लेकर, करस्थं = हाथ में स्थित, उस पुष्प को, वेगेन = गति से वेगपूर्वक, भ्रामयामास = घुमा दिया, तस्मात् = घुमाने पर उस फूल से, मृतः = मरा हुआ, भ्रमरः = एक भौंरा, सभामुवि = सभा की भूमि पर, एव = ही, प्रपात = गिर पड़ा।

श्लोकार्थ - उस राजा की विजया नाम की रानी थी जो चार प्रकार के दान देने में तत्पर रहती थी। उस रानी के साथ भोगों को भोगता हुआ वह धर्मात्मा राजा सोच समझकर प्रतिदिन बहुत दान देता था। इस प्रकार याचकों के लिये उनके इच्छित दान देने से दीनों के दुःख दूर करके तथा सभी सद्गुणों से युक्त वह राजा पृथ्वी मण्डल पर सुशोभित होने लगा। एक दिन अपने आपको अलङ्कृत करके सिंहासन पर बैठा हुआ राजा सभा में द्वितीय सूर्य के समान सुशोभित हो रहा था। इसी समय एक वनपाल ने वहाँ आकर राजा के सामने सभी दिशाओं के हिस्सों को सुगन्धित कर देने वाली एक

फूलों की टोकरी को रख दिया तब राजा ने प्रसन्न मुख होते हुये उस टोकरी में से एक फूल लेकर और हाथ में स्थित करके उसे वेग से घुमा दिया। ऐसा करने पर उस फूल से एक मरा हुआ भौंरा उसी सभा की भूमि पर ही गिर पड़ा।

तेनैव हेतुना राजा तदैव विरतोऽभवत् ।

राज्यं सुन्दरपुत्राय दत्त्वागादटवीं प्रभुः ॥६५॥

अन्वयार्थ - तेन = उस, एव = ही, कारण = कारण से, राजा = राजा, तदैव = उसी समय, विरतः = भोगों से विरक्त, अभवत् = हो गया, (च = और), प्रभुः = वह प्रभु, सुन्दरपुत्राय = सुन्दर नामक पुत्र के लिये, राज्यं = राज्य को, दत्त्वा = देकर, अटवीं = अरण्य वन को, अगात् = चले गये।

श्लोकार्थ - उस ही कारण से उसी समय राजा राजभोगों से विरक्त हो गया और वह प्रभु सुन्दर नामक पुत्र के लिये राज्य देकर वन प्रान्तर को चले गये।

मुनिभूत्वा तपश्चक्रे घोरसंयमवान् किल ।

तत्प्रभावेन सन्त्यज्य शरीरं तपसोज्ज्वलम् ॥६६॥

स्वर्गे षोडशमे गत्वा देवोऽभून्निजपुण्यतः ।

ततश्च्युतो महाद्वीपे जम्बूमति स भारते ॥६७॥

क्षेत्रे सुरम्यदेशे च पौदनाख्यपुरे शुभे ।

भूपस्य श्रीमतीराज्ञयाः श्रीसेनस्य गुणाम्बुधेः ॥६८॥

पुत्रो बभूव सद्बुद्धिः सुप्रभाख्यो महाप्रभुः ।

पाटी सकलविद्यानां प्रसिद्धो भूमिमण्डले ॥६९॥

अन्वयार्थ - (तत्र = उस वन में), घोरसंयमवान् = घोर अर्थात् कठिन संयम का पालन करने वाले, मुनिः = मुनि, भूत्वा = होकर, तपः = तपश्चरण, चक्रे = किया, तत्प्रभावेन = उस तप के प्रभाव से, तपसोज्ज्वलं = तप से पवित्र, शरीरं = शरीर को, सन्त्यज्य = छोड़कर, किल = निश्चित ही, षोडशमे = सोलहवें, स्वर्गे = स्वर्ग में, गत्वा = जाकर, निजपुण्यतः =

अपने पुण्य से, देवः = देव, अगूत = हो गया, ततः = उस स्वर्ग से, सः = वह देव, जम्बूमलि = जम्बू वृक्ष वाले, महाद्वीपे = विशाल द्वीप में, भारते = भरत, क्षेत्रे = क्षेत्र में, सुरम्य देशे = सुरम्य देश में, च = और, पौदनारख्यपुरे = पौदनपुर नामक, शुभे = सुन्दर, (नगरे = नगर में), च्युतः = च्युत हुआ, गुणाम्बुधेः = गुणों के सागर, श्रीसेनस्य = श्रीसेन नामक, भूपस्य = राजा की, श्रीमती राग्या = श्रीमती नामक रानी से, पुत्रः = पुत्र, बभूव = हुआ, (सः = वह), सुप्रभाख्यः = सुप्रभनामक सद्बुद्धिः = सुबुद्धि का धारक, महाप्रभुः = सामर्थ्यशाली, सकलविद्यानां = सारी विद्याओं को पढ़ने वाला, भूमिमण्डले = पृथ्वीतल पर, प्रसिद्धः = विख्यात, (आसीत् = था), सुप्रभाख्यः = सुप्रभ नामक, सद्बुद्धिः = सुबुद्धि का धारक, महाप्रभुः = सामर्थ्यशाली, सकलविद्यानां = सारी विद्याओं को पढ़ने वाला, भूमिमण्डले = पृथ्वी तल पर, प्रसिद्धः = विख्यात, (आसीत् = था)।

श्लोकार्थ उन्होंने वन में घोर संयम के पालनकर्ता मुनि होकर तपश्चरण किया। उस तप के प्रभाव से तपःपूत शरीर को छोड़कर वह अपने पुण्य से सोलहवें स्वर्ग में जाकर देव हो गये। फिर उस स्वर्ग से वह जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में सुरम्य नामक देश के सुन्दर पौदनपुर नामक नगर में च्युत होते हुये गुणों के सागर श्रीषेण नामक राजा की श्रीमती रानी से पुत्र उत्पन्न हुये। वह सुप्रभ नामक पुत्र सुबुद्धि सम्पन्न महान् सामर्थ्यशाली और सारी विद्याओं का जानकर के रूप में पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुआ था।

समये भूपतां प्राप्य रराज मघवेव सः ।

एकदा चारणेनाथ मुनिना सह भूभृतः ॥७०॥

संगमोऽस्याभवच्चैनमपृच्छच्च भूपतिरसौ ।

त्रिलौक्यां भो मुने तत्किं यन्न जानासि तत्त्वतः ॥७१॥

तस्मान्निवारणमार्गं मे दर्शयाद्य दयानिधे ।

मोक्षोपायप्रधानां सः यात्रां साम्मेदिर्की तदा ॥७२॥

कथयामास भूपालं प्रति सर्वसमृद्धिदां ।

मुनिवाक्यात्समर्घ्याथ सङ्घं यात्रोन्मुखो नृपः ॥७३॥

एककोट्येकरहितैः शतलक्षप्रमाणितैः ।

भव्यैः सह गतः शैलं नाटकं कूटमुत्तमम् ॥७४॥

अभिवन्द्याथ तैर्युक्तस्तत्रासौ दीक्षितोऽभवत् ।

वन्देत नाटकं कूटं तरेत्स भवसागरम् ॥७५॥

अन्वयार्थ - सः = वह राजा, समये = समय पर अर्थात् तरुण होने पर, भूपतां = राजापने को, प्राप्य = प्राप्त करके, मधवा इव = इन्द्र के समान, रराज = सुशोभित हुये, अथ = कुछ समय पश्चात्, एकदा = एक दिन, अस्य = इस, भूमृतः = राजा का, चारणेन = चारण ऋद्धिधारी, मुनिना = मुनिराज के, सह = साथ संगमः = साथ, अभवत् = हो गया च = और, असौ = उस, भूपतिः = राजा ने, एनं = इन मुनिराज को, अपृच्छत् = पूछा, गो मुने = हे मुनिराज!, त्रिलोक्यां = तीनों लोकों में, तत् = वह, किं = क्या, (अस्ति = है), यत् = जो, (त्वं = तुम), न = नहीं, जानासि = जानते हो, तस्मात् = इसलिये, दयानिधे! = हे दयानिधि!, अद्य = आज, मे = मुझे, निर्वाणमार्गं = निर्वाण के मार्ग को, दर्शय = दिखाओ, तदा = तब, सः = उन मुनिराज ने, साम्मेदिकीं = सम्मेदशिखर सम्बन्धी, यात्रां = यात्रा को, मोक्षोपायप्रधानां = मोक्ष के प्रधान उपाय स्वरूप, (च = और), सर्वसिद्धिदां = सारी सिद्धियों को देने वाली, भूपालं प्रति = राजा को, कथयामास = कहा, अथ = इसके बाद, मुनिवाक्यात् = मुनि के वचन से, यात्रोन्मुखः = यात्रा के लिये उन्मुख, नृपः = राजा ने, सङ्घं = चतुर्विधिसंघ को, समर्घ्य = पूजकर, शतलक्षप्रमाणितैः = सौ लाख से प्रमाणित, एककोट्येकरहितैः = एक करोड़ में एक कम, भव्यैः = भव्य जीवों के, सह = साथ, शैलं = सम्मेदशिखर पर्वत पर, गतः = गया, अथ = और, उत्तमं = उत्तम, नाटकं = नाटक, कूटं = कूट को, अभिवन्द्य = प्रणाम करके, तैः = उन भव्यों से, युक्तः = सहित, तत्र = उस पर्वत

पर, असौ = वह, दीक्षितः = दीक्षित, अगवत् = हो गया, (यः = जो), नाटकं = नाटक, कूट = कूट को, वन्देत = प्रणाम करे, सः = वह, भवसागरं = संसार सागर को, तरेत् = तैर ले।

श्लोकार्थ — वह समय अपने पर अर्थात् तरुण होने पर राजा पद को प्राप्त करके इन्द्र के समान सुशोभित हुआ। कुछ समय पश्चात् एक दिन उस राजा का समागम एक चारण ऋद्धिधारी मुनिराज से हो गया। तब उस राजा ने उन मुनिराज को पूछा— हे मुनिराज! तीनों लोकों में वह क्या है जो आप नहीं जानते हों। इसलिये हे दयानिधान! आप मुझे मोक्ष का मार्ग दिखायें। राजा के ऐसा पूछने पर मुनिराज ने राजा को कहा कि सम्मेदशिखर की यात्रा मुक्ति का प्रधान उपाय है और सारी सिद्धियों को देने वाली है। इस प्रकार मुनि वचनों से वह राजा सम्मेदशिखर की यात्रा के लिये उन्मुख अर्थात् तैयार हुआ संघ को पूजकर एक कम एक करोड़ भव्य जीवों के साथ सम्मेदशिखर पर्वत पर गया तथा उत्तम नाटक कूट की वन्दना करके उन भव्य जीवों के साथ वहीं पर दीक्षित हो गया। जो भी नाटक कूट को प्रणाम करे वह भवसागर से तिर जाये।

षण्णवत्युक्तकोट्युक्तप्रोषधव्रतपुण्यतः ।

एककूटनमस्कारफलमपीदृग्भवेदिह भुवि ।।७६।।

जिन एव फलं विन्ध्यात् सर्वकूटाभिवन्दिनः ।

तद्विषये कथं वक्तुं शक्यं मे चाल्पमेधसा ।।७७।।

अन्वयार्थ — इह = इस, भुवि = पृथ्वी पर, षण्णवत्युक्तकोट्युक्त— प्रोषधव्रतपुण्यतः = छियान्वे करोड़ प्रोषधव्रत के पुण्य से, (यादृक् = जितनी), (फलं = फल), भवेत् = हो, ईदृक् = इतना, (एव = ही), एककूटनमस्कारफलमपि = एक कूट को नमस्कार करने से होने वाला फल भी, भवेत् = होवे। सर्वकूटाभिवन्दिनः = सारी कूटों की वन्दना करने वाले के, फलं = फल को, जिन एव = जिनेन्द्र भगवान् ही, विन्ध्यात्

= जानें, तद्विषये = उस फल के विषय में, मे = मुझ, अल्पमेधसा = अल्प बुद्धि वाले द्वारा, कथं = कैसे, वक्तुं = कहना, शक्यम् = शक्य, (आस्ते = है)।

श्लोकार्थ — इस पृथ्वी पर छियानवे करोड़ प्रोषधोपवास का जितना फल हो इतना ही फल उस एक नाटक कूट को नमस्कार करने का भी होवे।

सारी कूटों की वन्दना करने वाले के फल को जिनेन्द्र भगवान् ही जाने मुझ अल्पबुद्धि के द्वारा उसे कह पाना कैसे शक्य अर्थात् संभव है।

अरनाथो केवलं प्राप्य यस्मात्सिद्धं

स्थानं प्राप तेजः समुद्रः।

भव्यैर्जीवैर्वन्दनीयं समन्तात् वन्दे

भक्त्या कूटकं नाटकाख्यम् ॥७८॥

अन्वयार्थ — केवलं = केवलज्ञान को, प्राप्य = प्राप्त करके, तेजः समुद्रः = तेज के सागर स्वरूप, अरनाथः = तीर्थङ्कर अरनाथ ने, यस्मात् = जिस कूट से, सिद्धं = सिद्ध, स्थानं = स्थान को, प्राप = प्राप्त किया, भव्यैः = भव्य, जीवैः = जीवों के द्वारा, वन्दनीयं = प्रणाम करने योग्य, नाटकाख्यं = नाटक नामक, कूटकं = कूट को, भक्त्या = भक्ति से, समन्तात् = हर दृष्टि से, वन्दे = प्रणाम करता हूँ।

श्लोकार्थ — केवलज्ञान प्राप्त करके तेजपुञ्ज तीर्थङ्कर अरनाथ ने जिस कूट से सिद्ध पद को प्राप्त किया तथा जो सदैव भव्य जीवों द्वारा वन्दनीय है उस कूट को मैं हर दृष्टि से भक्ति सहित प्रणाम करता हूँ।

[इति दीक्षितब्रह्मनेमिदत्त विरचिते सम्मोदशैलमाहात्म्ये

तीर्थङ्करारनाथवृत्तान्तपुरस्सरं नाटककूटवर्णनं नाम

सप्तदशमोऽध्यायः समाप्तः।]

[इस प्रकार दीक्षित ब्रह्मनेमिदत्त द्वारा रचित सम्मोद शैल माहात्म्य काव्य में तीर्थङ्कर अरनाथ का वृत्तान्त उजागर करता हुआ नाटककूट का वर्णन करने वाला सत्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।]

अथाष्टादशमोऽध्यायः

श्रीमल्लिनाथपादाब्जं भवतापनिवारणम् ।

सम्यग्ज्ञानप्रकाशाय वन्दे मुनिजनाश्रितम् ॥१॥

अन्वयार्थ - (अहं = मैं), सम्यग्ज्ञानप्रकाशाय = सम्यग्ज्ञान का प्रकाश पाने के लिये, भवतापनिवारणं = संसार के दुःख को दूर करने वाले, मुनिजनाश्रितम् = मुनि जनों के आश्रय स्वरूप, श्रीमल्लिनाथपादाब्जं = श्री मल्लिनाथ के चरणकमलों को, वन्दे = प्रणाम करता हूँ।

श्लोकार्थ - मैं सम्यग्ज्ञान का प्रकाश पाने के लिये संसार के दुःख को निटने दालें और मुनिजनों के आश्रय स्वरूप श्रीमल्लिनाथ के चरणकमलों को प्रणाम करता हूँ।

सम्बलाख्यो तस्य कूटो वन्दनाद्धर्मवर्धकः ।

यस्मात्स जगदीशानः संसिद्धिं परमां गतः ॥२॥

अन्वयार्थ - यस्मात् = जिस कूट से, जगदीशानः = जगत् के स्वामी तीर्थङ्कर मल्लिनाथ, परमां = उत्कृष्ट, संसिद्धिं = सिद्धगति को, गतः = गये, तस्य = उनका, सम्बलाख्यः = सम्बल नामक, कूटः = कूट, वन्दनात् = वन्दना करने से, धर्मवर्धकः = धर्मवर्धक, (अस्ति = है)।

श्लोकार्थ - जिस कूट से जगत् की ईश तीर्थङ्कर परम सिद्धगति को प्राप्त हुये उनका वह सम्बल नामक कूट वन्दना करने से धर्मवर्धक है।

तत्कथापूर्वकं तस्य कूटस्य सरलैः पदैः ।

वक्ष्येऽहं किल माहात्म्यं श्रोतव्यं तत् साधुभिः ॥३॥

अन्वयार्थ - तत्कथापूर्वकं = उन मल्लिनाथ की कथा पूर्व में कह कर, तस्य = उस, कूटस्य = कूट के, माहात्म्यं = माहात्म्य को, अहं = मैं कवि, सरलैः = सरल, पदैः = पदों से, वक्ष्ये =

कहता हूँ, किल = निश्चय ही, तत् = वह, साधुभिः = सज्जनों द्वारा, श्रोतव्यं = सुनना चाहिये।

श्लोकार्थ - उन मल्लिनाथ की कथा पूर्व में कहकर मैं उस कूट के माहात्म्य को सरल पदों से कहता हूँ वह सज्जनों द्वारा सुना जाना चाहिये।

जम्बूनाम्नि द्वीपराजे विदेहे पूर्वके शुभे ।

विराजते स्वभावाच्च विषयः कच्छकावती ॥४॥

तत्राशोकपुरं दिव्यं भाति मुक्तिपुरोपमम् ।

तत्र वैश्रवणे राजा अभूद्वैश्रवणोपमः ॥५॥

अन्वयार्थ - जम्बूनाम्नि = जम्बू नामक, द्वीपराजे = द्वीपराज में, शुभे = सुन्दर, पूर्वके = पूर्व, विदेहे = विदेह क्षेत्र में, स्वभावात् = स्वभाव से, कच्छकावती = कच्छकावती नामक, विषयः = देश, विराजते = सुशोभित होता है, च = और, तत्र = उस देश में स्वभावान् = देश में, अशोकपुरं = अशोकपुर नामक, मुक्तिपुरोपमं = मुक्तिपुर के समान, दिव्यं = दिव्य, (नगरं = एक नगर), भाति = सुशोभित है, तत्र = उस नगर में, वैश्रवणोपमः = वैश्रवण अर्थात् कुबेर के समान, वैश्रवण = वैश्रवण नामक, राजा = राजा, अभूत् = हुआ।

श्लोकार्थ - द्वीपराज जम्बूद्वीप में सुन्दरपूर्व विदेह क्षेत्र का कच्छकावती नामक देश सुशोभित है। उस देश में स्वभाव से अशोकपुर नामक दिव्य और मुक्तिपुर के समान एक नगर भी सुशोभित है। उस नगर में वैश्रवण अर्थात् कुबेर के समान ही वैश्रवण राजा हुआ।

अनेकगुणसम्पन्नः शीलसिन्धुः प्रतापवान् ।

प्रभुनामजपासक्तो राज्ये शक्र इव लसन् ॥६॥

वनक्रीडानिमित्तं स एकदा वनमध्यगात् ।

ददर्शैकवटतरुं नूनं महान्तं तत्र भूपतिः ॥७॥

अन्वयार्थ - राज्ये = राज्य में, शक्र इव = इन्द्र के समान, लसन् = सुशोभित होता हुआ, अनेकगुणसम्पन्नः = अनेक गुणों का

स्वामी, शीलसिंधुः = अतिशय चारित्रवान्, प्रतापवान् = प्रतापी, च = और, प्रभुनामजपासक्तः = प्रभु के नाम का जप करने में आसक्त, सः = वह राजा, एकदा = एक दिन, वनक्रीडानिमित्तं = वनक्रीडा के लिये, वनं = वन में, अध्यगात् = गया, नूनं = निश्चित ही, महान्तं = विशाल, एकवटतरुं = एक वट वृक्ष को, ददर्श = देखा।

श्लोकार्थ - राज्य में इन्द्र के समान सुशोभित होता हुआ, अनेकगुणों का स्वामी, अतिशय शीलवान्, प्रतापी और प्रभु के नाम का जप करने में आसक्त वह राजा एक दिन वनक्रीडा के लिये वन में गया वहाँ उसने एक अत्यधिक विशाल वट वृक्ष को देखा।

महाघनहिमच्छायायक्षवृन्दनिवेशितः।

वनमध्ये एव भात्यसौ महासाधुनिवेशितः ॥८॥

अन्वयार्थ - असौ = वह वृक्ष, उन्नतः = ऊँचा, महाघनहिमच्छायायक्षवृन्द-निवेशितः = अत्यंत सघन एवं शीतल छाया वाले तथा यक्षों के समूहों से निवेशित अर्थात् उनके निवास स्वरूप, वनमध्ये = वन के बीच में, महासाधुः इव = महान् साधु के समान, भाति स्म = सुशोभित हुआ।

श्लोकार्थ - वह वट वृक्ष बहुत ऊँचा अत्यंत सघन एवं शीतल छाया वाले तथा यक्षों के समूह से युक्त वन के बीच में महान् साधु के समान सुशोभित हुआ।

तं दृष्ट्वा वटवृक्षं स प्रशंस्य बहुधाग्रतः।

चचाल सबलो यावत् प्रसन्नवदनाम्बुजः ॥९॥

तावत्तस्योपर्यकस्मात् बज्रपातो बभूव हि।

भस्मतां तेन सम्प्राप्तो वटोऽयं पक्षिसंयुतः ॥१०॥

अन्वयार्थ - तं = उस, वटवृक्षं = वटवृक्ष को, दृष्ट्वा = देखकर, अग्रतः = उसके आगे, बहुधा = अनेक प्रकार से, प्रशंस्य = प्रशंसा करके, सबलः = सेनासहित, प्रसन्नवदनाम्बुजः = कमल के समान प्रसन्न मुख वाला, सः = वह वैश्रवण राजा, यावत् = ज्योंही, चचाल = चला गया, तावत् = त्योंही, तस्य = उस

वट वृक्ष के, उपरि = ऊपर, अकस्मात् = अचानक, हि = ही, वज्रपातः = वज्र अर्थात् बिजली का गिरना, बभूव = हुआ, तेन = उस वज्रपात से, पक्षिसंयुतः = पक्षियों से संयुक्त, अयं = वह, वटः = वट वृक्ष, भस्मतां = राख के ढेर को, सम्प्राप्तः = प्राप्त हो गया।

श्लोकार्थ- इस वट वृक्ष को देखकर एवं उसके आगे अनेक प्रकार से उसकी प्रशंसा करके प्रसन्नमुख कमल वह राजा सेना सहित ज्यों ही वहाँ से चला गया त्योंही उस वृक्ष के ऊपर अचानक ही वज्रपात हो गया। जिससे पक्षियों से युक्त वह वट वृक्ष भस्मीभूत हो गया।

कृत्वा तस्यातिशोकं स राजा करुणया हृदि ।

तदैव प्राप्तवैराग्या राज्यं तत्याज तन्महत् ॥११॥

अन्वयार्थ - सः = वह, राजा = राजा, करुणया = करुणा से, तस्य = उस वृक्ष के नाश का, अतिशोकं = अत्यधिक शोक, हृदि = मन में, कृत्वा = करके, तदैव = उस ही समय, प्राप्तवैराग्यः = वैराग्य को प्राप्त करने वाले उस राजा ने, तन्महत् = उस विशाल, राज्यं = राज्य को, तत्याज = त्याग दिया।

श्लोकार्थ - वह राजा करुणा से उस वृक्ष के नाश का अत्यधिक शोक मन में करके उस ही समय वैराग्य को प्राप्त करने वाले उस राजा ने उस विशाल राज्य को त्याग दिया।

स्वपुत्राय तदा राज्यं दत्त्वा वनमुपागतः ।

नमिस्वामिनस्समीपे स बहुभूपसमन्वितः ॥१२॥

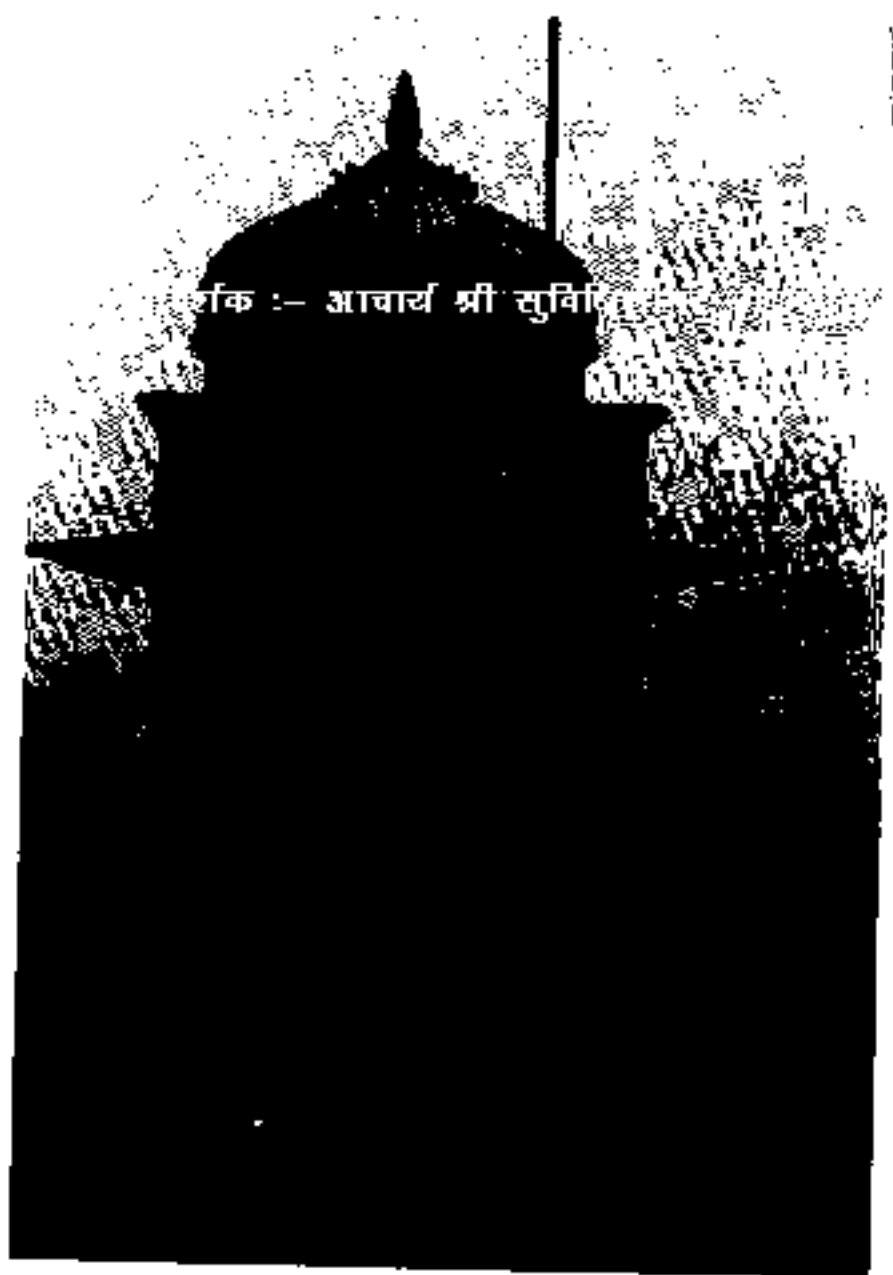
समुत्सह्य स जग्राह दीक्षां कल्मषनाशिनीम् ।

सिद्धालयस्य सोपानां तां प्राध्यातीव हर्षितः ॥१३॥

क्रमादेकादशाङ्गानि पूर्याण्यपि चतुर्दश ।

धृत्वा सम्भावयामास कारणानि च षोडश ॥१४॥

अन्वयार्थ - तदा = तब, स्वपुत्राय = अपने बेटे के लिये, राज्यं = राज्य, दत्त्वा = देकर, सः = वह राजा, बहुभूपसमन्वितः = अनेक राजाओं से युक्त होकर, वनं = वन में, उपागतः = पहुँच गया,



श्री मल्लिनाथ स्वामी-सम्बल कूट

समुत्सह्य = अच्छी तरह से उत्साहित होकर, सः = उसने, नमिरस्वामिनः = मुनिराज नमिरस्वामी के, समीपे = पास में, कल्मषनाशिनी = पाप को नष्ट करने वाली, दीक्षा = मुनिदीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया, सिद्धालयस्य = सिद्धालय की, सोपानां = सीढ़ी स्वरूप, तां = उस मुनिदीक्षा को, प्राप्य = प्राप्त करके, अतीव = अत्यधिक, हर्षितः = प्रसन्न, (सः = उन मुनिराज ने) क्रमात् = क्रमशः, एकादशाङ्गानि = ग्यारह अङ्गों को, च = और, चतुर्दशपूर्वांशे = चौदह पूर्वों को, अपि = भी, धृत्वा = धारण करके, षोडश = सोलह, कारणानि = कारणों को, सम्भावयामास = सम्यक् प्रकार से भाया।

श्लोकार्थ - तब अपने पुत्र के लिये राज्य देकर अनेक राजाओं से युक्त हुआ वह राजा वन में आ गया वहाँ अच्छी तरह से उत्साहित होकर उसने मुनिराज नमि स्वामी के पास में पापों को नष्ट करने वाली मुनिदीक्षा को ग्रहण कर लिया तथा सिद्धालय की सीढ़ी के रूप में उस मुनिदीक्षा को प्राप्त करके अत्यधिक प्रसन्न उन मुनिराज ने क्रम से ग्यारह अङ्गों और चौदह पूर्वों को धारण करके सोलह कारण भावनाओं का चिन्तन किया।

तीर्थकृन्नामसम्बद्धाऽयुषोऽन्ते सन्यसत्प्रभुः ।

तनुं त्यक्त्वा गतः सर्वार्थसिद्धिं स्वतपोबलात् ॥१५॥

अन्वयार्थ - तीर्थकृन्नाम = तीर्थङ्कर नाम कर्म को, सम्बद्धा = बांधकर, आयुषः = आयु के, अन्ते = अन्त में, सन्यसत्प्रभुः = सन्यासमरण विधि को करते हुये मुनिराज, तनुं = शरीर को, त्यक्त्वा = छोड़कर, स्वतपोबलात् = अपने तप के बल से, सर्वार्थसिद्धिं = सर्वार्थसिद्धि को, गतः = चले गये।

श्लोकार्थ - तीर्थङ्कर नाम कर्म की प्रकृति को बांधकर आयु के अन्त में संन्यास मरण की प्रतिज्ञा वाले मुनिराज ने शरीर को छोड़कर अपने तपश्चरण के बल से सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त कर लिया।

एकहस्तोन्नतिस्तत्र शुक्ललेश्याधरो विभुः ।

अहमिन्द्रत्वमापन्नः सो हि रराज वरवीर्यतः ॥१६॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस सर्वार्थसिद्धि में, एकहस्तोन्नतिः = एक हाथ ऊँचाई प्रमाण वाले, शुक्ललेश्याधर = शुक्ललेश्या को धारण करने वाले, सः = वह, विभुः = प्रभु, अहमिन्द्रत्वं = अहमिन्द्रपने को, आपन्नः = प्राप्त हुये, वरवीर्यतः = शुभशक्ति से, हि = ही, रराज = शोभित हुये ।

श्लोकार्थ - उस सर्वार्थसिद्धि में एक हाथ ऊँचाई वाले शुक्ललेश्या के धारी वह प्रभु अहमिन्द्र पद को प्राप्त हुये शुभशक्ति से सुशोभित हुये ।

त्रयस्त्रिंशत्समुद्रोक्तमायुः सम्प्राप्य तत्र सः ।

यथोक्ताशननिश्वासबलवीर्यसमन्वितः ॥१७॥

प्रकुर्वन् सप्ततत्त्वानां चर्चा तत्र स्थितेषु वै ।

अनादिभूतसिद्धानां पदान्युच्चैर्व्यभावयन् ॥१८॥

एवं व्यतीत्यायुष्यं षण्मासावधिजीवनः ।

भोगादप्यतुलान्नूनं विरक्तस्तत्र संस्थितः ॥१९॥

अन्वयार्थ - तत्र = वहाँ सर्वार्थसिद्धि में, त्रयस्त्रिंशत् = तैतीस, समुद्रोक्तं = सागर प्रमाण कही गयी, आयुः = आयु को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, यथोक्ताशननिश्वासबलवीर्यसमन्वितः = जैसा कथित है तदनुसार भोजन, श्वासोच्छ्वास और बल वीर्य आदि से युक्त होता हुआ, सः = उस देव ने, सप्ततत्त्वानां = सात सत्त्वों की, चर्चा = चर्चा को, प्रकुर्वन् = करते हुये, तत्र = वहाँ, स्थितेषु = स्थित रहने वाले समय में, वै = यथार्थरूप से, अनादिभूतसिद्धानां = अनादि से हुये सभी सिद्धों के अथवा अनादि से सिद्ध स्वरूप है स्वभाव जिनका ऐसे स्वयं सिद्ध परमात्माओं के, पदं = स्वरूप आदि पदों को, उच्चैः = उत्कर्ष से, व्यभावयन् = विशेषता सहित विचारा अर्थात् चिन्तन किया, एवं = इस प्रकार, आयुष्यं = अपनी आयु को, व्यतीत्य = बिताकर, षण्मासावधिजीवनः = छह माह

को अबाधे ज्यन्त जीवन वाला वह देव, तत्र = वहाँ, संस्थितः = रहता हुआ, अतुलात् = अतुलनीय, भोगात् = भोग से, अपि = भी, नूनं = निश्चय ही, विरक्तः = विरक्त, (अभूत् = हो गया)।

श्लोकार्थ - वहाँ सर्वार्थसिद्धि में तेतीस सागर प्रमाण कही गयी आयु को प्राप्त करके यथायोग्य भोजन, श्वासोच्छ्वास बल वीर्य आदि से युक्त हुये उस देव ने सप्ततत्त्वों की चर्चा करते हुये वहाँ स्थित अपने आयुष्काल में अनादि से हुये सिद्धों के अथवा अनादिसिद्ध स्वरूप वाले स्वयं सिद्ध अथवा अनादिसिद्ध स्वरूप वाले स्वयंसिद्ध परमात्माओं के पदों का विशेषता सहित व उत्कर्ष सहित विचार किया।

इस प्रकार अपनी आयु को बिताकर छह माह शेष जीवन वाला वह देव सर्वार्थसिद्धि में स्थित हुआ अतुलनीय भोगों से भी निश्चित ही विरक्त हो गया।

अवतीर्य ततो भूमौ यथायं तप आचरन् ।

ततो मुक्तिं तथा तस्य वर्ण्यते चरितं मया ॥२०॥

अन्वयार्थ - ततः = सर्वार्थसिद्धि से, भूमौ = भूमि पर, अवतीर्य = उतरकर अर्थात् पृथ्वी पर जन्म लेकर, अयं = इसने, यथा = जिस प्रकार से, तपः = तपश्चरण का, आचरन् = आचरण करते हुये, ततः = वहीं से, मुक्तिं = मुक्ति को, (प्राप्तवान् = प्राप्त किया), तस्य = उसके, चरितं = चरित्र को, मया = मेरे द्वारा, तथा = उसी प्रकार से, वर्ण्यते = कहा जाता है।

श्लोकार्थ - उस सर्वार्थसिद्धि से पृथ्वी पर अवतरित होकर अर्थात् जन्म लेकर इस देव ने जिस प्रकार से तप का आचरण करते हुये मुक्ति को प्राप्त कर लिया उसके चरित्र को उसी प्रकार से मेरे द्वारा कहा जाता है।

जम्बूद्वीपे भारतेऽस्मिन् क्षेत्रोऽस्ति मिथिलापुरी ।

इक्ष्वाकुवंशे तत्रास्ति कुंभसेनो महानृपः ॥२१॥

महाविवेकसम्पन्नो महाभाग्यो महामतिः ।
 महासुकृतराशिश्च महाभव्यो महोज्ज्वलः ॥२२॥
 प्रभावती महाराज्ञी तस्य भूमिपतेरभूत् ।
 कामस्त्री कौमुदी रूपे प्रभायामजयच्च सा ॥२३॥

अन्वयार्थ - जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, अस्मिन् = इस, भारते = भारत, क्षेत्रे = क्षेत्र में, मिथिलापुरी = मिथिलापुरी, अस्ति = है, तत्र = उस नगर में, इक्ष्वाकुवंशे = इक्ष्वाकु वंश में, महाविवेकसम्पन्नः = महाविवेकी, महाभाग्यवान् = अत्यधिक भाग्यवान्, महामतिः = महान् बुद्धिशाली, महासुकृतराशिः = महापुण्यशाली, महोज्ज्वलः = अत्यधिक तेजस्वी, महाभव्यः = भव्योत्तम, महानृपः = एक महान् राजा, कुम्भसेनः = कुम्भसेन, अस्ति = था, तस्य = उस, भूपतेः = राजा की, महाराज्ञी = पट्टरानी, प्रभावती = प्रभावती, अभूत् = थी, सा = वह रानी, रूपे = रूप सौन्दर्य में, च = और, प्रभायां = कान्ति में, कामस्त्री = कामदेव की पत्नी रति को, (च = और), कौमुदी = चन्द्रकान्ति को, अजयत् = जीतती थी ।

लोकार्थ - जम्बूद्वीप में, इस भरत क्षेत्र में मिथिलापुरी है उसमें इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न महाविवेकी अत्यधिक तेजस्वी, बुद्धिशाली, अत्यधिक पुण्यात्मा अत्यधिक तेजस्वी भव्यों में अग्रणी एक महान् राजा कुम्भसेन था । उस राजा की पट्टरानी प्रभावती थी जो सौन्दर्य और कान्ति में कामदेव की स्त्री रति और चन्द्र की कान्ति को जीतती थी ।

तयोर्गृहे प्रभोज्ञात्वावतारं धनदादयः ।

ववर्षुरतिमोदेन रत्नानि विविधानि च ॥२४॥

अन्वयार्थ - च = और, तयोः = उन राजा रानी के, गृहे = घर में, प्रभोः = प्रभु के, अवतारं = जन्म को, ज्ञात्वा = जानकर, धनदादयः = कुबेर आदि देवों ने, अतिमोदेन = अत्यधिक हर्ष से, विविधानि = अनेक जाति के, रत्नानि = रत्नों को, ववर्षुः = बरसाया ।

श्लोकार्थ- तथा उन्न राजा-रानी के घर में प्रभु के जन्म को जानकर धनद अर्थात् कुबेर आदि देवताओं ने अनेकजाति के रत्नों को बरसाया ।

अथ चैत्रे शुभे मासे शुक्लायां प्रतिपत्तिथौ ।

सुप्ता प्रभावती प्रातः स्वप्नानैक्षत षोडशान् ॥२५॥

अन्वयार्थ - अथ = इसके बाद, शुभे = शुभ, चैत्रे = चैत्र, मासे = मास में, शुक्लायां = शुक्ला, प्रतिपत्तिथौ = प्रतिपदा तिथि को, सुप्ता = सोयी हुयी, प्रभावती = प्रभावती रानी ने, प्रातः = प्रातःवेला में, षोडशान् = सोलह, स्वप्नान् = स्वप्नों को, ऐक्षत = देखा ।

श्लोकार्थ - तत्पश्चात् चैत्र शुक्ला प्रतिपदा के शुभ दिन सोयी हुई रानी प्रभावती ने प्रातः काल में सोलह स्वप्नों को देखा ।

मुखे मदादुन्मत्तं प्रविशन्तं निरीक्ष्य सा ।

प्रबुद्धा भूपनिकटं वै गता स्वप्नफलानि च ॥२६॥

तन्मुखादवधार्यार्थं मुमुदे पङ्कजेक्षणा ।

तद्गर्भगोऽहमिन्द्रोऽभूदिन्द्रादिसुखवन्दितः ॥२७॥

अन्वयार्थ - मुखे = मुख में, प्रविशन्तं = प्रवेश करते हुये, मदात् = मद से, उन्मत्तं = उन्मत्त हाथी को, निरीक्ष्य = देखकर, प्रबुद्धा = जागी हुयी, सा = वह रानी, वै = निःसन्देह रूप से, भूपनिकटं = राजा के पास में, गता = गयी, च = और, स्वप्नफलानि = स्वप्न के फल को, तन्मुखात् = राजा के मुख से, (श्रुत्वा = सुनकर), अर्थ = अर्थ को, अवधार्य = धारण करके, (सा = वह), पङ्कजेक्षणा = कमलनयनी रानी, मुमुदे = प्रसन्न हुई, इन्द्रादिसुखवन्दितः = इन्द्र है प्रमुख जिनका ऐसे देवताओं से वन्दित, अहमिन्द्रः = अहमिन्द्र, तद्गर्भगः = उसके गर्भ में रहने वाला, अभूत् = हुआ ।

श्लोकार्थ - मद से उन्मत्त हाथी को अपने मुख में प्रवेश करते देखकर जागी हुयी वही रानी निस्सन्देहतया राजा के पास गयी । राजा के मुख से स्वप्न के फल को सुनकर और उसके अर्थ को

धारण करके वह कमलनयनी रानी प्रसन्न हुई इन्द्र है प्रमुख जिनका ऐसे देवताओं से पूजित वह अहमिन्द्र रानी के गर्भ में रहने वाला हो गया।

मार्गेथ शुक्लैकादश्यामश्विन्यां योग उत्तमे ।

प्रादुरासीत् प्रभावत्यां प्राच्यां रविरिवेश्वरः ॥२८॥

अन्वयार्थ - अथ = इसके बाद, मार्गे = मार्गशीर्ष महिने में, शुक्लैकादश्यां = शुक्ला एकादशी को, अश्विन्यां = अश्विनी नक्षत्र में, उत्तमे = उत्तम, योगे = योग होने पर, प्राच्यां = पूर्व दिशा में, रविः इव = सूर्य के समान, ईश्वरः = तीर्थङ्कर, प्रभावत्यां = प्रभावती की कोख में से, प्रादुरासीत् = उत्पन्न हुये।

श्लोकार्थ - इसके बाद मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को अश्विनी नक्षत्र में शुभ योग बनने पर पूर्व दिशा में सूर्य के समान प्रभावती की कोख में से प्रभु का जन्म हुआ।

तदैव देवैः सूत्रामा तत्रागत्य जगत्पतिम् ।

समादाय गतो मेरुं प्रीतिविफारितेक्षणः ॥२९॥

अन्वयार्थ - तदैव = उस ही समय, तत्र = वहाँ, आगत्य = आकर, च = और, जगत्पतिं = जगत् के स्वामी तीर्थङ्कर को, समादाय = लेकर, प्रीतिविस्फारितेक्षणः = प्रसन्नता से विस्तृत आँखों वाला, सूत्रामा = इन्द्र, देवैः = देवों के साथ, मेरुं = मेरु पर्वत पर, गतः = चला गया।

श्लोकार्थ - उसी समय वहाँ आकर और जगत् के स्वामी शिशु तीर्थङ्कर को लेकर प्रसन्नता से खिली व खुली आँखों वाला इन्द्र देवताओं के साथ मेरु पर्वत पर चला गया।

तत्र संस्थाप्य तं देवं पाण्डुकायां महोदयम् ।

क्षीराब्धिवारिसम्पूर्णेः जाम्बूनदकृतैः घटैः ॥३०॥

समस्नपयदेनं सः ततो गन्धोदकैर्वरैः ।

अभिषिच्य जगत्कान्तं तुष्टाव परया मुदा ॥३१॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस सुमेरु पर्वत पर, पाण्डुकायां = पाण्डुकशिला पर,

महोदयं = महान् पुण्योदय को प्राप्त, तं = उन, देवं = प्रभु
 अर्थात् तीर्थङ्कर शिशु को, संस्थाप्य = स्थापित करके,
 क्षीराब्धिवारिसम्पूर्णः = क्षीरसागर के जल से भरे, जाम्बूनदकृतैः
 = सोने के बने हुये, घटैः = घड़ों से, सः = उस इन्द्र ने,
 समस्नपयत् = अच्छी तरह स्नान कराया, ततः = उसके बाद,
 वरैः = श्रेष्ठ, गन्धोदकैः = सुगंधित जल से, एनं = इन,
 जगत्कान्तं = जगत् के स्वामी का, अभिषिच्य = अभिषेक
 करके, परया = उत्कृष्ट, मुदया = हर्ष के साथ, (तं = उन
 प्रभु की), तुष्टाव = स्तुति की।

श्लोकार्थ - सुमेरु पर्वत पर ले जाकर उन्हें पाण्डुकशिला पर विराजमान
 करके महान् पुण्योदय को प्राप्त प्रभु का इन्द्र ने स्नान कराया
 फिर श्रेष्ठ सुगंधित जल से उन जगत् के स्वामी प्रभु का
 अभिषेक करके अत्यंत भक्तिपूर्ण हर्षोत्कर्ष से उनकी स्तुति
 की।

अथ संभूष्य देवेशं दिव्यैराभरणैर्हरिः ।
 आगत्य मिथिलापुर्या क्षितीशभवने प्रभुम् ॥३२॥
 सिंहासने समारोप्य समर्च्य विधिवद्वितम् ।
 अकरोत्ताण्डवीं लीलां प्रभोरग्रेऽद्भुतां तथा ॥३३॥
 मल्लिनाम ततः कृत्वा मात्रे चैनं समर्प्य हि ।
 स्वयं जगाम देवेन्द्रः स्वर्गं सुरगणैः सह ॥३४॥

अन्वयार्थ - अथ = उसके बाद, हरिः = इन्द्र ने, दिव्यैः = दिव्य, आभरणैः
 = आभूषणों से, देवेशं = देवताओं के स्वामी तीर्थङ्कर शिशु
 को, संभूष्य = भूषित करके, मिथिलापुर्या = मिथिलापुरी में,
 आगत्य = आकर, क्षितीशभवने = राजा के भवन में, सिंहासने
 = सिंहासन पर, प्रभुं = प्रभु को, समारोप्य = आरोपित करके
 या विराजमान करके, विधिवत् = विधिपूर्वक, हितं =
 हितकारक प्रभु को, समर्च्य = पूजकर, प्रभोः = अग्रे = आगे,
 अद्भुतां = आश्चर्यकारक, ताण्डवीं = ताण्डव नृत्य सम्बन्धी,
 लीलां = लीला को, अकरोत् = किया, तथा च = और, मल्लिः
 = मल्लिनाथ, नाम = नाम, कृत्वा = करके, मात्रे = माता

के लिये, एनं = इन प्रभु को, समर्प्य = देकर, ततः = वहाँ से, स्वयं = स्वयं, हि = ही, सुरगणैः = देव समूहों के, सह = साथ, देवेन्द्रः = देवेन्द्र, स्वर्ग = स्वर्ग को, जगाम = चला गया।

श्लोकार्थ - इसके बाद अर्थात् प्रभु का अभिषेक हो जाने पर इन्द्र ने दिव्य आभूषणों से उन देवेश अर्थात् तीर्थङ्कर शिशु को विभूषित करके मिथिलापुरी में आकर, राजा के भवन में सिंहासन पर प्रभु को विराजमान करके, विधिवत् हित स्वरूप उनकी पूजा करके एवं प्रभु के आगे ताण्डव नृत्य सम्बन्धी लीला की फिर उनका नाम मल्लिनाथ करके उन्हें माता को देकर स्वयं ही वहाँ से देवताओं के साथ वह देवेन्द्र स्वर्ग चला गया।

सहस्रकोटिवर्षेषु गतेष्वरमहेश्वरात् ।

तदन्तरायुरभवत् मल्लिनाथो महाप्रभुः ॥३५॥

अन्वयार्थ - अरमहेश्वरात् = तीर्थङ्कर अरनाथ के पश्चात्, सहस्रकोटिवर्षेषु = एक हजार करोड़ वर्ष, गतेषु = चले जाने पर, तदन्तरायुः = उसके ही भीतर है आयु जिनकी ऐसे, महाप्रभुः = महान् प्रभु, मल्लिनाथः = मल्लिनाथ, अभवत् = हुये।

श्लोकार्थ - तीर्थङ्कर अरनाथ के पश्चात् एक हजार करोड़ वर्ष बीत जाने पर उसके ही भीतर है आयु जिनकी ऐसे महाप्रभु तीर्थङ्कर मल्लिनाथ हुये थे।

पञ्चपञ्चाशत्सहस्रप्रमितायुः स ईश्वरः ।

पञ्चविंशतिकोदण्डकायोऽभूज्जगतां पतिः ॥३६॥

अन्वयार्थ - जगतां = जगत् के, पतिः = स्वामी, सः = वह, ईश्वरः = तीर्थङ्कर, पञ्चपञ्चाशत्सहस्रप्रमितायुः = पचपन हजार वर्ष प्रमाण आयु वाले, (च = और), पञ्चविंशतिकोदण्डकायः = पच्चीसधनुष ऊँची काया वाले, अभूत् = हुये।

श्लोकार्थ - तीनों जगत् के स्वामी वह तीर्थङ्कर पचपन हजार वर्ष प्रमाण आयु वाले तथा पच्चीस धनुष प्रमाण ऊँची काया वाले हुये थे।

प्रमोद्य पितरौ बाल्ये बालकेलिभिरुत्तमैः ।

यौवनावेशसमये स्मरकोटिं व्रजत्यतः ॥३७॥

रूपलावण्यजलधिः ज्ञानत्रयसमुज्ज्वलः ।

पैतृकं राज्यमापेदे प्रजाभ्यः सुखमर्पयत् ॥३८॥

अन्वयार्थ - बाल्ये = बाल्यकाल में, उत्तमैः = उत्तम, बालकेलिभिः = बालक्रीड़ाओं से, पितरौ = माता-पिता को, प्रमोद्य = प्रसन्न करके, यौवनावेशसमये = यौवन से आवेशित होने के या यौवन का प्रवेश होने के काल में, स्मरकोटिं = कामदेव की कोटि को, व्रजति = प्राप्त कर लिया, अतः = इसके बाद, रूपलावण्यजलाधिः = रूप सौन्दर्य व लावण्य के सागर, ज्ञानत्रयसमुज्ज्वलः = तीन ज्ञान से सुशोभित, (सः = उन प्रभु ने), पैतृकं = पिता के, राज्यं = राज्य को, आपेदे = प्राप्त कर लिया, (च = और), प्रजाभ्यः = प्रजा के लिये, सुखं = सुख, अर्पयत् = अर्पित कर दिया ।

श्लोकार्थ - बाल्यकाल में उत्तम बालक्रीड़ाओं से उन्होंने माता पिता को प्रसन्न करके यौवन में प्रवेश करते समय कामदेव की कोटि को प्राप्त कर लिया । इसके बाद रूपलावण्य के सागर और तीन ज्ञान से सुशोभित उन प्रभु ने पैतृक राज्य प्राप्त किया और प्रजा के लिये सुख प्रदान किया ।

अविवाहित एवासौ कदाचित्सौधगः प्रभुः ।

मोक्षबीजं तपश्चित्ते चिन्तयत्कर्मदाहकम् ॥३९॥

अन्वयार्थ - कदाचित् = किसी समय, अविवाहितः = अविवाहित, एव = ही, असौ = उन, सौधगः = महल में बैठे हुये, प्रभुः = राजा मल्लिनाथ ने, चित्ते = मन में, कर्मदाहकं = कर्म को जलाने वाले, (च = और), मोक्षबीजं = मोक्ष के बीज स्वरूप, तपः = तप का, अचिन्त्यत् = विचार किया ।

श्लोकार्थ - किसी समय अपने महल में बैठे अविवाहित ही उन प्रभु ने अपने मन में कर्मों को जलाने वाले व मोक्ष के बीज स्वरूप तप का विस्तार किया ।

ब्रह्मर्षयस्तदा प्राप्ताः भक्त्या ते तं प्रतुष्टुवः ।

देवा अपि सुरेन्द्राद्याः प्रणेमुस्तं समागताः ॥४०॥

अन्ययार्थ - तदा = तभी, ब्रह्मर्षयः = ब्रह्मर्षि जाति के लौकान्तिक देव, प्राप्ताः = उपस्थित हुये, ते = उन्होंने, भक्त्या = भक्ति से, तं = उनकी, प्रतुष्टुवः = स्तुति की, सुरेन्द्राद्याः = सुरेन्द्र आदि, देवाः = देव, समागताः = आ गये, (ते = उन्होंने), अपि = भी, तं = उनको, प्रणेमुः = प्रणाम किया ।

श्लोकार्थ - तभी ब्रह्मर्षि जाति के लौकान्तिक देव वहाँ उपस्थित हो गये और उन्होंने भक्ति से प्रभु की स्तुति की तथा सुरेन्द्र आदि देव भी आ गये उन्होंने भी प्रभु को प्रणाम किया ।

जयन्ताय ततो राज्यं दत्त्वाऽसौ जगतां पतिः ।

कुमारकाल एवातिहर्षेण श्वेतकानने ॥४१॥

वैजयन्त्यभिधां शिविकां समारूह्य परमाद्भुताम् ।

मार्गशुक्लैकादश्यां वै गत्वा दीक्षितोऽभवत् ॥४२॥

अन्ययार्थ - ततः = उसके बाद, जयन्ताय = पुत्र जयन्त के लिये, राज्यं = राज्य को, दत्त्वा = देकर, असौ = वह, जगतां = तीनों लोकों के, पतिः = स्वामी, कुमारकाले = कुमारकाल में, एव = ही, अतिहर्षेण = अत्यधिक हर्ष से, परमाद्भुतां = परम आश्चर्यकारी, वैजयन्त्यभिधां = वैजयन्ती नामक, शिविकां = पालकी पर, समारूह्य = चढ़कर, श्वेतकानने = श्वेतकानन में, गत्वा = जाकर, वै = सन्देहरहित होकर, मार्गशुक्लैकादश्यां = मार्गशीर्ष माह के शुक्लपक्ष की एकादशी के दिन, दीक्षितः = दीक्षित, अभवत् = हो गये ।

श्लोकार्थ - उसके बाद जयन्त को राज्य देकर वह जगत् के स्वामी प्रभु कुमारकाल में ही अत्यंत हर्ष से परम आश्चर्यकारी वैजयन्ती नामक पालकी पर चढ़कर श्वेतकानन में जाकर मार्गशीर्ष माह के शुक्ल पक्ष में एकादशी को दीक्षित हो गये ।

तदनु क्षितिपा वै भव्याः सहस्रप्रमितास्तदा ।

मुमुक्षवो महोत्साहाच्च जग्रहुर्जनदीक्षिकाम् ॥४३॥

अन्वयार्थ - च = और, तदा = तब, सहस्रप्रमिताः = एक हजार प्रमाण, मुमुक्षुः = मुमुक्षु, भव्यः -- भव्य क्षितिपाः = राजाओं ने, तदनु = उनके पीछे, महोत्साहात् = अत्यधिक उत्साह से, जैनदीक्षिकां = जैन दीक्षा को, जग्रहुः = ग्रहण कर लिया।

श्लोकार्थ - तभी एक हजार मुमुक्षु भव्य राजाओं ने अत्यधिक उत्साह से प्रभु के तत्काल बाद ही जैनेश्वरी दीक्षा को ग्रहण कर लिया।

चतुर्थबोधसम्पन्नः तदैव परमं प्रभुः।

द्वितीयदिवसे शुद्धभिक्षार्थं मिथिलां गतः ॥४४॥

अन्वयार्थ - तदैव = तभी, चतुर्थबोधसम्पन्नः = चौथे ज्ञान से सम्पन्न, परमं = परम, प्रभुः = प्रभु, द्वितीयदिवसे = दूसरे दिन, शुद्धभिक्षार्थं = शुद्ध भिक्षा अर्थात् आहार के लिये, मिथिलां = मिथिला नगरी को, गतः = गये।

श्लोकार्थ - तभी अर्थात् दीक्षा लेते ही चौथे मनःपर्ययज्ञान से सम्पन्न परम प्रभु दूसरे दिन शुद्ध आहार के लिये मिथिला नगर को गये।

धन्य धन्य स्तुतिस्तत्र समन्तान्नगरे भवत्।

सादरं नन्दिषेणस्तं सम्पूज्याहारमुत्तमम् ॥४५॥

तस्मै भगवते दत्त्वाऽपश्यदाश्चर्यपञ्चकम् ।

कृतकृत्यमिवात्मानं वने मुनिश्चागमत् ॥४६॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस, नगरे = नगर में, समन्तात् = चारों तरफ से, धन्य = धन्य प्रभो!, धन्य = धन्य प्रभो!, (इति = इस प्रकार), स्तुतिः = स्तुति, अभवत् = हुई, नन्दिषेणः = राजा नन्दिषेण ने, तं = उनको, सम्पूज्य = पूजकर, च = और, तस्मै = उन, भगवते = मुनिराज के लिये, उत्तमं = उत्तम, आहारम् = भोजन को, दत्त्वा = देकर, आत्मानं = अपने आपको, कृतकृत्यम् इव = कृतकृत्य की तरह, आश्चर्यपञ्चकम् = पाँच आश्चर्यों को, अपश्यत् = देखा, मुनिः = मुनिराज, वने = वने में, अगमत् = चले गये।

श्लोकार्थ - हे प्रभु धन्य हो, हे प्रभु! आप धन्य हो, इस प्रकार उस नगर में चारों तरफ से स्तुति हुई राजा नन्दिषेण ने उनको पूजकर

तथा उन मुनिराज के लिये उत्तम आहार देकर अपने आपको कृतकृत्य मानने की तरह ही पाँच आश्चर्यों को देखा। मुनिराज पुनः वन में चले गये।

षड्दिनावधिमौनस्थस्तप उर्गं विधाय सः ।

अशोकमूले सम्प्राप्य केवलज्ञानमुत्तमम् ॥४७॥

अन्वयार्थ - षड्दिनावधिमौनस्थः = छह दिन तक मौनधारण किये हुये, सः = उन मुनिराज ने, उर्गं = उग्र, तपः = तपश्चरण को, विधाय = करके, अशोकमूले = अशोक वृक्ष के मूल में, उत्तमं = उत्तम, केवलज्ञानं = केवलज्ञान को, सम्प्राप्य = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ - छह दिन तक मौन व्रत में स्थित उन मुनिराज ने उग्र तपश्चरण करके अशोकवृक्ष के नीचे उत्तम केवलज्ञान प्राप्त किया।

मेचकायां द्वितीयायां पौषे सम्प्राप्य केवलम् ।

यथोक्तं भूत्वा समवसारे भाति स्म योगशब्द ॥४८॥

अन्वयार्थ - पौषे = पौष मास में, मेचकायां = कृष्ण, द्वितीयायां = द्वितीया के दिन, केवलं = केवलज्ञान को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, यथा = जैसा, उक्तं = कहा गया है, (तथा = वैसे), भूत्वा = होकर, समवसारे = समवसरण में, योगशब्द = संयोग केवली प्रभु, भाति स्म = सुशोभित हुये।

श्लोकार्थ - पौष कृष्ण द्वितीया के दिन केवलज्ञान प्राप्त करके जैसा कथित है वैसे ही होकर वह संयोग-केवली समवसरण में सुशोभित हुये।

उच्चरन् दिव्यनिनादं स क्षेत्रेषु विहरन्मुदा ।

मासमात्रायुरुदगात् भूमिस्थं स्वर्णपर्वतम् ॥५०॥

अन्वयार्थ - सः = वह प्रभु, दिव्यनिनादं = दिव्यध्वनि का, उच्चरन् = उच्चारण करते हुये, (च = और), क्षेत्रेषु = क्षेत्रों में, मुदा = हर्ष उत्साह से, विहरन् = विहार करते हुये, मासमात्रायुः =

एक माह मात्र है आयु जिनकी ऐसे वह, भूमिस्थं = भूमि पर स्थित, स्वर्णपर्वतम् = सोनागिरि पर, उदगात् = पहुँच गये।

श्लोकार्थ - वह प्रभु दिव्यध्वनि का उच्चारण करते हुये और पुण्य क्षेत्रों में विहार करते हुये जब एक माह मात्र अवशिष्ट आयु वाले हुये तो सोनागिरि पर्वत पर आ गये।

किञ्चित्कालं तत्र देवः स्थित्वा चित्तं प्रसाद्य सः ।

समुत्सह्य गतस्तस्मात् सम्मेदं ध्वनिवर्जितः ॥५१॥

कूटं सम्बलनामानं तत्रासाद्य जगद्गुरुः ।

द्वादश्यां फाल्गुने मासे कृष्णायां सिद्धतामगात् ॥५२॥

अन्वयार्थ - सः = वह, देवः = प्रभु, किञ्चित्कालं = थोड़े समय, तत्र = उस सोनागिरि पर, स्थित्वा = होकर, (भव्यानां = भव्य जीवों के), चित्तं = मन को, प्रसाद्य = प्रसन्न करके, (च = और), समुत्सह्य = उत्साहित करके, ध्वनिवर्जितः = दिव्यध्वनि से रहित होते हुये, तस्मात् = वहाँ से, सम्मेदं = सम्मेदशिखर पर्वत को, गतः = गये, तत्र = उस सम्मेदगिरि पर, सम्बलनामानं = सम्बलनामक, कूटं = कूट को, आसाद्य = प्राप्त करके, जगद्गुरुः = जगद् के गुरु भगवान् मल्लिनाथ, फाल्गुने = फाल्गुन, मासे = मास में, कृष्णायां = कृष्णा, द्वादश्यां = द्वादशी को, सिद्धतां = सिद्धत्व को, अगात् = प्राप्त किये अर्थात् सिद्ध शिला पर चले गये।

श्लोकार्थ - वह प्रभु कुछ समय उस सोनागिरि पर स्थित होकर भव्यों के मन को प्रसन्न करके और उत्साहित करके, दिव्यध्वनि से रहित होते हुये वहाँ से सम्मेद पर्वत पर चले गये तथा वहाँ सम्बलनामक कूट को प्राप्त करके जगद्गुरु भगवान् मल्लिनाथ फाल्गुन बदी बारस के दिन सिद्ध दशा को प्राप्त हो गये।

अथ चम्पापुरे राजा सम्बलाख्यो महानभूत् ।

महासेना तस्य राज्ञी शीलसद्गुणसुन्दरी ॥५३॥

अन्वयार्थ - अथ = प्रारंभ सूचक अव्यय, चम्पापुरे = चम्पापुर में,

सम्बलाख्यः = सम्बल नामक, महान् = एक महान्, राजा = राजा, अभूत् = हुआ था, तस्य = उस राजा की, शीलसद्गुणसुन्दरी = शील और सद्गुणों की स्वामिनी व सुन्दरी, राज्ञी = रानी, महासेना = महासेना, अभूत् = थी।

श्लोकार्थ - अब पुनः कथा का प्रारंभ है। चम्पापुर में एक महान् राजा सम्बल हुआ था जिसकी रानी महासेना शील, सौन्दर्य और सद्गुणों की स्वामिनी थी।

एकदा मन्दिरवने चारणो मुनिरभ्यगात् ।

धृतिषेणा मुनियुतः तमाकर्ण्य स आगतः ॥५४॥

समाजसहितस्तूर्ण वन्दनायाभ्यधावत् ।

जैनधर्म ततः श्रुत्वा दीक्षां जग्राह भूपतिः ॥५५॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, मन्दिरवने = मन्दिर वन में, धृतिषेणः = धृतिषेण नामक, चारणः = चारणऋद्धिधारी, मुनिः = मुनिराज, मुनियुतः = मुनिराजों के साथ, अभ्यगात् = आये हुये हैं, (इति = इस प्रकार), तम् = उस समाचार को, आकर्ण्य = सुनकर, सः = वह राजा, समाजसहितः = समाज के साथ, (तत्र = वहाँ), आगतः = आ गया, वन्दनाय = वन्दना के लिये, तूर्ण = शीघ्र ही, (तत्समीपे = उनके पास), अभ्यधावत् = दौड़ा, ततः = उन मुनिराज से, जैनधर्म = जितेन्द्रिय धर्म को, श्रुत्वा = सुनकर, (सः = उस), (भूपतिः = राजा ने), दीक्षां = मुनिदीक्षा को , जग्राह = ग्रहण कर लिया।

श्लोकार्थ - एक दिन मन्दिर वन में धृतिषेण नामक चारण ऋद्धिधारी मुनिराज कई मुनियों के साथ आये, उनेक आने का समाचार सुनकर समाज सहित वह राजा जल्दी ही वहाँ आ गया और मुनिराज की वन्दना के लिये दौड़ पड़ा। उन मुनिराज से जितेन्द्रिय धर्म सुनकर उस राजा ने मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली।

ततः सम्यक्तपस्तप्त्वा तपसा दग्धकल्मषः ।

सन्यासे त्यक्तदेहोसौ स्वर्गेषोडशमे मुदा ॥५६॥

इन्द्रो बभूव धर्मात्मा द्वाविंशत्यब्धिजीवनः ।

अन्ते चावातरद्भूमौ वक्ष्येऽहं तत्कथां शुभाम् ॥५७॥

अन्वयार्थ - ततः = दीक्षा ग्रहण करने के बाद, तपसा = तपश्चरण से, दग्धकल्मषः = पापों-कर्मों को जलाने वाले, च = और, सम्यक्तपः = समीचीन तप, तप्त्वा = तप कर, संन्यासे = संन्यासमरण में, त्यक्तदेहः = देह को छोड़ने वाले, असौ = वह मुनिराज, मुदा = प्रसन्नता से, षोडशमे = सोलहवें, स्वर्गे = स्वर्ग में, द्वाविंशत्यब्धिजीवनः = बाईस सागर आयु वाले, धर्मात्मा = धर्माचरणशील, इन्द्रः = इन्द्र, बभूव = हो गये, अन्ते = आयु के अन्त में, (सः = वह इन्द्र), भूमौ = भूमि पर, अवातरत् = अवतरित हुआ, अहं = मैं, शुभां = शुभ, तत्कथां = उसकी कथा को, वक्ष्ये = कहता हूँ।

श्लोकार्थ - दीक्षा ग्रहण करने के बाद तपश्चरण से पापों को नष्ट करने वाले सम्यक् तप तपकर और संन्यासमरण पूर्वक शरीर छोड़ने वाले वह मुनिराज प्रसन्नता से सोलहवें स्वर्ग में बावीस सागर आयु वाले धर्मात्मा इन्द्र हो गये। वह इन्द्र आयु के अन्त में भूमि पर अवतरित हुआ। कवि कहता है कि मैं उसकी शुभ कथा को कहता हूँ।

जम्बूद्वीपे योधदेशे श्रीपुरे प्रमदाकरे ।

अम्बदेशोऽभिधो राजा बभूवातीय धार्मिकः ॥५८॥

महिषी विजया तस्य तद्गर्भे स्वर्च्युतस्ततः ।

समयात्तत्त्यसेनाख्यः पुत्रोऽभूद् गुणसागरः ॥५९॥

अन्वयार्थ - जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, योधदेशे = योध नामक देश में, प्रमदाकरे = प्रकृष्ट आनन्द स्वरूप, श्रीपुरे = श्रीपुर नामक नगर में, अतीय = अत्यधिक, धार्मिकः = धर्मात्मा, अम्बदेशोऽभिधः = अम्बदेश नामक, राजा = राजा, बभूव = हुआ, तस्य = उस राजा की, विजया = विजया नाम की, महिषी = रानी, (आसीत् = थी), तद्गर्भे = उसके गर्भ में, स्वर्च्युतः = स्वर्ग से च्युत हुआ वह देव, (अवतरितः = अवतरित हुआ), ततः = उसके बाद, समयात् = गर्भ काल पूरा हो जाने

से, गुणसागरः = गुणों का सागर, तत्त्वसेनाख्यः = तत्त्वसेन नामक, पुत्रः = पुत्र, अभूत् = हुआ।

श्लोकार्थ - जम्बूद्वीप में योधदेश के अत्यधिक आनन्दकर श्रीपुर नगर में अम्बदेश एक अत्यधिक धार्मिक राजा हुआ था। उसकी रानी विजया थी। जिसके गर्भ में वह देव स्वर्ग से च्युत होकर आया और गर्भ के नौ माह पूरे हो जाने से तत्त्वसेन नामक गुणवान् पुत्र हुआ।

सदा पुण्यरूचिर्धीमान् प्रतापेणाक्रसन्निभः ।

इष्टमन्त्रजपाच्चक्री रहस्येकाग्रमानसः ॥६०॥

एकस्मिन् समये तत्त्वसेन एष यदृच्छया ।

कौसलाख्यं गिरिवरं गतः सुरनिषेवितम् ॥६१॥

अन्वयार्थ - एषः = यह, सदा = हमेशा, पुण्यरूचिः = पुण्याभिलाषी, धीमान् = बुद्धिमान्, प्रतापेण = प्रताप या तेज से, अक्रसन्निभः = सूर्य के समान, चक्री = चक्रवर्ती, इष्टमन्त्रजपात् = इष्ट मंत्र के जपने से, रहसि = एकान्त में, एकाग्रमानसः = ध्यान करने वाला, तत्त्वसेनः = तत्त्वसेन राजा, एकस्मिन् = एक, समये = समय, यदृच्छया = अपनी स्वेच्छा से, सुरनिषेवितं = देवताओं द्वारा सेवनीय पूजनीय, कौसलाख्यं = कौसल नामक, गिरिवरं = पर्वतराज पर, गतः = गया।

श्लोकार्थ - सदैव पुण्याभिलाषी, बुद्धिमान् = प्रतापी, सूर्य के समान तेजस्वी, चक्री तथा इष्टमन्त्र के जाप वाला होने से ध्यान करने वाला यह राजा तत्त्वसेन एक दिन स्वेच्छा से देवों के लिये सेवनीय पूजनीय कौसल नामक श्रेष्ठ पर्वत पर गया।

तत्र सुलोचनमुनिं दृष्ट्वा भक्त्या चाभिवन्द्य तम् ।

सम्मेदशैलचर्चा वै तेन सार्धं चकार सः ॥६२॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस कौसलपर्वत पर, सुलोचनमुनिं = सुलोचन नामक मुनिराज को, दृष्ट्वा = देखकर, च = और, भक्त्या = भक्ति से, तं = उनको, अभिवन्द्य = प्रणाम करके, सः = उस राजा ने, तेन = उन मुनिराज के, सार्धं = साथ, वै = यथार्थ

सम्मदशैलचर्चा = सम्मदशिखर पर्वत की चर्चा को, चकार = किया।

श्लोकार्थ - कौसल पर्वत पर सुलोचन मुनिराज को देखकर और उन्हें भक्ति सहित प्रणाम करके उस राजा ने उन मुनिराज के साथ सम्मदशिखर नामक पर्वत की यथार्थ चर्चा की।

यदा शिखरमाहात्म्यं श्रुतं मुनिमुखान्महत् ।

तदैवातिरुचिस्तस्य यात्रायै चाभवद् हृदि ॥६३॥

अन्वयार्थ - यदा = जब, मुनिमुखात् = मुनिराज के मुख से, महत् = अत्यधिक, शिखरमाहात्म्यं = सम्मदशिखर की महिमा को, श्रुतं = सुना, तदा = तब, एव = ही, तस्य = उस राजा के, हृदि = मन में, अतिरुचिः = अत्यधिक रुचि इच्छा, यात्रायै = सम्मदशिखर की यात्रा करने के लिये, अभवत् = हो गयी।

श्लोकार्थ - जब मुनिराज के मुख से उसने सम्मदशिखर के अतिशयपूर्ण महत्त्व को सुना तब ही उसके मन में यात्रा करने के लिये, अत्यधिक रुचि हो गयी।

सत्त्वरं गृहमागत्य नत्वा सङ्घचतुष्टयम् ।

सार्धं सः बहुभिर्भव्यैः गिरियात्रां मुदा व्यधात् ॥६४॥

अन्वयार्थ - सः = उसने, सत्त्वरं = शीघ्र, गृहं = घर, आगत्य = आकर, सङ्घचतुष्टयं = चतुर्विध संघ को, नत्वा = नमस्कार करके, बहुभिः = अनेक, भव्यैः = भव्यों के, सार्धं = साथ, मुदा = प्रसन्नता से, गिरियात्रां = सम्मदशिखर पर्वत की यात्रा को, व्यधात् = किया।

श्लोकार्थ - उसने शीघ्र ही घर आकर तथा चतुर्विध संघ को प्रणाम करके अनेक भव्य राजाओं के साथ प्रसन्नता से सम्मदशिखर पर्वत की यात्रा को किया।

यात्रा कृत्वा ह्यचिन्तोऽसौ विरक्तः संसृतेर्ध्रुवम् ।

एकोनशतकोट्युक्तैर्भव्यैः सह स भव्यराट् ॥६५॥

दीक्षां गृहीत्वा तत्रैव तपः कृत्वा सुदारुणम् ।

निव्रत्य घातिकर्माणि विरागो गतकल्मषः ॥६६॥

केवलज्ञानमासाद्य

शुक्लध्यानधरस्तदा ।

सर्वैः सह गतो मुक्तिं सर्वसंसारदुर्लभान् ॥६७॥

अन्वयार्थ - असौ = वह, अचिन्तः = चिन्तारहित राजा, यात्रां = यात्रा को, कृत्वा = करके, संसृतेः = संसार से, ध्रुवम् = दृढ़ता पूर्वक, विरक्तः = विरक्त, (अभूत् = हो गया), एकोनशतकोट्युक्तैः = निन्यानवे करोड़, भव्यैः = भव्य जीवों के, सह = साथ, दीक्षां = दीक्षा को, गृहीत्वा = ग्रहण करके, तत्र = उस पर्वत पर, एव = ही, सुदारुणं = घोर, तपः = तपश्चरण, कृत्वा = करके, घातिकर्माणि = घातिया कर्मों को, निहत्य = नष्ट करके, विरागः = राग रहित, (च = और), गतकल्मषः = कर्मकलंक रूपी कल्मष से छूटे हुये, असौ = उस, भव्यराट् = भव्य मुनिराज, केवलज्ञानम् = केवलज्ञान को, आसाद्य = प्राप्त करके, शुक्लध्यानधरः = शुक्लध्यान के धारी, (बभूव = हुये), तदा = तभी, सर्वैः = सबके, सह = साथ, सर्वसंसारदुर्लभान् = संसार में सभी के दुर्लभ, मुक्तिं = मुक्ति को, गतः = चले गये।

श्लोकार्थ - चिन्ता से रहित वह राजा सम्मोदगिरि की यात्रा करके संसार से दृढ़तापूर्वक विरक्त हो गया तथा निन्यानवे करोड़ भव्य जीवों के साथ दीक्षा ग्रहण करके और उसी पर्वत पर अत्यधिक कठोर तपश्चरण करके व घातिकर्मों को नष्ट करके रागरहित निष्कलंक हुये मुनिराज केवलज्ञान प्राप्त करके शुक्लध्यानके धारी हुये तथा तभी संसार में सभी को दुर्लभ मुक्ति को सभी के साथ चले गये।

सम्बलाख्यस्य कूटस्य वन्दने फलमीदृशम् ।

न बुद्धिगोचरमेवेदं सर्वेषां वक्तुमर्हति ॥६८॥

अन्वयार्थ - सम्बलाख्यस्य = सम्बल नामक, कूटस्य = कूट की, वन्दने = वन्दना करने में, एव = ही, ईदृशं = ऐसा, इदं = यह, बुद्धिगोचरं = बुद्धिगोचर, (भवति = होता है), (तदा = तब), सर्वेषां = सारी कूटों की, (वन्दने = वन्दना करने में), (यत् = जो), (फलं = फल), (अस्ति = है), (तत् = वह), वक्तुं = कहा, न = नहीं, अर्हति = जा सकता है।

श्लोकार्थ - जब एक सम्बलनामक कूट की वन्दना करने में ही इतना फल बुद्धिगोचर होता है तो सारी कूटों की वन्दना से होने वाले फल को वाणी से नहीं कहा जा सकता है।

निश्चयादयोऽभिवन्देत कूटं सम्बलमुत्तमम् ।

कोटिषण्णवतिः व्रतजं फलं सः लभेत ध्रुवम् ॥६६॥

अन्वयार्थ - निश्चयात् = निश्चय से, यः = जो, उत्तमं = उत्तम, सम्बलं = सम्बल, कूटं = कूट को, अभिवन्देत = प्रणाम करे या उसकी वन्दना करे, सः = वह, षण्णवतिः = छियानवे, कोटि = करोड़, व्रतजं = प्रोषधोपवास व्रत से जनित, ध्रुवं = स्थिर, फलं = फल को, लभेत = प्राप्त करे।

श्लोकार्थ - निश्चय ही जो उस उत्तम संबल कूट की वन्दना करे वह छियानवे करोड़ प्रोषधोपवास व्रत से जनित स्थिर फल को प्राप्त करे।

वन्दनाच्चैककूटस्य न तिर्यङ्नरकयोर्गतिः ।

संभवति सर्वनमस्कारफलं प्रभुरेवोच्चरेत् ॥७०॥

अन्वयार्थ - च = और, एककूटस्य = एक कूट की, वन्दनात् = वन्दना से, तिर्यङ्नरकयोः = तिर्यञ्च और नरक में, गति = जाना या अवस्था, न = नहीं, संभवति = संभव होती है, सर्वनमस्कारफलं = सारी कूटों को नमस्कार करने के फल को, प्रभुः = प्रभु, एव = ही, उच्चरेत् = कहें।

श्लोकार्थ - और भी कहते हैं कि एक कूट की वन्दना करने से तिर्यञ्च और नरक में गति अर्थात् जाना संभव नहीं होता है तथा सारी कूटों को नमस्कार करने का फल तो भगवान् ही कहें।

मल्लिनाथप्रभुर्मोक्षसिद्धं यतस्सत्तपोदग्धकर्मा गतरत्तीर्थकर्ता ।

भव्यवृन्दैस्समाराधितं पूजितं सम्बलाख्यं त्वं दास ॥७०॥

अन्वयार्थ - यतः = जिस सम्बल कूट से, तीर्थकर्ता = तीर्थङ्कर, मल्लिनाथप्रभुः = मल्लिनाथ स्वामी, सत्तपोदग्धकर्मा = सम्यक् तप से कर्मों को जलाने वाले होकर, मोक्षसिद्धिं =

मोक्षसिद्धि अर्थात् सिद्ध स्थान में, गतः = चले गये, भव्यवृन्दैः = भव्य जनों द्वारा, समाराधितं = अच्छी तरह से आराधना की गयी, (तं = उस), पूजितं = पूज्य, सम्बलाख्यं = सम्बल नामक कूट को, दास = हे सेवक!, त्वं = तू, स्मर = याद कर या उसका स्मरण कर।

श्लोकार्थ - जिस सम्बलकूट से तीर्थङ्कर मल्लिनाथ भगवान् सम्यक्त्प द्वारा कर्मों को जलाने वाले होकर सिद्ध स्थान को गये। उस भव्य जीवों से आराधित एवं पूज्य सम्बल कूट को हे सेवक तुम याद रखो अर्थात् उसका स्मरण करो।

[इति दीक्षिब्रह्मनेमिदत्तविरचिते श्रीसम्मेदशैलमाहात्म्ये तीर्थङ्कर-
मल्लिनाथवृत्तान्तसमन्वितं सम्बलकूट - वर्णनं
नामाष्ट दशमोऽध्यायः सम्पूर्णः।]

{इस प्रकार दीक्षित ब्रह्म नेमिदत्त द्वारा रचित श्री सम्मेद शैल
माहात्म्य नामक काव्य में तीर्थङ्कर मल्लिनाथ के वृत्तान्त
से युक्त सम्बल कूट का वर्णन करने वाला यह
अठारहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।}

अथैकोनविंशोऽध्यायः

अथातोऽहं बद्धपाणिर्वन्दे श्रीमुनिसुव्रतम् ।

प्रसिद्धतामिह प्राप्तं त्रैलोक्ये यस्य सुव्रतम् ॥१॥

अन्वयार्थ - अथ = अब, अतः = इससे आगे, अहं = मैं, बद्धपाणिः = हाथ जोड़े हुये, श्रीमुनिसुव्रतं = श्रीमुनिसुव्रतनाथ को, वन्दे = प्रणाम करता हूं, यस्य = जिनका, सुव्रतं = सुव्रत, इह = इन, त्रैलोक्ये = तीनों लोकों में, प्रसिद्धतां = प्रसिद्धता को, प्राप्तम् = प्राप्त हुआ, (अस्ति = है)।

श्लोकार्थ - अब इससे आगे मैं कवि हाथ जोड़े हुये उन तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथ को प्रणाम करता हूं जिनका सुव्रत इन तीनों लोकों में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है।

मुनिसुव्रतपादाब्जमपारभववारिधेः ।

तरणाय सदा भाति महापोत इव ध्रुवम् ॥२॥

अन्वयार्थ - अपारभववारिधेः = अपार भव सागर के, तरणाय = तैरने के लिये, सदा = हमेशा, मुनिसुव्रतपादाब्जं = मुनिसुव्रतनाथ के चरण कमल, महापोत इव = नाव या जहाज के समान, ध्रुवं = निश्चित ही, भाति = सुशोभित होता है।

श्लोकार्थ - अपार भव सागर को तैरने के लिये हमेशा ही मुनिसुव्रतनाथ के चरण कमल नाव या जहाज के समान निश्चित ही सुशोभित होते हैं।

तत्कथां तस्य कूटस्य माहात्म्यमधुना बुधाः ।

वक्ष्ये श्रुणुत तद्भक्त्या यदि कल्याणकामिता ॥३॥

अन्वयार्थ - अधुना = अब, तत्कथां = उन तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथ की कथा को, (च = और), तस्य = उस, कूटस्य = कूट के, माहात्म्यं = माहात्म्य को, वक्ष्ये = मैं कहता हूं, बुधाः = हे विद्वानो! यदि = यदि, कल्याणकामिता = कल्याण करने की

कामना, (अस्ति = है), (तर्हि = तो), भक्त्या = भक्ति से, तत् = उसको, श्रणुत = सुनो।

श्लोकार्थ - मैं श्री मुनिसुव्रतनाथ की कथा को और उस निर्जर कूट के माहात्म्य को कहता हूँ यदि तुम्हारे मन में कल्याण करने की कामना हो तो हे विद्वज्जनो! तुम उसे सुनो।

द्वीपे जम्बूमति ख्याते भरतक्षेत्रामुत्तमम् ।

तत्राङ्गदेशे चम्पाख्यं पुरं स्वर्गपुरोपमम् ॥४॥

अन्वयार्थ - जम्बूमति = जम्बूवृक्ष वाले, ख्याते = सुप्रसिद्ध, द्वीपे = द्वीप में, उत्तमं = उत्तम, भरतक्षेत्रं = भरतक्षेत्र, (अस्ति = है), तत्र = उसमें, अङ्गदेशे = अङ्गदेश में, स्वर्गपुरोपमं = स्वर्ग के नगर के समान, चम्पाख्यं = चम्पा नामक, पुरं = नगर, अस्ति = है या था।

श्लोकार्थ - सुप्रसिद्ध जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में अङ्गदेश है उसमें स्वर्ग के नगर की उपमा वाला एक चम्पापुर नामक नगर है।

तत्राभूद्धरणीपालो हरिवर्माभिधो महान् ।

महाप्रतापसन्दीप्तः सुकृताम्भोधिरुत्तमः ॥५॥

वज्रसेना तथा तस्य महिषी शीलशालिनी ।

सद्गुणा रूपराशिश्च शरच्चन्द्रसमानना ॥६॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस चम्पापुर में, हरिवर्माभिधः = हरिवर्मा नामक, महान् = एक महान्, महाप्रतापसन्दीप्तः = अत्यधिक प्रताप से कान्तिमान्, सुकृताम्भोधिः = पुण्यशाली, उत्तमः = उत्तम, धरणीपालः = राजा, अभूत् = था, तथा = और, शालिनी = शीलवती, सद्गुणा = सद्गुणों वाली, रूपराशिः = सौन्दर्यवती, शरच्चन्द्रसमानना = शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान मुख वाली, महिषी = एक रानी, (आसीत् = थी)।

श्लोकार्थ - उस चम्पापुर में हरिवर्मा नामक महान् प्रतापी, तेजपुञ्ज, पुण्यशाली, उत्तम एक राजा था और उसकी वज्रसेना नामक शीलवती, सद्गुणों वाली, सौन्दर्यवती, और शरदकालीन चन्द्रमा के समान मुख वाली एक रानी थी।

औरसानिव पुत्राश्च ररक्ष स्वप्रजाः नृपः ।

न्यायवान् गुणवान् तद्वत् शीलवान् बुद्धिसागरः ॥७॥

अन्वयार्थ - तद्वत् = रानी के ही समान, न्यायवान् = न्यायवान्, गुणवान् = गुणी, शीलवान् = शीलवान्, बुद्धिसागरः = विशाल बुद्धि वाला, नृपः = राजा ने, औरसानिव = अपने जाये पुत्रों के समान, स्वप्रजाः = अपनी प्रजा की, च = और, पुत्रान् = पुत्रों की, ररक्ष = रक्षा की ।

श्लोकार्थ - जैसी रानी थी वैसे ही राजा भी था उस न्यायी, गुणी, शीलवान् और मतिमान् राजा ने अपने जाये हुये पुत्रों के समान अपनी प्रजा की और पुत्रों की रक्षा की ।

एकदानन्तवीर्याख्यो मुनिर्वनमुपागतः ।

शुद्धसम्यक्त्वसम्पन्नस्तेजसा ज्वलनप्रभः ॥८॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, अनन्तवीर्याख्यः = अनन्तवीर्य नामक, शुद्धसम्यक्त्वसम्पन्नः = शुद्ध सम्यक्त्व से सम्पन्न, तेजसा = तेज से, ज्वलनप्रभः = प्रकाशित है प्रभा या कान्ति जिसकी ऐसा वह कान्तिमान्, मुनिः = मुनिराज, वनम् = वन में, उपागतः = आये ।

श्लोकार्थ - एक दिन अनन्तवीर्य नामक शुद्ध सम्यग्दृष्टि और तेजोमय कान्तिस्वरूप मुनिराज वन में आये ।

तमागतं समाकर्ण्य परिवारसमन्वितः ।

तद्वन्दनार्थं भूपालस्त्यरितं तमुपाययौ ॥९॥

अन्वयार्थ - तं = उन मुनिराज को, आगतं = आया हुआ, समाकर्ण्य = सुनकर, परिवारसमन्वितः = परिवार सहित, भूपालः = राजा, तद्वन्दनार्थं = उनकी वन्दना करने के लिये, त्यरितं = शीघ्रता से, तम् = उन मुनिराज के, उपाययौ = समीप आ गया ।

श्लोकार्थ - उन मुनिराज को आया हुआ सुनकर वह राजा परिवार सहित उनकी वन्दना करने के लिये शीघ्रता से उनके पास आ गया ।

मुनिं दृष्ट्वा प्रसन्नात्मा दण्डवत् प्रणिपत्य तम् ।

विधिवत्पूजयामास गन्धाद्यैर्भक्तितो नृपः ॥१०॥

अन्वयार्थ - मुनिं = मुनिराज को, दृष्ट्वा = देखकर, प्रसन्नात्मा = प्रसन्न मन, नृपः = राजा ने, तं = उनको, दण्डवत् = झुककर, प्रणिपत्य = प्रणाम करके, भक्तितः = भक्ति से, गन्धाद्यैः = गन्ध आदि से, विधिवत् = विधिपूर्वक, पूजयामास = पूजा की।

श्लोकार्थ - मुनिराज को देखकर प्रसन्नचित्त राजा ने उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके भक्ति भाव से गंध आदि द्वारा उनकी विधिपूर्वक पूजा की।

सम्पूज्य धर्मं णपृच्छ संसारमखण्डितम् ।

तदा मुनिवरः प्राह यथावत्तान्स्वतत्त्ववित् ॥११॥

अन्वयार्थ - सम्पूज्य = मुनिराज को अच्छी तरह से पूजकर, संसारमखण्डितं = संसार रूपी रोग को खण्ड-खण्ड करने वाले, धर्म = धर्म को, णपृच्छ = पूछा, तदा = तब, स्वतत्त्ववित् = निजतत्त्व के ज्ञाता तत्त्वज्ञानी, मुनिवरः = मुनिराज ने, यथावत् = यथार्थ, तान् = धर्म का स्वरूप एवं पालन करने के उपायों को, प्राह = कहा।

श्लोकार्थ - राजा ने मुनिराज को अच्छी तरह से पूजकर संसार रूपी रोग को नष्ट करने वाले धर्म को पूछा। तब निजतत्त्ववेत्ता तत्त्वज्ञानी मुनिराज ने यथार्थ रूप से धर्म का स्वरूप और उसका पालन करने के उपायों को कहा।

श्रुत्वा विरक्तिमापन्नः संसारात्स महीपतिः ।

दत्त्वा राज्यं स्वपुत्राय तत्क्षणाद् दीक्षितोऽभवत् ॥१२॥

अन्वयार्थ - श्रुत्वा = मुनि के धर्मोपदेश को सुनकर, संसारात् = संसार से, विरक्तिं = विरक्ति को, आपन्नः = प्राप्त हुआ, सः = वह, महीपतिः = राजा, स्वपुत्राय = अपने पुत्र के लिये, राज्यं = राज्य, दत्त्वा = देकर, तत्क्षणात् = उसी समय, दीक्षितः = दीक्षित, अभवत् = हो गया।



श्री मुनिसुव्रतनाथ स्वामी - निर्जर कूट

श्लोकार्थ - मुनिराज के धर्म विवेचन को सुनकर संसार से विरक्ति को प्राप्त वह राजा अपने बेटे को राज्य देकर उसी समय दीक्षित हो गया।

बहवो नरनाथाश्च दीक्षां तेन समागताः ।

तत्स्नेहादथ वैराग्यात् शुद्धान्तकरणा बुधाः ॥१३॥

अन्वयार्थ - शुद्धान्तकरणाः = जिनका मन शुद्ध है ऐसे, बुधाः = बुधजन, च = और, बहवः = बहुत, नरनाथाः = राजा, तत्स्नेहात् = राजा के स्नेह से, अथ = और, वैराग्यात् = वैराग्य से, तेन = उसके साथ, दीक्षां = दीक्षा लेने को, समागताः = आ गये।

श्लोकार्थ - शुद्ध मन वाले बुधजनों ने और अनेक राजाओं ने अपने राजा हरिवर्मा के प्रति स्नेह होने से या वैराग्य होने से उनके साथ ही दीक्षा को प्राप्त किया।

दीक्षितोऽयं पञ्चमहाव्रतानि च समाचरन् ।

धर्मध्यानपरो भूत्वा सप्ततत्त्वान्यचिन्तयत् ॥१४॥

अन्वयार्थ - च = और, पञ्चमहाव्रतानि = पाँच महाव्रतों को, समाचरन् = सम्यक् आचरते हुये, अयं = इन, दीक्षितः = दीक्षा प्राप्त मुनिराज ने, धर्मध्यानपरः = धर्मध्यान करने में तत्पर, भूत्वा = होकर, सप्ततत्त्वानि = सात तत्त्वों का, अचिन्तयत् = चिन्तन किया।

श्लोकार्थ - पाँच महाव्रतों को अच्छी तरह से पालते हुये इन मुनिराज ने धर्मध्यान में तत्पर होकर सात तत्त्वों का चिन्तन किया।

जीवाजीवौ चास्रवज्य संवरज्वाथ निर्जरां ।

बन्धमोक्षौ तथा ध्यात्वा त्यक्त्वा द्वेधा परिग्रहौ ॥१५॥

अप्रमत्तगुणस्थानं प्राप्त एकादशाङ्गभृत् ।

अपूर्वकगुणस्थानमारूढः शुचिमानसः ॥१६॥

मुक्तये चाभितोत्साहात् प्राप्तः षोडशभावनाः ।

घोरं तपः स कृतवानतिचारविवर्जितः ॥१७॥

अन्वयार्थ - जीवाजीवौ = जीव-अजीव को, च = और, आस्रवं = आस्रव

को, संवरं = संवर को, निर्जरां = निर्जरा को, च = और, बन्धमोक्षौ = बन्धमोक्ष को, ध्यात्वा = ध्याकर, तथा = और, द्वेधा = दो प्रकार के, परिग्रहौ = परिग्रह को, त्यक्त्वा = छोड़कर, एकादशाङ्गभृत् = ग्यारह अङ्गों को धारण करने वाले, अप्रमत्तगुणस्थानं = अप्रमत्तगुणस्थान को, प्राप्तः = प्राप्त हुये, अपूर्वकगुणस्थानमारूढः = अपूर्वकरण गुणस्थान में आरूढ हुये, शुचिमानसः = पवित्र मन वाले, अतिचारविवर्जितः = अतिचार दोष से रहित, च = और, षोडशभावनाः = सोलह भावनाओं को, प्राप्त हुये, सः = उन मुनिराज ने, मुक्तये = मुक्ति के लिये, अमितोत्साहात् = अपरिमित उत्साह से, घोरं = कठिनतम, तपः = तपश्चरण को, कृतवान् = किया।

श्लोकार्थ - जीव-अजीव, आस्रवं, संवर, निर्जरा, बंधमोक्ष का ध्यान करके और द्विविध परिग्रह को छोड़कर, ग्यारह अङ्गों को धारण करने वाले अप्रमत्तगुणस्थान को प्राप्त, अपूर्वकरण गुणस्थान में आरूढ हुये, पवित्र हृदय, अतिचार दोष से रहित और सोलह भावनाओं को प्राप्त हुये उन मुनिराज ने मुक्ति के लिये अपरिमित उत्साह से कठोर तप किया।

तीर्थकृन्नाम सुप्राप्य स संन्यासं ततः प्रभुः ।

संसाद्य विधिवद्देहं त्यक्त्वायुषान्ते ततः ॥१८॥

तत्क्षणात्प्राणते स्वर्गे शक्रोऽभूत्स्वतपोबलात् ।

विंशतिप्रोक्तवाध्यायुः तत्रोक्ताखिलभावधृक् ॥१९॥

अन्वयार्थ - ततः = सोलह कारण भावनाओं के चिन्तन से, सः = वह, प्रभुः = मुनिराज, तीर्थकृन्नाम = तीर्थङ्कर नाम-कर्म को सुप्राप्य = प्राप्त करके, विधिवत् = विधिपूर्वक, संन्यासं = संन्यासमरण को, संसाद्य = ग्रहण करके, आयुषः = आयु के अन्ते = अन्त में, देहं = शरीर को, त्यक्त्वा = छोड़कर, ततः = वहाँ से, तत्क्षणात् = तत्क्षण ही, प्राणते = प्राणत नामक स्वर्गे = स्वर्ग में, स्वतपोबलात् = अपने तपश्चरण के कारण से, विंशतिप्रोक्तवाध्यायुः = बीस सागर आयु वाले

तत्रोक्ताखिलभावधृक् = वहाँ बताया गयीं सारी योग्यताओं को धारण करने वाला, शक्रः = इन्द्र, अभूत् = हो गया।

श्लोकार्थ - सोलह कारण भावनाओं का चिन्तन करने से वह मुनिराज तीर्थङ्कर नामकर्म को प्राप्त करके, विधिवत् संन्यासमरण की विधि को धारण करके और आयु के अन्त में देह को छोड़कर वहाँ से प्राणत स्वर्ग में बीस सागर की आयु वाला इन्द्र हो गया। वहाँ वह उन सारी योग्यताओं को धारण करता था जो वहाँ बतायीं गयीं हैं।

पदार्थान्नव संभाव्य षट्कं च द्रव्यसंचयम् ।

चतुर्दशगुणस्थानान्यसौ विज्ञाय वै तत्त्वतः ॥२०॥

ध्यायन् सिद्धानशेषांश्च तद्विम्बानद्भुतांस्तथा ।

पूजयन्नायुषः पूर्तिं चकारातुलमोदभाक् ॥२१॥

अन्वयार्थ - (तत्र = उस स्वर्ग में), नव = नौ, पदार्थान् = पदार्थों को, संभाव्य = सम्यक् भाकर अर्थात् विचार करके, द्रव्यषट्कं = षड्विधद्रव्यों को, च = और, चतुर्दशगुणस्थानानि = चौदह गुणस्थानों को, तत्त्वतः = यथार्थ रूप से, विज्ञाय = जानकर, वै = पादपूरक अव्यय, अशेषान् = सम्पूर्ण, सिद्धान् = सिद्ध भगवन्तों को, ध्यायन् = ध्याते हुये, तथा च = और, अद्भुतान् = आश्चर्यकारी, तद्विम्बान् = उनके बिम्बों को, पूजयन् = पूजते हुये, अतुलमोदभाक् = अनुपम आनन्द का भोग करने वाले, असौ = उस इन्द्र ने, आयुषः = आयु की, पूर्तिं = पूर्ति को, चकार = किया।

श्लोकार्थ - वहाँ उस स्वर्ग में नौ पदार्थों को अच्छी तरह विचार कर, षड्विध द्रव्यों और चौदह गुणस्थानों को यथार्थतः जानकर, सम्पूर्ण सिद्ध भगवन्तों को ध्याते हुये और अद्भुत सिद्ध बिम्बों की पूजा करते हुये अनुपम आनन्द को भोगते हुये उस इन्द्र ने अपनी आयु पूर्ण की।

षण्मासमात्रमस्त्यायुः ज्ञात्वा स्वावधितो हरिः ।

तीर्थकरो ह्ययं भविता हर्षितोऽभूदिति भृशम् ॥२२॥

- अन्वयार्थ -** (अस्य = उस प्राणत स्वर्ग के इन्द्र की), षण्मासमात्रं = छह महिने मात्र, आयुः = आयु, अस्ति = है, (च = और), अयं = यह, हि = ही, तीर्थङ्करः = तीर्थङ्कर, भविता = होगा, इति = ऐसा, स्वावधितः = अपने अवधि-ज्ञान से, ज्ञात्वा = जानकर, हरिः = सौधर्मेन्द्र, हर्षितः = प्रसन्न, अभूत् = हुआ।
- श्लोकार्थ -** प्राणत स्वर्ग में उस इन्द्र की आयु मात्र छह महिना है और यह ही तीर्थङ्कर होगा ऐसा अपने अवधि-ज्ञान से जानकर सौधर्मेन्द्र हर्षित हुआ।

प्रसिद्धे द्वीपराजेऽत्र जम्बूमति च भारते ।
 क्षेत्रे मगधदेशोऽस्ति तत्र राजगृहं पुरं ॥२३॥
 नव योजनमानञ्च विस्तृत द्वादशप्रमैः ।
 योजनैः स्वर्णधरणी ज्योतिभी रत्नजैर्ज्वलत् ॥२४॥
 इन्द्रादिनिर्मितं यत्र त्रैलोक्यकमलारूपदम् ।
 सुमित्रो नाम तत्रासीत् राजा धर्मधुरंधरः ॥२५॥
 हरिवंशसमुद्भूतः सुरराजार्चितस्य च ।
 सोमाख्या तस्य महिषी शक्रवामा निषेविता ॥२६॥
 तत्समान्या क्वापि न हि त्रिलोक्यां भासिनीवरा ।
 तया सहातुलं सौख्यं स लेभे हि बसुधाधिपः ॥२७॥

- अन्वयार्थ -** प्रसिद्धे = विख्यात, जम्बूमति = जम्बू वृक्ष वाले, द्वीपराजे = श्रेष्ठ द्वीप में, अत्र = इस, भारते = भरत, क्षेत्रे = क्षेत्र में, मगधदेशः = मगध नामक देश, अस्ति = है, तत्र = उसमें, नवयोजनमानं = नौ योजन चौड़ा, च = और, द्वादशप्रमैः = बारह योजन प्रमाण, विस्तृतं = लम्बा, स्वर्णधरणी = स्वर्णखनी, रत्नजैः = रत्नों से जनित, ज्योतिभिः = ज्योति कान्ति से, ज्वलत् = प्रकाशित, राजगृहं = राजगृह नामक, पुरं = एक नगर, (अस्ति = है या था), तत्र = उस नगर में, इन्द्रादिनिर्मितं = इन्द्र आदि द्वारा रचित, त्रैलोक्यकमलारूपदम् = तीनों लोकों के प्रतीक स्वरूप कमल सदृश स्थान, (आसीत् = था), तत्र = उस नगर में, धर्मधुरंधरः = धर्म की धुरा को

धारण करने वाला, हरिवंशसमुद्भूतः = हरिवंश में उत्पन्न, सुमित्रः = सुमित्र, नाम = नामक, राजा = राजा, आसीत् = था, च = और, सुरराजार्चितस्य = इन्द्र द्वारा पूजित, तस्य = उस राजा की, शक्रवामानिषेविता = इन्द्र की पत्नी से सेवित, सोमाख्या = सोमा नामक, महिषी = रानी, (आसीत् = थी), तत्समान्या = उसके समान अन्य, वरा = सुन्दरी, भासिनी = कान्तिमयी, क्वापि = कहीं पर भी, त्रिलोक्यां = तीनों लोकों में, न = नहीं, हि = ही, (आसीत् = थी), तया = उस रानी के, गृह = रम्य, सः = उस बसुधाधिपः = राजा ने, अतुलं = अनुपम, सौख्यं = सुख को, लेभे = प्राप्त किया।

श्लोकार्थ - सुप्रसिद्ध जम्बूद्वीप के इस भरत क्षेत्र में मगधदेश है। उसमें नौ योजन चौड़ा और बारह योजन लम्बा रत्नजनित ज्योतियों से प्रकाशित स्वर्णखनी राजगृह नामक एक नगर है। उस नगर में इन्द्र आदि द्वारा रचित त्रैलोक्य का प्रतीक कमल सदृश स्थान था। उस नगर में धर्मधुरा को धारण करने वाला हरिवंश में उत्पन्न सुमित्र नामक राजा की सोमा नाम की एक रानी थी जो इन्द्र पत्नी द्वारा सेवा की जाती थी उसके समान सुन्दर और कान्तिमयी अन्य कोई भी स्त्री तीनों लोक में कहीं पर भी नहीं थी। उस रानी के साथ उस राजा ने अनुपम सुख को प्राप्त किया।

अर्वाक् षण्मासतस्तत्र शक्राज्ञप्तेन सादरम् ।

धनदेन कृता वृष्टिः रत्नानां द्युतिसद्मनाम् ॥२८॥

अन्वयार्थ - तत्र = उन राजा-रानी के घर में, षण्मासतः = छह माह से, अर्वाक् = पहिले, शक्राज्ञप्तेन = इन्द्र की आज्ञा को प्राप्त, धनदेन = कुबेर के द्वारा, द्युतिसद्मनां = दीप्ति या कान्ति के भण्डार स्वरूप अर्थात् अत्यधिक कान्तिपूर्ण, रत्नानां = रत्नों की, वृष्टिः = वर्षा, कृता = की।

श्लोकार्थ - उन राजा रानी के घर में छह माह पहिले से इन्द्र की आज्ञा को प्राप्त धनद अर्थात् कुबेर के द्वारा दीप्ति के भण्डार स्वरूप अर्थात् अत्यधिक कान्तिपूर्ण रत्नों की वर्षा की।

ततः सौधगता देवी सुप्ता रत्नविनिर्मिते ।
 पत्यङ्के यामिनीतुर्ययामार्धेऽद्भुतभाग्यतः ॥२६॥
 अपश्यत्षोडशान्स्वप्नान् श्रावणे प्रतिपत्तिथौ ।
 श्रवणक्ष्ये कृष्णपक्षे अद्भुतानन्दसूचकान् ॥३०॥

अन्ययार्थ - ततः = उसके बाद, रत्नविनिर्मिते = रत्नों से खचित, पत्यङ्के = पलंग पर, सुप्ता = सोयी हुयी, सौधगता = भवनस्थ, देवी = रानी ने, यामिनीतुर्ययामार्धे = रात्रि के चौथे प्रहर का आधा भाग होने पर, श्रावणे = श्रावण मास में, कृष्णपक्षे = कृष्णपक्ष में, प्रतिपत्तिथौ = प्रतिपदा तिथि को, श्रवणक्ष्ये = श्रवण नक्षत्र में, अद्भुतभाग्यतः = आश्चर्यकर सौभाग्य से, अद्भुतानन्दसूचकान् = अद्भुत आनन्द की सूचना देने वाले, षोडशान् = सोलह, स्वप्नान् = स्वप्नों को, अपश्यत् = देखा ।

श्लोकार्थ - उसके बाद रत्नों से खचित पलंग पर भवनगता रानी ने रात्रि के चतुर्थ प्रहर का आधा भाग होने पर श्रावणमास में कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तिथि को श्रवणनक्षत्र में अपने अद्भुत सौभाग्य से अद्भुत आनन्द की सूचना देने वाले सोलह स्वप्नों को देखा ।

पूर्वं मत्तगर्जं पश्चात् वृषभं मृगनायकम् ।
 लक्ष्मीं च पुष्पमाले द्वे सूर्यं राकापतिं तथा ॥३१॥
 स्यर्णकुम्भद्वयं तद्वन्मत्स्ययुग्मं सरोवरम् ।
 सिन्धुं सिंहासनं चैव विमानं भुजगालयम् ॥३२॥
 रत्नराशिं तथा दिव्यत्कृशानुं धूमवर्जितम् ।
 इत्यादिस्वप्नकान्देवी संवीक्ष्य तदनन्तरम् ॥३३॥
 मुखे प्रविष्टं सा पश्यत् सिन्धुरं मत्तमद्भुतम् ।
 ततः प्रातः प्रबुद्धा सा सर्वं स्वप्नफलं तदा ॥३४॥
 श्रुत्वा पत्युर्मुखान्नूनं परमानन्दभागभूत् ।
 ततः स्वर्गाच्च्युतश्चान्तेऽहमिन्द्रो भगवान् स्वयम् ॥३५॥

आवसल्लक्ष्मणागर्भे नयैस्याद्वादधर्मवत् ।
 वैशाखे कृष्णादशमीतिथौ च श्रवणभे तथा ॥३६॥
 प्रादुर्बभूव विश्वेशो लक्ष्मणायां सुरोत्तमः ।
 देवदेवीसमायुक्तः सौधर्मेन्द्रस्तदैव हि ॥३७॥
 तत्रागत्य समादाय प्रभुं त्रैलोक्यभूषणम् ।
 हेमादिमगमत्पूर्णं पूर्णः प्रेमभरैः किल ॥३८॥
 तत्राभिषेकमकरोत्तस्य क्षीरोदवारिभिः ।
 अभिषिच्य पुनर्देवं गन्धवार्भिः सुरेश्वरः ॥३९॥
 दिव्यैराभरणैः पश्चादभूषयदिमं प्रभुम् ।
 पुनस्ततोऽसौ राजगृहं समानीय जगत्पतिम् ॥४०॥
 नृपाङ्गणे समारोप्य भक्त्या सम्बुध्य राण्डदम् ।
 तदग्रे संविधायाथ मुनीनां सुव्रतत्पतः ॥४१॥
 मुनिसुव्रतनामानमेनं चक्रे सः वासवः ।
 ततश्चतुरुत्तरपञ्चाषल्लक्षवर्षोपरि प्रभुः ॥४२॥
 मुनिसुव्रतोऽभूद्विश्वनाथस्तन्मध्यजीवनः ।
 जन्मोत्सवं विधायाथ गते सौधर्मनायके ॥४३॥
 तं दृष्ट्वा दम्पती तत्र प्राप तं सुखमुत्तमम् ।
 त्रिंशत्सहस्रवर्षायुर्विशत्युक्तधनुस्तनुः ॥४४॥
 वर्णेन हरितो देवः शोभासिन्धुर्महोदयः ।
 बालक्रीडारतो बाल्ये स्तुतो देवकुमारकैः ॥४५॥
 सार्धं सप्तसहस्रायुर्बाललीलां व्यपोह्य सः ।
 पैतृकं पदमासाद्य प्रजानां सौख्यमाकरोत् ॥४६॥

अन्वयार्थ - सा = उस, देवी = रानी ने, पूर्व = पहिले, मत्तगर्ज = उन्मत्त
 हाथी को, पश्चात् = बाद में, वृषभं = बैल को, मृगनायकं
 = सिंह को, लक्ष्मीं = लक्ष्मी को, द्वे पुष्पमाले = दो पुष्प
 मालाओं को, सूर्य = सूर्य को, राकापतिं = चन्द्रमा को,
 स्वर्णकुम्भद्वयम् = दो सोने के कलशों को, तद्वन्मत्स्ययुग्मं

= मत्स्य युगल को, सरोवरम् = तालाब को, सिन्धुं = समुद्र को, सिंहासनं = सिंहासन को, विमानं = विमान को, भुजगालयम् = नाग भवन को, रत्नराशिं = रत्नराशि को, तथा च = और, धूमवर्जितं = धूमरहित, दिव्यत् = भास्वरित, कृशानुं = अग्नि को, इत्यादिस्वप्नकान् = इत्यादिस्वप्नों को, संवीक्ष्य = देखकर, तथा च = और, तदनन्तरं = स्वप्न देखने के बाद, मुखे = मुख में, प्रविष्टं = प्रवेश करते हुये, अद्भुतं = अद्भुत, मत = उन्मत्त, सिन्धुरं = हाथी को, अपश्यत् = देखा।

ततः = उसके बाद, प्रातः = प्रातःकाल में, प्रबुद्धा = जागी हुयी, सा = वह रानी, तदा = तभी, पत्युः = पति के, मुखात् = मुख से, सर्वं = सारा, स्वप्नफलं = स्वप्नों के फल को, श्रुत्वा = सुनकर, नूनं = निश्चय ही, परमानन्दभाक् = परम आनंद को प्राप्त करने वाली, अभूत् = हुई, ततः = उसके बाद, अन्ते = आयु के अन्त में, अहमिन्द्र = अहमिन्द्र देव, भगवान् = भगवान् तीर्थङ्कर का जीव, स्वयं = स्वयं ही, स्वर्गात् = स्वर्ग से, च्युतः = च्युत हुआ, लक्ष्मणागर्भे = शुभ लक्षणों वाली उस शोभा रानी के गर्भ में, आवसत् = बस गया। तथा च = और, वैशाखे = वैशाख मास में, कृष्णादशमीतिथौ = कृष्णपक्ष की दशमी तिथि के दिन, श्रवणमे = श्रवण नक्षत्र में, विश्वेशः = जगत् का स्वामी, लक्ष्मणायां = शुभलक्षणों वाली शोभा रानी की कोख में से, नयैः = नयों के द्वारा, स्याद्वादधर्मवत् = स्याद्वाद धर्म के समान, प्रादुर्बभूव = उत्पन्न हुआ।

तदैव = उस ही समय, देवदेवीसमायुक्तः = देवताओं और देवियों से युक्त होते हुये, सुरोत्तमः = देवताओं में उत्तम, सौधर्मेन्द्रः = सौधर्म इन्द्र, तत्र = वहाँ, आगत्य = आकर, त्रैलोक्यभूषणम् = तीन लोक के नाथ, प्रभुं = तीर्थकर शिशु को, समादाय = लेकर, तूर्णं = शीघ्र, हि = ही, हेमाद्रिं = स्वर्णगिरि अर्थात् सुमेरु पर्वत को, अगमत् = गया, तत्र =

वहाँ उस पर्वत पर, (सः = उसने), क्षीरोद्वारिणिः = क्षीर-सागर के जल से, पूर्णैः = परिपूर्ण, प्रेमभरैः = स्नेहसिक्त, (घटैः = कलशों से) तस्य = उन प्रभु के, अभिषेकं = अभिषेक को, अकरोत् = किया।

असौ = उस, सुरेश्वर = इन्द्र ने, गन्धवार्भिः = सुगन्धित जल से, देवं = उन प्रभु का, पुनः = फिर से, अभिषिच्य = अभिषेक करके, इमं = इन, प्रभुं = प्रभु को, दिव्यैः = दिव्य, आभरणैः = आभरणों से, अभूषयत् = विभूषित किया, पश्चात् = बाद में, ततः = वहाँ से, पुनः = फिर से, जगत्पातं = जगत् के स्वामी को, राजगृहं = राजगृह, समानीय = लाकर, नृपाङ्गणे = राजा के आँगन में, समारोप्य = आरोपित करके, (च = और), भक्त्या = भक्ति से, सम्पूज्य = पूजकर, तदग्रे = उनके सामने, ताण्डवं = ताण्डव नृत्य को, संविधाय = करके, अथ = इसके बाद, सः = उस, वासः = इन्द्र ने, मुनीनां = मुनियों के, सुव्रतत्वतः = सम्यक् व्रतत्व के कारण, एनं = इस, मुनिसुव्रतनामानं = मुनिसुव्रत नाम को, चक्रे = कर दिया।

अथ = इस प्रकार, जन्मोत्सवं = जन्म के उत्सव को, विधाय = करके, सौधर्मनायके = सौधर्म इन्द्र के, गते = चले जाने पर, दम्पती = राजा-रानी दम्पति ने, तं = उन प्रभु को, दृष्ट्वा = देखकर, तत्र = वहीं, तं = उस, उत्तमं = उत्तम, सुखं = सुख को, प्राप = प्राप्त किया।

ततः = उन तीर्थङ्कर मल्लिनाथ से, चतुरस्रपञ्चाशल्लक्ष-वर्षोपरि = चौवन लाख वर्ष ऊपर होने अर्थात् बीत जाने पर, तन्मध्यजीवनः = उस काल में अन्तर्भूत है जीवन जिनका ऐसे, विश्वनाथः = जगत् के नाथ, मुनिसुव्रतः = तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथ, अमूत् = हुये।

त्रिंशत्सहस्रवर्षायुः = तीस हजार वर्ष आयु वाले, (च = और), विंशत्युक्तधनुस्तनुः = बीस धनुष प्रमाण शरीर वाले, वर्णन = रंग से, हरितः = हरे, शोभासिन्धुः = सुन्दरता के सागर, महोदयः = महान् पुण्योदय वाले, बाल्ये = बाल्यावस्था में,

देवकुमारकैः = देव कुमारों द्वारा, स्तुतः = स्तुति किये जाते हुये, बालक्रीडारतः = बालक्रीड़ाओं में रत, सः = उन, देवः = तीर्थङ्कर प्रभु ने, बाललीलां = बालोचित लीला को, (कृत्वा = करके), सार्धं सप्तसहस्रायुः = साढ़े सात हजार वर्ष आयु को, व्यपोह्य = बिताकर, पैतृकं = पैतृक, पदं = स्थान अर्थात् राज्य सिंहासन पर राजा के पद को, आसाद्य = प्राप्त करके, प्रजानां = प्रजाजनों के लिये, सौख्यं = सुखी, अकरोत् = किया।

श्लोकार्थ - उस रानी ने जिन स्वप्नों को देखा वे इस प्रकार हैं - (१) उन्मत्त हाथी (२) बैल, (३) सिंह (४) लक्ष्मी (५) दो पुष्प मालायें, (६) सूर्य, (७) चन्द्रमा (८) दो स्वर्ण कलश (९) मत्स्य युगल (१०) सरोवर (११) समुद्र (१२) सिंहासन (१३) विमान (१४) नागभवन (१५) रत्नराशि और (१६) निर्धूम प्रज्वलित अग्नि। उपर्युक्त सोलह स्वप्न देखकर रानी ने अपने मुख में प्रविष्ट होते हुये एक मदोन्मत्त हाथी को देखा।

उसके बाद जागी हुई रानी ने पति के मुख से स्वप्नों का सारा फल सुनकर उसी समय परम आनंद को प्राप्त किया। तदनन्तर आयु के अन्त में वह अहमिन्द्र देव अर्थात् तीर्थङ्कर का जीव स्वयं ही स्वर्ग से च्युत होता हुआ शुभ लक्षणों से सम्पन्न उस रानी शोभा के गर्भ में आकर बस गया तथा वैशाख कृष्ण दशमी को श्रवण नक्षत्र में जगत् के स्वामी शुभ लक्षण सम्पन्न शोभा रानी की कोख में से वैसे ही उत्पन्न हो गये जैसे नयों के प्रयोग से स्याद्वाद धर्म सिद्ध हो जाता है।

प्रभु का जन्म होते ही देवों और देवताओं युक्त सुरोत्तम सौधर्म इन्द्र वहाँ आ गया और प्रभु को लेकर शीघ्रता से सुमेरु पर्वत पर गया वहाँ उसने प्रभु का क्षीरसागर के जल से भरे और स्नेहसिक्त कलशों से अभिषेक किया। फिर उस सुरेन्द्र ने सुगन्धित जल से दुबारा अभिषेक करके तथा उन प्रभु को दिव्य आभूषणों से विभूषित किया और वहाँ से फिर राजगृह

आकर जगत्पति तीर्थङ्कर को राजा के आँगन में आरोपित करके और भक्ति से उनकी पूजा करके उनके सामने उसने ताण्डव नृत्य किया फिर उस इन्द्र ने उनका नाम मुनियों के सम्यक् व्रतत्त्व के कारण होने से मुनिसुव्रत रख दिया।

इस प्रकार प्रभु के जन्म का उत्सव करके सौधर्म इन्द्र के चले जाने पर राजा रानी दम्पति ने उन प्रभु को देखकर वहीं उस उत्तम सुख को प्राप्त किया।

तीर्थङ्कर मल्लिनाथ से चौवन लाख वर्ष बीत जाने पर उसी काल में अन्तर्भूत है जीवन जिनका ऐसे जगत्प्रभु तीर्थङ्कर मुनिसुव्रत नाथ हुये थे।

तीस हजार वर्ष आयु वाले और बीस धनुष प्रमाण शरीर वाले, हरे वर्ण वाले सुन्दरता के सागर महान् पुण्यशाली तथा बाल्यावस्था में देवकुमारों द्वारा स्तुत व बाल क्रीडाओं में रत उन प्रभु ने बाल क्रीडाओं को करके अपनी आयु के साढ़े सात हजार वर्षों को बिताकर अर्थात् बाल्यावस्था चली जाने पर व तरुण होने पर पैतृक राजा के पद को प्राप्त करके प्रजाजनों के लिये सुखी किया।

नित्यं धर्मकथाभिश्च नीतिभिश्च विराजितः ।

अनेकराजपुत्रैः स नीतो कालकलां मुदा ॥४७॥

अन्वयार्थ - नित्यं = सदैव, धर्मकथाभिः = धर्मकथाओं से, च = और, नीतिभिः = नीतियों से, विराजितः = सुशोभित, च = और, अनेकराजपुत्रैः = अनेक राजपुत्रों के साथ, सः = वह प्रभु, मुदा = प्रसन्नता से, कालकलां = समय के क्षणों को, नीतः = लाये गये।

श्लोकार्थ - सदैव धर्मकथाओं और नीतियों से सुशोभित हुये अनेक राजपुत्रों के साथ वह प्रभु प्रसन्नता से काल के विशेष क्षणों तक लाये गये अर्थात् पहुंचे।

मग्नं तटाके वृषभमसौ दृष्ट्वा विरयतधीः ।

राज्यं समर्प्य पुत्राय तपसे कृत निश्चयः ॥४८॥

सारस्वतस्तुतो देवः दृढवैराग्यसंयुतः ।
 आरुह्य शिबिकां रत्नप्रभाख्यां सुरसेवितः ॥४६॥
 कार्तिके श्वेतपञ्चम्यां नीलाख्ये स्वजन्मभे ।
 धराधिपसहस्रैश्च दीक्षितो मुनिपुङ्गवः ॥५०॥
 अन्तर्मुहूर्ते तत्रैव चतुर्थं ज्ञानमाप सः ।
 अथ तालपुराधीशः प्रीत्याहारं ददौ सुधीः ॥५१॥
 त्रिलोकगुरवे तस्मै सम्यग्दृष्टिशिरोमणिः ।
 पश्चाद्वनमसौ प्राप्य महोग्रं तप आचरन् ॥५२॥
 घातिकर्माणि सन्दह्य केवलज्ञानमाप्तवान् ।
 इन्द्राज्ञया कुबेरोऽपि समवसृतिमञ्जसा ॥५३॥
 निर्माय द्वादशैः कौष्ठैः भव्यवृन्दनिषेवितः ।
 मुनिसुव्रतनाथोऽपि तदा सिंहासनोपरि ॥५४॥
 गणेन्द्रैः परिपृष्टस्सन् दिव्यध्वनिमुपादिशत् ।
 नानादेशान्विहृत्यासौ धर्मवृष्टिं किरन्मुदा ॥५५॥
 मासमात्रावशिष्टायुः सम्भेदाचलमभ्यगात् ।
 प्रतिमायोगमास्थाय सोपि निर्जरकूटके ॥५६॥
 दिव्यध्वनिं चोपहत्य सहस्रमुनिपैः समम् ।
 वैशाखकृष्णदशमीजन्मभेऽगात्परं पदम् ॥५७॥

अन्वयार्थ - तटाके = तालाब में, मग्नं = डूबते हुये, वृषभं = बैल को,
 दृष्ट्वा = देखकर, विरक्तधीः = विरक्तबुद्धि, असौ = वह
 राजा, पुत्राय = पुत्र के लिये, राज्यं = राज्य को, समर्प्य =
 देकर, तपसे = तपश्चरण के लिये, कृतनिश्चयः = निश्चय
 कर लेने वाले, दृढवैराग्यसंयुतः = सुस्थिर वैराग्य से युक्त,
 सुरसेवितः = देवताओं से पूजित, च = और, सारस्वतसंस्तुतः
 = सारस्वत जाति के देवों से स्तुति किये जाते हुये, देवः =
 वह तीर्थङ्कर प्रभु, रत्नप्रभाख्यां = रत्नप्रभा नामक, शिबिकां
 = शिबिका पर, आरुह्य = चढ़कर, कार्तिके = कार्तिक मास
 में, श्वेतपञ्चम्यां = शुक्ला पञ्चमी के दिन, स्वजन्मभे = अपने

जन्म कालीन अर्थात् श्रवण नक्षत्र में, नीलारण्ये = नीलवन में, धराधिपसहस्रैः = एक हजार राजाओं के साथ, दीक्षितः = दीक्षित हुये, च = और, तत्रैव = वहीं पर, सः = उन, मुनिपुङ्गवः = मुनिश्रेष्ठ ने, अन्तर्मुहूर्ते = अन्तर्मुहूर्त के भीतर, चतुर्थ = चौथे मनःपर्ययज्ञान को, आप = प्राप्त कर लिया।

अथ = इसके बाद, सम्यग्दृष्टिशिरोमणिः = सम्यग्दृष्टियों में सिरमौर, सुधीः = बुद्धिमान्, तालपुराधीशः = तालपुर के स्वामी अर्थात् राजा ने, तस्मै = उन, त्रिलोकगुरवे = तीनों लोकों के गुरु के लिये, प्रीत्या = प्रेम से, आहारं = भोजन, ददौ = दिया, पश्चात् = उसके बाद, वनं = वन को, प्राप्य = प्राप्त करके, महोग्रं = अत्यधिक उग्र-कठोर, तपः = तप को, आचरन् = आचरते हुये, असौ = उन मुनिराज ने, घातिकर्माणि = घातिया कर्मों को, सन्दह्य = अच्छी तरह से जलाकर, केवलज्ञानं = केवलज्ञान को, आप्तवान् = प्राप्त कर लिया।

इन्द्राज्ञया = इन्द्र की आज्ञा से, कुबेरः = कुबेर, अपि = भी, अञ्जसा = शीघ्रता से, समवसृतिम् = समवसरण को, निर्माय = रचकर, (मुमोद = प्रसन्न हुआ), द्वादशैः = बारह, कौष्ठैः = कोठों से, (युक्ते = युक्त), तत्र = उस समवसरण में, भव्यवृन्दनिषेवितः = भव्य जीवों द्वारा पूजे जाते हुये, मुनिसुव्रतनाथः = तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथ, अपि = भी, सिंहासनोपरि = सिंहासन से ऊपर, (विराजमानः = विराजमान होते हुये), गणेन्द्रैः = गणधरों द्वारा, परिपृष्टः = पूछे जाते, सन् = हुये, दिव्यध्वनिम् = दिव्यध्वनि का, उपादिशत् = उपदेश दिया, मुदा = हर्ष से, नानादेशान् = अनेक देशों में, विहृत्य = विहार करके, धर्मवृष्टिं = धर्मोपदेश की बरसात को, किरन् = फैलाते हुये, मासमात्रावशिष्टायुः = एक माह मात्र शेष आयु है जिनकी ऐसे, असौ = वह प्रभु, सम्मेदाचलम् = सम्मेदशिखर पर्वत को, अभ्यगात् = गये। दिव्यध्वनिम् = दिव्यध्वनि को, उपहृत्य = रोककर या बंद

करके, च = और, निर्जरकूटके = निर्जर कूट पर, प्रतिमायोगम् = प्रतिमायोग को, आस्थाय = ग्रहण करके, सः = वह प्रभु, सहस्रमुनिपैः = एक हजार मुनियों के, समं = साथ, वैशाखकृष्णदशमीजन्मभे = वैशाखकृष्णदशमी को जन्म अर्थात् श्रवण नक्षत्र में, परं = उत्कृष्ट, पदं = मोक्ष स्थान को, अपि = भी, अगात् = चले गये।

श्लोकार्थ - तालाब में डूबते हुये बैल को देखकर विरक्त बुद्धि वह राजा अपने पुत्र को राज्य देकर, तपश्चरण के लिये दृढ़ संकल्प व सुस्थिर वैराग्य से युक्त हो गये। देवताओं से सेवित अर्थात् पूजित तथा सारस्वत जाति के लौकान्तिक देवों द्वारा स्तुति किये जाते हुये वह तीर्थङ्कर प्रभु रत्नप्रभा नामक पालकी धर चढ़कर कार्तिक शुक्ला पंचमी को श्रवण नक्षत्र में नील वन में एक हजार राजाओं के साथ दीक्षित हो गये। वहीं पर उन मुनिश्रेष्ठ ने अन्तर्मुहूर्त के भीतर मनःपर्ययज्ञान प्राप्त कर लिया। फिर सम्यग्दृष्टियों में अग्रणी सिरमौर तालपुर के बुद्धिमान राजा ने उन त्रिलोक गुरु के लिये प्रेमपूर्वक आहार दिया।

उसके बाद वन को प्राप्त करके उन मुनिराज ने उग्र तपश्चरण करते हुये घातिया कर्मों को जलाकर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

इन्द्र की आज्ञा से कुबेर भी शीघ्रता से समवसरण की रचना करके प्रसन्न हुआ। बारह कोठों से युक्त उस समवसरण में भव्य जीयों के समूहों से पूजित प्रभु मुनिसुव्रतनाथ सिंहासन से चार अंगुल ऊपर विराजमान थे। गणधरों द्वारा पूछे गये उन्होंने दिव्यध्वनि खिराकर उपदेश दिया तथा अनेक देशों में विहार करके, प्रसन्नता के कारण से धर्मवृष्टि को फैलाते हुये जब एक माह मात्र आयु शेष रही तो वह सम्मेदशिखर पर्वत पर चले गये। दिव्यध्वनि को बंद करके और निर्जरकूट पर प्रतिमायोग लेकर एक हजार मुनियों के साथ वह प्रभु वैशाखकृष्णदशमी को जन्म अर्थात् श्रवणनक्षत्र में उत्कृष्ट पद अर्थात् मोक्ष को चले गये।

तत्पश्चान्नवकोट्युवत्तचतुर्लक्षपरिमिताश्च ।

त्रिंशत्सहस्रमुनयः निर्जरात् निर्जरां गताः ॥५८॥

अन्वयार्थ - तत्पश्चात् = तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथ के बाद, निर्जरात् = उस निर्जरकूट से, नवकोट्युवत्तचतुर्लक्षपरिमिताः = नौ करोड़ चार लाख प्रमाण, च = और, त्रिंशत्सहस्रमुनयः = तीस हजार मुनिराज, निर्जरां = निर्जरा अर्थात् सिद्धदशा को, गताः = चले गये ।

श्लोकार्थ - तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथ के बाद उसी निर्जरकूट से नौ करोड़ चार लाख तीस हजार मुनिराज सिद्धदशा को प्राप्त हुये ।

अयोध्यानगरी यत्र सर्वलोकनमस्कृता ।

रामचन्द्रोऽभवद्राजा तस्यां शीलनिधिर्महान् ॥५९॥

अन्वयार्थ - यत्र = जहाँ, सर्वलोकनमस्कृता = सर्व लोक से नमस्कृत, अयोध्यानगरी = अयोध्यानगरी, (आसीत् = थी), तस्यां = उस नगरी में, शीलनिधिः = चरित्रवान्, महान् = महान्, राजा = राजा, रामचन्द्रः = रामचन्द्र, अभवत् = हुये थे ।

श्लोकार्थ - जम्बूद्वीप में सभी लोगों द्वारा नमस्कार किये जाने योग्य अयोध्या नगरी थी । उस नगरी में एक चरित्रवान् महान् राजा रामचन्द्र हुये थे ।

सीतादेवीति विख्याता महिषी तस्य चाभवत् ।

तया सहैव स धर्मात्मा बुभुजेन्द्रोपमं सुखम् ॥६०॥

अन्वयार्थ - तस्य = उस राजा की, महिषी = रानी, सीतादेवी = सीता देवी, इति = इस, (नाम्ना = नाम से), विख्याता = प्रसिद्ध, अभवत् = हुई थी, तया = उस रानी के, सहैव = साथ ही, सः = उस, धर्मात्मा = धर्मानुरागी राजा ने, इन्द्रोपमं = इन्द्र के समान, सुखं = सुख को, बुभुजे = भोगा ।

श्लोकार्थ - उस राजा की रानी सीता देवी विख्यात थीं । उसके ही साथ उस धर्मात्मा राजा रामचन्द्र ने इन्द्र सुख के समान सुखों का उपभोग किया ।

दुःखभिभूतस्तद्राज्ये नारीतत्र कश्चन भुवि ।

श्रुतोक्ताः नीतयस्तत्र सर्वैः प्रत्यक्षवीक्षिताः ॥६१॥

अन्वयार्थ - तद्राज्ये = उनके राज्य में, तत्र = उस, भुवि = भूमि पर, कश्चन = कोई, दुःखाभिभूतः = दुःखी, न = नहीं, आसीत् = था, तत्र = वहाँ, श्रुतोक्ताः = शास्त्रोक्त, नीतयः = नीतियाँ, सर्वैः = सभी लोगों द्वारा, प्रत्यक्षवीक्षिताः = साक्षात् ही देखी जाती थीं ।

श्लोकार्थ - उन राजा रामचन्द्र के राज्य में उस पृथ्वी पर अर्थात् अयोध्या में कोई भी दुःखी व्यक्ति नहीं था वहाँ शास्त्रोक्त नीतियाँ सारे लोगों द्वारा प्रत्यक्ष देखी जाती थीं ।

द्वावेकदा समायातौ तत्र विद्याधरौ तदा ।

अरिञ्जयस्तयोरेकः परो मित्रञ्जयः स्मृतः ॥६२॥

अन्वयार्थ - तदा = तभी, एकदा = एक दिन, द्वौ = दो, विद्याधरौ = विद्याधर, तत्र = वहाँ, समायातौ = आये, तयोः = उनमें, एक = एक, अरिञ्जयः = अरिञ्जय, परः = दूसरा, मित्रञ्जयः = मित्रञ्जय, स्मृतः = याद रखे गये ।

श्लोकार्थ - तभी एक दिन दो विद्याधर वहाँ आये । उनमें एक अरिञ्जय और दूसरा मित्रञ्जय था ।

तौ दीपितौ महादीप्त्या रत्नाभरणभूषितौ ।

रुद्धौ रत्नविमानाग्रे चायोध्यापुरमागतौ ॥६३॥

ववन्दाते महाराजं रामचन्द्रं मुदान्वितौ ।

मुनिसुव्रतनिर्वाणवृत्तमेतौ तदोचतुः ॥६४॥

अन्वयार्थ - महादीप्त्या = अत्यंत दीप्ति कान्ति से, दीपितौ = चमकते हुये, रत्नाभरणभूषितौ = रत्नों के आमूषणों से सुशोभित, रत्नविमानाग्रे = रत्नखचितविमान के अग्र भाग में, रुद्धौ = आरुढ़, तौ = उन दोनों विद्याधरों ने, महाराजं = महाराज, रामचन्द्रं = रामचन्द्र को, ववन्दाते = नमस्कार किया, तदा = तभी, मुदान्वितौ = प्रसन्नता से युक्त, एतौ = इन दोनों

ने, मुनिसुव्रतनिर्वाणवृत्तं = तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथ के निर्वाण का चरित्र, ऊचतुः = कही।

श्लोकार्थ - अत्यधिक कान्ति से चमकते रत्नाभूषणों से सुशोभित, रत्नखचित विमान के आगे भाग पर आरूढ़ और अयोध्या आये हुये उन दोनों विद्याधरों ने महाराज रामचन्द्र को नमस्कार किया तथा तभी हर्ष से भरे हुये इन दोनों विद्याधरों ने तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथ के मोक्ष गमन स्वरूप समाचार को सुनाया।

श्रुत्वा श्रीरामचन्द्रस्तु प्रमुद्यानन्दभेरिकाम् ।
प्रवादयित्वा सहितोऽसौ परिवारेण भव्यराट् ॥६५॥
मुनिसुव्रतपूजार्थं चचालोत्साहसंयुतः ।
अष्टादशाक्षौहिणीकदलेन सहितो विभुः ॥६६॥
पीताम्बरवनं गत्वा शुभस्थानं मुदान्वितः ।
देवं समवसारेऽथ मुनिसुव्रतं चार्चयत् ॥६७॥

अन्यार्थ - श्रुत्वा = सुनकर, प्रमुद्य = प्रसन्न होकर, (च = और), आनन्दभेरिकाम् = आनन्द भेरी को, प्रवादयित्वा = बजवाकर, परिवारेण = परिवार के, सहितः = साथ, असौ = उस, भव्यराट् = भव्य राजा, श्रीरामचन्द्रः = श्री रामचन्द्र, उत्साहसंयुतः = उत्साह युक्त होता हुआ, मुनिसुव्रतपूजार्थं = मुनिसुव्रतनाथ की पूजा करने के लिये, चचाल = चला, अथ = तत्पश्चात्, अष्टादशाक्षौहिणीकदलेन = अठारह अक्षौहिणी सैन्य बल के, सहितः = साथ, मुदान्वितः = प्रसन्नता से सहित, विभुः = राजा ने, शुभस्थानं = शुभ स्थान स्वरूप, पीताम्बरवनं = पीताम्बर वन को, गत्वा = जाकर, च = और, समवसारे = समवसरण में, देवं = भगवान्, मुनिसुव्रतं = मुनिसुव्रतनाथ को, आर्चयत् = पूजा।

श्लोकार्थ - चारण ऋद्धिधारी मुनिराजों द्वारा प्राप्त तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथ के निर्वाण समाचार को सुनकर वह भव्य राजा श्री रामचन्द्र

प्रसन्ना होकर तथा आनन्द भेरी बजवाकर परिवार के साथ सौत्साह पूर्वक मुनिसुव्रतनाथ की पूजा करने के लिये चल दिया तथा अठारह अक्षौहिणी सेना सहित शुभ स्थान स्वरूप पीताम्बर वन में जाकर उन्होंने हर्षान्वित होकर समवसरण में मुनिसुव्रतनाथ की पूजा की।

पश्चान्मधुवनं गत्वा च सबलः प्राप्यसत्वरम् ।

गतः सम्मेदशैलस्योपरि श्रीरामचन्द्रकः ॥६८॥

अन्वयार्थ - पश्चात् = उसके बाद, मधुवनं = मधुवन को, गत्वा = जाकर, च = और, सत्वरं = शीघ्रता को, प्राप्य = पाकर, (सः = वह), श्री रामचन्द्रकः = श्री रामचन्द्र, सबलः = सेना सहित, सम्मेदशैलस्य = सम्मेदशिखर के, उपरि = ऊपर, गतः = पहुँच गये।

श्लोकार्थ - तत्पश्चात् मधुवन जाकर और शीघ्रता करके वह श्री रामचन्द्र राजा सम्मेदपर्वत के ऊपर चले गये।

तत्र गत्वा निर्जराख्यं ववन्दे कूटमुत्तमम् ।

अष्टधा पूजयामास श्रद्धया परमं प्रभुः ॥६९॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस सम्मेदशिखर पर, गत्वा = जाकर, परमं = उत्कृष्ट, (च = और), उत्तमं = उत्तम, निर्जराख्यं = निर्जर नामक कूट को, प्रभुः = राजा ने, ववन्दे = प्रणाम किया, (च = और), श्रद्धया = श्रद्धा से, अष्टधा = आठ प्रकार के द्रव्यों से, पूजयामास = पूजा की।

श्लोकार्थ - उस सम्मेदशिखर पर जाकर उस राजा ने उस उत्तम और परम निर्जर कूट को प्रणाम किया तथा श्रद्धा सहित आठ प्रकार के द्रव्यों से उस कूट की पूजा की।

एवं सम्पूज्य सम्मेदकूटं तं निर्जराह्वयम् ।

कीर्तिसिन्धुरभूः श्रीमदामचन्द्रो महीपतिः ॥७०॥

अन्वयार्थ - एवं = इस प्रकार, तं = उस, निर्जराह्वयं = निर्जरा नामक,

सम्मदकूटं = सम्मदशिखर कूट को, सम्पूज्य = पूजकर,
महीपतिः = राजा, श्रीमद्रामचन्द्रकः = श्रीसम्पन्न रामचन्द्र,
कीर्तिसिन्धुः = कीर्ति के सागर अर्थात् अत्यधिक कीर्ति
सम्पन्न, अभूः = हो गये।

श्लोकार्थ - इस प्रकार उस निर्जर नामक सम्मद-शिखर की कूट को
पूजकर वह श्रीसम्पन्न राजा रामचन्द्र कीर्ति के सागर अर्थात्
अत्यधिक विख्यात हो गये।

एककोटिपञ्चचत्वारिंशल्लक्षोक्तकाः स्मृताः ।
सहस्रबाहुप्रभृतयो हि भव्याः भाग्यशालिनः ॥७१॥
दीक्षां गृहीत्वा तत्रैव तपस्तप्त्वा च दारुणम् ।
शुक्लध्यानसमारूढाः केवलज्ञानदीपिताः ॥७२॥
कर्मनिर्मूलकाः सर्वे कूटान्निर्जरनामकात् ।
मुक्ताः सिद्धपदं प्राप्य संसाराच्छोकसागरात् ॥७३॥

अन्वयार्थ - सहस्रबाहुप्रभृतयः = सहस्रबाहु आदि, एककोटिपञ्च-
चत्वारिंशल्लक्षोक्ताः = एक करोड़ पैंतालीस लाख, स्मृताः =
याद रखे गये, भाग्यशालिनः = भाग्यशाली, भव्याः = भव्य
जीव, दीक्षां = मुनिदीक्षा को, गृहीत्वा = ग्रहण करके, च =
और, तत्र = वहाँ, एव = ही, दारुणं = दारुण-कठिन, तपः
= तपश्चरण को, तप्त्वा = तप कर, शुक्लध्यानसमारूढाः =
शुक्लध्यान में आरूढ हुये, केवलज्ञानदीपिताः = केवलज्ञान
से चमकते-सुशोभित हुये, सर्वे = सभी, हि = ही,
शोकसागरात् = शोक-दुख समुद्र स्वरूप, संसारात् = संसार
से, कर्मनिर्मूलकाः = कर्मों को मूल से उखाड़ते हुये,
निर्जरनामकात् = निर्जर नामक कूट से, सिद्धपदं = सिद्ध
स्थान को, प्राप्य = प्राप्त करके, मुक्ताः = मुक्त, (अभूवन् =
हुये)।

श्लोकार्थ - एक करोड़ पैंतालीस लाख कहे गये सहस्रबाहु आदि
भाग्यशाली भव्य याद रखे गये जिन्होंने मुनिदीक्षा को ग्रहण

करके तथा वहीं दारुण तपश्चरण करके शुक्लध्यान में आरुढ़ हुये और केवलज्ञान से सुशोभित होते हुये वे सभी लोग शोक के सागर रवश्य संसार से कर्तों को मूल से उखाड़ते हुये निर्जर नामक कूट से सिद्धपद पाकर मुक्त हो गये ।

एवं प्रभावसम्पन्नो निर्जराख्यगिरीशितुः ।

कूटः सदावन्दनीयो भव्यैर्भवमुमुक्षुभिः ॥७४॥

अन्वयार्थ - एवं = इस प्रकार के, प्रभावसम्पन्नः = प्रभाव से संयुक्त, निर्जराख्यगिरीशितु कूटः = सम्मैदशिखर का निर्जरा नामक कूट, भवमुमुक्षुभिः = भव से मुक्त होने की इच्छा रखने वाले, भव्यैः = भव्य जीवों द्वारा, सदा = हमेशा, वन्दनीयः = प्रणाम करने योग्य, (अस्ति = है) ।

श्लोकार्थ - गिरीश सम्मैदशिखर का इस प्रकार के प्रभाव से सम्पन्न यह निर्जरा नामक कूट संसार से मुक्त होने की इच्छा रखने वाले मुमुक्षु भव्य जीवों द्वारा सदा ही वंदना करने योग्य है ।

कोटिप्रोषधफलभाक् तदावशादेककूटमभिवन्द्य ।

वन्देत योऽखिलानि प्राप्नोत्येवामृतालयं सुज्ञः ॥७५॥

अन्वयार्थ - यः = जो, कोटिप्रोषधफलभाक् = एक करोड़ प्रोषधोपवास का फल प्राप्त करने वाला, एककूटं = एक निर्जर कूट को, अभिवन्द्य = प्रणाम करके, अखिलानि = सम्पूर्ण कूटों को, वन्देत = प्रणाम करे, तत् = तो, आवशात् = अवश्य, एव = ही, (सः = वह), सुज्ञः = सुबुद्धि, अमृतालयं = मुक्ति अर्थात् सिद्ध पद को, प्राप्नोति = प्राप्त कर लेता है ।

श्लोकार्थ - जो कोई भी एक करोड़ प्रोषधोपवास के फल को प्राप्त करने का अधिकारी होकर उस एक निर्जर कूट की वंदना करके सम्पूर्ण कूटों की वन्दना करे तो अवश्य ही वह बुद्धिमान् मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ।

श्रीमुनिसुव्रत उदगात् यस्मात्कूटादनन्तसुखभूमिम् ।

भव्यैर्वन्दितमनिशं निर्जरकूटं नमामि तं भक्त्या ॥७६॥

अन्यार्थ - यस्मात् = जिस, कूटात् = कूट से, श्रीमुनिसुव्रतः = तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथ, अनन्तसुखभूमिम् = अनन्त सुखों की भूमि स्वरूप मुक्ति को, उदगात् = ऊर्ध्वगति से चले गये, तं = उस, भव्यैः = भव्य जीवों द्वारा, अनिशं = सदा, वन्दितम् = वन्दनीय, निर्जरकूटं = निर्जरकूट को, (अहं = मैं), भक्त्या = भक्ति से, नमामि = प्रणाम करता हूँ।

श्लोकार्थ - जिस कूट से तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथ अनन्त सुखों की शरण भूमि मुक्ति को चले गये और जो सतत भव्यों द्वारा वन्दनीय है ऐसी निर्जर कूट को मैं प्रणाम करता हूँ।

[इति श्रीदीक्षितब्रह्म नेमिदत्तविरचिते श्रीसम्मेदशिखरमाहात्म्ये तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथ वृत्तान्तसमन्वितं निर्जरकूट वर्णनं नामैकोनविंशतितमोऽध्यायः समाप्तः।]

[इस प्रकार श्री दीक्षितब्रह्म नेमिदत्त द्वारा रचित श्री सम्मेदशिखर माहात्म्य काव्य में तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथ के वृत्तान्त से युक्त निर्जरकूट का वर्णन करने वाला उन्नीसवां अध्याय समाप्त हुआ।]

अथ विंशमोऽध्यायः.

नत्वा नमिनाथपादाब्जे मुनिभ्रमरसेविते ।
 सदाविकसितप्रेम्णाहं मूर्ध्ना च भ्रमरायितम् ॥१॥
 नमिनाथचरितं वक्ष्ये तत्कूटगिरिवर्णनम् ।
 वर्णनात्छ्रवणात्पुंसः कोटिकल्मषनाशिनम् ॥२॥

अन्वयार्थ - अहं = मैं, सदा = हमेशा, विकसित प्रेम्णा = विकसित प्रेम से, मूर्ध्ना = मस्तक से, मुनिभ्रमरसेविते = मुनि रूपी भ्रमरों से पूजे जाते हुये, नमिनाथपादाब्जे = तीर्थङ्कर नमिनाथ के चरण कमलों को, नत्वा = नमस्कार करके, नमिनाथचरितं = तीर्थकर नमिनाथ के चरित को, च = और, तत्कूटगिरिवर्णनं = उनके कूट सहित गिरि के वर्णन को, वक्ष्ये = कहता हूँ, (तत् = वह), वर्णनात् = वर्णन करने से, श्रवणात् = सुनने से, पुंसः = पुरुष के, कोटिकल्मषनाशिनं = एक करोड़ पापों का नाश करने वाला, (अस्ति = है)।

श्लोकार्थ - मैं सदा ही प्रफुल्लित मन से सिर झुकाकर तीर्थङ्कर नमिनाथ के मुनिजनों द्वारा पूजे जाते हुये चरणकमलों को प्रणाम करके उनके ही चरित को तथा उनके मित्रधरकूट सहित पर्वतराज के वर्णन को कहता हूँ। कवि के अनुसार उसका वह कथन वर्णन करने से और सुनने से पुरुष के एक करोड़ पापों को नष्ट करने वाला है।

जम्बूद्वीपे महापुण्ये भारते क्षेत्र उत्तमे ।

विषयः कौसलाख्योऽस्ति प्रसिद्धो जगतीतले ॥३॥

अन्वयार्थ - जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, महापुण्ये = अत्यधिक पवित्र, भारते = भारत, क्षेत्रे = क्षेत्र में, उत्तमे = आर्यखण्ड में, विषयः = देश, कौसलाख्यः = कौसलनामक, अस्ति = है, जगतीतले = पृथ्वी पर।

श्लोकार्थ - जम्बूद्वीप के अति पावन भरत क्षेत्रवर्ती आर्यखण्ड में जगतीतल में विख्यात एक कौसल नाम का देश था।

कौशाम्बी नगरी यत्र यमुनापूरशोभिता ।

तस्याभिश्वाकुवंशेऽभूत् पार्थो नाम महीपतिः ॥४॥

सिद्धार्था तस्य महिषी महापुण्या शुचिव्रता ।

सुन्दरीणां सुन्दरी सा सत्कीर्तिपरिशोभिता ॥५॥

अन्वयार्थ - यत्र = जिस देश में, यमुनापूरशोभिता = यमुना नदी से सुशोभित, कौशाम्बी = कौशाम्बी, नगरी = नगरी, (आसीत् = थी), तस्यां = उस नगरी में, इक्ष्वाकुवंशे = इक्ष्वाकुवंश में, पार्थः = पार्थ, नाम = नामक, महीपतिः = राजा, अभूत् = हुआ था, तस्य = उस राजा की, सिद्धार्था = सिद्धार्थानामक, महापुण्या = पुण्यशालिनी, शुचिव्रता = ब्रत पालन करने से पवित्र, महिषी = रानी, (आसीत् = थी), सा = वह, सत्कीर्तिपरिशोभिता = सौन्दर्य की ख्याति से अच्छी तरह सुशोभित होती हुई, सुन्दरीणां = सुन्दरियों की, सुन्दरी = सुन्दरी, (आसीत् = थी)।

श्लोकार्थ - जिस कौसल देश में ही यमुना नदी से सुशोभित कौशाम्बी नामक नगरी थी। उस नगरी में ही इक्ष्वाकुवंश में एक पार्थ नामक राजा हुये। उनकी सिद्धार्था नामक रानी अत्यधिक पुण्यशालिनी और ब्रतों के पालन से पवित्र थी। वह अपनी सुन्दरता की कीर्ति से अच्छी तरह सुशोभित होती हुयी सुन्दरियों की भी सुन्दरी अर्थात् सर्वाधिक सुन्दरी थी।

तया सह महीपालो नीतिविन्नीतिवित्प्रियः ।

सांसारिक सुखं मुख्यं बुभोज चिरमुत्तमम् ॥६॥

अन्वयार्थ - तया = उसके, सह = साथ, नीतिवित् = नीतिज्ञ, नीतिवित्प्रियः = नीतिज्ञों के लिये प्रिय, महीपालः = राजा ने, चिरं = चिरकाल तक, मुख्यं = प्रमुख, उत्तमं = श्रेष्ठ, सांसारिकं = सांसारिक, सुखं = सुख को, बुभोज = भोगा।

श्लोकार्थ - उस रानी के साथ चिरकाल तक उस नीतिमान् और नीतिविद्

पुरुषों के लिये प्रिय राजा ने प्रमुख-उत्तम सांसारिक सुख को भोगा ।

मनोहरवने भूपः एकदासौ समागतम् ।

जगद्धराभिधं श्रुत्वा तमधावत्प्रवन्दितुम् ॥७॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, मनोहरवने = मनोहर वन में, जगद्धराभिधं = जगद्धर नामक मुनिराज को, समागतं = आया हुआ, श्रुत्वा = सुनकर, असौ = वह, भूपः = राजा, तम् = उनको, प्रवन्दितुं = नमस्कार करने के लिये, अधावत् = दौड़ा ।

श्लोकार्थ - एक दिन मनोहर वन में जगद्धर नामक मुनिराज को आया हुआ सुनकर, उनको प्रणाम करने के लिये दौड़ा ।

सम्प्राप्य तद्वनं धर्मं नत्वा मुनिराजं सुभक्तितः ।

अपृच्छत्श्रावकानां धर्मं स्वयं स शिवकामुकं ॥८॥

अन्वयार्थ - तद्वनं = उस वन को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, सुभक्तितः = सम्यक् भक्ति से, मुनिराजं = मुनिराज को, नत्वा = प्रणाम करके, सः = उस राजा ने, स्वयं = स्वयं ही, श्रावकानां = श्रावकों के लिये, शिवकामुकं = मोक्ष रूपी कार्य करने के योग्य, धर्मं = धर्म को, अपृच्छत् = पूछा ।

श्लोकार्थ - उस वन में पहुंचकर सम्यक् भक्ति से उस राजा ने मुनिराज को प्रणाम करके श्रावकों के लिये मोक्ष कार्य करने की योग्यता वाले गृहस्थ धर्म को पूछा ।

एकादशप्रतिमकधर्मः श्रावकाचारमुत्तमम् ।

निर्धार्य मुनिना प्रोक्तो लोकव्यवहितावहः ॥९॥

अन्वयार्थ - मुनिना = मुनिराज के द्वारा, उत्तमम् = उत्तम, श्रावकाचारं = श्रावकाचार का, निर्धार्य = निर्धारण करके, लोकव्यवहितावहः = लोक विभक्तता को वहन करने वाला, एकादशप्रतिमकधर्मः = ग्यारह प्रतिमाओं विषयक धर्म, प्रोक्तः = बताया गया ।

श्लोकार्थ - मुनिराज के द्वारा श्रावकों के उत्तम आचरण का निर्धारण करके लोक से भेद कराने वाला धर्म जो ग्यारह प्रतिमाओं के पालने से होता है उसे बताया ।



श्री नमिनाथ स्वामी-मित्रघर कूट

तं श्रुत्वा श्रावकानां स व्रतं जग्राह सादरम् ।

अभूत्सम्यक्त्वसम्पन्नः पालयन् धर्ममुत्तमम् ॥१०॥

अन्वयार्थ - तं = उस धर्म को, श्रुत्वा = सुनकर, सः = उसने, श्रावकानां = श्रावकों के, व्रतं = व्रत को, सादरं = आदर सहित, जग्राह = ग्रहण किया, (तथा च = और), उत्तमं = उत्तम, धर्म = धर्म को, पालयन् = पालते हुये, सम्यक्त्वसम्पन्नः = सम्यक्त्व से सम्पन्न अर्थात् सम्यग्दृष्टि, अभूत् = हो गया ।

श्लोकार्थ - उपर्युक्त बताये गये धर्म को सुनकर उस राजा ने श्रावकों के व्रत को आदर सहित ग्रहण कर लिया और उस उत्तम धर्म का पालन करते हुये सम्यग्दृष्टि हो गया ।

चक्रेऽसौ न्यायतो राज्यं प्रजापालस्तदार्तिहृत् ।

एकदा पुनरप्यागात् वनं शुचिमनोहरम् ॥११॥

अन्वयार्थ - तदार्तिहृत् = उनके दुःख को हरने वाले, प्रजापालः = प्रजापालक, असौ = उस राजा ने, न्यायतः = न्याय से, राज्यं = राज्य को, चक्रे = किया, एकदा = एक दिन, (असौ = वह), शुचिमनोहरं = पवित्रा मनोहर, वनं = वन को, पुनः = दुबारा, आगात् = आया ।

श्लोकार्थ - वहाँ आये हुये जगत् के लिये हितकारक या धन्य स्वरूप उन मुनिश्रेष्ठ को नमन करके और उनके मुख से शुद्ध मुनिधर्म को हर्ष सहित सुनकर वह राजा सावधान हो गया ।

श्रवणादेव वैराग्यं उत्पन्नं तस्य मानसे ।

तदा श्रीधरपुत्राय स्वराज्यं दत्तवान् नृपः ॥१३॥

अन्वयार्थ - श्रवणात् = सुनने से, एव = ही, तस्य = उसके, मानसे = मन में, वैराग्यं = वैराग्य, उत्पन्नं = उत्पन्न हुआ, तदा = तभी, नृपः = राजा ने, स्वराज्यं = अपना राज्य, श्रीधरपुत्राय = श्रीधर नामक पुत्र के लिये, दत्तवान् = दे दिया ।

श्लोकार्थ - मुनिधर्म सुनने से ही उस राजा के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया और उसने उसी समय अपना राज्य श्रीधर नामक पुत्र

को दे दिया ।

स्वयं वने तपोदीक्षां धृत्वा निर्वानमानसः ।

एकादशाङ्गभृन्नूनं दध्यौ षोडशभावनाः ॥१४॥

अन्वयार्थ - स्वयं = स्वयं ही, निर्वानमानसः = मोक्ष की इच्छा को मन में रखने वाले उस राजा ने, वने = वन में, तपोदीक्षां = तपश्चरण के लिये मुनिदीक्षा को, धृत्वा = धारण करके, नूनं = निस्सन्देह रूप से, एकादशाङ्गभृत् = ग्यारह अङ्गों को धारण करने वाला, (भृत्वा = होकर), षोडशभावनाः = सोलह कारण भावनाओं को, दध्यौ = मन में धारा अर्थात् सोचा ।

श्लोकार्थ - स्वयं मोक्षेच्छा से सम्पन्न मन वाले उस राजा ने उस वन में ही तपश्चरण हेतु दीक्षा को धारण करके ग्यारह अङ्गों के धारी होकर सोलह कारण भावनाओं का चिन्तन किया ।

बद्ध्वासौ तीर्थकृन्नाम स्वायुष्यान्ते मुनीश्वरः ।

कृत्वा शरीर त्यजनं हि प्राप स उत्तमं पदम् ॥१५॥

सर्वार्थसिद्धिदं नाम निर्मलानन्तसागरम् ।

गत्वा तत्राहमिन्द्रोऽभूत् देवदेवीकृतादरः ॥१६॥

अन्वयार्थ - तीर्थकृन्नाम = तीर्थङ्कर नाम-कर्म को, बद्ध्वा = बाँधकर, असौ = उन मुनिराज ने, स्वायुष्यान्ते = अपनी आयु के अन्त में, शरीरत्यजनं = शरीर का त्याग, कृत्वा = करके, निर्मलानन्तसागरं = निर्मलता के अनन्त सागर स्वरूप, सर्वार्थसिद्धिदं = सर्वार्थसिद्धि नाम = नामक, उत्तमं = उत्तम, पदं = स्थान को, प्राप = प्राप्त किया, तत्र = उस सर्वार्थसिद्धि में, गत्वा = जाकर, सः = वह, देवदेवीकृतादरः = देव देवियों द्वारा आदर पाने वाला, अहमिन्द्रः = अहमिन्द्र, अभूत् = हो गया ।

श्लोकार्थ - तीर्थङ्कर नामकर्म को बाँधकर उन मुनिराज ने अपनी आयु के अन्त में शरीर का त्याग करके निर्मलता के अनन्तसागर स्वरूप सर्वार्थसिद्धि को देने वाला उत्तम पद प्राप्त कर लिया । सर्वार्थसिद्धि में जाकर वह मुनिराज देव देवियों से पूजे जाते

हुये अहमिन्द्र हुये ।

त्रित्रिंशत्सरिदीशायुः तत्रासौ सुखसम्प्लुतः ।

तत्रोक्ताहारनिश्वासः सर्वकार्यक्षमोऽभवत् ॥१७॥

अन्वयार्थ - तत्र = वहाँ सर्वार्थसिद्धि में, असौ = वह अहमिन्द्र, त्रित्रिंशत्सरिदीशायुः = तेतीस सागर आयु वाला, सुखसम्प्लुतः = सुख से पूर्ण, तत्रोक्ताहारनिश्वासः = सर्वार्थसिद्धि में शास्त्रोक्त आहार और श्वासोच्छ्वास लेने वाला, (च = और), सर्वकार्यक्षमः = सारे कार्यों को करने में समर्थ, अभवत् = हुआ ।

श्लोकार्थ - सर्वार्थसिद्धि में वह अहमिन्द्र तेतीस सागर की आयु वाला, सुख से परिपूर्ण सभी कार्यों को करने में समर्थ तथा शास्त्रोक्त कथन के अनुसार आहार और श्वासोच्छ्वास लेने वाला हुआ ।

तत्रोच्चरन् सः धर्मान् हि सिद्धध्यानकृतादरः ।

षण्मासिकावशिष्टायुः तस्थौ त्रिजगदीश्वरः ॥१८॥

अन्वयार्थ - तत्र = वहाँ, धर्मान् = धर्मों को, उच्चरन् = उच्चारते हुये, सिद्धध्यानकृतादरः = सिद्धों के ध्यान में आदर करने वाला, त्रिजगदीश्वरः = तीनों लोकों का स्वामी तीर्थङ्कर होने वाला, सः = वह देव, षण्मासिकावशिष्टायुः = छह माह की अवशिष्ट आयु वाला, तस्थौ = हुआ ।

श्लोकार्थ - सर्वार्थसिद्धि में धर्मों की चर्चा करते हुये और सिद्ध भगवन्तों का आदर सहित ध्यान करते हुये तीनों लोक के स्वामी स्वरूप तीर्थङ्कर का जीव वह देव मात्र छह माह की शेष आयु वाला हुआ ।

तस्यावतारचरितं श्रवणात्पठनाद् ध्रुवम् ।

सर्वकार्यकरं वक्ष्येऽधुनाहं सिद्धये सताम् ॥१९॥

अन्वयार्थ - अधुना = अब, अहं = मैं, सतां = सज्जनों की, सिद्धये = सिद्धि के लिये, श्रवणात् = सुनने से, (च = और), पठनात् = पढ़ने से, ध्रुवं = निश्चित ही, सर्वकार्यकरं = सारे कार्यों को करने वाले, तस्य = उस अहमिन्द्र के, अवतारचरितं =

अवतरण के चरित्र को, वक्ष्ये = कहता हूँ।

श्लोकार्थ - अब मैं सज्जनों को सिद्धि लाभ के लिये उस देव के अवतरण की उस कथा को कहता हूँ जो मनुने और पढ़ने से निश्चित ही सारे कार्यों को सिद्ध करने वाली है।

द्वीपे जम्बूमति ख्याते क्षेत्रे भरतभूभृतः।

बङ्गदेशे पुरी रम्या मिथिलाख्या मता सताम् ॥२०॥

अन्वयार्थ - जम्बूमति = जम्बू वृक्ष वाले, द्वीपे = द्वीप में, ख्याते = विख्यात, भरतभूभृतः = भरत भूभाग के, क्षेत्रे = क्षेत्र में, बङ्गदेशे = बङ्गदेश में, सतां = सज्जनों के लिये, रम्या = रमणीय, मिथिलाख्या = मिथिला नाम की, पुरी = नगरी, मता = मानी गयी है।

श्लोकार्थ - जम्बूद्वीप में विख्यात भरत क्षेत्र के भूभाग में विद्यमान बङ्गदेश में मिथिला नामक नगरी सज्जनों के लिये परम रमणीय मानी गयी है।

इक्ष्वाकुवंशे तत्रासीत् काश्यपे गोत्र उत्तमे।

राजा विजयसेनाख्यो महाधर्मधुरन्धरः ॥२१॥

यप्राख्या तस्य महिषी पूर्णेन्दुसदृशानना।

विचित्रभाग्यराशिः सा बभूव नृपवल्लभा ॥२२॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस मिथिला नगरी में, इक्ष्वाकुवंशे = इक्ष्वाकुवंश में, उत्तमे = उत्तम, काश्यपे = काश्यप, गोत्रे = गोत्र में, विजयसेनाख्यः = विजयसेन नामक, महाधर्मधुरन्धरः = धर्म की धुरा को धारण करने वाला महान्, राजा = राजा, आसीत् = था, तस्य = उस राजा की, यप्राख्या = यप्रा नामक, पूर्णेन्दुसदृशानना = पूर्णमासी के चन्द्र समान मुख वाली, महिषी = रानी, (आसीत् = थी), विचित्रभाग्यराशिः = विचित्र भाग्य की स्वामिनी, सा = वह रानी, नृपवल्लभा = राजा के लिये प्रिय, बभूव = हुयी।

श्लोकार्थ - उस मिथिला नगरी में इक्ष्वाकुवंश में उत्तम काश्यप गोत्र में विजयसेन नामक एक महान् राजा हुआ जो धर्म की धुरा को

धारण करने वाला था। उस राजा की पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान मुख वाली वप्रा नामक एक रानी थी। विचित्र भाग्य की स्वामिनी वह रानी राजा के लिये अत्यधिक प्रिय थी।

तया सह महीपालः शच्या सह हरिर्यथा ।

अन्वभूद् भोगमतुलं पूर्वपुण्योद्भवं तथा ॥२३॥

अन्वयार्थ - यथा = जैसे, हरिः = इन्द्र ने, शच्या सह = शची के साथ, तथा = वैसे, महीपालः = राजा ने, तया = उस वप्रा रानी के, सह = साथ, पूर्वपुण्योद्भवं = पूर्वकालिकपुण्य से उद्भूत, अतुलं = अतुलनीय, भोगं = भोग को, अन्वभूत् = भोगा।

श्लोकार्थ - उस राजा ने वैसे ही उस रानी के साथ पूर्व पुण्य के उदय से उत्पन्न अतुलनीय भोगों का अनुभव किया जैसे इन्द्र शची के साथ करता है।

अर्वाक् षण्मासतस्तस्य वेश्मनीन्द्रनिदेशतः ।

रत्नवृष्टिं चकारोच्चैः धनेशो धन्यभागभूत् ॥२४॥

अन्वयार्थ - तस्य = उस राजा के, वेश्मनि = महल में, षण्मासतः = छह महिने से, अर्वाक् = पहिले ही, इन्द्रनिदेशतः = इन्द्र की आज्ञा से, धनेशः = कुबेर ने, उच्चैः = अत्यधिक, रत्नवृष्टिं = रत्नों की वर्षा को, चकार = किया, (च = और), धन्यभागः = धन्य भाग वाला, अभूत् = हुआ।

श्लोकार्थ - उस विजयसेन राजा के महल में छह महिने पहिले से ही इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने रत्नों की बरसात की और स्वयं धन्य हो गया।

अथाश्विने कृष्णपक्षे द्वितीयायां नृपप्रिया ।

अपश्यत् षोडशान्स्वप्नान् यामिन्यन्ते स्वभाग्यतः ॥२५॥

अन्वयार्थ - अथ = इसके बाद, आश्विने = आश्विनमास में, कृष्णपक्षे = कृष्णपक्ष में, द्वितीयायां = द्वितीया तिथि में, नृपप्रिया = राजा की प्रिय रानी ने, स्वभाग्यतः = अपने भाग्य से, यामिन्यन्ते = रात्रि के अंतिम प्रहर में, षोडशान् = सोलह, स्वप्नान् = स्वप्नों को, अपश्यत् = देखा।

श्लोकार्थ - इसके बाद आश्विन कृष्ण द्वितीया को रात्रि के अंतिम समय में उस रानी ने अपने भाग्य से सोलह स्वप्नों को देखा।

तदन्ते द्विरदं मत्तं विशदं सुभगाकृतिम् ।

मुखे प्रविष्टमालोक्य प्रबुद्धा पतिमन्वगात् ॥२६॥

अन्वयार्थ - तदन्ते = स्वप्नदर्शन के अन्त में, सुभगाकृतिं = सुन्दर आकार वाले, विशदं = स्वच्छधवल, मत्तं = मदोन्मत्त, द्विरदं = हाथी को, मुखे = मुख में, प्रविष्टं = प्रविष्ट होता हुआ, अवलोक्य = देखकर, प्रबुद्धा = जागी हुयी, (सा = वह), पतिम् = पति के, अन्वगात् = पास गयी।

श्लोकार्थ - स्वप्न दर्शन के अन्त में एक सुन्दर आकार वाले धवल और मदोन्मत्त हाथी को अपने मुख में प्रविष्ट होता हुआ देखकर वह रानी जाग गयी और पति के पास गयी।

तत्रोच्चार्य क्षितीद् स्वप्नान् तत्फलं पतिवक्त्रतः ।

श्रुत्वा सा वचनान्यत्यन्तं महामोदमवाप हि ॥२७॥

अन्वयार्थ - तत्र = वहाँ अर्थात् पति के यहाँ, क्षितीद् = राजा को, स्वप्नान् = स्वप्नों को, उच्चार्य = कहकर, पतिवक्त्रतः = पति के मुख से, तत्फलं = उसके फल को, (च = और), वचनानि = वचनों को, श्रुत्वा = सुनकर, सा = वह रानी, अत्यन्तं = अत्यधिक, महामोदं = महानन्द को, हि = ही, अवाप = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ - पति के सामने उन सोलह स्वप्नों को राजा से कहकर पति के मुख से उसके फल को और पति के वचनों को सुनकर वह रानी अत्यधिक विपुल आनन्द को प्राप्त हुई।

अहमिन्द्रोऽवतीर्यासौ तद्दिने त्रिजगत्पतिः ।

तद्गर्भं दिक्कुमारिभिः शोधितं प्राविशद्विभुः ॥२८॥

अन्वयार्थ - तद्दिने = उस दिन, त्रिजगत्पतिः = तीनों लोक के स्वामी स्वरूप, विभुः = तीर्थङ्कर प्रभु, असौ = वह, अहमिन्द्रः = अहमिन्द्र का जीव, अवतीर्य = उतरकर, दिक्कुमारिभिः = दिक्कुमारियों द्वारा, शोधितं = शोधे गये, तद्गर्भं = उस रानी के गर्भ में, प्राविशत् = प्रविष्ट हुआ।

श्लोकार्थ - उसी दिन तीनों लोक के स्वामी स्वरूप तीर्थङ्कर प्रभु होकर वह अहमिन्द्र का जीव स्वर्ग से अवतरित होकर दिक्कुमारियों द्वारा परिशोधित उस रानी के गर्भ में प्रविष्ट हुआ।

गर्भागते भगवति प्रसेदुर्हरितोखिलाः ।

ववुर्वाताश्च सुखदा अभूत्सुखमयं जगत् ॥२६॥

अन्वयार्थ - भगवति = भगवान् के, गर्भागते = गर्भ में आने पर, अखिलाः = सम्पूर्ण, हरितः = दिशायें, प्रसेदुः = प्रसन्न हुई, सुखदाः = सुख देने वालीं, वाताः = वायु-हवायें, ववुः = बहनें लगीं, च = और, जगत् = संसार, सुखमयं = सुखमय, अभूत् = हो गया।

श्लोकार्थ - भगवान् के गर्भ में आ जाने पर सारी दिशायें प्रसन्न हो गयीं, सुखदा वायु बहने लगी और सारा ही जगत् सुखमय हो गया।

दशम्यामथ चाषाढे कृष्णायां योग उत्तमे ।

अजीजनज्जगन्नाथं वप्रादेवी सुलक्षणा ॥३०॥

अन्वयार्थ - च = और, अथ = इसके बाद, सुलक्षणा = शुभ लक्षणों से युक्त, वप्रादेवी = वप्रा देवी ने, आषाढे = आषाढ़ मास में, कृष्णायां = कृष्णा, दशम्यां = दशमी के दिन, उत्तमे = उत्तम, योगे = योग होने पर, जगन्नाथं = जगत् के स्वामी तीर्थङ्कर को, अजीजनत् = उत्पन्न किया।

श्लोकार्थ - गर्भकाल पूरा हो जाने के बाद शुभ लक्षणों वाली उस रानी ने आषाढ कृष्णा दशमी को उत्तम योग होने पर तीर्थङ्कर शिशु को जन्म दिया।

पुरुहूतस्तदवेत्यैव जयध्वानं प्रजल्पकः ।

सामरस्तत्र तं प्रेम्णा समादाय जगत्प्रभुम् ॥३१॥

गतवान्स्वर्णशैलेन्द्रं तत्र संस्थाप्य तं विभुम् ।

विधिनास्नपयद्वार्षिः घटस्थैः क्षीरसिन्धुजैः ॥३२॥

अन्वयार्थ - तद् = प्रभु के जन्म को, अवेत्यैव = जानकर, एव = ही, जयध्वानं = जय ध्वनि को, प्रजल्पकः = उच्चारते हुये, सामरः

= देवताओं सहित, पुरुहूतः = इन्द्र, तत्र = वहाँ, (आगतः = आया), च = और, तं = उन, जगत्प्रभुं = तीर्थङ्कर प्रभु को, प्रेम्णा = प्रेम से, समादाय = लेकर, स्वर्णशैलेन्द्रं = सुमेरुपर्वत पर, गतवान् = गया, तत्र = सुमेरु की पाण्डुकशिला पर, तं = उन, विभुं = प्रभु को, संस्थाप्य = सुस्थापित करके, घटैः = घटों में स्थित, क्षीरसिन्धुनैः = क्षीरसागर जनित, वार्षिः = जल से, विधिना = विधिपूर्वक, अस्नापयत् = स्नान कराया।

श्लोकार्थ - प्रभु के जन्म को जानकर ही जयध्वनि को उच्चारते हुये देवताओं सहित इन्द्र वहाँ आ गया और प्रेम से जगत्प्रभु तीर्थङ्कर भगवान् को लेकर वह सुमेरु पर्वत पर चला गया। वहाँ पाण्डुकशिला पर उन प्रभु को स्थापित करके घटों में स्थित क्षीरसागर के जल से प्रभु का स्नान या अभिषेक किया।

ततो गन्धोदकस्नानं समाप्याथ विभूष्य च ।

कृत्वा तं स्वाङ्कगं भूपं प्रापयन्मिथिलां हरिः ॥३३॥

अन्वयार्थ - ततः = उसके बाद, गन्धोदकस्नानं = सुगन्धित जल से स्नान को, समाप्य = पूर्ण करके, अथ च = और, विभूष्य = अलंकारों से विभूषित करके, तं = उन, भूपं = तीर्थङ्कर शिशु राजा को, स्वाङ्कगं = अपनी गोद में बैठाया हुआ, कृत्वा = करके, हरिः = इन्द्र, मिथिलां = मिथिला नगरी को, प्रापयत् = प्राप्त हुआ।

श्लोकार्थ - उसके बाद अर्थात् क्षीर सागर के जल से स्नान या अभिषेक हो जाने के बाद पुनः प्रभु का सुगन्धित जल से अभिषेक करके और उन्हें वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करके इन्द्र उन शिशु राजा को अपनी गोद में बिठाकर मिथिला नगरी में आ गया।

नृपाङ्गणे तमारोप्य पुनः सम्पूज्य भविततः ।

पुरस्तत्र ताण्डवं कृत्वा प्रसाद्याखिलमण्डलं ॥३४॥

नमिनाथाभिधां कृत्वा तस्य त्रिजानधारिणः ।

मतेन भूभृतः स्वर्गं जगाम स सुरर्षभः ॥३५॥

अन्वयार्थ - नृपाङ्गणे = राजा के आँगन में, तं = उन प्रभु को, आरोप्य = विराजमान करके, भक्तितः = शक्ति से, पुनः = बार-बार, सम्पूज्य = पूजकर, तत्र = वहाँ, पुरः = उनके आगे, ताण्डवं = ताण्डव नृत्य को, कृत्वा = करके, (च = और), अखिलमण्डलं = सारे समूह को, प्रसाद्य = प्रसन्न करके, तस्य = उन, त्रिज्ञानधारिणः = तीन ज्ञान के धारी प्रभु का, नामिनाथाभिधां = नमिनाथ नाम, कृत्वा = करके, भूभृतः = राजा की, मतेन = अनुमति से, सः = वह, सुरर्षभः = देवताओं में श्रेष्ठ प्रभु, स्वर्ग = स्वर्ग को, जगाम = चला गया।

श्लोकार्थ - मिथिला में आकर राजा के आँगन में प्रभु को विराजमान करके तथा बार-बार उनकी पूजा करके वही उनके आगे उस इन्द्र ने ताण्डव नृत्य किया और सभी लोगों को प्रसन्न करके तीन ज्ञान के धारी उन शिशु तीर्थङ्कर का नामकरण नमिनाथ करके राजा की अनुमति से वह सुरेन्द्र स्वर्ग चला गया।

षड्लक्षाब्देषु यातेषु देवात् श्रीमुनिसुव्रतात् ।

तन्मध्यजीवी समभून्नमिनाथो जिनेश्वरः ॥३६॥

अन्वयार्थ - श्रीमुनिसुव्रतात् = तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथ, देवात् = भगवान् से, षड्लक्षाब्देषु = छह लाख वर्ष, यातेषु = बीतने पर, तन्मध्यजीवी = उस काल में ही जिनका जीवन है ऐसे, जिनेश्वरः = तीर्थङ्कर जिनेन्द्र, नमिनाथः = नमिनाथ, समभूत = हुये।

श्लोकार्थ - तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथ परमदेव के काल से छह लाख वर्ष बीत जाने पर तीर्थङ्कर जिनेन्द्र नमिनाथ उत्पन्न हुये थे। उनका काल उपरोक्त काल में ही अन्तर्भूत है।

सहस्रदशकाब्दामुरुन्नतो यं शरासनैः ।

पञ्चाधिकदशप्रोक्तैसतत्र जाम्बूनदद्युतिः ॥३७॥

सार्धद्विकसहस्राब्दं बालकेलीरतः प्रभुः ।

सम्यग्व्यतीत्य कौमार्यं यौवनाभिगमे तदा ॥३८॥

पैतृकं राज्यमापासौ राज्ये नीतिधरः सदा ।

प्रजाः ररक्ष धर्मेण पश्यंस्तासां विचेष्टितम् ॥३६॥

अन्वयार्थ - अयं = यह तीर्थङ्कर नमिनाथ, पञ्चाधिकदशप्रोक्तैः = पन्द्रह, शरासनैः = धनुषों से, उन्नतः = ऊँचे, जाम्बूनदद्युतिः = सोने के समान कांति वाले, सहस्रदशकाब्दायुः = दश हजार वर्ष आयु वाले, (आसीत् = थे), तत्र = उसमें, बालकेलीरतः = बालक्रीड़ाओं में लीन, प्रभुः = भगवान् ने, सार्धद्विकसहस्राब्दं = ढाई हजार वर्ष पर्यन्त, कौमार्यं = कुमारकाल को, सम्यक् = अच्छी तरह से, व्यतीत्य = बिताकर, यौवनाभिगमे = यौवन के आने पर, पैतृकं = पैतृक, राज्यं = राज्य को, आप = प्राप्त किया, तदा = तब, असौ = उन्होंने, तासां = प्रजाजनों की, विचेष्टितम् = चेष्टाओं को, पश्यन् = देखते हुये, सदा = हमेशा, राज्ये = राज्य पालन में, नीतिधरः = नीति का पक्ष लेते हुये, धर्मेण = धर्म से, प्रजाः = प्रजा का, ररक्ष = पालन किया ।

श्लोकार्थ - यह तीर्थङ्कर नमिनाथ पन्द्रह धनुष उन्नत काय वाले स्वर्ण समान कान्तिवाले और दश हजार वर्ष आयु वाले थे । बालक्रीड़ाओं में रत उन प्रभु ने ढाई हजार वर्ष पर्यन्त कौमार्य काल को अच्छी तरह से बिताकर युवावस्था आने पर पैतृक राज्य प्राप्त कर लिया । तब उन्होंने प्रजा जनों की चेष्टाओं को देखते हुये तथा राज्य संचालन में नीति को धारण किये हुये धर्मपूर्वक प्रजा का पालन किया उनकी रक्षा की ।

एकदा स प्रभुर्मोदाद्रम्यं वनमगात्स्वयम् ।

बसन्ते पुष्पितान् तत्र फलितानैक्षत द्रुमान् ॥४०॥

ततः सरोवरे देवो नलिनं मलिनं दृशा ।

समीक्ष्याथ विरक्तोऽभूत् तद्वत्सर्वं विचारयन् ॥४१॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, सः = वह, प्रभुः = राजा नमिनाथ, स्वयं = स्वयं ही, मोदात् = प्रसन्न होने से, रम्यं = सुन्दर, वनं = वन में, अगात् = चले गये, तत्र = उस वन में, (सः =

उन्होंने), बसन्ते = बसन्तऋतु में, पुष्पितान् = फूले हुये, फलितान् = फले हुये, द्रुमान् = वृक्षों को, ऐक्षत = देखा, ततः = उसके बाद, सरोवरे = एक तालाब में, नलिनं = एक कमल को, दृशा = नेत्र से, मलिनं = म्लान होते, समीक्ष्य = देखकर, अथ = और उसके आगे, कर्त्तुं = सभी पदार्थों को, तद्वत् = उसके समान, विचारयन् = विचार करते हुये, देवः = वह राजा, विरक्तः = वैराग्यसम्पन्न, अभूत् = हो गये।

श्लोकार्थ - एक दिन वह राजा नमिनाथ प्रसन्न होने से स्वयं ही एक सुन्दर वन में चले गये उस वन में उन्होंने ही वसन्तागमन पर फले फूले वृक्षों को देखा और उसके बाद एक तालाब में अपनी आँखों से एक कमल को म्लान होता देखकर तथा उसके समान ही सारे पदार्थ होते हैं ऐसा विचार करते हुये विरक्त हो गये।

ततो लोकान्तिकैरीशः स्तुतः शक्रादिवन्दितः ।

मुदा विजयसेनाख्यामारूह्य शिविकां वराम् ॥४२॥

गत्वा तपोवनं शीघ्रं राज्यं दत्त्वा स्वसूनवे ।

सहस्रावनिपैः सार्धमाषाढदशमी दिने ॥४३॥

कृष्णपक्षे स्वयं दीक्षामगृहीत् विश्वनन्दितः ।

मनःपर्ययत्वं स लेभे तत्क्षणतो ध्रुवम् ॥४४॥

अन्वयार्थ - ततः = उसके बाद, शीघ्रं = शीघ्र ही, स्वसूनवे = अपने पुत्र के लिये, राज्यं = राज्य को, दत्त्वा = देकर, लोकान्तिकैः = लोकान्तिक देवी द्वारा, स्तुतः = संस्तुत, (च = और), शक्रादिवन्दितः = इन्द्र आदि द्वारा नमस्कृत, ईशः = प्रभु, मुदा = प्रसन्नता से, वराम् = श्रेष्ठ, विजयसेनाख्याम् = विजयसेन नामक, शिविकां = पालकी पर, आरूह्य = चढ़कर, तपोवनं = तपोवन को, गत्वा = जाकर, कृष्णपक्षे = कृष्णपक्ष में, आषाढदशमीदिने = आषाढ मास की दशमी के दिन, सहस्रावनिपैः = एक हजार राजाओं के, सार्ध = साथ, विश्वनन्दितः = विश्वनन्दि से, स्वयं = खुद ही, दीक्षां = मुनिदीक्षा को, अगृहीत् = ग्रहण कर लिया, तत्क्षणतः =

तत्क्षण ही अर्थात् दीक्षा लेने के क्षण से ही उसी समय, सः = उन्होंने, ध्रुवं = ध्रुव, मनःपर्ययत्वं = मनःपर्ययज्ञान को, लेभे = प्राप्त किया।

श्लोकार्थ - उसके बाद जल्दी ही अपने पुत्र के लिये राज्य देकर लौकान्तिक देवों से स्तुत होते और इन्द्र आदि देवों से गमस्कार किये जाते हुये प्रभु ने हर्ष से विजयसेना नामक शुभ पालकी पर चढ़कर और वन में जाकर आषाढ़ वदी दशमी के दिन एक हजार राजाओं के साथ विश्वनन्दि से स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली तथा उसी समय उन्होंने ध्रुव मनःपर्ययज्ञान अर्थात् विपुलमति मनःपर्ययज्ञान को प्राप्त कर लिया।

ततो वीरपुरं गत्वा द्वितीयदिवसे प्रभुः ।

पूजितो दत्तभूपेन तत्राहारं समग्रहीत् ॥४६॥

अन्वयार्थ - ततः = उसके बाद, द्वितीयदिवसे = दूसरे दिन, वीरपुरं = वीरपुर नगर को, गत्वा = जाकर, दत्तभूपेन = दत्त नामक राजा से, पूजितः = पूजित होते हुये, प्रभुः = मुनिराज ने, तत्र = उस राजा के घर पर, आहारं = भोजन को, समग्रहीत् = ग्रहण कर लिया।

श्लोकार्थ - उसके बाद दूसरे दिन वीरपुर जाकर वहाँ दत्त राजा से पूजित होकर मुनिराज ने वहीं अर्थात् राजा के घर पर आहार ग्रहण किया।

प्रभोराहारसमये पञ्चाश्चर्याणि भूपतिः ।

समीक्ष्य मनसा नूनममन्यत तं जगदीश्वरम् ॥४६॥

अन्वयार्थ - प्रभोः = मुनिराज के, आहारसमये = भोजन करने के काल में, भूपतिः = राजा ने, पञ्चाश्चर्याणि = पाँच आश्चर्यों को, समीक्ष्य = देखकर, नूनं = निश्चित, मनसा = मन से, तं = उनको, जगदीश्वरं = जगत् का स्वामी, अमन्यत = माना।

श्लोकार्थ - मुनिराज के आहार काल में राजा ने पञ्चाश्चर्यों को देखकर निश्चित मन से उन्हें जगत् का स्वामी मान लिया।

वेलोपवासकृद्देवो नववर्षाणि मौनभाक् ।

तपः उग्रं चकारसौ घातिकर्मविनाशकम् ॥४७॥

तदैव वनमासाद्य भूयोऽसौ तपसोज्ज्वलम् ।

पूर्णिमायां मार्गशीर्षे केवलज्ञानवानभूत् ॥४८॥

अन्वयार्थ - वेलोपवासकृत् = वेला उपवास करने वाले, नववर्षाणि = नौ वर्ष तक, मौनभाक् = मौनव्रत धारण करने वाले, असौ = उन, देवः = मुनिराज ने, घातिकर्मविनाशकं = घातिकर्म का नाश करने वाले, उग्रं = कठोर, तपः = तपश्चरण को, चकार = किया, तदैव = उस ही समय, असौ = वह, भूयः = पुनः, तपसोज्ज्वलं = तपसोज्ज्वल या तपश्चरण से पवित्र, वनं = वन को, आसाद्य = प्राप्त करके, मार्गशीर्षे = मार्गशीर्ष माह में, पूर्णिमायां = पूर्णिमा के दिन, केवलज्ञानवान् = केवलज्ञानी, अभूत् = हुये ।

श्लोकार्थ - वेला नामक उपवास करने वाले और नौ वर्ष तक मौनव्रत का पालन वाले मुनिराज ने घातिकर्मों को नाश करने में समर्थ कठोर तपश्चरण किया । तभी वह प्रभु तप से उज्ज्वल अर्थात् पवित्र या तपसोज्ज्वल नामक वन में पहुंचकर मार्गशीर्ष माह की पूर्णिमा को केवलज्ञानी हो गये ।

ततः समवसारेऽसौ धनदादिविनिर्मिते ।

सुप्रभाद्यैस्तथा चान्यैः भव्यैर्द्वादशकोष्ठगैः ॥४९॥

स्तुतः सम्पूजितो भव्यजनैः सम्पृष्ट ईश्वरः ।

दिव्यध्वनिं समुत्सार्य चक्रे तत्त्वादिवर्णनम् ॥५०॥

अन्वयार्थ - ततः = केवलज्ञान होने के बाद, धनदादिविनिर्मिते = कुबेर आदि द्वारा रचित, समवसारे = समवसरण में, द्वादशकोष्ठगैः = बारह कोठों में स्थित, सुप्रभाद्यैः = सुप्रभ आदि गणधरों द्वारा, तथा च = और, अन्यैः = अन्य, भव्यैः = भव्यों द्वारा, स्तुतः = स्तुति किये जाते हुये, (च = और), सम्पूजितः = पूजे जाते हुये, भव्यजनैः = भव्य जनों से, सम्पृष्टः = पूछे जाते हुये, असौ = उन, दिव्यध्वनिं = ईश्वरः = भगवान् ने,

दिव्यध्वनि को, समुत्सार्य = खिराकर, तत्त्वादिवर्णनम् = तत्त्वादि का वर्णन, चक्रे = किया।

श्लोकार्थ - केवलज्ञान होने के बाद उन प्रभु ने कुबेर धनद आदि द्वारा रचित समवसरण में बारह कोठों में स्थित सुप्रभ आदि गणधरों और अन्य भव्यों द्वारा स्तुत एवं पूजित होते हुये तथा भव्य जनों द्वारा पूछे जाने पर दिव्यध्वनि खिराकर तत्त्व आदि का वर्णन किया।

धर्मक्षेत्रेषु सर्वेषु विहरन् स्वेच्छया प्रभुः ।

मासमात्रायुरगमत् सम्मेदाख्यं नगेश्वरम् ॥५१॥

अन्वयार्थ - सर्वेषु = सभी, धर्मक्षेत्रेषु = धर्मक्षेत्रों में, विहरन् = विहार करते हुये, मासमात्रायुः = एक मास आयु वाले प्रभुः = भगवान्, स्वेच्छया = स्वाधीन इच्छा से, सम्मेदाख्यं = सम्मेद नामक, नगेश्वरं = पर्वत पर, अगमत् = गये।

श्लोकार्थ - सभी धर्म क्षेत्रों में विहार करते हुये जब एक माह आयु शेष रही तो प्रभु अपनी स्वाधीन इच्छा से सम्मेदशिखर नामक पर्वत पर चले गये।

तत्र मित्रधराख्यं सत्कूटं सम्प्राप्य संस्थितः ।

समारुह्य वरं योगं प्रभुः सदध्यानलीनभृत् ॥५२॥

निष्कर्मसिद्धिं सम्प्राप्य मुनिभिः सह दीक्षितैः ।

केवलज्ञानतो भुक्तिमवाप भुवि सः दुर्लभाम् ॥५३॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस सम्मेदशिखर पर्वत पर, मित्रधराख्यं = मित्रधर नामक, सत्कूटं = सुन्दर कूट को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, वरं = शुभ, योगं = योग में, समारुह्य = लगकर, संस्थितः = स्थित हुये, सदध्यानलीनभृत् = शुभ-शुक्लध्यान में लीन, सः = उन, प्रभुः = भगवान् ने, दीक्षितैः = दीक्षित, मुनिभिः = मुनियों के, सह = साथ, केवलज्ञानतः = केवलज्ञान से, निष्कर्मसिद्धिं = निष्कर्म सिद्धि को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, भुवि = पृथ्वी पर, दुर्लभाम् = दुर्लभ, भुक्तिं = भुक्ति को, अवाप = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ - उस सम्मेदशिखर पर्वत पर मित्रधर नामक सुन्दर कूट पर पहुँचकर प्रभु स्थित हो गये। वहाँ श्रेष्ठ योग को धारण कर और शुभ-शुक्लध्यान में तल्लीन उन भगवान् ने केवलज्ञान से निष्कर्म सिद्धि को प्राप्त करके दीक्षित हुये मुनियों के साथ संसार में दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त कर लिया।

तदा त्वेकार्बुदनवशतकोट्युक्तकोट्युक्तकोटिका ।

पञ्चचत्वारिंशदुक्तलक्षा सप्तसहस्रिणः ॥५४॥

नवोक्तशतिका द्वयन्तचत्वारिंशमुद्युता तथा ।

एतया संख्यया प्रोक्ता भव्यास्तस्माच्छिवं गताः ॥५५॥

अन्वयार्थ - तदा = तभी, एकार्बुदनवशतकोट्युक्तकोटिका = एक अरब नौ सौ कोड़ा-कोड़ी, पञ्चचत्वारिंशदुक्तलक्षाः = पैंतालीस लाख, सप्तसहस्रिणः = सात हजार, नवोक्तशतिकाः = नौ सौ, द्वयन्तचत्वारिंशमुद्युताः = बयालीस, प्रसन्नता से युक्त, एतया = इस, संख्यया = संख्या से, प्रोक्ताः = कहे गये, भव्याः = भव्य जीव, तस्मात् = उस कूट से, शिवं = मोक्ष को, गताः = गये।

श्लोकार्थ - तभी एक अरब नौ सौ कोड़ा कोड़ी पैंतालीस लाख सात हजार बयालीस भव्य जीव हर्ष से युक्त होते हुये उसी कूट से मोक्ष को गये।

तत्पश्चान्मेघदत्ताख्यो नृपः सङ्घप्रपूजकः ।

यात्रां गिरिवरस्यामुष्य चक्रे तस्य कथोच्यते ॥५६॥

अन्वयार्थ - तत्पश्चात् = उसके बाद, सङ्घप्रपूजकः = चतुर्विधसंघ की पूजा करने वाले, मेघदत्ताख्यः = मेघदत्त नामक, नृपः = राजा ने, अमुष्य = इस, गिरिवरस्य = गिरिवर सम्मेदशिखर की, यात्रां = यात्रा, चक्रे = की थी, तस्य = उसकी, कथा = कथा, उच्यते = कही जाती है।

श्लोकार्थ - उसके बाद चतुर्विधसंघ के पूजक मेघदत्त नामक राजा ने इस गिरिवर सम्मेदशिखर की यात्रा की। उसकी कथा अब यहाँ कही जाती है।

जम्बूद्वीपे शुचिक्षेत्रे भारते योधनामभृत् ।
 देशो स्ति श्रीपुरे तत्र राजा नाम्ना महाव्रतः ॥५७॥
 अभवत्तस्य राज्ञी तु शिवसेनातिसुन्दरी ।
 तयोर्नाम्ना मेघदत्तः सुतो वंशप्रदीपकः ॥५८॥
 ज्ञानवान् गुणसम्पन्नः शीलवान् धर्मकर्मकृत् ।
 श्रीषेणा वल्लभा तस्य विख्याता रूपशालिनी ॥५९॥

अन्वयार्थ - जम्बूद्वीपे = जम्बूद्वीप में, शुचिक्षेत्रे = पवित्र क्षेत्र में, भारते = भारत में, योधनामभृत् = योध नाम वाला, देशः = देश, अस्ति = था, तत्र = उस देश में, श्रीपुरे = श्रीपुर नगर में, नाम्ना = नाम से, महाव्रतः = महाव्रत, राजा = राजा, अभवत् = हुआ था, तस्य = उस राजा की, शिवसेना = शिवसेना नामक, अतिसुन्दरी = अत्यधिक सौन्दर्यशालिनी, राज्ञी = रानी, (अभवत् = थी), तयोः = उन दोनों का, वंश प्रदीपकः = वंश का दीपक, मेघदत्तः = मेघदत्त नामक, ज्ञानवान् = ज्ञानी, शीलवान् = शीलसम्पन्न, गुणसम्पन्नः = गुणवान्, धर्मकर्मकृत् = धर्मकार्यों को करने वाला, सुतः = पुत्र, (अभवत् = हुआ), तस्य = उस मेघदत्त की, श्रीषेणा = श्रीषेणा नामक, विख्याता = विख्यात, रूपशालिनी = सौन्दर्यवती, वल्लभा = प्रिया, (आसीत् = थी) ।

श्लोकार्थ - जम्बूद्वीप के शुभ भरतक्षेत्र में योध नामक एक देश था । उस देश में श्रीपुर नामक नगर था जिसमें महाव्रत नाम से एक राजा हुआ था उसकी रानी शिवसेना अत्यंत सुन्दरी थी । उन दोनों का मेघदत्त नामक एक अत्यंत ज्ञानी, गुणी, शीलवान् और धर्मकार्यों को करने वाला पुत्र हुआ था । उस मेघदत्त की एक अत्यंत रूपवती और सुविख्यात प्रिया थी ।

एकदा विजयाख्येऽसौ वने क्रीडार्थमागमत् ।
 यस्तन्तसेननामानं मुनिं तत्र ददर्श हि ॥६०॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, असौ = वह मेघदत्त, विजयाख्ये = विजय नामक, वने = वन में, क्रीडार्थम् = क्रीड़ा करने के लिये,

आगमत् = आया, तत्र = वहाँ पर, हि = ही, वसन्तसेननामानं
= वसन्तसेन नामक, मुनिं = मुनिराज को, ददर्श = देखा।

श्लोकार्थ - एक दिन वह मेघदत्त विजय नामक वन में आया जहाँ पर
उसने वसन्तसेन नामक मुनिराज को देखा।

प्रणम्य सादरं राजा तं मुनिं तत्त्वदर्शिनम् ।

अपृच्छच्छ्रेयसो मार्गं मुमुक्षुर्मोक्षसिद्धये ॥६१॥

अन्वयार्थ - मुमुक्षुः = मोक्षागिलाषी, राजा = राजा ने, तं = उन, तत्त्वदर्शिनं
= तत्त्वदृष्टा, मुनिं = मुनिराज को, सादरं = आदर सहित,
प्रणम्य = प्रणाम करके, मोक्षसिद्धये = मोक्ष पाने के लिये,
श्रेयसः = मोक्ष के, मार्गं = मार्ग को, अपृच्छत् = पूछा।

श्लोकार्थ - उस मुमुक्षु राजा ने उन तत्त्व दृष्टा मनीषी मुनिराज को आदर
सहित प्रणाम करके मोक्ष पाने हेतु मोक्ष के मार्ग को पूछा।

तदा तेन मुनीशेन सम्मेदाख्यमहीभृतः ।

उक्तो मित्रधराख्यस्य कूटस्य महिमा गुरुः ॥६२॥

श्रुत्वा भूपोऽपि सन्तुष्यानन्दभेरीमवादायत् ।

महासार्थानुगः शीघ्रं यात्रायै स चचाल हि ॥६३॥

अन्वयार्थ - तदा = तभी, तेन = उन, मुनीशेन = मुनिराज द्वारा,
सम्मेदाख्यमहीभृतः = सम्मेदशिखर पर्वत के, मित्रधराख्यस्य
= मित्रधर नामक, कूटस्य = कूट की, गुरुः = अत्यधिक,
महिमा = महिमा, उक्तः = कही, श्रुत्वा = सुनकर, (च =
और), संतुष्य = संतुष्ट होकर, भूपः = राजा ने, अपि = भी,
आनन्दभेरीम् = आनन्दभेरी को, अवादायत् = बजवाया, (तथा
च = और), महासार्थानुगः = महासंघ का अनुगामी, सः =
वह राजा, शीघ्रं = जल्दी, हि = ही, यात्रायै = यात्रा के लिये,
चचाल = चल दिया।

श्लोकार्थ - तब उन मुनिराज के द्वारा सम्मेदाचल शिखर के मित्रधर कूट
की अत्यधिक महिमा बतायी गयी जिसे सुनकर और संतुष्ट
होकर राजा ने भी आनन्द भेरी बजवा दी और जल्दी ही वह
राजा महान् संघ का अनुगामी होकर यात्रा के लिये चल पड़ा।

नमेर्मित्रधरं कूटं तत्र गत्वा प्रसन्नधीः ।

अष्टधा पूजया पूज्यं पूजयामास भक्तिततः ॥६४॥

अन्वयार्थ - तत्र = वहाँ, गत्वा = जाकर, प्रसन्नधीः = प्रसन्नचित्त राजा ने, नमेः = तीर्थङ्कर नमिनाथ की, मित्रधरं = मित्रधर नामक, पूज्यं = पूज्य, कूटं = कूट को, भक्तिततः = भक्तिभाव से, अष्टधापूजया = अष्टविधसामग्रीयुक्त पूजा से, पूजयामास = पूजा अर्थात् उसकी पूजा की।

लोकार्थ - उस सम्मेदशिखर पर्वत पर जाकर प्रसन्न चित्त उस राजा ने नमिनाथ तीर्थङ्कर की पूज्य मित्रधरकूट की भक्तिभाव से अष्टविधद्रव्य सहित पूजा सामग्री से पूजा की।

स्तुतिं बहुविधां तस्य कृत्वा भव्यगुणान्वितः ।

दीक्षां तत्रैव सङ्ग्राह्यं तपस्सन्तप्य चोत्तमम् ॥६५॥

पञ्चचत्वारिंशदुक्तलक्षयुक्तार्बुदैर्युतैः ।

भव्यैः सह स पुण्यात्मा केवलावगमाद्भुताम् ॥६६॥

शुक्लध्यानसमरुढो जितमोहरिपुः कृती ।

अनन्तानन्तसुखदां मोक्षसिद्धिमवाप्तवान् ॥६७॥

अन्वयार्थ - भव्यगुणान्वितः = भव्य जीवों या भव्य गुणों से युक्त होते हुये, सः = उस, पुण्यात्मा = पवित्र आत्मा राजा ने, तस्य = उस कूट की, बहुविधां = अनेक प्रकार, स्तुतिं = स्तुति को, कृत्वा = करके, तत्रैव = उस ही कूट पर, दीक्षां = मुनिदीक्षा को, सङ्ग्राह्यं = लेकर, च = और, उत्तमं = सर्वोत्तम, तपः = तपश्चरण को, सन्तप्य = तप करके, शुक्लध्यानसमरुढः = शुक्लध्यान में संलग्न, जितमोहरिपुः = मोहरूपी शत्रु को जीतने वाले, कृती = कृतकार्य या प्रसन्न मुनिराज ने, पञ्चचत्वारिंशदुक्तलक्षयुक्तार्बुदैर्युतैः = पैंतालीस लाख अरब, भव्यैः = भव्यों के, सह = साथ, केवलावगमाद्भुतां = केवलज्ञान के चमत्कार वाली, अनन्तानन्तसुखदां = अनंत सुख को देने वाली, मोक्षसिद्धिं = मोक्षसिद्धि को, अवाप्तवान्

= प्राप्त किया।

श्लोकार्थ - भव्य जीवों के समूह से घिरे उस पवित्र आत्मा स्वरूप भेधदत्त राजा ने अनेक प्रकार से उस कूट की स्तुति करके वहीं पर ही मुनिदीक्षा को अङ्गीकार कर लिया तथा उत्तम तपश्चरण तप करके शुक्लध्यान में तल्लीन, मोह शत्रु पर विजय पाने वाले प्रसन्नचित्त मुनिराज ने पेंतालीस लाख अरब पद्यों के साथ केवलज्ञान के चमत्कार से पूर्ण एवं अनन्तसुख को देने वाली मोक्षसिद्धि को पा लिया।

वन्दनादेककूटस्य सिद्धिरेवं प्रकीर्तिता।

तस्मात्प्रवन्दन्तां भव्यः सर्वकूटान् प्रयत्नतः ॥६८॥

अन्वयार्थ - एककूटस्य = एक कूट की, वन्दनात् = वन्दना करने से, एवं = इस प्रकार, सिद्धिः = सिद्धि-उपलब्धि, प्रकीर्तिता = कही गयी, (अस्ति = है); तस्मात् = इसलिये, भव्याः = भव्य जीव, प्रयत्नतः = प्रयत्न से, सर्वकूटान् = सारी कूटों की, प्रवन्दन्ताम् = वन्दना करें।

श्लोकार्थ - एक कूट की वन्दना करने से इस प्रकार की सिद्धि कही गयी है इसलिये ही भव्य जीव प्रयत्न पूर्वक सारी कूटों की वन्दना करें।

तपःप्रभवपावकप्रकटितातुलज्वालिका-

प्रदाहितमहातमः पटललब्धसत्केवलः ॥६९॥

नमिः स भगवान्नातः शिवपदं यतस्तं सदा।

नमामि मित्रधरं कूटं श्रेयोऽभिषद्भान्वितम् ॥७०॥

अन्वयार्थ - यतः = जिस कूट से, तपःप्रभवपावकप्रकटितातुलज्वालिका-प्रदाहितमहातमः पटललब्धसत्केवलः = तपश्चरण से उत्पन्न अग्नि में प्रकट हुयी अतुलनीय ज्वालाओं से दग्ध महामोह रूपी अंधकार पटल के कारण पाया है केवलज्ञान जिन्होंने ऐसे, सः = वह, नमिः = नमिनाथ, भगवान् = भगवान्, शिवं

= मोक्ष को, गतः = गये, (अहं = मैं), तं = उस, श्रेयोभिशब्दान्वितं = श्रेयशब्दों को गुंजाने वाली, मित्रधरं = मित्रधर, कूटं = कूट को, सदा = हमेशा, नमामि = प्रणाम करता हूँ।

श्लोकार्थ - तपश्चरण से उत्पन्न अग्नि में प्रकट होने वाली अनुपम ज्वालाओं से मोह रूप महापटलों को जला देने से जिन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया है ऐसे भगवान् नमिनाथ जिस कूट से मोक्ष गये मैं श्रेयशब्दों को गुंजायमान करने वाली उस मित्रधर कूट को सदैव प्रणाम करता हूँ।

[इति दीक्षितब्रह्मनेमिदत्तविरचिते सम्मेदगिरिमहात्म्ये
तीर्थकृन्नमिनाथवृत्तान्तपुरस्सरं मित्रधरकूटवर्णनं
नाम विंशतिमोऽध्यायः समाप्तः।]

[इस प्रकार दीक्षित ब्रह्मनेमिदत्त द्वारा रचित सम्मेदगिरि माहात्म्य नामक काव्य में तीर्थङ्कर नमिनाथ के वृत्तान्त को सामने करते हुये मित्रधर कूट के वर्णन वाला बीसवां अध्याय समाप्त हुआ।]

अथैकविंशमोऽध्यायः

यत्पदाम्भोरुहध्यानात् पार्श्वगा सिद्धिरुत्तमा ।

मनसा तच्चरणपार्श्वः पार्श्वनाथमुपाश्रये ॥१॥

अन्वयार्थ - यत्पदाम्भोरुहध्यानात् = जिनके चरण कमलों के ध्यान से, उत्तमा = श्रेष्ठ, सिद्धिः = मुक्ति, पार्श्वगा = निकटवर्ती या समीपस्थ, (भवति = होती है), मनसा = मन से, तच्चरणपार्श्वः = उनके चरणों का पार्श्ववर्ती, (अहं = मैं), पार्श्वनाथम् = पार्श्वनाथ भगवान् के, उपाश्रये = पास आश्रय लेता हूँ।

श्लोकार्थ - जिनके चरणकमलों के ध्यान से सर्वश्रेष्ठ मुक्ति निकटवर्ती या समीपस्थ हो जाती है उन तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ का मैं मन से उनके चरणों का पार्श्ववर्ती होकर आश्रय लेता हूँ।

मुकुटं सप्तफणिकं यस्य भूर्ध्नि विराजते ।

नीलवर्णं तमीशानं पार्श्वनाथमुपास्महे ॥२॥

अन्वयार्थ - यस्य = जिनके, भूर्ध्नि = सिर पर, सप्तफणिकं = सात फणों वाला, मुकुटं = मुकुट, विराजते = सुशोभित होता है, तं = उन, नीलवर्णं = नीलवर्ण वाले, ईशानं = प्रभु, पार्श्वनाथं = पार्श्वनाथ की, (अहं = मैं), उपास्महे = उपसना करता हूँ।

श्लोकार्थ - जिनके सिर पर सात फणों वाला मुकुट सुशोभित होता है उन नील वर्ण वाले प्रभु पार्श्वनाथ की मैं उपासना करता हूँ।

कथां तस्य प्रवक्ष्येऽहं पञ्चकल्याणदीपिताम् ।

ततः तत्कूटमाहात्म्यं शृणुध्वं भव्यसत्तमाः ॥३॥

अन्वयार्थ - अहं = मैं, तस्य = उनकी, पञ्चकल्याणदीपितां = पञ्चकल्याणकों से सुशोभित, कथां = कथा को, ततः = उसके बाद अर्थात् कथा वर्णन के बाद, तत्कूटमाहात्म्यं = उनके कूट की महिमा को, प्रवक्ष्ये = कहता हूँ या कहूँगा, भव्यसत्तमाः = हे भव्य पुरुषों!, शृणुध्वं = सुनो।

श्लोकार्थ - अब मैं उन पार्श्वनाथ की पञ्चकल्याणकों से दीपित सुशोभित

कथा को कहता हूँ तथा उसके बाद पार्श्वनाथ की कूट के
माहात्म्य को कहूँगा हे भव्य पुरुषों! तुम सब उसे सुनो।

जम्बूनाम्नि महाद्वीपे भरतस्य महीयसः ।

क्षेत्रे काश्याभिधो देशो तत्र वाराणसी पुरी ॥४॥

मणिभिर्जडिता सा तु परितः सुखमाकरा ।

तत्रानन्दभिधो राजा राज्यं चक्रे सुखान्वितः ॥५॥

अन्वयार्थ - जम्बूनाम्नि = जम्बूनामक, महाद्वीपे = विशाल द्वीप में, महीयसः = अपेक्षाकृत बड़े, भरतस्य = भरत, क्षेत्रे = क्षेत्र में, काश्याभिधो = काशी नामक, देशः = देश, तत्र = वहाँ, वाराणसी = वाराणसी, पुरी = नगरी, आसीत् = थी, सा = वह, मणिभिः = मणियों से, जडिता = खचित, परितः = चारों तरफ से, आकरा = सुंदर, एवं खान स्वस्थ (आसीत् = थी), तत्र = उस नगरी में, सुखान्वितः = सुख से पूर्ण, आनन्दाभिधः = आनन्द नामक, राजा = राजा, सुखं = सुखपूर्वक, राज्यं = राज्य को, चक्रे = करता था।

श्लोकार्थ - जम्बू नामक विशाल द्वीप में अपेक्षा कृत बड़े भरत भूभाग के क्षेत्र में एक काशी नामक देश था उस देश में एक वाराणसी नगरी थी। वह नगरी रत्नों से परिपूर्ण और चारों तरफ से सुन्दर व श्रेष्ठ थी। उस नगरी में सुख से परिपूर्ण आनन्द नामक राजा सुखपूर्वक राज्य करता था।

एकस्मिन्समये राजा राज्यभोगसुखोदगमात् ।

ददर्श मुखमादर्शं प्रीत्युत्फुल्लेक्षणाम्बुजः ॥६॥

शुक्लकेशान्मुखे वीक्ष्य विरक्तोऽभून्महीपतिः ।

मुनिं समुद्रदत्ताख्यमभिवन्द्य तथैव सः ॥७॥

सकाशात्तस्य बहुभिः भूमिपालैस्समं मुदा ।

दीक्षां जग्राह पुण्यात्मा परमार्थप्रसिद्धये ॥८॥

अन्वयार्थ - एकस्मिन् = एक समये = समय, राज्यभोगसुखोदगमात् = राज्य भोग सम्बन्धी सुखों के उदभव से, प्रीत्युत्फुल्लेक्षणाम्बुजः = प्रसन्नता से विकसित नेत्र कमल वाले, राजा = उस राजा ने, आदर्शं = दर्पण में, मुखं = मुख को, ददर्श = देखा। तथा = और, मुखे = मुख में, शुक्लकेशान् = सफेद बालों

को, वीक्ष्य = देखकर, महीपतिः = राजा, विरक्तः = विरक्त, अभूत् = हो गया। सः = उस, पुण्यात्मा = पवित्र आत्मा वाले पुण्यशाली राजा ने, समुद्रदत्ताख्यं = समुद्रदत्त नामक मुनिराज को, अभिवन्द्य = प्रणाम करके, परमार्थप्रसिद्धये = परम अर्थ मोक्ष की प्रसिद्धि के लिये, तस्य = उनके, एव = ही, सकाशात् = पास से, बहुभिः = अनेक, भूमिपालैः = राजाओं के, समं = साथ, मुदा = प्रसन्नता से, दीक्षां = मुनिदीक्षा को, जग्राह = ग्रहण कर लिया।

श्लोकार्थ - एक समय राज्य के भोगोपभोगसुखों का उदगम होने के कारण प्रसन्नता से कमल सदृश खिले नेत्रों वाले उस राजा ने दर्पण में अपना मुख देखा तथा मुख पर सफेद बालों को देखकर वह विरक्त हो गया तथा उस पुण्यात्मा राजा ने समुद्रदत्त नामक मुनिराज को प्रणाम करके परम अर्थ मोक्ष को पाने के लिये उनके ही पास से अनेक राजाओं के साथ हर्षपूर्वक मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली।

एकादशाङ्गधारी वै कारणानि च षोडश ।

भावयित्वा बबन्धासौ गोत्रं तीर्थकृतं सताम् ॥६॥

अन्वयार्थ - च = और, एकादशाङ्गधारी = ग्यारह अङ्गों के धारी, असौ = उन मुनिराज ने, षोडश = सोलह, कारणानि = कारण भावनायें, भावयित्वा = भाकर, सतां = सज्जनों-भव्यों के लिये, तीर्थकृतं = तीर्थङ्कर, गोत्रं = महापुण्य को, बबन्ध = बाँध लिया।

श्लोकार्थ - तथा ग्यारह अङ्गों के धारी उन मुनिराज ने सोलहकारण भावनाओं को भाकर सज्जनों के कल्याणार्थ तीर्थङ्कर नामक महापुण्य बाँध लिया।

आयुषोन्ते च संन्यासात् प्राणत्यागं विधाय वै ।

प्राप्य हि प्राणताख्यंस्वर्गं चेन्द्रत्वं स समाप्नोत् ॥१०॥

अन्वयार्थ - च = तथा, सः = उन मुनिराज ने, आयुषः = आयु के, अन्ते = अन्त में, संन्यासात् = संन्यास मरण से, प्राणत्यागं = प्राणों का त्याग, विधाय = करके, च = और, वै = निश्चित, हि = ही, प्राणताख्यं = प्राणत नामक, स्वर्गं = स्वर्ग को, प्राप्य

= प्राप्त करके, इन्द्रत्वं = इन्द्र पद को, समाप्नोत् = प्राप्त किया।

श्लोकार्थ - तथा उन मुनिराज ने आयु के अन्त में संन्यासमरण से प्राणों का त्याग करके और प्राणत स्वर्ग को पाकर इन्द्र पद प्राप्त कर लिया।

तत्र प्रोक्तायुराहारश्वाससामर्थ्यवान् प्रभुः ।

तथैवेन्द्रसुखं भुञ्जन् सिद्धस्मरणकृद् बभौ ॥११॥

अन्वयार्थ - तथा = तथा, तत्र = वहाँ अर्थात् प्राणत स्वर्ग में, प्रोक्तायुराहारश्वाससामर्थ्यवान् = शास्त्रोक्त आयु, आहार और श्वासोच्छ्वास की सामर्थ्य वाला, प्रभुः = वह इन्द्र, इन्द्रसुखं = इन्द्र के सुख को, भुञ्जन् = भोगता हुआ, सिद्धस्मरणकृद् = सिद्ध भगवन्तों का स्मरण करने वाला, (भूत्वा = होकर), बभौ = सुशोभित हुआ।

श्लोकार्थ - तथा प्राणत स्वर्ग में, निर्दिष्ट आयु, आहार और श्वासोच्छ्वास आदि की सामर्थ्यवाला वह इन्द्र इन्द्रोचित सुखों का भोग करते हुये तथा सिद्ध भगवन्तों का ध्यान करने वाला होकर सुशोभित हुआ।

अथ तस्यावतारस्य कथां कल्याणप्रदां सताम् ।

श्रोतव्या पठितव्या च वक्ष्येहं सादरं बुधैः ॥१२॥

अन्वयार्थ - अथ = अब, सतां = सज्जनों-भव्यों के लिये, कल्याणप्रदां = कल्याणप्रद, तस्य = उस इन्द्र की, अवतारकथां = अवतरण कथा को, अहं = मैं, वक्ष्ये = कहता हूँ, बुधैः = विद्वानों द्वारा, (सा = वह), सादरं = आदर सहित, श्रोतव्या = सुनी जानी चाहिये, च = और, पठितव्या = पढ़ी जानी चाहिये।

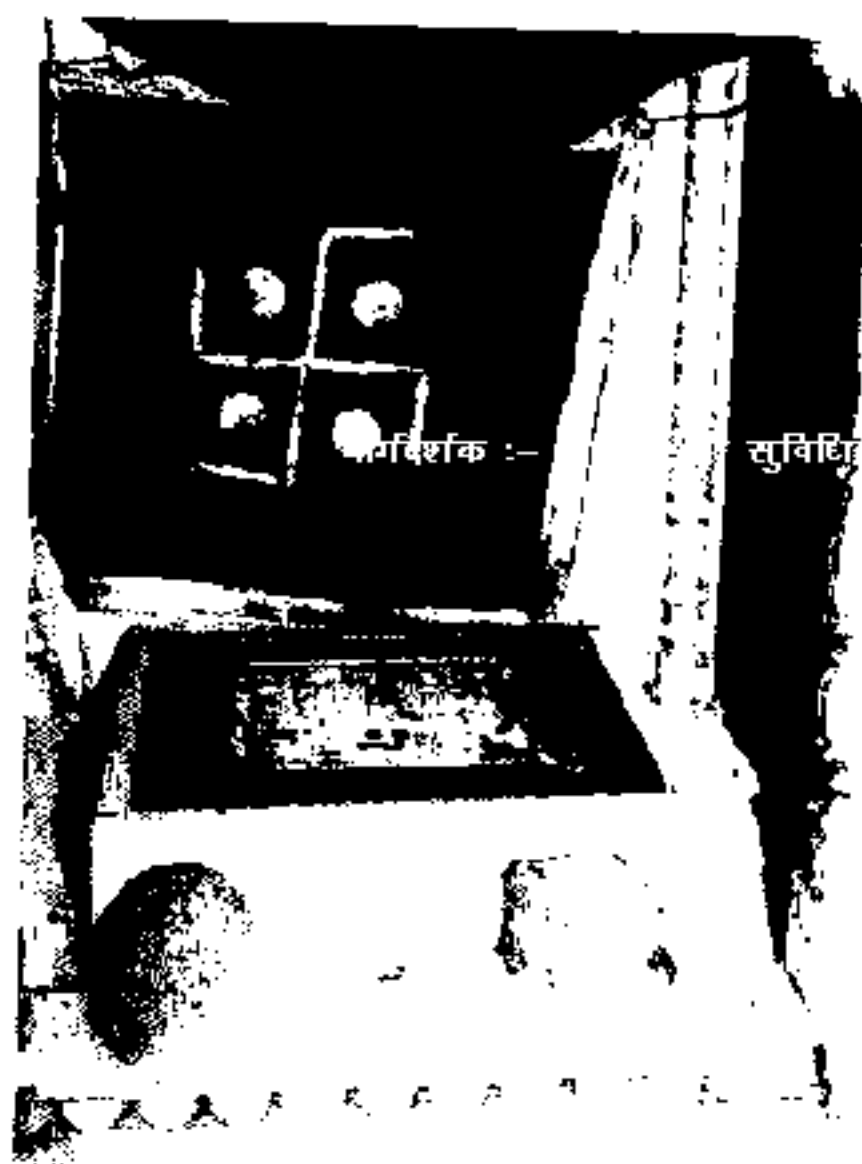
श्लोकार्थ - अब मैं सज्जनों के लिये कल्याणप्रद उस इन्द्र की अवतरण कथा को कहता हूँ। वह कथा विद्वानों द्वारा सुनी एवं पढ़ी जाना चाहिये।

पूर्वोक्तकाशीविषये वाराणस्यामभून्नृपः ।

विश्वसेनाभिधस्तस्य वामाख्या महिषी वरा ॥१३॥



श्री पार्श्वनाथ स्वामी-स्वर्णभद्र कुट



श्री पार्श्वनाथ स्वामी-स्वर्णभद्र कूट

अन्वयार्थ - पूर्वोक्तकाशीविषये = पूर्व वर्णित काशी नामक देश में, वाराणस्यां = वाराणसी नगरी में, विश्वसेनाभिधः = विश्वसेन नामक, नृपः = राजा, अभूत् = हुआ था, तस्य = उस राजा की, वामाख्या = वामा नामक, वरा = एक शुभ, महिषी = रानी, (आसीत् = थी)।

श्लोकार्थ - पूर्वोक्त काशी देश की वाराणसी नगरी में एक विश्वसेन नामक राजा हुआ था। उसकी शुभ लक्षणों वाली एक वामा नामक रानी थी।

तया सह महाराजो विश्वसेनो वरं सुखम् ।

अन्वभूत् पूर्वसुकृतप्रभावात्प्रतिवासरम् ॥१४॥

अन्वयार्थ - तया = उस रानी के, सह = साथ, महाराजः = महाराज, विश्वसेनः = विश्वसेन ने, पूर्वसुकृतप्रभावात् = पूर्व संचित पुण्य कर्म के उदय रूप प्रभाव से, प्रतिवासरं = प्रत्येक दिन, वरं = श्रेष्ठ-शुभंकर, सुखं = सुख को, अन्वभूत् = भोगा।

श्लोकार्थ - उस रानी के साथ उन महाराज विश्वसेन ने अपने पूर्वसंचित पुण्यकर्मों के फल के प्रभाव से प्रतिदिन शुभकारी सुख को भोगा।

तयोर्देवाधिपादेशात् किन्नराधिपतिस्तदा ।

ववर्ष बहुरत्नानि गृहे सुरगृहोपमे ॥१५॥

अन्वयार्थ - तदा = तभी, तयोः = उन दोनों राजा-रानी के, सुरगृहोपमे = देवताओं के घर के समान, गृहे = घर में, देवाधिपादेशात् = इन्द्र की आज्ञा से, किन्नराधिपतिः = किन्नरों के स्वामी कुबेर ने, बहुरत्नानि = बहुत रत्नों को, ववर्ष = बरसाया।

श्लोकार्थ - राजा और रानी दोनों के ही देवगृहतुल्य घर में इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने अनेक प्रकार के रत्नों की बरसात की।

ततो वैशाखमासेऽथ शुक्लपक्षे नृपप्रिया ।

द्वितीयायां निशान्ते साऽपश्यत् स्वप्नांश्च षोडश ॥१६॥

अन्वयार्थ - च = और, ततः = उसके बाद, अथ = शुभ सूचक अव्यय, वैशाखमासे = वैशाख माह में, शुक्लपक्षे = शुक्ल पक्ष में, द्वितीयायां = द्वितीया के दिन, निशान्ते = रात्रि के अन्तिम

प्रहर में, सा = उस रानी ने, षोडश = सोलह, स्वप्नान् = स्वप्नों को, अपश्यत् = देखा।

श्लोकार्थ - तथा उसके बाद शुभ वैसाख सुदी द्वितीया को रात्रि के अन्तिम प्रहर में उस रानी ने सोलह स्वप्नों को देखा।

मत्तस्तम्बेरमं तेषामन्ते दृष्ट्वा स्वयक्त्रगम् ।

प्रबुद्धा भर्तृनिकटं सागता देवी शुभानना ॥१७॥

अन्वयार्थ - तेषां = उन स्वप्नों के, अन्ते = अन्त में, स्वयक्त्रगं = अपने मुख में गये प्रविष्ट हुये, मत्तस्तम्बेरमं = मदोन्मत्त हाथी को, दृष्ट्वा = देखकर, प्रबुद्धा = जागी हुयी, सा = वह, शुभानना = सुन्दर मुख वाली, देवी = रानी, भर्तृनिकटं = पति के समीप, गता = गयी।

श्लोकार्थ - उन स्वप्नों के अन्त में अपने मुख में प्रविष्ट होते उन्मत्त हाथी को देखकर जागी हुई वह सुन्दर मुख वाली रानी राजा के पास गई

उत्कान्ता तत्र सा श्रुत्वा तत्फलानि तदाननात् ।

सन्धार्य जठरे देवं दिदीपे परमत्विषा ॥१८॥

अन्वयार्थ - तत्र = राजा के पास में, उत्कान्ता = प्रेम से भरी, सा = वह रानी, तदाननात् = राजा के मुख से, तत्फलानि = स्वप्नों के फल को, श्रुत्वा = सुनकर, (च = और), जठरे = गर्भ में, देवं = देव को, सन्धार्य = धारण करके, परमत्विषा = परम तेज से, दिदीपे = दीप्त हो गयी।

श्लोकार्थ - राजा के पास में प्रेम से भरी वह रानी उनके मुख से स्वप्नों का फल सुनकर तथा अपने गर्भ में देव को धारण करके परम तेज से सुशोभित हुई

ततः पौषस्य कृष्णायामेकादश्यां जगत्प्रभुः ।

तस्यामाविरभूत्प्राच्यां बालभानुरिव ज्वलन् ॥१९॥

अन्वयार्थ - ततः = गर्भकाल बीतने के बाद, पौषस्य = पौष माह की, कृष्णायाम् = कृष्णा, एकादश्यां = एकादशी के दिन, प्राच्यां = पूर्व दिशा में, बालभानुः इव = शिशु अर्थात् उदित होते सूर्य के समान, ज्वलन् = प्रकाशमान होते हुये, जगत्प्रभुः =

जगत् के स्वामी तीर्थङ्कर, तस्यां = उस रानी में, अर्थात् उसके गर्भ से, आविरभूत = उत्पन्न हुये।

श्लोकार्थ - गर्भकाल बीत जाने पर पौष कृष्ण ग्यारस के दिन पूर्व दिशा में सूर्योदय के समान प्रकाशित होते हुये जगत्प्रगु तीर्थङ्कर ने रानी के गर्भ से जन्म लिया।

तदा सौधर्मकल्पेशः सुरैः सह मुदान्वितः ।

तत्रागत्य समादाय प्रभुं स्वर्णादिमाप्तवान् ॥२०॥

अन्वयार्थ - तदा = तभी, सुरैः = देवताओं के, सह = साथ, तत्र = वहाँ, आगत्य = आकर, मुदान्वितः = प्रसन्नता से भरा, सौधर्मकल्पेशः = सौधर्म स्वर्ग का स्वामी इन्द्र, प्रभुं = तीर्थङ्कर प्रभु को, समादाय = लेकर, स्वर्णादि = सुमेरु पर्वत को, आप्तवान् = प्राप्त हुआ।

श्लोकार्थ - तभी वहाँ आकर देवताओं के साथ प्रसन्नचित्त सौधर्म इन्द्र ने प्रभु को ग्रहण किया और सुमेरु पर्वत पर लेकर पहुँच गया।

तत्राभिषिच्य विधिवद् वार्षिः क्षीरोदसम्भवैः ।

भूयो. गन्धोदकेनाथ सम्भूष्य वरभूषणैः ॥२१॥

पुनर्वाराणसीं प्राप्य देवं भूपाङ्गणे हरिः ।

मुदा संस्थाप्य सम्पूज्य विधायामुतताण्डवम् ॥२२॥

पार्श्वनाथाभिधां तस्य कृत्वा भूपमलेन सः ।

जयध्वनिं समुच्चार्य सदेवो दिवमन्वगात् ॥२३॥

अन्वयार्थ - तत्र = वहाँ सुमेरु स्थित पाण्डुक शिला पर, क्षीरोदसम्भवैः = क्षीरसागर निकाले गये, वार्षिः = जल से, विधिवद् = विधि के अनुसार, (प्रभुं = प्रभु का), अभिषिच्य = अभिषेक करके, अथ = और, गन्धोदक = सुगन्धित जल से, भूयः = फिर, (अभिषिच्य = अभिषेक करके), वरभूषणैः = शुभ अलङ्करणों से, सम्भूष्य = अलङ्कृत करके, पुनः = फिर से, वाराणसी = वाराणसी नगरी को, प्राप्य = प्राप्त करके, भूपाङ्गणे = राजा के आंगन में, देवं = प्रभु को, संस्थाप्य = स्थापित करके, मुदा = हर्ष से, सम्पूज्य = पूजा करके, अमुतताण्डवं = आश्चर्यकारी ताण्डव नृत्य को, विधाय = करके, (च = और), तस्य = उन प्रभु का, पार्श्वनाथाभिधां = पार्श्वनाथ नामकरण, कृत्वा = करके, जयध्वनिं = जयध्वनि को, समुच्चार्य =

उच्चारित करके, भूपमतेन = राजा की अनुमति से, सदेवः = देवताओं सहित, सः = वह, हरिः = इन्द्र, दिवम् = स्वर्ग को, अन्वगात् = चला गया।

श्लोकार्थ - सुमेरु पर्वत पर स्थित पाण्डुक शिला पर क्षीर सागर से लाये जल द्वारा विधिपूर्वक भगवान् का अभिषेक करके तथा पुनः सुगन्धित जल से अभिषेक करके, दिव्य आभूषणों से उन्हें सुसज्जित करके वह इन्द्र पुनः वाराणसी आ गया। वहाँ राजा के आंगन में प्रभु को विराजमान करके हर्ष सहित उनकी पूजा करके, आश्चर्यकारी ताण्डव नृत्य करके उनका पार्श्वनाथ नाम रखकर, और जयघोष करके वह इन्द्र राजा की अनुमति से देवताओं सहित स्वर्ग चला गया।

त्रियुक्ताशीतिसाहस्रसार्धेषु सप्तशतेषु ।

गतेष्वब्देषु नेमितो जिनात्पाश्वेश्वरप्रभुः ॥२४॥

तदन्तरायुः समभूत भक्तकल्याणदायकः ।

शतवर्षप्रमाणायुः सप्तहस्तोन्नतः तथा ॥२५॥

अन्वयार्थ - नेमितः = नेमिनाथ, जिनात् = जिनेन्द्र से, त्रियुक्ताशीति-साहस्रसार्धेषु सप्तशतेषु = तिरासी हजार साढ़े सात सौ, अब्देषु = वर्ष, गतेषु = बीत जाने पर, तदन्तरायुः = उसके ही अन्दर आयु वाले, भक्तकल्याणदायकः = भक्तों को कल्याणकारक, शतवर्षप्रमाणायुः = एक सौ वर्ष प्रमाण आयु वाले, तथा = और, सप्तहस्तोन्नतः = सात हाथ उन्नत देह वाले, पाश्वेश्वरप्रभुः = पार्श्वनाथ जिनेश्वर, समभूत = उत्पन्न हुये।

श्लोकार्थ - तीर्थङ्कर नेमिनाथ से तिरासी हजार साढ़े सात सौ वर्ष बीत जाने पर उसके अन्दर ही जिनकी आयु परिगणित है ऐसे भक्तों को कल्याण-स्वरूप, सौ वर्ष की आयु वाले और सात हाथ ऊँची काया वाले पार्श्वनाथ जिनेश्वर हुये थे।

कौमारकाले क्रीडार्थं गतो विपिनमेकदा ।

तत्रापश्यत् त्रिलोकेशः कमठाख्यं तपस्विनं ॥२६॥

पञ्चाग्नितपसा तप्तं विशुद्धज्ञानवर्जितम् ।

जिनागमबहिर्भूतमासुरं तपसि स्थितम् ॥२७॥

नागनागनिकायुक्तं काष्ठमेकं धनञ्जये ।
ज्वलन्तं वीक्ष्य तज्ज्ञात्वा दग्धं प्राणिद्वयं प्रभुः ॥२८॥
अवधिज्ञानतो चैतमुक्त्वा कं चित्तपोधरम् ।
तत्क्षणात् स्वयमीशानो वैराग्यं प्राप्तवान् महत् ॥२९॥

अन्वयार्थ - एकदा = एक दिन, कौमारकाले = कुमार अवस्था में, क्रीडार्थं = क्रीडा के लिये, विपिनम् = वन में, गतः = गये, त्रिलोकेशः = तीन लोक के स्वामी पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर ने, विशुद्धज्ञानवर्जितं = सम्यग्ज्ञान से रहित, पञ्चाग्नितपसा = पञ्चाग्नितपश्चरण से, तप्तं = तप्त हुये, जिनागमबहिर्भूतं = जिनागम से पृथक् अन्य, आसुरं = आसुरि विद्या स्वरूप, तपसि = तप में, स्थितं = स्थित, कमठाख्यं = कमठ नामक, तपस्विनं = एक तपस्वी को, अपश्यत् = देखा । (तत्र = वहाँ), धनञ्जये = अग्नि में, नागनागनिकायुक्तं = नाग नागिनी से युक्त, एकं = एक, ज्वलन्तं = जलते हुये, काष्ठं = काष्ठ को, वीक्ष्य = देखकर, अवधिज्ञानतः = अवधिज्ञान से, तत् = उन, प्राणिद्वयं = सर्प सर्पिणी दोनों प्राणियों को, दग्धं = दग्ध जला हुआ, ज्ञात्वा = जानकर, एतं = इस, तपोधरं = तपस्वी को, किञ्चित् = थोड़ा कुछ, उक्त्वा = कहकर, स्वयं = स्वयं ही, ईशानः = समर्थ, प्रभुः = तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ, तत्क्षणात् = उसी क्षण, महत् = अत्यधिक, वैराग्यं = वैराग्य को, प्राप्तवान् = प्राप्त हुये ।

श्लोकार्थ - एक दिन कुमार अवस्था में क्रीडा के लिये वन को गये तीनों लोकों के स्वामी प्रभु ने सम्यग्ज्ञान शून्य, पञ्चाग्नितप में संतप्त, जिनागम बाह्य आसुरि विद्या वाले, तप में लीन एक कमठ नामक तपस्वी को देखा । वहाँ अग्नि में नाग नागिनी से युक्त एक जलते हुये काष्ठ को देखकर अवधिज्ञान से उन दोनों प्राणियों को जलता हुआ जानकर तथा इस तपस्वी को थोड़ा कुछ कहकर स्वयं ही समर्थ प्रभु पार्श्व कुमार तत्क्षण ही अत्यधिक वैराग्य को प्राप्त हुये ।

लौकान्तिकास्तदागत्य कौमारावसरे प्रभुम् ।
विरक्तं संसृतेर्वीक्ष्य तुष्टुयुः बहुधा प्रभुम् ॥३०॥

अन्वयार्थ - तदा = तभी, लौकान्तिकाः = लौकान्तिक देवों ने, आगत्य = आकर, कौमारावसरे = कुमारावस्था में, संसृतैः = संसार से, विरक्तं = विरक्त हुये, प्रभुं = प्रभु को, वीक्ष्य = देखकर, बहुधा = अनेक प्रकार से, प्रभुं = स्वामी की, तुष्टुवुः = स्तुति की।

श्लोकार्थ - उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर प्रभु को कुमारावस्था में ही संसार से विरक्त जानकर देखकर अनेक प्रकार से उनकी स्तुति की।

देवेन्द्रोऽपि तदा प्राप्तो जयनिर्घोषमुच्चरन् ।

विमलां शिबिकां तस्य पुरस्कृत्य ननाम तम् ॥३१॥

अन्वयार्थ - तदा = उसी समय, (तत्र = वहाँ), प्राप्तः = उपस्थित हुये, देवेन्द्रः = इन्द्र ने, अपि = भी, जयनिर्घोषम् = जयकार के घोष को, उच्चरन् = उच्चारते हुये, विमलां = विमला, शिबिकां = पालकी को, तस्य = उन प्रभु के, पुरस्कृत्य = सामने करके, तं = उनको, ननाम = प्रणाम किया।

श्लोकार्थ - उसी समय वहाँ उपस्थित हुये इन्द्र ने भी जयकार करते हुये विमला नाम की पालकी प्रभु के समने रखकर उनको प्रणाम किया।

तामारुह्य ततो देवः सहेतुकवनं तदा ।

सम्प्राप्तो मोक्षदीक्षायै वैराग्यश्रियमुद्वहन् ॥३२॥

पौषकृष्णदशम्यां स त्रिशतैर्भूमिनायकैः ।

दीक्षां गृहीतवान्सार्धं तत्र मोक्षपदं सताम् ॥३३॥

अन्वयार्थ - ततः = उसके बाद, वैराग्यश्रियम् = वैराग्य लक्ष्मी को, उद्वहन् = धारण किये हुये, देवः = प्रभु, ताम् = उस पालकी पर, आरुह्य = चढ़कर, मोक्षदीक्षायै = मोक्ष दीक्षा के लिये, तदा = तभी, सहेतुकवनं = सहेतुक वन को, सम्प्राप्तः = प्राप्त हुये, तत्र = उस वन में, सः = उन्होंने, पौषकृष्णदशम्यां = पौषकृष्णा दशमी के दिन, त्रिशतैः = तीन सौ, भूमिनायकैः = राजाओं के, सार्धं = साथ, दीक्षां = मुनिदीक्षा को, गृहीतवान् = ग्रहण कर लिया। मोक्षपदं = मोक्षपद, सतां = सज्जनों-साधुओं के लिये, (भवति = होता है)।

श्लोकार्थ - उसके बाद वैराग्य लक्ष्मी को धारण किये प्रभु इन्द्र द्वारा लायी

गयी पालकी पर चढ़कर मोक्ष पाने हेतु दीक्षा के लिये सहेतुक वन में पहुंच गये। वहाँ उन्होंने पौष कृष्णा दशमी के दिन तीन सौ राजाओं के साथ मुनिदीक्षा को ग्रहण कर लिया क्योंकि सद्यमुच ही मोक्षपद सज्जनों साधुओं को ही प्राप्त होता है साधुताविहीन लोगों को नहीं।

चतुर्थबोधं सम्प्राप्य तथैवाहिन द्वितीयके ।

भिक्षायै गुल्मनगरं सम्प्राप्तोऽयं यदृच्छया ॥३४॥

अन्वयार्थ - तदैव = तभी ही, चतुर्थबोधं = चौथे मनःपर्ययज्ञान को, सम्प्राप्य = प्राप्त करके, अयं = यह मुनिराज, द्वितीयके = दूसरे, अहिन = दिन, यदृच्छया = स्वाधीन संयोगवश, भिक्षायै = आहार के लिये, गुल्मनगरं = गुल्म नगर को, सम्प्राप्तः = प्राप्त हुये।

श्लोकार्थ - तभी चौथे :मनःपर्ययज्ञान को प्राप्त करके यह मुनिराज आहार हेतु सहज संयोगवश गुल्म नगर में पहुंच गये।

धन्याख्यो नृपतिस्तत्र गोक्षीराहारमुत्तमम् ।

ददौ सम्पूज्य तं भक्त्या पर्यवृत्तार्घ्यञ्चकम् ॥३५॥

अन्वयार्थ - तत्र = वहाँ उस नगर में, धन्याख्यः = धन्य नामक, नृपतिः = राजा ने, भक्त्या = भक्ति भाव से, तं = उनको, सम्पूज्य = पूजकर, उत्तमम् = उत्तम, गोक्षीरम् = गोदुग्ध, आहारम् = आहार को, ददौ = दिया, (च = और), आश्चर्यपञ्चकम् = पंचाश्चर्यों को, अपश्यत् = देखा।

श्लोकार्थ - उस नगर में धन्य नामक राजा ने भक्तिभाव से उन मुनिराज की पूजा करके उन्हें गोदुग्ध का उत्तम आहार दिया और पंचाश्चर्यों को देखा।

तपोवनमथ प्राप्य वषमेकं स मौनभाक् ।

महत्तीव्रं तपस्तेपे सहमानो परीषहान् ॥३६॥

अन्वयार्थ - अथ = इसके बाद, तपोवनम् = तपोवन को, प्राप्य = प्राप्तकर, परीषहान् = परीषहों को, सहमानः = सहते हुये, मौनभाक् = मौन व्रत वाले, सः = उन मुनिराज ने, एकं = एक, वर्ष = वर्ष तक, तीव्रं = तीव्र उग्र, महत् = महान्, तपः = तपश्चरण को, तेपे = तपा।

श्लोकार्थ - इसके बाद उन मुनिराज ने मौनव्रत सहित परीषहों को सहते

हुये एक वर्ष तक उग्र व महान् तपश्चरण किया।

चैत्रकृष्णप्रतिपदि तपस्सन्दग्धकल्मषः ।

देवदारुतले ज्ञानं केवलं प्राप्तवान् प्रभुः ॥३७॥

अन्वयार्थ - तपस्सन्दग्धकल्मषः = तपश्चरण से जला दिये कर्म कलंक जिन्होंने ऐसे उग्र, प्रभुः = प्रभु ने, चैत्रकृष्णप्रतिपदि = चैत्रकृष्ण एकम के दिन, देवदारुतले = देवदारुवृक्ष के नीचे, केवलं = केवल, ज्ञानं = ज्ञान को, प्राप्तवान् = प्राप्त कर लिया।

श्लोकार्थ - तपश्चरण से अपने कर्म कलंक को जला देने वाले उन प्रभु ने चैत्र कृष्ण एकम को देवदारु वृक्ष के नीचे केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया।

कृते समवसारेऽथ धनदेनादभुते विभुः ।

सहस्रसूर्यसदृशः स्वतेजोमण्डलाद्बभौ ॥३८॥

अन्वयार्थ - अथ = इसके बाद, धनदेन = कुबेर द्वारा, कृते = रचे गये, अदभुते = अदभुत अर्थात् आश्चर्यकारी, समवसारे = समवसरण में, स्वतेजोमण्डलात् = अपने तेज प्रभामण्डल के कारण, विभुः = भगवान्, सहस्रसूर्यसदृशः = हजार सूर्यों के समान, बभौ = सुशोभित हुये।

श्लोकार्थ - इसके बाद कुबेर द्वारा रचे गये अदभुत समवसरण में अपने प्रभामण्डल के कारण भगवान् हजारों सूर्य के समान सुशोभित हुये।

तत्रोक्तगणनाथाद्यैः स्तुतो द्वादशकोष्ठगैः ।

वन्दितः पूजितस्सर्वैः ददर्श कृपयाखिलान् ॥३९॥

अन्वयार्थ - तत्र = उस समवसरण में, उक्तगणनाथाद्यैः = शास्त्र में जिनके नाम कहे गये हैं उन गणधर आदि द्वारा, स्तुतः = स्तुति किये जाते हुये, (च = और), द्वादशकोष्ठगैः = बारहों कोठों में स्थित, सर्वैः = सभी भव्य जीवों द्वारा, वन्दितः = वन्दना किये गये, पूजितः = पूजा किये गये, (प्रभुः = भगवान् ने), कृपया = कृपा से, अखिलान् = सभी को, ददर्श = देखा।

श्लोकार्थ - उस समवसरण में गणधरों द्वारा एवं बारहों कोठों में स्थित

सभी भव्य जीवों द्वारा स्तुति किये गये, पूजे गये और वन्दना किये गये प्रभु ने अपनी कृपा से सभी को देखा।

विशेषार्थ - भगवान् के कृपाभाव नहीं होता है, तथापि काव्य चमत्कृति के कारण कवि ने कृपया शब्द का प्रयोग किया है। वे कृपा भाव से नहीं केवलज्ञान से सभी को युगपत् जानते हैं।

गणीप्रश्नात्प्रसन्नात्मा दिव्यध्वनिमथोदयन् ।

व्याख्यानं सप्ततत्त्वानां चकार परमेश्वरः ॥४०॥

अन्वयार्थ - अथ = इसके बाद, गणीप्रश्नात् = गणधरों के प्रश्न से, प्रसन्नात्मा = अनंत सुख से प्रसन्न आत्मा स्वरूप, परमेश्वरः = भगवान् ने, सप्ततत्त्वानां = सात तत्त्वों को, व्याख्यानं = विशेष, खुलासा स्वरूप कथन, चकार = किया।

विहरन्पुण्यदेशेषु स्वेच्छया जगताम्पतिः ।

एकमासायुरुदबुध्य सम्मेदोपर्यगात्प्रभुः ॥४१॥

अन्वयार्थ - पुण्यदेशेषु = पुण्य क्षेत्रों अर्थात् शुभ देशों में, स्वेच्छया = अपनी इच्छा से, विहरन् = विहार करते हुये, जगतां = तीनों लोकों के, पतिः = स्वामी, प्रभुः = भगवान्, एकमासायुः = एक माह आयु को, उदबुध्य = जानकर, सम्मेदोपरि = सम्मेदशिखर पर्वत पर, अगात् = चले गये।

श्लोकार्थ - पुण्यशाली देशों या शुभ आर्य क्षेत्र के देशों में अपनी स्वाधीनता से विहार करते हुये तीनों लोक के अधिपति प्रभु पार्श्वनाथ एक माह आयु की अवशिष्टता जानकर सम्मेद-शिखर पर्वत पर गये।

सुदर्शनभद्रमासाद्य कूटं तत्र महायतिः ।

शुक्लध्यानबलाद्देवो पूर्वं मोहारिजितजिनः ॥४२॥

कायोत्सर्गं ततः कृत्वा त्रिशतैर्मुनिभि सह ।

सिद्धालये मनः सम्यक् नियोज्याथ तमेव सः ॥४३॥

अन्वयार्थ - अथ = उसके बाद, तत्र = उस सम्मेद पर्वत पर, सुदर्शनभद्रम् = सुदर्शनभद्र, कूटं = कूट को, आसाद्य = प्राप्त करके, महायतिः = महान् यति, शुक्लध्यानबलात् = शुक्लध्यान के बल से, पूर्वं = पूर्व में, (हि = ही), मोहारिजितजिनः = मोहरूपी शत्रु को जीतने वाले जिनेन्द्र, सः = उन, देवः = पार्श्वनाथ

भगवान् ने, कायोत्सर्ग = कायोत्सर्ग को, कृत्वा = करके, (च = और), सिद्धालये = सिद्धालय में, मनः = मन को, सम्यक् = अच्छी तरह, नियोज्य = लगाकर, ततः = उसी सुदर्शनभद्र कूट से, त्रिशतैः = तीन सौ, मुनिभिः = मुनियों के, सह = साथ, तमेव = उसी सिद्धालय को, (आप्तवान् = प्राप्त कर लिया)।

श्लोकार्थ - उसके बाद उस सम्मेदशिखर पर्वत पर सुदर्शनभद्र (स्वर्णभद्र) कूट को प्राप्त करके महान् यतीश्वर जिन्होंने पहिले ही मोह शत्रु को जीतकर जिनेन्द्र पदवी पायी ऐसे उन पार्श्वनाथ प्रभु ने कायोत्सर्ग करके और सिद्धालय में मन लगाकर उस ही सिद्धालय को प्राप्त कर लिया।

विशेष - अर्हन्त भगवान् अर्थात् जिनेन्द्र परमात्मा के भाव मन नहीं होता है तथा वे केवलज्ञान से जानते हैं मन से नहीं अर्थात् "सिद्धालय में मन लगाकर" का अर्थ "सिद्धों के ध्यान से" समझना चाहिये।

तत्पश्चाद्भावसेनाख्या नृपस्सङ्घसमर्थकः ।

तद्यात्रां कृतवान् तस्य कथां वक्ष्येऽत्र पावनीम् ॥४४॥

अन्वयार्थ - तत्पश्चात् = पार्श्वनाथ प्रभु के मोक्ष गमन के बाद, सङ्घसमर्थकः = चतुर्विध संघ की पूजा करने वाले, भावसेनाख्याः = भावसेन नामक, नृपः = राजा ने, तद्यात्रां = उस पर्वत की यात्रा, कृतवान् = की, अत्र = यहाँ, तस्य = उस राजा की, पावनीं = पवित्र, कथां = कथा को, वक्ष्ये = मैं कहता हूँ।

श्लोकार्थ - भगवान् पार्श्वनाथ के मोक्ष चले जाने के बाद चतुर्विध संघ की पूजा करने वाले भावसेन नामक राजा ने सम्मेदाचल पर्वत की यात्रा की। मैं अब यहाँ उसकी पवित्र कथा को कहता हूँ।

जम्बूमति शुभक्षेत्रे भारते आर्यखण्डके ।

अनङ्गदेशेविख्यातः तत्र गन्धपुरी शुभा ॥४५॥

अन्वयार्थ - जम्बूमति = जम्बूद्वीप में, शुभक्षेत्रे = शुभक्षेत्र में, आर्यखण्डके = आर्यखण्ड में, भारते = भारत में, अनङ्गदेशः = अनङ्ग

देश, विख्यातः = प्रसिद्ध, (आसीत् = था), तत्र = उस देश में, शुभा = शुभ-सुन्दर, गन्धपुरी = गन्धापुरी नामक नगरी, (आसीत् = थी)।

श्लोकार्थ - जम्बूद्वीप के शुभ क्षेत्र स्वरूप आर्य खण्ड के भारत में एक अनङ्ग देश था उसमें एक सुन्दर नगरी गन्धपुरी थी।

शान्तसेना रूपराशिः सा स्मृता पुत्रवर्जिता ।

एकस्मिन्समये राजा राज्ञा सह स पुण्यभाक् ॥४६॥

गतो वनविहारर्थं वनं विकसितद्रुमम् ।

सोमसेनाभिधं तत्र चारणार्धिसमन्वितम् ॥४७॥

मुनिं दृष्ट्वा ववन्धासौ तं पुनर्भक्तिततोऽब्रवीत् ।

महान्पुत्राभिलाषो मे कथं सिध्यति भो मुने ॥४८॥

अन्वयार्थ - (तत्र = वहाँ, प्रभासेननृपः = प्रभासेन राजा, आसीत् = था, तस्य = उसकी, राज्ञी = रानी), शान्तसेना = शान्तसेना, रूपराशिः = रूपवती-सुन्दरी, आसीत् = थी, सा = वह, पुत्रवर्जिता = पुत्र रहित, स्मृता = कही गयी। एकस्मिन् = एक, समये = समय में, सः = वह, पुण्यभाक् = पुण्यशाली, राजा = राजा प्रभासेन, राज्ञया = रानी के, सह = साथ, वनविहारार्थं = वन क्रीड़ा के लिये, विकसितद्रुमं = खिले हुये वृक्षों वाले, वनं = वन को, गतः = गया, तत्र = उस वन में, चारणार्धिसमन्वितम् = चारण ऋद्धि से संयुक्त, सोमसेनाभिधं = सोमसेन नामक, मुनिं = मुनि को, दृष्ट्वा = देखकर, असौ = उसने, तं = उनको, भक्तिततः = भक्ति से, ववन्ध = प्रणाम किया, पुनः = और फिर, अब्रवीत् = बोला, भो = हे, मुने = मुनिराज, मे = मेरी, महान् = अत्यधिक प्रबल, पुत्राभिलाषः = पुत्र की अभिलाषा, कथं = कैसे, सिध्यति = सिद्ध सफल होगी।

श्लोकार्थ - वहाँ प्रभासेन नामक राजा राज्य करता था उसकी रानी शान्तसेना अतीव सुन्दरी थी किन्तु वह पुत्र रहित कही गयी। एक दिन वह पुण्यशाली राजा रानी के साथ वनक्रीड़ा के लिये फूलों से लदे वृक्षों वाले वन में गया वहाँ उसने चारण-ऋद्धि सम्पन्न सोमसेन नामक मुनिराज को देखा उसने भक्ति से उनकी वन्दना की और फिर बोला - हे मुनिराज ! मेरी

पुत्र प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा कैसे सफल होगी, कृपा कर बताइये ।

प्रत्युवाच पुनश्चैनं प्रसन्नमुखवारिजः ।
भूप सम्मेदशैलेन्द्रः सर्वशैलाभिवन्दितः ॥४६॥
तस्य कूटानि सर्वाणि वन्दनीयानि सज्जनैः ।
तेषां सुवर्णभद्राख्यं कूटं सर्वार्थसिद्धिदम् ॥५०॥

अन्वयार्थ - पुनश्च = और फिर, प्रसन्नमुखवारिजः = प्रसन्नमुखकमल मुनिराज ने, एनं = उन राजा, प्रति = को, उवाच = कहा, भूप = हे राजन्!, सर्वशैलाभिवन्दितः = सभी पर्वतों में पूजनीय, सम्मेदशैलेन्द्रः = सम्मेदशिखर, (अस्ति = है), तस्य = उस पर्वत की, सर्वाणि = सारी, कूटानि = कूटें टोंक, सज्जनैः = सज्जनों द्वारा, वन्दनीयानि = वन्दनीय, (सन्ति = हैं), तेषां = उन कूटों में, सुवर्णभद्राख्यं = सुवर्णभद्र नामक, कूटं = कूट, सर्वार्थसिद्धिदम् = सभी प्रयोजनों को सिद्धि प्रदान करने वाली अर्थात् सर्वार्थसिद्धिप्रद, (प्रोक्तम् = कही गयी है) ।

श्लोकार्थ - और फिर प्रसन्नमुख मुनिराज ने उस राजा को कहा कि हे राजन्! सारे पर्वतों में पूजनीय पर्वत सम्मेद शिखर है । उसकी सारी कूटें अर्थात् टोंक सज्जनों द्वारा वन्दनीय हैं । उन कूटों में सुवर्णभद्र नामक कूट सारे प्रयोजनों को पूर्णता-सफलता प्रदान करने वाली कही गयी है ।

तत्प्रतिष्ठां त्वमत्रैव कृत्वा परमभक्तितः ।
धैत्यालयं प्रभुं भक्त्या पार्श्व संस्थाप्य सुन्दरम् ॥५१॥
सिद्धचक्रवर्तं राजन् पालयात्मजमाप्यसि ।
मुनिवाक्यमिति श्रुत्वा तदैव धरणीपतिः ॥५२॥
तस्मिन्नेव वने कृत्वा तान् स्वर्णधैत्यालयान्मुदा ।
नीलरत्नमयं पार्श्वप्रतिमानमतिसुन्दरम् ॥५३॥
संस्थाप्य तस्मिन् तत्कूटप्रतिष्ठां कृतवानसौ ।
घतुस्सङ्घमथाप्यार्च्य दानं दत्वा धनुर्विधम् ॥५४॥
अयाचिनः स कृतवान् याचकान् तत्र धागतान् ।
सिद्धचक्रवर्तं सम्यक् पालयन् कालयोगतः ॥५५॥

भावसेनाभिधं पुत्रं प्राप्तवान् कुलचित्रकम् ।
 समयाद्यौवने प्राप्ते हि राजलक्षणलक्षितम् ॥५६॥
 समीक्ष्य तं स भूपालो ददौ राज्यमनुत्तमम् ।
 तस्मिन्नेव वने राजा स्वयं दीक्षां गृहीतवान् ॥५७॥

अन्वयार्थ - राजन् = हे राजन् !, त्वम् = तुम, अत्रैव = यहाँ ही, तत्प्रतिष्ठां = उस स्वर्णभद्र कूट की प्रतिष्ठा को, कृत्वा = करके, (तत्र = उस पर), सुन्दरं = सुन्दर, चैत्यालयं = चैत्यालय को, (निर्माप्य = बनवाकर), (तत्र = उसमें), परमभक्तितः = परम भक्ति से, पार्श्वं = पार्श्वनाथ, प्रभुं = भगवान् को, संस्थाप्य = स्थापित करके, सिद्धचक्रव्रतं = सिद्धचक्र के व्रत का, पालय = पालन करो, आत्मजं = पुत्र को, आप्स्यसि = प्राप्त कर लोगे, इति = इस प्रकार, मुनिवाक्यं = मुनिराज के वचन को, श्रुत्वा = सुनकर, असौ = उस, धरणीपतिः = राजा ने, तदैव = तभी ही, तस्मिन् = उसी, वने = वन में, एव = ही, मुदा = प्रसन्नता से, तान् = उन, स्वर्णचैत्यालयान् = स्वर्णचैत्यालयों को, कृत्वा = करके, तस्मिन् = उसमें, नीलरत्नमयं = नील रत्नमय, अतिसुन्दरं = अत्यधिक सुन्दर, पार्श्वप्रतिमानं = पार्श्वनाथप्रभु की प्रतिमा को, संस्थाप्य = स्थापित करके, तत्कूटप्रतिष्ठां = सम्मेदशिखर की स्वर्णभद्र कूट की प्रतिष्ठा को, कृतवान् = किया । अथ = इसके बाद, सः = उस राजा ने, चतुरस्रसंघं = चतुर्विध संघ को, आर्च्यं = पूजकर, चतुर्विधं = चार प्रकार का, दानं = दान, अपि = भी, दत्त्वा = देकर, तत्र = वहाँ, आगतान् = आये हुये, याचकान् = याचकों को, अयाचिनः = अयाचक अर्थात् नहीं मांगने वाले, कृतवान् = कर दिया, च = और, सम्यक्, = अच्छी तरह से, सिद्धचक्रव्रतं = सिद्धचक्र के व्रत का, पालयन् = पालन करते हुये, कालयोगतः = काल का योग बन जाने से, (सः = राजा ने), कुलचित्रकम् = वंश में आश्चर्यकारक, भावसेनाभिधं = भावसेन नामक, पुत्रं = पुत्र को, प्राप्तवान् = प्राप्त कर लिया । समयात् = कालक्रम से, यौवने = युवावस्था, प्राप्ते = प्राप्त होने पर, तं = उस पुत्र को, राजलक्षणलक्षितं = राजा के लक्षणों से लक्षित, समीक्ष्य =

जानकर, हि = ही, सः = उस, भूपालः = राजा ने, अनुत्तमम् = उत्तम, लगाने वाले, राज्य = राज्यसम्पदा को, (तस्मै = उसके लिये), ददौ = दे दिया। तस्मिन्नेव = उस ही, वने = वन में, राजा = राजा ने, स्वयं = स्वयं, दीक्षां = मुनिदीक्षा को, गृहीतवान् = ग्रहण कर लिया।

श्लोकार्थ - हे राजन्! तुम यहाँ ही स्वर्णभद्र कूट की प्रतिष्ठा करके, उस पर सुन्दर जिनमंदिर बनवाकर उसमें परम भक्तिभाव से पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा स्थापित करके सिद्धचक्र के व्रत का पालन करो, तुम अवश्य ही पुत्र को प्राप्त करोगे। मुनिराज के ऐसे वचन सुनकर उस राजा ने तभी ही उसी वन में प्रसन्नभाव से स्वर्णचैत्यालय बनवाकर उसमें नीलरत्नमय अति सुन्दर पार्श्वनाथ की प्रतिमा को स्थापित करके वहाँ सम्मेदाचल की स्वर्णभद्र कूट को प्रतिष्ठापित कर दिया और इसके बाद उसने चतुर्विध संघ को चारों प्रकार का दान देकर वहाँ आये सभी याचकों को अयाचक बना दिया तथा सिद्धचक्र व्रत का अच्छी तरह से पालन करते हुये काललब्धि का योग हो जाने से उस राजा ने कुल के लिये आश्चर्यकारी भावसेन नामक पुत्र को प्राप्त कर लिया। कालक्रम से युवावस्था को प्राप्त करने पर राजा ने उस पुत्र को राजचिन्हों से लक्षित समझकर अनुत्तम या उत्तम लगाने वाले राज्य को उसे दे दिया तथा उस ही वन में राजा ने खुद मुनिदीक्षा को ग्रहण कर लिया।

तपसा दग्धकर्मासौ केवलज्ञानमाप्तवान् ।
 शुक्लध्यानात् मनः सिद्धपदे संयोज्य निश्चलम् ॥५८॥
 जीर्णसृजमिव तनुं त्यक्त्वा सिद्धत्वं खलु सङ्गतः ।
 तन्मह्यं सो भावसेनाख्यो नृपः परमं धर्मभृत् ॥५९॥
 संघं प्रपूज्य सद्भक्त्या चैककोटिप्रमाणितान् ।
 चतुर्प्रोक्ताऽशीतिलक्षसम्मितान् भव्यजीवकान् ॥६०॥
 विधाय सार्धगान् यात्रां धक्रे सम्मेदभूभृतः ।
 सुवर्णभद्रकूटं तं तत्र गत्वा प्रपूज्य स ॥६१॥
 वदन्ते भक्तिभावेन तैरुक्तैस्साधुसत्तमैः ।
 सार्धं दिगम्बरो भूत्वा तपः कृत्वा य भावतः ॥६२॥

सामर्थ्याच्छुक्लध्यानस्य दग्ध्वा कर्माणि सर्वथा ।

मुक्तिं जगाम तैः सार्धं भावसेनो मुनीश्वरः । ६३ ॥

अन्वयार्थ - असौ = उन प्रभासेन मुनिराज ने, तपसा = तपश्चरण से, दग्धकर्मा = कर्मों को जलाने वाले, (भूत्वा = होकर), शुक्लध्यानात् = शुक्लध्यान से, मनः = मन को, सिद्धपदे = सिद्धपद में, निश्चलं = निश्चल, संयोज्य = लगाकर, केवलज्ञानं = केवलज्ञान को, आप्तवान् = प्राप्तकर लिया । (च = और), जीर्णसृजमिव = जीर्ण कुन्हलायी पुष्पमाला के समान, तनुं = शरीर को, त्यक्त्वा = छोड़कर, खलु = निश्चयार्थक पाद पूरक, सिद्धत्वं = सिद्धपद को, सङ्गतः = चले गये या प्राप्त हो गये । ततश्च = और उसके बाद, सः = उस, भावसेनाख्यः = भावसेन नामक, परमं = उत्कृष्ट, धर्मभृत् = धर्मात्मा, नृपः = राजा ने, संघं = चतुर्विध संघ को, प्रपूज्य = पूजकर, च = और, एककोटिप्रमाणितान् = एक करोड़, चतुप्रोक्ताशीतिलक्षसम्मितान् = चौरासी लाख, भव्यजीवकान् = भव्यजीवों को सार्धगान् = साथ चलने वाला, विधाव = करके, सम्मेदभूभृतः = सम्मेदाचल पर्वत की, यात्रां = यात्रा को, चक्रे = किया । तत्र = वहाँ गत्वा = जाकर, सः = उसने, तं = उस, सुवर्णभद्रकूटं = सुवर्णभद्र कूट को, प्रपूज्य = पूजकर, भक्तिभावेन = भक्ति भाव से, ववन्दे = प्रणाम किया, च = और, उक्तैः = कहे गये, तैः = उन, साधुसत्तमैः = श्रेष्ठ साधुओं के, सार्धं = साथ, भावतः = भाव से, दिगम्बरः = दिगम्बर मुनि, भूत्वा = होकर, तपः = तपश्चरण को, कृत्वा = करके, शुक्लध्यानस्य = शुक्लध्यान की, सामर्थ्यात् = सामर्थ्य से, कर्माणि = कर्मों को, सर्वथा = सर्व प्रकार से, दग्ध्वा = जला कर या नष्ट करके, मुनीश्वरः = मुनिराज, भावसेनः = भावसेन, तैः = उन मुनिराजों के, सार्धं = साथ, मुक्तिं = मुक्ति को, जगाम = प्राप्त हुये या चले गये ।

श्लोकार्थ - फिर उन मुनिराज (प्रभासेन) ने तपश्चरण से कर्मों को जलाकर व शुक्लध्यान में मन को सिद्धपद में निश्चल करके केवलज्ञान प्राप्त कर लिया और जीर्ण पुष्पमाला के समान

शरीर को छोड़कर सिद्धदशा को प्राप्त हो गये। उसके बाद उनके पुत्र भावसेन नामक राजा जो धर्मात्मा था, ने भी चतुर्विध संघ की पूजा करके एवं एक करोड़ चौरासी लाख भव्य जीवों को साथ लेकर, सम्मेदशिखर पर्वत की यात्रा की। वहाँ पहुँचकर उसने उस सुवर्णभद्र कूट की पूजा करके उसे प्रणाम किया और कहे गये श्रेष्ठ साधुओं के साथ भ. व. लिङ्गी दिगम्बर मुनि होकर तपश्चरण करने लगा। उन भावसेन मुनिराज ने शुक्लध्यान की सामर्थ्य से सारे कर्मों को पूर्णतः नष्ट करके उन मुनिराजों के साथ ही मुक्ति को प्राप्त कर लिया।

एककूटनमस्कारादेतत्फलमुदीरितम्।

सर्वकूटनमस्कारी भुक्तिं याति न संशयः॥६४॥

अन्वयार्थ - एककूटनमस्कारात् = एक कूट को नमस्कार करने से, एतत् = यह, फलम् = फल, उदीरितम् = कहा गया है, (तर्हि = तो), सर्वकूटनमस्कारी = सारे कूटों की वन्दना करने वाला, भुक्तिं = मोक्ष को, याति = जाता है, (इति = इसमें), संशयः = सन्देह, न = नहीं, (अस्ति = है)।

श्लोकार्थ - जब एककूट को नमस्कार करने से यह और इतना फल बताया गया है तो सारे कूटों को नमस्कार करने वाला मोक्ष को जाता है इसमें संशय नहीं है।

पशुत्वं नारकित्वञ्च नानादुःखफलप्रदम्।

इह नास्त्येव नास्त्येव सम्मेदगिरिवन्दनात्॥६५॥

अन्वयार्थ - सम्मेदगिरिवन्दनात् = सम्मेदशिखर पर्वत की वन्दना करने से, इह = इस संसार में, नानादुःखफलप्रदम् = नाना दुःख रूप फल को देने वाला, पशुत्वं = पशुपना, च = और, नारकित्वं = नारकीपना, नास्ति एव = नहीं ही होता है।

श्लोकार्थ - सम्मेदशिखर पर्वत की वन्दना करने से इस संसार में अनेकविध दुखों को देने वाला पशुपना व नारकीपना प्राप्त ही नहीं होता है।

विशेष - यहाँ 'नास्तित्येव' यह पद पुनरुक्त कर उसका महत्त्व द्विगुणित करके सूचित किया गया है। जिससे उक्त कथन का निश्चय दृढ़ता से हो।

सम्मदयात्रिको जीवः क्रमात् भावेन संयुतः ।

करामलकवत् पश्येत् त्रिलोकीं ज्ञानचक्षुषा ॥६६॥

अन्वयार्थ - भावेन = भाव से, संयुतः = संयुक्त, सम्मदयात्रिकः = सम्मदशिखर पर्वत की यात्रा करने वाला, जीवः = जीव, क्रमात् = क्रमशः, ज्ञानचक्षुषा = अपने ज्ञान नेत्र से, करामलकवत् = हाथ पर रखे आँवले के समान, त्रिलोकीं = तीनों लोकों को या तीनों लोक जिसके ज्ञान में हैं ऐसे त्रिलोकी नाथ परमात्मा को, पश्येत् = देखे।

श्लोकार्थ - भावसहित सम्मदशिखर की यात्रा करने वाला जीव क्रमशः अपने ज्ञान नेत्रों से त्रिलोकी परमात्मा या तीनों लोकों को हाथ पर रखे आँवले के समान देख लेवे।

अथ सम्मदशैलस्य वन्दितस्याखिलैर्बुधैः ।

यथा विधीयते यात्रा वक्ष्येऽहं तत्प्रमाणतः ॥६७॥

अन्वयार्थ - अथ = अब, अखिलैः = सभी, बुधैः = विद्वानों द्वारा, वन्दितस्य = नमस्करणीय, सम्मदशैलस्य = सम्मदशिखर की, यात्रा = तीर्थवन्दना स्वरूप यात्रा, यथा = जिस प्रकार, विधीयते = की जाती है, तत्प्रमाणतः = उनके प्रमाणानुसार, अहं = मैं कवि, वक्ष्ये = कहता हूँ।

श्लोकार्थ - सभी विद्वानों द्वारा जिस प्रकार सम्मदशिखर पर्वत की यात्रा की जाती है उन विद्वानों के प्रमाण से अब मैं उसे कहता हूँ। यहाँ अब यात्रा करने की विधि का निर्देश किया जा रहा है।

शैलयात्रोत्सुको भव्यः निर्लोभः प्रथमं भवेत् ।

कुर्याद् द्रव्यव्ययं सम्यक् माहात्म्यं शृणुयाद् गिरेः ॥६८॥

अन्वयार्थ - शैलयात्रोत्सुकः = सम्मदशिखर पर्वत की यात्रा करने के लिये उत्सुक, भव्यः = भव्य जीव, प्रथमं = पहिले, निर्लोभः = निर्लोभी, भवेत् = होवे, गिरेः = पर्वत के, सम्यक् = सच्चे,

माहात्म्यं = महत्त्व को, श्रुणुयात् = सुने, द्रव्यव्ययं = द्रव्य को खर्च, (अपि = भी), कुर्यात् = करे।

श्लोकार्थ - सम्पेदशिखर पर्वत की यात्रा करने को उत्सुक भव्य जीव सर्वप्रथम निलोभी हो, फिर पर्वतराज के सम्यक् महत्त्व को सुने और द्रव्य का खर्चा भी करे।

यात्रापत्रं प्रेषयित्वा प्रतिदेशं शुभाक्षरम् ।

अशेषभव्यजीवानां यात्रासूचकमुत्तमम् ॥६६॥

श्रीमद्भगवत्स्तुङ्गविमानं रचयेत्सुधीः ।

गजारूढं प्रभुं कृत्वा यात्रां कुर्यात् प्रयत्नतः ॥७०॥

अन्वयार्थ - अशेषभव्यजीवानां = सभी भव्य जीवों के, (कृते = लिये), प्रतिदेशं = प्रत्येक देश में, शुभाक्षरं = सुन्दर और शुभ अक्षरों वाले, यात्रासूचकं = यात्रा विषयक पत्र, प्रेषयित्वा = भेजकर, सुधीः = बुद्धिमान्, श्रीमद्भगवतः = श्रीसम्पन्न भगवान् का, तुङ्गविमानं = उत्तुङ्ग ऊँचा विमान, रचयेत् = बनाये या बनवाये, (च = और), प्रभुं = भगवान् को, गजारूढं = हाथी पर आरूढ, कृत्वा = करे, यात्रां = तीर्थवन्दना स्वरूप यात्रा को, प्रयत्नतः = प्रयास पूर्वक सावधानी से, कुर्यात् = करे।

श्लोकार्थ - सभी भव्यजीवों के लिये प्रत्येक देश में शुभ और सुन्दर अक्षरों वाले यात्रासूचक उत्तम यात्रा निमन्त्रण पत्र को भेजकर बुद्धिमान् श्रीसम्पन्न भगवान् के लिये एक उत्तुङ्ग विमान बनाये या बनवाये और फिर भगवान् को हाथी पर आरूढ करके तीर्थवन्दना स्वरूप यात्रा को प्रयत्नपूर्वक सावधानी से करें।

रथयात्रां तथा चेन्द्रध्वजादिशुभपूजनम् ।

तथा बिम्बप्रतिष्ठाञ्च प्रतिष्ठां गजपूर्विकाम् ॥७१॥

आदौ कृत्वा भवेद्यात्रा चाथवागत्य यत्नतः ।

आदावन्ते तथा कुर्याद्रथयात्रादिकं बुधः ॥७२॥

अन्वयार्थ - तथा च = और, प्रतिष्ठां गजपूर्विकां = गज प्रतिष्ठा पूर्वक, रथयात्रां = रथयात्रा को, बिम्बप्रतिष्ठां = जिन बिम्ब की प्रतिष्ठा को, तथा च = और, इन्द्रध्वजादिशुभपूजनम् = इन्द्र ध्वज आदि शुभ पूजन को, आदौ = प्रारंभ में, कृत्वा = करके,

यात्रा = तीर्थवन्दना रूप यात्रा, भवेत् = हो, अथवा = अथवा, बुधः = विद्वान्, यत्नतः = यत्न से, (अत्र = यहाँ) आगत्य = आकर, (यात्रायाः = यात्रा के), आदौ = प्रारंभ में, तथा च = और, अन्ते = अन्त में, रथयात्रादिकं = रथ यात्रा आदि को, कुर्यात् = करे।

श्लोकार्थ - और फिर गज प्रतिष्ठा पूर्वक रथ यात्रा को, जिनबिम्बप्रतिष्ठा को और इन्द्रध्वज आदि शुभ पूजन को प्रारंभ में करके सम्मेदशिखर की तीर्थवन्दना रूप यात्रा होवे। अथवा विद्वान् यहाँ आकर यात्रा के प्रारंभ में और अन्त में रथयात्रा आदि को करे।

यथाशक्त्याथवा कृत्वा यात्रां कुर्याद् गिरीशितुः ।

वस्त्रादिवस्तुसाहाय्यं विदध्यात्सार्धगामिनाम् ।।७३।।

अन्वयार्थ - अथवा = अथवा, यथाशक्त्या = जैसी शक्ति है उसके अनुसार से, (उपर्युक्तं = उपर्युक्त को) कृत्वा = करके, गिरीशितुः = गिरिराज की, यात्रां = तीर्थवन्दना को, कुर्यात् = करे। सार्धगामिनाम् = साथ चलने वालों के, (कृते = किये), वस्त्रादिवस्तुसाहाय्यं = वस्त्रादिक वस्तुओं की सहायता को, विदध्यात् = करे।

श्लोकार्थ - अथवा अपनी जैसी शक्ति है उसके अनुसार ही उपर्युक्त रथयात्रादिक को करके गिरिराज की वन्दना रूप यात्रा को करना चाहिये तथा साथ में चलने वालों के लिये वस्त्रादि वस्तुओं से सहायता करनी चाहिये।

भारवाट्सु यथायोग्यं दद्यात् भारं विचार्य सः ।

यथा दुःखी न कोऽपि स्यात्तथा कुर्यात्प्रयत्नतः ।।७४।।

अन्वयार्थ - सः = वह यात्री, भारं = भार का, विचार्य = विचार करके, भारवाट्सु = भार उठाने वालों में, यथायोग्यं = उचित भार को (हि = ही), दद्यात् = देवे, च = और, यथा = जैसे, कोऽपि = कोई भी, दुःखी = दुःखी, न = नहीं, स्यात् = होवे, तथा = वैसा, प्रयत्नतः = प्रयत्न से, कुर्यात् = करना चाहिये।

श्लोकार्थ - सम्मेदशिखर का वह तीर्थयात्री भार का विचार करके यथायोग्य भार ही भारवाहकों को देवे और जैसे कोई भी दुःखी

न हो वैसा ही प्रयत्न उसे करना चाहिये ।

चतुःपञ्चक्रोशमात्रं गच्छेत्प्रतिदिनं बुधः ।

यतो बालास्तथा वृद्धा न क्लेशनीयुः पथि श्रमात् ।।७५।।

अन्वयार्थ - बुधः = विद्वान् या चतुरव्यक्ति, प्रतिदिनं = प्रत्येक दिन, चतुः = चार, पञ्च = पाँच, क्रोशमात्रं = कोस मात्र, गच्छेत् = जाये, यतः = जिससे, बालाः = बालक, तथा = और, वृद्धाः = बूढ़े लोग, पथि = मार्ग में, श्रमात् = परिश्रम से, न = नहीं, क्लेशनीयुः = क्लेश करें ।

श्लोकार्थ - विद्वान् या चतुर व्यक्ति मात्र चार पाँच कोश ही एक दिन में जायें जिससे बाल वृद्धादि लोग भी मार्ग श्रम हो जाने से क्लेश रूप दुःख को प्राप्त न होवें ।

आहारदानं शास्त्रस्य दानमौषधदानकम् ।

तथा चाभयदानञ्च दद्यात् संघाय भक्तितः ।।७६।।

अन्वयार्थ - तथा च = और, संघाय = चतुर्विधसंघ के लिये, भक्तितः = भक्तिभाव से, आहारदानं = आहार दान को, शास्त्रस्य = शास्त्र के, दानं = दान को, औषधिदानकं = औषधि दान को, च = और, अभयदानं = अभयदान को, दद्यात् = देवे ।

श्लोकार्थ - और वह यात्री चतुर्विध संघ को भक्तिभाव से आहारदान, शास्त्रदान, औषधिदान एवं अभयदान देवे ।

श्रीमद्भट्टारकानाञ्च जैनधर्मविदां किल ।

यथास्थितानि दानानि दद्याद् दाताप्रमाणतः ।।७७।।

अन्वयार्थ - दाता = दान देने वाला, प्रमाणतः = जिनाज्ञा के प्रमाण से, यथास्थितानि = जैसे जो स्थित है, (तथा = वैसे), दानानि = दान के लिये देय वस्तुओं को, किल = निश्चित ही, जैनधर्मविदां = जैनधर्म के ज्ञाताओं के, च = श्रीमद्, भट्टारकानां = श्रीसम्पन्न भट्टारकों के, (कृते = लिये), दद्यात् = देवे ।

श्लोकार्थ - जिन आज्ञा प्रमाण से ही यथा स्थित दान योग्य वस्तुओं को निश्चित ही योग्य लोगों जैसे भट्टारक एवं जैनधर्म के ज्ञाता विद्वानों के लिये देवे ।

यात्रां यस्मिन्दिने कुर्यात्तदिने भक्तिभावतः ।

पञ्चकल्याणपूजां वै विदध्यादीशितुर्बुधः ॥७८॥

अन्वयार्थ - बुधः = चतुर या विद्वान् व्यक्ति, यस्मिन् = जिस, दिने = दिन, यात्रां = तीर्थवन्दना को, कुर्यात् = करे, तदिने = उस दिन, भक्तिभावतः = भक्तिभाव से, ईशितुः = तीर्थङ्कर की, पञ्चकल्याणपूजां = पञ्चकल्याणकों के गुणानुवाद स्वरूप पूजा को, वै = यथार्थ में, कुर्यात् = करे ।

श्लोकार्थ - चतुर या विद्वान् व्यक्ति जिस दिन पर्वतप्रज्ञ की तीर्थवन्दना करे उस दिन वह तीर्थङ्करों की पञ्चकल्याणकों के गुणानुवाद स्वरूप पूजा को भक्तिभाव से अवश्य करे ।

मार्गे दीनजनान् वृद्धान् चतुरांश्च तथैव सः ।

संरक्षेत्सर्वभावेन करुणार्द्रकृताशयः ॥७९॥

अन्वयार्थ - सः = वह तीर्थयात्री, सर्वभावेन = सभी भावों से, करुणार्द्रकृताशयः = करुणा से भीगे आशय वाला हुआ, मार्गे = मार्ग में, दीनजनान् = दीन लोगों को, वृद्धान् = वृद्धों को, च = और, चतुरान् = चतुरों को, तथैव = वैसे ही, संरक्षेत् = रक्षित करे ।

श्लोकार्थ - वह तीर्थयात्री सर्वभावों से करुणार्द्र चित्त वाला होकर मार्ग में दीन लोगों की चतुरों की और वृद्धों को वैसे ही रक्षा करे जैसे अपनी करता है ।

एवं सम्मेदयात्रायां कृतायां को महीतले ।

पदार्थोऽयं न यात्राकृत् प्राप्नुयात् मनसार्धितम् ॥८०॥

अन्वयार्थ - एवं = इस प्रकार, सम्मेदयात्रायां = सम्मेदशिखर की यात्रा, कृतायां = कर लेने पर, महीतले = पृथ्वी पर, कः = कौन, पदार्थः = पदार्थ, (अस्ति = है), (यत् = जो) मनसार्धितं = मन से चाहा गया हो, (तत् = उसे) यात्राकृत् = यात्रा करने वाला, न = नहीं, प्राप्नुयात् = प्राप्त करे ।

श्लोकार्थ - इस प्रकार से सम्मेदशिखर की यात्रा कर लेने पर पृथ्वी पर कौन सा पदार्थ है जो मन से चाहा गया है और वह तीर्थयात्री प्राप्त न करे अर्थात् प्राप्त करे ही ।

अथवा हेतुना केनाप्यसौ भव्यो गिरीशितुः ।

यात्रां कर्तुं न शक्नुयात् फलं लभेत तदैहिकम् ॥८१॥

अन्वयार्थ - अथवा = अथवा, असौ = वह, भव्यः = भव्य जीव, केन = किसी, अपि = भी, हेतुना = कारण से, गिरीशितुः = सम्मेदशिखर पर्वत की, यात्रां = यात्रा को, कर्तुं = कर, न = नहीं, शक्नुयात् = सके, तत् = तो, (असौ = वह) एहिकम् = इस लोक सम्बन्धी, फलं = फल को, एव = ही, लभेत = प्राप्त करे ।

श्लोकार्थ - अथवा भव्य जीव किसी भी कारणवश सम्मेदशिखर की यात्रा नहीं कर सके तो वह केवल इस लोक सम्बन्धी फल को ही प्राप्त करे ।

इति सम्मेदशैलस्य माहात्म्यं शास्त्रसम्मतम् ।

श्रुणुयात्संविधानेन लोहाचार्येण भाषितम् ॥८२॥

अन्वयार्थ - इति = इसलिये, लोहाचार्येण = लोहाचार्य द्वारा, भाषितम् = कहे गये, शास्त्रसम्मतं = शास्त्रसम्मत, सम्मेदशैलस्य = सम्मेदशिखर पर्वत का, माहात्म्यं = माहात्म्य को, संविधानेन = सम्यक् विधि विधान से, श्रुणुयात् = सुने ।

श्लोकार्थ - इसलिये भव्य जीव लोहाचार्य द्वारा कहे गये और शास्त्र द्वारा प्रमाणित सम्मत सम्मेदशिखर पर्वत के माहात्म्य को सम्यक् विधि विधान से सुनना चाहिये ।

माघे चैत्रे तथा भाद्रे कार्तिके मासि चोत्तमे ।

कृष्णपक्षे प्रतिपत्तिथौ नानोत्सवसमन्वितैः ॥८३॥

कृता च कारिता यात्रा यैरपीहानुमोदिता ।

ते यात्राफलभाजः स्युः सत्यं-सत्यं न संशयः ॥८४॥

अन्वयार्थ - चैत्रे = चैत, भाद्रे = भादों, कार्तिके = कार्तिक, तथा च = और, माघे = माघ, उत्तमे = उत्तम, मासि = माह में, कृष्णपक्षे = कृष्णपक्ष में, प्रतिपत्तिथौ = प्रतिपदा तिथि में, नानोत्सवसमन्वितैः = अनेक उत्सवों से समन्वित, यैः = जिन लोगों के द्वारा, इह = यहाँ सम्मेदशिखर तीर्थक्षेत्र पर, यात्रा = वन्दना स्वरूप यात्रा, कृता = की गयी, कारिता = करायी गयी, च = और, अनुमोदिता अपि = अनुमोदित भी की गयी,

ते = वे, यात्राफलभाजः = तीर्थवन्दना के फल भागी, स्युः = हों, (इति = यह), सत्यं-सत्यं = सत्य ही, (अस्ति = है), न संशयः = संशय नहीं है।

श्लोकार्थ - चैत्र, भाद्रपद, कार्तिक और माघ नामक उत्तम मासों में से किसी भी मास में कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तिथि में अनेकविध उत्सव से समन्वित भाव वाले जिन लोगों के द्वारा इस सम्मेदशिखर क्षेत्र पर तीर्थवन्दना की गयी, करायी गयी और अनुमोदित भी की गयी वे सभी निश्चित ही यात्रा के फल के भागी होंगे यह सत्य है, इसमें संशय नहीं है।

इदं सम्मेदमाहात्म्यं लोहाचार्योक्तिःसम्मतम् ।

निर्मितं हि देवदत्तेन कविना गुरुभाविना ॥८५॥

अन्वयार्थ - गुरुभाविना = गुरु भक्ति से पूर्ण व गुरु भावना के अनुसार उसे पूरा करने वाले, कविना = कवि, देवदत्तेन = देवदत्त ने, हि = ही, लोहाचार्योक्तिःसम्मतम् = लोहाचार्य के कथन से सम्मत, इदं = यह, सम्मेदमाहात्म्यं = सम्मेदशिखरमाहात्म्य नामक काव्य, निर्मितम् = निर्मित किया है।

श्लोकार्थ - गुरुभक्ति से परिपूर्ण हृदय वाले एवं गुरु की भावना के अनुसार उसे पूरा करने वाले कवि देवदत्त द्वारा ही लोहाचार्य के कथन से सम्मत यह सम्मेदशिखर माहात्म्य नामक काव्य रचा गया।

यः श्रद्धया विधानेन पठेद्वा शृणुयादपि ।

सर्वकिल्बिषनिर्मुक्तः स पुण्यं लभते क्षयम् ॥८६॥

अन्वयार्थ - यः = जो, अपि = भी, श्रद्धया = श्रद्धा से, विधानेन = विधान से, पठेत् = पढ़े, वा = अथवा, शृणुयात् = सुने, सः = वह, सर्वकिल्बिषनिर्मुक्तः = सारे पापों से मुक्त हुआ, अक्षयं = क्षयहीन, पुण्यं = पुण्य को, लभते = प्राप्त करता है।

श्लोकार्थ - जो भी श्रद्धा भक्ति से तथा विधिपूर्वक इस माहात्म्य को पढ़े अथवा सुने वह सारे पापों से मुक्त होकर अक्षय पुण्य को प्राप्त करे।

यावच्चन्द्रदियाकरौ गगनगौ यावत्स्यर्गाधीश्वरौ ।

यावद् भूमिरियं विराजिता तथा यावत्कृशानुर्मरुत् ॥

तावद् ग्रन्थवरोऽयमत्र सकलाभीष्टार्थसिद्धिप्रदः ।

श्रीसम्मेदमहीभृतः प्रतिदिनं कण्ठे सतां तिष्ठतात् ॥८७॥

अन्वयार्थ - यावत् = जब तक, स्वर्गाधीश्वरौ = स्वर्ग के अधीश्वर, चन्द्रदिवाकरौ = चन्द्रमा और सूर्य, गगनगौ = आकाशगामी, (स्तः = हैं), यावत् = जब तक, इयं = यह, भूमिः = पृथ्वी, विराजिता = विद्यमान या सुशोभित, (अस्ति = है), तथा = और, यावत् = जब तक, कृशानुः = अग्नि, मरुत् = हवा, (स्तः = हैं), तावत् = तब तक, अत्र = इस जगत् में, सकलाभीष्टसिद्धिप्रदः = सम्पूर्ण अभीष्ट सिद्धियों को प्रदान करने वाला, अयं = यह, श्रीसम्मेदमहीभृतः = श्रीसम्मेदशिखर पर्वत का, ग्रन्थवरः = श्रेष्ठ ग्रन्थ, प्रतिदिनं = प्रतिदिन, सतां = सज्जनों के, कण्ठे = कंठ में, तिष्ठतात् = स्थित रहे।

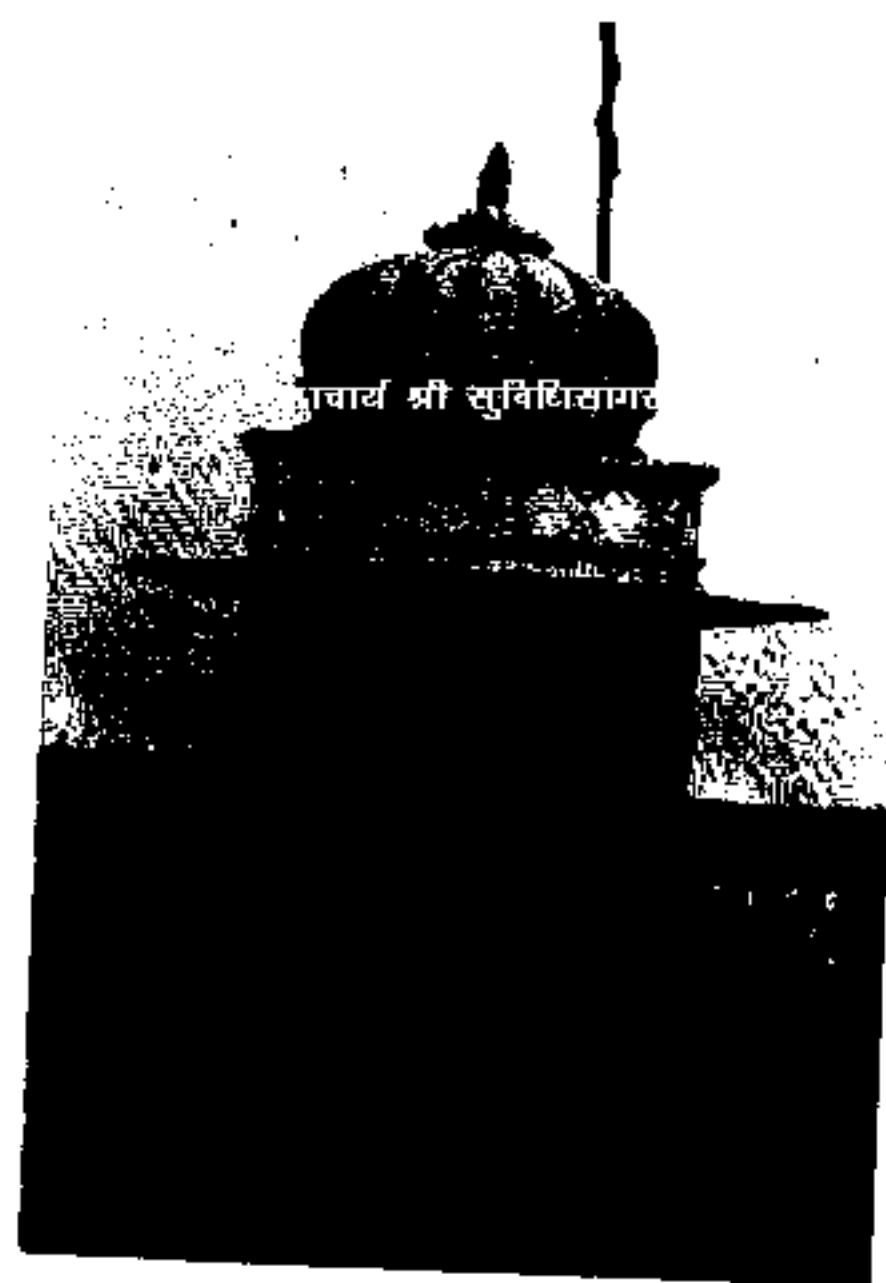
श्लोकार्थ - जब तक स्वर्ग के अधीश्वर या ज्योतिषी देवों के अधिपति चन्द्रमा और सूर्य आकाश में गमन करने वाले हैं, जब तक यह भूमि विद्यमान है या सुशोभित हो रही है और जब तक अग्नि एवं हवा विद्यमान हैं तब तक इस जगत् में सभी अभीष्ट सिद्धियों को प्रदान करने वाला यह श्री सम्मेदशिखर पर्वत के माहात्म्य का श्रेष्ठ ग्रन्थ प्रतिदिन सज्जनों के कंठ में विद्यमान रहे अर्थात् वे इसे सतत पढ़ते रहें, याद रखें यह ऋषि की भाषना है।

[इति श्रीभगवल्लोहाचार्यानुक्रमेण श्रीमहारकजिनेन्द्रभूषणोपदेशात्

श्रीमदीक्षित ब्रह्म देवदत्तकृते श्रीसम्मेदशिखरमाहात्म्ये

तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ-वृत्तान्तसमन्वितः।]

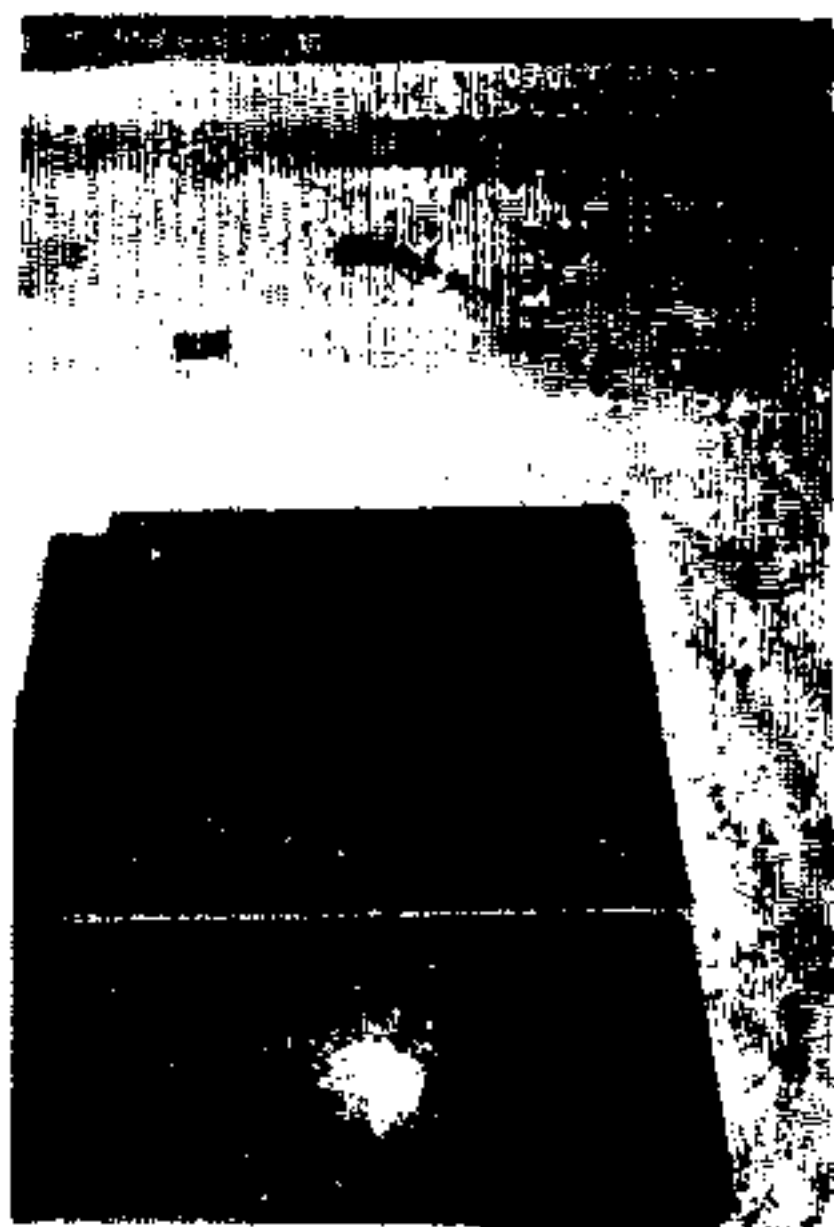
{इस प्रकार श्री भगवान् लोहाचार्य के अनुक्रम से श्रीमहारकजिनेन्द्रभूषण के उपदेश से श्रीमान् दीक्षित (ब्रह्मदत्त) देवदत्त द्वारा रचित श्री सम्मेदशिखर माहात्म्य नामक काव्य में तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ के वृत्तान्त से संयुक्त समाप्ति की सूचना देने वाला इक्कीसवां अध्याय पूर्ण हुआ।}



श्री श्रेयांसनाथ स्वामी - संकुल कूट



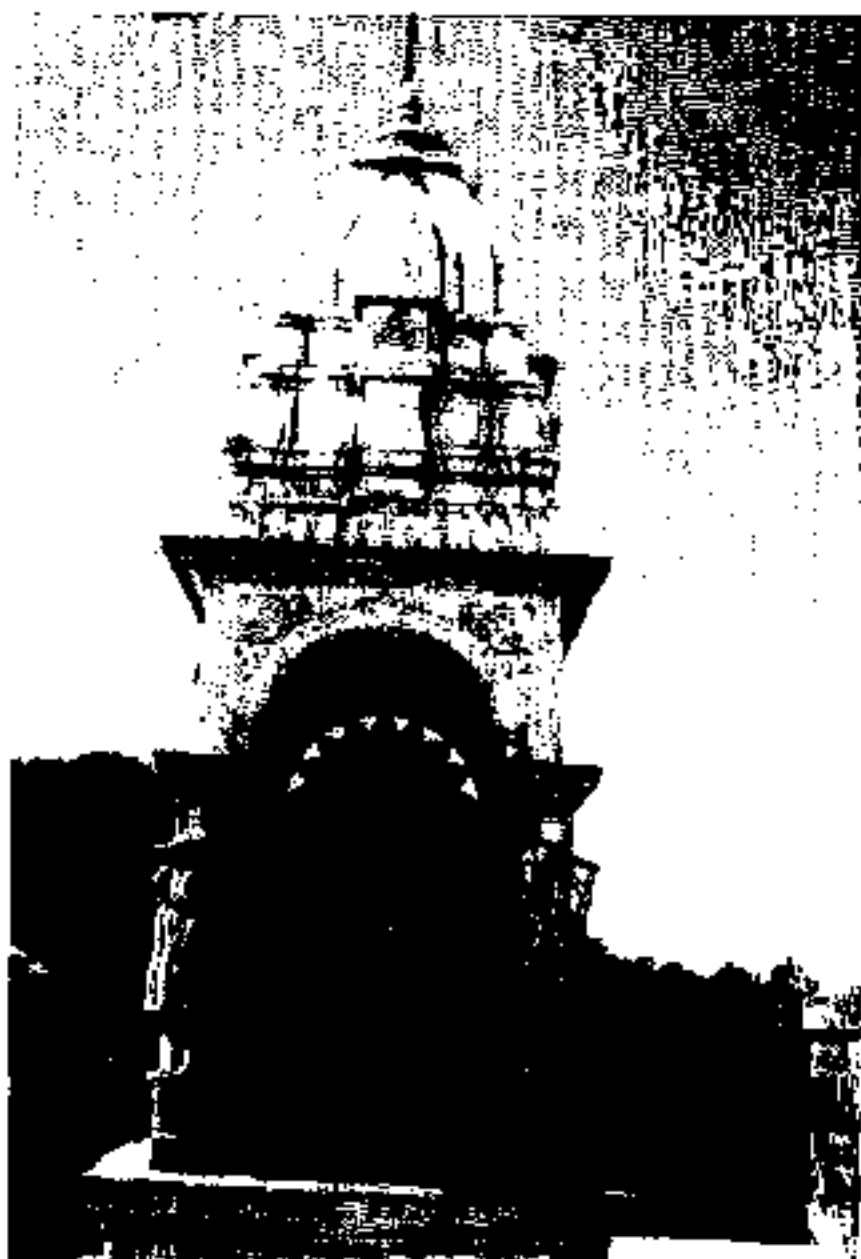
श्री विमलनाथ स्वामी-सुवीर कूट



श्री अनन्तनाथ स्वामी-स्वयंभू कूट



श्री धर्मनाथ स्वामी-सुदत्त कूट



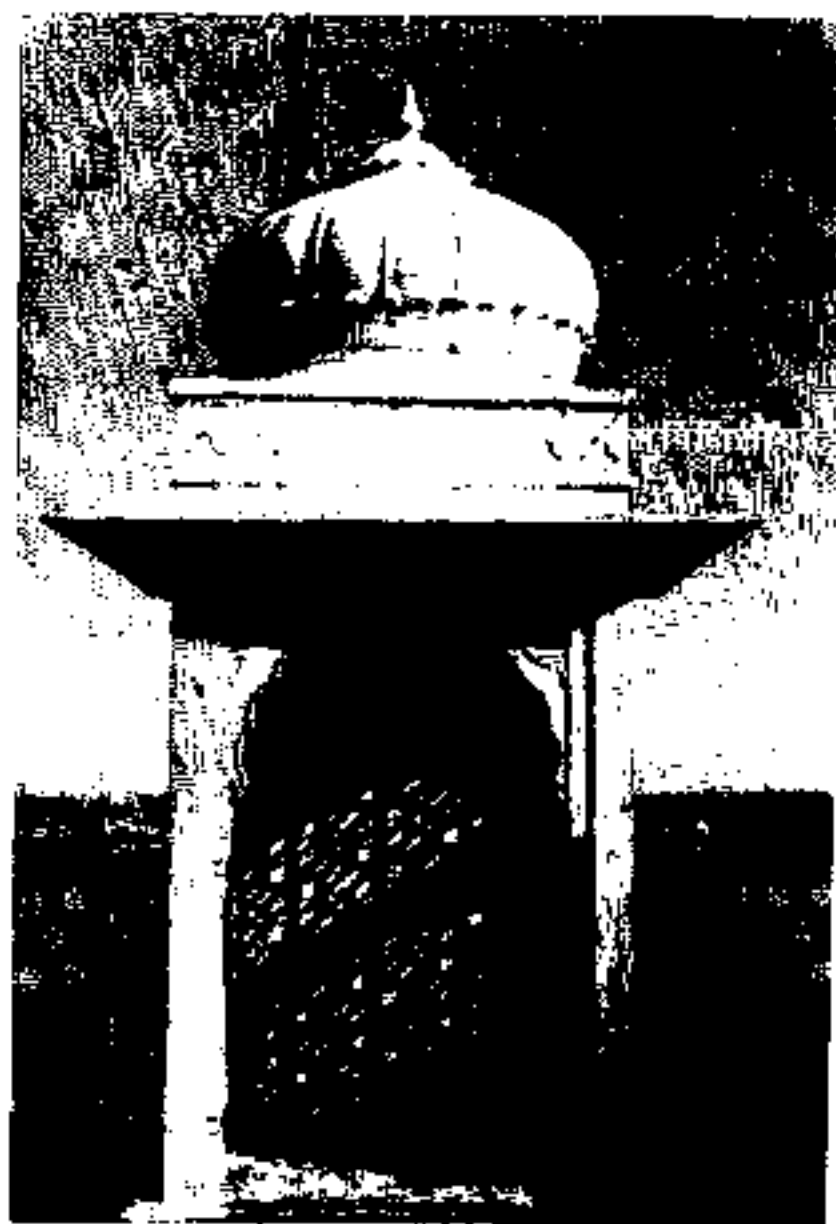
श्री शान्तिनाथ स्वामी-प्रभास कूट



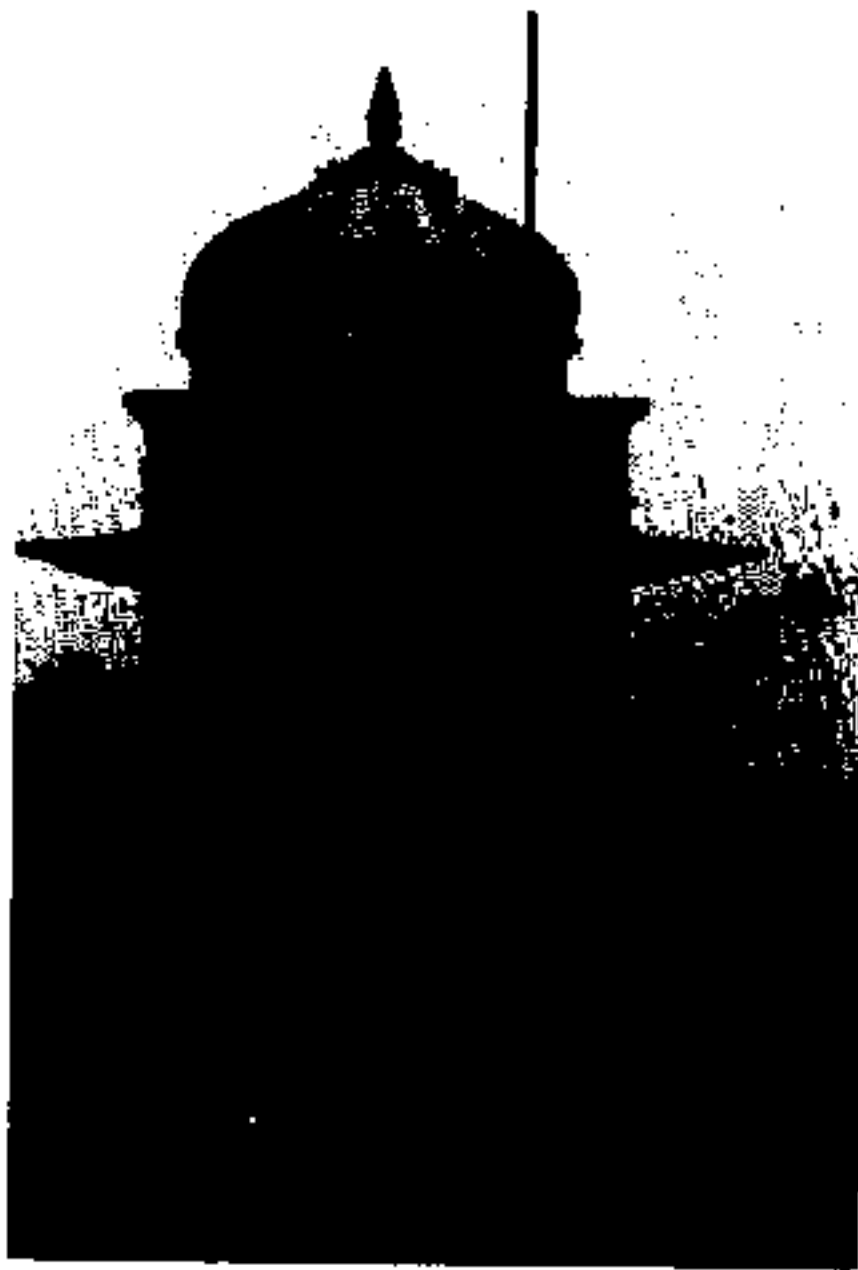
श्री शीतलनाथ स्वामी-विद्युतघर कूट



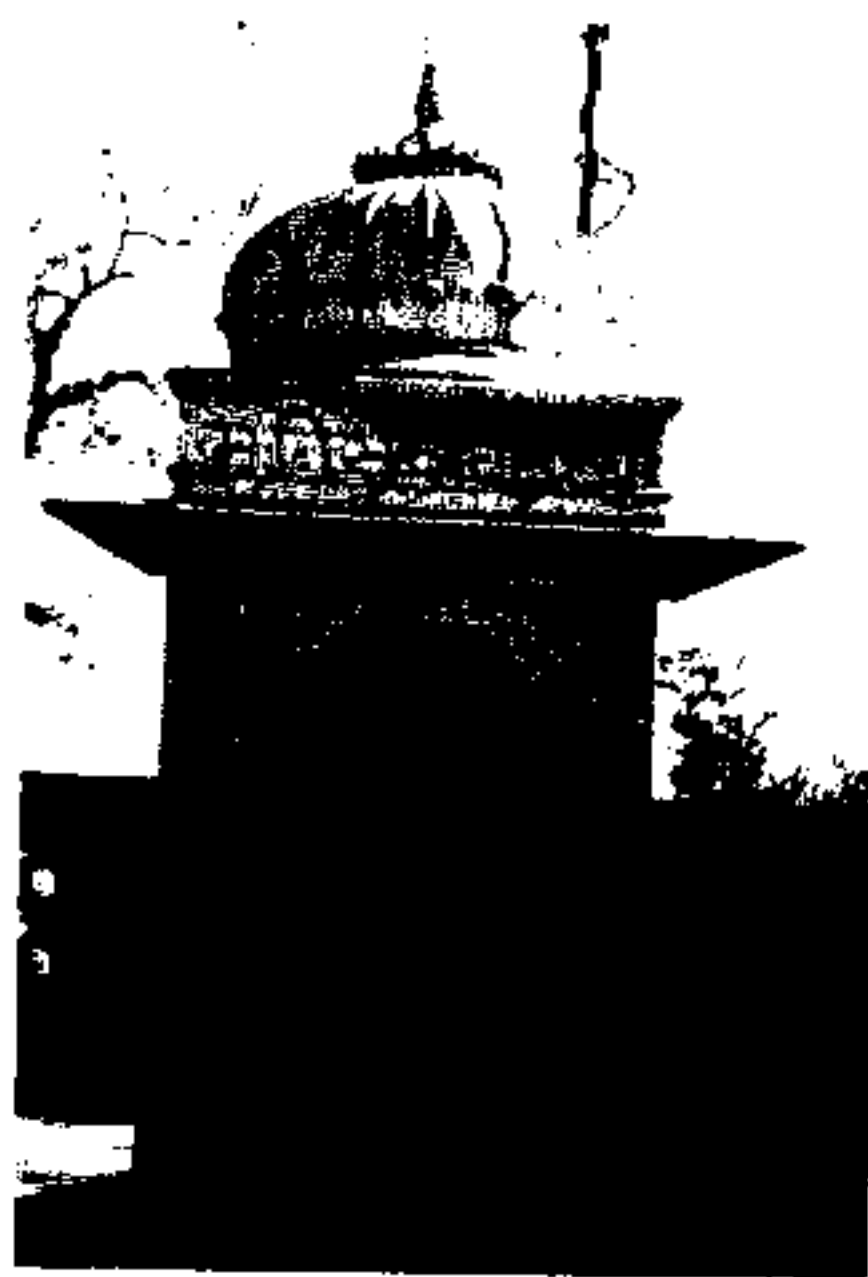
श्री कुन्धनाथ स्वामी-ज्ञानधर कूट



श्री अरहनाथ स्वामी - नाटक कूट



श्री मल्लिनाथ स्वामी-सम्बल कूट



श्री मुनिसुव्रतनाथ स्वामी-निर्जर कूट



श्री नमिनाथ स्वामी-मित्रधर कुट



श्री पद्मप्रम स्वामी-मोहन कूट



श्री चन्द्रप्रभ स्वामी-ललित कूट



श्री पुष्पदन्त स्वामी - धवलदत्त कूट



श्री सुपाश्वनाथ स्वामी-प्रभास कूट